प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी

नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति से लिखी गयी संस्कृत-व्याकरण, अनुवाद और निबन्ध की पुस्तक

लेखक—

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य,

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी), एम. ओ. एल., डी फिल् (प्रयाग), पी. ई. एस.,
विद्याभास्कर, साहित्यरत्न, व्याकरणाचार्य

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

समर्पण

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ।
(ऋग्वेद १०-१४-१५)

संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार
में संलग्न
संस्कृत-प्रेमी जनता की
सेवा में
सस्नेह समर्पित ।

कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

विषय-सूची

विवरण

परिशिष्ट

भूमिका

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी ने प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी का निर्माण करके उस काम की पूर्ति की है जो रचनानुवादकौमुदी से आरम्भ हुआ था। मै स्वय सस्कृत व्याकरण और साहित्य का इतना ज्ञान नहीं रखता कि पुस्तक के गुण-दोषों की यथार्थ समीक्षा कर सकूँ। परन्तु उसका स्वरूप ऐसा है जिससे मुझको यह प्रतीत होता है कि वह उन लोगों को निश्चय ही उपयोगी प्रतीत होगी जिनके लिए उसकी रचना हुई है। मैं सस्कृत ग्रथों को पढता रहता हूँ। कभी कभी सस्कृत में कुछ लिखने का भी प्रयास करता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि इस पुस्तक से मेरे जैसे व्यक्ति को सहायता मिलेगी और कई भद्दी भूलों से त्राण हो जायेगा। यों तो सस्कृत के प्रामाणिक व्याकरणों का स्थान दूसरी पुस्तकें नहीं ले सकतीं, फिर भी जिन लोगो को किन्हीं कारणों से उनके अध्ययन का अवसर नहीं मिला है, उनके लिए प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी जैसी पुस्तकें वस्तुतः बहुमूल्य हैं।

नैनीताल,
जुलाई, ७, १९६०।

(डॉ०) सम्पूर्णानन्द
मुख्यमन्त्री,
उत्तर प्रदेश।

आत्म-निवेदन

(१) **पुस्तक-लेखन का उद्देश्य**—यह पुस्तक कतिपय विशेष उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर लिखी गयी है। उनमें से विशेष उल्लेखनीय ये हैं:—(क) संस्कृत के प्रौढ विद्यार्थियों को प्रौढ संस्कृत सिखाना। (ख) अति सरल और सुबोध ढंग से अनुवाद और निबन्ध सिखाना। (ग) २ वर्ष में प्रौढ संस्कृत लिखने और बोलने का अभ्यास कराना। (घ) अनुवाद के द्वारा सम्पूर्ण व्याकरण सिखाना। (ङ) संस्कृत के मुहावरों का वाक्य-रचना के द्वारा प्रयोग सिखाना। (च) प्रौढ संस्कृत रचना के लिए उपयोगी समस्त व्याकरण का अभ्यास कराना। (छ) इस पुस्तक के प्रथम दो भाग प्रारम्भिक छात्रों के लिए हैं, यह प्रौढ विद्यार्थियों के लिए है। अतः यह उचित है कि इस पुस्तक का अभ्यास करने से पूर्व छात्र 'रचनानुवादकौमुदी' का अभ्यास अवश्य कर लें।

(२) **पुस्तक की शैली**—यह पुस्तक कतिपय नवीनतम विशेषताओं के साथ प्रस्तुत की गयी है। (क) इङ्ग्लिश्, जर्मन, फ्रेंच और रूसी आदि भाषाओं में अपनायी गयी वैज्ञानिक पद्धति इस पुस्तक में अपनायी गयी है। (ख) प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द तथा कुछ व्याकरण के नियम दिए गए हैं। (ग) शब्दकोश और व्याकरण से सम्बद्ध सभी मुहावरे प्रत्येक अभ्यास में सिखाए गए हैं।

(३) **अभ्यास**—इस पुस्तक में ६० अभ्यास हैं। प्रत्येक अभ्यास दो पृष्ठों में हैं। बाईं ओर शब्दकोष और व्याकरण हैं, दाईं ओर संस्कृत में अनुवादार्थ गद्य तथा संकेत हैं।

(४) **शब्दकोष**—(क) प्रत्येक अभ्यास में २५ नये शब्द हैं। शब्दकोष में ४८ वर्ग भी दिए गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि सभी उपयोगी शब्दों का संग्रह हो। अमरकोश के प्रायः सभी उपयोगी शब्द विभिन्न वर्गों में दिए गए हैं। यह भी ध्यान रखा गया है कि प्रौढ रचना को ध्यान में रखते हुए उच्च संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त शब्दों को विशेष रूप से अपनाया जाए। प्रत्येक वर्ग में उस वर्ग से सम्बद्ध सभी उपयोगी शब्द दिए गए हैं। (ख) यह भी प्रयत्न किया गया है कि आधुनिक प्रचलित शब्दों और भावों के लिए भी उपयोगी संस्कृत शब्द दिए जाएँ। इसके लिए दो बातें मुख्यतया ध्यान में रखी गयी हैं—१. जिन भावों के लिए प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में कोई शब्द मिल सकता है, वहाँ उन संस्कृत-शब्दों को अपनाया गया है। जो प्राचीन संस्कृत शब्द नवीन अर्थों का बोध करा सकते हैं, उनका नवीन अर्थों में प्रयोग किया गया है। २. जिन शब्दों के लिए संस्कृत में प्राचीन शब्द नहीं हैं, उनके लिए नए शब्द बनाए गए हैं। कहीं पर ध्वन्यनुकरण के आधार पर और कहीं पर भावानुकरण के आधार पर। जैसे—मिष्टान्नवर्ग और पानादिवर्ग में सभी मिठाइयों, नमकीन, चाय, टोस्ट और पेस्ट्री आदि के लिए शब्द हैं। नवशब्द-निर्माण वाले स्थलों पर अपने विवेक के अनुसार कार्य किया गया है। ऐसे स्थलों पर मतभेद सम्भव है। जो विद्वान् नवीन भावों के लिए अधिक

उपयुक्त शब्दों का सुझाव देंगे, उनके सुझावों पर विशेष ध्यान दिया जायगा। (ग) शब्दकोष को चार भागों मे विभक्त किया गया है। इसके लिए इन सकेतों को स्मरण कर लें। शब्दकोष में (क) का अर्थ है—सजा या सर्वनाम शब्द। (ख) का अर्थ है—धातु या क्रिया-शब्द। (ग)=अव्यय। (घ)=विशेषण। (क) भाग में दिए अधिकाश शब्द राम, रमा या गृह के तुल्य चलते हैं। शब्दों के स्वरूप से इस बात का बोध हो जाता है। जहाँ पर सन्देह हो, वहाँ पर पुस्तक के अन्त में दिए हिन्दी-सस्कृत शब्दकोष से सहायता ले। वहाँ पर लिंग-निर्देश विशेष रूप से किया गया है। (ख) भाग मे दी गयी धातुओं के गण और पद के विषय में जहाँ पर सन्देह हो, वहाँ पर धातुरूप-कोष में दिए हुए धातु के विवरण से सन्देह का निराकरण करे। (ग) भाग में दिए हुए शब्द अव्यय हैं, इनके रूप नहीं चलते हैं। (घ) भाग में दिए शब्द विशेषण हैं, इनके लिग आदि विशेष्य के तुल्य होंगे। विशेषण-शब्द तीनों लिगों में आते हैं। (घ) शब्दकोष में यह भी ध्यान रखा गया है कि जिस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास में सिखाया गया है, उस प्रकार के अन्य शब्दों या धातुओं का भी अभ्यास उसी पाठ मे कराया जाए। इसके लिए दो प्रकार अपनाए गए हैं। १. उस प्रकार के शब्द या धातुएँ शब्दकोष में दी गयी हैं। २ उस प्रकार के शब्दों या धातुओ का प्रयोग उसी पाठ के 'सस्कृत बनाओ' वाले अश में सिखाया गया है। कोष्ठ में ऐसे शब्दों का सकेत कर दिया गया है। (ङ) शब्दकोष के विषय में इन सकेतों का उपयोग किया गया है। १. 'वत्' अर्थात् इसके तुल्य रूप चलेंगे। जैसे—रामवत्, राम के तुल्य रूप चलेंगे। भवतिवत्, भू धातु के तुल्य रूप चलेंगे। २.—डैश, यहाँ से लेकर यहाँ तक के शब्द या धातु। ३.> अर्थात् 'का रूप बनता है'। भू>भवति, अर्थात् भू का भवति रूप बनता है। (च) शब्दकोष में शब्द विविध वर्गों के अनुसार रखे गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि उस वर्ग से सम्बद्ध शब्द उसी अभ्यास में दिए जायें। अत. प्रत्येक वर्गों से सम्बद्ध शब्दों को उसी अभ्यास मे देखें। प्रत्येक अभ्यास के शब्दकोष में (क) (ख) आदि के बाद निर्देश कर दिया गया है कि (क) या (ख) आदि में कितने शब्द दिए गए हैं। (छ) प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द हैं। प्रत्येक अभ्यास के प्रारम्भ में निर्देश किया गया है कि अबतक कितने शब्द पढ चुके हैं। ६० अभ्यासों में १५०० शब्दों का अभ्यास कराया गया है। लगभग इतने ही नए शब्दों और मुहावरों का प्रयोग 'सकेत' में सिखाया गया है। इस प्रकार लगभग ३ हजार शब्दों का ज्ञान विद्यार्थी को हो जाता है। शब्दकोष के शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार से है :—

(क) अर्थात् संज्ञा या सर्वनाम शब्द	११३४
(ख) अर्थात् धातु या क्रिया शब्द	२१५
(ग) अर्थात् अव्यय शब्द	६९
(घ) अर्थात् विशेषण	८२
पठित एवं अभ्यस्त शब्दों का योग	१५०० (शब्दकोष)

(५) व्याकरण—(क) प्रत्येक अभ्यास में कुछ शब्दों और धातुओं का प्रयोग सिखाया गया है। अतः आवश्यक है कि उन शब्दों और धातुओं को प्रत्येक अभ्यास में अवश्य स्मरण कर लें। (ख) सम्पूर्ण संस्कृत व्याकरण को केवल ३०० नियमों में समाप्त किया गया है। इन ३०० नियमों को विषयों के अनुसार ६० अभ्यासों में बाँटा गया है। प्रत्येक अभ्यास में कुछ नियमों का अभ्यास कराया गया है। इन नियमों को ठीक स्मरण कर लें। इनको ठीक स्मरण कर लेने पर ही संस्कृत में अनुवाद शुद्ध एवं सरलता से हो सकेगा। (ग) नियमों के साथ पाणिनि के प्रामाणिक सूत्र भी कोष्ठ में दिए गए हैं। (घ) यह भी प्रयत्न किया गया है कि ह्विटनी, काले, आप्टे आदि विद्वानों के द्वारा निर्दिष्ट नियम या विवरण भी न छूटने पावें। ऐसे नियमों या विवरणों के साथ पाणिनि के नियमों का भी संकेत कर दिया गया है। (ङ) इस पुस्तक में यह भी प्रयत्न किया गया है कि संस्कृत-व्याकरण के सभी उपयोगी एवं प्रचलित नियमों का संग्रह हो। जो नियम अप्रचलित एवं विशेष उपयोगी नहीं हैं, वे छोड़ दिए गए हैं।

(६) अनुवाद—(क) शब्दकोश में दिए शब्दों और व्याकरण के नियमों से सम्बद्ध वाक्य अनुवादार्थ दिए गए हैं। (ख) प्रत्येक पाठ में जिन शब्दों और धातुओं का अभ्यास कराया गया है, उनसे सम्बद्ध वाक्य तथा उनसे सम्बद्ध मुहावरे भी उसी अभ्यास में दिए गए हैं। (ग) कठिन वाक्य और मुहावरेवाले वाक्य काले टाइप में छपे हैं। उनकी संस्कृत नीचे 'संकेत' वाले अंश में दी गयी है। वहाँ देखें। कुछ विशेष मुहावरे सिखाने के लिए कतिपय सरल वाक्य भी काले टाइप में दिए गए हैं। उन सभी मुहावरों को सावधानी से स्मरण कर लें। (घ) व्याकरण के नियमों के जो उदाहरण संस्कृत में दिए हैं, उनका हिन्दी-रूप अनुवादार्थ दिया गया है। ऐसे वाक्यों की संस्कृत दिए गए नियमों के उदाहरणों में देखें। इनकी संस्कृत 'संकेत' में नहीं दी है। (ङ) प्रत्येक अभ्यास में प्रयुक्त शब्दों और धातुओं के तुल्य जिन शब्दों और धातुओं के रूप चलते हैं, उनका भी उसी पाठ में अभ्यास कराया गया है। ऐसे शब्द या धातुएँ उन अभ्यासों में कोष्ठ में दी गयी हैं।

(७) संकेत—(क) 'संस्कृत बनाओ' वाले अंश में जितना अंश काले टाइप में छपा है, उसकी संस्कृत 'संकेत' में उसी क्रम और उन्हीं वाक्य-संख्याओं के साथ दी गयी है। (ख) संस्कृत में प्रचलित मुहावरे इस अंश में विशेष रूप से दिए गए हैं। (ग) कठिन शब्दों की संस्कृत, सूक्तियाँ, व्याकरण के विशिष्ट प्रयोग तथा अन्य उपयोगी संकेत इस अंश में दिए गए हैं।

(८) परिशिष्ट—पुस्तक के अन्त में अत्यन्त उपयोगी १५ परिशिष्ट दिए गए हैं। इनका विशेष विवरण विषय-सूची तथा विषयानुक्रमणिका में देखें। यहाँ पर कुछ विशेष उल्लेखनीय बातों का ही निर्देश किया गया है।

(९) शब्दरूप-संग्रह—संस्कृत में विशेष प्रचलित सभी शब्दों के रूप इस परिशिष्ट में दिए गए हैं। पुंलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग के शब्द प्रत्येक लिंग में अन्त्याक्षर के क्रम से दिए गए हैं। अन्य शब्दों के रूप लिंग तथा अन्त्याक्षर को देखकर इन शब्दों के तुल्य चलावें।

(१०) संख्यायें—संस्कृत में १ से १०० तक गिनती तथा महाशंख तक संख्याएँ इस परिशिष्ट में दी गयी हैं।

(११) धातुरूप-संग्रह—संस्कृत में अधिक प्रयुक्त १०० धातुओं के दसों लकारों के रूप इस परिशिष्ट में दिए गए हैं। अन्य धातुओं के रूप गण तथा पद को देखकर इनके तुल्य चलावें।

(१२) धातुरूप-कोष—इस परिशिष्ट में संस्कृत में विशेष रूप से प्रयुक्त ४६५ धातुओं के दसों लकारों के प्रारम्भिक रूप दिए गए हैं। साथ में उनके अर्थ, गण और पद का भी निर्देश है। सभी धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गयी हैं।

(१३) प्रत्यय-विचार—१५ विशेष कृत् प्रत्ययों से बनने वाले सभी विशेष रूप इस परिशिष्ट में अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।

(१४) सन्धि-विचार—इस परिशिष्ट में प्रयोग में आने वाले सभी सन्धि-नियम ७५ नियमों में दिए गए हैं।

(१५) पत्रादि-लेखन-प्रकार—इस परिशिष्ट में संस्कृत में पत्र लिखना, प्रार्थना-पत्र देना, निमन्त्रण देना, परिषत्-सूचना और पुरस्कार-वितरण आदि का प्रकार बताया गया है।

(१६) निबन्ध-माला—इसमें उदाहरण के रूप में २० अत्युपयोगी विषयों पर संस्कृत में निबन्ध दिए गए हैं। इसमें प्रयत्न किया गया है कि भाषा न अति कठिन हो और न अति सरल। भाषा में प्रौढता के साथ ही प्रवाह और मुहावरे आदि भी हों। शास्त्रीय और साहित्यिक विषयों पर उद्धरणों की संख्या अधिक दी गयी है। इसका कारण यह है कि छात्र स्वयोग्यतानुसार उन उद्धरणों की व्याख्या आदि करें। छात्र इन निबन्धों के आधार पर संस्कृत में अन्य निबन्ध स्वयं लिखने का अभ्यास करें।

(१७) अनुवादार्थ गद्य-संग्रह—इस परिशिष्ट में ४० सन्दर्भ अनुवादार्थ दिए गए हैं। इनमें से अधिकांश प्रौढ संस्कृत ग्रन्थों से लिए गए हैं और उनका हिन्दी-रूपान्तर अनुवादार्थ दिया गया है। 'संकेत' में मुहावरे आदि भी मूल रूप में दिए गए हैं। ऐसे सन्दर्भ भी अनुवादार्थ दिए गए हैं, जिनके अभ्यास से संस्कृत साहित्य और नाट्यशास्त्र आदि का ज्ञान हो।

(१८) सुभाषित-मुक्तावली—इसमें १४६७ सुभाषित १७ प्रमुख शीर्षकों तथा ८४ उपशीर्षकों में दिए गए हैं। सुभाषित अकारादि क्रम से दिए गए हैं। यथा-सम्भव उनके मूल आकर-ग्रन्थों का भी संकेत किया गया है। ये सुभाषित निबन्ध, व्याख्यान आदि के लिए अत्युपयोगी हैं।

(१९) पारिभाषिक शब्दकोश—इसमें १६७ व्याकरण के पारिभाषिक शब्द अकारादि क्रम से पूर्ण विवरण के साथ दिए हैं। साथ में पाणिनि के सूत्रादि भी दिए गए हैं। व्याकरण ठीक समझने के लिए इनका ज्ञान अनिवार्य है।

(२०) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोश—इस पुस्तक में प्रयुक्त सभी शब्दों का इसमें संग्रह किया गया है। अकारादि-क्रम से हिन्दी शब्द दिए गए हैं। इनके आगे उनकी संस्कृत दी गयी है। शब्दों के आगे लिंग-निर्देश आदि भी किया गया है।

(२१) विषयानुक्रमणिका—पुस्तक में वर्णित सभी विषयों का इस परिशिष्ट में अकारादि-क्रम से उल्लेख है। प्रत्येक विषय के आगे पृष्ठ-संख्या के द्वारा निर्देश किया गया है कि वह विषय अमुक पृष्ठ पर मिलेगा।

(२२) मुद्रण—मुद्रण में ह्रस्व और दीर्घ ऋ में यह अन्तर रखा गया है। इसे स्मरण रखें। ऋ = ह्रस्व ऋ। ॠ = दीर्घ ॠ।

पुस्तक की विशेषताएँ

(१) इंग्लिश्, जर्मन, फ्रेंच और रूसी भाषाओं में अपनायी गयी नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति इस पुस्तक में अपनायी गयी है।

(२) प्रौढ संस्कृत-ज्ञान के लिए उपयुक्त समस्त व्याकरण अनुवाद और प्रौढ वाक्य-रचना के द्वारा अति सरल और सुबोध रूप में समझाया गया है।

(३) केवल ६० अभ्यासों में ३०० नियमों के द्वारा समस्त आवश्यक व्याकरण समाप्त किया गया है। नियमों के साथ पाणिनि के सूत्र भी दिए गए हैं।

(४) ४८ वर्गों और १२ विशिष्ट शब्द-संग्रहों के द्वारा सभी उपयोगी और आवश्यक शब्दों का संग्रह किया गया है। प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द हैं। १५०० उपयोगी शब्दों और धातुओं का प्रयोग सिखाया गया है।

(५) लगभग एक सहस्र संस्कृत की लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अनुवाद के द्वारा सिखाया गया है।

(६) परिशिष्ट में लगभग १५०० सुभाषितों की 'सुभाषित-मुक्तावली' विभिन्न ८८ विषयों पर अकारादि-क्रम से दी गयी है।

(७) संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के अन्य ग्रन्थों से अनुवादार्थ सन्दर्भों का सञ्चयन किया गया है। इनके लिए उपयुक्त संकेत भी दिए गए हैं।

(८) सभी प्रचलित शब्दों के रूपों का संग्रह किया गया है।

(९) १०० विशेष प्रचलित धातुओं के दसों लकारों के रूपों का संकलन 'धातुरूप संग्रह' में किया गया है। 'धातुरूप-कोष' में अत्युपयोगी ४६५ धातुओं के दसों लकारों के प्रारम्भिक रूप दिए गए हैं। साथ में उनके अर्थ, गण और पद का भी निर्देश है। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गयी हैं।

(१०) सभी उपयोगी व्याकरण की बातों का संग्रह किया गया है। जैसे सन्धि-विचार, कारक-विचार, समास विचार, क्रिया-विचार, कृत्प्रत्यय-विचार, तद्धित-प्रत्यय-विचार, स्त्री-प्रत्यय विचार आदि।

(११) व्याकरण-ज्ञान के लिए अनिवार्य १६५ शब्दों का एक 'पारिभाषिक-शब्दकोश' अकारादि-क्रम से परिशिष्ट में दिया गया है।

(१२) अत्युपयोगी २० विषयों पर प्रौढ संस्कृत में निबन्ध दिए गए हैं।

(१३) प्रत्येक अभ्यास में व्याकरण के कुछ विशेष नियमों का अभ्यास कराया गया है और अनुवादार्थ अत्युपयोगी संकेत दिए गए हैं।

(१४) परिशिष्ट के अन्त में बृहत् हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष भी दिया गया है।

कृतज्ञता-प्रकाशन

इस पुस्तक के लेखन में मुझे जिन महानुभावों से विशेष आवश्यक परामर्श, प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है, उनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं। मैं इनका कृतज्ञ हूँ।

सर्वश्री राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० ज० कि० बल्बीर (पेरिस), प० छेदीप्रसाद व्याकरणाचार्य (गुरुकुल म० वि० ज्वालापुर), स्वामी अमृतानन्द सरस्वती (रामगढ, नैनीताल), डॉ० हरिदत्त शास्त्री सप्ततीर्थ (कानपुर), श्रीमती ओमशान्ति द्विवेदी, श्री पुरुषोत्तमदास मोदी।

अन्त में विद्वज्जन से निवेदन है कि वे पुस्तक के विषय में जो भी संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन आदि का विचार भेजेंगे, वह बहुत कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया जायगा।

गवर्नमेण्ट कॉलेज, नैनीताल
ता० १-६-६० ई० } कपिलदेव द्विवेदी

चतुर्थ संस्करण की भूमिका

संस्कृत प्रेमी शिक्षकों और छात्रों ने इस पुस्तक का जो हार्दिक स्वागत किया है, तदर्थ उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उत्तर भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों ने इसको अपने पाठ्यक्रम में स्थान दिया है, तदर्थ उनका अनुगृहीत हूँ। जिन विद्वानों ने आवश्यक संशोधनादि के विचार भेजे हैं, उनको विशेष धन्यवाद देता हूँ। उनके संशोधनादि के विचारों का यथासम्भव पूर्ण पालन किया गया है। पुस्तक को विशेष उपयोगी बनाने के लिए इस संस्करण में ३२ पृष्ठ और बढाए गए हैं। १०० धातुओं के क्त आदि प्रत्ययों से बने रूपों की सारणी दी गयी है। वाक्यार्थ में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों का एक संग्रह दिया गया है। १० निबन्धो को विस्तृत करके समस्त उद्धरणों को पूर्ण किया गया है तथा परिवर्धित रूप में लिखा गया है। यथास्थान आवश्यक सभी परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधनादि किए गए हैं। आशा है प्रस्तुत संस्करण छात्रों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

गवर्नमेण्ट कालेज, ज्ञानपुर
ता० १-९-७२ ई० } कपिलदेव द्विवेदी

आवश्यक-निर्देश

१ 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—शुद्ध, परिमार्जित, परिष्कृत। अतः संस्कृत भाषा का अर्थ है—शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा।

२ निम्नलिखित १४ माहेश्वर सूत्र हैं। इनमें पूरी वर्णमाला इस प्रकार दी हुई है—क्रमशः स्वर, अन्तःस्थ, वर्ग के पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्ण, ऊष्म।

१ अइउण्। २ ऋलृक्। ३ एओङ्। ४ ऐऔच्। ५ हयवरट्। ६ लण्। ७ ञमङणनम्। ८ झभञ्। ९ घढधष्। १० जबगडदश्। ११. खफछठथचटतव्। १२ कपय्। १३ शषसर्। १४ हल्।

३ पाणिनि के सूत्रों में प्रत्याहारों का प्रयोग है। प्रत्याहार का अर्थ है संक्षेप में कहना। उपर्युक्त सूत्रों से प्रत्याहार बनाने के लिए ये नियम हैं—(क) प्रत्याहार बनाने के लिए पहला अक्षर सूत्र में जहाँ हो, वहाँ से लें और दूसरा अक्षर सूत्रों के अन्तिम अक्षरों में ढूँढें। (ख) सूत्रों के अन्तिम अक्षर (ण्, क् आदि) प्रत्याहार में नहीं गिने जाते हैं। वे प्रत्याहार बनाने के साधन हैं। जैसे—अल् प्रत्याहार—प्रथम अ से लेकर हल् के ल् तक। इक्—इ उ ऋ लृ। अच्—अ से औ तक पूरे स्वर। हल्—सारे व्यंजन।

४. संस्कृत में ३ वचन होते हैं—एकवचन (एक०), द्विवचन (द्वि०), बहुवचन (बहु०)। तीन पुरुष होते हैं—प्रथम या अन्य पुरुष (प्र० पु० या प्र०), मध्यम पुरुष (म० पु० या म०), उत्तम पुरुष (उ० पु० या उ०)। कारक ६ हैं। षष्ठी और संबोधन को लेकर आठ कारक (विभक्तियाँ) होते हैं। इनके नाम और चिह्न ये हैं —

विभक्ति	कारक	चिह्न	विभक्ति	कारक	चिह्न
(१) प्रथमा (प्र०)	कर्ता	—, ने	(५) पंचमी (पं०)	अपादान	से
(२) द्वितीया (द्वि०)	कर्म	को	(६) षष्ठी (ष०)	संबन्ध	का, के, की
(३) तृतीया (तृ०)	करण	ने, से, द्वारा	(७) सप्तमी (स०)	अधिकरण	में, पर
(४) चतुर्थी (च०)	संप्रदान	के लिए	(८) संबोधन (सं०)	संबोधन	हे, अये, भोः

कर्ता कर्म च करणं संप्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

५ संस्कृत में क्रिया के १० लकार (वृत्तियाँ) होते हैं। इनके नाम तथा अर्थ ये हैं—(१) लट् (वर्तमान काल), (२) लोट् (आज्ञा अर्थ), (३) लङ् (अनद्यतन भूतकाल), (४) विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ), (५) लृट् (भविष्यत् काल), (६) लिट् (अनद्यतन परोक्ष भूत), (७) लुट् (अनद्यतन भविष्यत्), (८) आशीर्लिङ् (आशीर्वाद), (९) लुङ् (सामान्य भूत), (१०) लृङ् (हेतुहेतुमद् भूत या भविष्यत्)।

६ धातुएँ तीन प्रकार की हैं, अतः धातुओं के रूप तीन प्रकार से चलते हैं। परस्मैपदी (प०, ति तः अन्ति आदि अन्त में)। आत्मनेपदी (आ०, ते एते अन्ते आदि अन्त में)। उभयपदी (उ०, दोनों प्रकार के रूप)।

७. संस्कृत में १० गण (धातुओं के विभाग) होते हैं। प्रत्येक धातु किसी एक गण में आती है। इनके लिए कोष्ठगत संकेत हैं। भ्वादिगण (१), अदादि० (२), जुहोत्यादि० (३), दिवादि० (४), स्वादि० (५), तुदादि० (६), रुधादि० (७), तनादि० (८), क्र्यादि० (९), चुरादि० (१०)। ११ वाँ गण कण्ड्वादिगण है।

८. शब्दकोष में इन संकेतों का प्रयोग किया गया है। इन्हें स्मरण रखें।
(क) = संज्ञा या सर्वनाम शब्द। (ख) = धातु या क्रिया-शब्द।
(ग) = अव्यय या क्रिया-विशेषण। (घ) = विशेषण शब्द।

शब्दकोष-२५] अभ्यास १ (व्याकरण)

(क) रामः (राम), पातोत्पातः (उत्थान-पतन), सद्वृत्तः (सदाचारी), दुराचारः (दुराचारी), वैधेय. (मूर्ख), बुभुक्षित. (भूखा), मल्ल. (पहलवान)। (७)। (ख) भू (होना), अनुभू (अनुभव करना), प्रभू (१. निकलना, २ समर्थ होना, ३. अधिकार होना, ४ बराबर होना, ५ समाना), पराभू (हराना), परिभू (तिरस्कृत करना), अभिभू (हराना, दबाना), सम्भू (उत्पन्न होना), उद्भू (पैदा होना), आविर्भू (प्रकट होना), तिरोभू (छिप जाना), प्रादुर्भू (जन्म लेना), अर्ह् (योग्य होना), परिहस् (हँसी करना), प्रलप् (बकवाद करना)। (१४)। (ग) परमार्थत (सत्य, ठीक), नाम (निश्चय से)। (२)। (घ) मधुरम् (मीठा), तीव्रम् (तेज)। (२)

व्याकरण (राम, लट्, प्रथमा, द्वितीया)

१ राम शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्दरूप सख्या १)

२. भू तथा हस् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातुरूप सख्या १, २)

३. भू धातु के उपसर्ग लगाने से हुए विशेष अर्थों को स्मरण करो और उनका प्रयोग करो।

नियम १—कर्तृवाच्य में कर्ता (व्यक्तिनाम, वस्तुनाम आदि) मे प्रथमा होती है और कर्मवाच्य में कर्म मे प्रथमा होती है। जैसे—राम पठति। अश्वो धावति। रामेण पाठ पठ्यते।

नियम २—किसी के अभिमुखीकरण तथा समुखीकरण मे (सम्बोधन करने में) सम्बोधन विभक्ति होती है। जैसे—हे राम, हे कृष्ण।

नियम ३—(कर्तुरीप्सिततम कर्म) कर्ता जिसको (व्यक्ति, वस्तु या क्रिया को) विशेष रूप से चाहता है, उसे कर्म कहते हैं।

नियम ४—(कर्मणि द्वितीया) कर्म मे द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—स पुस्तक पठति। स राम पश्यति। ते प्रश्न पृच्छन्ति।

नियम ५—(अभित.परित समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि) अभित, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति के साथ द्वितीया होती है। जैसे—नृपम् अभित परितः वा। ग्राम समया निकषा वा (गाँव के समीप)। बुभुक्षित न प्रतिभाति किंचित्।

नियम ६—(उभमर्वतसोः कार्या०) उभयत., सर्वत., धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः, अध्यधि के साथ द्वितीया होती है। जैसे—कृष्णमुभयतो गोपा.। नृप सर्वतो जनाः। धिक् नास्तिकम्।

नियम ७—गति (चलना, हिलना, जाना) अर्थ की धातुओं के साथ द्वितीया होती है। गत्यर्थ का आलकारिक प्रयोग होगा तो भी द्वितीया होगी। जैसे—गृह गच्छति। वन विचरति। तृप्तिं ययौ। मम स्मृतिं यातः। उमाख्या जगाम। निद्रा ययौ।

नियम ८—अकर्मक धातुएँ उपसर्ग पहले लगने से प्राय. अर्थानुसार सकर्मक हो जाती हैं, उनके साथ द्वितीया होगी। जैसे—हर्षमनुभवति। स खलम् अभिभवति। स शत्रु परिभवति पराभवति वा। वृक्षमारोहति। दिवमुत्पतति। स्वामिचित्तमनुवर्तते।

नियम ९—स्मृ धातु के साथ साधारण स्मरण में द्वितीया होती है। खेदपूर्वक स्मरण में षष्ठी होती है। जैसे—स पाठ स्मरति (वह पाठ याद करता है)। बाल. मातुः स्मरति। (बालक खेद के साथ माता को स्मरण करता है)।

अभ्यास १

१ संस्कृत बनाओ—(क) (राम, लट्) १ राम मीठे स्वर से पढ़ता है। २ देवता तेरा चरित लिख रहे हैं। ३ होनहार होकर ही रहती है। ४ जीवन में उत्थान और पतन सबके ही होते हैं। ५ वह तिल का ताड़ बनाता है। ६ उसे पुरस्कार मिलना चाहिए। ७ वह सदाचारी है, अतः उसका सर्वत्र सम्मान होना चाहिए। ८ वह दुराचारी है, अतः आदर के योग्य नहीं है। ९ दुष्ट व्यक्ति दूसरों के सरसों के बराबर भी छोटे दोषों को देखता है और अपने बड़े दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता है। १० मैं तुमसे हँसी नहीं कर रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ। ११ मनुष्य का भाग्य रथ-चक्र के सदृश कभी नीचे जाता है और कभी ऊपर। १२ यह मूर्ख बकवाद करता है। (ख) (भू धातु) १ क्रोध से मोह होता है (भू)। २ भाग्य से ही धन मिलता है और नष्ट होता है। ३ ऐसा कैसे हो सकता है? ४ चाहे जो हो, मैं यह काम अवश्य करूँगा। ५ उस बालक का क्या हाल हुआ? ६. यदि तुम्हें सन्देह हो तो पिता से पूछना। ७ दुष्ट, यदि प्रहार करेगा तो जीवित नहीं बचेगा। ८ यह जल आपके पैर धोने का काम देगा। ९ जो विद्या पढ़ता है, वह हर्ष का अनुभव करता है। १० सज्जन सुख का अनुभव करता है। ११ वृक्ष अपने ऊपर तीक्ष्ण गर्मी सहन करता है। १२ तुम अपने किए हुए पुण्य कर्मों का फल भोग रहे हो (अनुभू)। १३ लोभ से क्रोध होता है (प्रभू)। १४ गंगा हिमालय से निकलती है (प्रभू)। १५ भाग्य बलवान् है। १६ आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है? (ग) (द्वितीया) १ उसने प्रश्न पूछा। २. नदी के दोनों ओर खेत (क्षेत्राणि) हैं। ३ नगर के चारों ओर वन है। ४ नगर के पास ही एक सुन्दर उपवन है। ५ भूखे को कुछ अच्छा नहीं लगता है। ६. संसार के ऊपर, अन्दर और नीचे ईश्वर है। ७. सिंह वन में घूमता है (विचर्)। ८ यह बात मेरी समझ में आई। ९ वह पेड़ पर चढ़ता है। १० छात्र पाठ याद कर रहा है। ११ उसका नाम राम रखा गया। १२ उसे नींद आ गई।

संकेत—(क) १ मधुरम्। २ त्वच्चरितम्। ३ भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र। ४ पातोत्पातौ। ५ तिले तालं पश्यति। ६ पुरस्कारमर्हति। ७ सम्मानमर्हति। ८ समादरं नार्हति। ९ खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति। आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति। १० नाहं परिहसामि, परमार्थतः। ११ नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। १२ प्रलपत्येष वैधेयः। (ख) २. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति। ३ कथमेवं भवेन्नाम। ४. यद्भावि तद्भवतु। ५. किमभवत्। ६ यदि ते संशयो भवेत्। ७ प्रहरिष्यसि—न भविष्यसि। ८ इदं ते पादोदकं भविष्यति। ९ हर्षमनुभवति। ११. अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम्। १५ प्रभवति विधिः। १६ कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति।

शब्दकोष—२५ + २५ = ५०] **अभ्यास २** (व्याकरण)

(क) गृहम् (घर), निदेश (आज्ञा, निर्दिष्ट कार्य), शिलापट्टः (शिला), अर्थप्रतिपत्ति (स्त्री०, अर्थज्ञान)। (४)। (ख) अनुष्ठा (करना), अधिवस् (रहना), उपवस् (उपवास करना, रहना), दण्ड् (दण्ड देना), अवचि (चुनना), मुष् (चुराना)। (६)। (ग) तावत् (तो, जरा), मुहूर्तम् (थोड़ी देर), जोषम् (चुप), अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना, बारे में), किन्नु (क्या), अनु (बाद में, घटिया, किनारे), उप (समीप, घटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप), दिवा (दिन में), नक्तम् (रात में)। (१२)। (घ) वाचंयम (मौन), अब्रह्मण्यम् (अनर्थ), कुसुमास्तरणम् (फूल के बिस्तर से युक्त)। (३)।

व्याकरण (गृह, रक्ष्, द्वितीया)

१ गृह शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्दरूप संख्या ६१)

२ पठ् तथा रक्ष् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३, ४)

नियम १०—(अन्तरान्तरेणयुक्ते) अन्तरा और अन्तरेण के साथ द्वितीया होती है। बिना के साथ भी द्वितीया होती है। गङ्गा यमुनां चान्तरा प्रयागः। ज्ञानमन्तरेण न सुखम्। भवन्तमन्तरेण (आपके बारे में) कीदृशोऽस्या अनुरागः। श्रमं विना न सिद्धिः।

नियम ११—(अधिशीङ्स्थासां कर्म) अधिशी, अधिस्था और अध्यास् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—आसनमधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा।

नियम १२—(अभिनिविशश्च) अभि + नि + विश् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग पर चलता है)। परन्तु पापेऽभिनिवेशः भी रूप बनता है।

नियम १३—(उपान्वध्याङ्वसः) उप, अनु, अधि और आ उपसर्ग के साथ वस् धातु होगी तो उसके आधार में द्वितीया होगी, किन्तु उपवास करना अर्थ में सप्तमी होगी। जैसे—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा (रहता है)। वने उपवसति (वन में उपवास करता है)—उपवास अर्थ के कारण सप्तमी होगी।

नियम १४—(कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे) समय और मार्ग के दूरीवाची शब्दों में द्वितीया होती है, जब कार्य निरन्तर हुआ हो। मासं पठति। क्रोशं गच्छति। क्रोशं कुटिला नदी (नदी एक कोस तक टेढ़ी है)।

नियम १५—इन उपसर्गों के साथ इन अर्थों में द्वितीया होती है—अनु (बाद में, घटिया, किनारे), उप (समीप, घटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप)। क्रमशः उदाहरण हैं:—जपमनु प्रावर्षत्। अनु हरिं सुराः। नदीमनु सेना। उप हरिं सुराः। अति देवान् कृष्णः। भक्तो हरिमभि वर्तते।

नियम १६—(दुह्याच्पच्दण्ड्०) ये धातुएँ द्विकर्मक हैं। इन अर्थों वाली अन्य धातुएँ भी द्विकर्मक हैं। इनके साथ दो कर्म होते हैं—दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह्। जैसे—गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। अजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा।

अभ्यास २

संस्कृत बनाओ—(क) (गृह्, लोट्) १ जरा रुकिये। २ जरा यह बात बन्द कीजिये। ३. चुप रहो। ४ उस मूर्ख को बकवाद करने दो, तुम सज्जन हो अत मौन रहो। ५. अपना काम करो। ६ अपने काम पर जाओ। ७ आगे कहिये, वहाँ क्या अनर्थ हो गया? ८. भला या बुरा चाहे जो हो, मै अपने वचन का पालन करूँगा। (ख) (भू) १ मैं कठिन परिश्रम के बिना (विना, अन्तरेण) सफलता नहीं प्राप्त कर सकता हूँ। २ आपका छात्रों पर अधिकार है। ३ यदि अपने आपको सँभाल सकी तो यहाँ से जाऊँगी। ४ यह पहलवान उस पहलवान से लड सकता है। ५ वह अति प्रसन्नता से फूला नहीं समाया। ६ बाँधें या छोडें, यह आपका अधिकार है। ७ राजा शत्रु को हराता है (पराभू)। ८ भरत सिंह शावक को तिरस्कृत कर रहा है (परिभू)। ९ तुझे कौन दबा सकता है (अभिभू)? १०. आप जैसे विरले ही ससार मे जन्म लेते हैं (सम्भू)। ११ दरिद्रता से दु ख उत्पन्न होते हैं (उद्भू)। १२ रात्रि मे चन्द्रमा निकलता है (आविर्भू)। १३ सुख में सुख उत्पन्न होते हैं (प्रादुर्भू) और दु.ख मे दु ख। १४ दिन में तारे छिप जाते हैं (तिरोभू) और रात मे निकलते हैं (प्रादुर्भू)। १५. यह विचार मेरे मन में आया (प्रादुर्भू)। (ग) (द्वितीया) १. दूधयुक्त भोजन अमृत है, प्रिय का मिलन अमृत है, राजसम्मान अमृत है, जाड़े में आग अमृत है। २ द्युलोक और पृथ्वी के बीच मे अन्तरिक्ष है। ३ परिश्रम के बिना सुख नही है। ४ अर्थ जाने बिना प्रवृत्ति की योग्यता नहीं होती। ५. मैं आज विद्यालय नहीं गया, आचार्य मेरे बारे में क्या सोचेंगे, यह चिन्ता मुझे व्याकुल कर रही है। ६ शकुन्तला फूलों के विस्तारवाली शिला पर लेटी है। ७ राम दुर्गम वन में रहे। ८ बालक पलँग पर बैठा है (अध्यास्)। ९ राम सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। १० उसकी पाप मे प्रवृत्ति है। ११ राम पचवटी मे बहुत दिन रहे (अधिवस्)। १२ गाधीजी ने अपने आश्रम में २१ दिन का उपवास किया। १३. वह बारह वर्ष गुरुकुल में पढा। १४ वह प्रातः कोसभर घूमने जाता है। १५ यज्ञ के बाद वर्षा हुई। १६ सब कवि कालिदास से घटिया हैं। १७ गंगा के किनारे हरिद्वार है। १८ सब राजा राम से घटिया हैं। १९ कपिल सब मुनियों से बढकर हैं। २०. राम के पास भक्त है। २१ वह गाय का दूध दुहता है। २२ वह राजा से धन माँगता है। २३ वह चावलों से भात पकावे। २४ राजा ने अपराधी पर सौ रुपया जुर्माना किया। २५ वह बकरी को बाडे में बन्द करता है।

सकेत—(क) १ तिष्ठतु तावत्। २ मुहूर्तं तदास्ताम्। ३ आस्स्व। ५ अनुतिष्ठात्मनो नियोगम्। ६ स्वनियोगमशून्य कुरु। ७ तत पर कथय। ८ शुभ वाऽशुभ वा। (ख) १ साफल्य लब्धु न प्रभवामि। २ प्रभवति भवान् छात्राणाम्। ३ यद्यात्मन प्रभविष्यामि। ४ प्रभवति मल्लो मल्लाय। ५ गुरु प्रहर्ष प्रबभूव नात्मनि। ६ प्रभवति भवान् बन्धे मोक्षे च। १० भवादृशा विरला एव। ११ दारिद्र्यात्। (ग) १ अमृत क्षीरभोजनम्, शिशिरे। ५ मामन्तरेण, मा बाधते। ७ अध्यास्त। ८ पल्यङ्कम्। ११ अध्युवास। १२ उपावसत्। १४ क्रमति। १५ अनु। १६ अनु। १७ गङ्गामनु। १८ उप। १९ अति मुनीन्। २० अभि।

शब्दकोष—२५ + २५ = ५०] अभ्यास २ (व्याकरण)

(क) गृहम् (घर), नियोग (आज्ञा, निर्धारित कार्य), शिलापट्ट. (शिला), अर्थप्रतिपत्ति (स्त्री०, अर्थज्ञान)। (४)। (ग) अनुष्ठा (करना), अधिवस् (रहना), उपवस् (उपवास करना, रहना), दण्डि (दण्ड देना), अवचि (चुनना), मुष् (चुराना)। (६)। (ग) तावत् (तो, जरा), मुहूर्तम् (थोड़ी देर), जोषम् (चुप), अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना, बारे में), किं नु (क्या), अनु (बाद में, घटिया, किनारे), उप (समीप, घटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप), दिवा (दिन में), नक्तम् (रात में)। (१२)। (घ) वाचंयम (मौन), अब्रह्मण्यम् (अनर्थ), सकुसुमास्तरणम् (फूल के विस्तर से युक्त)। (३)।

व्याकरण (गृह, लोट्, द्वितीया)

१ गृह शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्दरूप संख्या ६१)

२. पट् तथा रक्ष् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३, ४)

नियम १०—(अन्तरान्तरेणयुक्ते) अन्तरा और अन्तरेण के साथ द्वितीया होती है। विना के साथ भी द्वितीया होती है। गङ्गां यमुनां चान्तरा प्रयागः। ज्ञानमन्तरेण न सुखम्। भवन्तमन्तरेण (आपके बारे में) कीदृशोऽस्या अनुरागः। श्रमं विना न सिद्धिः।

नियम ११—(अधिशीङ्स्थासां कर्म) अधिशी, अधिस्था और अध्यास् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—आसनमधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा।

नियम १२—(अभिनिविशश्च) अभि + नि + विश् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग पर चलता है)। परन्तु पापेऽभिनिवेशः भी रूप बनता है।

नियम १३—(उपान्वध्याङ्वसः) उप, अनु, अधि और आ उपसर्ग के साथ वस् धातु होगी तो उसके आधार में द्वितीया होगी, किन्तु उपवास करना अर्थ में सप्तमी होगी। जैसे—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा (रहता है)। वने उपवसति (वन में उपवास करता है)—उपवास अर्थ के कारण सप्तमी होगी।

नियम १४—(कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे) समय और मार्ग के दूरीवाची शब्दों में द्वितीया होती है, जब कार्य निरन्तर हुआ हो। मासं पठति। क्रोशं गच्छति। क्रोशं कुटिला नदी (नदी एक कोस तक टेढ़ी है)।

नियम १५—इन उपसर्गों के साथ इन अर्थों में द्वितीया होती है—अनु (बाद में, घटिया, किनारे), उप (समीप, घटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप)। क्रमशः उदाहरण हैं :—जपमनु प्रावर्षत्। अनु हरिं सुराः। नदीमनु सेना। उप हरिं सुराः। अति देवान् कृष्णः। भक्तो हरिमभि वर्तते।

नियम १६—(दुह्याच्पच्दण्ड्०) ये धातुएँ द्विकर्मक हैं। इन अर्थों वाली अन्य धातुएँ भी द्विकर्मक हैं। इनके साथ दो कर्म होते हैं—दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह्। जैसे—गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। अजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा।

अभ्यास २

संस्कृत बनाओ—(क) (गृह, लोट्) १ जरा रुकिये। २ जरा यह बात बन्द कीजिये। ३. चुप रहो। ४. उस मूर्ख को बकवाद करने दो, तुम सज्जन हो अतः मौन रहो। ५ अपना काम करो। ६ अपने काम पर जाओ। ७ आगे कहिये, वहाँ क्या अनर्थ हो गया? ८. भला या बुरा चाहे जो हो, मैं अपने वचन का पालन करूँगा। (ख) (भू) १. मै कठिन परिश्रम के बिना (विना, अन्तरेण) सफलता नही प्राप्त कर सकता हूँ। २ आपका छात्रों पर अधिकार है। ३ यदि अपने आपको सँभाल सकी तो यहाँ से जाऊँगी। ४. यह पहलवान उस पहलवान से लड सकता है। ५ वह अति प्रसन्नता से फूला नहीं समाया। ६ बाँधें या छोडें, यह आपका अधिकार है। ७. राजा शत्रु को हराता है (पराभू)। ८. भरत सिंह शावक को तिरस्कृत कर रहा है (परिभू)। ९ तुझे कौन दबा सकता है (अभिभू)? १०. आप जैसे विरले ही ससार में जन्म लेते है (सम्भू)। ११ दरिद्रता से दु:ख उत्पन्न होते है (उद्भू)। १२. रात्रि मे चन्द्रमा निकलता है (आविर्भू)। १३ सुख में सुख उत्पन्न होते हैं (प्रादुर्भू) और दुःख मे दु:ख। १४ दिन मे तारे छिप जाते है (तिरोभू) और रात में निकलते हैं (प्रादुर्भू)। १५. यह विचार मेरे मन में आया (प्रादुर्भू)। (ग) (द्वितीया) १. दूधयुक्त भोजन अमृत है, प्रिय का मिलन अमृत है, राजसम्मान अमृत है, जाड़े में आग अमृत है। २ द्युलोक और पृथ्वी के बीच में अन्तरिक्ष है। ३. परिश्रम के बिना सुख नहीं है। ४. अर्थ जाने बिना प्रवृत्ति की योग्यता नहीं होती। ५. मैं आज विद्यालय नहीं गया, आचार्य मेरे बारे में क्या सोचेंगे, यह चिन्ता मुझे व्याकुल कर रही है। ६ शकुन्तला फूलो के विस्तारवाली शिला पर लेटी है। ७ राम दुर्गम वन में रहे। ८ बालक पलँग पर बैठा है (अध्यास्)। ९ राम सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। १० उसकी पाप में प्रवृत्ति है। ११ राम पचवटी में बहुत दिन रहे (अधिवस्)। १२ गाधीजी ने अपने आश्रम में २१ दिन का उपवास किया। १३ वह बारह वर्ष गुरुकुल में पढा। १४ वह प्रातः कोसभर घूमने जाता है। १५. यज्ञ के बाद वर्षा हुई। १६ सब कवि कालिदास से घटिया हैं। १७ गगा के किनारे हरिद्वार है। १८ सब राजा राम से घटिया हैं। १९. कपिल सब मुनियों से बढ़कर हैं। २०. राम के पास भक्त है। २१ वह गाय का दूध दुहता है। २२ वह राजा से धन माँगता है। २३ वह चावलों से भात पकावे। २४. राजा ने अपराधी पर सौ रुपया जुर्माना किया। २५ वह बकरी को बाडे में बन्द करता है।

संकेत—(क) १ तिष्ठतु तावत्। २ मुहूर्तं तदास्ताम्। ३ आस्स्व। ५ अनुतिष्ठात्मनो नियोगम्। ६ स्वनियोगमशून्य कुरु। ७ तत पर कथय। ८ शुभ वाऽशुभ वा। (ख) १ साफल्य लब्धु न प्रभवामि। २ प्रभवति भवान् छात्राणाम्। ३ यद्यात्मन प्रभविष्यामि। ४ प्रभवति मल्लो मल्लाय। ५ गुरु प्रहर्षं प्रबभूव नात्मनि। ६ प्रभवति भवान् बन्धे मोक्षे च। १० भवादृशा विरला एव। ११ दारिद्र्यात्। (ग) १ अमृत क्षीरभोजनम्, शिशिरे। ५ मामन्तरेण, मा बाधते। ७ अध्यास्त। ८ पल्यङ्कम्। ११ अध्युवास। १२ उपावसत्। १४ क्रोशं। १५ अनु। १६ अनु। १७ गङ्गामनु। १८ उप। १९ अति मुनीन्। २० अभि।

शब्दकोष—२० + २५ = ४५] **अभ्यास ३** (व्याकरण)

(क) शिखा (चोटी), सचिका (कापी), लेखनी (स्त्री०, होल्डर), कौमुदी (स्त्री०, चाँदनी), प्राघुणिक (अतिथि, पाहुन), आतिथेय (अतिथि सत्कारकर्ता), कूर्चम (दाढ़ी)। (७)। (ख) गम (जाना, बीतना, प्राप्त होना), आगम (आना), अनुगम् (पीछे जाना), अवगम (जानना), अधिगम (प्राप्त करना, जानना), अभ्युपगम् (स्वीकार करना), अभ्यागम (आना), प्रत्यागम (लौटकर आना), निर्गम (निकलना), सगम (मिलना), उद्गम (निकलना, उडना), अपगम (नष्ट होना), उपगम (पास जाना), परागम (लौटना), प्रत्युद्गम (स्वागतार्थ जाना), समधिगम् (पाना, जानना), ताडि (मारना)। (१७)। (घ) असस्तुतम् (अपरिचित)। (१)

व्याकरण (रमा, मति, नदी, लङ्, तृतीया)

१ रमा, मति, नदी के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४१, ४२, ४३)

२ भू तथा अन्य तत्सम धातुओं के लङ् के रूप स्मरण करो।

३ गम् और वद् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५, ६)

नियम १७—(साधकतम करणम्) क्रिया की सिद्धि में सहायक को करण कहते हैं।

नियम १८—(कर्तृकरणयोस्तृतीया) करण में तृतीया होती है और कर्मवाच्य या भाववाच्य में कर्ता में। तृतीया मुख्यत दो अर्थों को बताती है—(१) कर्ता, (२) साधन। जैसे—कन्दुकेन क्रीडति, दण्डेन चलति, बाणेन हन्ति। रामेण गृह गम्यते। रामेण पाठ· पठित·।

नियम १९—(प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानम्) प्रकृति आदि शब्दों में तृतीया होती है। ये शब्द साधारणतया क्रियाविशेषण या क्रिया-विशेषण-वाक्यांश होते हैं। जैसे—प्रकृत्या साधु। सुखेन जीवति। दु खेन जीवति। नाम्ना रामोऽयम्। गोत्रेण काश्यपः। समेनैति। विषमेणैति।

नियम २०—(अपवर्गे तृतीया) समय और मार्ग के दूरीवाची शब्दो मे तृतीया होती है, यदि कार्य की सफलता बताई जाए। मासेन ग्रन्थोऽधीत। क्रोशेन पाठोऽधीत। दशभिर्दिनैरारोग्य लब्धवान् (दस दिन में नीरोग हुआ)।

नियम २१—(सहयुक्तेऽप्रधाने) सह, साकम्, सार्धम्, समम् आदि के साथ तृतीया होती है, साथ अर्थ हो तो। पित्रा सह साक सार्ध सम वा गृह गच्छति। मृगा मृगै सङ्गमनुव्रजन्ति (मृग मृगों के साथ चलते हैं)।

नियम २२—(येनाङ्गविकार) जिस अग मे विकार से शरीर विकृत दिखाई पड़े अर्थात् शरीर ही विकृत माना जाय, उसमे तृतीया होती है। नेत्रेण काण·। पादेन खञ्ज·। कर्णेन बधिर। शिरसा खल्वाट·।

नियम २३—(इत्थभूतलक्षणे) जिस चिह्न से किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध होता है, उसमें तृतीया होती है। जटाभिस्तापस। कूर्चेन यवन·। शिखया हिन्दु·।

नियम २४—(हेतौ) कारण-बोधक शब्दों में तृतीया होती है। अध्ययनेन वसति। पुण्येन दृष्टो हरि। श्रमेण धन विद्या वा भवति। विद्यया यशो लभते।

नियम २५—लङ्, लुङ् और लृङ् मे अ या आ शुद्ध धातु से पहले ही लगेगा, उपसर्ग से पूर्व नहीं। अतः उपसर्गयुक्त धातुओ मे लङ् आदि में धातु से पहले अ या आ लगाकर उपसर्ग मिलावे। (सन्धिकार्य भी करें)। जैसे—अनुगम् > अन्वगच्छत्, उद्गम् > उदगच्छत्।

अभ्यास ३

संस्कृत बनाओ—(क) (रमा, लङ्) १. सुशीला सवेरे उठी, उसने माता और पिता को प्रणाम किया, पाठ पढा, लेख लिखा, व्याकरण याद किया, खाना खाया और विद्यालय गई। २. पार्वती उपवन में गई, उसने फल देखे, फूल सूँघे, पेड पर चढी, लता से फूल चुने और फूलो को घर लाई। ३. न इधर का रहा, न उधर का रहा। ४ लड़की पराई सम्पत्ति है। (ख) (गम् धातु) १ मेरा शरीर आगे जा रहा है और मन अपरिचित सा होकर पीछे की ओर दौड़ता है। २ बुद्धिमानों का समय काव्य शास्त्र के विनोद में बीतता है। ३. निरर्थक बकवाद से विद्वानों में मेरी हँसी हो जाएगी। ४ न चले तो गरुड भी एक पैर नहीं सरक सकता। ५ उस बालिका का नाम भारती रखा गया। ६. जलाशय तक प्रिय व्यक्ति को पहुँचाने जाना चाहिए। ७. राजा दिलीप छाया की तरह उस गाय के पीछे चला। ८. सुदक्षिणा इस प्रकार गाय के मार्ग पर चली, जैसे श्रुति के अर्थ के पीछे स्मृति चलती है। ९. मै आपकी बात नहीं समझा। १०. आगे की बात तो समझ में आ गई। ११. मैं अपने आपको अपराधी सा समझ रहा हूं। १२. मेरी बुद्धि कुछ निश्चय नहीं कर पा रही है। १३. अगस्त्य आदि ऋषियों से वेदान्त पढने के लिए मैं वाल्मीकि के पास से यहाँ आई हूँ। १४. हम आपकी यह बात स्वीकार करते हैं। १५. मेरे घर पाहुन (अतिथि) आए हैं। १६ सज्जन सज्जनों के घर आते हैं। १७ कमला विद्यालय से घर लौटकर आई (प्रत्यागम्)। १८. ऋषि दयानन्द घर से निकलकर वन मे गए। १९. प्रयाग में गगा और यमुना मिलती हैं। २०. मिलकर चलो, मिलकर बोलो। २१ चन्द्रमा निकलता है, अन्धकार दूर होता है। २२ पक्षी आकाश में उड़कर जाते हैं। २३. शिष्य गुरु के पास गया। २४ मेघरहित चन्द्रमा को चाँदनी प्राप्त हुई। (ग) (तृतीया) १ कमला ने होल्डर से कापी पर लेख लिखा। २. उमा ने डंडे से बन्दर को मारा। ३ बालक गेंद से खेला। ४ धनहीन दुःख से जीते हैं। ५. शान्ति ने सरलता से पुस्तक पढ ली। ६. उसका नाम कृष्ण है। ७. उसका गोत्र भारद्वाज है। ८ वह सममार्ग से आता है। ९ उसने एक वर्ष में गीता पढी। १०. वह सात दिन में नीरोग हुआ। ११ वह धर्म से बढता है।

संकेत—(क) १ उदतिष्ठत्, पितरौ। २ आरोहत्, अचिनोत्, आनयत्। ३ इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट। ४ अर्थो हि कन्या परकीय एव। (ख) १ धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः। २ काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। ३ अनर्गलप्रलापेन विदुषां मध्ये गमिष्याम्युपहास्यताम्। ४ अगच्छन् वैनतेयोऽपि। ५ भारत्याख्यां जगाम। ६ ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य। ७ छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्। ८ श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्। ९ न खल्ववगच्छामि। १० परस्तादवगम्यत एव। ११ कृतापराधमिवात्मानमवगच्छामि। १२ न मे बुद्धिर्निश्चयमधिगच्छति। १३ तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्याम्। १४ अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। १५ अभ्यागत। १८ गृहान्निर्गत्य। १९ संगच्छेते (सम्+गम् आत्मनेपदी है)। २० संगच्छध्वं संवदध्वम्। २१ उद्गच्छति, तिमिरमपगच्छति। २२ खगा खमुद्गच्छन्ति। २३ उपागच्छत्। २४ शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तम्। (ग) ५ सरलतया। ६ नाम्ना कृष्ण। ९ वर्षेणैकेन। १० सप्तभिर्दिनै।

शब्दकोष—७५ + २५ = १००] **अभ्यास ४** (व्याकरण)

(क) गिरिः (पु०, पर्वत), पदातिः (पु०, पैदल चलनेवाला), भूपति (पु०, राजा), पविः (पु०, वज्र), निर्बन्धः (आग्रह, जिद), परिदेवनम् (रोना), वाष्पम् (भाप), कल्याणाभिनिवेशिन् (कल्याण का इच्छुक)। (८)। (ख) चर (घूमना, चरना, चरना), आचर (व्यवहार करना), अनुचर (पीछे चलना), सञ्चर (घूमना), विचर (विचरण करना), उच्चर् (उठना, उल्लंघन करना), उपचर (सेवा करना), प्रचर् (प्रचार होना), अनुहृ (सदृश होना), संवद् (संवाद करना, सदृश होना), शप् (शपथ लेना), योजि (मिलाना)। (१२)। (ग) अलम् (बस), कृतम् (बस), किम् (क्या, क्या लाभ)। (३)। (घ) नष्टाशङ्क: (निर्भय), मुग्धा (भोली-भाली)। (२)

व्याकरण (हरि, विधिलिङ्, तृतीया)

१ हरि और भूपति शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ४, ७)

२. भू तथा अन्य तत्सम धातुओं के विधिलिङ् के रूप स्मरण करो।

३. दृश् धातु के रूप स्मरण करो (देखो धातु० ७)। चर् पठ् के तुल्य।

नियम २६—(गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका) अलम् और कृतम् के साथ तृतीया होती है, यदि बस या मत अर्थ हो तो। जैसे—अलं श्रमेण। कृतम् अत्यादरेण। अलम् के साथ इस अर्थ में क्त्वा (ल्यप्) प्रत्यय भी होता है। अलमन्यथा सम्भाव्य (उलटा न समझो)।

नियम २७—किम्, कार्यम्, अर्थः, प्रयोजनम्, गुणः के साथ तथा कि + कृ धातु के साथ तृतीया होती है, यदि प्रयोजन या लाभ अर्थ हो तो। जैसे—मूर्ख पुत्र से क्या लाभ—मूर्खेण पुत्रेण किम्, किं कार्यम्, कोऽर्थः, किं प्रयोजनम्, को गुणः, किं क्रियते वा।

नियम २८—(पृथग्विना०, तुल्यार्थैरतुलो०) पृथक्, विना और तुल्यार्थक शब्दों के साथ तृतीया भी होती है। रामेण पृथक्। प्रियया वियोग। ज्ञानेन विना। कृष्णेन तुल्यः। पक्ष में पृथक्, विना के साथ द्वितीया और पञ्चमी भी होती हैं।

• **नियम २९**—(कर्तृकरणयोस्तृतीया) करणत्व या क्रिया-विशेषणत्व के कारण इन स्थानों पर तृतीया होती है। (क) कार्य करने के ढंग में। जैसे—विधिना यजते। (ख) जिस मूल्य से कोई वस्तु खरीदी जाए। जैसे—कियता मूल्येन क्रीतं पुस्तकम्? शतेन०। (ग) यात्रा के साधन में। जैसे—रथेन चरति। विमानेन विगाहमान। (घ) वहनार्थक धातु के साथ ढोने के साधन में। जैसे—स्कन्धेन शत्रुं वहति। भर्तुराज्ञां मूर्ध्ना आदाय। (ङ) शपथ अर्थ में शपथ की वस्तु में। जैसे—जीवितेन शपामि। आत्मना शपे। (च) युक्त और हीन अर्थ में। जैसे—समायुक्तोऽप्यर्थैः। अर्थेन हीनः।

नियम ३०—(हेतौ) हेत्वर्थ के कारण इन अर्थों की धातुओं के साथ तृतीया होती है। (१) सन्तुष्ट या प्रसन्न होना, (२) आश्चर्ययुक्त होना, (३) लज्जित होना। (१) कापुरुषः स्वल्पेनापि तुष्यति। (२) तव प्रावीण्येन विस्मितोऽस्मि। (३) अनेन प्रागल्भ्येन लज्जे।

नियम ३१—(हेतौ) उत्कर्ष और सादृश्य अर्थ की धातुओं के साथ गुणबोधक शब्द में तृतीया होती है। त्वं श्रद्धया पूर्वान् अतिशेषे (पूर्वजों से बढ़कर हो)। स्वरेण रामभद्रमनुहरति (आवाज में राम से मिलता है)। अस्य मुखं मातुः मुखेन संवदति।

अभ्यास ४

संस्कृत बनाओ—(क) (विधिलिङ्) १ हरि भोजन लावे, विद्यालय जावे, आसन पर बैठे और पाठ पढे। २. वह उपवन में जावे, फूल सूँघे, फलों को देखे, वृक्ष पर चढे। ३ भूपति तलवार से और इन्द्र वज्र से शत्रुओं को नष्ट करें। ४ मैं समझता हूँ कि यह बात उसको स्वीकार होगी। ५ दुष्ट को धर्म से मिला दे। ६ अति का सर्वत्र त्याग करे। ७ कौन क्षत्रिय होकर अधर्मयुद्ध से जय चाहेगा। (ख) १ धर्म करो। २ मृगशिशु निःशङ्क हो धीरे-धीरे घूम रहे हैं। ३ वह पहाड पर तप कर रहा है। ४. बैल खेत में घास चरता है। ५ जो दुष्ट का सत्कार करता है, वह जल में लकीर खीचता है। ६ तुमने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। ७ सोलह वर्ष के पुत्र के साथ मित्रवत् व्यवहार करे। ८ यह कौन भोलीभाली तपस्वि-कन्याओं के साथ अशिष्टता कर रहा है? ९ विद्वान् व्यक्ति जानते हुए भी जड के तुल्य लोक में व्यवहार करे। १० गुरु शिष्य में पुत्रवत् व्यवहार करे। ११. चन्द्रमा के राहु से ग्रस्त होने पर भी रोहिणी उसके पीछे चलती है। १२. कल्याण का इच्छुक सन्मार्ग पर चले। १३. वह रथ में घूमता है। १४ इस रास्ते से पैदल चलने वाले जाते हैं। १५ गिरि पर यति घूमते हैं। १६ राम वन में घूमे। १७ भाप उठी। १८ कोलाहल की ध्वनि उठी। १९ वह धर्म का उल्लघन करता है। २० तुम सबकी समानरूप से सेवा करो। २१ उसने भोजनादि से मेरी सेवा की। २२ रोगी की सावधानी से सेवा करो। २३. रामायण की कथा का ससार में प्रचार होगा। (ग) (तृतीया) १. हठ मत करो। २. श्रम से यह काम सिद्ध नहीं होगा। ३ विवाद मत करो, मत हँसो, मत रोओ। ४ हँसी मत करो। ५ बात बहुत मत बढाओ। ६ इस बात से क्या लाभ, बस करो। ७ पुरुषार्थ के बिना भाग्य नहीं बनता। ८. इसकी आवाज कृष्ण से मिलती है। ९ इसका मुँह पिता के मुँह से मिलता है। १० वह विधिपूर्वक पढता है। ११ तुमने यह साडी कितने मूल्य में खरीदी? सौ रुपए में। १२ विमान से आकाश में घूमता है। १३ धन से युक्त मनुष्य आदृत होता है, धन से हीन तिरस्कृत होता है। १४ दुर्जन थोडे से प्रसन्न होता है। १५ उसकी विद्वत्ता से विस्मित हूँ। १६. मै असत्य-भाषण से लज्जित हूँ।

सकेत—(क) ३ नाशयेताम्। ४ यथाहं पश्यामि, तथा तस्यानुमत भवेत्। ५ योजयेत्। ६ वर्जयेत्। ७ को हि क्षत्रियो भवन् इच्छेत्। (ख) १ धर्मं चर। २ चरन्ति। ३. तपश्चरति। ४ शस्य चरति। ५ रचयति रेखा सलिले यस्तु खले चरति सत्कारम्। ६ तस्मिन् त्व साधु नाचर। ७ प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रम् आचरेत्। ८ मुग्धासु आचरत्यविनयम्। ९ जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्। १० शिष्ये आचरेत्। ११ अनुचरति शशाङ्के राहुदोषेऽपि तारा। १२ सन्मार्गमनुचरेत्। १३ रथेन सचरते (तृ० के साथ आत्मने० है) १६. विचचार दावम्। १७ उदचरत्। १९ धर्ममुच्चरते (सकर्मक आत्मने० है)। २० समसुपचर। २१ मामुपाचरत्। २२ यत्नादुपचर्यतां रुग्ण। २३ लोकेषु प्रचरिष्यति। (ग) १. अल निर्बन्धेन। २ अल श्रमेण। ३ अल परिदेवनेन। ४ अलमुपहासेन। ५ अलमतिविस्तरेण। ६ किमनेन, आस्ता तावत्। ७ सिध्यति। ११ शाटिका क्रीता शतकेन। १२ दिव विगाहते। १३ आद्रियते, तिरस्क्रियते।

शब्दकोष–१०० + २५ = १२५]　　अभ्यास ५　　(व्याकरण)

(क) साधु (पु०, सज्जन), मृत्युः (पु०, मृत्यु), पांसु. (पु०, धूल), असु: (पु०, प्राण), सानु. (पु०, शिखर) । (६) । (ख) सद् (बैठना, खिन्न होना), प्रसद् (प्रसन्न होना, स्वच्छ होना, सफल होना), विषद् (दुःखित होना), आसद् (पहुँचना), प्रत्यासद् (समीप आना), निषद् (बैठना), अवसद् (नष्ट होना), उत्सद् (नष्ट होना), उपसद् (पास जाना), स्वद् (अच्छा लगना), प्रतिश्रु (प्रतिज्ञा करना), अवहननम् (कूटना) । (१२) । (ग) कृते (लिए) । (१) । (घ) प्रांशु. (ऊँचा), आगन्तु (आगन्तुक), प्रभविष्णुः (समर्थ, स्वामी), स्पृहयालु (इच्छुक), द्वित्रा (दो-तीन), पञ्चषा. (पाँच छः) । (६) । पांसु और असु शब्द नित्यबहुवचन हैं ।

व्याकरण (गुरु, लट्, चतुर्थी)

१ गुरु शब्द के पूरे रूप स्मरण करो । (देखो शब्द० सं० ९)

२ सद् और पा धातुओं के रूप स्मरण करो । (देखो धातु० ८, ११)

नियम ३२—(कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्, क्रियया यमभिप्रैति०) दान आदि कार्य या कोई क्रिया जिसके लिए की जाती है, उसे सम्प्रदान कहते है ।

नियम ३३—(चतुर्थी सम्प्रदाने) सम्प्रदान मे चतुर्थी होती है । जैसे—विप्राय गा ददाति । युद्धाय सनह्यते (तैयारी करता है) । विद्यायै यतते । पुत्राय धन प्रार्थयते ।

नियम ३४—(रुच्यर्थाना प्रीयमाण.) रुच् (अच्छा लगना) अर्थ की धातुओ के साथ चतुर्थी होती है । हरये रोचते भक्तिः । यद् भवते रोचते । बालकाय मोदक रोचते (बालक को लड्डू अच्छा लगता है) ।

नियम ३५—(धारेरुत्तमर्ण) धारि धातु (ऋण लेना) के साथ ऋणदाता मे चतुर्थी होती है । देवदत्तो रामाय शत धारयति (राम का सौ रुपए ऋणी है) ।

• **नियम ३६**—(स्पृहेरीप्सित॰) स्पृह् धातु तथा उससे बने शब्दो के साथ इष्ट वस्तु में चतुर्थी होती है । पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलो को चाहता है) । भोगेभ्य. स्पृहयालवः ।

नियम ३७—(क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थाना य प्रति कोप.) क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य्, असूय अर्थ की धातुओं के साथ जिस पर क्रोध किया जाए, उसमे चतुर्थी होती है । राम. मूर्खाय (मूर्ख पर) क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति । सीतायै नाक्रुध्यन्नाप्यसूयत । यदि क्रुध् और द्रुह् से पूर्व उपसर्ग होगा तो द्वितीया होगी । क्रूरम् अभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति ।

नियम ३८—(प्रत्याङ्भ्या श्रुव.०) प्रतिश्रु और आश्रु धातु के साथ प्रतिज्ञा करने अर्थ मे चतुर्थी होती है । विप्राय गा प्रतिशृणोति (गाय देने की प्रतिज्ञा करता है) ।

नियम ३९—(तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या) जिस प्रयोजन के लिए जो वस्तु या क्रिया होती है, उसमें चतुर्थी होती है । मोक्षाय हरिं भजति । यूपाय दारु । काव्य यशसे ।

नियम ४०—चतुर्थी के अर्थ में 'अर्थम्' और 'कृते' अव्ययों का प्रयोग होता है । अर्थम् के साथ समास होगा और कृते के साथ षष्ठी । भोजनार्थम्, भोजनस्य कृते ।

अभ्यास ५

संस्कृत बनाओ—(क) (गुरु, लृट्) १. जो जन्म लेगा, उसकी मृत्यु अवश्य होगी और जो मरेगा, उसका जन्म अवश्य होगा। २ राम लम्बा है, पर उसका छोटा भाई भरत नाटा है। ३ छोटे बच्चे धूल में खेलते हैं। ४ शिशु के प्राण बचाने हैं। ५ ऋषि पर्वतों के शिखर पर रहते हैं। ६ भानु उदय होता है और विधु अस्त होता है। ७. अनुचरों को चाहिए कि स्वामी को धोखा न दें। ८ हाथी और गीदड़ की मित्रता नहीं होती। ९ दो तीन आगन्तुक कल मेरे घर आएँगे और मेरे यहाँ रहेंगे। १० हम पाँच छ दिन में बनारस जाएँगे। ११ जाड़े में पहाड़ की चोटियों पर बर्फ गिरेगी और वे सफेद हो जाएँगी। १२ बड़े आदमी हँसी उड़ाएँगे। १३ गुरुओं की आज्ञा पर तर्क वितर्क नहीं करना चाहिए। १४ तरु फल आने पर झुक जाते हैं। १५ ऐसा करूँगा तो मेरी हँसी होगी। १६ मरना अच्छा है, अपमान सहना अच्छा नहीं। १७ ढीठ स्त्री शत्रुतुल्य है। (ख) (सद् धातु) १ मैं यहा बैठा हूँ, आप शीघ्र आवें। २ मेरा हृदय खिन्न हो रहा है। ३ मेरे अग व्याकुल हो रहे हैं। ४ नीति की व्यवस्था ठीक न होने पर सारा ससार विवश हो दु खित होता है। ५. जगदाधार भगवन्! मुझसे प्रसन्न हों। ६ माता-पिता पुत्र की नम्रता से प्रसन्न होते है (प्र+सद्)। ७ जो किसी कारण से क्रुद्ध होता है, वह उस कारण के समाप्त होने पर प्रसन्न हो जाता है (प्र+सद्)। ८ दिशाएँ स्वच्छ हो गईं (प्र+सद्)। ९ उचित पात्र में रखी हुई क्रिया शोभित होती है। १० धीर पुरुष सुख मे प्रसन्न नही होते और दु ख मे दु खी नहीं होते (न, विषद्)। ११ दु खित न होइये। १२ वह ज्योंही घर पहुँचे, त्योंही मेरे पास भेजना। १३. कुत्ता नदी पर पहुँचा। १४ घर जाने का समय हो रहा है, जल्दी करो। १५. तुम इधर बैठो। १६ आप बैठिये, मैं भी सुख से बैठता हूँ। १७ हलकी चीज तैरती है, भारी चीज नीचे बैठ जाती है। १८ उद्यम के तुल्य कोई बन्धु नहीं है, जिसे करके कोई दु खित नहीं होता। १९ मेरे प्राण नष्ट हो रहे हैं (अवसद्)। २० यदि मैं काम नहीं करूँगा तो ये लोग नष्ट हो जाएँगे।

सकेत—(क) १ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुव जन्म मृतस्य च। २ वामन, खर्व, पृश्नि। ३ पांसुषु। ४ असवो रक्षणाया। ५. उदेति अस्तमेति। ७ न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि। ८ भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिन। ९ निवत्स्यन्ति। १० पञ्चषैर्दिवसै। १२ महाजन स्मेरमुखो भविष्यति। १३ आज्ञा गुरूणा ह्यविचारणीया। १४ भवन्ति नम्रास्तरव फलागमै। १५ गमिष्याम्युपहास्यताम्। १६ वर मृत्युर्न पुनरपमान। १७ अविनीता रिपुभार्या। (ख) १ सीदामि। २ सीदति। ३ सीदन्ति गात्राणि। ४ विपन्नायां नीतौ सकलमवश सीदति जगत्। ५ प्रसीद मे। ७ निमित्तमुद्दिश्य तस्यापगमे। ८. दिश प्रसेदु। ९ क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति। ११ मा विषादत। १२ यदैव आसीदति-तदैव मा प्रति प्रेषय। १३ आससाद। १४ प्रत्यासीदति गृहगमनकाल, त्वर्यताम्। १५ इत। १६ सुखासीनो भवामि। १७ यल्लघु तदुत्प्लवते, यद् गुरु तन्निषीदति। १८ य कृत्वा नावसीदति। २० उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।

शब्दकोष—१२५ + २५ = १५०] **अभ्यास ६** (व्याकरण)

(क) क्रमेलकः (ऊँट), निसर्गः (स्वभाव), प्रवृत्तिः (स्त्री०, समाचार), विछित्तिः (स्त्री०, छुट्टी), कुलक्रमम् (कुल परम्परा), शासनम् (आज्ञा), धामन् (नपुं०, स्थान)। (७)। (ख) वृत् (होना, बर्ताव करना), प्रवृत् (लगना, चलना), अनुवृत् (पीछे चलना), निवृत् (लौटना), अभिवृत् (पास आना), अतिवृत् (१ उल्लंघन करना, २. बीतना), आवृत् (लौटकर आना), आवर्ति (फेरना, दुहराना), परिवृत (चक्कर खाना), आशङ्क् (आशंका करना), विप्रलम्भ् (ठगना), आशंस् (आशा करना), स्पन्द् (फटकना), घट् (घटना होना), परिणम् (बदलना)। १५। (ग) उभयथा (दोनों प्रकार से), वृथा (व्यर्थ ही), अद्यत्वे (आजकल)। (३)।

व्याकरण (९ सर्वनाम पुंलिंग, लट् आत्मनेपदी, चतुर्थी)

१. सर्व शब्द के पुंलिंग के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७७)

२. सेव् और वृत् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २०, २५)

नियम ४१—(क) (क्लपि सम्पद्यमाने च) क्लृप्, सपद्, जन्, भू, अस् (२ प०) आदि धातुओं के साथ समर्थ होना या होना अर्थ में चतुर्थी होती है। विद्या ज्ञानाय कल्पते सपद्यते जायते वा। कल्पसे रक्षणाय। भू या अस् के प्रयोग के बिना भी चतुर्थी होती है। काव्यं यशसे। (ख) (उत्पातेन०) कोई उत्पात किसी अशुभ घटना का संकेत करे तो चतुर्थी होगी। वाताय कपिला विद्युत्। (ग) हित और सुख के साथ चतुर्थी होती है। ब्राह्मणाय हितं सुखं वा।

नियम ४२—(क्रियार्थोपपदस्य च०) यदि तुमुन्-प्रत्ययान्त धातु का अर्थ गुप्त हो तो कर्म में चतुर्थी होती है। फलेभ्यो याति। (फल लाने के लिए०)। वनाय गां मुमोच (वन जाने के लिए०)। (तुमर्थाच्च०) यदि तुमुन् के अर्थ में घञ् प्रत्यय होगा तो भी चतुर्थी होगी। यागाय याति (यष्टुं यातीत्यर्थः, यज्ञ करने के लिए जाता है)।

नियम ४३—(नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् (तथा पर्याप्त अर्थ वाले अन्य शब्द), वषट् के साथ चतुर्थी होती है। गुरवे नमः। पुत्राय स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। इन्द्राय वषट्। हरिर्दैत्येभ्यः अलम्, प्रभुः, समर्थः, शक्तः वा। (क) नमस्कृ के साथ साधारणतया द्वितीया होती है। नमस्करोति देवान्। मुनित्रयं नमस्कृत्य। (ख) प्रणाम करना अर्थवाली प्रणम्, प्रणिपत् आदि धातुओं तथा इनके संज्ञाशब्दों के साथ द्वितीया और चतुर्थी दोनों होती हैं। जैसे—न प्रणमन्ति देवताभ्यः। तां प्रणनाम। प्रणिपत्य सुरास्तस्मै। धातारं प्रणिपत्य। अस्मै प्रणाममकरवम्। (ग) आशीर्वादार्थक स्वागतम्, कुशलम् आदि के साथ चतुर्थी और षष्ठी दोनों होती हैं। (घ) अलम्, प्रभुः आदि तथा प्र + भू धातु के साथ चतुर्थी होती है। प्रभुर्मल्लो मल्लाय। प्रभवति मल्लाय।

नियम ४४—(क्रियया यमभिप्रैति०) 'कहना' अर्थ की धातुओं कथ्, ख्या, शस्, चक्ष् और निवेदि आदि के साथ तथा 'भेजना' अर्थ की धातुओं प्र + हि, वि + सृज् आदि के साथ चतुर्थी होती है। मैथिलाय कथयांबभूव सः। आख्याहि को मे भवानुग्ररूपः। होमवेलां गुरवे निवेदयामि। भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः।

नियम ४५—(मन्यकर्मण्यनादरे०) अनादर अर्थ में मन् धातु के साथ द्वितीया और चतुर्थी होती है। न त्वा तृणं मन्ये तृणाय वा।

नियम ४६—(गत्यर्थकर्मणि द्वितीया०) गत्यर्थक धातु के साथ कर्म में द्वितीया और चतुर्थी होती हैं, यदि चेष्टा हो तो। अन्यत्र द्वितीया ही होगी। ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। मनसा हरिं व्रजति। पन्थानं गच्छति।

अभ्यास ९

संस्कृत बनाओ—(क) (सर्वनाम, लट् आ०) १ तू जिसको अग्नि समझता है, वह स्पर्श के योग्य रत्न है। २ क्यो मुझे धोखा देते हो? ३ मै मनोरथ की आशा नहीं करता, हे भुजा, तू क्या व्यर्थ फडक रही है? ४. दूध दही के रूप में परिणत होता है। ५ क्या सोचकर आप यह कह रहे हे? ६. यह बात दोनों तरह से हो सकती है। ७ ऊँट क्रीडोद्यान मे जाकर भी काँटे ही ढूँढता है। ८. अर्जुन, भाग्य से ही ऐसा युद्ध क्षत्रियो को मिलता है। (ख) (वृत्, सेव् धातु) १ ऐसा मेरे मन में है। २ इस विषय मे हमारी बडी उत्सुकता है। ३ आप ही बताओ, इस दुष्ट के साथ कैसा बर्ताव करें। ४. वह आजकल परेशानी मे है। ५ अब प्रात.काल है, तुम सब पढाई मे लगो। ६ सीता देवी का क्या हुआ, क्या कुछ समाचार है? ७ यज्ञ ठीक चल रहा है। ८ मेरी जीवन-यात्रा सुख से चल रही है (वृत्)। ९ परीक्षा सिर पर है, वह अध्ययन मे लगा हुआ है (वृत्)। १० माता स्वाभाविक स्नेह से सन्तान से व्यवहार करती है (वृत्)। ११. ऐसे पुत्र से क्या लाभ, जो पिता को दु ख दे। १२ क्या शक्तिभर पढाई मे लगे हो (प्रवृत्)? १३ राजा प्रजा के हित मे लगे। १४ सहसा उसकी आँसू की धार बह चली। १५ बडा आदमी जैसा करता है, लोग उसका ही अनुसरण करते हैं (अनुवृत्)। १६ लोग मालिक की इच्छा के अनुसार चलते हैं। १७ लौकिक सज्जनों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है। १८ सत्पुत्र कुल परम्परा का अनुसरण करता है (अनुवृत्)। १९ जहाँ जाकर नहीं लौटते, वह मेरा परम धाम है। २० सज्जन पाप से निवृत्त होता है (निवृत्)। २१ मासभक्षण से रुके (निवृत्)। २२. कन्याएँ पौधों को जल देने के लिए इधर ही आ रही हैं। २३ भौंरा मेरे मुँह की ओर आ रहा है। २४ जो पिता की आज्ञा का उल्लघन करता है, वह दु ख पाता है। २५ माता-पिता की सेवा करो। (ग) (चतुर्थी) १ धन दान के लिए होता है (क्लृप्)। २ तुम रक्षा में समर्थ हो। ३ काव्य यश के लिए, धन के लिए, व्यवहारज्ञान के लिए और अशिवक्षति के लिए होता है। ४. शिष्यों का हित और सुख हो। ५ फूलो के लिए उद्यान मे जाता है। ६ हवन करने के लिए जाता है। ७ पिता जी को नमस्कार, शिष्यो को आशीर्वाद। ८ इन्द्र के लिए स्वाहा। ९ यह योद्धा उस योद्धा से लडने में समर्थ है। १० राजा शत्रुओ के लिए समर्थ है, पर्याप्त है।

सकेत—(क) १ आशङ्कसे यदग्निं तदिद स्पर्शक्षम रत्नम्। २ किं मा विप्रलभसे। ३ मनोरथाय नाशसे, स्पन्दसे। ४ दधिभावेन परिणमते। ५ किमुद्दिश्य भवान् भाषते। ६ इदमुभयथाऽपि घटते। ७ निरीक्षते केलिवन प्रविष्ट क्रमेलक कण्टकजालमेव। ८ सुखिन क्षत्रिया पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। (ख) १ इद मे मनसि वर्तते। २ महत् कुतूहल वर्तते। ३ दुर्जने कथ वर्तताम्। ४ दु खे। ५ प्रवर्तध्वम्। ६ वृत्तम्, अस्ति काचित् प्रवृत्ति। ७ सर्वथा वर्तते। ९ प्रत्यासीदति। १० निसर्गस्नेहेनापत्येषु। ११ पुत्रेण किम्, य पितुर्दु खाय वर्तते। १२ अपि स्वशक्त्या। १३ प्रवर्तता प्रकृतिहिताय पार्थिव। १४ प्रावर्तताश्रुधारा। १५ यद्यदाचरति श्रेष्ठो लोकस्तदनुवर्तते। १६ प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते। १७. लौकिकाना हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते। १८ कुलक्रमम्। १९ यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परम मम। २२. बालपादपेभ्य, इत एवाभिवर्तन्ते। २३ वदनमभिवर्तते। २४. पितु शासनमतिवर्तते। (ग) २ कल्पसे रक्षणाय। ३. काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। ४. भूयात्। ९ प्रभवति मल्लो मल्लाय।

शब्दकोप–१५० + २५ = १७५] **अभ्यास ७** (व्याकरण)

(क) कौलीनवाद. (अफवाह), अभिजन (कुलीन), अङ्गुलीयकम् (अगूठी), वचनीयम् (निन्दा), सगतम् (मित्रता), गोमयम् (गोबर), वयम् (नपु०, आयु)। (८)। (ख) ईक्ष् (१ देखना, २ परवाह करना), अपेक्ष् (१ प्रतीक्षा करना, २ ध्यान रखना), अवेक्ष् (१ देखना, २ मानना, ३ रक्षा करना), उपेक्ष् (उपेक्षा करना), निरीक्ष् (१ ध्यान से देखना, २ ढूँढना), परीक्ष् (परीक्षा करना) प्रतीक्ष् (प्रतीक्षा करना), प्रेक्ष् (देखना), समीक्ष् (१ देखना, २ समीक्षा करना), भ्रंश् (गिरना), पराजि (हारना), त्रै (रक्षा करना)। (१२)। (ग) रह (एकान्त में), सदसत् (उचित अनुचित)। (२)। (घ) सज्ज (तैयार), तीक्ष्णम् (तीव्र, उग्र), योत्स्यमान (लडने का इच्छुक), कामवृत्ति (पु०, स्वेच्छाचारी)। (४)

व्याकरण (१ सर्वनाम नपु०, लट् आत्मने०, पचमी)

१ सर्व शब्द के नपुसक० के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७७)

२ वृध् और ईक्ष् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २७ २६)

नियम ४७—(ध्रुवमपायेऽपादानम्) जिससे कोई वस्तु आदि अलग हो, उसे अपादान कहते हैं।

नियम ४८—(अपादाने पञ्चमी) अपादान में पचमी होती है। ग्रामादायाति। वृक्षात् पत्र पतति।

नियम ४९—(जुगुप्साविरामप्रमादार्थानाम०) जुगुप्सा (घृणा), विराम (रुकना) और प्रमाद अर्थ की धातुओं और शब्दों के साथ पचमी होती है। पापात् जुगुप्सते, विरमति। धर्मात् प्रमाद्यति।

नियम ५०—(भीत्रार्थाना भयहेतु) भय और रक्षा अर्थ की धातुओं के साथ भय के कारण में पचमी होती है। चोराद् बिभेति। चोरात् त्रायते। न भीतो मरणादस्मि।

नियम ५१—(पराजेरसोढ.) परा + जि के साथ असह्य अर्थ में पचमी होती है। अध्ययनात् पराजयते (पढाई से हार मानता है)। परन्तु शत्रून् पराजयते (शत्रुओं को हराता है) में द्वितीया होगी।

नियम ५२—(वारणार्थानामीप्सित) जिस वस्तु से किसी को हटाया जाए, उसमें पचमी होती है। यवेभ्यो गा वारयति। पापात् निवारयति (पाप से हटाता है)।

नियम ५३—(अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति) जिससे छिपना चाहता है, उसमें पचमी होती है। मातुर्निलीयते कृष्ण· (कृष्ण माता से छिपता है)।

नियम ५४—(आख्यातोपयोगे) जिससे नियमपूर्वक विद्या आदि पढी जाए, उसमें पञ्चमी होती है। उपाध्यायादधीते। मया तीर्थात् (गुरु से) अभिनयविद्या शिक्षिता। तेभ्योऽधिगन्तु निगमान्तविद्याम् (उनसे वेदान्त पढने को)।

नियम ५५—(जनिकर्तु प्रकृति, भुव. प्रभव) उत्पन्न या प्रकट होना अर्थवाली जन् और भू आदि धातुओं के साथ पञ्चमी होती है। ब्रह्मण प्रजा. प्रजायन्ते। हिमवतो गङ्गा प्रभवति, उद्भवति, उद्गच्छति। परन्तु पुत्रादि के जन्म मे स्त्री में सप्तमी होगी—मेनकायामुत्पन्ना गौरीम् (मेनका से उत्पन्न पार्वती को)

नियम ५६—(ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च) क्त्वा या ल्यप् का अर्थ गुप्त होगा तो कर्म और अधिकरण में पचमी होगी। प्रासादात् प्रेक्षते। आसनात् प्रेक्षते। श्वशुरात् जिह्रेति।

नियम ५७—(गम्यमानापि क्रिया०) प्रश्न और उत्तर आदि में गुप्त क्रिया के आधार पर पचमी होती है। कस्मात् त्वम् ? नद्याः (कहाँ से आए ? नदी से)। कुतो भवान् ? पाटलिपुत्रात् (आप कहाँ से आए ? पटना से)।

अभ्यास ७

संस्कृत बनाओ—(क) (ईक्ष्, वृध् धातु, लोट् आ०) १ माता पुत्र को देखे। २ स्वेच्छाचारी व्यक्ति निन्दा की चिन्ता नहीं करता (ईक्ष्)। ३ स्नेह समय की अपेक्षा नहीं करता। ४. रथ तैयार है, महाराज के विजय प्रस्थान की प्रतीक्षा कर रहा है। ५ भाग्य भी पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है। ६ विद्वान् भाग्य और पुरुषार्थ दोनों की आवश्यकता मानता है। ७ मैं लड़ने के इच्छुकों को देखता हूँ (अवेक्ष्)। ८ कुछ बात सोचकर वह मौन हो गया। ९ अपने कर्तव्य की क्षणभर भी उपेक्षा न करे (उपेक्ष्) १० अच्छी तरह परीक्षा करके ही गुप्त-प्रेम करना चाहिए। ११. भले और बुरे की परीक्षा करके विद्वान् एक को अपनाते है। १२ तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती। १३ धर्मवृद्धों की आयु नहीं देखी जाती। १४ धन कम होने पर भूख अधिक लगती है। १५. पुत्र-मुख-दर्शन के लिए आपको बधाई। (ख) (पंचमी) १. वृक्ष से पुराने पत्ते गिरे। २ वह दौड़ते हुए घोड़े से गिरा। ३ वह सदाचार से हीन हो रहा है। ४. वह असत्य-भाषण से घृणा करता है। ५ धीर लोग अपने निश्चय से नहीं हटते हैं। ६ मेरी उँगलियों से अँगूठी गिर गई। ७ मेनका पार्वती को कठोर मुनिव्रत से रोकती हुई बोली। ८ बालक महल से गिर पड़ा (पत्)। ९ पुत्र, इस काम से रुको। १०. वह अपने कर्तव्य को भूल गया था। ११ सब प्राणि-हिंसा से बचें (निवृत्)। १२ सभी प्रकार के मांस-भक्षण से बचें। १३ मै मृत्यु से नहीं डरता। १४. धर्म का थोड़ा अंश भी उसे बड़े भय से बचाता है। १५ लोग उग्र पुरुष से डरते हैं। १६. मुझे लोक निन्दा से भय है। १७ वह पढ़ाई से हार मानता है। १८. वह दुर्जनों को हराता है। १९. वह बकरी को खेत से हटाता है। २० चोर सिपाही से छिपता है। २१. मैंने गुरु से अभिनय की विद्या सीखी है। २२ अगस्त्य मुनि से वेदान्त पढ़ने के लिए यहाँ आया हूँ। २३ हिमालय से गंगा निकलती है। २४. काम से क्रोध होता है। २५ गोबर से बिच्छू होता है। २६ लोभ से क्रोध होता है। २७ शुकनास को मनोरमा से एक पुत्र हुआ। २८ ब्रह्मा के मुख से अग्नि उत्पन्न हुई और मन से चन्द्रमा।

संकेत—(क) २ न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते। ३ न कालमपेक्षते स्नेहः। ४ प्रस्थानमपेक्षते। ५ दैवमपि पुरुषार्थमपेक्षते। ६ द्वयं विद्वानपेक्षते। ७ योत्स्यमानानवेक्षेऽहम्। ८ किमपि निमित्तमवेक्ष्य। ९ नोपेक्षेत क्षणमपि। १० अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः। ११ सदसत्, सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते। १२. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते। १३ न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते। १४ धनक्षये वर्धते जाठराग्निः। १५ दिष्ट्या पुत्रमुखदर्शनेन वर्धते भवान्। (ख) १ जीर्णानि। २ धावतः। ३ भ्रशते। ५ न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः। ६ अग्रहस्तात् प्रभ्रष्टम्। ७. निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात्। ९ एतस्माद् विरम। १० स्वाधिकारात् प्रमत्तः। ११ निवर्तेरन्। १२ निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्। १४ स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। १५ तीक्ष्णादुद्विजते लोकः। १६ लोकापवादाद् भयं मे। १९ क्षेत्रात्। २० रक्षिणः। २२ निगमान्तविद्यामधिगन्तुम्। २४ अभिजायते। २५ गोमयाद् वृश्चिको जायते। २६ प्रभवति। २७ मनोरमायां तनयो जातः। २८ मुखादग्निरजायत, चन्द्रमा मनसो जातः।

शब्दकोष—१५० + २५ = १७५] **अभ्यास ७** (व्याकरण)

(क) लोकापवाद (अफवाह), अभिजन (कुलीन), अङ्गुलीयकम् (अगूठी), वचनीयम् (निन्दा), सगतम् (मित्रता), गोमयम् (गोबर), वयस् (नपु०, आयु)। (७)। (ख) ईक्ष् (१ देखना, २ परवाह करना), अपेक्ष् (१ प्रतीक्षा करना, २ ध्यान रखना), अवेक्ष् (१ देखना, २ साचना, ३. रक्षा करना), उपेक्ष् (उपेक्षा करना), निरीक्ष् (१ ध्यान से देखना, २. ढूँढना), परीक्ष् (परीक्षा करना), प्रतीक्ष् (प्रतीक्षा करना), प्रेक्ष् (देखना), समीक्ष् (१ देखना, २ समीक्षा करना), भ्रश् (गिरना), पराजि (हारना), त्रै (रक्षा करना)। (१२)। (ग) रह (एकान्त में), सदसत् (उचित अनुचित)। (२)। (घ) सज्ज (तैयार), तीक्ष्णम् (तीव्र, उग्र), योत्स्यमान (लडने का इच्छुक), कामवृत्ति (पु०, स्वेच्छाचारी)। (४)

व्याकरण (१ सर्वनाम नपु०, लाट् आत्मने०, पचमी)

१ सर्व शब्द के नपुसक० के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७७)

२ वृध् और ईक्ष् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २२, २६)

नियम ४७—(ध्रुवमपायेऽपादानम्) जिससे कोई वस्तु आदि अलग हो, उसे अपादान कहते है।

नियम ४८—(अपादाने पञ्चमी) अपादान मे पचमी होती है। ग्रामादायाति। वृक्षात् पत्र पतति।

नियम ४९—(जुगुप्साविरामप्रमादार्थानाम०) जुगुप्सा (घृणा), विराम (रुकना) और प्रमाद अर्थ की धातुओं और शब्दो के साथ पचमी होती है। पापात् जुगुप्सते, विरमति। धर्मात् प्रमाद्यति।

नियम ५०—(भीत्रार्थाना भयहेतु) भय और रक्षा अर्थ की धातुओ के साथ भय के कारण मे पचमी होती है। चोराद् बिभेति। चोरात् त्रायते। न भीतो मरणादस्मि।

नियम ५१—(पराजेरसोढ) परा + जि के साथ असह्य अर्थ मे पचमी होती है। अध्ययनात् पराजयते (पढाई से हार मानता है)। परन्तु शत्रून् पराजयते (शत्रुओ को हराता है) में द्वितीया होगी।

नियम ५२—(वारणार्थानामीप्सित) जिस वस्तु से किसी को हटाया जाए, उसमें पचमी होती है। यवेभ्यो गा वारयति। पापात् निवारयति (पाप से हटाता है)।

नियम ५३—(अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति) जिससे छिपना चाहता है, उसमे पचमी होती है। मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण माता से छिपता है)।

नियम ५४—(आख्यातोपयोगे) जिससे नियमपूर्वक विद्या आदि पढी जाए, उसमें पञ्चमी होती है। उपाध्यायादधीते। मया तीर्थात् (गुरु से) अभिनयविद्या शिक्षिता। तेभ्योऽधिगन्तु निगमान्तविद्याम् (उनसे वेदान्त पढने को)।

नियम ५५—(जनिकर्तु प्रकृति, भुव प्रभव) उत्पन्न या प्रकट होना अर्थ-वाली जन् और भू आदि, धातुओ के साथ पञ्चमी होती है। ब्रह्मण प्रजा. प्रजायन्ते। हिमवतो गङ्गा प्रभवति, उद्भवति, उद्गच्छति। परन्तु पुत्रादि के जन्म मे स्त्री में सप्तमी होगी—मेनकायामुत्पन्ना गौरीम् (मेनका से उत्पन्न पार्वती को)

नियम ५६—(ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च) क्त्वा या ल्यप् का अर्थ गुप्त होगा तो कर्म और अधिकरण में पचमी होगी। प्रासादात् प्रेक्षते। आसनात् प्रेक्षते। श्वशुरात् जिह्रेति।

नियम ५७—(गम्यमानापि क्रिया०) प्रश्न और उत्तर आदि में गुप्त क्रिया के आधार पर पचमी होती है। कस्मात् त्वम्? नद्याः (कहाँ से आए? नदी से)। कुतो भवान्? पाटलिपुत्रात् (आप कहाँ से आए? पटना से)।

अभ्यास ७

संस्कृत बनाओ—(क) (ईक्ष्, वृध् धातु, लोट् आ०) १ माता पुत्र को देखे। २ स्वेच्छाचारी व्यक्ति निन्दा की चिन्ता नहीं करता (ईक्ष्)। ३ स्नेह समय की अपेक्षा नहीं करता। ४. रथ तैयार है, महाराज के विजय प्रस्थान की प्रतीक्षा कर रहा है। ५ भाग्य भी पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है। ६ विद्वान् भाग्य और पुरुषार्थ दोनों की आवश्यकता मानता है। ७ मैं लड़ने के इच्छुकों को देखता हूँ (अवेक्ष्)। ८ कुछ बात सोचकर वह मौन हो गया। ९ अपने कर्तव्य की क्षणभर भी उपेक्षा न करे (उपेक्ष्) १०. अच्छी तरह परीक्षा करके ही गुप्त-प्रेम करना चाहिए। ११. भले और बुरे की परीक्षा करके विद्वान् एक को अपनाते हैं। १२ तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती। १३ धर्मवृद्धों की आयु नहीं देखी जाती। १४ धन कम होने पर भूख अधिक लगती है। १५. पुत्र-मुख-दर्शन के लिए आपको बधाई। **(ख)** (पञ्चमी) १. वृक्ष से पुराने पत्ते गिरे। २ वह दौड़ते हुए घोड़े से गिरा। ३. वह सदाचार से हीन हो रहा है। ४ वह असत्य-भाषण से घृणा करता है। ५ धीर लोग अपने निश्चय से नहीं हटते हैं। ६ मेरी उँगलियों से अँगूठी गिर गई। ७ मेनका पार्वती को कठोर मुनिव्रत से रोकती हुई बोली। ८ बालक महल से गिर पड़ा (पत्)। ९ पुत्र, इस काम से रुको। १०. वह अपने कर्तव्य को भूल गया था। ११ सब प्राणि-हिंसा से बचें (निवृत्)। १२ सभी प्रकार के मांस-भक्षण से बचें। १३ मैं मृत्यु से नहीं डरता। १४. धर्म का थोड़ा अंश भी उसे बड़े भय से बचाता है। १५ लोग उग्र पुरुष से डरते हैं। १६. मुझे लोक निन्दा से भय है। १७ वह पढ़ाई से हार मानता है। १८. वह दुर्जनों को हराता है। १९. वह बकरी को खेत से हटाता है। २०. चोर सिपाही से छिपता है। २१. मैंने गुरु से अभिनय की विद्या सीखी है। २२. अगस्त्य मुनि से वेदान्त पढ़ने के लिए यहाँ आया हूँ। २३ हिमालय से गंगा निकलती है। २४ काम से क्रोध होता है। २५ गोबर से बिच्छू होता है। २६ लोभ से क्रोध होता है। २७ शुकनास को मनोरमा से एक पुत्र हुआ। २८. ब्रह्मा के मुख से अग्नि उत्पन्न हुई और मन से चन्द्रमा।

संकेत—(क) २ न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते। ३ न कालमपेक्षते स्नेह। ४ प्रस्थानमपेक्षते। ५ दैवमपि पुरुषार्थमपेक्षते। ६ द्वय विद्वानपेक्षते। ७ योत्स्यमानानवेक्षेऽहम्। ८ किमपि निमित्तमवेक्ष्य। ९ नोपेक्षेत क्षणमपि। १० अत परीक्ष्य कर्तव्य विशेषात् संगत रह। ११ सदसत्, सन्त. परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते। १२. तेजसा हि न वय समीक्ष्यते। १३ न धर्मवृद्धेषु वय समीक्ष्यते। १४ धनक्षये वर्धते जाठराग्नि। १५ दिष्ट्या पुत्रमुखदर्शनेन वर्धते भवान्। (ख) १ जीर्णानि। २ धावत। ३ भ्रशते। ५ न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीरा। ६ अग्रहस्तात् प्रभ्रष्टम्। ७. निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात्। ९ एतस्माद् विरम। १० स्वाधिकारात् प्रमत्त। ११ निवर्तेरन्। १२ निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्। १४ स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। १५ तीक्ष्णादुद्विजते लोक। १६ लोकापवादाद् भय मे। १९ क्षेत्रात्। २० रक्षिण। २२ निगमान्तविद्यामधिगन्तुम्। २४ अभिजायते। २५ गोमयाद् वृश्चिको जायते। २६ प्रभवति। २७ मनोरमाया तनयो जात। २८ मुखादग्निरजायत, चन्द्रमा मनसो जात।

शब्दकोष —१७५ + २५ = २००] अभ्यास ८ (व्याकरण)

(क) हुतवहः (आग), मरालः (हंस), अवकरः (कूडा), मानसम् (१. मन, २ मानसरोवर), जाड्यम् (मूर्खता), अकिंचित्करत्वम (तुच्छता), सनिधानम् (समीपता), अवज्ञा (तिरस्कार), अनुपलब्धि. (स्त्री०, अप्राप्ति) । (९) । (ख) मन्त्र् (१ मन्त्रणा करना, २ कहना), आमन्त्र् (१ विदाई लेना, २ बुलाना), निमन्त्र् (न्योता देना), रम् (१ मन लगना, २ क्रीडा करना), विरम् (१. हटना, २ रुकना, ३. समाप्त होना), उपरम् (१ रुकना, २. मरना) । स्यन्द् (बहना), दह् (जलाना), आरम् (प्रारम्भ करना) । (९) । (ग) आरात् (१. दूर, २. समीप), ऋते (बिना), नाना (बिना), प्राक् (पूर्व की ओर), प्रत्यक् (पश्चिम की ओर), उदक् (उत्तर की ओर), दक्षिणा (दक्षिण की ओर) । (७) ।

व्याकरण (९ सर्वनाम स्त्री०, लङ् आत्मने०. पचमी)

१ सर्व शब्द के रूप स्मरण करो । (देखो शब्द० ७७)

२ मन्त्र् और रम् धातु के रूप स्मरण करो । मन्त्रयते, रमते (सेव् के तुल्य) ।

नियम ५८—(अन्यारादितरर्ते०) अन्य, आरात्, इतर (तथा अन्य अर्थवाले और भी शब्द) ऋते, पूर्व आदि दिशावाची शब्द (इनका देश, काल अर्थ हो तो भी), प्राक् आदि शब्दों के साथ पचमी होती है । कृष्णात् अन्यो भिन्न इतरो वा । आराद् वनात् । ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः । ग्रामात् पूर्वः, उत्तरो वा । चैत्रात् पूर्वः फाल्गुन । ग्रामात् प्राक् प्रत्यक् वा ।

नियम ५९—(प्रभृत्यर्थयोगे बहिर्योगे च पञ्चमी) बहि तथा 'बाद में' 'तब से लेकर' अर्थ के बोधक प्रभृति. आरभ्य, अनन्तरम्, परम्, ऊर्ध्वम् आदि शब्दों के साथ पचमी होती है । शैशवात् प्रभृति । तद्दिनादारभ्य । विवाहविधेरनन्तरम् । अस्मात्परम् (इसके बाद) । वर्षाद् ऊर्ध्वम् (एक वर्ष बाद) । ग्रामाद् बहि ।

नियम ६०—(अपपरी वर्जने, आङ् मर्यादा०, प्रति प्रतिनिधि०) ये उपसर्ग इन अर्थों मे हो तो इनके साथ पचमी होती है.—अप (छोडकर), परि (छोडकर), आ (तक), प्रति (१ प्रतिनिधि, २ बदलना) । अप हरे, परि हरे. ससार । आ मुक्तेः ससार. । आ सकलाद् ब्रह्म । प्रद्युम्न कृष्णात् प्रति । तिलेभ्य. प्रतियच्छति माषान् ।

नियम ६१—(अकर्तर्यृणे०, विभाषा गुणे०) हेतुबोधक ऋण या गुणवाची शब्दो मे पचमी होती है । ऋणाद् बद्ध, जाड्याद् बद्ध. । मौनान्मूर्ख. । वाद-विवाद में युक्ति देने या उत्तर देने में भी पचमी होती है । पर्वतो वह्निमान् धूमात् । नास्ति घटोऽनुपलब्धे. (घडा नहीं है, क्योंकि अविद्यमान है) ।

नियम ६२—(पृथग्विनानाभि.०) पृथक, बिना और नाना के साथ पचमी, द्वितीया और तृतीया होती है । रामात् राम रामेण बिना पृथक् वा ।

नियम ६३—(दूरान्तिकार्थेभ्यो०) दूर और समीपवाची शब्दों में पचमी, द्वितीया और तृतीया तीनों होती है । ग्रामस्य दूरात् दूरेण दूर वा ।

नियम ६४—(पञ्चमी विभक्ते) तुलना में जिससे तुलना की जाती है, उसमे पचमी होती है । रामात् कृष्ण पटुतर । अणोरणीयान् महतो महीयान् । जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी (जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से बढकर हैं) ।

नियम ६५—(यतश्चाध्वकालनिर्माण०) स्थान और समय की दूरी नापने में पचमी होती है । दूरीवाचक शब्द में प्रथमा और सप्तमी होती हैं, समयवाचक मे सप्तमी । वनाद् ग्रामो योजन योजने वा । कार्तिक्या आग्रहायणी मासे ।

अभ्यास ८

संस्कृत बनाओ—(क) (मन्त्र्, रम् धातु, लङ् आ०) १. राजा सचिवों के साथ मन्त्रणा करे। २. तुम कुछ मन में रखकर कह रहे हो (मन्त्र्)। ३. तुम अकेले क्या गुनगुना रहे हो? ४. चकवी, अपने साथी से विदाई ले। ५. यज्ञो मे ब्राह्मणो को आमन्त्रित करो (आमन्त्र्)। ६ राजा ने विद्वानों को निमन्त्रण दिया। ७ उसका एकान्त में मन लगता है। ८ हंस का मन मानसरोवर के बिना नहीं लगता। ९. पत्नी पति के साथ क्रीडा करती है (रम्)। १०. मेरा चित्त विषयों से हटता है। ११. रात्रि इस प्रकार बीत गयी। १२. यह कहकर शेर चुप हो गया। १३ राम के वियोग से उत्पन्न शोक से दशरथ का स्वर्गवास हो गया। (ख) (पञ्चमी) १. आपका शुभागमन कहाँ से हुआ? प्रयाग से। २. मकान पर चढ़कर उसने बरात देखी। ३. वह आसन पर बैठकर चित्र देखता है। ४. बहू श्वशुर से शर्माती है। ५. आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है? ६. गाँव से दूर (आरात्) नदी है। ७. घर के पास (आरात्) उद्यान है। ८. श्रम के बिना (ऋते) धन नहीं। ९ गाँव के पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की ओर अनाज से हरे-भरे खेत हैं। १०. वह बचपन से ही व्यायाम का प्रेमी है। ११. उसी दिन से दोनों की मित्रता हो गई। १२. इसके बाद क्या करना चाहिये? १३. गाँव के बाहर उसकी कुटी है। १४. जन्म से लेकर आजतक इसने शठता नहीं सीखी है। १५ उडद से जौ को बदलता है। १६. चोर ऋण के कारण पकड़ा गया। १७. मूर्खता के कारण अनादृत हुआ। १८. अति परिचय से अपमान होता है और किसी के यहाँ अधिक जाने से अनादर होता है। १९. दो हृदयों की एकता से प्रेम होता है, समीप रहने मात्र से कुछ नहीं होता। २०. मैं निन्दा से मुक्त हो गया हूँ। २१. पहाड़ में आग है, चूँकि धुँआ दीखता है। २२ यहाँ पुस्तक नहीं है, चूँकि दिखाई नहीं देती है। २३. चाँदनी चन्द्रमा के बिना नहीं रह सकती। २४. कूड़ा घर से दूर फेंकना चाहिए (प्रक्षिप्)। २५. ईश्वर छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा है। २६. कृष्ण राम से अधिक चतुर है। २७. प्रयाग नगर से गंगा-यमुना का संगम कोस भर पर है। २८. माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। २९. भक्तिमार्ग से ज्ञानमार्ग अच्छा है। ३०. कार्तिक से अगहन एक महीने बाद होता है।

संकेत—(क) १ मन्त्रयेत। २ किमपि हृदये कृत्वा। ३ किमेकाकी मन्त्रयसे। ४ चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। ६ न्यमन्त्रयत। ७ स रहसि रमते। ८ रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना। १० विरमति। ११ रात्रिरेव व्यरसीत्। १२ उपरराम। १३ दाशरथिवियोगजन्मना शोकेन, उपरत। (ख) १ कुतो भवान्, प्रयागात्। २. प्रासादात् वरयात्रां प्रैक्षत। ३ आसनात्। ४ श्वशुरात् जिहेति। ५ कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धु प्रभवति। ७ निष्कुट। ९. शस्यश्यामानि क्षेत्राणि। १० व्यायामप्रिय। ११. तद्दिनादारभ्य। १२. अस्मात् परम्। १४ आ जन्मन शाठ्यमशिक्षितोऽयम्। १६ बद्ध। १७ जाड्यात्। १८. अतिपरिचयादवज्ञा, सन्ततगमनादनादरो भवति। १९ हृदोरैक्यात् स्नेह सजायते, सन्निधानस्याकिंचित्करत्वात्। २० वचनीयात्। २१. पर्वतो वह्निमान्, धूमात्। २२. अनुपलब्धे। २३. न स्थातु शक्नोति। २४ अवकरनिकर। २७ क्रोश क्रोशे वा। २९. श्रेयान्। ३० मासे।

शब्दकोष—२०० + २५ = २२५] **अभ्यास ९** (व्याकरण)

(क) उद्गीथः (ओम्, ब्रह्म), विश्रमः (विश्राम), नियोगः (आज्ञा), विनियोगः (उपयोग, खर्च), विदग्ध (विद्वान्, चतुर), कालहरणम् (देर करना), कैतवम् (धोखा), कार्यकालम् (मौका), साक्षिन् (पु०, साक्षी)। (९)। (ख) स्था (१. रुकना, २. रहना), उत्था (१. उठना, २ यत्न करना), उपस्था (१ पूजा करना, २. मिलना आदि), प्रस्था (प्रस्थान करना), अवस्था (१. रुकना, २. रहना), अनुष्ठा (१ करना, २. मानना), आस्था (मानना), सगी (सगाय करना), अधि + इ (पर०, स्मरण करना), दय् (दया करना)। (१०)। (ग) कृते (लिए), अन्तरे (अन्दर, बीच में), शतम् (सौ रुपये)। (३)। (घ) अक्षमः (असमर्थ), अभिज्ञः (जानने वाला), अव्याजमनोहरम् (स्वभाव से ही सुन्दर)। (३)

व्याकरण (इदम्, विधिलिङ् आत्मने०, षष्ठी)

१. इदम् शब्द के तीनों लिंगों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ८७)

२. लभ् और स्था धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९, २१)

नियम ६६—(षष्ठी शेषे) सम्बन्ध का बोध कराने के लिए षष्ठी विभक्ति होती है। राज्ञः पुरुषः। रामस्य पुस्तकम्। गङ्गाया जलम्। देवदत्तस्य धनम्।

नियम ६७—(षष्ठी हेतुप्रयोगे) हेतु शब्द के साथ षष्ठी होती है। अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न के लिए रहता है)।

नियम ६८—(निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्) निमित्त अर्थवाले शब्दो (निमित्त, हेतु, कारण, प्रयोजन) के साथ प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं। किं निमित्त वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय। कस्य हेतोः। कस्मात् कारणात्। केन प्रयोजनेन।

नियम ६९—(षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन) उपरि, उपरिष्टात्, पुरः, पुरस्तात्, अधः, अधस्तात्, पश्चात्, अग्रे, दक्षिणतः, उत्तरतः आदि दिशावाची शब्दो के साथ षष्ठी होती है। गृहस्योपरि पुरः पश्चात् अग्रे वा। ग्रामस्य दक्षिणतः उत्तरतो वा। तरोरधः।

नियम ७०—(षष्ठी शेषे) कृते, समक्षम्, मध्ये, अन्तः, अन्तरे, पारे, आदौ आदि के साथ षष्ठी होती है। धनस्य कृते। गुरोः समक्षम्। छात्राणां मध्ये। गृहस्य अन्तः अन्तरे वा। गङ्गायाः पारे। रामायणस्यादौ।

नियम ७१—(एनपा द्वितीया) 'एन' प्रत्ययान्त दिशावाची दक्षिणेन उत्तरेण आदि के साथ षष्ठी और द्वितीया होती हैं। दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा। दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् (वृक्ष-वाटिका के दाहिनी ओर)।

नियम ७२—(दूरान्तिकार्थैः षष्ठी०) दूर और समीपवाची शब्दों के साथ षष्ठी और पञ्चमी दोनों होती हैं। ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरं समीपं निकटं पार्श्वे सकाशं वा।

नियम ७३—(अधीगर्थदयेशां कर्मणि) स्मरण करना, दया करना और स्वामी होना, इन अर्थवाली धातुओं के साथ कर्म में षष्ठी होती है। मातुः स्मरति। रामस्य दयमानः। अयं गात्राणामीष्टे (यह अपने अंगों का स्वामी है)।

नियम ७४—(यतश्च निर्धारणम्) बहुतों में से एक को छाँटने में, जिसमें से छाँटा जाए, उसमें षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं। कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः।

अभ्यास ९

संस्कृत बनाओ—(क) (इदम्, विधिलिङ् आ०) १. इसमें जरा भी देरी न करो। २. बिना कृत्रिमता के भी यह शरीर सुन्दर है। ३. यह कथा मुझको ही लक्ष्य करती है। ४. इस वन में अगस्त्य आदि ब्रह्मवेत्ता रहते हैं। ५ न यह मिला, न वह मिला। ६. इसने धूर्तता नहीं सीखी है। ७. भला इस तरह भी चैन मिले। ८ युद्ध में जाकर पीठ न दिखावे। ९ सदा गुरु की सेवा करे, कष्टों को सहन करे, उन्नति के लिए यत्न करे, ज्ञान से बढ़े, प्रसन्न हो और सुख पावे। (ख) (स्था धातु) १ वह घर में रहता है (स्था)। २. बुद्धिमान् आदमी एक पैर से चलता है और एक पैर से रुका रहता है। ३ पति के कहने में रहना। ४ दुर्योधन सन्देह होने पर कर्ण आदि के पास निर्णयार्थ जाता था। ५. मुनि लोग मुक्ति के लिए यत्न करते हैं (उत्था, आ०)। ६ वह आसन से उठता है (उत्था, पर०)। ७ इस गाँव से सौ रुपए लगान मिलता है (उत्था, पर०)। ८ वह सूर्य की पूजा करता है (उपस्था, आ०)। ९. प्रयाग में यमुना गगा से मिलती है। १० वह रथिकों से मित्रता करता है। ११. यह मार्ग वाराणसी को जाता है और यह प्रयाग को। १२. भिक्षुक धनी के पास जाता है (उपस्था, आ०)। १३. वह खाने के समय आ जाता है (उपस्था, आ०), पर काम पड़ने पर दिखाई भी नहीं देता। १४. मैं वाराणसी चार दिन रुकूँगा (अवस्था, आ०), फिर प्रयाग चला जाऊँगा (प्रस्था, आ०)। १५. कृष्ण दिल्ली के लिए चल पड़े (प्रस्था, आ०)। १६. गुरु का वचन मानो (अनुष्ठा, पर०)। १७ भगवान् मारीच क्या कर रहे हैं (अनुष्ठा, पर०)? १८. आप आज्ञा दें, क्या काम करें? १९. वैयाकरण शब्द को नित्य मानते हैं (आस्था, आ०)। (ग) (षष्ठी) १. यह किस छात्र की पुस्तक है? २. राजा का आदमी किसलिए यहाँ आया है? ३. हरिद्वार में गगा का जल शीतल, स्वच्छ और मधुर होता है। ४ वह अध्ययन के लिए छात्रावास में रहता है। ५. पेड़ के ऊपर और नीचे बन्दर कूद रहे हैं। ६. बच्चे मकान के आगे-पीछे, दक्षिण और उत्तर की ओर गेंद खेल रहे हैं। ७. याचक धन के लिए (कृते) धनी के सामने हाथ फैलाता है (प्रसारि)। ८ ईश्वर प्राणियों के बाहर और अन्दर है। ९ हे अग्नि, तुम सब प्राणियों के अन्दर साक्षिरूप में हो। १० पता नहीं, मरूँगा कि जीऊँगा। ११ गगा के पार मुनि लोग रहते हैं। १२. महाभारत के आदि में यह श्लोक है। १३ गाँव के दक्षिण की ओर वन है। १४. वाटिका के उत्तर की ओर कुछ बातचीत सी सुनाई देती है। १५ पिता के पास से यहाँ आया हूँ। शिशु माता को स्मरण करता है।

संकेत—(क) १ अक्षमोऽयं कालहरणस्य। २ इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः। ३ लक्ष्यीकरोति। ४ प्रभृतयः, उद्गीथविद्। ५ इदं च नास्ति, न परं च लभ्यते। ६ अनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य। ७ यद्येवमपि नाम विश्रमं लभेय। ८ न निवर्तेत। (ख) २ चलत्येकेन पादेन, तिष्ठति। ३ शासने तिष्ठ भर्तुः। ४ संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः। (आत्मनेपद के नियमों के लिए देखो अभ्यास २९,३०)। ५ मुक्तावुत्तिष्ठन्ते। ६ उत्तिष्ठति। ७ ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति। ८ आदित्यमुपतिष्ठते। ९ गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते। १० रथिकानुपतिष्ठते। ११. वाराणसीमुपतिष्ठते। १३ भोजनकाले उपतिष्ठते, कार्यकाले तु न लभ्यते। १४ अवस्थास्ये, प्रयागं प्रस्थास्ये। १५. हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे। १७. किमनुतिष्ठति १८ आज्ञापयतु, को नियोगोऽनुष्ठीयताम्। १९ शब्दं नित्यमातिष्ठन्ते। (ग) ८ बहिरन्तश्च भूतानाम्। ९ त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत्। १० मरणजीवितयोरन्तरे वर्ते। १४ आलाप इव श्रूयते।

शब्दकोष—२२५ + २५ = २५०]　**अभ्यास १०**　(व्याकरण)

(क) रथ्यः (घोडा), वेला (१. समय, २. किनारा), रसना (जीभ)। (३)। (ख) मुद् (प्रसन्न होना), सह् (सहना), यत् (यत्न करना), वन्द् (प्रणाम करना), भाष् (कहना), कूर्द् (कूदना), शिक्ष् (सीखना), कम्प् (काँपना), ईह् (चाहना), शुभ् (शोभित होना), स्पर्ध् (स्पर्धा करना), चेष्ट् (चेष्टा करना), परा + अय्, पलाय् (भागना), द्युत् (चमकना), वेप् (काँपना), त्रप् (लज्जित होना), भास् (चमकना), दीक्ष् (दीक्षा देना), स्रंस् (गिरना), ध्वंस् (नष्ट होना), अव + लम्ब् (१. सहारा देना, २. सहारा लेना), व्यथ् (दुःखित होना)। (२२)

व्याकरण (अदस्, लट् आत्मने०, षष्ठी)

१. अदस् शब्द के तीनों लिंगों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ८८)

२. मुद् और सह् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २३, २४)

नियम ७५—(कर्तृकर्मणोः कृति) कृदन्त शब्दों के कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है। जिनके अन्त में कृत् प्रत्यय अर्थात् तृच् (तृ), क्तिन् (ति), अच् (अ), घञ् (अ), ल्युट् (अन), ण्वुल् (अक) आदि हों, उन्हें कृदन्त कहते हैं। जैसे—शिशोः शयनम्। पुस्तकस्य पाठः। शास्त्राणां परिचयः। दुःखस्य नाशः। ग्रन्थस्य प्रणेता। कवेः कृतिः। जनानां पालकः (लोगों का पालक)।

नियम ७६—(उभयप्राप्तौ कर्मणि) कृदन्त के साथ जहाँ कर्ता और कर्म दोनों हों, वहाँ कर्म में षष्ठी होती है। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन। शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा (आचार्य के द्वारा शब्दों का शिक्षण)।

नियम ७७—(क्तस्य च वर्तमाने, अधिकरणवाचिनश्च) वर्तमानार्थक और भावार्थक क्तप्रत्ययान्त के साथ षष्ठी होती है। राज्ञां मतः, सतां मतः। मयूरस्य नृत्तम्। छात्रस्य हसितम् (छात्र का हँसना)।

नियम ७८—(न लोकाव्यय०) इन प्रत्ययों से बने हुए कृदन्त शब्दों के साथ षष्ठी नहीं होती :—शतृ, शानच्, उ, उक, क्त्वा, तुमुन्, क्त, क्तवतु, खलू, तृन्। जैसे—कर्म कुर्वन् कुर्वाणो वा। हरिं दिदृक्षुः। दैत्यान् घातुको हरिः। जगत् सृष्ट्वा। सुखं कर्तुम्। विष्णुना हता दैत्याः। हरिणा ईषत्करः प्रपञ्चः। कामुकः और द्विषत् के साथ षष्ठी होगी। लक्ष्म्याः कामुकः। मुरस्य मुरं वा द्विषन्।

नियम ७९—(कृत्यानां कर्तरि वा) कृत्य प्रत्ययों (तव्य, अनीय, यत्, ण्यत् आदि) के साथ कर्ता में तृतीया और षष्ठी होती हैं। मया मम वा सेव्यो हरिः। न वयमनुग्राह्याः प्रायो देवतानाम्। न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।

नियम ८०—(तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां०) तुल्य अर्थवाले शब्दों के साथ तृतीया और षष्ठी होती हैं। तुला और उपमा के साथ षष्ठी ही होगी। कृष्णस्य कृष्णेन वा तुल्यः सदृशः समो वा (कृष्ण के सदृश)।

नियम ८१—(चतुर्थी चाशिष्यायुष्य०) आशीर्वाद देने में आयुष्यम्, भद्रम्, कुशलम्, सुखम्, हितम् आदि के साथ चतुर्थी और षष्ठी होती है। कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशलं भद्रं वा भूयात् (कृष्ण का भला हो)।

नियम ८२—(व्यवहृपणोः०, दिवस्तदर्थस्य, कृत्वोऽर्थ०) इन स्थानों पर षष्ठी होती है :—व्यवहृ, पण् और दिव् धातु जब जूआ खेलने या क्रय-विक्रय अर्थ में हों और कृत्व प्रत्यय के साथ। शतस्य व्यवहरणं पणनं वा। शतस्य दीव्यति। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्।

अभ्यास १०

संस्कृत बनाओ—(क) (अदस् , लट्) १ सामने इस देवदार के पेड़ को देख रहे हो, इसे शिव ने पुत्रवत् माना है। २ ये घोड़े मृग के वेग को सहन न करते हुए दौड रहे है। ३. इनकी विद्या जिह्वाग्र पर रहती है। ४ इनकी पढने मे प्रवृत्ति है। ५ मै स्वामी की चित्तवृत्ति का अनुसरण करूँगा। ६ तुम थोडी देर में अपने घर पहुँच लोगे। ७ पिता इस समाचार को सुनकर न जाने क्या विचारेंगे ? ८ जो दु.ख सहेगा, यत्न करेगा, गुरु की सेवा करेगा, सत्य बोलेगा, वह सदा सुख पायेगा। ९ जो माता-पिता की वन्दना करेगा, समयानुसार खेलेगा, कूदेगा, वेद को सीखेगा, सबका हित चाहेगा, ज्ञानोपार्जन में स्पर्धा करेगा, सत्कर्म में चेष्टा करेगा, अध्ययन से नही घबडाएगा, दुष्कर्म से लज्जित होगा, धर्म की दीक्षा लेगा, वह कभी भी न च्युत होगा, न नष्ट होगा और न दु खी होगा। (ख) (षष्ठी) १. यह कालिदास की कृति है। २. शास्त्रो का परिचय बुद्धि को बढाता है। ३. मित्रो का दर्शन अब राम के लिए दु खद हो गया है। ४ पाणिनि की अष्टाध्यायी की रचना सुन्दर है। ५. त्रुटि करना मनुष्यो का स्वभाव है। ६ इन दोनों पुस्तकों में से एक ले लो। ७. इन बालकों में से एक यहाँ आवे। ८. उसका स्वर्गवास हुए आज दसवाँ महीना है। ९ उसको तप करते हुए कई वर्ष हो गए। १०. स्वभाव से ही सीता राम को प्रिय थी, इसी प्रकार राम सीता को प्राणों से भी प्रिय थे। ११. वह सत्कार मेरे मनोरथ से भी परे की चीज थी। १२ थोडे के लिए बहुत छोडने के इच्छुक तुम मुझे मूर्ख प्रतीत होते हो। १३. ग्वाले के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति का गाय को दुहना आश्चर्य की बात है। १४ अनुचरो को चाहिये कि वे स्वामी को धोखा न दें। १५. हम लोग देवताओं के अनुग्रह के योग्य नहीं हैं। १६ मोर का नाचना मन को हरता है। १७. कोयल की आवाज कानों को सुखद होती है। १८. परिश्रम करता हुआ व्यक्ति सुखी रहता है। १९ राम को देखने का इच्छुक यहाँ आया। २०. रावण से द्वेष करनेवाले राम की विजय हो। २१ शिष्य का शुभ हो। २२ राजा मुझे ही मानता है। २३. मनोरथों के लिए कुछ भी अगम्य नहीं है। २४ यह आपके योग्य नहीं है। २५. यह स्नेह के योग्य ही है। २६. वह सौ रुपए की लेन-देन करता है। २७ वह हिमालय की शोभा का अनुकरण करता था। २८ आपको न दीखे हुए बहुत दिन हो गए।

सकेत —(क) १ अमु पुर पश्यसि देवदारु, पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन। २ धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्या। ३ अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी। ५ चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। ६ क्षणात् स्वगृहे वर्तिष्यसे। ७ न जाने किं प्रतिपत्स्यते। ८ लप्स्यते। ९ वन्दिष्यते, कूर्दिष्यते, शिक्षिष्यते, ईहिष्यते, स्पर्धिष्यते, सत्कर्मणि चेष्टिष्यते, पलायिष्यते, त्रपिष्यते, दीक्षिष्यते, स्रंसिष्यते, ध्वसिष्यते, व्यथिष्यते। (ख) २ वर्धयति। ३ रामस्य दु खाय। ४ शोभना कृति। ५ स्खलन, धर्म। ६ गृह्यतामनयोरन्यतरत्। ७ अन्यतम। ८ अद्य दशमो मासस्तस्योपरतस्य। ९ कतिपये सवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य। १० प्रिया तु सीता रामस्य, तथैव राम सीताया प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्। ११. मनोरथानामप्यभूमि। १२ अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्, विचारमूढ प्रतिभासि मे त्वम्। १७ कोकिलस्य व्याहृत कर्णौ सुखयति। २२ अहमेव मतो महीपते। २३ मनोरथानामगतिर्न विद्यते। २४ नैतदनुरूप भवत। २५ सदृशमेवैतत् स्नेहस्य। २६ शतस्य व्यवहरति। २७ लक्ष्मीमनुचकार। २८ कापि महती वेला तवादृष्टस्य।

शब्दकोष—२५० + २५ = २७५] **अभ्यास ११** (व्याकरण)

(क) कन्दुक (गेंद), मयूखः (किरण), व्यसनम् (विपत्ति), स्यन्दनम् (रथ), क्षतम् (चोट)। (५)। (ख) पत् (१ गिरना, २ पड़ना), आपत् (१ आ पड़ना, २ प्रतीत होना), अनुपत् (पीछा करना), उत्पत् (१ उड़ना, २ उठना), निपत् (१. गिरना, २ पड़ना), प्रणिपत् (प्रणाम करना)। नम् (१. प्रणाम करना, २ झुकना), उन्नम् (उठना), अवनम् (झुकना), अवनमय (झुकाना), प्रणम् (प्रणाम करना)। पच् (पकाना), परिपच् (परिपक्व होना), विपच् (फलित होना)। आस् (बैठना)। (१५)। (ग) सद्य (शीघ्र), मुहु (बार बार), अभीक्ष्णम् (१. बार-बार, २. निरन्तर)। (३)। (घ) अधीतिन् (विद्वान्), गृहीतिन् (सीखनेवाला)। (२)

व्याकरण (युष्मद्, सप्तमी)

१. युष्मद् के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ८५)

२ पत्, नम्, पच् सोपसर्ग के अर्थों तथा रूपो को स्मरण करो। (देखो धातु० १२, १३)

नियम ८३—(आधारोऽधिकरणम्) किसी क्रिया के आधार को अधिकरण कहते है, जहाँ पर या जिसमें वह कार्य किया जाता है। आधार तीन प्रकार का है—१. औपश्लेषिक (संयोग-सम्बन्धवाला), २ वैषयिक (विषय में), ३. अभिव्यापक (व्यापक होकर रहना)।

• **नियम ८४**—(सप्तम्यधिकरणे च) तीनो प्रकार के आधार या अधिकरण में सप्तमी होती है। १ आसने उपविशति, स्थाल्या पचति। २ मोक्षे इच्छाऽस्ति। ३ सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति (सबमें आत्मा है)।

नियम ८५—(वैषयिकाधारे सप्तमी) 'विषय मे, बारे मे' तथा समय-बोधक शब्दो मे सप्तमी होती है। मोक्षे इच्छास्ति। प्रात.काले मध्याह्ने सायकाले दिवसे रात्रौ वा कार्य करोति। शैशवे, यौवने, वार्धके (बाल्य, यौवन, वृद्धत्व काल मे)। आषाढस्य प्रथमदिवसे।

नियम ८६—(क) (क्तस्येन्विषयस्य०) क्त-प्रत्ययान्त के अन्त मे इन् प्रत्यय होगा तो उसके कर्म मे सप्तमी होगी। अधीती व्याकरणे। गृहीती षट्स्वङ्गेषु। (ख) (साध्वसाधुप्रयोगे च) साधु और असाधु के साथ सप्तमी। साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले। (ग) (निमित्तात् कर्मयोगे) जिस फल के लिए कोई काम किया जाता है, उसमे सप्तमी होगी। चर्मणि द्वीपिन हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति।

नियम ८७—(आयुक्तकुशलाभ्याम्०, साधुनिपुणाभ्याम्०) सलग्न अर्थवाले शब्दो (व्यापृत., आयुक्त., लग्न., आसक्त., युक्तः, व्यग्र., तत्पर. आदि) तथा चतुर अर्थवाले शब्दो (कुशल, निपुण, साधु, पटु., प्रवीण, दक्ष, चतुर आदि) के साथ सप्तमी होती है। गृहकर्मणि लग्न, व्यापृत., व्यग्रो वा। शास्त्रेषु निपुण. प्रवीण दक्षो वा।

नियम ८८—(यतश्च निर्धारणम्) बहुतो में से एक के छाँटने में, जिसमे से छाँटा जाय, उसमें षष्ठी और सप्तमी होती हैं। छात्राणा छात्रेषु वा राम श्रेष्ठ पटुतमो वा।

नियम ८९—(सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये) समय और मार्ग का अन्तर बतानेवाले शब्दो में पचमी और सप्तमी होती हैं। अद्य भुक्त्वाऽय द्व्यहे द्व्यहाद् वा भोक्ता। क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्य विध्येत् (कोस भरके लक्ष्य को बीध देगा)।

नियम ९०—(वैषयिकाधारे सप्तमी) प्रेम, आसक्ति और आदर-सूचक धातुओं और शब्दों (स्निह्, अभिलष्, अनुरञ्ज्, आदृ, रम्, रति., स्नेह, आसक्त, अनुरक्तः आदि) के साथ सप्तमी होती है। पिता पुत्रे स्निह्यति। रहसि रमते। श्रेयसि रत.। दण्डनीत्या नात्यादृतोऽभूत्।

अभ्यास ११

संस्कृत बनाओ—(क) (पत्, नम्, पच्) १. आश्रम के वृक्षों पर धूल गिर रही है (पत्)। २ चन्द्रमा थोड़ी सी किरणों के साथ आकाश से गिर रहा है। ३ परधर्म को अपनाकर जीवित रहनेवाला शीघ्र ही जाति से पतित हो जाता है। ४ श्रेष्ठ आदमी पतित होता हुआ भी गेंद की तरह उठ जाता है। ५. यह बात आपके कानों में पड़ी ही होगी। ६ ओह, बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। ७ ओह, यह अच्छा नहीं हुआ। ८ संसार में जन्म लेनेवालों पर ऐसी घटनाएँ आती ही हैं। ९ नवयौवन से कषैले मनवालों को वे ही विषय मधुरतर प्रतीत होते हैं, जिनका वे आस्वादन कर चुके हैं (आपत्)। १०. मृग पीछा करते हुए रथ को बार-बार देखता था। ११ पक्षी आकाश में उड़ते हैं (उत्पत्)। १२ हाथ से पटकी हुई भी गेंद उछलती है। १३ शेर छोटा होने पर भी हाथियों पर टूटता है (निपत्)। १४. वृक्ष से फल भूमि पर गिर रहे हैं (निपत्)। १५ पुत्र पिता को प्रणाम करता है (प्रणिपत्)। १६ ईश्वर को प्रणाम करके कार्य को प्रारम्भ करता हूँ (प्रारभ्)। १७ चोट पर ही चोट बार-बार लगती है। १८ आप सबको नमस्कार करता हूँ (नम्)। १९. बादल कभी झुकता है, कभी उठता है। २० कमजोर सन्धि का इच्छुक होने पर झुके। २१ बादल जल लेने के लिए झुकता है। २२ शत्रुओं का शिर झुका देना। २३ वे देवताओं को प्रणाम करते हैं। २४ चावलों से भात पकाता है। २५ वह विद्वान् परिपक्व-बुद्धि है। २६ उसकी सारी योजनाएँ फलित हुईं। (ख) (सप्तमी) १ वे चटाई पर बैठते हैं। २ वे पतीली में भोजन पकाते हैं। ३. सबमें ब्रह्म है। ४. बचपन में विद्याभ्यास करनेवाले, यौवन में विषयों के इच्छुक, वृद्धावस्था में मुनिवृत्तिवाले और अन्त में योग से शरीर छोड़नेवाले रघुवंशियों का वर्णन करूँगा। ५. फाल्गुन शुक्ला पंचमी को वसन्त-पंचमी का पर्व होता है। ६ उसने दर्शन पढ़ रखे हैं। ७ उसने वेद के छहों अंग सीख लिये हैं। ८ इन्द्र देवों पर सज्जन है और असुरों पर क्रूर। ९ चर्म के लिए मृग को मारता है, दाँतों के लिए हाथी को मारता है। १० वह अध्ययन में लगा हुआ है। ११. कृष्ण व्याकरण और साहित्य में निपुण है। १२ मनुष्यों में बुद्धिमान् श्रेष्ठ हैं। १३ आज खाना खाकर यह दो दिन बाद खायेगा। १४ यहाँ बैठकर वह कोसभर दूर निशाना मार सकता है। १५. उसका एकान्त में मन लगता है। १६ उसका दण्डनीति में विश्वास है।

संकेत—(क) १ रेणु। २ अल्पशेषैर्मयूखैः। ३ परधर्मेण जीवन् हि सद्य पतति जातितः। ४ प्राय कन्दुकपातेनोत्पतत्यार्य पतन्नपि। ५ एतद् भवतः श्रुतिविषयमापतितमेव। ६ अहो, महद् व्यसनमापतितम्। ७ अहो, न शोभनमापतितम्। ८ आपतन्ति हि संसारपथमवतीर्णानामेते विषया। ९ नवयौवनकषायितात्मनश्च तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। १० मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः। १२ पातितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः। १३ सिंह शिशुरपि निपतति गजेषु। १५ पितरं प्रणिपतति। १६ प्रणिपत्य। १७ क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्। १९ उन्नमति नमति च। २० अशक्तः सन्धिमान् नमेत्। २१ जलमादातुमवनमति। २२ अवनमय द्विषतां शिरांसि। २३ प्रणमन्ति देवताभ्यः। २४ तण्डुलान्। २६ विपेचिरे। (ख) १ कटे आसते। ४ अभ्यस्तविद्यानाम्, विषयैषिणाम्, मुनिवृत्तीनाम्। तनुत्यजाम्, रघूणामन्वयं वक्ष्ये। ५ पञ्चम्याम्। ६ अधीती दर्शने। ७ गृहीती षड्स्वङ्गेषु, ९ चर्मणि। १८ हस्त्य।

शब्दकोष—२७५ + २५ = ३००] अभ्यास १२ (व्याकरण)

(क) सायान्त्रिक. (समुद्री व्यापारी), पोत. (पानी का जहाज), उडुप (छोटी नौका), रक्षिन् (सिपाही), सचेतस् (विद्वान्), अनागस् (निरपराध)। (६)। (ख) तॄ (१. तैरना, २. पार करना), अवतॄ (उतरना), उत्तॄ (१. पार करना, २ उत्तीर्ण होना), वितॄ (देना), निस्तॄ (पार करना), सतॄ (तैरना)। स्मृ (याद करना), सस्मृ (याद करना), विस्मृ (भूलना)। जि (जीतना), विजि (जीतना), पराजि (१. हराना, २. हारना)। स्निह् (प्रेम करना), विश्वस् (विश्वास करना), आक्षिप् (उल्लंघन करना), गण् (गिनना), मुच् (छोडना), श्रद्धा (श्रद्धा करना), उपपद् (ठीक घटना)। (१९)

व्याकरण (अस्मद्, सप्तमी विभक्ति)

१. अस्मद् शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ८६)

२ तॄ, स्मृ और जि के विशेष अर्थों को स्मरण करो। (देखो धातु० १४, १५)

नियम ९१—(आधारे सप्तमी) इन स्थानो पर सप्तमी होती है—(क) फेंकना अर्थ की धातुओं क्षिप्, मुच्, अस् आदि के साथ। मृगे बाण क्षिपति, मुञ्चति, अस्यति वा। (ख) विश्वास और श्रद्धा अर्थवाली धातुओं और शब्दो (विश्वसिति, विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा, आस्था आदि) के साथ व्यक्ति मे। न विश्वसेदविश्वस्ते। ब्रह्मणि श्रद्दधाति, श्रद्धा निष्ठा वा वर्तते। (ग) 'व्यवहार करना' अर्थ मे वृत् और व्यवहृ आदि के साथ। गुरुषु विनयेन वर्तते। कुरु सखीवृत्ति सपत्नीजने। विश्वस् के साथ द्वितीया भी।

नियम ९२—(आधारे सप्तमी) इन स्थानों पर सप्तमी होती है —(क) युज् धातु तथा उससे बने शब्दो के साथ। इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। (ख) 'योग्य' और 'उपयुक्त' आदि अर्थों में व्यक्ति में। युक्तरूपमिद त्वयि। त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्व तस्मिन् युज्यते। एते गुणा ब्रह्मण्युपपद्यन्ते। (ग) ग्रहण और प्रहार अर्थवाली धातुओ के साथ। केशेषु गृहीत्वा। न प्रहर्तुमनागसि। (घ) रखना अर्थ मे। मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य। सचिवे भारो न्यस्तः। (ङ) अपराध् के साथ षष्ठी और सप्तमी होती हैं। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला। सुभगमपराद्ध युवतिषु। अपराद्धोऽस्मि तत्रभवत. कण्वस्य।

नियम ९३—(षष्ठी चानादरे) अनादर अर्थ मे षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत् (रोते हुए पुत्रादि को छोडकर उसने सन्यास ले लिया)।

नियम ९४—(यस्य च भावेन भावलक्षणम्) एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होने पर पहली क्रिया मे सप्तमी होती है। कर्तृवाच्य मे कर्ता और कृदन्त में सप्तमी होगी। कर्मवाच्य मे कर्म और कृदन्त मे सप्तमी होगी, कर्ता मे तृतीया। प्रथम क्रिया मे कृदन्त का प्रयोग होना चाहिए। गोषु दुह्यमानासु गत.। रामे वन गते दशरथो दिवगत.।

नियम ९५—(यस्य च भावेन०) (क) 'ज्योंही, इतने ही में, उसी क्षण' इन अर्थों मे सप्तमी होती है। ऐसे स्थलों पर मात्र या एव का प्रयोग होता है। अनवसित-वचने एव मयि (मेरी बात पूरी न हो पाई थी, उसी समय)। प्रविष्टमात्रे एव तत्रभवति (ज्योंही आप आए, त्योंही)। (ख) 'जब' अर्थ मे षष्ठी और सप्तमी होती हैं। एव तयो परस्पर वदतोः (जब वे दोनो बात कर रहे थे)। (ग) 'रहते हुए' अर्थ में सप्तमी। कुतो धर्मक्रियाविघ्न. सता रक्षितरि त्वयि (तेरे रक्षक रहते हुए)। (घ) 'होने पर' या 'करने पर' अर्थ में सप्तमी। एव गते, तथाऽनुष्ठिते। (ङ) प्रधान और उपप्रधान वाक्यों मे कर्ता या कर्म एक ही हो तो उसे एक वाक्य के तुल्य मानना चाहिए, बीच में भावे सप्तमी नहीं करनी चाहिए। जैसे—'आगतेषु विप्रेषु तेभ्यो दक्षिणा देहि' न कहकर 'आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणा देहि' कहना चाहिए।

अभ्यास १२

संस्कृत बनाओ—(क) (अस्मद् शब्द) १. वह मुझ पर स्नेह करता है और विश्वास करता है। २. मेरी बात झूठी नहीं हो सकती है। ३. मेरी बात काटकर उसने कहना शुरू किया। ४. वह मुझे कुछ नहीं समझता। (ख) (तॄ, स्मृ, जि धातु) १ वह छोटी नौका से नदी पार करता है (तॄ)। २. छात्र नदी में तैर रहे हैं। ३ जल मे पत्ता तैर सकता है, न कि पत्थर। ४ धीर आपत्ति को पार करते हैं (तॄ)। ५ समुद्र मे जहाज के टूटने पर भी समुद्री व्यापारी तैरकर उसे पार करना चाहता है। ६. वह रथ से उतरा (अवतॄ)। ७. कृष्ण ने आकाश से उतरते हुए नारद को देखा। ८ समुद्र को छोड कर महानदी और कहाँ उतरती है? ९ राम परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ (उत्तॄ)। १०. वह गगा पार करके प्रयाग गया। ११ गुरु जिस प्रकार चतुर को विद्या पढ़ाता है, उसी प्रकार मूर्ख को। १२ भगवान् मारीच तुम्हें दर्शन देते है। १३ धन से मनुष्य आपत्ति को पार करते हैं (निस्तॄ)। १४ मैंने प्रतिज्ञारूपी नदी पार कर ली। १५ ग्रीष्म ऋतु में लोग नदी मे तैरते है। १६. क्या तुम्हें मधुर जलवाली गोदावरी की याद है? १७ क्या तुम्हें पति की याद आती है? १८ उसकी याद करके मुझे शान्ति नहीं है। १९ हे भौरे, तुम उसको कैसे भूल गए? २० महाराज की जय हो। २१. आपकी विजय हो। २२ उसने षड्वर्ग को जीत लिया। २३. उसकी आँख कमल को भी जीतती है। २४ वह शत्रुओं को हराता है (पराजि)। २५. वह पढाई से हार मानता है (पराजि)। (ग) (सप्तमी) १ इस मृग पर बाण न छोडना। २ वह मृगों पर बाण छोडता है। ३ अविश्वासी पर विश्वास न करे और विश्वासी पर भी अधिक विश्वास न करे। ४. गुरुओं के साथ विनयपूर्वक व्यवहार करे (वृत्)। ५. तू सपत्नियों के साथ प्रियसखी का व्यवहार करना। ६ राजा ने इसको रक्षा के काम में लगाया है। ७ विचित्रता के रहस्य के लोभी सहृदय इस काव्यमें श्रद्धा करेंगे। ८. सज्जन विद्वानों के गुणों की श्रद्धा करते हैं। ९ यह तुम्हारे योग्य नहीं है। १० ये गुण ईश्वर में ठीक घटते हैं। ११ सिपाही ने चोर को बाल पकड कर पटक दिया। १२. निरपराधी पर क्यों प्रहार कर रहे हो? १३ पुत्र पर कुटुम्ब का भार रखकर वह विदेश गया। १४ मैंने गुरु के प्रति अपराध किया है। १५ मेरे घर आने पर नौकर अपने घर गया। १६ रोते हुए पुत्रों को छोडकर वह सन्यासी हो गया। १७ जब वह पढ रहा था, उसी समय उसके पिता यहाँ आए।

सकेत—(क) १ स्निह्यति, विश्वसिति। २ न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति। ३ वचन-माक्षिप्य। ४. न मामथ गणयति। (ख) १ नदीं तरति। २ नद्याम्। ३ पर्णं तरिष्यति। ५ याते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सायात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव। ६. अवततार। ७ अवतरन्तमम्बरात्। ८ सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। ९ परीक्षामुदतरत्। १० उत्तीर्य। ११ वितरति गुरु प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे। १२ ते दर्शनं वितरति। १३ निस्तरन्ति। १४ निस्तीर्णा प्रतिज्ञासरित्। १५ निदाघे। १६ स्मरसि सुरसनीरा तत्र गोदावरी वा। १७ कच्चिद् भर्तुः स्मरसि। १८ त सस्मृत्य न मे शान्तिरस्ति। १९ विस्मृतोऽस्येना कथम्। २१ विजयते भवान्। २२ व्यजेष्ट। २३ विजयते। (ग) १ न सनिपात्य। २ मुञ्चति। ३ विश्वस्ते नाति विश्वसेत्। ४ गुरुषु। ६ रक्षणे। ७ वैचित्र्यरहस्यलुब्धा श्रद्धा विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र। ८. विद्वत्सु गुणान् श्रद्दधति। ११ केशेषु गृहीत्वाऽपानयत्। १२ अनागसि। १३ न्यस्य। १४ अपराद्धोऽस्मि गुरो। १७ पठति तस्मिन्।

शब्दकोष—३०० + २५ = ३२५] **अभ्यास १३** (व्याकरण)

(क) नाकः (स्वर्ग), सुर (देवता), असुरः (राक्षस), अच्युत. (विष्णु), त्र्यम्बकः (शिव), कृतान्त (यम), शतमन्यु (पु०, इन्द्र), कृशानु (पु०, अग्नि), पुष्पधन्वन् (कामदेव), मातरिश्वन् (वायु), मनुष्यधर्मन् (कुबेर), वेधस् (ब्रह्मा), प्रचेतस् (वरुण), सेनानीः (पु०, कार्तिकेय), लक्ष्मी (स्त्री०, लक्ष्मी), शर्वाणी (स्त्री०, पार्वती), पौलोमी (स्त्री०, इन्द्राणी), पवि (पु०, वज्र), पीयूषम् (अमृत), एकवाक्यम् (एक बात)। (२०)। (ग) एकत. (एक ओर से), एकधा (एक प्रकार से), एकैकशः (एक-एक करके), एकान्तत (सर्वथा)। (४)। (घ) एकमति (एक रायवाले)। (१)

व्याकरण (एक शब्द, एकवचनान्त शब्द, धा, ल्यट्, स्वरसन्धि)

१. एक शब्द के तीनों लिंगों मे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० स० ८९)

२ घ्रा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० स० १०)

नियम ९६—पात्र, आस्पद, स्थान, पद, भाजन, प्रमाण शब्द जब विधेय के रूप मे प्रयुक्त होंगे तो इनमें नपुसक लिंग एकवचन ही रहेगा। उद्देश्यरूप मे होंगे तो अन्य वचन भी होंगे। जैसे—गुणा पूजास्थान सन्ति। यूय मम कृपापात्र स्थ।

नियम ९७—(सख्याया विधार्थे धा) सभी सख्यावाचक शब्दों से 'प्रकार से' अर्थ मे 'धा' लगता है। 'प्रकार का' अर्थ मे 'विध', 'गुना' अर्थ मे 'गुण' तथा 'बार' अर्थ मे 'वारम्' लगता है। जैसे—एकधा, एकविधः, एकगुण, एकवारम्। द्विधा, द्विविध, द्विगुण.।

नियम ९८—(इको यणचि) इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र्, लृ को ल् हो जाता है, यदि बाद मे कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—इति + अत्र = इत्यत्र। मधु + अरि. = मध्वरि। धातृ + अश = धात्रश। लृ + आकृति. = लाकृति.।

नियम ९९—(एचोऽयवायाव) ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय्, औ को आव् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो नहीं)। जैसे—हरे + ए = हरये। विष्णो + ए = विष्णवे। नै + अक. = नायक। पौ + अक = पावक। परन्तु रामो + अयम् = रामोऽयम्।

नियम १००—(वान्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है, बाद मे यकारादि प्रत्यय हो तो। जैसे—गो + यम् = गव्यम्। नौ + यम् = नाव्यम्। यूति बाद मे होने पर गो के ओ को अव् होता है। गो + यूति = गव्यूति।

नियम १०१—(आद्गुण) अ या आ के बाद (१) इ या ई को ए, (२) उ या ऊ को ओ, (३) ऋ या ॠ को अर्, (४) लृ को अल् होता है। जैसे—रमा + ईश. = रमेश। पर + उपकार = परोपकार। महा + ऋषि = महर्षि। तव + लृकार. = तवल्कार। **सूचना**—दोनो वर्णों के स्थान पर एक आदेश होगा।

नियम १०२—(वृद्धिरेचि) अ या आ के बाद (१) ए या ऐ को ऐ, (२) ओ या औ को औ होता है। तदा + एक. = तदैक। राज + ऐश्वर्यम् = राजैश्वर्यम्। जल + ओघ = जलौघ.। देव + औदार्यम् = देवौदार्यम्। यह भी एकादेश है।

नियम १०३—(एङ पदान्तादति) पद के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसे पूर्वरूप (ए या ओ) हो जाता है। हरे + अव = हरेऽव। विष्णो + अव = विष्णोऽव

अभ्यास १३

संस्कृत बनाओ—(क) (एक शब्द) १ राजा या सन्यासी एक को मित्र बनावे। २ एक निवासस्थान बनावे, नगर या वन में। ३ बाह्यविषयों से निवृत्त और एकाग्र-चित्त मनुष्य तत्त्व को देख पाता है। ४ दो चित्तों के एक होने पर क्या असम्भव हो सकता है? ५ गुण-समूह में एक दोष उसी प्रकार छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलङ्क। (ख) (एक, एकवचनान्त शब्द) १ एक वन मे एक शेर रहता था। २ इस स्त्री के दो बच्चे हैं, एक लडका और एक लडकी। ३ एक पढने मे चतुर है, दूसरी गाने में दक्ष है। ४ एक बालक को पुस्तक दो और एक लडकी को फूल दो। ५ एक बालक एक बालिका से बात कर रहा है। ६ युद्धभूमि मे एक ओर से एक सेना आई और दूसरी ओर से दूसरी सेना आई। ७ कक्षा से एक-एक करके सब छात्र चले गये। ८ मैं इस प्रश्न को एक प्रकार से हल कर सकता हूँ, परन्तु अध्यापक इसे दो प्रकार से हल कर सकता है। ९. जनता की एक राय थी, उन्होंने राजा के सम्मुख एक बात कही। १०. किसको सदा सुख मिला है और किसको सदा दुःख? ११ कुछ लोग ऐसा मानते हैं। १२ गुण पूजा के स्थान है। १३ तुम कृपा के पात्र हो। १४ आप इस विषय मे प्रमाण हैं। (ग) (देववर्ग) १. देवता स्वर्ग मे रहते हैं। २. देवो और असुरों का युद्ध हुआ। ३ इन्द्र ने वज्र से असुरो को नष्ट किया। ४. देवता अमृत पीकर अमर हो गये। ५ इन्द्र ने इन्द्राणी को, शिव ने पार्वती को और विष्णु ने लक्ष्मी को पत्नी के रूप मे स्वीकार किया। ६ कुबेर धनाधिपति हैं, उसकी नगरी अलका है और उसका विमान पुष्पक है। ७ विष्णु का शख पाचजन्य, चक्र सुदर्शन, गदा कौमोदकी, खड्ग नन्दक और मणि कौस्तुभ हैं। ८. इन्द्र की नगरी अमरावती, घोडा उच्चैःश्रवा, हाथी ऐरावत, सारथि मातलि, उपवन नन्दन और पुत्र जयन्त हैं। ९ ब्रह्मा सृष्टि-कर्ता है। १०. वरुण जलपति है। ११ यम जीवो के प्राणों को हरता है। १२ अग्नि वन को जलाती है। १३ वायु अग्नि का मित्र होकर उसे बढाता है। १४ कामदेव दम्पती में स्नेह का सचार करता है। १५. बालकों ने फूल सूँघा। १६ मैं फल सूँघूँगा। (घ) (लिट् का प्रयोग करो) १. सभासद् अपने स्थानों को गये। २. वह कहानी समाप्त हुई। ३. राम के सारे प्रयत्न सफल हुए और देवदत्त के विफल। ४ उसकी लडकी का नाम उमा पड़ा। ५ वसुदेव का पुत्र कृष्ण नाम से ससार में प्रसिद्ध हुआ। ६ पार्वती हिमालय की चोटी पर गई। ७. स्वायम्भुव मरीचि से कश्यप हुए। ८. पार्वती ने हृदय से अपने रूप की निन्दा की, क्योंकि मदन के दाह के कारण वह रूप से शिव को नहीं जीत सकती थी।

सकेत—(क) १ एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा। २. एको वासः पत्तने वा वने वा। ३ एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते। ४ एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिह। ५ एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः। (ख) २ अपत्यद्वयम्। ३ गाने। ६ अपरत। ८ साधयितुं शक्नोमि। ९ एकवाक्यं विवव्रुः। १० कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। ११ एके एवं मन्यन्ते। (ग) २ युयुधिरे। ३ जघान। ४ बभूवुः। ५ स्वीचक्रुः। (घ) १. प्रतिजग्मुः। २ विच्छेदमाप स कथाप्रबन्धः। ३ सफलतां ययुः। ४ उमाख्यां जगाम। ५ भुवि पप्रथे। ६ शिखरं जगाम। ७ प्रबभूव। ८ रूपं निनिन्द, न जेतुं शशाक।

शब्दकोष—३०० + २५ = ३२५] अभ्यास १२ (व्याकरण)

(क) नाक: (स्वर्ग), सुर (देवता), असुर. (राक्षस), अच्युत. (विष्णु), त्र्यम्बक: (शिव), कृतान्त. (यम), शतमन्यु (पु०, इन्द्र), कृशानु (पु०, अग्नि), पुष्पधन्वन् (कामदेव), मातरिश्वन् (वायु), मनुष्यधर्मन् (कुबेर), वेधस् (ब्रह्मा), प्रचेतस् (वरुण), सेनानी: (पु०, कार्तिकेय), लक्ष्मी (स्त्री०, लक्ष्मी), शर्वाणी (स्त्री०, पार्वती), पौलोमी (स्त्री०, इन्द्राणी), पवि. (पु०, वज्र), पीयूषम् (अमृत), एकवाक्यम् (एक बात)। (२०)। (ख) एकत. (एक ओर से), एकधा (एक प्रकार से), एकैकश. (एक-एक करके), एकान्तत. (सर्वथा)। (४)। (घ) एकमति (एक रायवाले)। (१)

व्याकरण (एक शब्द, एकवचनान्त शब्द, घ्रा, लिट्, स्वरसन्धि)

१ एक शब्द के तीनो लिंगो मे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० स० ८९)

२ घ्रा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० स० १०)

नियम ९६—पात्र, आस्पद, स्थान, पद, भाजन, प्रमाण शब्द जब विधेय के रूप मे प्रयुक्त होगे तो इनमे नपुसक लिंग एकवचन ही रहेगा। उद्देश्यरूप मे होंगे तो अन्य वचन भी होंगे। जैसे—गुणा. पूजास्थान सन्ति। यूय मम कृपापात्र स्थ।

नियम ९७—(सख्याया विधार्थे धा) सभी सख्यावाचक शब्दो से 'प्रकार से' अर्थ मे 'धा' लगता है। 'प्रकार का' अर्थ मे 'विध', 'गुना' अर्थ में 'गुण' तथा 'बार' अर्थ मे 'वारम्' लगता है। जैसे—एकधा, एकविध., एकगुण., एकवारम्। द्विधा, द्विविध:, द्विगुण.।

नियम ९८—(इको यणचि) इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र्, ऌ को ल् हो जाता है, यदि बाद मे कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—इति + अत्र = इत्यत्र। मधु + अरि. = मध्वरि:। धातृ + अश = धात्रश.। ऌ + आकृति = लाकृति'।

नियम ९९—(एचोऽयवायाव.) ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय्, औ को आव् हो जाता है, बाद मे कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो नहीं)। जैसे—हरे + ए = हरये। विष्णो + ए = विष्णवे। नै + अक. = नायक। पो + अक. = पावक:। परन्तु रामो + अयम् = रामोऽयम्।

नियम १००—(वान्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है, बाद मे यकारादि प्रत्यय हो तो। जैसे—गो + यम् = गव्यम। नौ + यम् = नाव्यम्। यूति बाद मे होने पर गो के ओ को अव् होता है। गो + यूति' = गव्यूति.।

नियम १०१—(आद्गुण) अ या आ के बाद (१) इ या ई को ए, (२) उ ऊ को ओ, (३) ऋ या ॠ को अर्, (४) ऌ को अल् होता है। जैसे—रमा + ईश. = । पर + उपकार = परोपकार.। महा + ऋषि = महर्षि। तव + ऌकार. = ल्कार। **सूचना**—दोनो वर्णो के स्थान पर एक आदेश होगा।

नियम १०२—(वृद्धिरेचि) अ या आ के बाद (१) ए या ऐ को ऐ, (२) या औ को औ होता है। तदा + एक = तदैक। राज + ऐश्वर्यम् = राजैश्वर्यम्। + = जलौघ.। देव + औदार्यम् + देवौदार्यम्। यह भी एकादेश है।

१०३—(एङ पदान्तादति) पद के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसे या ओ) हो जाता है। हरे + अव = हरेऽव। विष्णो + अव = विष्णोऽव।

अभ्यास १३

संस्कृत बनाओ—(क) (एक शब्द) १ राजा या सन्यासी एक को मित्र बनावे। २ एक निवासस्थान बनावे, नगर या वन मे। ३ बाह्यविषयों से निवृत्त और एकाग्र-चित्त मनुष्य तत्त्व को देख पाता है। ४ दो चित्तों के एक होने पर क्या असम्भव हो सकता है? ५ गुण-समूह में एक दोष उसी प्रकार छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा की किरणो मे उसका कलक। (ख) (एक, एकवचनान्त शब्द) १. एक वन मे एक शेर रहता था। २ इस स्त्री के दो बच्चे हैं, एक लडका ओर एक लडकी। ३. एक पढने मे चतुर है, दूसरी गाने में दक्ष है। ४ एक बालक को पुस्तक दो और एक लडकी को फूल दो। ५ एक बालक एक बालिका से बात कर रहा है। ६ युद्धभूमि मे एक ओर से एक सेना आई और दूसरी ओर से दूसरी सेना आई। ७ कक्षा से एक-एक करके सब छात्र चले गये। ८ मै इस प्रश्न को एक प्रकार से हल कर सकता हूँ, परन्तु अध्यापक इसे दो प्रकार से हल कर सकता है। ९. जनता की एक राय थी, उन्होंने राजा के सम्मुख एक बात कही। १०. किसको सदा सुख मिला है और किसको सदा दुःख? ११ कुछ लोग ऐसा मानते है। १२. गुण पूजा के स्थान है। १३. तुम कृपा के पात्र हो। १४ आप इस विषय मे प्रमाण है। (ग) (देववर्ग) १. देवता स्वर्ग में रहते हैं। २. देवों और असुरों का युद्ध हुआ। ३ इन्द्र ने वज्र से असुरो को नष्ट किया। ४ देवता अमृत पीकर अमर हो गये। ५. इन्द्र ने इन्द्राणी को, शिव ने पार्वती को और विष्णु ने लक्ष्मी को पत्नी के रूप मे स्वीकार किया। ६ कुबेर धनाधिपति हैं, उसकी नगरी अलका है और उसका विमान पुष्पक है। ७. विष्णु का शख पाञ्चजन्य, चक्र सुदर्शन, गदा कौमोदकी, खड्ग नन्दक और मणि कौस्तुभ है। ८ इन्द्र की नगरी अमरावती, घोडा उच्चैःश्रवाः, हाथी ऐरावत, सारथि मातलि, उपवन नन्दन और पुत्र जयन्त हैं। ९ ब्रह्मा सृष्टि-कर्ता है। १० वरुण जलपति है। ११. यम जीवो के प्राणों को हरता है। १२ अग्नि वन को जलाती है। १३. वायु अग्नि का मित्र होकर उसे बढाता है। १४. कामदेव दम्पती मे स्नेह का सचार करता है। १५ बालकों ने फूल सूँघा। १६ मै फल सूँघूँगा। (घ) (लिट् का प्रयोग करो) १ सभासद् अपने स्थानो को गये। २. वह कहानी समाप्त हुई। ३. राम के सारे प्रयत्न सफल हुए और देवदत्त के विफल। ४. उसकी लडकी का नाम उमा पडा। ५ वसुदेव का पुत्र कृष्ण नाम से ससार में प्रसिद्ध हुआ। ६. पार्वती हिमालय की चोटी पर गई। ७. स्वायम्भुव मरीचि से कश्यप हुए। ८ पार्वती ने हृदय से अपने रूप की निन्दा की, क्योंकि मदन के दाह के कारण वह रूप से शिव को नहीं जीत सकती थी।

सकेत—(क) १ एक मित्र भूपतिर्वा यतिर्वा। २ एको वास पत्तने वा वने वा। ३ एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते। ४ एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्य भवेदिह। ५ एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्क। (ख) २ अपत्यद्वयम्। ३ गाने। ६ अपरत-। ८ साधयितु शक्नोमि। ९ एकवाक्य विवत्रु। १० कस्यैकान्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा। ११ एके एव मन्यन्ते। (ग) २ युयुधिरे। ३ जघान। ४ बभूवु। ५ स्वीचक्रु। (घ) १ प्रतिजग्मु। २ विच्छेदमाप स कथाप्रबन्ध। ३ सफलता ययु। ४ उमाख्या जगाम। ५ भुवि पप्रथे। ६ शिखर जगाम। ७ प्रबभूव। ८ रूप निनिन्द, न जेतु शशाक।

शब्दकोष—३२५ + २५ = ३५०] **अभ्यास १४** (व्याकरण)

(क) पाठशाला (पाठशाला), विद्यालयः (स्कूल), महाविद्यालय (कालेज), विश्वविद्यालयः (यूनिवर्सिटी), अध्यापकः (अध्यापक), प्राध्यापकः (प्रोफेसर), आचार्य (प्रिन्सिपल), कुलपतिः (पु०, वाइस-चान्सलर), कुलाधिपति (पु०, चान्सलर), प्रस्तोतृ (रजिस्ट्रार), अन्तेवासिन् (शिष्य), अध्येतृ (छात्र), अध्येत्री (स्त्री०, छात्रा), सतीर्थ्यः (सहाध्यायी, कक्षा का साथी), विद्यालय-निरीक्षकः (स्कूल-इन्स्पेक्टर), उप-शिक्षासञ्चालकः (एडिशनल डाइरेक्टर, A D E), शिक्षा सञ्चालकः (डाइरेक्टर, D. E), करणिकः (क्लर्क), प्रधानकरणिक (हेड क्लर्क), द्विजाति (पु०, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), द्विजिह्वः (१. साँप, २ चुगलखोर), द्विपाद् (मनुष्य)। (२३)। (ग) द्विधा (दो प्रकार से)। (१)। (घ) द्वित्राः (दो तीन)। (१)।

व्याकरण (द्वि शब्द, द्विवचनान्त शब्द, कृप्, वस्, लिट्, स्वरसन्धि)

१. द्वि शब्द के तीनों लिंगों में रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ९०)

२ कृप् और वस् धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० १७, १८)

नियम १०४—द्वि और उभ शब्द सदा द्विवचन मे ही आते हैं। उभय (दोनो) शब्द तीनो वचनों में आता है। (उभ और उभय के रूप तीनों लिंगो मे सर्ववत् होंगे)।

नियम १०५—(क) दम्पती, पितरौ, अश्विनौ, इनके रूप द्विवचन में ही चलते हैं। इनके साथ क्रिया द्विवचन मे आती है। दम्पती, पितरौ, अश्विनौ वा गच्छतः। (ख) द्वय, युगल, युग, द्वन्द्व, ये चारो 'दो' अर्थ के बोधक है। ये शब्द के अन्त में जुडते हैं और नपुसक लिग एकवचन होते हैं। इनके साथ क्रिया एक० मे रहती है। जैसे—छात्रद्वय, छात्रयुगल, छात्रयुग (छात्रद्वयी वा) पुस्तकानि पठति। (ग) हस्तौ, नेत्रे, पादौ, कर्णौ आदि द्विवचन मे ही प्रयुक्त होते हैं।

नियम १०६—(एत्येधत्यूठ्सु) अ के बाद एकारादि इ और एध् धातु या ऊठ् (ऊ) हो तो दोनों की वृद्धि होती है। अ + ए = ऐ, अ + ऊ = औ। उप + एति = उपैति। उप + एधते = उपैधते। विश्व + ऊहः = विश्वौहः।

नियम १०७—(एङि पररूपम्) उपसर्ग के अ के बाद धातु का ए या ओ हो तो वहाँ ए या ओ ही रहता है। प्र + एजते = प्रेजते। उप + ओषति = उपोषति।

नियम १०८—(शकन्ध्वादिषु पररूप वाच्यम्) शकन्धु आदि में टि (अन्तिम स्वरसहित अंश) को पररूप होता है। शक + अन्धुः = शकन्धुः। मनस् + ईषा = मनीषा।

नियम १०९—(ओमाङोश्च) अ के बाद ओम् या आङ् (आ) हो तो पररूप अर्थात् ओम् या आ रहता है। शिवाय + ओंनमः = शिवायोंनमः। शिव + एहि = शिवेहि।

नियम ११०—(अकः सवर्णे दीर्घः) (१) अ या आ + अ या आ = आ, (२) इ या ई + इ या ई = ई, (३) उ या ऊ + उ या ऊ = ऊ, (४) ऋ + ऋ = ॠ। विद्या + आलयः = विद्यालयः। गिरि + ईशः = गिरीशः। गुरु + उपदेशः = गुरूपदेशः। होतृ + ऋकार = होतॄकारः।

नियम १११—(ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्यम्) द्विवचन के ई, ऊ और ए के साथ कोई सन्धि नही होती। हरी + एतौ = हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू। पचेते इमौ।

नियम ११२—(अदसो मात्) अदस् के म् के बाद ई या ऊ होंगे तो उनके साथ कोई सन्धि नहीं होगी। अमी + ईशाः = अमी ईशाः। अमू आसाते।

अभ्यास १४

संस्कृत बनाओ—(क) (द्वि शब्द) १. फूल के गुच्छे की तरह मनस्वियो की दो गति होती है, या तो सबके सिर पर रहेगे या वन मे ही झड जायँगे। २. व्यास का कथन है कि इन दो को गले मे भारी शिला बाँधकर जल में फेंक देना चाहिए, धनी जो दान न दे और निर्धन जो तपस्वी न हो। ३. ये दोनो पुरुष शिर दर्द करनेवाले होते हैं, गृहस्थी निकम्मा हो और सन्यासी सपत्नीक हो। ४. ये दोनों कभी सुखी नहीं होते, निर्धन महत्त्वाकांक्षी और दरिद्र होकर क्रोधी। ५. शत्रु मिलने पर जलाता है, मित्र वियोग के समय। दोनो ही दु खदायी हैं, शत्रु मित्र मे क्या अन्तर है? ६. शिव से मिलने की इच्छा से दो चीजें शोक-योग्य हो गई हैं, चन्द्रमा की कान्तिमयी कला और ससार के नेत्र की कौमुदी पार्वती। ७ राम एक बार ही कहता है, दुबारा नहीं। ८ मैं जगत् के माता-पिता शिव-पार्वती को नमस्कार करता हूँ। ९. दम्पती सुख से बढ रहे हैं। १०. अश्विनीकुमार ध्यान दें। ११. अपने हाथ, पैर, मुँह, आँख, कान धोओ। १२. दो ब्राह्मण दो प्रकार से दो मन्त्रों को पढते हैं। १३. दो-तीन चुगलखोर इस कक्षा मे हैं। (ख) (कृष्, वस्) १ कृषक हल से खेत जोतता है। २. शेर ने बलात् गाय को खींच लिया। ३. सीधे जुते खेत को उल्टा जोतता है। ४. बलवान् इन्द्रिय-समूह विद्वान् को भी अपनी ओर खींच लेता है। ५. वह दो वर्ष वन में रहा। ६. सम्पत्ति और कीर्ति चतुर में रहती हैं, आलसी में नहीं। ७. गुण प्रेम में रहते हैं, वस्तु में नहीं। (ग) (लिट् का प्रयोग करो) १. पार्वती मन की बात न कह सकी। २ पार्वती न चल सकी, न रुक सकी। ३. शिव ने उसको सहारा दिया। ४ रानी ने आँखें बन्द कर लीं। ५. वह इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। ६. पार्वती ने वल्कल बाँधा। ७ मृग उस पर विश्वास करते थे। ८. वह वन पवित्र हो गया। ९. उसने कठोर तप करना प्रारम्भ किया। १०. वह गेंद खेलने से थक जाती थी। ११. उसके मुख ने कमल की शोभा धारण की। १२. एक तपस्वी तपोवन में आया। १३. उसने कहना शुरू किया। १४. जल की बूँद भूमि पर पहुँचीं। (घ) (विद्यालयवर्ग) १. अध्यापक, प्रोफेसर और आचार्य अपने शिष्यों और शिष्याओं को प्रेम से पढाते हैं। २ कुछ छात्र और छात्राएँ पाठशाला मे पढते हैं, कुछ स्कूल में, कुछ कालेज में और कुछ युनिवर्सिटी मे। ३. रजिस्ट्रार परीक्षाओं का टाइम टेबुल बनाता है और परीक्षाओं का फल घोषित करता है। ४. इन्स्पेक्टर स्कूलों और कालेजों का निरीक्षण करते हैं। ५. हेडक्लर्क टाइप-राइटर से टाइप कर रहा है।

सकेत—(क) १ कुसुमस्तवकस्येव द्वे गती विशीर्यन्ते। २ दृढा बद्ध्वा क्षेप्यौ, धनिन चाप्रदातारम्। ३ शिर शूलकरौ, निरारम्भ, सपरिग्रह। ४ यश्चाधन कामयते, यश्च कुप्यत्यनीश्वर.। ५ सयोगे। ६ समागमप्रार्थनया द्वय शोचनीयता गतम्। नेत्रकौमुदी। ७ द्विर्नाभिभाषते। ८ पितरौ, वन्दे। ९ सुखमेधेते। १०. दत्ताम्। ११ हस्तौ, प्रक्षालय। १२ द्विजातिद्वयम्। (ख) १. क्षेत्र कर्षति। २ प्रसह्य गा चकर्ष। ३ अनुलोमकृष्ट प्रतिलोम०। ४ कर्षति। ५ वनमध्युवास। ६ नालसे। ७. प्रेम्णि। (ग) १. मनोगत सा न शशाक शसितुम्। २. न ययौ न तस्थौ। ३ समालम्बे। ४ निमिमील। ५ पप्रथे। ६ बबन्ध। ७ विशश्वसु। ८ बभूव। ९ तपश्चरितु प्रचक्रमे। १० क्लम ययौ। ११ कमलश्रिय दधौ। १२. तपोवन विवेश। १३. वक्तु प्रचक्रमे। १४ भुव प्रपेदिरे। (घ) १ अध्यापयन्ति। २ कतिपये। ३ समय-सारणीम्। ५ टङ्कणयन्त्रेण टङ्कयति।

शब्दकोष—३५० + २५ = ३७५] अभ्यास १५ (व्याकरण)

(क) कलम. (कलम), लेखनी (होल्डर), धारालेखनी (स्त्री०, फाउण्टेन पेन), तूलिका (पेंसिल), मसीतूलिका (डॉट पेन), कठिनी (स्त्री०, चाक), लेखनीमुखम् (निब), पट्टिका (पट्टी), अश्मपट्टिका (स्लेट), कागदः (कागज), कागद दस्तकः (दस्ता), कागद-रीमक. (कागज का रीम), सञ्चिका (कापी), पञ्जिका (रजिस्टर), पत्रसञ्चयनी (स्त्री०, फाइल), प्रावरणम् (जिल्द), वेष्टनम् (बस्ता), श्यामफलक. (ब्लैकबोर्ड), मार्जक. (डस्टर), मसीशोष. (ब्लाटिंग पेपर), घर्षक (रबड), पाठ्यपुस्तकम् (पाठ्यपुस्तक)। (२२)। (ख) साध् (हल करना)। (१)। (ग) कति (कितने), रुचिरम् (सुन्दर)। (२)

व्याकरण (त्रिशब्द, नित्य बहु० शब्द, त्यज्, लुङ्, व्यंजन सन्धि)

१ त्रि शब्द के तीनो लिंगो मे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ९१)

२ त्यज् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० १९)

नियम ११३—(क) दार, अक्षत, लाज (लाजा), असु, प्राण, इनके रूप पुंलिंग में और बहुवचन मे ही चलते है। (ख) अप्, अप्सरस्, वर्षा, सिकता, समा, सुमनस्, इनके रूप स्त्रीलिंग में और बहुवचन में ही चलते हैं। (अप्सरस्, वर्षा, समा, सुमनस् इनका कहीं-कही एकवचन में भी प्रयोग मिलता है)। दाराः (स्त्री), अक्षताः (अक्षत चावल), लाजाः (खील), असवः (प्राण), प्राणाः (प्राण), आप. (जल), अप्सरसः (अप्सरा), वर्षा. (वर्षा), सिकता. (रेत), समाः (वर्ष), सुमनसः (फूल)।

नियम ११४—त्रि से अष्टादशन् (३ से १८) तक के सारे शब्द तथा कति शब्द सदा बहुवचन में ही आते हैं। एक० = एकवचन, द्वि० = द्विवचन, बहु० = बहुवचन।

नियम ११५—(क) (आदरार्थे बहुवचनम्) आदर प्रकट करने में एक के लिए भी बहु० हो जाता है। गुरव' पूज्याः। (ख) (अस्मदो द्वयोश्च) अस्मद् शब्द के एक० और द्वि० (अहम्, आवाम्) के स्थान पर बहुवचन (वयम्) का प्रयोग होता है, यदि वक्ता विशिष्ट व्यक्ति हो तो। वयं ब्रूम.। (ग) (जात्याख्यायाम्०) जातिवाचक शब्दों में एक० और बहु० दोनों होते हैं। ब्राह्मणः पूज्य., ब्राह्मणा. पूज्याः। (घ) देशवाचक शब्दों में बहु० का प्रयोग होता है। 'नगर' या 'देश' अन्त मे होने पर एक० होगा। अहम् अङ्गान् बङ्गान् कलिङ्गान् विदर्भान् गौडान् वा अगच्छम्। पाटलिपुत्रम् अङ्गदेशं वा अगच्छम्। (ङ) वंश का बोध कराने में बहु०। कुरूणाम्, रघूणाम्।

नियम ११६—(स्तोः श्चुना श्चुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् और तवर्ग को क्रमशः श् और चवर्ग हो जाता है। स् को श्, त् को च्, द् को ज्, न् को ञ् होगा। रामश्च। सच्चित्। सज्जन.।

नियम ११७—(ष्टुना ष्टुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् और तवर्ग को क्रमश. ष् और टवर्ग होता है। स् को ष्, त् को ट्, द् को ड्, न् को ण् होगा। इष् + त. = इष्ट। उड्डीन.। विष्णुः।

नियम ११८—(झलां जशोऽन्ते) झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग का तृतीय अक्षर) होता है, झल् पद के अन्तिम अक्षर हों तो। जगत् + ईश. = जगदीशः। उद्देश्यम्। अच् + अन्त. = अजन्त.।

नियम ११९—(झलां जश् झशि) झल् को जश् होता है, बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हों तो। बुध् + धिः = बुद्धिः। क्षुभ् + धः = क्षुब्धः। दध् + धः = दग्धः। वृद्धि.। शुद्धिः। सिद्धिः।

अभ्यास १५

संस्कृत बनाओ :—(क) (त्रिशब्द, बहुवचनान्त शब्द) १. दान, भोग और नाश ये धन की तीन गतियाँ होती हैं, जो न देता है और न भोगता है, उसकी तीसरी गति होती है। २. तीन अग्नियाँ हैं, तीन वेद हैं, तीन देव हैं, तीन गुण हैं। तीन दण्डी के ग्रन्थ हैं और वे तीनो लोको में प्रसिद्ध हैं। ३ त्रैलोक्य मे धर्म दीपक के तुल्य है। ४ तीन प्रकार के पुरुष हैं, उत्तम, मध्यम और अधम। उनको उसी प्रकार तीन प्रकार के कार्मो मे लगावे। ५. वृक्ष और पर्वत में क्या अन्तर रहेगा, यदि वायु चलने पर दोनों ही चञ्चल हो जाएँ ? ६ तीन ही लोक हैं, तीन ही आश्रम हैं। ७. तीन प्रियाओं से वह राजा शोभित हुआ। ८ तीन दिन मेरे आने की प्रतीक्षा करना।,९ सीता राम की स्त्री थीं। १० परस्त्री को न देखे। ११. अक्षत और खील यहाँ लाओ। १२. वर्षा में रेत पर जल शोभित होता है। १३. इन फूलों को देखो। दशरथ ने प्राणों को छोड़ा। १५ गुरुजी मेरे घर पधारे। १६. हम कहते है कि सत्यभाषण से ही तुम्हारा उद्धार होगा। १७. मैं कुरुवंशियों और रघुवंशियों के वश का वर्णन करूँगा। १८. वह भारत-दर्शन के लिए अग, वग, कलिग, विदर्भ और पाचाल को गया। १९. इस कक्षा में कितने विद्यार्थी हैं ? २० इस कक्षा में सोलह छात्र हैं। (त्यज् धातु) २१. यति गृह को छोडता है। २२. घोडे के मार्ग को छोड दो। २३. राम ने सीता को छोड दिया। २४ ऋषि लोग योग से शरीर को छोडेंगे। २५. राम ने रावण पर बाण छोडा। २६. धर्म की मर्यादा को क्लेश की दशा में होकर भी न छोडे। २७. मानी लोग हर्ष से अपने प्राण और सुख छोड़ देते हैं, पर न माँगने के व्रत को नहीं छोडते। **(ख)** (लुङ् लकार) १ दुःख मत करो। २. कुत्ते से मत डरो। ३. शोक न करो। ४ कुकर्म मत करो। ५. स्वार्थपरायण मत हो। ६. अपना उत्साह मत छोडो। ७. माँ ने बच्चे को एक स्लेट, एक पेन्सिल, एक कापी और एक चाक दी। ८ बच्चे ने स्लेट पर चाक से लेख लिखा, पाठ पढ़ा और होल्डर से कापी पर सुलेख लिखा। ९. राम ने अपना फाउण्टेनपेन पाँच रुपये में मुझे बेचा और मैंने उससे खरीदा। **(ग)** (लेखनसामग्री) १ डॉट पेन में स्याही भरने की आवश्यकता नहीं होती। २ मैं दुकान से एक रीम और चार दस्ते कागज लाया। उसके साथ ही एक रजिस्टर, एक फाइल, एक निब और एक रबड लाया। ३ यदि कापी पर स्याही गिर जाए तो ब्लाटिंग पेपर या चाक से सुखा लो। ४. वह अपनी पाठ्यपुस्तक पढता है और गणित के प्रश्नों को हल करता है। ५. डस्टर से ब्लैकबोर्ड को पोंछो।

सकेत —(क) १ तिस्रो गतय, भुङ्क्ते, तृतीया। २ दण्डिप्रबन्धा, विश्रुता। ३ दीपको धर्म। ४ त्रिविधा, त्रिविधेषु, नियोजयेत्। ५ द्रुमसानुमतो यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चला। ७ तिसृभि, बभौ। ८ प्रतीक्षेथा। ९ दारा। १० परदारान्। ११ अक्षतान्, लाजान्। १२ सिकतासु, आप। १३ इमा सुमनस। १४ असून्, प्राणान् तत्याज। १७ कुरूणा, रघूणा चान्वय वक्ष्ये। २५ अत्याक्षीत्। २६ अपि क्लेशदशा श्रित। २७ त्यजन्त्यसून् शर्म च मानिनो वर, त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्। (ख) १ विषाद मा गा। २ शुनो मा भैषी। ३ शुचो वश मा गम। ४ मा कार्षी। ५ मा भू। ६ उत्साहभङ्ग मा कृथा। ७ अदात्। ८ अलेखीत्, अपठीत्। ९ मह्य रूप्यकपञ्चकेन व्यक्रेष्ट, अक्रैषम्। (ग) १ मसीपूरणस्य। २ आपणात्, तत्सार्धमेव। ३ पतति चेत्, शोषय। ४ साधयति। ५ मार्जय।

शब्दकोष—३७५ + २५ = ४००] अभ्यास १६ (व्याकरण)

(क) काष्ठा (दिशा), प्राची (स्त्री०, पूर्व), प्रतीची (स्त्री०, पश्चिम), उदीची (स्त्री०, उत्तर), दक्षिणा (दक्षिण), घटिका (घड़ी), वेला (समय), होरा (घण्टा), कला (मिनट), विकला (सेकण्ड), वादनम् (बजे), पूर्वाह्णः (दो पहर से पहले का समय, a.m.) पराह्णः (दोपहर से बाद का समय, p. m), प्रत्यूषः (प्रातः), मध्याह्नः (दोपहर), अपराह्णः (तीसरा पहर), प्रदोषः (सूर्यास्त समय), दिवसः (दिन), विभावरी (स्त्री०, रात), निशीथः (आधीरात), निदाघ (ग्रीष्म ऋतु), प्रावृष् (वर्षाकाल)। (२२)। (ग) दिवा (दिन में), नक्तम् (रात में), रात्रिन्दिवम् (दिन-रात)। (३)

व्याकरण (चतुर् शब्द, याच्, लुङ्, व्यञ्जन सन्धि)

१. चतुर् शब्द के तीनों लिंगों में रूप स्मरण करो। (देखो शब्द सं० ९२)

२. याच् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २९)

नियम १२०—(यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा) पदान्त यर् (ह् के अतिरिक्त सभी व्यञ्जन) के बाद अनुनासिक (वर्ग का पञ्चम अक्षर) हो तो यर् को अपने वर्ग का पञ्चम अक्षर हो जायगा। यह नियम ऐच्छिक है। तत् + न = तन्न। तद् + मयम् = तन्मयम्। वाक् + मयम् = वाङ्मयम्। सद् + मतिः = सन्मतिः।

नियम १२१—(तोलि) तवर्ग के बाद ल हो तो तवर्ग को भी ल् हो जाता है। अर्थात् (१) त् या द् + ल = ल्ल, (२) न् + ल = ँल्ल। तत् + लीनः = तल्लीनः। विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति।

नियम १२२—(उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) उद् के बाद स्था या स्तम्भ् धातु हो तो उसे पूर्वसवर्ण होता है। उद् + स्थानम् = उत्थानम्। उद् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्।

नियम १२३—(झयो होऽन्यतरस्याम्) झय् (वर्ग के १,२,३,४) के बाद ह हो तो उसे विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है। वाग् + हरिः = वाग्घरिः। तद् + हितः = तद्धितः।

नियम १२४—(शश्छोऽटि) पदान्त झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद श् हो तो उसे छ हो जाता है, यदि उस श् के बाद अट् (स्वर,ह,य,व,र) हो तो। नियम ११६ से छ के पूर्ववर्ती त् को च्। तत् + शिवः = तच्छिवः। सत् + शील. = सच्छील।

नियम १२५—(खरि च) झलों (१, २, ३, ४) को चर् (१, उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं, बाद में खर् (१, २, श ष स) हो तो। सद् + कार. = सत्कारः। तद् + पर. = तत्पर.। सद् + पुत्रः = सत्पुत्रः।

नियम १२६—(मोऽनुस्वार.) पदान्त म् के बाद हल् (व्यञ्जन) हो तो म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है। बाद में स्वर हो तो नहीं। कार्यम् + कुरु = कार्यं कुरु। सत्यं वद। धर्मं चर।

नियम १२७—(नश्चापदान्तस्य झलि) अपदान्त न् म् को अनुस्वार हो जाता है, बाद में झल् (१,२,३,४, ऊष्म) हो तो। यशान् + सि = यशांसि। पुम् + सु = पुंसु।

नियम १२८—(अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) अनुस्वार के बाद यय् (ऊष्म को छोड़कर सभी व्यञ्जन) हो तो उसे परसवर्ण (अगले वर्ण का पञ्चम अक्षर) होता है। शां + तः = शान्तः। अं + कः = अङ्कः।

नियम १२९—(ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्) ह्रस्व स्वर के बाद ङ् ण् न् हों और बाद में कोई स्वर हो तो बीच में एक ङ् ण् न् और लग जाता है। प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्णीशः। सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः।

अभ्यास १६

संस्कृत बनाओ:—(क) (चतुर् शब्द) १ हम चार भाई ऋत्विज् हैं, युधिष्ठिर यजमान है और भगवान् कृष्ण कर्मोपदेष्टा है। २. चार अवस्थाएँ हैं—बाल्य, कौमार यौवन और वार्धक। ३ ब्रह्मरूपी वृषभ के चार सींग और तीन पैर हैं। ४. शेष चार महीने जैसे भी हो आँख बन्द करके बिताओ। ५. आय के चौथे अंश से खर्च चलावे। अधिक तेलवाला दीपक चिरकाल तक सुख देखता है। ६. गुरु-सेवा से विद्या मिलती है अथवा प्रचुर धन से या विद्या से विद्या प्राप्त होती है, अन्य चौथे किसी उपाय से नहीं। ७ हे युधिष्ठिर, मेरे चार प्रश्नों को बता। (याच् धातु) ८. राजा से धन माँगता है। ९. बलि से भूमि माँगता है। १० पार्वती ने पिता से तप.समाधि के लिए अरण्य-निवास की माँग की। ११ उसने पिता से माँग की कि उसे न छोड़ें। १२. तिनके से भी हलकी रूई होती है और रूई से भी हलका माँगनेवाला होता है। **(ख)** (लुङ् का प्रयोग करो) १. मैं सुख से सोया। २ उसने कहा कि बहुत दिन मेरी यहाँ रहने की इच्छा है। ३. वह बोली—मैं तुम्हारे कहने में हूँ। ४ वह तपस्या के लिए वन में गया। ५. वह घर से निकल पड़ा। ६. उसने चपरासी को अन्दर आता हुआ देखा। ७. उसने सामने से आते हुए एक शिष्य को देखा और पूछा तुम्हारे गुरु कहाँ हैं? ८ वह सबेरे ही महल से निकल पड़ा और ढाई घण्टे घूमने के लिए गया। ९ उसने जागते हुए ही सारी रात बिताई। १०. हर्ष ने आँसू भरी दृष्टि से माँ से कहा—तुम मुझे क्यों छोड़ रही हो? ११. यशोवती आँचल से मुँह ढककर साधारण स्त्री के तुल्य बहुत देर तक रोई। १२. वह उसके पास ही चुप बैठा रहा। **(ग)** (दिक्कालवर्ग) १. चार दिशाएँ हैं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। २. इस समय तुम्हारी घड़ी में क्या बजा है? ३. एक घण्टे में साठ मिनट होते हैं और एक मिनट में साठ सेकण्ड। ४. इस स्टेशन पर एक डाक-गाड़ी सबेरे सवा दस बजे आती है और दूसरी शाम को पौने सात बजे। ५. राम सबेरे उठता है, दोपहर को खाना खाता है, तीसरे पहर फलाहार करता है, शाम को खेलता है, रात में सोता है और आधी रात में नहीं जागता। ६. आजकल परीक्षा के दिन हैं, वह दिन-रात पढ़ाई में लगा रहता है।

संकेत—(क) १ ऋत्विज। २ चतस्रः, बाल्यम् (बाल्य आदि चारों नपु० हैं)। ३. चत्वारि शृङ्गा (णि) त्रयोऽस्य पादा। ४ मासान्, गमय लोचने मीलयित्वा। ५ आयाच्चतुर्थभागेन व्ययकर्म प्रवर्तयेत्। प्रभूततैलदीपो हि। ६ गुरुशुश्रूषया, पुष्कलेन, विद्यया, चतुर्थान्नोपलभ्यते। ७ ब्रूहि मे चतुरः प्रश्नान्। ८ राजानम्। ९ बलिम्। १० पितरम्, निवासम्। ११. पितरम्, अपरित्यागमयाचतात्मनः। १२ तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च याचकः। (ख) १. सुखमस्वाप्सम्। २ अवादीत्, भूयसो दिवसान् स्थातुमभिलषति मे हृदयम्। ३ अवोचत्, एषास्मि ते वचसि स्थिता। ४ वनमगात्। ५ निरगात्। ६ लेखहारकं प्रविशन्तमद्राक्षीत्। ७ अभिमुखम् आपतन्तम्, अद्राक्षीत्, क्वास्ते। ८ निरयासीत्, सार्धहोराद्वयम्, अयासीत्। ९ जाग्रदेव, अनैषीत्। १० बाष्पायमाणदृष्टिर्मातरम् अभ्यधात्। ११ पटान्तेन, आच्छाद्य, प्राकृतप्रमदेवातिचिरम् अरोदीत्। १२ तूष्णीं समवास्थित। (ग) २ का वेला। ३ घट्या होराया घटि॰। ४. यानावतारे. डाकयानम्, पूर्वाह्णे, सपाददशवादने, पराह्णे, पादोन०। ५. जागर्ति। ६ अधत्ते।

शब्दकोष—४०० + २५ = ४२५] **अभ्यास १७** (व्याकरण)

(क) सप्तसप्तिः (पु०, सूर्य), सुधांशुः (पु०, चन्द्रमा), गभस्तिः (पु०, स्त्री०, किरण), आतपः (धूप), ज्योत्स्ना (चाँदनी), नक्षत्रम् (नक्षत्र), नवग्रहाः (नवग्रह), द्वादश राशयः (१२ राशियाँ), सप्ताहः (सप्ताह), राका (पूर्णिमा), दर्शः (अमावस्या), जीमूतः (मेघ), सौदामिनी (स्त्री०, विद्युत्), करकाः (ओले), वृष्टिः, (स्त्री०, वर्षा), आसारः (मूसलाधार वर्षा), अवग्रहः (अवृष्टि), इन्द्रायुधम् (इन्द्रधनुष), उत्तरायणम् (उत्तरायण), दक्षिणायनम् (दक्षिणायन), शीकरः (जल-कण), अवश्यायः (हिम, बर्फ), लक्ष्मन् (नपु०, चिह्न), वियत् (नपु०, आकाश), स्तनितम् (गर्जन)। (२५)

व्याकरण (पञ्चन् से दशन्, वह्, लुट्, हल् और विसर्ग-सन्धि)

१ पञ्चन् से दशन् तक के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० स० ९३ से ९८)। त्रि से अष्टादशन् (३ से १८) तक के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं। तीनो लिंगों मे वही रूप होंगे। एक से दश तक की संख्याओं के संख्येय (व्यक्ति या वस्तुबोधक क्रमवाचक विशेषण) शब्द क्रमशः ये हैं—प्रथमः, द्वितीयः, तृतीयः, चतुर्थः, पञ्चमः, षष्ठः, सप्तमः, अष्टमः, नवमः, दशमः। इनके रूप पु० मे रामवत्, स्त्री० में रमा या नदीवत्, नपु० में गृहवत् चलेंगे।

२. वह् धातु के पूरे रूप स्मरण करो (देखो धातु० ३०)।

नियम १३०—(नश्छव्यप्रशान्) पदान्त न् को रु (:, स्) होता है, यदि छव् (च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्) बाद में हो और छव् के बाद अम् (स्वर, ह्, अन्तःस्थ, वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो। प्रशान् शब्द में नियम नहीं लगेगा। इसके साथ कुछ अन्य नियम भी लगते हैं, अतः इस नियम का रूप होगा—न् + छव् = ंस् + छव् या ँस् + छव्। श्चुत्व नियम यदि प्राप्त होगा तो लगेगा। कस्मिन् + चित् = कस्मिंश्चित्। अस्मिंस्तरौ। तस्मिन् + तथा = तस्मिंस्तथा।

नियम १३१—(छे च, पदान्ताद्वा) ह्रस्व स्वर के बाद छ होगा तो छ से पूर्व त् (च्) लगेगा, पदान्त दीर्घ स्वर के बाद छ से पूर्व त् विकल्प से लगेगा। शिव + छाया = शिवच्छाया। वृक्षच्छाया। लताच्छविः। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया।

नियम १३२—(विसर्जनीयस्य सः) विसर्ग को स् होता है, खर् (वर्ग के १, २, श, ष, स) बाद मे हो तो। (श्चुत्वसन्धि भी होगी)। हरिः + त्रायते = हरिस्त्रायते। कः + चित् = कश्चित्। रामः + तिष्ठति = रामस्तिष्ठति।

नियम १३३—(वा शरि) विसर्ग के बाद (श, ष, स) हो तो विसर्ग को : और स् दोनों होते हैं। नियम ११६, ११७ भी लगेंगे। हरिश्शेते। रामष्षष्ठः।

नियम १३४—(ससजुषो रुः) पद के अन्तिम स् को रु (र् या :) होता है, सजुष् को भी। जहाँ रु को उ या य् नहीं होगा, वहाँ र् शेष रहेगा। अ या आ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद र् शेष रहेगा, बाद में कोई स्वर या व्यंजन (३, ४, ५) हो तो। हरिः + अवदत् = हरिरवदत्। पितुः + इच्छा = पितुरिच्छा। लक्ष्मीरियम्।

नियम १३५—(अतो रोरप्लुतादप्लुते) ह्रस्व अ के बाद रु (: या र्) को उ होता है, बाद में ह्रस्व अ हो तो। नियम १०१ से गुण और १०३ से पूर्वरूप। अतः अः + अ = ओऽ। कः + अपि = कोऽपि। कोऽयम्। रामोऽवदत्।

अभ्यास १७

संस्कृत बनाओ :—(क) (सख्याएँ) १ देवों, माता-पिता, मनुष्यों, भिक्षुकों और अतिथियों, इन पाँचों की ही पूजा करता हुआ मनुष्य यश को पाता है। २ मित्र, अमित्र, मध्यस्थ, आश्रित और आश्रयदाता, ये पाँचों जहाँ कहीं भी जाओगे, वहाँ तुम्हारे साथ जाएँगे। ३. ऐश्वर्य के चाहनेवाले मनुष्य को ये ६ दोष छोड़ देने चाहिएँ—निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता। ४. ये ६ गुण मनुष्य को कभी नहीं छोड़ने चाहिएँ—सत्य, दान, अनालस्य, अनसूया, क्षमा और धृति। ५ श्लोक मे पचम अक्षर सदा लघु होता है, द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम लघु, षष्ठ सदा गुरु होता है। ६. जो पाँचवें या छठे दिन अपने घर साग पकाकर खा लेता है, परन्तु ऋणी और प्रवासी नहीं है तो वह सुखी रहता है। ७. ये आठ गुण मनुष्य को चमकाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, जितेन्द्रियता, अध्ययन, पराक्रम, कम बोलना, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता। ८ नित्य स्नान करनेवाले को दस गुण प्राप्त होते हैं—बल, रूप, स्वरशुद्धि, वर्णशुद्धि, सुस्पर्श, सुगन्ध, विशुद्धता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दर प्रमदाएँ। (ख) (वह् धातु) १. नदियाँ परोपकार के लिए बहती हैं। २. हवा मन्द-मन्द बह रही है (वह्)। ३. ग्वाला बकरी को गाँव में ले जा रहा है। ४. गधे घोड़े की धुरा को नहीं ढो सकते। ५. राम ने सीता से विवाह किया (उद्वह्)। ६. इतनी आय से मेरा काम नहीं चल सकता है (निर्वह्)। ७. धैर्य धारण करो (आवह्)। ८. इतना वैभव मुझे सुख नहीं देता (आवह्)। ९. वह जैसे-तैसे दिन बिता रहा है। १०. यमुना प्रयाग के समीप बहती है (प्रवह्)। (ग) (लुट्) १ मैं कल सवेरे जैसी स्थिति होगी वैसा बताऊँगा। २. जब तुम्हारी बुद्धि मोह के दलदल को पार कर लेगी, तब तुम्हें वैराग्य प्राप्त होगा। ३ मैं परसों घर जाऊँगा। ४ मैं कल प्रयाग से प्रस्थान करूँगा और परसों वाराणसी पहुँचूँगा और वहाँ से एक मास बाद पटना चला जाऊँगा। (घ) (व्योमवर्ग) १. सूर्य उदय हो रहा है और चन्द्रमा अस्त हो रहा है। २. विविध अर्थों को लेकर सूर्य के नाम हैं—दिवाकर, विवस्वान्, हरिदश्व, उष्णरश्मि, तिग्मदीधिति, द्युमणि, तरणि, विभावसु, भानुमान्, सहस्रांशु। ३ चन्द्रमा के भी अर्थानुसार अनेक नाम हैं—इन्दु, सुधांशु, ओषधीश, निशाकर, कलानिधि, शीतगु, शशांक। ४. अब आकाश में बादल आ गए, बिजली चमकने लगी, बादलों का गरजना आरम्भ हुआ, ओले पड़ने लगे और फिर मूसलाधार वर्षा होने लगी। ५ इधर इन्द्रधनुष दिखाई पड़ रहा है। ६. उत्तरायण में दिन बड़ा हो जाता है और दक्षिणायन में छोटा। ७ बारह राशियाँ हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु (धन्वी), मकर, कुम्भ, मीन। ८. नव ग्रह हैं—रवि, सोम, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। ९. एक सप्ताह में सात दिन होते हैं। १० गर्मी में धूप कड़ी होती है और शरद् में चाँदनी शीतल।

सकेत—(क) १ देवान्, पितॄन्, पूजयन्। २ मित्राणि, उपजीव्योपजीविन, पञ्च त्वाऽनुगमिष्यन्ति। ३ भूतिमिच्छता, हातव्या.। ४. पुमा। ५ पञ्चम लघु, द्विचतुर्थयो। ६. पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति अनृणी चाप्रवासी च, मोदते। ७ दीपयन्ति, कौल्य, दम, श्रुतम्, अल्पभाषिता। (ख) ३ अजा ग्राम वहति। ४. न वाजिधुर वहन्ति।-५ जानकीमुदवहत्। ६ एतावता, न मे कार्यं निर्वहति। ७ धृतिमावह। ८. एतावान् विभवो, न मे सुखमावहति। ९. कथमपि दिनान्यतिवाहयति। (ग) १ यथावस्थितम् आवेदयितास्मि। २. मोहकलिलम्, व्यतितरिष्यति, निर्वेद गन्तासि। ३. गन्तास्मि। ४ प्रस्थाता, आसादयितास्मि, मासात्परेण, पाटलिपुत्र यातास्मि।

शब्दकोष—४२५ + २५ = ४५०] अभ्यास १८ (व्याकरण)

(क) स्वसृ (स्त्री०, बहिन), आत्मज. (पुत्र), अग्रज: (बड़ा भाई), अनुज. (छोटा भाई), पितृव्य. (चाचा), मातुलः (मामा), पितृष्वसृ (स्त्री०, फूआ), मातृष्वसृ (स्त्री०, मौसी), भ्रात्रीय. (भतीजा), स्वस्रीय· (भानजा), आवुत्त· (जीजा), भ्रातृजाया (भाई की स्त्री, भाभी), स्नुषा (पुत्रवधू), पितृव्यपुत्रः (चचेरा भाई), पैतृष्वस्रीय. (फुफेरा भाई), मातृष्वस्रीयः (मौसेरा भाई), जामातृ (पु०, जँवाई), पौत्रः (पोता), नप्तृ (पु० नाती), देवर. (देवर), ज्ञाति. (पु० सम्बन्धी), सम्बन्धिन् (समधी), सम्बन्धिनी (स्त्री०, समधिन), योषित् (स्त्री०, स्त्री), पुरन्ध्रिः (स्त्री०, सधवा स्त्री) । (२५)

व्याकरण (संख्या ११ से १००, नी, आशीर्लिङ्, लङ्, विसर्गसन्धि)

१. नी धातु के पूरे रूप स्मरण करो । (देखो धातु २७)

नियम १३६—(क) विंशति (२०) के बाद के सभी संख्यावाची शब्द केवल एकवचन मे आते है ·—'विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वा. संख्येयसंख्ययो.' । (ख) एकादशन् से अष्टादशन् (११ से १८) तक के रूप दशन् के तुल्य बहु० मे ही चलेंगे । (ग) एकोनविंशति. (१९) से नवनवतिः (९९) तक सारे शब्दो के रूप स्त्रीलिंग एक० मे ही चलते है । इकारान्त विंशति, षष्टि आदि के रूप मति (शब्द स० ४२) के तुल्य और तकारान्त त्रिंशत् आदि के रूप सरित् (शब्द स० ५४) के तुल्य चलेंगे । (घ) संख्येय (क्रमवाचक विशेषण) बनाने के नियम ये हैं—(१) एक से दश तक के संख्येय प्रथम, द्वितीय आदि है । (२) ११ से १८ तक के संख्येय शब्दो के अन्त मे 'अ' लग जाता है । एकादश. (११वाँ), द्वादशः (१२ वाँ) आदि । (३) १९ के आगे संख्येय शब्दों के अन्त मे तम' लगता है । विंशतितम (२०वाँ) आदि । (४) संख्येय शब्दों के रूप तीनों लिंगो मे चलेंगे । पु० मे रामवत्, स्त्री० मे रमा या नदीवत्, नपु० मे गृहवत् ।

नियम १३७—(हशि च) ह्रस्व अ के बाद रु (र् या :) को उ हो जाता है, बाद में हश् (३, ४, ५, ह, य, व, र, ल) हो तो । अ. + हश् = ओ + हश् । शिवः + वन्द्य. = शिवो वन्द्यः । रामो गच्छति । बालको हसति ।

नियम १३८—(भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि) भोः, भगो·, अघोः और अ या आ के बाद (र् या :) को य् होता है, बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, ३, ४, ५) हो तो । देवो : गच्छन्ति - देवो गच्छन्ति

नियम १३९—(हलि सर्वेषाम्, लोप. शाकल्यस्य) (१) नियम १३८ से हुए य् के बाद कोई व्यंजन होगा तो उसका लोप अवश्य होगा । (२) यदि बाद में स्वर होगा तो य् का लोप ऐच्छिक है । लोप होने पर संधि नहीं होगी । देवा गच्छन्ति । नरा हसन्ति । देवा इह, देवायिह ।

नियम १४०—(रोऽसुपि) अहन् के न् को र् होता है, विभक्ति (सुप्) बाद मे हो तो नहीं । अहन् + अहः = अहरहः । अहन् + गण. = अहर्गण. ।

नियम १४१—(रो रि) र् के बाद र हो तो पहले र् का लोप हो जाता है ।

नियम १४२—(ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण.) ढ् या र् का लोप होने पर उससे पूर्ववर्ती अ, इ, उ को दीर्घ होता है । पुनर् + रमते = पुना रमते । हरी रम्य. ।

नियम १४३—(एतत्तदो. सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि) सः और एषः के विसर्ग का लोप होता है, बाद मे व्यंजन हो तो । स. + पठति = स पठति । एष वदति ।

अभ्यास १८

संस्कृत बनाओ :—(क) (संख्याएँ) १ इस कालेज में बी० ए० प्रथम वर्ष में ९०, द्वितीय वर्ष में ८०, एम० ए० प्रथम वर्ष में ७० और द्वितीय वर्ष में ५० विद्यार्थी हैं। २. इस सभा में १०० आदमी हैं। ३. उस जुलूस में एक हजार आदमी हैं। ४. वहाँ भीड़ में ५० आदमी घायल हुए और १५ मर गए। घायल और मृतों की संख्या ६५ है। (ख) (नी धातु) १ वह गाय को गाँव में ले जाता है। २ राम, तुम मुझे निःसंकोच अपने साथ वन में ले चलो। ३ उसने जागते हुए ही रात बिताई। ४. उसने उसके साथ दिन बिताया। ५ उसने अपने सच्चरित्र से लोगों को अपने वश में कर लिया। ६. तुम अपने बच्चों, स्त्री, बहिनों और भाइयों को मेरे घर लाना (आ + नी)। ७ उसने गुरु को मनाया (अनु + नी)। ८ ईश्वर तुम्हारी तामसी वृत्ति को दूर करे। ९ मैं तुम्हारे घमण्ड को दूर कर दूँगा। १० उसने दोनों हाथ जोड़कर गुरु को प्रणाम किया। ११ पुत्रवधू श्वसुर के सामने अपना मुँह फेर लेती है (वि + नी)। १२ गुरु शिष्य का उपनयन-संस्कार करता है। १३ राम ने सीता से विवाह किय (परि + नी)। १४ सुनने का अभिनय करके। १५ आप लोग ऋषियों के लिए फूल और फल लाकर दें। १६ न्यायाधीश विवाद का निर्णय करेगा (निर्णी)। १७ विद्वान् पुस्तक लिखेगा (प्रणी)। १८ दिलीप ने अपना शरीर शेर को समर्पण किया। १९. इसकी हँसी का अभिप्राय समझा जा सकता है। २० तुम अपने चरित्र से देश की कीर्ति को ऊँचा उठाओ। (ग) (आशीर्लिङ्, लृङ्) १ वीर सन्तानवाली हो। २. देव परिणाम को शुभ बनावें। ३ तुम इन्द्राणी और सावित्री के तुल्य हो। ४ तुम्हारा मार्ग शुभ हो। ५. यदि अच्छी वर्षा होती तो सुभिक्ष हुआ होता। ६ क्या अरुण अन्धकार को दूर कर सकता था, यदि उसे सूर्य अपनी धुरा में न बैठाता ? ७ यदि परमात्मा इस जोड़े को परस्पर न मिलाता तो उसका रूप-निर्माण का यत्न विफल होता। (घ) (सम्बन्धिवर्ग) १. मेरे घर में मेरे माता-पिता, चाचा-चाची, दादा-दादी, पुत्र-पुत्रियाँ और चचेरे-फुफेरे तथा मौसेरे भाई हैं। २ भानजे, पोते, पोतियों, नाती और नातिनों से प्रेम का व्यवहार करो। ३ मेरी बहिन के विवाह में मामा-मामी, नाना-नानी, जीजा और अन्य सम्बन्धी आए थे। ४. सधवा स्त्रियों का चित्त फूल के तुल्य सुकुमार होता है-। ५ समधी से समधी और समधिन से समधिन प्रेम से मिले।

संकेत —(क) १ नवति, अशीति सप्तति, पञ्चाशत्। २ शत जना सन्ति। ३ जनयात्रायां सहस्रं जना सन्ति। ४ जनौघे, आहता, हता। हताहतानाम्, पञ्चषष्टि। (ख) १ गां ग्रामम्। २ विस्रब्धम्। ३ निशामनैषीत्। ४ वासरं निनाय। ५ आत्मवशम् अनयत्। ६ जायाम्, स्वसॄ, भ्रातॄन्। ७ अन्वनैषीत्। ८ व्यपनयतु। ९ व्यपनेष्यामि ते गर्वम्। १० हस्तौ समानीय। ११ विनयति, अपनयति। १२ उपनयते। १३ सीतां परिणिनाय। १४ श्रुतिमभिनीय। १५ ऋषिभ्य, उपनयन्तु। १६ विवादं निर्णेष्यति। १७ प्रणेष्यति। १८ हरये उपानयत्। १९ परिहासस्य, उन्नेतु शक्यते। २० उन्नय। (ग) १ वीरप्रसविनी भूया। २ देवा परिणतिं परमरमणीयां विधेयासु। ३ सावित्रीसमा भूया। ४ शिवो भूयात्। ५ सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत्। ६ किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता, तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्। ७ द्वन्द्व, न अयोजयिष्यत्, विफलोऽभविष्यत्। (घ) १ पितृव्या, पितामही। २ पौत्रीषु, नप्तृषु, नप्त्रीषु स्नेहेन वर्तेत। ४ मातुल, मातुलानी, मातामह, मातामही, ज्ञातयश्च। ४ पुरन्ध्रीणां चित्तम्।

अभ्यास १९

संस्कृत बनाओ—(क) (सखि शब्द) १ तुम मेरे मित्र हो, जो चीज मेरी है, वह तुम्हारी हो गई। २ वह निकृष्ट मित्र है, जो राजा को ठीक शिक्षा नहीं देता। ३. वह नौकरों को प्रिय मित्रों के तुल्य मानता है। ४. मित्र वह है जो विपत्ति मे साथ नहीं छोडता। (ख) (हृ धातु) १. वह गाँव में बकरी को ले जाता है। २. तुम मेरे सन्देश को ले जाओ (हृ)। ३. बादल लोगों के ताप को हरता है (हृ)। ४. मैं तुम्हारे मनोहर गीत के राग से बहुत आकृष्ट हो गया हूँ। ५. हथिनी की गति किसके मन को नहीं हरती। ६. विधि कृश पर ही प्रहार करता है (प्र + हृ)। ७ वन से समिधाएँ लाओ (आ + हृ)। ८. अर्जुन ने कौरवों की बडी सेना का संहार किया (स + हृ)। ९ चन्द्रमा चाण्डाल के घर से अपनी चाँदनी को नही हटाता (स + हृ)। १० ये बालक आवाज में माता से मिलते-जुलते है (अनु + हृ)। ११. घोडे पिता की चाल से चलते है और गाय माँ की चाल से (अनु + हृ, आ०)। १२ वह प्रात' उद्यान मे घूमता है (वि + हृ)। १३ चोर धन चुराता है (अप + हृ)। १४ अपने आप अपना उद्धार करो (उद् + हृ)। १५ उसने बात कही (उदाहृ)। १६. वह भात खाता है (अभ्यवहृ)। १७ वह लडकी को पुस्तक भेंट में देता है (उपहृ)। १८. राम ने रावण के शिर पर प्रहार किया (प्रहृ)। (ग) (अव्ययीभाव) १. तुम प्रतिदिन कृश-शरीर हो रहे हो। २. प्रत्येक पात्र की देख-भाल करो। ३. इसकी उत्कण्ठा बहुत बढ गई है। ४. सुविधानुसार यह काम करना। ५. मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। ६ अपनी इच्छानुसार करना। ७ आपने यहाँ से सबको भगा दिया। ८. महात्माओं के लिए क्या परोक्ष है? (घ) (क्रीडासनवर्ग) १. अंग्रेजी खेलों में हॉकी, फुटबॉल, वॉलीबॉल, बैडमिण्टन और टेनिस के खेल अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध हैं। २. हॉकी गेंद से, बैडमिन्टन चिडिया से और टेनिस गेंद से खेले जाते हैं। ३. बैडमिन्टन का रैकेट हल्का और टेनिस का रैकेट भारी होता है। ४. खेल के मैदान में फुटबॉल का मैच हो रहा है। ५. कालेज की कक्षाओं में प्रायः यह फर्नीचर होता है, मेज, कुर्सियाँ, डेस्क और बेंच। ६. घरेलू फर्नीचर में खाट, पलग, सोफा, तिपाई, अलमारी, बुक रैक, डाइनिंग टेबुल, पढाई की मेज, कुर्सी, आराम कुर्सी आदि होते है। ७. कुछ कार्यालयो में मुडनेवाली कुर्सी और सेफ भी होते हैं। ८ पलग निवाड से बुनी जाती है।

सकेत—(क) १. यन्मम, तत्तवैव। २ किंसखा, साधु न शास्ति। ३. सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनो दर्शयते। (ख) १ ग्रामम्, हरति। ३ लोकानाम्। ४ हारिणा, प्रसभ हृत। ८ कुरुणा महतीं चमू समहार्षीत्। ९. नहि संहरते। १० स्वरेण मातरमनुहरन्ति। ११. पैतृकमश्वा अनुहरन्ते, मातृक गाव। १४ उद्धरेदात्मनात्मानम्। १५ वचनमुदाजहार। १६. भक्तमभ्यवहरति। (ग) १ अनुदिवस परिहीयसेऽङ्गै। २ प्रतिपात्रमाधीयता यत्न। ३ अतिभूमिं गतोऽस्या रणरणक। ४ यथावकाशम्। ५. अनुपदमागत एव। ६ यथाभिलाषम्। ७ कृत भवता निर्मक्षिकम्। ८ किमात्मवराणा परोक्षम्। (घ) १ आंग्लक्रीडासु। ३ लघु, गुरु। ४ क्रीडाक्षेत्रे। ६ गृहोपस्करेषु, त्रिपादिका, भोजनफलकम्, लेखनफलकम्, सुखासन्दिका। ७ लौहमञ्जूषा। ८ ऊयते।

अभ्यास २०

शब्दकोष—४७५ + २५ = ५००] (व्याकरण)

(क) अग्रजन्मन् (ब्राह्मण), अन्ववाय (वंश), चातुर्वर्ण्यम् (चारों वर्ण), विपश्चित् (विद्वान्), श्रोत्रिय. (वेदपाठी), अनूचान· (सांगवेदज्ञ), समावृत्तः (स्नातक), यज्वन् (यज्ञकर्ता), अन्तेवासिन् (शिष्य), सतीर्थ्यः (सहपाठी), अध्वर· (यज्ञ), समिति (स्त्री०, सभा), संसद् (स्त्री०, लोकसभा), आस्थानम् (सभागृह, असेम्बली हॉल), सभासद् (सदस्य), स्थण्डिलम् (चबूतरा), विश्राणनम् (देना), प्राघुर्ण. (पाहुन, अतिथि), सपर्या (पूजा), वाचयम. (मुनि), इष्टापूर्तम् (धर्मार्थ यज्ञादि), मस्करिन् (सन्यासी), यम· (यम), नियम. (नियम), पौर्णमास (पूर्णिमा का यज्ञ) । (२५)

व्याकरण (पति, श्रु धातु, तत्पुरुष समास)

१ पति शब्द के पूरे रूप स्मरण करो । (देखो शब्द० स० ६)

२. श्रु धातु के दसो लकारों के रूप स्मरण करो । (देखो धातु० स० १६)

नियम १४६—(तत्पुरुष) तत्पुरुष समास उसे कहते हैं, जहाँ पर दो या अधिक शब्दों के बीच में से द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी या सप्तमी विभक्ति का लोप होता है । समास होने पर बीच की विभक्ति का लोप हो जाएगा । जिस विभक्ति का लोप होगा, उसी विभक्ति के नाम से वह तत्पुरुष कहा जायगा । जैसे—द्वितीया तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष आदि । (उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष.) इसमें बादवाले पद का अर्थ मुख्य होता है । (१) **द्वितीया**—(द्वितीया श्रितातीतपतित०)—कृष्ण श्रित.> कृष्णश्रितः । दु खमतीत.> दु खातीतः । दुःख पतितः> दु.खपतित· । शोक गतः> शोकगत. । मेघम् अत्यस्त > मेघात्यस्त । भय प्राप्त·> भयप्राप्त । जीविकाम् आपन्नः> जीविकापन्नः । (२) **तृतीया**—(तृतीया तत्कृतार्थेन०) शङ्कुलया खण्ड.> शङ्कुलाखण्डः । (कर्तृकरणे कृता०) बाणेन आहतः> बाणाहत. । खड्गेन हत·> खड्गहतः । नखैर्भिन्नः> नखभिन्नः । हरिणा त्रात > हरित्रात. । विद्यया हीन.> विद्याहीनः । (पूर्वसदृश०) मासेन पूर्व.> मासपूर्व. । मात्रा सदृश.> मातृसदृश । पितृसम. । माषोनम् । वाक्कलहः । आचारनिपुण· । गुडमिश्र. । ज्ञानशून्यः । पितृतुल्य. । एकोनम् । (३) **चतुर्थी**—(चतुर्थी तदर्थार्थ०) यूपाय दारु> यूपदारु । द्विजाय इदम्> द्विजार्थम् । स्नानाय इदम्> स्नानार्थम् । भोजनार्थम् । भूताय बलिः> भूतबलिः । गवे हितम्> गोहितम् । गवे सुखम्> गोसुखम् । गोरक्षितम् । (४) **पंचमी**—(पचमी भयेन) चोराद् भयम्> चोरभयम् । शत्रुभयम् । राजभयम् । वृकभीतिः । (अपेतापोढ०) सुखाद् अपेतः > सुखापेतः । कल्पनापोढः । रोगाद् मुक्त.> रोगमुक्तः । पापात् मुक्त.> पापमुक्त । प्रासादात् पतितः> प्रासादपतित. । वृक्षपतितः । अश्वपतितः । (५) **षष्ठी**—(षष्ठी) राज्ञः पुरुषः—राजपुरुषः । ईश्वरस्य भक्तः> ईश्वरभक्त. । शिवभक्तः । विष्णुभक्त· । देवपूजकः । मूर्त्या. पूजा> मूर्तिपूजा । देवपूजा । विद्यालयः । देवालय· । देवमन्दिरम् । सुवर्णकुण्डलम् । (६) **सप्तमी**—(सप्तमी शौण्डै.) शास्त्रे निपुण.> शास्त्रनिपुण· । विद्यानिपुणः । युद्धनिपुणः । कार्यदक्षः । कार्यचतुर । जले लीनः> जललीन । जलमग्न. । (सिद्धशुष्क०) आतपे शुष्क.> आतपशुष्क. । स्थालीपक्व । चक्रबन्ध ।

अभ्यास २०

संस्कृत बनाओ :—(क) (पति शब्द) १ स्त्री के लिए पति ही एक गति है। २ स्त्री का पति ही देवता है। ३ पति के साथ बैठकर यज्ञ करने के कारण स्त्री को पत्नी कहा जाता है। ४ चन्द्रमा के साथ चॉदनी चली जाती है, मेघ के साथ विद्युत् अदृष्ट हो जाती है। स्त्रियॉ पति के मार्ग पर चलती है, यह अचेतनो ने भी स्वीकार किया है। (ख) (श्रु धातु) १ जो बडों की निन्दा करता है, वही पापी नहीं होता, अपितु जो उससे सुनता है, वह भी पापी होता है। २ मेरी अधूरी बात को सुनो। ३ मित्र, सुनो मेरी बात ठीक है या नहीं। ४ हे बादल, तुम बाद मे मेरा सन्देश सुनोगे। ५. बारह वर्ष मे व्याकरण पढा जाता है। ६ मैने भ्रमरो का गुजन सुना। ७ अपने से बडो की सेवा करो। ८ निर्धन की पत्नी भी सेवा नही करती। ९. जो हित की बात नहीं सुनता वह नीच स्वामी है। १० वह कहना नही सुनता। ११ वह विप्र को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है। (ग) (तत्पुरुष०) १ समय पता चलाने के लिए मुझसे कहा गया है। २ यह माला देर तक रुकने वाली है। ३ इस पात्र को हाथ में लो। ४ यह चबूतरा अभी धुलने से शोभित है। ५ मेरे कुछ कहने की गुंजाइश नहीं है। ६ मेनका के कारण शकुन्तला मेरे देह के तुल्य है। ७ भरत मेरे वंश की प्रतिष्ठा है। ८. सांसारिक विषय ऊपर से सुन्दर लगते है, पर अन्त में दुःखद होते हैं। ९ इस मृग को मैंने बहुत प्रयत्न से पाला-पोसा है। १०. वह मेरा विश्वासपात्र है। ११ इस प्रकार काम करे कि अपना स्वार्थ भी नष्ट न हो। १२. सब कुछ भाग्य के अधीन है। (घ) (ब्राह्मणवर्ग) १ ब्राह्मण, मुनि और सन्यासी ये पापों से मुक्त, रोगों से मुक्त, शास्त्र मे निपुण, कार्य मे चतुर और ब्रह्म मे लीन होते हैं। २ विद्वान् ईश्वर के भक्त, देवों के पूजक, विद्या से युक्त और आचार मे निपुण होते हैं। ३ अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान देना और लेना, ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं। ४ लोकसभा के हॉल मे विद्वान् सस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिए भाषण देते हैं। ५. अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम है। ६ शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान ये नियम हैं। ७ मनु का कथन है कि यमों का अवश्य पालन करे, केवल नियमों का नहीं। ८ वेदज्ञ, वेद पाठी, स्नातक, होता, अध्वर्यु और उद्गाता यज्ञ में ऋग्, यजु. और साम के मन्त्रों का सस्वर उच्चारण कर रहे हैं।

सकेत—(क) १ स्त्रिया। २. दैवतम्। ३ अभिधीयते, निगद्यते। ४. शशिना सह याति कौमुदी, प्रलीयते। प्रमदा पतिमार्गगा इति प्रतिपन्न हि विचेतनैरपि। (ख) १ न केवल यो महतोऽपभाषते, शृणोति तस्मादपि य स पापभाक्। २ शृणु मे सावशेष वच। ३ मद्वचन सगतार्थं न वेत्ति। ४ तदनु। ५ द्वादशभिर्वर्षैं, श्रूयते। ६ अश्रौषम्। ७ शुश्रूषस्व गुरून्। ८ न शुश्रूषते। ९ हितान्न य सशृणुते स किंप्रभु। १० सशृणोति न चोक्तानि। ११ विप्राय गा प्रतिशृणोति, आशृणोति। (ग) १ वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि। २ कालान्तरक्षमा। ३ हस्तसनिहित कुरु। ४ अभिनवमार्जनसश्रीकोऽलिन्द। ५ न मे वचनावसरोऽस्ति। ६ मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। ७ वशप्रतिष्ठा। ८ आपातरम्या विषया पर्यन्तपरितापिन,। ९ प्रयत्नसवधित एष। १० विश्वासभूमि, विश्रम्भभूमि। ११ स्वार्थाविरोधेन वर्तेत। १२ सर्व दैवायत्तम्। (घ)३ दान प्रतिग्रहश्चैव ब्रह्मकर्म स्वभावजम्। ७ यमान् सेवेत सतत न नियमान् केवलान् बुध।

शब्दकोष—५०० + २५ = ५२५] **अभ्यास २१** (व्याकरण)

(क) अवनिपतिः (पु०, राजा), अमात्यः (मन्त्री), प्रधानमन्त्रिन् (प्राइम मिनिस्टर), मुख्यमन्त्रिन् (चीफ मिनिस्टर), मन्त्रिपरिषद् (केबिनेट), सचिवः (सेक्रेटरी), शिक्षासचिव. (एजुकेशन सेक्रेटरी), प्राड्विवाकः (वकील), मुद्रा (सिक्का), टङ्कनम् (सिक्का ढालना), टङ्कशाला (टकसाल), नैष्किकः (टकसालाध्यक्ष), रक्षिन् (सिपाही), योधः (योद्धा), सेनापति. (पु०, सेनापति), चमूः (स्त्री०, सेना), प्रतीहारः (द्वारपाल, अर्दली), अराति. (पु०, शत्रु), कर. (टैक्स), शुल्कः (फीस, चुगी), शुल्कशाला (चुगीघर), शौल्किकः (चुगी का अध्यक्ष), चार. (दूत), राजदूत (राजदूत), आतपत्रम् (छत्र) । (२५)

व्याकरण (सुधी, स्वभू, कृ पर०, कर्मधारय, द्विगु समास)

१ सुधी और स्वभू शब्दो के पूरे रूप स्मरण करो । (देखो शब्द० स० ८,१०)

२. कृ धातु परस्मैपदी के दसो लकारो के रूप स्मरण करो । (देखो धातु० ११)

नियम १४७—(तत्पुरुष समानाधिकरण. कर्मधारय.) तत्पुरुष के दोनों पदों मे जब एक ही विभक्ति रहती है, तब उसे कर्मधारय समास कहते है । इसमे साधारणतया प्रथम पद विशेषण और दूसरा पद विशेष्य होता है । इसके मुख्य नियम ये है—(१) विशेषण पूर्वपद कर्मधारय—(क) (विशेषण विशेष्येण बहुलम्) विशेषण-विशेष्य-समास—नीलम् उत्पलम् > नीलोत्पलम् । कृष्णः सर्प > कृष्णसर्प. । इसी प्रकार नील-कमलम्, रक्तोत्पलम् । (ख) (कि क्षेपे) निन्दा अर्थ मे किम्—कुत्सितः राजा किंराजा । कुत्सित. सखा किंसखा । (ग) (कुगतिप्रादयः) सुन्दर अर्थ मे 'सु' और कुत्सित अर्थ मे 'कु'—सुन्दरः पुरुषः > सुपुरुष· । सुपुत्रः, सुदेशः, सुदिनम् । कुत्सित. पुरुषः—कुपुरुषः । कुपुत्र., कुदेशः, कुदिनम्, कुनारी । (घ) (सन्महत्परमो०) सत्, महत्, परम आदि—सन् चासौ जन. > सज्जन । महान् चासौ आत्मा > महात्मा । महादेव. । (ङ) (दिक्सङ्ख्ये सज्ञायाम्) दिशा और सख्या सज्ञावाची हो तो—सप्त च ते ऋषयः > सप्तर्षयः । (२) उपमानपूर्वपद कर्मधारय—(उपमानानि सामान्यवचनैः) उपमान शब्द का गुणबोधक सामान्यधर्म के साथ—घन इव श्याम. > घनश्यामः । (३) उपमानोत्तरपद कर्मधारय—(उपमितं व्याघ्रादिभि.०) उपमेय का उपमान के साथ समास—पुरुष. व्याघ्र इव > पुरुषव्याघ्र. । मुख कमलमिव > मुखकमलम् । यह 'एव' लगाकर भी हो सकता है—मुखमेव कमलम् > मुखकमलम् । नरसिंह, नृसिंहः, करकमलम्, पादपद्मम्, पुरुषर्षभ । (४) विशेषणोभयपद कर्मधारय—(क) (वर्णो वर्णेन) दोनों रगवाची हों—कृष्णश्चासौ श्वेतः > कृष्णश्वेत. । श्वेतरक्तम्, कृष्णसारङ्ग. । (ख) (क्तेन नञ्०) कृत च तत् अकृत च > कृताकृतम् । (पूर्वकालैक०) स्नातश्च अनुलिप्तश्च > स्नातानुलिप्तः । (५) उत्तरपदलोपी समास—(शाकपार्थिवादीना सिद्धये०) शाकप्रिय. पार्थिव > शाकपार्थिव । चन्द्रसदृश मुखम् > चन्द्रमुखम् ।

नियम १४८—(सख्यापूर्वो द्विगु) जब कर्मधारय समास मे प्रथम शब्द सख्यावाचक होता है तो वह द्विगु समास होता है । अधिकतर यह समाहार (समूह) अर्थ मे होता है और नपु० या स्त्री० एक० होता है । (१) समाहार अर्थ में—पञ्चाना गवा समाहार. > पञ्चगवम् । इसी प्रकार त्रिलोकम्, त्रिलोकी, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम्, दशाब्दी, शताब्दी । (२) तद्धितार्थ में—षण्णा मातॄणाम् अपत्यम् > षाण्मातुर । पञ्चकपाल. । (३) उत्तरपद मे—पञ्च गावो धन यस्य स. > पञ्चगवधनः ।

अभ्यास २१

संस्कृत बनाओ—(क) (सुधी, स्वभू) १. विद्वान् विद्वानों के साथ चलते है, मूर्ख मूर्खों के साथ। समान शील और व्यसनवालो में मित्रता होती है। २. विद्वान् सर्वत्र आदर पाते है। ३ विद्वानो के संग से मूर्ख भी चतुर हो जाता है। ४ ब्रह्मा (स्वभू) से जगत् उत्पन्न होता है। ५ प्रलय के समय संसार ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। (ख) (कृ धातु) १ क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, बडी विपत्ति मे पडा हूँ। २. हंसपटिका संगीत का अक्षराभ्यास कर रही है। ३ तुम अपनी ड्यूटी पर जाओ। ४ पिता, मै क्या करूँ? ५ राजा ने पुत्र को युवराज बनाया। ६ कुम्हार घडा बनाता है, शूद्र चटाई बनाता है। ७ घर बनाओ, सभा करो। ८ भिक्षा के लिए अंजलि करता है। ९ मैं तुम्हारा कहना मानूँगा। १०. वह रात्रि मे स्त्री का रूप बनाकर घूमा। ११. उसने गले में हार डाल लिया। १२ राजा उन-उन कार्यों मे अध्यक्षों को लगावे। १३. धनुष को हाथ में ले लो। १४ उसने नगर मे जाने की इच्छा की। १५ इसने मेरे साथ अच्छा व्यवहार नही किया। (ग) (तत्पुरुष, कर्म०, द्विगु) १ यह मुझसे अपृथक् है। २. मैं तुम्हारे अधीन हूँ। ३. यह मामला आपके हाथ मे है। ४ दिन लगभग ढल गया है। ५ बार-बार आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर और जिद करने पर उसने सारी बात बताई। ६. इसके कथन से ही ऊँच-नीच का पता लग जायगा। ७. यदि आपको कोई विघ्न न हो तो मेरे साथ घूमने चलिए। ८. मित्र, मजाक की बात को सच न समझ लेना। ९ उसको अपने पद से हटा दिया गया है। १० सज्जन महात्मा करकमल में रक्त कमल को लेकर सप्तर्षियों की अर्चना करता है। ११ कुपुत्र, कुपुरुष और कुनारी सुपुत्र, सुपुरुष और सुनारी की निन्दा करते हैं। १२. दुष्टों के संहारक घनश्याम का यश त्रिभुवन और चतुर्युगी मे व्याप्त है। (घ) (क्षत्रिय-वर्ग) १. प्रधानमन्त्री श्री नेहरूजी मन्त्रिपरिषद् से मन्त्रणा करके संसद् में नवीन योजनाओं को प्रस्तुत करते थे। २ प्रान्तों मे मुख्यमन्त्री मन्त्रियो की सम्मति से कार्य करते हैं। ३ शिक्षामन्त्री शिक्षा-सचिव के पास अपने आदेशो को भेजता है। ४ टकसाल का अध्यक्ष टकसाल मे सोने और चाँदी के सिक्के ढलवाता है। ५. चुंगी का अध्यक्ष चुंगी के अधिकारी को चुंगी की आय का हिसाब प्रस्तुत करने का आदेश देता है।

संकेत—(क) १ सुधिय सुधीभि, समानशीलव्यसनेषु सख्यम्। ३ प्रवीणता याति। ५ प्रलये प्रलीयते। (ख) १ किं करोमि क्व गच्छामि, पतितो दु खसागरे। २ वर्णपरिचय करोति। ३ स्वनियोगमशून्य कुरु। ४ किं करवाणि? ५ युवराज कृत। ६ कुम्भकारो घट करोति, कटम्। ७ कुरु। ८ करोति। ९ करिष्यामि वचस्तव। १० स्त्रीरूप कृत्वा। ११. कण्ठे हारमकरोत्। १२ तेषु तेषु, कुर्यात्। १३ हस्ते कुरु। १४ गमनाय मतिमकरोत्। १५. अनेन मयि नोचित कृतम्। (ग) १ अव्यतिरिक्तोऽयमस्मच्छरीरात्। २ त्वदधीन। ३ अयमर्थस्त्व-दायत्त। ४ परिणतप्रायमह। ५ निर्बन्धपृष्ट पुन पुनश्चानुबध्यमान। ६ अधरोत्तरव्यक्तिर्भ-विष्यति। ७ न चेदन्यकार्यातिपात। ८ परिहासविजल्पित सखे परमार्थेन न गृह्यता वच। ९ च्युताधिकार कृतोऽसौ। (घ) १ प्रास्तौत्। ३ प्रेषयति। २ रजतस्य, टङ्कयति। ५. शुल्क-शालिनम्, आयविवरण प्रस्तोतुमादिशति।

शब्दकोष—५२५ + २५ = ५५०] अभ्यास २२ (व्याकरण)

(क) आहव॰ (युद्ध), प्रहरणम् (शस्त्र), आयुधम् (शस्त्रास्त्र), आयुधागारम् (शस्त्रागार), वर्मन् (नपु॰, कवच), कार्मुकम् (धनुष), निस्त्रिंशः (खड्ग), कौक्षेयकः (कृपाण), विशिख॰ (बाण), तूणीर॰ (तूणीर), करवालिका (गुप्ती), शल्यम् (बर्छी), प्रासः (भाला), तोमरः (गँडासा), गदा (गदा), छुरिका (चाकू), धन्विन् (धनुर्धर), शरव्यम् (लक्ष्य), सायुगीन॰ (रणकुशल), जिष्णुः (पु॰, विजयी), कबन्धः (धड़), कारा (जेल), हस्तिपक॰ (हाथीवान), सादिन् (घुड़सवार), वैजयन्ती (स्त्री॰, पताका)। (२५)

व्याकरण (कर्तृ॰, कृ आत्मने॰, बहुव्रीहि समास)

१. कर्तृ शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द॰ सं॰ ११)

२. कृ धातु आत्मनेपदी के दसों लकारों के रूप स्मरण करो। (देखो धातु॰ ९१)

नियम १४९—(अनेकमन्यपदार्थे) (अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहि॰) जिस समास मे अन्य पद के अर्थ की प्रधानता होती है, उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। बहुव्रीहि समास होने पर समस्त पद स्वतन्त्र रूप से अपना अर्थ नही बताते, अपितु वे विशेषण के रूप मे काम करते है और अन्य वस्तु का बोध विशेष्य के रूप में कराते हैं। बहुव्रीहि की पहचान है कि अर्थ करने पर जहाँ जिसको, जिसने, जिसका, जिसमे आदि अर्थ निकले। बहुव्रीहि के पाँच भेद हैं—(१) समानाधिकरण, (२) व्यधिकरण, (३) सहार्थक, (४) कर्मव्यतिहार, (५) नञ् और उपसर्ग के साथ। (१) **समानाधिकरण बहुव्रीहि**—दोनो पदों मे प्रथमा विभक्ति रहती है। अन्य पदार्थ कर्ता को छोड़कर कर्म, करण आदि कोई भी हो सकता है। जैसे—(क) **कर्म**—प्राप्तमुदक य स >प्राप्तोदकः। (ख) **करण**—ऊढः रथ॰ येन स॰> ऊढरथः (बैल)। हतशत्रु॰ (राजा), उत्तीर्णपरीक्ष (छात्र), कृतकृत्यः (मनुष्य), जितेन्द्रिय॰ (पुरुष), दत्तचित्त (पुरुष)। (ग) **सम्प्रदान**—दत्त भोजन यस्मै स॰> दत्तभोजनः (भिक्षुक)। उपहृतपशुः (रुद्र), दत्तधनः (पुरुष)। (घ) **अपादान**—उद्धृतम् ओदन यस्मात् सा>उद्धृतौदना (स्थाली)। पतित पर्णं यस्मात् सः>पतितपर्णः (वृक्ष)। निर्गत भय यस्मात् स॰ >निर्भय॰ (पुरुष)। निर्बलः। (ङ) **सम्बन्ध**—पीतम् अम्बर यस्य स॰>पीताम्बर॰ (कृष्ण)। इसी प्रकार दशानन॰ (रावण), चतुरानन॰ (ब्रह्मा), चतुर्मुखः, पद्मयोनि॰, महाशय॰, महाबाहुः, लम्बकर्ण॰, चित्रगु॰। (च) **अधिकरण**—वीरा॰ पुरुषा यस्मिन् स॰>वीरपुरुषः (ग्राम)। (२) **व्यधिकरण बहुव्रीहि**—इसमें दोनों पदों में विभक्तियाँ विभिन्न होती हैं। धनुः पाणौ यस्य सः> धनुष्पाणि॰। चक्रपाणि, कण्ठेकाल, चन्द्रशेखरः। (३) **सहार्थक**—(तेन सहेति तुल्ययोगे) साथ अर्थ से बहुव्रीहि। सह को स। पुत्रेण सहितः>सपुत्रः। इसी प्रकार साग्रज॰, सानुज॰, सबान्धवः, सविनयम्, सादरम्। (४) **कर्मव्यतिहार**—(तत्र तेनेदमिति सरूपे) तृतीयान्त या सप्तम्यन्त का युद्ध होना अर्थ में समास। पूर्वपद को दीर्घ, अन्त में इ लगेगा और अव्यय होगा। केशेषु गृहीत्वा इद युद्ध प्रवृत्तम्> केशाकेशि। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य॰> दण्डादण्डि। मुष्टीमुष्टि। (५) **नञादि**—अविद्यमान॰ पुत्रः यस्य स॰>अपुत्र॰। प्रपतितपर्ण॰> प्रपर्ण॰। अस्तिक्षीरा गौः।

अभ्यास २२

संस्कृत बनाओ :—(क) (कर्तृ शब्द) १ दिलीप ने वशिष्ठ से वंश के चलानेवाले पुत्र को सुदक्षिणा मे माँगा। २ पाणिनि अष्टाध्यायी का, पतञ्जलि महाभाष्य का और कालिदास रघुवंश का कर्ता है। ३ ऋण का करनेवाला पिता शत्रु है। ४. वक्ता श्रोता को धर्म सिखा रहा है। ५. जगत् का कर्ता, धर्ता, भर्ता और हर्ता ईश्वर है। ६ विश्वनियन्ता पर श्रद्धा करो। (ख) (कृ धातु) १ उसने मन मे यह सोचा। २ आप अपनी थकान दूर कीजिये। ३. मैं तुम्हारा और अधिक क्या उपकार करूँ? ४ ग्रीष्म समय के बारे में गाइए। ५ विदेशिया के वेष का अनुकरण मत करो (अनु + कृ)। सत्संगति पाप को दूर करती है (अपाकृ)। ७. देशभक्त नेता लोग लोगो का उपकार करते हैं (उपकृ)। ८ सौ रुपये धर्मार्थ लगाता है। ९. वह गीता की कथा करता है (प्रकृ)। १० वह शत्रु को हराता है (अधिकृ)। ११ मै मुनित्रय को नमस्कार करता हूँ (नमस्कृ)। १२ कामभाव चित्त को विकृत करता है (विकृ)। १३ बुद्धिमान् का अपकार न करे (अपकृ)। १४ सज्जन मेरे घर को अलंकृत करे (अलंकृ)। १५ रूस देश चन्द्रमा तक जानेवाले विमानो का आविष्कार कर रहा है (आविष्कृ)। १६. यदि वह चोरी नहीं छोडता है तो बिरादरी से निकाल दिया जायगा (निराकृ)। १७ वेदाध्ययन मन को पवित्र करता है (संस्कृ)। १८ योद्धा धनुष, खड्ग और कृपाण को स्वीकार करता है (स्वीकृ)। १९ स्त्रियाँ अपने घरो को सजाती हैं (परिष्कृ)। २० निर्धन का तिरस्कार न करे (तिरस्कृ)। (ग) (बहुव्रीहि) १. राजाओ को उत्सव प्रिय होता है, वीरों को युद्ध और बालको को मनोरंजन। २ सूर्य ने एक बार ही अपने घोडे को जोता है, शेषनाग सदा भूमि का भार ढोता है, षष्ठांशवृत्ति राजा का भी यही धर्म है। ३ शकुन्तला बाएँ हाथ पर मुँह रक्खे हुए बैठी है। ४ अच्छे प्रकार से धनुष पर चढाए हुए बाण को उतार लीजिये। (घ) (आयुधवर्ग)। १ उर्वशी इन्द्र का कोमल हथियार है। २ तुम्हारे अतिरिक्त और किसी ने मेरे शस्त्र को नहीं सहा है। ३ रणकुशल विजयी वीर कवच पहनकर हाथों में धनुष, तलवार, बर्छी, भाले लेकर शत्रुओ को परास्त करते हैं और अपनी विजय-वैजयन्ती को फहराते हैं। ४ प्राचीन समय में कुछ लोग घोडों पर, कुछ हाथियों पर और कुछ रथों पर बैठकर युद्ध करते थे।

संकेत :—(क) वशिष्ठं वंशस्य कर्तारं तनयं सुदक्षिणायां ययाचे। ४ श्रोतारं शास्ति। (ख) १ एवमधरोत्। २ परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः। ३ किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि। ४ समयमधिकृत्य गीयताम्। ५ वेषं वेषस्य वा अनुकुर्या। ६ अपाकरोति। ७ लोकानामुपकुर्वते। ८ शतं प्रकुरुते। ९ गीतां प्रकुरुते। १० अधिकुरुते। ११ मुनित्रयम्। १२ विकरोति (पर०)। १३. बुद्धिमतः। १५ विधुगामीनि विमानानि। १६ स्तेयम्, जात्या निराकरिष्यते। १७ संस्करोति। १८ स्वीकरोति। १९ परिष्कुर्वन्ति। २० निर्धनम्। (ग) १ उत्सवप्रिया राजानः, युद्धप्रिया वीराः, आमोदप्रिया बालाः। २ भानुः सकृद्युक्ततुरग एव, शेषः सदैवाहितभूमिभारः, षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः। ३ वामहस्तोपहितवदना तिष्ठति। ४ तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर। (घ) १ सुकुमारं प्रहरणम्। २ न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्। ३ परिधाय, अभिभवन्ति, उत्तोलयन्ति। ४ रथान् आरुह्य, अधिष्ठाय वा।

शब्दकोष-५५० + २५ = ५७५] **अभ्यास २३** (व्याकरण)

(क) भुशुण्डि (स्त्री०, बन्दूक), लघुभुशुण्डि: (स्त्री०, पिस्तौल), शतघ्नी (स्त्री०, तोप), गुलिका (गोली), अग्निचूर्णम् (बारूद), आग्नेयास्त्रम् (बम), आग्नेयास्त्रक्षेपः (बम फेंकना), परमाण्वस्त्रम् (एटम बम) जलपरमाण्वस्त्रम् (हाइड्रोजन बम), धूमास्त्रम् (टीयर गैस), विमानम् (विमान), युद्धविमानम् (लड़ाई का विमान), पोत: (पानी का जहाज), युद्धपोत: (लड़ाई का जहाज), जलान्तरितपोत: (पनडुब्बी), एकपरिधानम् (एकवेषः, यूनिफार्म), सैन्यवेषः (वर्दी), रक्षिन् (सिपाही), सैनिक: (फौजी आदमी), भूसेनाध्यक्षः (भू-सेनापति), वायुसेनाध्यक्षः (वायु-सेनापति), नौसेनाध्यक्षः (जल-सेनापति), शिरस्त्रम् (लोहे का टोप), पदाति: (पु०, पैदल-सेना)। (२४)। (ख) परिखया परिवेष्टय (मोरचा बाँधना)। (१)

व्याकरण (पितृ, नृ, अद् और शास् धातु, बहुव्रीहि समास)

१. पितृ और नृ शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० १२, १३)

२. अद् और शास् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३१, ४२)

नियम १५०—(स्त्रियाः पुंवद्भाषित०) बहुव्रीहि समास में यदि पुलिंग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिंग शब्द प्रथम पद हो तो उसे पुलिंग हो जाता है, ऊ को नहीं। (गोस्त्रियो०) अन्तिम पद मे गो को गु, आ को अ, ई को इ हो जाता है। रूपवती भार्या यस्य सः > रूपवद्भार्यः। चित्रा गावो यस्य स > चित्रगुः। वामोरूभार्यः ही होगा।

नियम १५१—बहुव्रीहि समास करने पर इन स्थानों पर अन्तिम पद में कुछ समासान्त प्रत्यय या परिवर्तन होते हैं—(१) (जायाया निङ्) जाया को जानि हो जाता है। युवतिः जाया यस्य सः > युवजानिः। भूजानि:, महीजानिः। (२) (धनुषश्च) धनुष् को धन्वन् हो जाता है। पुष्पाणि धनुः यस्य स: > पुष्पधन्वा (कामदेव)। शार्ङ्गधन्वा, शतधन्वा। (३) (गन्धस्येदुत्०) उत्, पूति, सु, सुरभि के बाद गन्ध को गन्धि होता है। शोभन: गन्धो यस्य सः > सुगन्धिः। सुरभिगन्धिः। (४) (पादस्य लोपो०) पाद को पाद् हो जाता है, कोई उपमान शब्द पहले हो तो, हस्ति आदि को छोड़कर। (संख्यासुपूर्वस्य) कोई संख्या या सु पहले हो तो पाद को पाद्। व्याघ्रपात्। द्विपात्। सुपात्। द्विपदी। सप्तपदी। स्त्री० में पाद् को पद्। (५) (प्रसम्भ्यां जानुनो ज्ञुः) प्र, सम् और ऊर्ध्व के बाद जानु को ज्ञु होता है। प्रज्ञु, संज्ञुः, ऊर्ध्वज्ञु। (६) (इच्कर्मव्यतिहारे) कर्मव्यतिहार में अन्त मे इ लग जायगा। केशाकेशि, दण्डादण्डि, बाहूबाहवि। (७) (धर्मादनिच्०) धर्म शब्द को धर्मन् हो जाता है। कल्याणधर्मा, समानधर्मा। (८) (नित्यमसिच् प्रजामेधयोः) नञ्, दु, सु के बाद प्रजा और मेधा में अस् लग जाता है। अप्रजा:, सुप्रजाः। अमेधाः, दुर्मेधा:। (९) (उपसर्गाच्च) उपसर्ग के बाद नासिका को नस। प्रणसः, उन्नसः। (१०) (द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः) द्वि, त्रि के बाद मूर्धन् को मूर्ध। द्विमूर्धः, त्रिमूर्धः। (११) (अङ्गुलेर्दारुणि) लकड़ी अर्थ के अङ्गुलि को अङ्गुल। पञ्चाङ्गुलं दारु। (१२) (बहुव्रीहौ०) अक्षि को अक्ष। जलजाक्षः, कमलाक्षी। (१३) (बहुव्रीहौ संख्येये०) त्रि को त्र, विंशति को विंश, दशन् को दश। द्वित्राः, द्विदशाः, आसन्नविंशाः।

नियम १५२—इन स्थानों पर अन्त में क लगता है—(१) (उरः प्रभृतिभ्यः०) उरस् आदि के बाद। व्यूढोरस्क:, प्रियसर्पिष्क। (२) (इन स्त्रियाम्) इन्-प्रत्ययान्त के बाद। बहुदण्डिका नगरी। (३) (नद्यृतश्च) ई, ऊ, ऋ के बाद। सुश्रीकः, सुवधूक:, सुमातृकः। (४) (शेषाद् विभाषा) अन्यत्र विकल्प से। महायशस्क, महायशा:।

अभ्यास २२

संस्कृत बनाओ—(क) (पितृ, नृ) १ इससे बढ़कर और कोई धर्माचरण नहीं है, जितना पिता की सेवा और उनका कहना मानना। २ मैं जगत् के माता-पिता पार्वतीपरमेश्वर की वन्दना करता हूँ। ३ पार्वती ने पिता से अरण्य मे निवास की माँग की। ४ पिता सौ आचार्यों से बढ़कर है और माता सौ पिताओं से। ५ मनुष्यों में तुम ही एक धन्य हो। ६ भगवन्, दीन मनुष्यों की रक्षा करो। (ख) (अद्, शास्) १. मै जिस जीव का मांस यहाँ खाता हूँ, वह परलोक मे मुझे खाएगा। यह मांस का मांसत्व है (मं+स=मांस)। २ फल खाओ, साग खाओ और दूध घी खाओ। ३ वह बालक को धर्म सिखाता है। ४. मै तुम्हारा शिष्य हूँ, तुम्हारी शरण मे आया हूँ, तुम मुझे शिक्षा दो। ५. अद्वितीय शासनवाली पृथ्वी का उसने शासन किया। ६ शिष्य को वेद-ज्ञान दिया। ७. धार्मिक राजा चोरो को दण्ड दे। (ग) (बहुव्रीहि) १. कृष्ण की भार्या रूपवती है और उसकी गायें चितकबरी है। २ अद्भुत गुणों से युक्त नल पृथ्वी का पति था। ३. दुष्टों मे परस्पर बाल खींच कर, डण्डे मार कर, हाथा-पाई करके झगड़ा हुआ। ४. कामदेव का धनुष फूलो का है। (घ) (सैन्य-वर्ग) १. डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद भारत के राष्ट्रपति थे और डा. राधाकृष्णन् भी राष्ट्रपति थे। २. भू, वायु और जल-सेना के कमाण्डर-इन-चीफो की एक बैठक सुरक्षामन्त्री के नेतृत्व में दिल्ली में हुई, जिसमें भारत की सुरक्षा के विषय में विचार-विनिमय हुआ। ३ सिपाही वर्दी पहने पहरा दे रहे हैं। ४. फौजी लोगो ने विद्रोहियों को दबाने के लिए पहले टीयर गैस छोड़ी और बाद मे बन्दूक, पिस्तौल और तोपों का प्रयोग करके उनको भस्मसात् कर दिया। ५ गत महायुद्ध मे अंग्रेजो का जंगी बेड़ा बहुत प्रसिद्ध था। ६. आजकल रूस और अमेरिका के पास एटम बम, हाइड्रोजन बम और युद्ध के विमान सबसे अधिक हैं। ७ आजकल के युद्धों में परमाणु बमों और युद्ध-विमानो का महत्त्व बढ गया है। ८. बम फेंककर हजारों लोगों का संहार किया जा सकता है। ९. बारूद से मकानों को उड़ाया जा सकता है। १०. नगर की सुरक्षा का भार एस० पी० और डी० एस० पी० पर मुख्यतः होता है। ११. प्रत्येक प्रान्त में पुलिस के उच्च अधिकारी आई० जी० और डी० आई० जी० होते हैं। १२. लड़ाई में मोर्चाबन्दी की जाती है और उसमें लड़ाई के विमान, पोत, पनडुब्बियाँ आदि का उपयोग होता है।

संकेत—(क) १ अतो महत्तरम्। पितरि शुश्रूषा, वचनक्रिया। २ पितरौ वन्दे। ३. पितरम् अरण्यनिवासम् अयाचत। ४ आचार्याणां शतं पिता, पितॄणां शतं माता, गौरवेणातिरिच्यते। ५ नृणाम्। ६ नॄन् पाहि। (ख) १ मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्। एतन्मांसस्य मांसत्वम्। ३ शास्ति। ४ शिष्यस्तेऽहं, शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। ५ अनन्यशासनामुर्वीं शशास। ६. शिष्यायाशिषद् वेदम्। ७ चौरान् दण्डेन शिष्यात्। (ग) १ रूपवद्भार्यं चित्रगुश्च कृष्ण। २ नल स भूजानिरभूद्गुणाद्भुत। ३ केशाकेशि, दण्डादण्डि, बाहूबाहवि युद्ध प्रवृत्तम्। ४. पुष्पधन्वा काम। (घ) २ समितिरेवा। ३ परिधाय पर्यटन्ति। ४. विद्रोहिणां प्रशमनार्थम्, प्रहृतम्, प्रयुज्य। ५ नौसेना, विश्रुता। ६ रूसदेशस्य। ७ आधुनिकेषु। ८ प्रक्षिप्य। ९ विध्वंसयितुं शक्यन्ते। १० कोटपाले, उपकोटपाले। ११. रक्षिणाम्, प्रधान रक्षिनिरीक्षका, उपप्रधान-रक्षि-निरीक्षका। १२ परिखया परिवेष्टनं क्रियते।

शब्दकोष—५७५ + २५ = ६००] **अभ्यास २४** (व्याकरण)

(क) वणिज् (वैश्य), वृत्तिः (स्त्री०, जीविका), वाणिज्यम् (व्यापार), ऋणम् (कर्ज), उत्तमर्णः (कर्ज देनेवाला), अधमर्णः (कर्ज लेनेवाला), कुसीदम् (सूद), कुसीदिकः (साहूकार), कुसीदवृत्तिः (स्त्री०, बैंकिंग, साहूकारा), पण्यम् (सामान, सौदा), विपणिः (स्त्री०, बाजार), आपणः (दूकान), आपणिकः (दूकानदार), विक्रेतृ (पु०, बेचनेवाला), ग्राहकः (गाहक, लेनेवाला), विक्रयः (बिक्री), वणिक्पञ्जिका (बही), दैनिकपञ्जिका (रोजनामचा, रोकड), नामानुक्रमपञ्जिका (लेखा बही), आये (सप्तमी, आयमध्ये), नाम्नि (सप्तमी, उधारखाते), सख्यानम् (हिसाब), लेखकः (मुनीम), राशिः (पु०, स्त्री०, धन, रकम)। (२४)। (ख) पण् (खरीदना)। (१)।

व्याकरण—(गो, अस् धातु, द्वन्द्व समास)

१ गो शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० स० १४)

२ अस् धातु के दसो लकारो के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३२)

नियम १५३—(चार्थे द्वन्द्वः) (उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः) जहाँ पर दो या अधिक शब्दों का इस प्रकार समास हो कि उसमें च (और) अर्थ छिपा हुआ हो तो वह द्वन्द्व समास होता है। द्वन्द्व समास मे दोनों पदों का अर्थ मुख्य होता है। द्वन्द्व समास की पहचान है कि जहाँ अर्थ करने पर बीच मे 'और' अर्थ निकले। द्वन्द्व समास तीन प्रकार का होता है—१. इतरेतर, २. समाहार, ३. एकशेष। (१) इतरेतर—जहाँ पर बीच मे 'और' का अर्थ होता है तथा शब्दों की सख्या के अनुसार अन्त मे वचन होता है अर्थात् दो वस्तुएँ हो तो द्विवचन, बहुत हों तो बहुवचन। प्रत्येक शब्द के बाद विग्रह में च लगेगा। रामश्च कृष्णश्च >रामकृष्णौ। इसी प्रकार सीतारामौ, उमाशकरौ, रामलक्ष्मणौ, भीमार्जुनौ। पत्र च पुष्प च फल च> पत्रपुष्पफलानि। रामलक्ष्मणभरताः। (परवल्लिङ्ग द्वन्द्व०) द्वन्द्व में अन्तिम शब्द के लिंग के अनुसार पूरे समास का लिंग होगा। मयूरी च कुक्कुटश्च> मयूरीकुक्कुटौ। कुक्कुटश्च मयूरी च> कुक्कुटमयूर्यौ। पहले में पु० है, दूसरे में स्त्री०। (२) समाहार—जहाँ पर कई शब्द अपना अर्थ बताते हुए समाहार (समूह) का अर्थ बताते हैं। इस समास में अन्त में नपु० एक० ही रहता है। यह समास मुख्यतः इन स्थानों पर होता है—(क) (द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य०) मनुष्य के अग, वाद्य के अग, सेना के अग में—पाणी च पादौ च > पाणिपादम् (हाथ-पैर)। मार्दङ्गिकपाणविकम्, रथिकाश्वारोहम्। (ख) (जातिरप्राणिनाम्) निर्जीव जातिवाचक शब्द। यवाश्च चणकाश्च> यवचणकम्। व्रीहियवम्। (ग) (येषां च विरोध०) जिनका जन्मसिद्ध वैर हो। अहिनकुलम्, गोव्याघ्रम्, काकोलूकम्। (घ) (विभाषा वृक्षमृग०) वृक्ष, मृग, पशु आदि में विकल्प से। कुशकाशम्, शुकबकम्, गोमहिषम्, दधिघृतम्, पूर्वापरम्, अधरोत्तरम्। (ङ) (विप्रतिषिद्ध०) विरोधी चीजों में। शीतोष्णम्, सुखदुःखम्, पापपुण्यम्। (च) (द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्०) अन्त में चवर्ग, द्, ष्, ह् होंगे तो अ अन्त में जुड़ेगा। वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम्। (३) एकशेष—अभ्यास २५ में देखो।

अभ्यास २४

संस्कृत बनाओ :—(क) (गो शब्द) १ गायें दूधवाली हों। २ चरागाह से गाय को लाओ। ३ बाड़े में गाय को बन्द करो। ४ गायों को पालो। ५ गाय की महिमा अपार है। ६ गायों में काली गाय अधिक दूध देती है। ७ राम की बात सुनकर सीता बोली। (ख) (अस् धातु) १ जिसके पास स्वयं बुद्धि नहीं है, शास्त्र उसका क्या भला कर सकता है? २ मेरे पास खाने को है। ३ जो मेरी चीज है, वह तुम ले लो। ४ उसके पास कुछ भी धन नहीं है। ५ वह चुप था। ६ अच्छा ऐसा ही सही। ७ सृष्टि के आदि में न असत् था और न सत्। ८ मैं पहले नहीं था, ऐसी बात नहीं है। ९ मैं जो चाहता हूँ, वह तुम्हें मिले। १० शिव तुम्हें मुक्ति दें। ११ सज्जनों के कल्याण के लिए श्री और सरस्वती का मेल हो। १२ अन्य राजाओं का दिया हुआ मेरे साग और नमक भर को होगा। १३ जैसा मैं उसके प्रति सोचता हूँ, क्या वह भी मेरे प्रति वैसा ही सोचती है? १४ सूर्य निकला। (ग) (द्वन्द्व) १ दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध प्रारम्भ हुआ। २ अतिथि के लिए पत्र, पुष्प और फल लाओ। ३ राम, लक्ष्मण और भरत भ्रातृ प्रेम की मूर्ति हैं। ४ मोरनी और मुर्गे वन में घूम रहे हैं। ५ मुनि सुख-दुःख, पाप-पुण्य और सर्दी-गर्मी को समान मानता है। ६ घी दूध और जौ-चने खाओ। ७ पूर्वापर और ऊँच-नीच को सोचकर बोलो। ८ छाता-जूता लाओ। (घ) (वैश्यवर्ग) १ बनिया साहूकारी का काम करता है, वह लोगों को रुपया उधार देता है और सूद वसूल करता है। २ आज बाजार में बहुत रौनक थी, दूकानें सजी हुई थीं, बनिए ग्राहकों को सामान बेच रहे थे और वे नगद खरीद रहे थे। ३ कर्ज लेनेवाला सदा दुःखी रहता है और कर्ज देनेवाला पनपता है। ४ वाणिज्य सुख का मूल और वैभव का कर्ता है। ५ बनियों की दूकानों पर मुनीम रहते हैं, वे दूकान की आय और व्यय का पूरा हिसाब बहियों में लिखते हैं। जो आमदनी होती है, उसे आय में और जो उधार जाता है, उसे उधार खाते लिखते हैं। दैनिक आय-व्यय रोजनामचा में लिखा जाता है और बाद में वही लेखा बही में वर्णानुक्रम से प्रत्येक व्यक्ति के हिसाब में लिखा जाता है। ६ बनिए रोज के रोज अपना हिसाब बहुत बारीकी से मिलाते हैं।

संकेत—(क) १ क्षीरिण्यः। २ शाद्वलात्। ३ व्रजमवरुणद्धि गाम्। ४ पालय। ५ गोस्तु मात्रा न विद्यते। ६ कृष्णा बहुक्षीरा। ७ गां निशम्य। (ख) १ यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्र०। २ अस्ति मे भोक्तुम्। ३ यन्ममास्ति। ४ नहि तस्यास्ति किंचित् स्वम्। ५ तूष्णीम्। ६ एवमेव स्यात्। ७ नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्। ८ न त्वेवाहं जातु नासम्। ९ ते तदस्तु। १० शिः श्रेयमायास्तु वः। ११ भूतये सङ्गतम्। १२ अन्यैर्नृपालैः परिदीयमानं शाकाय वा स्यात् लवणाय वा स्यात्। १३ किं नु खलु यथा वयमस्याम्, एवमियमप्यस्मान् प्रति स्यात्। १४ प्रादुरासीत्। (ग) ४ मयूरीकुक्कुटाः। ५ शीतोष्णम्, मनुते। ७ अधरोत्तरम्। ८ छत्रोपानहम्। (घ) १ धनम् ऋणरूपेण यच्छति गृह्णाति। २ अपूर्वा छटा, सुसज्जिता, वस्तूनि विक्रीणते, मूल्येन। ३ एधते। ४ मूलम्, कर्तृ। ५ आय, ऋणरूपेण दीयते, लिख्यते, आयव्ययविवरणे। ६ प्रत्यहम्, अतिसूक्ष्मतया गणयन्ति।

शब्दकोष—६०० + २५ = ६२५] अभ्यास २५ (व्याकरण)

(क) अभिकर्तृ (पु०, एजेण्ट, आढती), अभिकरणम् (एजेन्सी, आढत), शुल्कम् (कमीशन, दलाली), शुल्काजीवः (दलाल, कमीशन एजेण्ट), तुला (तराजू), तोलनम् (तोलना), तोलः (तोल), तुलामानम् (बाट, बटखरा), अर्घः (भाव रेट), मूल्यम् (मूल्य), मूल्येन (तृ०, नगद), ऋणरूपेण (तृ०, उधार), अर्घापचिति (स्त्री०, भाव गिरना), अर्घोपचितिः (स्त्री०, भाव चढ़ना), मन्दायनम् (मन्दी), मूलधनम् (पूँजी), विनिमयः (अदल-बदल), आयात (बाहर से आना, इम्पोर्ट), निर्यात. (बाहर जाना, एक्सपोर्ट), कर. (टैक्स), विक्रयकर. (सेल्स टैक्स), आयकर (इन्कम टैक्स), क्रयः (खरीद), आयात शुल्कम् (आयात पर चुंगी), निर्यातशुल्कम् (निर्यात पर चुंगी) । (२५) ।

व्याकरण (प्राञ्च्, उदञ्च्, ब्रू धातु, एकशेष, अलुक् समास)

१. प्राञ्च्, उदञ्च् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो । (देखो शब्द० सं० १६, १७)

२ ब्रू धातु के पूरे रूप स्मरण करो । (देखो धातु० ४८)

नियम १५४—(एकशेष) एकशेष मुख्यत. इन स्थानों पर होता है—(क) (सरूपाणाम्०) द्विवचन और बहुवचन में एक शब्द शेष रहेगा, उसीमें विभक्ति होगी । वृक्षश्च वृक्षश्च > वृक्षा । वृक्षा. । (ख) (पिता मात्रा) पिता माता में पितृ शेष रहेगा, उससे द्विवचन होगा । माता च पिता च > पितरौ । (ग) (पुमान् स्त्रिया) स्त्रीलिंग और पुलिंग म पु० शेष रहेगा, उससे द्विवचन होगा । हसी च हसश्च > हसौ ।

नियम १५५—(एकशेष) (नपुंसकमनपुंसकेन०) यदि एक वाक्य में पुलिंग और स्त्रीलिंग शब्द है तो सर्वनाम और क्रिया पु० होंगे । यदि पु०, स्त्री०, नपु० तीनों है तो सर्वनाम और क्रिया नपुंसक० होंगे । शुक्ल. पट , शुक्ला शाटी, ताविमौ क्रीतौ ।

नियम १५६—(एकशेष) (त्यदादीनि०) कोई संज्ञा-शब्द और सर्वनाम होगा, तो सर्वनाम शेष रहेगा । कई सर्वनाम होंगे तो अन्तिम शेष रहेगा । स रामश्च > तौ ।

नियम १५७—(एकशेष) प्रथम मध्यम, उत्तमपुरुष एकत्र हों तो क्रिया इस प्रकार रहेगी .—(क) प्रथम० + प्रथम० = क्रिया प्रथमपुरुष । वचन समूह के अनुसार । राम. रमा च पठत । (ख) प्रथम० + मध्यम० = क्रिया मध्यम पु० । वचन सख्यानुसार । स त्वं च पठथ । ते यूयं च गच्छथ । (ग) यदि उत्तमपुरुष भी होगा तो उत्तम पुरुष शेष रहेगा । वचन सख्या के अनुसार होगा । स त्वम् अहं च पठाम ।

नियम १५८—(नञ्समास) (नञ्, तस्मान्नुडचि) तत्पुरुष और बहुव्रीहि में नञ् समास होता है । नञ् का 'अ' शेष रहता है । बाद में कोई स्वर होगा तो अ को अन् हो जायगा । न ब्राह्मण > अब्राह्मण. । न पुत्र यस्य स. > अपुत्र. । उपस्थितः > अनुपस्थित. । अतिथि , अज्ञ., अनुचित , अनादर , अनीश्वरवादी ।

नियम १५९—(अलुक् समास) जिन स्थानों पर बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता है, उसे अलुक् समास कहते है । विभक्ति लोप इन स्थानो पर नही होता है । परस्मैपदम् , आत्मनेपद , युधिष्ठिर., कण्ठेकाल (शिव), अन्तेवासिन् (शिष्य), पश्यतोहर (सुनार, डाकू), देवानांप्रिय. (मूर्ख), शुन.शेप. (नाम), दिवोदास (नाम), खेचरः (देव आदि), सरसिजम् (कमल), मनसिज (काम), पात्रेसमिता. (खाने के साथी), गेहेशूर. (घर में शूर), गेहेनर्दी (घर मे ही चिल्लानेवाला) ।

अभ्यास २५

संस्कृत बनाओ—(क) (प्राञ्च्, उदञ्च्) १ इस विषय में पूर्व, पश्चिम और उत्तर के वैयाकरणों में एकमत नहीं है। २ पूर्व पश्चिम और उत्तर के लोग अपने-अपने प्रदेश को अधिक मानते हैं। ३ पूर्व दिग्भाग में सूर्य उदय होता है और पश्चिम में अस्त होता है। उत्तर में हिमालय शोभित होता है। ४ पूर्व दिशा में अब चन्द्रमा निकल रहा है और सूर्य पश्चिम में छिप रहा है। उत्तर में हिमालय है। (ख) (ब्रू धातु) १ मैं शकुन्तला के विषय में कह रहा हूँ। २. वह बच्चे को धर्म बता रहा है। ३ तुमसे क्या कहें? ४ सज्जन कार्य से अपनी उपयोगिता बताते हैं, न कि मुँह से। ५. मेरे चार प्रश्नों का उत्तर दो। ६. दिलीप ने शेर को उत्तर दिया। ७ सत्य बोलो, प्रिय बोलो, अप्रिय सत्य न बोलो। ८ मैंने कहा कि चरित्र की उन्नति से देशोन्नति होती है। (ग) (एकशेष, अलुक्) १ माता-पिता की वन्दना करता हूँ। २. एक कापी, एक होल्डर और एक पुस्तक, ये तीन चीजें खरीदीं। ३ एक डंडा और एक साड़ी, ये दो समान खरीदे। ४ देवदत्त और तुम कब खेलने जाओगे? ५ देवदत्त, तुम और हम सब आज घूमने चलेंगे। ६ कक्षा में अनुपस्थित न हो, अनीश्वरवादी न हो, अतिथि का अनादर न करो, अनुदार मत हो। ७ अज्ञ अनुचित कार्य करते हैं। ८ सुनार देखते-देखते सोना चुरा लेता है। ९. आजकल अधिकांश मित्र खाने के साथी होते हैं, मौका पड़ने पर काम नहीं आते। १० कुत्ता भी घर पर शेर होता है। (घ) (व्यापारीवर्ग) १ आढ़ती आढ़त करता है, दूसरे के लिए सामान मँगाता है और बेचता है। २ दलाल कमीशन लेकर एक का सामान दूसरे के हाथ बिकवाता है। ३ ग्राहक दूकानदार से वस्तुओं का भाव पूछता है। ४ दूकानदार तराजू पर बाट रखकर सामान तोलता है, डण्डी नहीं मारता है। ५ कुछ दुकानदार डंडी भी मारते हैं और कम तोल देते हैं। ६ सदा नगद लेना चाहिए। ७ उधार लेना और उधार देना दोनों ही अनुचित और हानिकारक हैं। ८ भाव कभी गिरता है, कभी चढ़ता है, कभी मन्दी भी आती है। ९ सरकार ने बिक्री पर सेल्स-टैक्स, आयात पर आयात कर, निर्यात पर निर्यात-कर और आमदनी पर इन्कम-टैक्स लगाए हुए हैं।

संकेत—(क) १ प्राचां प्रतीचामुदीचां नैकमत्यम्। २ प्राञ्चः प्रत्यञ्चः उदञ्चः। ३ प्राचि दिग्भागे, प्रतीचि, उदीचि। ४ प्राच्यां दिशि, प्रतीच्याम्, उदीच्याम्। (ख) १ शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि। २ माणवकं धर्मं ब्रूते। ३ किं त्वां प्रति ब्रूमहे। ४ ब्रुवते हि फलेन साधवो, न कण्ठेन निजोपयोगिताम्। ५ ब्रूहि मे चतुरः प्रश्नान्। ६ प्रत्यब्रवीत्। ७ सत्यं ब्रूयात्, प्रियम्। ८ अवोचम्। (ग) १ पितरौ। २. एतानि त्रीणि वस्तूनि। ३ एतौ द्वौ पदार्थौ। ४ गमिष्यथ। ५ गमिष्यामः। ८ पश्यतोहरः पश्यत एव, मुष्णाति। ९ पात्रेसमिता भवन्ति, न तु कार्ये। १० गेहेशूरः, गेहेनर्दी वा। (घ) १. आनाययति, विक्रीणीते। २ अपरस्य हस्ते, विक्रापयते। ४ तोलयति, कूटमानं न कुरुते। ६. ग्रहीतव्यम्। ७ दानादानम्, द्वयमेव। ८ जातु अर्घापचितिर्भवति। ९ सर्वकारेण निर्धारितानि सन्ति।

शब्दकोश—६२५ + २५ = ६५०] अभ्यास २६ (व्याकरण)

(क) अन्नम् (अन्न), सस्यम् (अन्न, खेत मे विद्यमान), धान्यम् (धान, भूसी-सहित), तण्डुल. (चावल, भूसी रहित), व्रीहि. (पु०, चावल), गोधूम. (गेहूँ), चणक. (चना), यव. (जौ), माष (उड़द), मुद्ग (मूँग), मसूरः (मसूर), सर्षप (सरसों), आढकी (स्त्री०, अरहर), द्विदलम् (दाल), तिल (तिल), कलाय (मटर), यवनाल. (ज्वार), प्रियगु. (पु०, बाजरा), चूर्णम् (आटा), चणकचूर्णम् (बेसन), मिश्रचूर्णम् (मिस्सा आटा), अणु. (पु०, बासमती चावल), श्यामाक. (सावाँ, जगली चावल), वनमुद्ग. (लोबिया), रसवती (स्त्री०, रसोई) । (२५)

व्याकरण (पयामुच्, वणिज्, या, पा धातु, समासान्तप्रत्यय)

१. पयोमुच्, वणिज् के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० १५, १८)

२. या और पा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४०, ४१)

नियम १६०—(समासान्तप्रत्यय) निम्नलिखित स्थानो पर समास होने के बाद अन्त मे कोई प्रत्यय होता है। बहुव्रीहि के समासान्त प्रत्ययों के लिए देखो नियम १५१ और १५५। द्वन्द्व के समासान्त प्रत्यय के लिए देखो नियम १५३ (च)। (१) (राजाहःसखिभ्यष्टच्) टच् होकर समास के अन्त में राजन् को राज, अहन् को अह या अह्न, सखि को सख हो जाता है। महान् चासौ राजा > महाराज । देवराजः। उत्तमम् अहः > उत्तमाह.। कृष्णस्य सखा > कृष्णसखः। (२) (अह्नोऽह्न एतेभ्य) इन-स्थानो पर अहन् को अह्न होता है। सर्वाह्न, पूर्वाह्न, मध्याह्नः, सायाह्न, द्व्यह्न., अपराह्न.। (न सख्यादे.०) सख्या पहले होगी तो समाहार मे अहन् का अह ही होगा। एकाह., द्व्यहः, त्र्यह.। (३) (आन्महत ०) प्रथम पद के महत् को महा हो जाता है, कर्मधारय और बहुव्रीहि मे। महात्मा, महादेवः, महाशय.। (४) (अह. सर्वैकदेश०) अच् होकर रात्रि का रात्र हो जाता है, अह सर्व आदि के बाद। अहोरात्र., सर्वरात्र., पूर्वरात्र., द्विरात्रम्, नवरात्रम्, अतिरात्र.। (५) (अनोऽश्मायः०) अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् के अन्त मे टच् (अ) जुड जाता है, जाति या सज्ञा अर्थ में। उपानसम्, अमृताश्म., कालायसम्, मण्डूकसरसम्। महानसम् (रसोई), पिण्डाश्मः, लोहितायसम्, जलसरसम्। (६) (ऋक्पूरब्धू ०) समासान्त अ होकर ऋच् को ऋच, पुर् को पुर, अप् को अप, धुर् को धुरा, पथिन् को पथ हो जाता है। ऋच. अर्धम् > अर्धर्च.। विष्णो पुः > विष्णुपुरम्। विमलाप सर। राजधुरा। सुपथो देश.। (७) (द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यो०) इन स्थानो पर अन्तिम अप् को ईप हो जाता है। द्वीपम्, अन्तरीपम्, प्रतीपम्, समीपम्। (८) (अच् प्रत्यन्वव०) अच् होकर इन स्थानो पर लोमन् को लोम होता है। प्रतिलोमम्, अनुलोमम्, अवलोमम्। (९) (अचतुर०) निपातन से ये रूप बनते हैं। नक्तन्दिवम्, रात्रिन्दिवम्, अहर्दिवम्, नि.श्रेयसम्, पुरुषायुषम्, ऋग्यजुषम्। (१०) (न पूजनात्, किम.क्षेपे, नञस्तत्पुरुषात्) पूजा तथा निन्दा अर्थ मे और नञ्समास होने पर कोई समासान्त नहीं होगा। सुराजा, किंराजा, अराजा, असखा। (११) (अव्ययीभावे शरत्०) अव्ययीभाव में (क) शरद् आदि से टच् (अ) होगा। उपशरदम्, प्रतिविपाशम्। (ख) (प्रतिपर०) प्रति, पर, सम्, अनु के बाद अक्षि को अक्ष होगा। प्रत्यक्षम्, परोक्षम्, समक्षम्। (ग) (अनश्च) अन्नन्त से टच् (अ) और अन् का लोप होगा। उपराजम्, अध्यात्मम्।

अभ्यास २६

संस्कृत बनाओ—(क) (पयोमुच्, वणिज्) १. बादल गरजता है। २ बादल की बूँदों से सींची हुई वन-राजि शोभित हुई। ३ बादल की पंक्तियों में बिजली की तरह वह राजा चमक रहा था। ४ बादलों में बिजली चमकती है। ५. सत्यवक्ता सदा निर्भय होते हैं। ६. बनियों का टका ही धर्म और टका ही कर्म है। ७ बनिया व्यापार में सर्वस्व लगा देता है तथा देश और विदेश में सर्वत्र ही व्यापारार्थ जाता है। ८. राजा का (भूभुज्) दाहिना हाथ मन्त्री होता है। ९ वैद्यों की (भिषज्) परीक्षा सन्निपात रोग में होती है। १० अग्नि (हुतभुज्) की लपटें उठ रही हैं। (ख) (या, पा धातु) १. भाग्य से ही धन आते हैं और जाते हैं। २ जवानी ढल जाती है। ३. विश्वासघातक सर्वत्र निन्दित होता है। ४. बच्चा दाई की अँगुली पकड़कर चला। ५. दिलीप गाय के पीछे चला। ६. अच्छा यह छोडो, ठीक बात पर आओ। ७. तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। ८ झूठ बोलने से मनुष्य गिर जाता है। ९ बच्चा सोता है। १० खिलाने से कौन वश में नहीं आ जाता? ११. सूर्य उदय होता है और अस्त होता है। १२. नदी के पार जाता है। १३ गाय उस राजा से शोभित हुई (भा)। १४ तुम पिता की तरह प्रजा की रक्षा करते हो। १५ शिव तुम्हारी रक्षा करे। (ग) (समासान्त) १ वह महाराजा कृष्ण का सखा है। २. दिन-रात परिश्रम से काम करो। ३. तालाब का जल स्वच्छ है। ४. इस नगर की सड़कें अच्छी हैं। ५. अध्यात्म में मन लगाओ। (घ) १. बाजार में सभी दूकानों पर गेहूँ, जौ, चना, चावल, दाल, मटर, ज्वार, बाजरा बिकते हैं। २ आजकल कई दालें चल रही हैं, अरहर की दाल, उड़द की दाल, मूँग की दाल और मसूर की दाल। ३ गेहूँ के आटे का भाव ४० रु० मन है। ४ गेहूँ का आटा और बेसन की रोटी जाड़े में अधिक स्वादिष्ट लगती है। ५ बासमती चावल का भात मीठा होता है। ६ भात और दालें अच्छी पकी होती हैं तो भोजन रुचिकर और पौष्टिक होता है। ७ आज रसोई मे मीठे चावल, नमकीन चावल, अरहर, उड़द, मूँग और मसूर की दालें बनी हैं।

सकेत—(क) १ गर्जति। २ पृषतै सिक्ता। ३ पङ्क्तिषु विद्युदिव व्यरुचत्। ४ जलमुक्षु, द्योतते। ५ सत्यवाच् । ६ वणिजो वित्तधर्माणो वित्तकर्माणश्च भवन्ति। ७ नियुङ्क्ते। ८० भूभुजाम्। ९ भिषजा सान्निपातिके०। १० हुतभुजोऽर्चीषि उद्यान्ति। (ख) १ भवन्ति यान्ति। २ यौवनमवनतिं याति। ३ वाच्यता याति। ४ धात्र्या, अवलम्ब्य, ययौ। ५ गामन्वग् ययौ। ६ यातु, प्रकृतमनुमधीयताम्। ७ यातस्तवापि च विवेकः। ८ लघुता याति। ९ निद्रा याति। १० को न याति वश लोके पिण्डेन पूरित। ११ उदय याति, अस्त याति। १२ पार याति। १३ ःभो। १४ प्रजा पासि। १५ पातु व। (ग) १ कृष्णसख। २ नक्तन्दिवम्। ३ विमलाप सर। ४ सुपथ नगरम्। ५ अध्यात्मे, कुरु। (घ) १ विक्रीयन्ते। २ व्यवह्रियन्ते, आढकीद्विदलम्, माषद्विदलम्। ३ चत्वारिंशद्रूप्यकाणि। ४ शरदि, रोचन्ते। ५ भक्तम्। ६ सुपक्वानि चेत्। ७ मिष्टौदनम्, लवणौदनम्, पक्वानि।

शब्दकोष—६५० + २५ = ६७५] अभ्यास २७ (व्याकरण)

(क) रोटिका (रोटी), पूपला (फुल्का), पूलिका (पूरी), शष्कुली (स्त्री०, खस्ता पूरी), पिष्टिका (कचौडी), पूपिका (पराँठा), लप्सिका (हलुआ), पायसम् (खीर), सूत्रिका (सेवई), पक्वान्नम् (पकवान), सूप: (दाल), शाक: (साग), राज्यक्तम् (रायता), क्षीरम् (दूध), आज्यम् (घी), नवनीतम् (मक्खन), तक्रम् (मट्ठा), यवागू (स्त्री०, लपसी, आटे का हलुआ), दाधिकम् (लस्सी), कृशर (खिचडी), शर्करा (शक्कर, बूरा), सिता (चीनी), सन्धितम् (अचार), अवलेह (चटनी), किलाट (खोया)। (२५)

व्याकरण (भूभृत् शब्द, दुह्, लिह् धातु, स्त्रीप्रत्यय)

१. भूभृत् शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० १९)

२. दुह् और लिह् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३६, ३७)

नियम १६१—पुलिंग शब्दो को स्त्रीलिंग बनाने के लिए जो प्रत्यय लगते हैं, उन्हे स्त्रीप्रत्यय कहते हैं। ये साधारणतया ३ है—१ टाप् (आ), २ ङीप् (ई), ३. ङीष् (ई)। इनके रूप रमावत् या नदीवत् चलेंगे। (क) टाप्—(१) (अजाद्यतष्टाप्) *अज आदि और अकारान्त शब्दो के अन्त मे टाप् (आ) लगता है।* जैसे—अज > अजा, बाल > बाला। इसी प्रकार अश्वा, कोकिला, प्रथमा, द्वितीया, ज्येष्ठा, कनिष्ठा। (२) (प्रत्ययस्थात्कात्०) यदि शब्द के अन्त मे '<u>अक</u>' होगा तो टाप् होने पर 'इका' हो जाएगा। कारक > कारिका। इसी प्रकार गायिका, अध्यापिका, मूषिका, बालिका।

नियम १६२—(ख) ङीप्—(१) (उगितश्च) जिन प्रत्ययों में से उ या ऋ का लोप होता है, उनमे अन्त में ङीप् (ई) लगेगा। जैसे—मतुप्, शतृ, क्तवतु, ईयसुन् प्रत्ययवाले शब्द। मतुप्—श्रीमत् > श्रीमती। बुद्धिमती, विद्यावती, भगवती। शतृ—पठत् > पठन्ती। लिखन्ती, हसन्ती, गच्छन्ती, कुर्वन्ती। क्तवतु—गतवती, पठितवती। ईयस्—श्रेयसी, गरीयसी, भूयसी, ज्यायसी। (२) (ऋन्नेभ्यो ङीप्) अन्त में ऋ या न् होगा तो ङीप् (ई) लगेगा। कर्तृ > कर्त्री। हर्त्री, धर्त्री, भर्त्री, कवयित्री, अध्येत्री, विधात्री। दण्डिन् > दण्डिनी। मानिनी, मनोहारिणी, तपस्विनी, राज्ञी। (३) (टिड्ढाणञ्०) टित्, ढ (एय), अण् (अ), अञ् (अ), ठक् (इक), ठञ् (इक) आदि प्रत्यय होने पर ङीप् (ई) होगा। जैसे—टित्—नदी, पुरातनी, सनातनी। दैविकी, भौतिकी, आध्यात्मिकी। (४) (वयसि प्रथमे) बाल्य और युवा आयु में ङीप् (ई)। कुमारी, किशोरी, तरुणी। (५) (द्विगो.) द्विगु समास मे। त्रिलोकी, शताब्दी, चतुर्युगी।

नियम १६३—(ग) ङीष्—(१) (षिद्गौरादिभ्यश्च) षित् और गौर आदि से ङीष् (ई)। नर्तकी, गौरी, रजकी। (२) (पुंयोगादा०) पुंलिंग से स्त्रीत्व में। गोप की स्त्री > गोपी। शूद्री। (३) (जातेरस्त्री०) जातिवाची शब्दों से। ब्राह्मण > ब्राह्मणी। हरिणी, मृगी, सिंही। परन्तु क्षत्रिया, वैश्या ही होगा। (४) (वोतो गुणवचनात्) गुणवाची से विकल्प से। मृद्वी, मृदुः। (५) (इन्द्रवरुणभव०) इन्द्र आदि में आनी लगेगा। इन्द्राणी, भव > भवानी, शर्व > शर्वाणी, मातुल > मातुलानी, उपाध्याय > उपाध्यायानी, आचार्य > आचार्याणी, आचार्या। यवन > यवनानी (लिपि)।

नियम १६४—इन शब्दो के स्त्रीलिंग में ये रूप होते हैं—पति > पत्नी, युवन् > युवतिः, श्वशुर > श्वश्रूः, विद्वस् > विदुषी, राजन् > राज्ञी, नर > नारी, युवत् > युवती।

[illegible handwritten note]

अभ्यास २७

संस्कृत बनाओ—(क) (भूभृत्) १ राजा (भूभृत्) की नीति का सर्वत्र आदर है, क्योंकि वह जनता को अपनी प्रजा के तुल्य मानता है। २. राजा (भूभृत्) में गुण हैं और पर्वत पर (भूभृत्) ओषधियाँ है। ३. राजाओ (महीभृत्) का हित प्रजा के हित के साथ जुडा हुआ है। ४ राजा (महीक्षित) के धार्मिक होने पर प्रजा धार्मिक होती है। ५ चन्द्रमा (शशभृत्) की चाँदनी जगत् को आह्लादित करती है। ६. कौए (परभृत्) की आवाज कानों को अच्छी नहीं लगती है। ७. हवाएँ (मरुत्) सुखद बह रही थीं। ८ रघु ने विश्वजित् यज्ञ में समस्त खजाना दान में दे दिया था। (ख) (दुह्, लिह्) १. गाय से दूध दुहता है। २ दिलीप यश के लिए पृथ्वी से कर लेता था। ३ ग्वाले ने गाय को दुहा। ४ सत्य और प्रिय वाणी कामनाओं को पूर्ण करती है, अशोभा को दूर करती है और कीर्ति को देती है। ५. भौरे पद्मो से मधु पी रहे हैं। ६. गाय ने बछडे को चाटा। ७. किसी मूर्ख ने बन्दर की छाती पर हार डाला। बन्दर ने उसे चाटा, सूँघा और लपेट कर उस पर बैठ गया। (ग) (स्त्रीप्रत्यय) १. गायिका गाती है, अध्यापिका पढाती है, बालिका पढती है, तपस्विनी तप करती है, रानी शृंगार कर रही है, पत्नी खाना पकाती है, कवयित्री कविता करती है, नर्तकी नाचती है, युवती वस्त्रों को सीती है, धोबिन कपडे धोती है। २ जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढकर हैं। ३. सास-ससुर, नर नारी, युवा-युवतियाँ, राजा-रानी, पति-पत्नी, विद्वान् विदुषी, उपाध्याय-उपाध्यायानी, आचार्य आचार्याणी प्रात.काल उद्यान में घूमते हैं। ४ आचार्य की स्त्री आचार्याणी होती है और जो स्वय पढाती है वह आचार्या होती है। ५. यूनानी लिपि देवनागरी लिपि से भिन्न है। (घ) (भक्ष्यवर्ग) १. आज दिवाली का शुभ पर्व है। सभी घरों में स्त्रियाँ रसोई और चूल्हे को पोतकर पूरी, खस्तापूरी, कचौडी, हलुवा, खीर, सेवई आदि पकवान बना रही हैं। वे कुटुम्ब के लोगों को खाना परोसती हैं और पकवान के साथ साग, रायता, अचार, चटनी, पापड, दही, चीनी और बूरा भी परोसती हैं। २. साधारणतया प्रतिदिन रोटी, फुलका, भात, दाल, साग, चटनी, अचार ही खाया जाता है। दाल-साग में घी डाला जाता है। ३ कभी-कभी खिचडी, कढी और लपसी भी बनती है। ४. नाश्ते में प्राय चाय, मट्ठा, लस्सी, घुघुरी, पराँठा या दूध चलता है।

संकेत —(क) १ आद्रियते, प्रजा प्रजा स्वा इव। ३. समन्वित वर्तते। ४. महीक्षिति धर्मिणि प्रजा धर्मिष्ठा। ५ आह्लादयति। ६. परभृतो रवो न श्रुतिसुखद.। ७ मरुतो वह. सुखा। ८ विश्वजिति अध्वरे निःशेषविश्राणितकोषजात। (ख) १ गाँ पय.। गा दुदोह। ३. मधुकृत। ४ सूनृता वाक्, काम दुग्धे, विप्रकर्षत्यलक्ष्मी कीर्ति च सूते। ५. लिहन्ति। ६. वत्समलिक्षत्। ७ हार वक्षसि केनापि दत्तमज्ञेन मर्कट। लेढि जिघ्रति सक्षिप्य करोत्युन्नतमासनम्। (ग) १. अध्यापयति, तपश्चरति, रचयति, नृत्यति, सीव्यति, रजनी, प्रक्षालयति। २ गरीयसी। ५ यवनानी, भिद्यते। (घ) १ पर्व, महानस चुल्लिं च विलिप्य, पचन्ति, कौटुम्बिकेभ्यो जनेभ्य, परिवेषयन्ति, पर्पटान्, दधि। २ भुज्यते अभ्यवह्रियते वा, निक्षिप्यते। ३ तेमनम्। ४. कल्यवर्तो, चायम्, कुल्माषा, भक्ष्यते।

शब्दकोष—६७५ + २५ = ७००] अभ्यास २८ (व्याकरण)

(क) मिष्टान्नम् (मिठाई), कान्दविकः (हलवाई), मोदकः (लड्डू), पूपः (पूआ), अपूपः (मालपूआ), कुण्डली (स्त्री०, जलेबी), अमृती (स्त्री०, इमरती), हैमी (स्त्री० बर्फी), पिण्ट (पेडा), कौष्माण्डम् (पेठे की मिठाई), दुग्धपूपिका (गुलाब-जामुन), रसगोल. (रसगुल्ला), शर्करापाल· (शक्करपारा), मधुमण्ठः (बालूशाही), संयावः (गुझिया), सन्तानिका (मलाई), कूर्चिका (खडी), कलाकन्दः (कलाकन्द), पर्पटी (स्त्री०, पापडी), घृतपूर. (घेवर), मधुशीर्षः (खाजा), मिष्टपाकः (मुरब्बा), वाताशः (बताशा), मोहनभोगः (मोहनभोग), गजकः (गजक)। (२५)

व्याकरण (भगवत्, धीमत् शब्द, रुद्, स्वप् धातु, कर्तृवाच्य, पदक्रम)

१ भगवत् और धीमत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २०, २१)

२. रुद् और स्वप् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३४, ३५)

नियम १६५—(कर्तृवाच्य) कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्ता के अनुसार ही क्रिया का लिंग, वचन, विभक्ति या पुरुष होगा। कर्ता एक० होगा तो क्रिया एक०, द्वि० होगा तो द्वि०, बहु० होगा तो बहु०। बालकाः पुस्तकानि पठितवन्त·, बालिकाः पठितवत्य। कर्तृवाच्य मे इन बातों का ध्यान रखें :—(१) यदि 'च' लगाकर कर्ता अनेक हो तो तदनुसार क्रिया द्वि० या बहु० होगी। रामः कृष्णश्च गच्छतः। नियम १५७ भी देखें। (२) यदि 'वा' लगा हो और प्रत्येक एक० हों तो क्रिया एक०, यदि अन्तिम बहु० हो तो क्रिया बहु०। राम. कृष्णो वा पठतु। (३) कर्ता और कर्म के विशेषणो मे कर्ता और कर्म के लिंग, वचनादि लगेंगे। रूपवती स्त्री। (४) कभी 'च' लगने पर क्रिया अन्तिम कर्ता के अनुसार होती है। उद्वेगः कलह च वर्धते। (५) विंशति·, शतम्, सहस्रम् आदि निश्चित लिंग और निश्चित वचन हैं, इनमे अन्तर नहीं होगा। शत जना., सहस्र स्त्रियः, विंशति. छात्राः।

नियम १६६—(सापेक्ष सर्वनाम) यत् और तत् सापेक्ष सर्वनाम हैं (जो वह)। जो यत् का लिंग, विभक्ति, वचन होगा, वही तत् का होगा। बुद्धिर्यस्य बल तस्य।

नियम १६७—यदि प्रथम और द्वितीय वाक्य में लिंग-भेद होगा तो तत् शब्द का लिंग प्राय. द्वितीय वाक्यवत् होगा। शैत्य हि यत्, सा प्रकृतिर्जलस्य।

नियम १६८—'यत्' शब्द 'कि' अर्थ में भी आता है, तब वह नपु० एक० ही रहेगा। यह सत्य है कि०—सत्यमेतद् यत् सम्पत् सम्पदमनुबध्नातीति।

नियम १६९—(पदक्रम) संस्कृत के वाक्यों में शब्दों के क्रम का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। कर्ता कर्म क्रिया आगे पीछे भी रखे जा सकते हैं। स पुस्तक पठति, पुस्तक पठति स. आदि। परन्तु साधारणतया नियम यह है कि :—(१) पहले कर्ता, फिर कर्म, बाद मे क्रिया। कर्ता और कर्म के विशेषण कर्ता और कर्म से पहले रखे जाएँगे। (२) सम्बोधन सबसे पहले रखा जाता है। (३) कर्मप्रवचनीय अनु प्रति आदि कर्म के बाद आते हैं। (४) सह, ऋते, विना आदि सम्बद्ध शब्द के बाद में आते हैं। (५) च, वा, तु, हि, चेत्, ये प्रारम्भ में नही आते। (६) प्रश्नवाचक अपि, किम्, कथम्, कियत् आदि तथा विस्मयादिबोधक अव्यय—हो, हन्त आदि प्रारम्भ में आते हैं।

अभ्यास २८

संस्कृत बनाओ—(क) (भगवत्, धीमत्) १. भगवान् काश्यप सकुशल तो हैं? २. भगवन्! मैं पराधीन हूँ। ३ सिद्धि-सम्पन्न महात्माओं की कुशलता अपने हाथ में होती है। ४ विद्वानों के लिए कोई भी चीज अज्ञात नहीं होती। ५. गुणवान् को कन्या देनी चाहिए, यह माता-पिता का मुख्य विचार होता है। ६ सूर्य (भानुमत्) जिस दिशा में उदय होता है, वही पूर्व दिशा होती है। सूर्य दिशा के अधीन होकर उदय नहीं होता। ७. पहाड (सानुमत्) की चोटी पर बर्फ दिखाई दे रही है। (ख) (रुद्, स्वप्) १ मैं निराधार हूँ, कहो किसके सामने रोऊँ। २ सीता के वियोग में राम की दयनीय स्थिति को देखकर पत्थर भी रो पडते हैं और वज्र का भी हृदय फट जाता है। ३ यशोवती आँचल से मुँह ढककर खूब जोर से बहुत देर रोई। ४ हर्ष पिता के पैर पकडकर चीख-चीखकर बहुत देर रोया। ५ सभी अपने साथियों पर विश्वास करते हैं (विश्वस्)। ६ मुझे अँगूठी का विश्वास नहीं है। ७. हृदय धैर्य रख, धैर्य रख। (ग) (कर्तृवाच्य) १ जिसके पास पैसा होता है, उसके मित्र हो जाते हैं, उसके ही बन्धु हो जाते हैं। २ जिसके पास बुद्धि है, उसके पास बल है। ३ जो शीतलता है, वह जल का स्वभाव है। ४. जो दूसरे के गुणों की असहिष्णुता है, वह दुर्जनों का स्वभाव है। ५ जो जिसके योग्य हो, विद्वान् उसे उससे मिला दे। ६ यह कहावत सत्य है कि सम्पत्ति के पीछे सम्पत्ति चलती है और विपत्ति के पीछे विपत्ति। ७ सौ बालक, सौ स्त्रियाँ और एक हजार लोग इस उत्सव में हैं। (घ) (मिष्टान्नवर्ग) होली का पवित्र पर्व है। सभी ओर आनन्द और उत्साह का सचार है। घरों में स्त्रियाँ लड्डू, पूए, मालपूए, रसगुल्ले, गुझिया, शक्करपारे आदि मिठाइयाँ बना रही हैं। हलवाई अपनी दूकानों पर लड्डू, पेडा, जलेबी, इमरती, बर्फी, पेठे की मिठाई, गुलाबजामुन, रसगुल्ला, चमचम, बालूशाही, रबडी, कलाकन्द, घेवर, मोहनभोग, सोहनभोग, गुझिया, बताशे और पपडी बेच रहे हैं। लोग अपने लिए और अपने मित्रो के लिए खरीद रहे हैं। वे मित्रो के घर मिठाइयाँ बैना के रूप में भेजते हैं।

सकेत—(क) १ अपि कुशली। २ परवानय जन। ३ स्वाधीनकुशला सिद्धिमन्त। ४ न खलु धीमता कश्चिदविषयो नाम। ५ गुणवते कन्या प्रतिपादनीयेत्यय तावत् पित्रो प्रथम सकल्प। ६ उदयति दिशि यस्या भानुमान् सैव पूर्वा। न हि तरणिरुदेति दिक्पराधीनवृत्ति। ७ शिखरे हिम दृश्यते। (ख) १ कस्य पुरतो रोदिमि। २. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। ३ पटान्तेन मुख प्रच्छाद्य मुक्तकण्ठम् अतिचिर प्रारोदीत्। ४ पादौ आश्लिष्य विमुक्ताराव चिर रुरोद। ५ सर्व सगन्धेषु विश्वसिति। ६ नास्याङ्गुलीयकस्य विश्वसिमि। ७ समाश्वसिहि। (ग) १ यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवा। ४. परगुणासहिष्णुत्व यत्, स दुर्जनाना स्वभाव। ५ यथेन युज्यते लोके बुधस्तत्तेन योजयेत्। ६ सत्योऽय जनप्रवादो यत् सपत् सम्पदमनुबध्नाति, विपद् विपदम्। ७ शत बालका, शत स्त्रिय, सहस्र लोका। (घ) रचयन्ति, चमनम्, विक्रीणते, क्रीणन्ति, वायनरूपेण प्रहिण्वन्ति।

शब्दकोश—७०० + २५ = ७२५] **अभ्यास २९** (व्याकरण)

(क) चायम् (चाय, टी), जलपानम् (जलपान), चायपानम् (चायपानी), चायपात्रम् (टी-पॉट), कफघ्नी (स्त्री०, कॉफी), कन्दुः (पु०, स्त्री०, केतली), अम्यूषः (डबलरोटी), भृष्टापूप· (टोस्ट), पिष्टान्नम् (पेस्ट्री), पिष्टकः (बिस्कुट), गुल्यः (टॉफी, मीठी गोली), सपीति (स्त्री०, टी पार्टी), सग्धिः (स्त्री०, सहभोज), सहभोज· (लन्च या डिनर पार्टी)। लवणान्नम् (नमकीन), अवदंशः (चाट), समोप (समोसा), दालमुद्गः (दालमोठ), सूत्रक· (नमकीन सेव), पक्ववटिका (पकौड़ी), दधिवटकः (दही बड़ा), पक्वालु· (पु०, कचालू, आलू की टिकिया), कूल्पी (स्त्री०, कुल्फी), पुलाक· (पुलव, ताहरी), व्यञ्जनम् (१ मसाला, २ मसालेदार पदार्थ)। (२५)

व्याकरण (महत्, भवत् शब्द, हन्, स्तु धातु, आत्मनेपद)

१. महत् और भवत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २२, २३)

२. हन् और स्तु धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३८, ३९)

नियम १७०—(नेर्विशः) नि + विश् आत्मनेपदी होती है। निविशते।

नियम १७१—(परिव्यवेभ्य क्रियः) परि + क्री, वि + क्री, अव + क्री आत्मनेपदी होती है। परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते।

नियम १७२—(विपराभ्या जेः) वि + जि, परा + जि आत्मनेपदी होती हैं। विजयते, पराजयते।

नियम १७३—(आङो दोऽनास्यविहरणे) आ + दा आत्मनेपदी होती है, मुँह खोलना अर्थ न हो तो। विद्यामादत्ते। परन्तु मुख व्याददाति (मुँह खोलता है)।

नियम १७४—(क) (शिक्षेर्जिज्ञासायाम्) जिज्ञासा अर्थ में शिक्ष् धातु आत्मनेपदी है। धनुषि शिक्षते। (ख) (हरतेर्गतताच्छील्ये) गति के अनुकरण में हृ धातु आत्मनेपदी है। पैतृकम् अश्वा अनुहरन्ते, मातृक गावः। (ग) (किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेषु०) हर्ष, जीविका और आश्रयस्थान बनाने में कॄ धातु आत्मनेपदी है। अप + कॄ = अपस्कॄ हो जाता है। अपस्किरते वृषो हृष्टः (भूमि खोदता है), कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी। (घ) (आङि नुप्रच्छ्योः) आ + नु, आ + प्रच्छ् आत्मनेपदी होती है। आनुते। आपृच्छते (विदाई लेता है)।

नियम १७५—(क) (समवप्रविभ्य स्थः) सम् + स्था, अव + स्था, प्र + स्था, वि + स्था आत्मनेपदी होती हैं। सन्तिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते, वितिष्ठते। (ख) (आङः प्रतिज्ञायाम्०) आ + स्था प्रतिज्ञा अर्थ में। शब्द नित्यमातिष्ठते। (ग) (उदोऽनूर्ध्वकर्मणि) उत् + स्था आत्मने०, उठना अर्थ न हो तो। मुक्तावुत्तिष्ठते (यत्न करता है)। परन्तु आसनादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति (गाँव से सौ रु० लगान मिलता है)। (घ) (उपाद् देवपूजा०) उप + स्था आत्मनेपदी होती है, देवपूजा, सगति करना, मित्र बनाना, मार्ग अर्थ में। आदित्यमुपतिष्ठते (पूजा करता है)। गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते (मिलती है)। कृष्णमुपतिष्ठते (मित्र बनाता है)। पन्थाः प्रयागमुपतिष्ठते (रास्ता प्रयाग को जाता है)।

नियम १७६—(समो गम्यृच्छिभ्याम्) अकर्मक सम् + गम् आत्मनेपदी है। सगच्छते। (अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च०) अकर्मक सम् + श्रु, सम् + दृश् आत्मनेपदी हैं। सशृणुते। सपश्यते।

अभ्यास २९

संस्कृत बनाओ—(क) (महत्, भवत्) १ वह बड़ा वीर है। २ यहाँ बड़ा अँधेरा है। ३. मैंने एक बड़े शेर और बघेरे को देखा। ४ वहाँ सम्पत्ति का बड़ा ढेर है। ५ बड़े सवेरे बहेलियों के हल्ले से जगा दिया गया हूँ। ६ बड़ा आदमी बड़े पर ही अपना पराक्रम दिखाता है। ७ बड़ों की बात बड़ी है। ७ इस विषय में आपका क्या विचार है ? ९. आप ही रघुवंशियों की कुल स्थिति को जानते हैं। १०. आपके मित्र के बारे में कुछ पूछता हूँ। ११. आप आगे चलिए, मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। १२. आप से ही इस विषय का औचित्य-अनौचित्य पूछता हूँ। १३ आपके बारे में उसका प्रेम कैसा है ? १४ आपकी यह प्रार्थना शिरोधार्य है। (ख) (हन्, स्तु) १. राजा शत्रु को मारता है। २. शत्रुओं को मारो। ३ राम ने रावण को मारा। ४ हे निषाद, तेरा कभी भला नहीं होगा, तूने क्रौंच के जोड़े में से एक को मारा है। ५. देवदत्त राम की स्तुति करता है। ६ राम ने ईश्वर की स्तुति की। ७ रजिस्ट्रार प्रस्तावों को प्रस्तुत करता है (प्र+स्तु)। ८ मैं यह प्रस्ताव रखता हूँ कि छात्र-सभा का प्रधान राम हो। (ग) (आत्मनेपद) १. हलवाई मिठाई और नमकीन बेचता है (विक्री)। २. वह शत्रुओं को पराजित करता है (पराजि)। ३ आपकी विजय हो (विजि)। ४. यदि कील की नोक पैर में चुभ जाती है (निविश्) तो कितना दर्द हो जाता है। ५. वह विद्या ग्रहण करता है (आदा)। ६ वह मुँह खोलता है (व्यादा)। ७. वह मनुष्य की शिक्षा पाता है (शिक्ष्)। ८. घोड़े पिता की चाल का अनुकरण करते हैं और गौएँ माँ की (अनुहृ)। ९. बैल प्रसन्न होकर जमीन खोदता है (अपकृ)। १०. तुम अपने मित्र से विदाई लो (आप्रच्छ्)। ११. कृष्ण ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया (प्रस्था)। (घ) (पानादिवर्ग) १. आजकल चाय का बहुत रिवाज है। अंग्रेजी ढंग से चाय पीने वाले केतली में पानी उबालकर, टी पॉट में चाय डालकर, उस पर उबला हुआ पानी डाल देते हैं और पाँच मिनट बाद उसे छान लेते हैं। कुछ लोग कॉफी भी पीते हैं। उसके साथ वे डबल रोटी, मक्खन, टोस्ट, पेस्ट्री और बिस्कुट भी लेते हैं। सहभोज और टी पार्टी में मिठाइयों के साथ समोसा, पकौड़ी, सेव, दालमोठ भी चलते हैं। २ आजकल विद्यार्थियों को चाट, दही-बड़ा, पकौड़ी, कुल्फी और मसालेवाली चीजें अधिक अच्छी लगती हैं।

संकेत —(क) १ महान्। २ महानन्धकार। ३ महान्तम्, व्याघ्रम्। ४ महान् द्रव्य-राशि। ५ महति प्रत्यूषे शाकुनिककोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। ६ महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम्। ७ अपूर्वं महतां वृत्तम्। ८ अथवा कथं भवान् मन्यते। ९ रघूणां, जानन्ति। १०. मित्रगतं किमपि। ११ गच्छतु पुरो भवान्, अहमनुपदमागत एव। १२ भवन्तमेव गुरुलाघवं पृच्छामि। १३ भवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः। (ख) २ जहि। ३ अवधीत्। ४. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। एकमवधीः। ५ रामं स्तौति। ६ अस्तावीत्। ७ प्रस्तोता प्रस्तावान् प्रस्तौति। ८ एतत् प्रस्तवीमि, भवेत्। (ग) १ विक्रीणीते। २ पराजयते। ३ विजयतां भवान्। ४ निविशते यदि शूकशिखा पदे सृजति तावदियं कियतीं व्यथाम्। १०. आपृच्छस्व सहचरम्। ११ हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे। (घ) १ प्रचलनम्, आङ्ग्लपद्धत्या, क्वथयित्वा, क्वथितम्, पातयन्ति, स्रावयन्ति, भुज्यते। २ मधुरमापतन्ति तेषां मनांसि।

शब्दकोष—७२५ + २५ = ७५०]　　अभ्यास ३०　　　(व्याकरण)

(क) करकः (लोटा), स्थालिका (थाली), कसः (गिलास), काचकसः (काँच का गिलास), काचघटी (स्त्री०, जार), कटोरम् (कटोरा), कटोरा (कटोरी), घटः (घड़ा), उदञ्चनम् (बाल्टी), वारिधिः (पु०, कण्डाल), द्रोणि. (स्त्री०, टब), स्थाली (स्त्री०, पतीली), स्वदेनी (स्त्री०, कड़ाही), ऋजीषम् (तवा), पिष्टपचनम् (तई, जलेबी आदि पकाने की), हसन्ती (स्त्री०, अँगीठी), उद्ध्मानम् (स्टोव), धिषणा (तसला), चमसः (चम्मच), दर्वी (स्त्री०, चमचा, कलछुल), चषकः (प्याला, कप), शरावः (प्लेट, तस्तरी), उखा (सास-पेन), हस्तधावनी (स्त्री०, चिलमची), सन्दशः (चीमटा)। (२५)

व्याकरण (पठत्, यावत् शब्द, इ, विद् धातु, आत्मने० परस्मैपद)

१. पठत् और यावत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २४, २५)

२. इ और विद् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३३, ४३)

नियम १७७—(स्पर्धायामाङः) आ + ह्वे आत्मने० है, शत्रु को आह्वान करना अर्थ में। शत्रुमाह्वयते।

नियम १७८—(उपपराभ्याम्) उप + क्रम्, परा + क्रम् आत्मने० हैं। उपक्रमते, पराक्रमते॥ (प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्) प्र + क्रम्, उप + क्रम् प्रारम्भ अर्थ में आ०। प्रक्रमते।

नियम १७९—(अपह्नवे ज्ञः) मुकरना अर्थ में ज्ञा आत्मने० है। शतम् अपजानीते (सौ रु० को मुकरता है)। (सम्प्रतिभ्याम्०) सम् + ज्ञा, प्रति + ज्ञा स्मरण अर्थ न हो तो आत्मनेपदी हैं। सञ्जानीते, प्रतिजानीते।

नियम १८०—(उदश्चरः०) उत् + चर् आत्मने० है, सकर्मक हो तो। धर्ममुच्चरते। (समस्तृतीया०) सम् + चर् तृतीया के साथ हो तो आत्मनेपदी। रथेन सञ्चरते।

नियम १८१—(ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः) जिज्ञास, शुश्रूष, सुस्मूर्ष और दिदृक्ष ये आत्मनेपदी होती हैं। जिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्मूर्षते, दिदृक्षते।

नियम १८२—(प्रोपाभ्यां युजेः०) प्र + युज्, उप + युज् आत्मनेपदी हैं। प्रयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते।

नियम १८३—(भुजोऽनवने) भुज् धातु खाना तथा उपभोग अर्थ में आत्मनेपदी है और रक्षा अर्थ में परस्मैपदी है। ओदनं भुङ्क्ते। परन्तु महीं भुनक्ति।

(परस्मैपद)

नियम १८४—(अनुपराभ्यां कृञः) अनु + कृ, परा + कृ परस्मैपदी हैं। अनुकरोति, पराकरोति।

नियम १८५—(अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः) अभिक्षिप् परस्मैपदी है। अभिक्षिपति।

नियम १८६—(प्राद्वहः) प्र + वह् परस्मैपदी होती है। प्रवहति।

नियम १८७—(व्याङ्परिभ्यो रमः) वि + रम् परस्मैपदी है। विरमति।

नियम १८८— (बुधयुधनशजनेङ्०) बुध्, युध्, नश्, जन्, अधि + इ, प्रु, द्रु, स्रु धातुएँ णिच् प्रत्यय करने पर परस्मैपदी होती हैं। बोधयति पद्मम्। योधयति जनान्। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। अध्यापयति वेदम्। द्रावयति। स्रावयति।

नियम १८९—(निगरणचलनार्थेभ्यश्च) खिलाना और चलाना अर्थ की धातुएँ परस्मैपदी होती हैं। आशयति, भोजयति। चलयति, कम्पयति।

अभ्यास ३०

संस्कृत बनाओ—(क) (पठत्, यावत्) १. पढ़ते हुए को पाप नहीं लगता। २. मैं जब पढ़ रहा था तब वह आया। ३. गाँव को जाता हुआ तिनके को छूता है। ४. कर्मशील मनुष्य उत्तम फल पाता है। ५. सूर्य की शोभा को देखो, जो चलता हुआ कभी नहीं रुकता। ६. जितने छात्र परीक्षा में बैठे, सभी उत्तीर्ण हो गए। ७. वे युद्ध में जितने थे, उनको वह राजा उतने ही रूपों में दिखाई पड़ा। ८. जितना मिला उतना सब खा लिया। (ख) (इ, विद्) १. मूर्ख क्षय को पाता है। २. दरिद्रता से मनुष्य लज्जा को प्राप्त होता है। ३. चन्द्रमा को चाँदनी फिर मिल जाती है। ४. वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचे। ५. पहले फूल आता है, फिर फल आता है। ६. सूर्य लाल ही उदय होता है और लाल ही अस्त होता है। ७. मुझे शिव का नौकर समझो (अव+इ)। ८. नीच, वहाँ से हट (अप+इ)। ९. तेरे हृदय से प्रत्याख्यान का दुःख दूर हो (अप+इ)। १०. उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है (उप+इ)। ११. जो स्पर्धा करता हुआ सामने आवे (अभि+इ), उसे नष्ट कर दो। १२. वह सत्य नहीं, जो छल से युक्त हो। १३. वह गुरु के पीछे जाता है (अनु+इ)। १४. वह मुझ पर विश्वास करता है (प्रति+इ)। १५. जो जिसके गुण को नहीं जानता (विद्), वह उसकी सदा निन्दा करता है। १६. जो आत्मा को हन्ता समझता है, वह उसे नहीं जानता। १७. मुझे ऋषियों के तुल्य समझो। १८. इस जीवन में आत्मा को जान लिया तो भला है, नहीं तो बड़ा नाश होगा। (ग) (परस्मैपद) १. राजा पृथ्वी का पालन करता है। २. वह भात खाता है। ३. पाप से रुको। ४. गंगा और यमुना बहती हैं (प्रवह्)। ५. विद्या दुःख का नष्ट करती है और सुख उत्पन्न करती है। (घ) (पात्रवर्ग) खाना-पीना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। भूख और प्यास के निवारणार्थ बर्तनों की आवश्यकता होती है। पानी पीने और रखने के लिए घड़ा, कलश, गागर, गगरी, सुराही, जार, कमण्डलु, लोटा और काँच का गिलास, इन पात्रों की आवश्यकता होती है। पानी बाल्टी, कण्डाल और टब में रखा जाता है। खाना बनाने और खाने के लिए थाली, कटोरा, कटोरी पतीली, कड़ाही, कड़ाह, तवा, दर्वी, तसला, चम्मच, चमचा और चिमटा, इनकी आवश्यकता होती है। खाना अंगीठी और स्टोव दोनों पर बनाया जा सकता है। सास-पैन शाकादि बनाने के लिए, प्लेट खाना रखने के लिए और कप चाय पीने के लिए होते हैं।

संकेत—(क) १. पठतो नास्ति पातकम्। २. मयि पठति सति। ३. तृणं स्पृशति। ४. चरन् वै मधु विन्दति। ५. पश्य सूर्यस्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। ६. यावन्त आसन्, तावन्तः। ७. ते तु यावन्त एवाजौ, तावांश्च ददृशे स तैः। ८. यावल्लब्धं तावद् भुक्तम्। (ख) १. निर्बुद्धिः क्षयमेति। २. दारिद्र्याद् ह्रियमेति। ३. शशिनं पुनरेति शर्वरी। ४. ईयुर्भरद्वाजमुनिनिकेतम्। ५. उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलम्। ६. उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च। ७. अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः। ८. अपेहि पापे। ९. हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते। १०. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः। ११. यः स्पर्धमानोऽभ्येति, तं जहि। १२. सत्यं न तद्यच्छलमभ्युपैति। १३. स गुरुमन्वेति। १४. स मयि प्रत्येति। १५. न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम्। १६. य एनं वेत्ति हन्तारम्। १७. विद्धि मामृषिभिस्तुल्यम्। १८. इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। (ग) १. भुनक्ति। २. भुङ्क्ते। ३. विरम। ४. प्रवहतः। ५. नाशयति, जनयति। (घ) पानाशने, अशनायोदन्ययोः (अशनाया+उदन्या), पात्राणाम्, कलशः, गर्गरः, गर्गरी, भृङ्गार, कमण्डलु, पचनार्थम्, कटाह।

शब्दकोश—७५० + २५ = ७७५] अभ्यास ३१ (व्याकरण)

(क) अन्त्यज (शूद्र), चर्मकार (चमार), समार्जक (भंगी), शाकुनिकः (बहेलिया), अजाजीव (गडरिया), मायाकार (जादूगर), शौण्डिक (सुरा विक्रेता), कर्मकर (नौकर), भारवाह (कुली), मालाकार (माली), कुलाल (कुम्हार), लेपक (पुताईवाला), प्रैष्य (चपरासी), वैतनिक (वेतन पर नियुक्त नौकर), तस्कर (चोर), पाटच्चर (डाकू), ग्रन्थिभेदकः (गिरहकट), मृगयु (पु०, शिकारी), मृगया (शिकार), वागुरा (जाल), मार्जनी (स्त्री०, झाड़ू), चर्मप्रभेदिका (जूता सीनेकी सूई), उपानह्, त् (जूता, बूट), पादुका (चप्पल), अनुपदीना (गम बूट)। (२५)

व्याकरण (बुध्, आस्, कर्म-भाव-वाच्य)

१ बुध् शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २६)

२ आस् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४४)

नियम १९०—संस्कृत में तीन वाच्य होते हैः—१. कर्तृवाच्य, २. कर्मवाच्य, ३ भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य मे चलते हैं। अकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और भाववाच्य मे चलते हैं। अकर्मक की साधारण पहचान है कि जहाँ किम् (क्या, किसको) का प्रश्न न उठे। १ कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, क्रिया कर्ता के अनुसार चलती है। कर्ता मे प्रथमा, कर्म में द्वितीया, क्रिया कर्ता के अनुसार होगी। २ कर्मवाच्य मे कर्म मुख्य होता है। कर्म के अनुसार ही क्रिया के पुरुष, वचन, लिंग होंगे। कर्मवाच्य में कर्ता मे तृ०, कर्म में प्र०, क्रिया कर्म के अनुसार। ३ भाववाच्य मे कर्ता में तृ०, कर्म नहीं, क्रिया मे प्रथम पु० एक०।

नियम १९१—(सार्वधातुके यक्) कर्मवाच्य और भाववाच्य में सार्वधातुक लकारो (अर्थात् लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) मे धातु के अन्त में य लगेगा। धातु का रूप आत्मनेपद में ही चलेगा, धातु चाहे किसी पद की हो। अन्य लकारों में य नहीं लगेगा। धातु के रूप मे य लगाकर युध् (धातु० सं० ६६) के तुल्य चलेंगे। लट् में इष्यते या स्यते लगेगा। जैसे—गम् > गम्यते, गम्यताम्, अगम्यत, गम्येत, गमिष्यते।

नियम १९२—(क) लिट् में द्वित्व करके आत्मनेपदी के तुल्य रूप होगे। जैसे—गम् > जग्मे, भू > बभूवे, नी > निन्ये, लिख् > लिलिखे। सेव् लिट् के तुल्य रूप चलाओ। जिन धातुओं के अन्त में 'आम्' लगता है, उनमें आम् लगाकर कृ, भू, अस् के रूप आत्मनेपद में चलेंगे। जैसे—कथयाञ्चक्रे, कथयाबभूवे, कथयामासे। (ख) लुट्, लृट्, आशीर्लिङ् मे भी सेव् (धातु० २०) के तुल्य रूप चलेंगे। सेट् धातु में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। जैसे—भविता, भविष्यते, भविषीष्ट, अभविष्यत्।

नियम १९३—लुङ् प्र० पु० एक० में धातु के अन्त में इ लगेगा। बाद के त का लोप होगा। 'इ' से पूर्व धातु के अन्तिम इ, उ, ऋ को वृद्धि होगी, उपधा में अ होगा तो उसे आ और उपधा के इ, उ, ऋ को गुण होगा। जैसे—अकारि, अभावि, अपाचि, अयोजि। लुङ् में धातु के बाद प्रत्यय इस प्रकार होंगे। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में इ नहीं लगेगा। प्र० पु०—इ, इषाताम्, इषत। म० पु०—इष्ठाः, इषाथाम्, इध्वम्। उ० पु०—इषि, इष्वहि, इष्महि।

अभ्यास ३१

संस्कृत बनाओ—(क) (बुध् शब्द) १. विद्वानों की संगति से मूर्ख भी प्रवीण हो जाते हैं। २ विद्वानों के साथ श्रद्धापूर्वक व्यवहार करो (वृत्)। ३ विद्वानों के साथ ही उठे, बैठे, वाद और विवाद करे। (ख) (आस् धातु) १ आपको जहाँ अच्छा लगे, वहाँ बैठिए। २ आप इस आसन पर बैठिए। ३. वहाँ देवता रहते हैं। ४. उसने स्वागत-वचन से अतिथि का अभिनन्दन करके अपने आसन पर बैठने के लिए उसे निमन्त्रित किया। ५ बैठे हुए का ऐश्वर्य भी बैठा रहता है और खड़े हुए का ऐश्वर्य खड़ा हो जाता है। ६ राजा सिंहासन पर बैठा (अध्यास्त)। ७ उस ईश्वर की शिव शिव नाम से उपासना करते हैं (उपासते)। ८ दोनों सखियों के द्वारा शकुन्तला की सेवा की जा रही है (अन्वास्यते)। (ग) (कर्मवाच्य) १ कल्याण के विषय में किसकी तृप्ति होती है? २. क्या तुम्हारी आज्ञा टाली जा सकती है? ३ मेरी ओर से सारथि से कहना। ४ यह शकुन्तला पतिगृह को जा रही है, सब स्वीकृति दें। ५ जाने के समय में देर हो रही है। ६. स्त्रियों में बिना शिक्षा के भी पटुत्व देखा जाता है। ७ तुम्हारी प्रार्थना के योग्य ही कोई नहीं दीखता है। ८ तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती है। ९. धर्मवृद्धों में आयु नहीं देखी जाती। १० रत्न किसी को नहीं ढूँढता, वह स्वयं ढूँढा जाता है। ११. गेरुए वस्त्र पहनने की स्वीकृति से मुझे अनुगृहीत कीजिए। १२ पुराने कर्मफलों को कौन उलट सकता है? १३ किसको ताना दिया जा सकता है? १४ दुर्भाग्य ने ऐसा सर्वनाश किया कि विजय की आशा तो दूर रही, जीवन की आशा भी सन्दिग्ध दिखाई देती थी। १५ मेरे द्वारा तुम्हारा मुखकमल देखा गया। (घ) (शूद्रवर्ग) शूद्र समाज के योग्य सेवक होते हुए भी अपनी कुछ न्यूनताओं के कारण समाज की दृष्टि में नीच गिने जाते हैं। उनमें बहुतेरे बहुत अच्छा काम करते हैं। जैसे—चमार जूता सीने की सूई से बूटों, चप्पलों आदि को सीता है और उनकी मरम्मत करता है, भंगी झाड़ू से मकानों और आँगनों को साफ करता है, गडरिया बकरियों को पालता है, कुली भार ढोते हैं, माली फूलों से मालाएँ बनाता है, कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता है, पुताईवाला कलई से मकानों को पोतता है, चपरासी सवादों को यथास्थान पहुँचाता है। कुछ बुरा काम करते हैं, अतः वे निन्दनीय हैं। जैसे—बहेलिया जाल डालकर पक्षियों को मारता है, सुराविक्रेता शराब पीता है, चोर चोरी करता है, डाकू दीवार में सेंध मारता है, गिरहकट जेब काटता है, शिकारी शिकार खेलता हुआ निरपराध जीवों की हत्या करता है।

संकेत—(क) १ प्रावीण्यमुपयान्ति। २ भुन्सु। (ख) १ रोचते। २ एतदासनमास्यताम्। ३ आसते। ४ अभ्यागतमभिनन्द्य स्वेनासनेन आस्यतामिति निमन्त्रयाञ्चकार। ५ आस्ते भग आसीनस्य, ऊर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठत॰। (ग) १ श्रेयसि केन तृप्यते। २ विकल्प्यते। ३. मद्वचनादुच्यतां सारथिः। ४ सर्वैरनुज्ञायताम्। परिहीयते गमनवेला। ६ स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वं सदृश्यते। ७ न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते। ८ तेजसा हि न वयः समीक्ष्यते। ९ धर्मवृद्धेषु। १० न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्। ११ काषायग्रहणानुज्ञया अनुगृह्यतामयं जनः। १२. पुरातन्यः स्थितयः केन शक्यन्तेऽन्यथाकर्तुम्। १३ कतम उपालभ्यते। १४ दैवहतकेन अकारि, दूरे तावदास्ताम्। १५ अदर्शि। (घ) गण्यन्ते, उपानह सीव्यति, संदधाति ता, अजिराणि, मार्जयन्ति, भार वहन्ति, स्रज, पात्राणि, सुधाभि, लिम्पति संस्करोति वा, प्रापयति, दुष्कर्माणि, सुराम्, भित्तौ सन्धि करोति, ग्रन्थि भिनत्ति, निरागस हन्ति।

शब्दकोष—७७५ + २५ = ८००] अभ्यास ३२ (व्याकरण)

(क) कारु. (पु०, शिल्पी), नापित. (नाई), रजक (धोबी), निर्णेजक. (ड्राई-क्लीनर), रञ्जकः (रंगरेज), श्रेणि (पु०, स्त्री० शिल्पि-संघ), कुलिक. (शिल्पि-संघ का अध्यक्ष), तन्तुवाय. (जुलाहा), सौचिक (दर्जी), चित्रकार. (चित्रकार, पेन्टर), लोहकारः (लुहार), स्वर्णकार. (सुनार), शौल्विक (ताँबे के बर्तन बनानेवाला), त्वष्टृ (पु०, बढ़ई), स्थपति. (पु०, मिस्त्री, राज), अश्मचूर्णम् (सीमेंट), इष्टका (ईंट), स्यूति. (स्त्री०, सिलाई), यन्त्रम् (मशीन), उपहासचित्रम् (कार्टून), वर्तिका (ब्रुश), कर्तरी (स्त्री०, कैंची), तक्षणी (स्त्री०, बसूला), अयोघन (हथौड़ी), करपत्रम् (आरी)। (२५)

व्याकरण (आत्मन्, राजन्, शी, अधि + इ, कर्म-भाव-वाच्य)

१. आत्मन् और राजन् शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २७, २८)

२. शी और अधि + इ धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४५, ४६)

नियम १९४—धातु से कर्मवाच्य या भाववाच्य बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में ही ये नियम लगते हैं। (क) धातु के अन्त में 'य' लगेगा। आत्मनेपद ही होगा। धातु को गुण नहीं होगा। धातु मूलरूप में रहेगी। गच्छ्, पिब्, जिघ्र् आदि नहीं होंगे। साधारणतया धातु में अन्तर नहीं होता। जैसे—भूयते, पठ्यते, लिख्यते, गम्यते। (ख) (घुमास्थागापा०) आकारान्त धातुओं में इनमें ही आ का ई होगा—दा, धा, मा, स्था, गा, पा (पीना), हा (छोड़ना), सा। अन्यत्र आ ही रहेगा। जैसे—दीयते, धीयते, मीयते, स्थीयते, गीयते, पीयते, हीयते, सीयते। (ग) (अकृत्सार्वधातुकयो.०) धातुओं के अन्त में इ को ई, उ को ऊ हो जाता है। जि> जीयते, चि> चीयते, हु> हूयते। किन्तु श्वि का सम्प्रसारण होने से शूयते होगा और शी का शय्यते रूप होगा। (घ) (रिङ्शयग्लिङ्क्षु) ह्रस्व ऋ अन्तवाली धातुओं में ऋ के स्थान पर 'रि' हो जाएगा। जैसे—कृ, हृ, धृ, भृ, मृ के क्रमशः क्रियते, ह्रियते, ध्रियते, भ्रियते, म्रियते। किन्तु ऋ धातु को और संयुक्ताक्षर आदिवाली ऋकारान्त धातु को गुण होता है। (गुणोऽर्ति०)। जैसे ऋ> अर्यते। स्मृ> स्मर्यते। (ङ) (ॠत इद्धातोः, उदोष्ठ्यपूर्वस्य) दीर्घ ॠ अन्तवाली धातुओं के ॠ का इर् होगा। यदि पवर्ग पहले होगा तो ऊर् होगा। जैसे—कॄ> कीर्यते, गॄ> गीर्यते, तॄ> तीर्यते, शॄ> शीर्यते। पॄ> पूर्यते। (च) (वचिस्वपि०, ग्रहिज्या०) वच्, स्वप्, ग्रह्, यज्, वप्, वह्, वद्, वस्, प्रच्छ् आदि धातुओं को सम्प्रसारण होता है, अर्थात् य् को इ, व् को उ, र् को ऋ। (ब्रू) वच्> उच्यते, स्वप्> सुप्यते, ग्रह्> गृह्यते, यज्> इज्यते, वप्> उप्यते, वह्> उह्यते, वद्> उद्यते, वस्> उष्यते, प्रच्छ्> पृच्छ्यते। (छ) (अनिदिता०) धातु के बीच के न् का प्रायः लोप हो जाता है। मन्थ्> मथ्यते, बन्ध्> बध्यते, भ्रंश्> भ्रश्यते, स्रंस्> स्रस्यते। इनमें न् रहेगा—वन्द्यते, चिन्त्यते, निन्द्यते। (ज) इन धातुओं के स्थान पर ये आदेश हो जाते हैं—ब्रू> वच्, अस्> भू, अज्> वी। उच्यते, भूयते, वीयते। (झ) जन्, सन्, खन् और तन् के दो रूप होते हैं, न् को आ विकल्प से होगा। जैसे—जायते, जन्यते। (ञ) चुरादि० और णिच् प्रत्ययवाली धातुओं के इ (अय्) का लोप हो जायगा। चोर्यते, कथ्यते, भक्ष्यते।

अभ्यास ३२

संस्कृत बनाओ—(क) (आत्मन्, राजन्) १ अपने आपको प्रकट करने का यह मौका है। २ तुम अपनी तरह ही सबको समझते हो। ३ यदि अपने आपको सँभाल सका तो, यहाँ से जाऊँगा। ४ यहाँ बाह्य और अन्त करण के साथ मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही है। ५ यह तो तुम्हारी अपनी इच्छा है। ६ यह तो अपने स्वभाव पर आ गया है। ७. आपने यहाँ आने का कष्ट क्यों उठाया ? ८ अति हर्ष उसके मन में नहीं समाया। ९ अपने में झूठे महत्त्व का आरोप करके राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं। १० शिक्षितों को भी अपने ऊपर पूरा भरोसा नहीं होता। ११. जैसा राजा, वैसी प्रजा। १२ मैं राजा को कुछ नहीं समझता। १३ राजा से रहित देश में शान्ति नहीं होती। १४ राजा को जनहित की भी चिन्ता करनी चाहिए। १५ राजा को चाहिए कि आपत्तिग्रस्तों का दु ख दूर करे। (ख) (शी, अधि + इ) १. वह हाथ का तकिया लगाकर सोई। २ इधर मोर सो रहे हैं। ३ क्यो नि.शक सो रहे हो ? ४ उसने वेदों को पढा। (ग) (कर्मवाच्य) १ चित्र में जो कुछ ठीक नहीं है, उसे ठीक कर रहा हूँ। २ पुरुष तभी तक है, जबतक वह मान से हीन नहीं होता। ३ सोने की स्वच्छता और कालिमा आग मे ही दीखती है। ४ विकार का कारण विद्यमान होने पर भी जिनके चित्त विकृत नही होते, वे धीर हैं। ५. पर उपदेश कुशल बहुतेरे। ६. क्यो गोलमाल बात करते हो ? ७. गुणों से ही सर्वत्र स्थान बनाया जाता है। ८ इससे हमारा कुछ नहीं बिगडता। ९. यह बात समाप्त करो। १० आगे की बात समझ ली। ११ विपत्ति मे भी उसका धैर्य नष्ट नहीं होता। १२ वह देवदत्त नाम से पुकारा जाता है। १३ बेकार कहाँ जा रहे हो ? १४ और कोई रास्ता नहीं दीखता है। (घ) (शिल्पिवर्ग) शिल्पि संघ शिल्पियों का संगठन करता है। उनको उचित कार्यो मे नियुक्त करता है। धोबी वस्त्रों को धोता है। ड्राईक्लीनर वस्त्रों को मशीन से धोता है और उन पर लोहा करता है। जुलाहा सूत से वस्त्रों को बुनता है। दर्जी टेलरचाक से कपडो पर निशान लगाता है और कैंची से काटकर उन्हें सिलाई की मशीन से सीता है। चित्रकार ब्रुश से चित्र को रँगता है और कार्टून बनाता है। बढई आरी से लकडी चीरता है, बसूले से उसे छीलता है और हथौडे से कीलो को ठोकता है। राज सीमेंट से ईंटों को जोडकर मकान बनाता है।

संकेत—(क) १ अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। २ आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि। ३ यद्यात्मन प्रभविष्यामि। ४ सबाह्यान्त करणो ममान्तरात्मा प्रसीदति। ५ एष तवात्मगतो मनोरथ। ६ गत एवात्मन प्रकृतिम्। ७ किमिति भवताऽऽत्मा अत्रागमनक्लेशस्य पदमुपनीत। ८ उरु प्रहर्षं प्रबभूव नात्मनि। ९ आत्मन्यारोपितालीकाभिमाना। १० आत्मन्यप्रत्यय चेत। ११ यथा राजा। १२ राजेति का गणना मम। १३ अराजके जनपदे। १४ जनहितमपि चिन्तनीयम्। १५ आपन्नस्य जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम्। (ख) १ अशेत सा बाहुलतोपधायिनी। ४ अध्यैष्ट। (ग) १ क्रियते तत्तदन्यथा। २ यावन्मानान्न हीयते। ३ हेम्न संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धि श्यामिकाऽपि वा। ४ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषा न चेतासि त एव धीरा। ५. सुखमुपदिश्यते परस्य। ६ किमिति असबद्धम् अनुसन्धीयते। ७ पद हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते। ८ न न किंचित् भिद्यते। ९ संक्षिप्यतामिय कथा। १० परस्तादवगम्यते। ११ न हीयते। १२ आहूयते। १३ कान्निर्दिष्टकारण गम्यते। १४ नान्यच्छरणमालोक्यते। (घ) धावति, यन्त्रेण नेनेक्ति, अयस्करोति, सूत्रै, वयति, सौचिकवर्तिकया, चिह्नयति, कर्तित्वा, स्यूतियन्त्रेण, रञ्जयति, छिनत्ति, च्यति, कीलान् कीलति, संयोज्य।

शब्दकोष—७७५ + २५ = ८००] अभ्यास ३२ (व्याकरण)

(क) कारु॰ (पु०, शिल्पी), नापित (नाई), रजक॰ (धोबी), निर्णेजकः (ड्राई-क्लीनर), रञ्जकः (रंगरेज), श्रेणि॰ (पु०, स्त्री० शिल्पि-संघ), कुलिकः (शिल्पि-संघ का अध्यक्ष), तन्तुवाय॰ (जुलाहा), सौचिक (दर्जी), चित्रकार (चित्रकार, पेन्टर), लोहकार॰ (लुहार), स्वर्णकार॰ (सुनार), शाल्विक॰ (ताँबे के बर्तन बनानेवाला), त्वष्टृ (पु०, बढ़ई), स्थपति॰ (पु०, मिस्त्री, राज), अश्मचूर्णम् (सीमेंट), इष्टका (ईंट), स्यूति॰ (स्त्री०, सिलाई), यन्त्रम् (मशीन), उपहासचित्रम् (कार्टून), वर्तिका (ब्रुश), कर्तरी (स्त्री०, कैंची), तक्षणी (स्त्री०, बसूला), अयोघन (हथौड़ी), करपत्रम् (आरी)। (२५)

व्याकरण (आत्मन्, राजन्, शी, अधि + इ, कर्म-भाव-वाच्य)

१ आत्मन् और राजन् शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २७, २८)
२ शी और अधि + इ धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४५, ४६)

नियम १९४—धातु से कर्मवाच्य या भाववाच्य बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में ही ये नियम लगते हैं। (क) धातु के अन्त में 'य' लगेगा। आत्मनेपद ही होगा। धातु को गुण नहीं होगा। धातु मूलरूप में रहेगी। गच्छ्, पिब्, जिघ्र् आदि नहीं होंगे। साधारणतया धातु में अन्तर नहीं होता। जैसे - भूयते, पठ्यते लिख्यते, गम्यते। (ख) (घुमास्थागापा०) आकारान्त धातुओं में इनमें ही आ को ई होगा —दा, धा, मा, स्था, गा, पा (पीना), हा (छोडना), सा। अन्यत्र आ ही रहेगा। जैसे—दीयते, धीयते, मीयते, स्थीयते, गीयते, पीयते, हीयते, सीयते। (ग) (अकृत्सार्वधातुकयो:०) धातुओं के अन्त में इ को ई, उ को ऊ हो जाता है। जि> जीयते, चि> चीयते, हु> हूयते। किन्तु श्वि का सम्प्रसारण होने से शूयते होगा और शी का शय्यते रूप होगा। (घ) (रिङ्शयग्लिङ्क्षु) ह्रस्व ऋ अन्तवाली धातुओं में ऋ के स्थान पर 'रि' हो जाएगा। जैसे—कृ, हृ, धृ, भृ, मृ के क्रमशः क्रियते, ह्रियते, ध्रियते, भ्रियते, म्रियते। किन्तु ऋ धातु को और संयुक्ताक्षर आदिवाली ऋकारान्त धातु को गुण होता है। (गुणोऽर्ति०)। जैसे ऋ> अर्यते। स्मृ> स्मर्यते। (ङ) (ॠत इद्धातोः, उदोष्ठ्यपूर्वस्य) दीर्घ ॠ अन्तवाली धातुओं के ॠ का इर् होगा। यदि पवर्ग पहले होगा तो ऊर् होगा। जैसे— कॄ> कीर्यते, गॄ> गीर्यते, तॄ> तीर्यते, शॄ> शीर्यते। पॄ> पूर्यते। (च) (वचिस्वपि०, ग्रहिज्या०) वच्, स्वप्, ग्रह्, यज्, वप्, वह्, वद्, वस्, प्रच्छ् आदि धातुओं को सम्प्रसारण होता है, अर्थात् य् को इ, व् को उ, र् को ऋ। (ब्रू) वच्> उच्यते, स्वप्> सुप्यते, ग्रह्> गृह्यते, यज्> इज्यते, वप्> उप्यते, वह्> उह्यते, वद्> उद्यते, वस्> उष्यते, प्रच्छ्> पृच्छ्यते। (छ) (अनिदिता०) धातु के बीच के न् का प्रायः लोप हो जाता है। मन्थ्> मथ्यते, बन्ध्> बध्यते, भ्रंश्> भ्रश्यते, स्रंस्> स्रस्यते। इनमें न् रहेगा—वन्द्यते, चिन्त्यते, निन्द्यते। (ज) इन धातुओं के स्थान पर ये आदेश हो जाते हैं—ब्रू> वच्, अस्> भू, अज्> वी। उच्यते, भूयते, वीयते। (झ) जन्, सन्, खन् और तन् के दो रूप होते हैं, न् को आ विकल्प से होगा। जैसे—जायते, जन्यते। (ञ) चुरादि० और णिच् प्रत्ययवाली धातुओं के इ (अय्) का लोप हो जायगा। चोर्यते, कथ्यते, भक्ष्यते।

अभ्यास ३२

संस्कृत बनाओ—(क) (आत्मन्, राजन्) १ अपने आपको प्रकट करने का यह मौका है। २ तुम अपनी तरह ही सबको समझते हो। ३ यदि अपने आपको सँभाल सका तो, वहाँ मैं जाऊँगा। ४ यहाँ बाहर और अन्तःकरण के साथ मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही है। ५ यह तो तुम्हारी अपनी इच्छा है। ६ वह तो अपने स्वभाव पर आ गया है। ७. आपने यहाँ आने का कष्ट क्यों उठाया? ८. अति हर्ष उसके मन में नहीं समाया। ९ अपने में झूठे महत्त्व का आरोप करके राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं। १० शिक्षिता को भी अपने ऊपर पूरा भरोसा नहीं होता। ११. जैसा राजा, वैसी प्रजा। १२ मैं राजा को कुछ नहीं समझता। १३ राजा से रहित देश में शान्ति नहीं होती। १४ राजा को जनहित की भी चिन्ता करनी चाहिए। १५ राजा को चाहिए कि आपत्तिग्रस्तों का दुःख दूर करे। (ख) (शी, अधि + इ) १. वह हाथ का तकिया लगाकर सोई। २ इधर मोर सो रहे हैं। ३ क्यों निःशङ्क सो रहे हो? ४ उसने वेदों को पढ़ा। (ग) (कर्मवाच्य) १ चित्र में जो कुछ ठीक नहीं है, उसे ठीक कर रहा हूँ। २ पुरुष तभी तक..., जबतक वह मान से हीन नहीं होता। ३. सोने की स्वच्छता और कालिमा आग में ही दीखती है। ४ विकार का कारण विद्यमान होने पर भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते, वे धीर हैं। ५ पर उपदेश कुशल बहुतेरे। ६. क्यों गोलमाल बात करते हो? ७ गुणों से ही सर्वत्र स्थान बनाया जाता है। ८. इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। ९ यह बात समाप्त करो। १० आगे की बात समझ ली। ११. विपत्ति में भी उसका धैर्य नष्ट नहीं होता। १२ वह देवदत्त नाम से पुकारा जाता है। १३ बेकार कहाँ जा रहे हो? १४ और कोई रास्ता नहीं दीखता है। (घ) (शिल्पिवर्ग) शिल्पि संघ शिल्पियों का संगठन करता है। उनको उचित कार्यों में नियुक्त करता है। धोबी वस्त्रों को धोता है। ड्राईक्लीनर वस्त्रों को मशीन से धोता है और उन पर लोहा करता है। जुलाहा सूत से वस्त्रों को बुनता है। दर्जी टेलरचाक से कपड़ों पर निशान लगाता है और कैंची से काटकर उन्हें सिलाई की मशीन से सीता है। चित्रकार ब्रुश से चित्र को रँगता है और कार्टून बनाता है। बढ़ई आरी से लकड़ी चीरता है, बसूले से उसे छीलता है और हथौड़े से कीलों को ठोकता है। राज सीमेंट से ईंटों को जोड़कर मकान बनाता है।

संकेत—(क) १ अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। २ आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि। ३ यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। ४ सबाह्यान्तःकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति। ५ एष तवात्मगतो मनोरथः। ६ गत एवात्मनः प्रकृतिम्। ७ किमिति भवताऽऽत्मा अत्रागमनक्लेशस्य पदमुपनीतः। ८ गुरु प्रहर्षं प्रबभूव नात्मनि। ९ आत्मन्यारोपितालीकाभिमानाः। १० आत्मन्यप्रत्ययं चेतः। ११ यथा राजा। १२ राजेति का गणना मम। १३ अराजके जनपदे। १४ जनहितमपि चिन्तनीयम्। १५ आपन्नस्य जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम्। (ख) १ अशेत सा बाहुलतोपधायिनी। ४ अध्यैष्ट। (ग) १ क्रियते तत्तदन्यथा। २ यावन्मानान्न हीयते। ३ हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा। ४ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः। ५ सुखमुपदिश्यते परस्य। ६ किमिति असम्बद्धम् अनुसन्धीयते। ७ पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते। ८ न न किञ्चित् भिद्यते। ९ संह्रियतामियं कथा। १० परस्तादवगम्यते। ११ न हीयते। १२ आहूयते। १३ क्वानिर्दिष्टकारणं गम्यते। १४ नान्यच्छरणमालोक्यते। (घ) धावति, यन्त्रेण नेनेक्ति, अयस्करोति, सूत्रैः, वयति, सौचिकवर्तिकया, चिह्नयति, कर्तित्वा, स्यूतियन्त्रेण, रञ्जयति, छिनत्ति, ...यति, कीलान् कीलति, संयोज्य।

शब्दकोष—८०० + २५ = ८२५] अभ्यास ३३ (व्याकरण)

(क) क्षुरम (उस्तरा), क्षुरकम् (ब्लेड), उपक्षुरम् (सेफ्टी रेजर), कर्तनी (स्त्री०, बाल काटने की मशीन), शस्त्रमार्ज (धार करनेवाला), तैलकारः (तेली), रसयन्त्रम् (कोल्हू), मिलः (मिल), अयस् (लोहा, आयरन), वृश्चन (छेनी), आविध॰ (बर्मा), यान्त्रिक॰ (मिस्त्री, मैकेनिक), सूत्रम् (धागा), सूचिका (सूई), पाण्डुरञ्जक॰ (पालिश), वेतनम् (वेतन), भ्राष्ट्रम् (भाड), भृष्टकार॰ (भडभूजा), भस्त्रा (धौंकनी), नीली (स्त्री०, नील), शिल्पशाला (फैक्टरी)। (२१)। (ख) कृत् (काटना), अयस् + कृ (लोहा करना), मण्डा + कृ (कलफ करना), नीली + कृ (नील लगाना)। (४)।

व्याकरण (श्वन्, युवन्, हु, भी, णिच् प्रत्यय)

१. श्वन् और युवन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २९, ३०)

२ हु और भी धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४८, ४९)

नियम १९५—(हेतुमति च) प्रेरणार्थक धातु उसे कहते हैं, जहाँ कर्ता स्वयं काम न करके दूसरे से काम कराता है। जैसे—पढना > पढवाना, लिखना > लिखवाना, जाना > भेजना, करना > कराना। प्रेरणार्थक धातु में शुद्ध धातु के अन्त में णिच् (अर्थात् अय) लग जाता है। धातु के रूप दोनो पदों में चुर् धातु के तुल्य (देखो धातु० ९७) चलेंगे। धातु के अन्तिम ह्रस्व और दीर्घ इ, उ, ऋ को वृद्धि (अर्थात् क्रमश ऐ, औ, आर्) हो जाता है, बाद मे अयादि सन्धि भी। उपधा (अर्थात् अन्तिम अक्षर से पूर्व अक्षर) म अ को आ तथा इ, उ, ऋ को क्रमश॰ ए, ओ, अर् गुण हो जाता है। जैसे—कृ > कारयति, नी > नाययति, भू > भावयति, पट् > पाठयति, लिख् > लेखयति। गम् का गमयति।

नियम १९६—प्रेरणार्थक धातुओं के साथ मूल धातु के कर्ता मे तृतीया होती है और कर्म में पूर्ववत् द्वितीया ही रहती है। क्रिया कर्ता के अनुसार होती है। जैसे—शिष्यः लेख लिखति > गुरुः शिष्येण लेख लेखयति। नृप॰ भृत्येन कार्यं कारयति।

नियम १९७—(गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०) इन अर्थोंवाली धातुओं के प्रेरणार्थक रूप के साथ मूल धातु के कर्ता मे तृतीया न होकर द्वितीया होती है—जाना, जानना, समझना, खाना (अद्, खाद्, भक्ष् को छोडकर), पढना, अकर्मक धातुएँ, बोलना, देखना (दृश्), सुनना (श्रु), प्रवेश (प्रविश्), चढना (आरुह्), तैरना (उत्तॄ), ग्रहण (ग्रह्), प्राप्ति (प्राप्), पीना, ले जाना (हृ), (नी और वह् को छोडकर)। जैसे—बाल॰ गृह गच्छति > बाल गृह गमयति। शिष्य॰ वेदम् अवगच्छति > शिष्य वेदम् अवगमयति। पुत्रः अन्न भुङ्क्ते > माता पुत्रमन्न भोजयति। शिष्य॰ शास्त्र पठति > गुरुः शिष्य शास्त्र पठयति। पृथ्वी सलिले आस्त > पृथ्वी सलिले आसयत्। (क) (नीवह्योर्न) नाययति वाहयति वा भार भृत्येन। (ख) (नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः) वाहयति रथ वाहान् सूतः। (ग) (आदिखाद्योर्न) आदयति खादयति वाऽन्न वटुना। (घ) (भक्षेरहिंसार्थस्य न) भक्षयत्यन्न वटुना। (ङ) (जल्पतिप्रभृतीनाम्०) जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्र देवदत्त॰। (च) (दृशेश्च) दर्शयति हरिं भक्तान्। (छ) (शब्दायतेर्न) शब्दाययति देवदत्तेन।

अभ्यास ३२

संस्कृत बनाओ :—(क) (श्वन्, युवन्) १ कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाता है तो क्या वह जूता नही चाटता है । २ पण्डित कुत्ते और चाण्डाल को समान मानते है । ३ काच मणि और काचन को एक धागे मे पिरो रही हो, हे बाले, यह उचित नही है । उसने कहा—सर्ववित् पाणिनि ने तो एक सूत्र मे कुत्ता, युवक और इन्द्र तीनो को डाला है । ४ विद्वानो ने सेवा को श्ववृत्ति माना है । ५ युवक भुलक्कड होते है । ६ अति सुन्दर रमणी जिस प्रकार युवको के मन को हरण करती है, उस प्रकार कुमारो के नहीं । ७ यौवन के प्रारम्भ मे प्राय युवको की दृष्टि कलुषित हो जाती है । (ख) (हु, भी धातु), १ यहाँ पर अग्नि मे हवन करो । २ उसने मन्त्रपूत शरीर को भी अग्नि में हवन कर दिया । ३ हे बालक, तू मृत्यु से क्यों डरता है, वह भयभीत को भी नहीं छोडता । ४ मत डरो । ५ क्या करूँ, कहाँ जाऊँ कौन वेदों का उद्धार करेगा ? हे स्त्री, मत डरो, अभी पृथ्वी पर कुमारिल भट्ट जीवित है । (ग) (णिच् प्रत्यय) १ उसने विषय-सुखो से विरक्त हो जीवन बिताया । २ उन्होने अपने काम को ठीक निभाया । ३ उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया । ४ दो 'नहीं' स्वीकृत-सूचक अर्थ बताते है । ५ पिता पुत्र से लेख लिखवाता है । ६ धनिक नौकर से काम करता है । ७ वह पुत्र को घर भेजता है । ८ वह पुत्र को वेद पढ़ाता है । ९ माता पुत्र को फल खिलाती है । १० गुरु शिष्य को वेद पढाता है । ११ उसने पुस्तक मेज पर रखवाई । १२ वह नौकर से भार ढुलवाता है । १३ वह छात्रों को चित्र दिखाता है । १४ मैं यह पत्र उसके पास पहुँचा दूँगा । १५ बच्चा सिर हिला रहा है । (घ) (शिल्पिवर्ग) १. नाई बाल काटने की मशीन से बाल काटता है और उस्तरे से दाढी बनाता है । आजकल अधिक लोग सेफ्टीरेजर से स्वय ही दाढी बना लेते है । २ धोबी कपडों को धोकर, नील लगाता है, कल्फ करता है और उन पर लोहा करता है । ३ फैक्टरी में मिस्त्री मशीनों को ठीक करता है । ४ मिलो में मजदूर काम करते हैं । ५ तेली कोल्हू के द्वारा तिलो से तेल निकालता है, धार रखने वाला उस्तरे पर धार रखता है, बढई छेनी से लोहे को काटता है, बर्मा से लकडी मे छेद करता है और बुढिया सूई-धागे से वस्त्र सीती है ।

सकेत —(क) १ क्रियते, स किं नाश्नात्युपानहम् । २ शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन । ३ काच मणि काञ्चनमेकसूत्रे करोषि बाले नहि युक्तमेतत् । अशेषवित् पाणिनि-रेकसूत्रे श्वान युवान मघवानमाह । ४ श्ववृत्ति विदु । ५ युवानो विस्मरणशीला । ६ यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी, कुमाराणामन्त करणहरण नैव कुरुते । ७ कालुष्यमुपयाति । (ख) १ जुहुधीह पावकम् । २ यो मन्त्रपूता तनुमप्यहौषीत् । ३ मृत्योर्बिभेषि किं बाल, न स भीत विमुञ्चति । ४ मा भैषी । ५ किं करोमि, उद्धरिष्यति । मा बिभेहि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्ति भूतले । (ग) १ जीवितमत्यवाहयत् । २ साधु निरवाहयन् । ३ अभिसन्धाम् अपालयत् । ४ द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयत । ७ गमयति । ८ अवगमयति । ९ भोजयति । ११ आसयत् । १२ वाहयति । १३ दर्शयति । १४ तस्य हस्त प्रापयिष्यामि । १५ मूर्धान चालयति । (घ) १ वयति, कूर्चं मुण्डयति । २ धावित्वा । ३ सशोधयति । ४ श्रमिका । ५ नि सारयति, क्षुर णयति, कृन्तति, छिद्रयति, सीव्यति ।

शब्दकोष—८२५ + २५ = ८५०] अभ्यास २४ (व्याकरण)

(क) शाकम् (साग), आलुः (पु०, आलू), रक्ताङ्ग. (टमाटर) गोजिह्वा (गोभी), कलाय (मटर), भण्टाकी (स्त्री०, भॉटा, बैंगन), वङ्गन. (बगन), भिण्डकः (भिंडी), टिण्डिश (टिंडा), अलाबु. (स्त्री०, लौकी), कूष्माण्ड (कद्दू), गृञ्जनम् (गाजर), मूलकम् (मूली), श्वेतकन्द (शलगम), पालकी (स्त्री०, पालक), वास्तुकम् (बथुआ), सिम्बा (सेम), सुसिम्ब. (फरासबीन, फ्रेंच बीन), जालिनी (स्त्री०, तोरई), कुन्दरुः (पु०, कुन्दरु), पटोल (परवल), कारवेल्ल (करेला), कर्कटी (स्त्री०, ककडी), पनसम् (कटहल), शद (सलाद)। (२५)

व्याकरण (वृत्रहन्, मघवन्, हा, ह्री, णिच् प्रत्यय)

१. वृत्रहन् और मघवन् शब्दो के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३१, ३२)

२. हा और ह्री धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५०, ५१)

नियम १९८—मूलधातु से प्रेरणार्थक धातु बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर ले। (क) धातु से णिच् (अय) प्रत्यय लगता है। नियम १९५ के अनुसार वृद्धि या गुण। (ख) (मितां ह्रस्वः) इन धातुओं की उपधा (उपान्त्य स्वर) के अ को आ नहीं होता—गम्, रम्, क्रम्, नम्, शम्, दम्, जन्, त्वर्, घट्, व्यथ्, जॄ। गमयति, रमयति, क्रमयति, नमयति, शमयति, दमयते, जनयति, त्वरयति, घटयति, व्यथयति, जरयति। अन्यत्र अ को आ होगा। पाठयति, कामयते, चामयति। (ग) (० आतां पुङ् णौ) आकारान्त धातुओं के अन्त में णिच् से पहले 'प्' और लग जाता है। जैसे—दा>दापयति, धा>धापयति, स्था>स्थापयति, या>यापयति, स्ना>स्नापयति। (घ) (शाच्छासाह्वा०) इन आकारान्त धातुओं में बीच में 'य्' लगेगा। शो (शा), छो (छा), सो (सा), ह्वे (ह्वा), व्ये (व्या), वे (वा) और पा (पीना)। जैसे—शाययति, ह्वाययति, पाययति (पिलाता है)। (पातेर्णौ लुग्०) पा (रक्षा करना) का रूप पालयति होगा। (ङ) (क्रीङ्जीनां णौ) इनके ये रूप होते हैं—क्री>क्रापयति (खरीदवाना), अधि + इ>अध्यापयति (पढ़ाना), जि>जापयति (जिताना)। (च) इन धातुओं के ये रूप हो जाते हैं:—ब्रू>वाचयति (बॉचना), हन्>घातयति (वध कराना), दुष्>दूषयति (दोष देना), रुह्>रोपयति, रोहयति (उगाना), ऋ> अर्पयति (देना), ह्रेपयति (लज्जित करना), वि + ली> विलीनयति, विलाययति (पिघलाना), भी> भापयते, भीषयते (डर की वस्तु से डराना), भाययति (केवल डराना), वि + स्मि> विस्मापयते (किसी कारण से विस्मित करना), विस्माययति (केवल विस्मित करना), सिध्>साधयति (बनाना), सेधयति (निश्चय कराना), रञ्ज्>रञ्जयति (प्रसन्न करना), रजयति (शिकार खेलना), इ (जाना),>गमयति (भेजना), अधि + इ (जानना)>अधिगमयति (समझाना, याद दिलाना), प्रति + इ>प्रत्याययति (विश्वास दिलाना), गुह्> गूहयति (छिपाना), धू>धूनयति (हिलाना), प्री>प्रीणयति (प्रसन्न करना), मृज्>मार्जयति (साफ कराना), शद्>शातयति (गिराना), शादयति (भेजना)। (छ) चुरादिगण की धातुओं के रूप णिच् में वैसे ही रहते हैं। (ज) कर्मवाच्य और भाववाच्य में णिजन्त धातु के अन्तिम इ (अय) का लोप हो जाता है। जैसे—पाठ्यते, कार्यते, हार्यते, धार्यते, चोर्यते, भक्ष्यते।

अभ्यास 24

संस्कृत बनाओ—(क) (वृत्रहन्, मघवन्) १ इन्द्र ने वृत्र का वध किया। २. मैं इन्द्र के सम्मान से अनुगृहीत हूँ। ३ इन्द्र का यश प्रत्येक युग में गाया जाता है। ४ इन्द्र का वज्र दैत्य सेना का संहार करता है (संहृ)। **(ख) (हा, ह्री)** १ हे अर्जुन, जब मनुष्य सभी मनोगत कामनाओं को छोड देता है और अपने आपमें सन्तुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। २ तृष्णा को छोड दो। ३ तुमने जो सीता को छोड दिया है, वह क्या तुम्हारे कुल के अनुकूल है? ४ विपत्ति में भी उसका धैर्य क्षीण नहीं होता। ५ पुत्रवधू श्वसुर से शर्माती है। ६ आपके साथ गुरुजनों के समीप जाने में मुझे लज्जा अनुभव होती है। ७ हमें आपस में ही शर्म लगती है औरों के सामने तो कहना ही क्या? **(ग) (णिच् प्रत्यय)** १ शरीर को शान्ति देनेवाली शरत्कालीन चाँदनी को कौन आँचल से रोकता है? २ मैं महल पर रहूँगा, वहाँ आवाज दे लेना। ३ यह विवाद ही विश्वास दिलाता है कि तुम झूठ बोल रहे हो। ४ पार्वती ने अपनी करुण कथा सुनाकर अनेक बार सखियों को रुलाया। ५. वह मुझे पिता मानता है। ६ मैं किसके सिर दोष मढूँ? ७ वह फिर अपने काम में लग गया। ८ विद्या धन से बढकर है। ९ यह समाचार पत्र में लिख दो। १० वह अभी तक अपने आपको नहीं सँभाल पाया। ११ होनहार बिरवान के होत चीकने पात। १२ उसने किसी तरह आठ वर्ष बिताए। १३ उसने दासी को रानी बना लिया। १४ मौका हाथ से न जाने दे। १५ सज्जनों का मेल शीघ्र ही विश्वास दिलाता है। १६ प्रतिष्ठा केवल उत्सुकता को शान्त करती है। १७ बडे दुःख को भी आशा का बन्धन सहन करा देता है। १८ दिन चन्द्रमा को जितना दुःखित करता है, उतना कुमुदिनी को नहीं। **(घ) (शाकादि-वर्ग)** हरा साग और सलाद स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभप्रद हैं। अनेक साग हैं, किसी को कोई अच्छा लगता है, किसी को कोई। कुछ लोग बदल-बदलकर आलू, टमाटर, गोभी, मटर, बैंगन, भिण्डी, टिण्डा, लौकी, कद्दू, गाजर, मूली, शलगम, परवल, पालक, बथुआ, सेम, फरासबीन, करेला और कटहल का साग खाते हैं। कुछ लोग दो-तीन साग को मिलाकर बनाते हैं या एक ही समय दो-तीन साग बनाते हैं।

संकेत—(क) २ सभाजनया। **(ख)** १ प्रजहाति यदा कामान्, आत्मन्येवात्मना तुष्टः। २ जहाहि। ३ अहासा, सदृश कुलस्य। ४ तस्य धैर्यं न हीयते। ५ जिह्रेति। ६ जिह्रेमि आर्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्। ७ अन्योन्यस्यापि जिह्रीमः, किं पुनरन्येषाम्। **(ग)** १ शरीरनिर्वापयित्रीम्, पटान्तेन वारयति। २ मा प्रासादे शब्दायय। ३ प्रत्याययति। ४ निशाम्य, अरोदयत्। ५ मा पितेति मानयति। ६ क दोषपक्षे स्थापयानि। ७ मनो न्यवेशयत्। ८ अतिरिच्यते। ९ वृत्तं पत्रमारोपय। १० स नाद्यापि पर्यवस्थापयति आत्मानम्। ११ आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रपातीनि शुभानि निमित्तानि। १२ तेनाष्टौ परिगमिता समाः कथञ्चित्। १३ महिषीपदं प्रापिता। १४ न कार्यकालमतिपातयेत्। १५ विश्वासयत्याशु सतां हि योगः। १६ औत्सुक्यमात्रमवसाययति। १७ आशाबन्धः साहयति। १८ ग्लपयति यथा। **(घ)** पर्यायशः, सम्मिश्रय, शाकत्रयं वा पचन्ति।

शब्दकोष—८५० + २५ = ८७५] अभ्यास ३५ (व्याकरण)

(क) करमर्दक. (करौंदा), पलाण्डु. (पु०, प्याज), लशुनम् (लहसुन), तिन्तिडीकम् (इमली), आर्द्रकम् (अदरक), व्यञ्जनम् (मसाला), मरीचम् (मिर्च), जीरक (जीरा), धान्यकम् (धनिया), शुण्ठी (स्त्री०, सोंठ), हिङ्गु. (पु० नपु०, हींग), हरिद्रा (हल्दी), लवणम् (नमक), सैन्धवम् (सेंधा नमक), रामकम् (साभर नमक), पिप्पली (स्त्री० पीपर), एला (इलायची), मधुरा (सौंफ), लवङ्गम् (लौंग), दारुत्वचम् (दालचीनी), त्रिपुटा (छोटी इलायची), खादिरः (कत्था), चूर्ण. (चूना), पूगम् (सुपारी), ताम्बूलम् (पान)। (२५)

व्याकरण—(करिन्, पथिन्, भृ, मा, सन् प्रत्यय)

१ करिन् और पथिन् शब्दो के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३३, ३४)

२ भृ और मा धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५२, ५३)

नियम १९९—(धातो. कर्मण· समानकर्तृकादिच्छायां वा) इच्छा करना या चाहना अर्थ मे धातु से सन् (स) प्रत्यय लगता है। सन् के विषय मे ये बातें स्मरण रखे—(क) इच्छा करनेवाला वही व्यक्ति हो, तभी सन् होगा। (ख) सन् प्रत्यय ऐच्छिक है, अत. सन् न लगाना चाहे तो तुमुन् (तुम्) प्रत्यय करके इष् या अभिलष् आदि धातु का प्रयोग करें। जैसे—पठितुमिच्छति। (ग) इच्छा करनेवाली क्रिया कर्म के रूप मे होनी चाहिए, अन्य कारक के रूप मे नही। करण मे होने से यहाँ नही होगा—अहमिच्छामि पठनेन मे ज्ञान वर्धेत। (घ) सन् का स शेष रहता है। सन् प्रत्यय करने पर धातुओ को द्वित्व होता है, जैसे लिट् लकार मे। सेट् धातुओ मे स से पहले इ लगाकर 'इष' हो जाएगा। अनिट् मे केवल 'स' लगेगा, यह स कहीं-कही पर सन्धि-नियमो के कारण ष या क्ष हो जाता है। (ङ) धातुओ को द्वित्व करने पर अभ्यास अर्थात् प्रथम अंश मे धातु मे अ होगा तो उसे इ हो जाएगा। (च) धातुओं के रूप इस प्रकार चलेंगे :—(१) परस्मैपदी के रूप परस्मै० मे और आत्मने० के आत्मने० मे, उभयपदी के उभयपद मे। (२) लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् मे परस्मै० में रूप भवतिवत्, आत्मने० में सेव् के तुल्य। (३) लिट् लकार मे धातु + आम् + कृ, भू या अस्। (४) लुङ् मे परस्मै० में ईत्, इष्टाम्, इषु आदि और आत्मने० में इष्ट, इषाताम्, इषत आदि। (५) आशीर्लिङ् में पर० मे यात्, यास्ताम् आदि, आत्मने० मे इषीष्ट आदि। (६) अन्य लकारों मे भू या सेव् के तुल्य। जैसे—गम् > जिगमिषति, जिगमिषतु, अजिगमिषत्, जिगमिषेत्, जिगमिषिष्यति, जिगमिषाचकार, जिगमिषिता, अजिगमिषीत्, जिगमिष्यात्, अजिगमिष्यत्। (छ) सन्नन्त प्रयोगवाली प्रचलित धातुएँ ये है —ज्ञा > जिज्ञासते, दा > दित्सति, धा > धित्सति, पा > पिपासति, जि > जिगीषति, चि > चिचीषति, श्रु > शुश्रूषते, ब्रू > विवक्षति, भू > बुभूषति, कृ > चिकीर्षति, हृ > जिहीर्षति, मृ > मुमूर्षति, तॄ > तितीर्षति, मुच् > मुमुक्षते, प्रच्छ् > पिपृच्छिषति, भुज् (आ०) > बुभुक्षते, पठ् > पिपठिषति, कित् > चिकित्सति, पत् > पित्सति, पिपतिषति, अद् > जिघत्सति, पद् > पित्सते, विद् > विविदिषति, बुध् > बुबोधिषति, मान् > मीमांसते, हन् > जिघांसति, आप् > ईप्सति, स्वप् > सुषुप्सति, रभ् > रिप्सते, लभ् > लिप्सते, गम् > जिगमिषति, दृश् > दिदृक्षते, ग्रह् > जिघृक्षति।

अभ्यास ३५

संस्कृत बनाओ—(क) (करिन् , पथिन्) १ हाथी ने इस पेड की छाल छील दी। २ साक्षी उपस्थित नहीं हुआ (साक्षिन्)। ३ अतिस्नेह में अनिष्ट की शंका बनी रहती है (पापशङ्किन्)। ४. अगले रविवार को आप हमसे मिलिएगा (आगामिन्)। ५ सहाध्यायियों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करो (सहाध्यायिन्)। ६ शेर बादल की ध्वनि पर हुंकार करता है, गीदडों की आवाज पर नहीं (केसरिन्)। ७. कम से कम तीन गवाह होने चाहिएँ (साक्षिन्)। ८ गुणवानों के गुण पूजा के योग्य हैं, चिह्न और आयु नहीं (गुणिन्)। ९. रथी पैदल से युद्ध नहीं करते (रथिन्)। १० ऐसा परोपकारियों का स्वभाव ही होता है। ११ हाथी के मित्र गीदड नहीं होते (दन्तिन्)। १२. मानहीन मनुष्य की और तृण की समान गति होती है (जन्मिन्)। १३ वे मूर्ख तिरस्कार को प्राप्त होते हैं, जो धूर्तों मे धूर्तता नहीं करते (मायाविन्)। १४ स्वाभिमानियों का स्वाभिमान ही धन होता है (मानिन्)। १५ तुम्हारा मार्ग शुभ हो। १६ धीर लोग न्याय के मार्ग से जरा भी विचलित नहीं होते। (ख) (भृ, मा) १ अपना पेट कौन नहीं पालता ? २ उसने पृथ्वी की धुरा को धारण किया। ३ राजाओं के पास चुगलखोर रहते हैं। ४ सदा स्वच्छ वस्त्रों को धारण करो। ५ व्यापारी हाथ से कपडे को नापता है (मा)। ६. लेखपाल ने जंजीर से खेत नापा। (ग) (सन् प्रत्यय) १ विद्यार्थी पाठ पढना चाहता है, लेख लिखना चाहता है, धर्म जानना चाहता है, दान देना चाहता है, धर्म करना चाहता है, जल पीना चाहता है, शत्रु को जीतना चाहता है, फूल इकट्ठा करना चाहता है (चि), गुरुवचन सुनना चाहता है, कार्य करना चाहता है (कृ), पाप को छोडना चाहता है (हृ), प्रश्न पूछना चाहता है (प्रच्छ्), फल खाना चाहता है (भुज्), धन पाना चाहता है (लभ्) और मित्र को देखना चाहता है। २ गुरुओं की सेवा करो। ३ वह छोटी नौका से समुद्र को पार करना चाहता है। (घ) (शाकादि०) १ कुछ लोग साग और दाल में अधिक मसाला पसन्द करते हैं। वे दाल में हल्दी, धनिया, नमक के साथ ही प्याज, लहसुन, इमली और लाल मिर्च भी डालते हैं। साग में भी मसाला डाला जाता है। २. कुछ लोग चाय में भी काली मिर्च, दालचीनी और सोंठ या अदरक डालते हैं। ३ पनवारी पान में चूना और कत्था लगाता है, बाद में छोटी इलायची और सुपारी डालकर देता है। पान खानेवाले पानदान में पान रखते हैं।

संकेत—(क) १ त्वगुन्मथिता। २ नोपतस्थौ। ३ अतिस्नेह पापशङ्की। ४ आगामिनि, भवता द्रष्टव्या वयम्। ६ अनुहुंकुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी। ७ त्र्यवरा साक्षिणो ज्ञेया। ८ गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिङ्ग न च वय। ९ न रथिन पादचारमभियुञ्जन्ति। १० परोपकारिणाम्। ११ भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिन। १२ जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गति। १३ व्रजन्ति ते मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविषु ये न मायिन। १४ सदाऽभिमानैकधना हि मानिन। १५ शिवास्ते सन्तु पन्थान। १६ न्याय्यात् पथ। (ख) १ निर्भर्ति। २ बिभरांबभूव। ३ पिशुनजन खलु बिभ्रति क्षितीन्द्रा। ४ बिभृयात। ६ लेखपाल शृङ्खलाभि, अमासीत्। (ग) १ लिलिखिषति, विधित्सति। २ शुश्रूषस्व। ३ उडुपेन, तितीर्षति। (घ) १ सहैव, रक्तमरीचम्, निक्षिपन्ति। शाकमपि उपस्क्रियते (उपस्कृ)। ३ ताम्बूलिक, लिम्पति, निक्षिप्य, ताम्बूलकरङ्के।

शब्दकोष—८७५ + २५ = ९००] अभ्यास ३६ (व्याकरण)

(क) कृषि. (स्त्री०, खेती), कृषीवल. (किसान), वसुधा (पृथ्वी), मृत्तिका (मिट्टी), उर्वरा (उपजाऊ), ऊषर. (ऊसर), शाद्वल. (शस्य-श्यामल), क्षेत्रम् (खेत), सीता (जुती भूमि), लाङ्गलम् (हल), फाल. (हल की फाल), खनित्रम् (फावड़ा, कुदाल), दात्रम् (दरॉती), लोष्टम् (ढेला), लोष्ठभेदन. (१ मूँगरी, २ पटेला, ३ मेंढा), कोटिश (कुसुम), तोत्त्रम् (चाबुक), कणिश (अनाज की बाल), पलाल (पराल), बुसम् (भुस), तुष. (भूसी), खाद्यम् (खाद), खलम् (खलिहान), खनियन्त्रम् (ट्रैक्टर), कृषियन्त्रम् (खेती के औजार)। (२५)

व्याकरण (तादृश्, चन्द्रमस्, दा, यङ्, यङ्लुक्, नामधातु)

१ तादृश् और चन्द्रमस् के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३५, ३८)

२ दा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५४)

नियम २००—(धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्) व्यंजन से प्रारम्भ होनेवाली एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता है, बार-बार या अधिक करने अर्थ में। यङ् प्रत्यय के लिए ये नियम स्मरण रखे—(क) यङ् का य शेष रहता है। सभी धातुओं के रूप केवल आत्मनेपद में चलते हैं। (ख) (सन्यङोः) धातु को द्वित्व होता है। (ग) (गुणो यङ्लुकोः, दीर्घोऽकितः) द्वित्व होने पर अभ्यास (पूर्वपद) में अ को आ, इ ई को ए, उ ऊ को ओ होगा। नी > नेनीयते, भू > बोभूयते, पठ्—पापठ्यते। (घ) (नित्यं कौटिल्ये गतौ) गत्यर्थक धातुओं से कुटिलता अर्थ में ही यङ् होगा। व्रज् > वाव्रज्यते (कुटिल चलता है)। (ङ) (रीगृदुपधस्य च) धातु की उपधा में ह्रस्व ऋ होगा तो उसके अभ्यास में 'री' और लगेगा। नृत् > नरीनृत्यते। (च) (घुमास्था०) दा, धा, स्था, गा, पा, हा, सा के आ को ई होगा। देदीयते, देधीयते, तेष्ठीयते, जेगीयते, पेपीयते, जेहीयते, सेषीयते। (छ) कुछ अन्य प्रसिद्ध यङन्त रूप ये हैं—कृ > चेक्रीयते, दिव् > देदीव्यते, भ्रम् > बम्भ्रम्यते, चर् > चञ्चूर्यते, वृत् > वरीवृत्यते, ग्रह् > जरीगृह्यते।

नियम २०१—(यङ्लुक्) (यङोऽचि च) धातु के बाद य का लोप होगा। यङ्लुक् के लिए ये नियम स्मरण रखे—(क) धातु को द्वित्व होगा। धातु के रूप परस्मैपद में ही चलेंगे। (ख) अभ्यास में अ को आ, इ ई को ए, उ ऊ को ओ होगा। (ग) धातु के अन्त में ऋ होगा तो उसके अभ्यास में री या रि लगेगा। (घ) यङ्लुक् के प्रयोग साहित्य में बहुत कम मिलते हैं। (ङ) ति, सि, मि से पूर्व विकल्प से ई लगेगा। जैसे—भू > बोभवीति, बोभोति। वृत् > वरीवर्ति, कृ > चरीकर्ति, गम् > जगमीति।

नियम २०२—(नामधातु) नामधातु में ये प्रत्यय मुख्यतया होते हैं :—(क) (सुप आत्मनः क्यच्) अपने लिए चाहने अर्थ में क्यच् (य) प्रत्यय। परस्मैपद होगा। आत्मनः पुत्रमिच्छति > पुत्रीयति। कवीयति, अशनायति, उदन्यति। (ख) (उपमानादाचारे) उसके तुल्य आचरण करने में क्यच् (य)। शिष्य को पुत्रवत् मानता है—पुत्रीयति छात्रम्। (ग) (काम्यच्च) अपने लिए चाहने में 'काम्य' होता है। पुत्रकाम्यति। (घ) (कर्तुः क्यङ्०) उसके तुल्य आचरण करने में क्यङ् (य) प्रत्यय। आत्मनेपद होगा। कृष्णवत् आचरण करता है > कृष्णायते। ओजायते, अप्सरायते। (ङ) (तत्करोति तदाचष्टे) करना और कहना अर्थ में णिच्। सूत्र बनाता है—सूत्रयति।

अभ्यास २६

संस्कृत बनाओ—(क) (तादृश् , चन्द्रमस्) १ वैसे सुन्दर आकृतिवाले लोग सहृदय ही होते हैं (सचेतस्) २ ऐसे वैसे लोग सभाओं में आ जाते हैं और रंग में भंग करते हैं। ३ पुत्र-स्नेह कितना प्रबल होगा, जब कि भ्रातृ-स्नेह इतना प्रबल होता है। ४ नक्षत्र, तारा और ग्रहों से युक्त भी रात्रि चन्द्रमा से ही प्रकाशित होती है। ५ मुनिव्रतों से अतिकृश तुमको देखकर किस सहृदय का मन दुःखित नहीं होगा (सचेतस्) ? ६ उसने उसके पास खड़े हुए एक वृद्ध पुरुष को देखा (प्रवयस्)। ७ यह दुर्वासा (दुर्वासस्) के शाप का ही प्रभाव है। ८ अच्छे चित्तवालों का (सुमनस्) भले और बुरों पर समान प्रेम होता है। (ख) (दा धातु) १ पढ़ाई पर ध्यान दो। २ भगवती पृथ्वी, मुझे अपने अन्दर समा लो। ३ क्या राजा ने तुम्हें यह अँगूठी इनाम में दी है ? ४ थोड़ा स्थान देना। ५ ये कन्याएँ पौधों को जल दे रही हैं (दा)। ६ उसने स्वामी के लिए प्राण दे दिए। ७ आँसू चित्र में भी शकुन्तला को नहीं देखने देता। ८ वस्त्रों को धूप में सुखाता है। ९ गुरु शिष्य को आज्ञा देता है। १० वह खेल में मन लगाता है। ११ उसने प्रत्युत्तर दिया। १२ उसने घर में आग लगा दी। १३ उसने यह वचन कहा। १४ हंस दूध को ले लेता है और उसमें मिले हुए जल को छोड़ देता है। १५ उसने सब लोगों का मन अपनी ओर खींच लिया (आदा)। १६ उसने निर्धनों को वस्त्र दिए (प्रदा)। (ग) (यङ् , नामधातु) १ बालक बार-बार हँसता है, रोता है, टेढ़ा चलता है, नाचता है, गाता है, खाना खाता है, पानी पीता है, काम करता है, घूमता है, प्रश्न पूछता है। २ (यङ्लुक्) वह बार-बार काम करता है, घर जाता है, विद्यालय में रहता है, साँप को मारता है और पुस्तक लेता है। ३ वह पत्नी-सहित तपस्या करता है। ४ वह अपने कुल को बदनाम करता है। ५ वह शिष्य को पुत्रवत् मानता है। ६ वह कृष्णवत् आचरण करता है। (घ) (कृषिवर्ग) भारत कृषि-प्रधान देश है। किसान उपजाऊ भूमि को हल से जोतता है, जुती हुई भूमि के ढेलों का मत्ता चलाकर सम कर देता है, बाद में उसमें बीज बोता है, अंकुर आने के बाद निराई करता है और अनावश्यक घास आदि को निकाल देता है। खेती तैयार होने पर दराँती से बालों को काट लेते हैं या जड़ से ही काटते हैं। भूस और भूसी गायों-बैलों को दी जाती है। आजकल टैक्टरों से भी खेती की जाती है।

संकेत—(क) १ आकृतिविशेषा , सचेतस । २ यादृशास्तादृशा जना , रङ्गभङ्ग विदधति । ३ बोढक् तनयस्नेह , ईदृक् । ४ ०सकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रि । ५ सचेतस कस्य मनो न दूयते । ६ स्थित प्रवयसम् । ७ दुर्वाससः शाप एष प्रभवति । ८ सुमनसा प्रीतिर्वाम-दक्षिणयो समा । (ख) १ अवधानम् । २ देहि मे विवरम् । ३ पारितोषिकम् । ४ अवकाशम् । ५ बालपादपेभ्य । ६ प्राणान् अदात् । ७ बाष्पस्तु न ददात्येना द्रष्टु चित्रगतामपि । ८ आतपे ददाति । १० मनो ददाति । १२ पावकम् अदात् । १३ इति वाचमाददे । १४ हंसो हि क्षीर-माददे तन्मिश्रा वर्जयत्यप । १५ मन आददे । (ग) १ बालक जाहस्यते, रोरुद्यते, वाव्रज्यते, नरीनृत्यते, जेगीयते, बोभुज्यते, पेपीयते, चेक्रीयते, बम्भ्रम्यते, प्रश्न परीपृच्छ्यते । २. स कार्यं चरीकर्ति । जङ्गमीति, वरीवर्ति, जघनीति, जाग्रहीति । ३ सपत्नीक तपस्यति । ४ मलिनयति । (घ)कर्षति, सवाद्ध समीकरोति, बीजानि वपति, क्षेत्रपरिष्कारम् , सपत्नाया मत्याम् , लुनन्ति, मूलत एव ।

शब्दकोष—९०० + २५ = ९२५] **अभ्यास २७** (व्याकरण)

(क) सुकृतिन् (भाग्यवान्), सुहृदय. (सहृदय), निष्णात (विद्वान्), प्रतीक्ष्य (पूज्य), वदान्य (दानी), हृष्टमानस (प्रसन्नचित्त) विमनस् (दुःखित हृदय), उत्क. (उत्कण्ठित), विश्रुत. (प्रसिद्ध), स्निग्ध (प्रेमी), आयत्तः (अधीन), आद्यून. (पेटू), लुब्ध. (लोभी), विनीत. (नम्र), धृष्ट. (ढीठ), प्रत्याख्यात (छोटा हुआ), विप्रकृत (तिरस्कृत), विप्रलब्ध. (वञ्चित) आपन्न (आपत्तिग्रस्त), दुर्गतः (दीन), कान्तम् (सुन्दर), अभीष्टम् (मनोहर), निकृष्ट (नीच), पूतम् (पवित्र) संख्यातम् (गिना हुआ)। (२५)

व्याकरण (विद्वस्, पुंस्, धा धातु, क्त प्रत्यय)

१. विद्वस् और पुंस् शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३६, ३७)

२. धा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५५)

नियम २०३—(क्तक्तवतू निष्ठा, निष्ठा) भूतकाल अर्थ मे धातु से क्त और क्तवतु कृत् प्रत्यय होते है। दोनो का क्रमशः त और तवत् शेष रहता है। 'त' प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य मे होता है। तवत् प्रत्यय कर्तृवाच्य म होता है। 'त' प्रत्यय करने पर सेट् (इ-वाली) धातुओं मे इ लगेगा, अनिट् (इ-नही वाली) धातुओ मे इ नहीं लगेगा। धातु को गुण या वृद्धि नही होती। सम्प्रसारण होता है।

नियम २०४—(क) क्त (त) प्रत्यय जब सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में होगा तो कर्म मे प्रथमा, कर्ता मे तृतीया और क्रिया के लिंग, वचन और विभक्ति कर्म के अनुसार होंगे, कर्ता के अनुसार नहीं। (ख) अकर्मक धातु से क्त (त) प्रत्यय होगा तो कर्ता मे तृतीया होगी। क्रिया मे नपुंसक० एक० ही रहेगा। (ग) 'त'-प्रत्ययान्त क्रिया शब्द कर्म के अनुसार पुंलिंग होगा तो उसके रूप रामवत्, स्त्रीलिंग होगा तो रमावत्, नपुंसक० होगा तो गृहवत् चलेंगे। जैसे—मया पुस्तक पठितम्, पुस्तके पठिते, पुस्तकानि पठितानि। मया ग्रन्थ पठित, ग्रन्थौ पठितौ, ग्रन्था· पठिता। मया बाला दृष्टा, बाला· दृष्टा। तेन हसितम्।

नियम २०५—(गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्०) इन धातुओं से क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी होता है—जाना चलना अर्थ की धातुओं, अकर्मक धातुओं तथा श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह्, जॄ धातुओं से। अत. कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया। जैसे—गृह गत। स ग्राम प्राप्त.। स भ्रत। हरि रमामाश्लिष्ट.। स शेषमधिशयितः। वैकुण्ठमधिष्ठित। शिवमुपासित.। अत्र उषित। राममनुजात.। वृक्षमारूढ। स जीर्णः।

नियम २०६—(मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च) मन्, बुध्, पूज्, तथा इन अर्थोंवाली अन्य धातुओं से क्त प्रत्यय वर्तमान काल अर्थ मे होता है। इसके साथ षष्ठी होगी। राज्ञा मत, बुद्ध, पूजित (राजा के द्वारा सम्मानित या पूजित)।

नियम २०७—(नपुंसके भावे क्त) कभी-कभी क्त प्रत्यय नपुंसकलिंग भाव वाचक शब्द बनाने के लिए होता है। जैसे—जल्पितम् (कहना), शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना), गतम् (चलना), स्थितम् (रहना)। कस्येदमालिखितम् (किसका चित्र है?)

अभ्यास ३७

संस्कृत बनाओ—(क) (विद्वस्, पुम्) १ विद्वान् ही विद्वानों के परिश्रम को समझता है। २ विद्वान् को भी दुष्ट लक्ष्मी दुर्जन बना देती है। ३ विद्वानों के मुँह से बात सहसा बाहर नहीं निकलती और जो निकल जाती है, वह फिर लौटती नहीं है। ४ जिसके पास पैसा है, वही संसार में पुरुष है। ५ शत्रु भी जिसके नाम का अभिनन्दन करते हैं, वही पुरुष पुरुष है। ६ वह पुरुषों के द्वारा वन्दनीय है। ७ दुष्ट स्त्री पुरुष पर विश्वास नहीं करती (विश्रम्)। (ख) (धा धातु) १ सहसा काम न करो। २ मुझे श्रेष्ठ लक्ष्मी दो। ३ हे माता, तू दुर्जनों को भी पालती है। ४ काँच सुवर्ण के संग से मरकत की कान्ति को धारण करता है। ५ इधर ध्यान दो। ६ वह कान पर हाथ रखता है। ७ वह कानों को बन्द करता है (अपिधा) ८ खिड़की बन्द कर दो। ९ हे अर्जुन, इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है (अभिधा)। १० आप इधर ध्यान दीजिए (अवधा)। ११ अपने से बलवान् शत्रु से सन्धि कर लो (सन्धा)। १२ उसने धनुष पर बाण रखा (सन्धा)। १३ नए कपड़े पहनो (परिधा)। १४ वह गुरु पर श्रद्धा करता है (श्रद्धा)। १५ वह बाँह का तकिया लगाकर सोता है (उपधा)। १६ शकुन्तला को ठगकर मुझे क्या मिलेगा (अभिसन्धा)? १७ वैदिक वाङ्मय का अनुसन्धान करो (अनुसन्धा)। १८ प्रायः भाग्य ही सबका शुभ और अशुभ करता है (विधा)। १९ मैं धनुष पर विजय की आशा को रखता हूँ (निधा)। २० मेज पर पुस्तकें रख दो (निधा)। २१ जल ने भूमि पर धूल को दबा दिया (निधा)। २२ मुझ में मन लगाओ (आधा)। २३ राक्षसों की छाया भय उत्पन्न करती हैं (आधा)। (ग) (विशेषण) १ भाग्यवान्, सहृदय, दानी और विद्वान् लोग तिरस्कृत, वञ्चित, आपत्तिग्रस्त और दीन को दुःख नहीं देते हैं। २ निकृष्ट व्यक्ति भी सुन्दर अभीष्ट वस्तुओं को पाकर प्रसन्नचित्त होता है और उन्हें न पाकर खिन्न होता है। ३. पेटू पराधीन होता है, नम्र प्रसिद्ध होता है, ढीठ तिरस्कृत होता है, प्रेमी विनीत होता है और उत्कण्ठित खिन्न होता है। (घ) (क्त प्रत्यय) १ मैंने रघुवंश के चार सर्ग पढ़े। २ उसने बनी-ठनी स्त्री देखी। ३ वह आसन पर बैठा (अधिष्ठा)। ४ वह वृक्ष पर चढ़ा (आरुह्)। ५ यह किसका चित्र है? ६ मुझे राजा मानते हैं। ७ यह अफवाह फैल गई। ८ उसका मन कहीं और है। ९ उसने यह शर्त लगाई। १० उसने उस समय बहुत वीरता दिखाई।

संकेत—(क) १ विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। २ अनार्या, खलीकरोति। ३ वदनाद् वाचः, याताश्चेन्न परावर्तन्ति। ४ यस्यार्थाः स पुमान् लोके। ५ यस्य नामाभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान्। ६ पुंसाम्। (ख) १ सहसा विदधीत न क्रियाम्। २ मयि धेहि। ३ दधासि। ४ धत्ते मारकतीं द्युतिम्। ५ धियं धेहि। ६ कर्णे दधाति। ७ कर्णौ पिधत्ते। ८ गवाक्षं पिधेहि। ९. क्षेत्रमित्यभिधीयते। १० अवधत्ताम्। ११ बलीयसा रिपुणा सन्दध्यात्। १२ समधत्त। १३ परिधत्त। १४ श्रद्दधाति। १५ बाहुमुपधाय। १६ अभिसन्धाय किं लभ्यते मया। १७ अनुसन्धत्त। १८ भवितव्यतैव, विदधाति। १९ निदधे विजयाशंसाम्। २० सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ। २२ आधत्स्व। २३ भयमादधति। (घ) १ सर्गाः। २ स्वलङ्कृता। ६ अहं राजा मतः। ७ वार्ता प्रसृता। ८ स हृदयेनासन्निहितः। ९ इति तेन समयः कृतः। १० धीरं विक्रान्तम्।

शब्दकोप—९२५ + २५ = ९५०] **अभ्यास ३८**

(घ) प्रोढम् (प्रौढ), ततम् (विस्तृत), ईरितम् (प्रेरित), उपचित. (मोटा), अपचित. (पतला), भुग्नम् (टूटा हुआ), शातम् (तेज), पक्वम् (पका हुआ), ह्रीण. (लज्जित), स्नुतम् (पिघला हुआ), अवगीत (निन्दित), उद्वान्तम् (उगला हुआ), शान्त. (शान्त), दान्त (जितेन्द्रिय), प्रच्छन्न (ढका हुआ), अवसित. (समाप्त), प्लुष्टम् (दग्ध), त्वष्टम् (छीला हुआ), निष्पन्नम् (तैयार), स्यूतम् (सिला हुआ), लूनम् (कटा हुआ), आसादितम् (प्राप्त), उज्झितम् (त्यक्त), अवगतम् (ज्ञात), जग्धम् (खाया हुआ)। (२५)

व्याकरण (श्रेयस्, अनडुह्, दिव्, नृत्, क्त प्रत्यय)

१. श्रेयस् और अनडुह् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३९, ४०)

२. दिव् और नृत् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५६, ५७)

नियम २०८—धातु से त, तवत् (तथा क्त्वा, क्तिन्) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। (देखो परिशिष्ट में क्त प्रत्यय से बने रूप)। (क) धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। सन्धि-कार्य होगा। जैसे—कृ>कृत.। हृत, धृत, भृत। पठितम्, लिखितम्। (ख) (रदाभ्या निष्ठातो न०) र् और द् के बाद त को न होगा, धातु के द् को भी न्। अर्थात् र् + त = र्ण। द् + त = न्न। दीर्घ ॠ को ईर् होता है, पॄ को पूर्। शॄ> शीर्ण, तॄ> तीर्ण, गॄ> गीर्ण, कॄ> कीर्ण, सकीर्ण, प्रकीर्ण, विकीर्ण। पॄ> पूर्ण। भिद्> भिन्न, छिद्> छिन्न, सद्> सन्न, प्रसन्न, विषण्ण, आसन्न आदि। (ग) (घुमास्थागापा०) गा, पा और हा के आ को ई होगा। गीतम्, पीतम् (पिया), हीनम् (छोडा)। (घ) (द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति) दो (दा), सो (सा), मा स्था, इनके आ को इ होता है। दित, अवसित, परिमित, स्थित। (ङ) (अनुदात्तोपदेश०) यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन्, वन् और तनादिगणी धातुओ के म् और न् का लोप होता है। यम्> यत, सयत, रम्> रत, विरत, नम्> नत, प्रणत, गम्> गत, आगत, हन्> हत, मन्> मत, समत, तन्> तत, वितत। (च) (अनिदिता हल०) उपधा के न् का लोप होगा, यदि धातु का इ हटा होगा तो नहीं। बन्ध्> बद्ध, ध्वस्> ध्वस्त, स्रस्> स्रस्त, दंश्> दष्ट। (छ) (जनसनखना०) जन्, सन्, खन् के न् को आ होगा। जात, सात, खात। (ज) (वचिस्वपियजादीना०, ग्रहिज्या०) वच् आदि को सम्प्रसारण होता है, अर्थात् य्> इ, व्> उ, र्> ऋ। ब्रू या वच्> उक्त, स्वप्> सुप्त, यज्> इष्ट, वप्> उप्त, वह्> ऊढ, वस्> उषित, ग्रह्> गृहीत, व्यध्> विद्ध, प्रच्छ्> पृष्ट, आह्वे> आहूत, वद्> उदित। (झ) (सयोगादेरातो०) ग्ला, म्ला आदि के बाद त को न। ग्लान, म्लान। (ञ) (ल्वादिभ्यः) लू आदि २१ धातुओ के बाद त को न। लू> लून, स्तॄ> स्तीर्ण, विस्तीर्ण, ज्या> जीन, दु> दून। (ट) (ओदितश्च) जिन धातुओं में से ओ हटा हो, उनके बाद त को न। उड्डी> उड्डीन., भञ्ज्> भग्न, भुज्> भुग्न, मस्ज्> मग्न, रुज्> रुग्ण, ली> लीन, उद्विज्> उद्विग्न, श्वि> शून, हा> हीन। (ठ) इन धातुओं के ये रूप होते है —दा> दत्त, धा> हित, विहित, निहित, अस्> भूत, शुष्> शुष्क, पच्> पक्व, क्षै> क्षाम। सह्> सोढ, वह्> ऊढ, अद्> जग्ध, क्षि> क्षीण, निर्वा> निर्वाण, निर्वात, गुह्> गूढ, लिह्> लीढ, प्यै> पीन, प्यान।

अभ्यास २८

संस्कृत बनाओ—(क) (श्रेयस्, अनडुह्) १ अपना धर्म घटिया भी अच्छा है। २. कल्याण के विषय में किसकी तृप्ति होती है ? ३. सूर्य अनड्वान् (बैल) है, वह पृथ्वी को धारण करता है (धृ)। ४. बैलों से खेती की जाती है। (ख) (दिव्, नृत् धातु) १. वह पासों से जुआ खेलता है। २. नाचनेवाला युवतियों के साथ नाचता है। ३. बाण चंचल लक्ष्य पर भी लगते हैं (सिध्)। ४. एक के परिश्रम से ही घर-खर्च चल जाता है। (ग) (क्त प्रत्यय) १ अच्छी याद दिलाई। २ अच्छा, हमने ऐसा मान लिया। ३ व्यापारी नाव टूट जाने से मर गया। ४ आपकी घोषणा का लोगों ने स्वागत किया है। ५ यह क्या बात शुरू की ? ६ ऐसा अशुभ न हो। ७ राजा ने अनुचित किया। ८ शकुन्तला पेड़ों से ओझल हो गई। ९ उसको भाग्य पर छोड़ दिया। १० उसकी प्रतिज्ञा सबको विदित हो गई। ११. वह दुःख के कारण अन्यमनस्क है। १२ मैं व्यर्थ ही रोया। १३ वे दोनों एक दूसरे को मारने पर तुले हुए हैं। १४ सारी चीजें उलट-पलट हो गई हैं। १५ सीता का क्या हाल हुआ ? १६. लोकापवाद मेरे लिए बलवान् है। १७ घर में आग लग गई। १८ घर में आग लगने पर कुँआ खोदना कहाँ तक उचित है ? १९ राजा होश में आया। २० तुम्हारा तर्क उचित है। २१ तुमने स्वयं अपना सत्यानाश किया है। २२ अब मेरी हालत ठीक है। २३. बड़ी कठिनाई से जान छूटी। २४ वह सदा के लिए चला गया। २५. उन्होंने उसे अपराधी ठहराया। २६ वह बहुत प्रसन्न हुआ। २७. उसकी आँखों में आँसू भर आए। २८ मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। २९ तुमने देर कर दी। ३० मैंने तुम्हारा कभी कुछ भी बुरा नहीं किया है। ३१ यह बात आपके कान तक पहुँची ही होगी। ३२. मैंने उसे कुछ मना लिया। (घ) (विशेषण) १ पके और कटे फल को खाओ। २ जले हुए, खाए हुए और छोड़े हुए भोजन को न खाओ। ३. आदमी पतला हो या मोटा, उसे शान्त और दान्त होना चाहिए। ४. प्रौढ व्यक्ति का ज्ञान विस्तृत, सन्तुलित, परिपक्व, तीक्ष्ण और अनिन्दित होता है। ५ सिले हुए वस्त्र, तैयार भोजन, पिघले हुए घी, ढके हुए बर्तन और छीले हुए फल को यहाँ रखो।

संकेत—(क) १ श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः। २ श्रेयसि। ३ अनड्वान् दाधार पृथ्वीम्। (ख) १ अक्षैः दीव्यति। २ नर्तकः। ३ सिध्यन्ति। ४ व्ययः शुध्यति। (ग) १ सम्यगनुबोधितोऽस्मि। २ अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। ३ सार्थवाहो नौव्यसने विपन्नः। ४ अभिनन्दितं देवस्य शासनं जनैः। ५ किमिदमुपन्यस्तम्। ६ प्रतिहतममङ्गलम्। ७ अनुचितमाचरितम्। ८ अन्तर्हिता वनराज्या। ९ स दैवाधीनः कृतः। १० प्रकाशता गता। ११ सन्तापेन भ्रष्टहृदयः। १२ अरण्ये मया रुदितम्। १३ परस्परवधायोद्यतौ तौ। १४ सर्वं विपर्यासं यातम्। १५ किं वृत्तम्। १६ बलवान् मतो मे। १७ ज्वलनमुपगतं गेहम्। १८ सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः। १९ प्रकृतिमापन्नः। २० उपपन्नः। २१ त्वया स्वहस्तेनाङ्गारा कर्षिता। २२ लब्धं मया स्वास्थ्यम्। २३ कथं कथमपि मुक्तः। २४ असंनिवृत्त्यै गतः। २५ स्थापितः। २६ आनन्दस्य परां कोटिमधिगतः। २७ तस्या नयने उद्बाष्पे जाते। २८ अनुपदमागत एव। २९ वेलातिक्रमः कृतः। ३० विप्रियं न कृतम्। ३१ इदं भवतः श्रुतिविषयमापतितमेव। ३२ किमपि सानुक्रोशः कृतः।

शब्दकोप—९५० + २५ = ९७५] अभ्यास ३९ (व्याकरण)

(क) अद्रि (पु०, पर्वत), ग्रावन् (पु०, पत्थर), शिला (चट्टान), शृङ्गम् (चोटी), प्रपातः (झरना), उत्सः (सोता), निर्झर (पहाडी नाला, बडा झरना), दरी (स्त्री०, दर्रा), अद्रिद्रोणी (स्त्री०, घाटी), गह्वरम् (गुफा), खनि० (स्त्री, खान), उपत्यका (तराई, भावर), अधित्यका (पटार), निकुञ्ज० (झाडी), हिमसरित् (स्त्री०, ग्लेशियर)। (१५)। (ख) क्रुध् (गुस्सा करना), द्रुह् (द्रोह करना), क्षम् (क्षमा रकना) दम् (दबाना), तुष् (सन्तुष्ट होना), दुष् (दूषित होना), व्यध् (बींधना), शुष् (सूखना), सिध् (सिद्ध होना), हृष् (प्रसन्न होना। (१०)।

व्याकरण (मति, नश्, भ्रम्, क्तवतु प्रत्यय)

१. मति शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४२)

२. नश् और भ्रम् धातुओ के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५८, ५९)

नियम २०९—क्तवतु प्रत्यय भूतकाल मे होता है। इसका तवत् शेष रहता है। यह कर्तृवाच्य मे होता है, अत कर्ता के तुल्य क्रिया-शब्द के लिंग, विभक्ति और वचन होंगे। कर्ता मे प्रथमा, कर्म मे द्वितीया, क्रिया कर्ता के तुल्य। धातुओ के रूप क्त प्रत्यय के तुल्य ही बनेंगे। नियम २०८ पूरा इसमें भी लगेगा। क्त प्रत्यय लगाकर जो रूप बनता है, उसी मे 'वत्' और जोड दे। जैसे—कृ > कृतः, तवत् में कृतवत् होगा। तवत् प्रत्ययान्त के रूप पुलिंग में भगवत् (शब्द० २०) के तुल्य चलेंगे, स्त्रीलिंग मे ई लगा कर नदी के तुल्य और नपुसक० में जगत् (शब्द० ६८) के तुल्य। क्त प्रत्यय लगाने पर कर्म के लिंग, वचन, विभक्ति पर ध्यान दिया जाता है, कर्ता के लिंग आदि पर नहीं। परन्तु क्तवतु प्रत्यय लगाने पर कर्ता के लिंग आदि पर ध्यान दिया जाएगा, कर्म पर नहीं। जैसे—स पुस्तकम् अपठत् का क्तवतु मे स पुस्तक पठितवान्। ते पुस्तकानि पठितवन्त । सा पुस्तक पठितवती।

नियम २१०—दीर्घ, गुण, वृद्धि, सम्प्रसारण आदि के लिए यह सारणी ठीक स्मरण कर ले। ऊपर मूल स्वर दिए गए हैं, उनके स्थान पर गुण, वृद्धि आदि कहने पर ऊपर के मूल स्वर के नीचे गुण आदि के सामने जो स्वर आदि दिए गए हैं, वे होंगे। आगे भी जहाँ गुण, वृद्धि, सम्प्रसारण आदि कहा जाए, वहाँ इस सारणी (टेबुल) के अनुसार कार्य करें। (रिक्त स्थानो पर वह कार्य नहीं होता।)

१. स्वर	अ, आ	इ, ई	उ, ऊ	ऋ, ॠ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ
२. दीर्घ	आ	ई	ऊ	ॠ	—	—	—	—	—
३. गुण	अ	ए	ओ	अर्	अल्	ए	—	ओ	—
४. वृद्धि	आ	ऐ	औ	आर्	आल्	ऐ	ऐ	औ	औ

५. सम्प्रसारण—य् को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को ऌ।

अभ्यास ३९

संस्कृत बनाओ—(क) (मति शब्द) १. विनाश के समय बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। २ सबकी रुचि पृथक् होती है (रुचि)। ३ कुपथ पर वर्तमान मूर्ख को दोनों लोकों में दु ख देनेवाली आपत्ति आती है (दुर्मति)। ४ एकता से कार्य सिद्ध होते हैं (संहति)। ५ गुणों से गौरव प्राप्त होता है, न कि मोटापे से (संहति)। ६ ओह, इष्ट वस्तु की सिद्धि मे विघ्न आते हे (सिद्धि)। ७ चेष्टा के अनुकूल ही कामी जनों की मनोवृत्ति होती है (वृत्ति)। ८ अधिक पैसा हो तो बहुत-से सम्बन्धी हो जाते है (जाति)। ९ अत्युन्नति के बाद बडों का भी पतन होता हे (अत्यारूढि)। १० वह सदा चौकन्ना रहता है (प्रत्युत्पन्नमति.)। ११ आप क्या काम करते हे? (वृत्ति)। १२ यह बात उस समय मुझे नही सूझी (बुद्धि)। १३ और कोई चारा नहीं है। १४ इस प्रकार की स्त्रियाँ गृहिणी होती हैं और इससे विपरीत कुल के लिए दु खद होती हैं (युवति, आधि)। १५. राम की बुद्धि तीक्ष्ण है और देवदत्त की मोटी। १६. वह देखने मे सुन्दर है। १७ उसने शत्रुता का रुख अपनाया हुआ है। १८ वह आपातत राम की बडाई कर रहा है, पर वस्तुत बुराई कर रहा है। (ख) (नश्, भ्रम् धातु) १. देर करनेवाला नष्ट हो जाता है (विनश्)। २ मशयात्मा नष्ट हो जाता है (विनश्)। ३ मेरा मन अस्थिर घूम रहा है (भ्रम्)। ४ पेड के थावले में जल चक्कर खा रहा है (भ्रम्)। ५ अधीनस्थ व्यक्ति बडे कामों मे जो सफल हो जाते हैं, वह बडों की कृपा ही समझनी चाहिए (सिध्)। ६ सज्जन पापी पर क्रोध करता है (क्रुध्), दुर्जन से द्रोह करता है (द्रुह्), निरपराध को क्षमा करता है (क्षम्)। ७ राम बाण से मृगों को बींधता है (व्यध्), शत्रुओं को दबाता है (दम्) और रावण को जीतने से प्रसन्न होता है (हृष्)। ८ दुर्जन थोडे से सन्तुष्ट होता है (तुष्)। ९ कुलमर्यादा के नाश से कुलीन स्त्रियाँ बिगड जाती हैं (दुष्)। १० ग्रीष्म ऋतु में तालाब सूख जाता है (शुष्)। (ग) (क्तवतु) १ तुमने मेरा अभिप्राय ठीक समझा। २ उसके खाना खा लेने पर मैं उसके पास गया। ३ पहाड दिखाई दिया। ४ पत्थर गिरे। (घ) (शैलवर्ग) १ पहाड की चोटी से झरना बहा। २ घाटी में सोते निकलते है और नाले बहते हैं। ३ पर्वत की गुफाओ मे ऋषि तपस्या करते हैं। ४ पिण्डारी ग्लेशियर का दृश्य मनोरम है। ५ पठार की भूमि सम होती है, वहाँ वृक्षादि भी होते हैं। ६ दर्रे के मार्ग से यातायात होता है।

संकेत—(क) १ भवत्यपाये परिमोहिनी मति। २ भिन्नरुचिर्हि लोक। ३ आपदेत्युभयलोकदूषणी वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम्। ४ महति कार्यसाधिका। ५ गुरुता नयन्ति हि गुणा न संहति। ६ अहो, विघ्नवत्य प्रार्थितार्थसिद्धय। ७ चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्ति। ८ अतनुषु विभवेषु ज्ञातय सभवन्ति। ९ अत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा। ११ का वृत्तिमुपजीवत्यार्य। १२ इति मम बुद्धौ नापतितम्। १३ नान्या गति। १४ यान्त्येवं गृहिणीपद युवतयो वामा कुलस्याधय। १५ तीक्ष्णमती राम, स्थूलबुद्धि। १६ शोभनाकृति। १७ विपक्षवृत्तितामाश्रयते। १८ स रामस्य व्याजस्तुतिमाचरति। (ख) १ दीर्घसूत्री। ३ निष्ठाशल्यम्। ४ वृक्षावर्ते। ५ सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्या, संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्। ६ पापिने, दुर्जनाय द्रुह्यति, क्षाम्यति,। ७ विध्यति, दाम्यति, हृष्यति। ८ तुष्यति। ९ प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रिय। १० शुष्यति कासार। (ग) १ सम्यग निगृहीतवानसि। २ भुक्तवति तस्मिन्। ४ ग्रावाण।

शब्दकोष–९७५ + २५ = १०००] **अभ्यास ४०** (व्याकरण)

(क) काननम् (वन), विटपिन् (वृक्ष), व्रतति (स्त्री०, लता), मूलम् (जड), दारु (नपु०, लकडी), इन्धनम् (ईंधन), वल्लरि (स्त्री०, बौर), पर्णम् (पत्ता), किसलयम् (कोपल), वृन्तम् (डंठल), देवदारु (पु०, देवदार), भद्रदारु (पु०, चीड), सिन्दूर (ग्राम का पेड), सर्ज (सर्ज), साल (साल का पेड), तमाल (आबनूस), करीर (करील, बबूल), गुग्गुल (गूगल), भल्लातक (भिलोटा), प्रियाल (प्याल)। (२०)। (ख) ष्ठिव् (थूकना), अस् (फेंकना), पुष् (पुष्ट करना), शुध् (शुद्ध होना), तृप् (तृप्त होना)। (५)

व्याकरण—(नदी, लक्ष्मी, श्रम्, सिव्, शतृ प्रत्यय)

१. नदी और लक्ष्मी शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४३, ४४)

२. श्रम् और सिव् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६०, ६१)

नियम २११—(लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे) (क) लट् के स्थान पर परस्मैपद में शतृ और आत्मनेपद में शानच् होता है। शतृ का अत् और शानच् का आन शेष रहता है। ये दोनों प्रत्यय क्रिया की वर्तमानता को सूचित करते हैं। हिन्दी में इनका अर्थ 'रहा है, रहे हैं, रहा था, हुआ, हुए' आदि के द्वारा प्रकट किया जाता है। (ख) पाणिनि के नियमानुसार प्रथमा कारक में शतृ, शानच् का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे—स पठन् अस्ति, न कहकर—स पठति ही कहना चाहिए। परन्तु प्रथमा में भी कुछ प्रयोग मिलते हैं अतः प्रथमा में भी इनका प्रयोग प्रचलित है। (ग) शतृ और शानच्-प्रत्ययान्त शब्द विधेय या विशेषण के रूप में आते हैं। शतृ-प्रत्ययान्त के लिंग, वचन, कारक, कर्ता के तुल्य होते हैं। इसके रूप पुंलिंग में पठत् (शब्द० २४) के तुल्य चलेंगे। जुहोत्यादि० की धातुओं में न् नहीं लगेगा। जैसे—ददत् ददतौ ददतः। स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य। नपुंसक० में जगत् (शब्द० ६८) के तुल्य। जैसे—पठन्तं रामं पश्य। पठते रामाय फलानि यच्छ। (घ) शतृ प्रत्यय में भी धातु से विकरण आदि होते हैं, अतः शतृ प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का अति सरल प्रकार यह है कि उस धातु के लट् के प्रथम पु० बहुवचन के रूप में से अन्तिम इ और बीच के न् को (यदि हो तो) हटा दें। इस प्रकार शतृ प्रत्ययवाला रूप बच जाता है। जैसे—भू > भवन्ति, शतृ-भवत्। अस् > सन्ति, सत्। गम् > गच्छन्ति, गच्छत्। कृ > कुर्वन्ति, कुर्वत्। दा > ददति, ददत्। (ङ) शतृप्रत्ययान्त के बाद अर्थ के अनुसार अस्, आस् या स्था धातु का प्रयोग होता है। वर्तमान आदि में अर्थानुसार लट्, लङ् आदि। गृहं गच्छन् आसीत्, भविष्यति वा। पशूनां वधं कुर्वन् आस्ते। तं प्रतिपालयन् तस्थौ, अतिष्ठत् वा। (च) शतृ-प्रत्ययान्त को स्त्रीलिंग बनाने के लिए ये नियम स्मरण रखें—(१) (उगितश्च) सभी जगह अन्त में ङीप् (ई) लगेगा। (२) (शप्श्यनोर्नित्यम्) भ्वादि०, दिवादि० और चुरादि० की धातुओं में त् से पहले न् और लगेगा। जैसे—गच्छत् > गच्छन्ती, नृत्यत् > नृत्यन्ती, कथयत् > कथयन्ती। (३) (आच्छीनद्योः०) अदादि० की आकारान्त धातुओं तथा तुदादि० की धातुओं में बीच में न् विकल्प से लगेगा। भात् > भान्ती, भाती, तुदत् > तुदन्ती, तुदती। (४) इसके अतिरिक्त शेष स्थानों पर न् नहीं लगेगा, केवल ई अन्त में लगेगी। रुदती, दधती, शृण्वती कुर्वती, क्रीणती। (देखो परिशिष्ट में शतृप्रत्यय)।

अभ्यास ४०

संस्कृत बनाओ—(क) (नदी, लक्ष्मी) '१ नदियाँ स्वय अपना जल नहीं पीतीं। २ नदियों मे लोग तैरते है और उनमे मगर आदि भी रहते हैं। ३ लक्ष्मी वह है, जिससे दूसरों का उपकार होता है। ४ लक्ष्मी के प्रसाद से दोष भी गुण हो जाते है। ५ यह घर मे लक्ष्मी है। ६ सधवा स्त्रियों का चित्त फूल के तुल्य कोमल होता है (पुरन्ध्री)। ७. जिन्होंने पुण्य कर्म नही किए हैं, उनकी वाणी स्वच्छ और गम्भीर पदोंवाली नहीं होती (सरस्वती)। (ख) (श्रम्, सिव्) १. वह कठिन परिश्रम करता है (श्रम्)। २ वह तीव्रगति मे शत्रु की ओर चला (श्रम्)। ३ बिना कारण ही जो पक्षपात होता है, उसका प्रतिकार नही है। वह प्रेमरूपी तन्तु है, जो प्राणियों को अन्दर से सी रहा है। ४. अच्छी सिलाई के लिए सिलाई की मशीन से वस्त्रों को सीओ। ५ इधर-उधर मत थूको और न कूडा-करकट ही मनमाने फेंको (अम्)। ६. यज्ञ से वायु शुद्ध होती है (शुध्)। ७ आग लकडी से तृप्त नहीं होती (तृप्)। (ग) (शतृ प्रत्यय) १. वह बाण चढ़ाता हुआ दिखाई दिया। २ थोडी योग्यतावाला होने पर भी मैं रघुवंशियों का वर्णन करूँगा। ३. वह सिर-दर्द का बहाना बना कर घर चला गया। ४. सूर्य के तपते होने पर अन्धकार कैसे प्रकट होगा (आविर्भू)? ५ नीचों से मित्रता की अपेक्षा महात्माओं से विरोध अच्छा है, क्योंकि वह ऐश्वर्य को उन्नत करता है। ६ सज्जनों के सन्देहास्पद विषयों में उनके अन्त करण की वृत्तियाँ ही प्रमाण हैं। (घ) (द्वितीया) १ तुम्हे लोग प्रकृति कहते हैं। २. वह यमुना के किनारे गया। ३ उसे बडा दु ख हुआ। ४. राजा का हितकर्ता लोगों में बुरा समझा जाता है। ५. वह तृप्त नहीं हुआ। ६ राम पहाड की चोटी पर चढ़ा। ७. पक्षी आकाश में उडा। ८. चन्द्रापीड शिलापट्ट पर सोया। ९. दुष्यन्त इन्द्र के आधे आसन पर बैठा। १०. वह सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। ११ बदमाशों को धिक्कार। १२. नौकर राजा के चारों ओर खडे हो गए। (ङ) (वन वर्ग) वन भूमि के रक्षक हैं, वे भूमि को रेगिस्तान होने से बचाते हैं। वृक्षों की उपयोगिता बहुत है। उनके पत्ते, जड, लकडी, कोंपल, बौर, डण्ठल, कलियाँ, फूल और फल सभी अनेक कामों मे आते हैं। कुछ पेड फल देते हैं और उनके फल खाए जाते हैं। कुछ पेडों की लकडी ईंधन के रूप मे काम आती है। पहाडों पर देवदार, चीड, बॉझ, सर्ज और साल के पेड अधिक होते हैं। गूगल, लिसोडा और प्याल पर फल भी होते हैं। आबनूस की लकडी काली होती है और बबूल की दातूनें अच्छी बनती हैं।

सकेत—(क) ३ उपकुरुते यथा परेषाम्। ६ पुरन्ध्रीणा चित्त कुसुमसुकुमार हि भवति। ७ प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणा प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती। (ख) ३ अहेतु, स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति। ४ स्यूत्यर्थम्। ५ ष्ठीव्यत, अवकरनिकरम्, यथेच्छम्, अस्यत। ७ काष्ठानाम्। (ग) १ शरसन्धान कुर्वन्। २ रघूणामन्वय वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्। ३ शिर शूलस्पर्शनमपदिशन्। ४ घर्मांशौ तपति। ५ समुन्नयन् भूतिमनार्यसगमाद् वर विरोधोऽपि सम महात्मभि। ६ सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय। (घ) १ प्रकृतिमामनन्ति। २ कच्छमवतीर्ण। ३ पर विषादमगच्छत्। ४ द्वेष्यता याति लोके। ५ न तृप्तिमाययौ। ६ शिखरमारुरोह। ७ दिवमुदपतत्। ८ ० पट्टमधिशिश्ये। ९ अर्धासनम् अधितस्थौ। १० अभिनिविशते सन्मार्गम्। ११ धिक् जाल्मान्। १२ परिजन। (ङ) मरुत्वात्, कलिका', उपयुज्यन्ते, दन्तधावनानि।

शब्दकोष—१००० + २५ = १०२५] अभ्यास ४१ (व्याकरण)

(क) रसालः (आम), जम्बूः (स्त्री०, जामुन), पलाशः (ढाक), प्लक्षः (पाकड), अश्वत्थः (पीपल), न्यग्रोधः (बड), नीपः (कदम्ब), शाल्मलिः (पु०, सेमर), खदिरः (खैर), एरण्डः (एरंड), शिंशपा (शीशम), तालः (ताड), नारिकेलः (नारियल), निम्बः (नीम), मधूकः (महुआ), बिल्वः (बेल), फेनिलः (रीठा), आमलकी (स्त्री०, आँवला), बिभीतकः (बहेडा), हरितकी (स्त्री०, हर्र), पनसः (कटहल), अपामार्गः (चिरचिटा), वेतसः (बेंत), अर्कः (आक), धत्तूरः (धतूरा)। (२५)

व्याकरण (स्त्री, श्री, सो, शो, शतृ, शानच् प्रत्यय)

१. स्त्री और श्री शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४५, ४६)

२. सो और शो धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६२, ६३)

नियम २१२—(लटः शतृशानचौ०) (क) आत्मनेपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शानच् हो जाता है। शानच् का आन शेष रहेगा। शानच् होने पर शब्द के रूप पुलिंग मे रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत्, नपुंसक में गृहवत् चलेंगे। शानच् प्रत्यान्त के लिंग, वचन और कारक कर्ता के तुल्य होंगे। (देखो परिशिष्ट में शानच् प्रत्यय)। (ख) शानच् प्रत्ययान्त के बाद अर्थ के अनुसार अस्, आस् या स्था का लट्, लङ् आदि का प्रयोग होगा। (ग) (आने मुक्) जिन धातुओं के अन्त में अ विकरण लगता है, वहाँ पर अ और आन के बीच में म् लग जायगा। अर्थात् अ + आन = मान। जैसे—यजते > यजमानः। वर्तते > वर्तमानः। (घ) (ईदासः) आस् धातु से शानच् होने पर आसीन रूप होता है। (ङ) अन्यत्र आन ही जुड़ेगा। शी > शयानः, कृ > कुर्वाणः, धा > दधानः।

नियम २१३—(क) (विदेः शतुर्वसुः) विद् के बाद शतृ को वस् विकल्प से होता है। विदन्, विद्वान्। विदुषी। (ख) द्विष् धातु से शत्रु अर्थ में और सु से यज्ञ मे रस निचोडना अर्थ मे शतृ होता है। द्विषन्, सुन्वन्। (ग) अर्ह् से योग्य होना अर्थ में शतृ। अर्हन्। (घ) (पूङ्यजोः०) पू और यज् के वर्तमान अर्थ में पवमानः, यजमानः रूप होते हैं। (ङ) (ताच्छील्य०) स्वभाव आदि अर्थों में चानश् (आन) प्रत्यय होता है। भोग भुञ्जानः। कवच बिभ्राणः। शत्रु निघ्नानः।

नियम २१४—(क) शतृ और शानच् क्रिया की वर्तमानता को बताते हैं। इनसे 'जब कि' अर्थ भी निकलता है। अरण्य चरन्—जब वह वन में घूम रहा था। विवाहकौतुक बिभ्रत एव—जब कि वह विवाह का सूत्र पहने हुए था। (ख) (लक्षण-हेत्वोः क्रियायाः) स्वभाव और कारण अर्थ बताने में शतृ और शानच् होते हैं। शयाना भुञ्जते यवनाः (यवन लेटे-लेटे खाते हैं)। अर्जयन् वसति (धन कमाता हुआ रहता है)। (ग) (ताच्छील्य०) चानश् (आन), स्वभाव, आयु और शक्ति अर्थ का बोध कराता है। उदाहरण नियम २१३ (ङ) में हैं। (घ) शतृ और शानच् प्रत्ययान्त का सप्तमी में समय-सूचक अर्थ हो जाता है। जब वह रो रहा था—तस्मिन् रुदति सति। तस्मिन् पठति सति।

नियम २१५—(लटः सद्वा) करने जा रहा है या करनेवाला है, इस अर्थ में लृट् को परस्मै० में शतृ और आत्मने० में शानच् होता है। लृट् का रूप बनाकर शतृ या शानच् लगावें। वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्। करिष्यमाणः सशर शरासनम्।

अभ्यास ४१

संस्कृत बनाओ—(क) (स्त्री, श्री शब्द) १. स्त्रियाँ जन्म से ही चतुर होती हैं। २ लज्जा ही वस्तुतः स्त्रियों को सुशोभित करती है। ३ स्त्रियों में बिना शिक्षा के ही चतुरता देखी जाती है। ४ स्त्रियों का पति ही गति है। ५ स्त्रियों का भर्ता ही देवता है। ६ अथक परिश्रम ही श्री का मूल है। ७ साहस में श्री निवास करती है। ८. स्वाभिमान भी रहे और धन भी मिले, ऐसा नहीं होता। ९ सीता दशरथ के गृह में लक्ष्मी के सदृश थी। (ख) (सो, शो धातु) १ वह शत्रु को मारता है (सो)। २. भीम ने दुर्योधन को मारा। ३. आधा काम समाप्त हो गया [अवसो]। ४ वह ऋषि नीलकमल के पत्ते की धार से शमी-लता को काटने का प्रयत्न करता है (व्यवसो)। ५ पेड़ों को जल दिये बिना शकुन्तला जल नहीं पीना चाहती थी। ६ वह चाकू से आलू छीलता है [शो]। ७ उसने छुरी से पेन्सिल छीली। ८ वह कुशा को काटता है (दो)। ९ वह लकड़ी काटता है (छो)। (ग) (शतृ, शानच्) १ पुत्र और शिष्य को बढ़ता हुआ, प्रसन्न होता हुआ और यत्न करता हुआ देखना चाहे। २ सूर्योदय होने पर सोनेवाले को श्री छोड़ देती है। ३. मैं आराम से बैठा हूँ, आप भी आराम से बैठें। ४ बिस्तर के पास में बैठे हुए पुत्र को राजा ने देखा। ५ वह कवच पहनता है, शत्रुओं को मारता है और भोगों को भोगता है। ६ मुसल्मान लेटे-लेटे खाते हैं। ७. जब वह रो रहा था, तभी कौआ रोटी लेकर उड़ गया। ८ वन्य जन्तुओं को विनीत करने की इच्छा से मानो वह वन में घूमा। (घ) (द्वितीया) १ तुम्हारी दुष्टता की शिकायत मैंने आचार्य से कर दी है। २ आप के बारे में उसका प्रेम कैसा है? ३. चार महीने वर्षा नहीं हुई। ४ राम बालक से रास्ता पूछता है। ५ पिता बालक को धर्म बताता है। ६ वह देवदत्त से सौ रुपया जीतता है (जि)। ७ चोर देवदत्त का सौ रुपया चुराता है। ८ विष्णु समुद्र से अमृत को मथते हैं। ९ वह बकरी को गाँव में ले जाता है (नी, हृ, कृष्)। १० उसने राजा से कुशल पूछा। ११ शोक के वश में न होओ। १२ अपने साथी से विदाई लो। १३ समय ही बलाबल को करता है। १४ सब अपना स्वार्थ देखते हैं। (ङ) (वृक्षवर्ग) उपवन में वृक्षों की सुन्दरता दर्शनीय है। वृक्षों की पंक्तियाँ लगी हुई हैं। आम, कलमी आम, जामुन, ढाक, पाकड़, पीपल, बड़, कदम्ब, सेम, खैर, एरड, शीशम, ताड़, नारियल, नीम, महुआ, बेल और कटहल के वृक्ष फूलों और फलों से सुशोभित हो रहे हैं। हर्र, बहेड़ा और आँवला त्रिफला कहा जाता है।

संकेत—(क) १ निसर्गादेव। २ स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव। ३ स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम्। ६ अनिर्वेद। ८ न मानिता चास्ति, भवन्ति च श्रिय। ९ यथा श्री। (ख) १ स्यति। ३ अर्धमवसितं कार्यस्य। ४ धारया छेत्तुं व्यवस्यति। ५ वृक्षेष्वपीतेषु, पातु न व्यवस्यति। ६ श्यति। ७ अशात्। ८ कुशान् द्यति। ९ छ्यति। (ग) १ वर्धमानम्, मोदमानम्, यतमानम्। २ शयानम्। ३ सुखासीनोऽहम्। ४ शयनान्तिके आसीनम्। ५ बिभ्राण, निघ्नान, भुञ्जान। ८ विनेष्यन्निव। (घ) १ तवाविनयमन्तरेण परिगृहीतार्थ कृत आचार्य। २ भवन्तमन्तरेण। ३ चतुरो मासान् न ववर्ष। ४ बालक पन्थानम्। ५ ब्रूते। ६ देवदत्त शतम्। ७ मुष्णाति। ८ सुधा क्षीरनिधिं मथ्नाति। ९ अजां ग्रामम्। ११ वशं मा गम। १२ आपृच्छस्व सहचरम्। १४ सर्वं स्वार्थं समीहते। (ङ) राजाम्र।

शब्दकोष--१०२५ + २५ = १०५०] अभ्यास ४२ (व्याकरण)

(क) बकुलः (मौलसरी), कुवलयम् (नीलकमल), इन्दीवरम् (नीलकमल), कुमुदम् (श्वेतकमल), पुण्डरीकम् (सफेद कमल), कोकनदम् (लाल कमल), कह्लारम् (सफेद कमल), कुमुदिनी (स्त्री०, कुमुद की लता), नलिनी (स्त्री०, पद्म-समूह), शेफालिका (हार-सिंगार), यूथिका (जूही), चम्पकः (चम्पा), मालती (स्त्री०, चमेली), मल्लिका (बेला), गन्धपुष्पम् (गेंदा), केतकी (स्त्री०, केवड़ा), कर्णिकार (कनेर), बन्धूकः (दुपहरिया), कुन्दम् (कुन्द), स्थलपद्मम् (गुलाब), स्तवकः (गुलदस्ता), प्रसूनम् (फूल), मकरन्द (पराग), जपापुष्पम् (जवाकुसुम) नवमालिका (नेवारी)। (२५)

व्याकरण (धेनु, वधू, कृप्, पद्, तुमुन् प्रत्यय)

१. धेनु और वधू शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४७, ४८)

२. कृप् और पद् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६४, ६५)

नियम २१६—(क) (तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्) को, के लिए अर्थ को प्रकट करने के लिए धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है। ऐसे स्थानों पर दूसरी क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। यह अव्यय होता है, अतः इसका रूप नहीं चलेगा। पठितुं लेखितुं क्रीडितुं च विद्यालयं याति। (ख) (समानकर्तृकेषु तुमुन्) इच्छार्थक धातुओं के साथ तुमुन् होता है। पठितुं भोक्तुं वा इच्छति। श्रोतुमिच्छामि। (ग) (शकधृषज्ञा०) शक्, ज्ञा, रभ्, लभ्, क्रम्, अर्ह्, अस् आदि के साथ तुमुन् होता है। भोक्तुं शक्नोति, पठितुं जानाति, भोक्तुमारभते। (घ) (पर्याप्तिवचनेषु०) पर्याप्त अर्थ में तुमुन्। भोक्तुं पर्याप्तः प्रवीणः कुशलो वा। (ङ) (कालसमयवेलासु०) समयवाचक शब्दों के साथ तुमुन् होता है। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

नियम २१७—तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। ये नियम तृच् (तृ), तव्यत् (तव्य) में भी लगेंगे। (क) धातु को गुण होता है, अर्थात् अन्तिम इ ई > ए, उ ऊ > ओ, ऋ ॠ > अर् तथा उपधा (उपान्त्य) के इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् होता है। जैसे—जि > जेतुम्, भू > भवितुम्, कृ > कर्तुम्। हर्तुम्। धर्तुम्। (ख) सेट् धातुओं में बीच में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। उदाहरण उपर्युक्त हैं। (ग) सन्धि-नियमों के अनुसार धातु के अन्तिम च् और ज् को क्, द् को त्, ध् को द् और भ् को ब् होता है। पच्-पक्तुम्, भुज्-भोक्तुम्, छिद्-छेत्तुम्, रुध्-रोद्धुम्, लभ्-लब्धुम्। (घ) (व्रश्चभ्रस्जसृजमृज०) धातु के अन्तिम च्छ् और श् को ष् होता है और इन धातुओं के च् या ज् को भी ष् होता है:—व्रश्च्, भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्राज्। ष् होकर इनके ष्टुम् वाले रूप बनेंगे। प्रच्छ्-प्रष्टुम्, प्रविश्-प्रवेष्टुम्। स्रष्टुम्, यष्टुम्। (ङ) (आदेच०) धातुओं के अन्तिम ए और ऐ को आ हो जाता है। आह्वे-आह्वातुम्, गै गातुम्, त्रै-त्रातुम्। (च) धातु के अन्तिम म् को न् हो जाता है। गम् गन्तुम्, रम्-रन्तुम्। (छ) धातु के अन्तिम ह् को घ् या ढ् होकर ग्धुम् या ढुम् वाला रूप बनता है। दह्-दग्धुम्, द्रुह्-द्रोग्धुम्, दुह्-दोग्धुम्, लिह्-लेढुम्। वह्-वोढुम्। (ज) इन धातुओं के ये रूप होते हैं:—सह्-सोढुम्, वह्-वोढुम्, सृज्-स्रष्टुम्, दृश्-द्रष्टुम्, आरुह्-आरोढुम्, ग्रह्-ग्रहीतुम्।

नियम २१८—(तुं काममनसोरपि) तुम् के म् का लोप होता है, बाद में काम या मनस् [इच्छार्थक] शब्द हो तो। वक्तुकामः, वक्तुमनाः (बोलने का इच्छुक)।

अभ्यास ४२

संस्कृत बनाओ—(क) (धेनु, वधू) १. गाय को माता माना जाता है, यह उचित है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसकी सुरक्षा और पालन पोषण का भी पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। २ यह दुबला शरीर (तनु) कठिन परिश्रम के योग्य नहीं है। ३ कौआ चोंच से (चञ्चु) दाने चुगता है और बच्चों को खिलाता है। ४ तन्दूर में (कन्दु) पकी रोटियाँ जल्दी हजम होती है। ५ वधू श्वसुर से शमाती है। ६ जामुन (जम्बू) मीठी होती है। ७ कुप्पी (कुतू) में तेल भर दो। ८ यह चप्पल (पादू) मेरे पैर में ठीक आता है। (ख) (कुप्, पद् धातु) १ राजा लोग हितवादी पर क्रोध करते है (कुप्)। २ गुरु शिष्य पर बहुत अधिक क्रुद्ध हुआ। ३ रक्त के दूषित होने पर शरीर में दोष कुपित हो जाते हैं। ४ उसने विदर्भ का आधिपत्य पाया (पद्)। ५ वे अपने धर्म का पालन करते हैं (पद्)। ६ लोकाचार का पालन करो (प्रतिपद्)। ७ मनुष्य क्षुब्ध होने पर प्राय अपने महत्त्व को प्राप्त करता है (प्रतिपद्)। ८ समय मिलने पर आपका काम पूरा करूँगा (संपादि)। ९. इधर चलो। १० कौन तुम्हारा अनुकरण कर सकता है (प्रतिपद्)? ११ वह यौवन को प्राप्त हुआ (प्रपद्)। १२ धूल कीचड हो गई (प्रपद्)। १३ कोई मुझ जैसा पैदा होगा (उत्पद्)। १४ जो पाप करेगा, वह दु खी होगा (विपद्)। १५ यह तुम्हारे योग्य नहीं है (उपपद्)। १६ पाँच को तीन से गुणा करने पर पन्द्रह हो जाते हैं (संपद्)। १७ इस शब्द का यह रूप बनता है (निष्पद्)। (ग) (तृतीया) १. चन्द्रमा के साथ चाँदनी चली जाती है और बादल के साथ बिजली। २ सज्जनों का सज्जनों से मिलन बड़े भाग्य से होता है। ३ मृग मृगों के साथ घूमते हैं, गाएँ गायों के साथ, घोड़े घोड़ों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, विद्वान् विद्वानों के साथ। समान स्वभाव और आदतवालों की मित्रता होती है। ४ वह आँख से काणा, कान से बहरा, सिर से गंजा, पैर से लँगडा और पीठ से कुबड़ा है। ५ चोटी से हिन्दू और दाढी से मुसलमान जाने जाते हैं। (घ) (तुमुन्) १ आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है? २ वह इस काम को कर सकता है। ३ वह घर जाने को उतावला हो रहा था। ४ दो-तीन दिन प्रतीक्षा करो। ५ मेरे प्रेम को मत ठुकराओ। ६ तुम कुछ कहना चाहते हो। ७ मैं कुछ पूछना चाहता हूँ। (ङ) (पुष्पवर्ग) उपवन फूलों से सुरभित है। तालाब में नीले लाल और सफेद कमल खिले हुए हैं। रंग-बिरंगे फूल खिले हैं। हारसिंगार, जूही, चम्पा, चमेली, बेला, जवाकुसुम, नेवारी, गुलाब, गेंदा, दुपहरिया, केवडा, कनेर और कुन्द के फूल शोभित हो रहे हैं।

संकेत—(क) १ मन्यते। २ इयम्, अक्षमा कठिनश्रमस्य। ३ कणान् चिनुते। ४ कन्दौ, सुपचा भवन्ति। ७ पूरय। ८ पादप्रमिता वर्तते। (ख) १ हितवादिने। २ भृशम्। ३ प्रकुप्यन्ति। ४ अपद्यत। ५ पद्यन्ते। ६ आचारं प्रतिपद्यस्व। ७ क्षोभात्। ८ लब्धावकाश, संपादयिष्यामि। ९ पन्थानं प्रतिपद्यस्व। १० अनुकृतिं प्रतिपत्स्यते। ११ प्रपेदे। १२ पङ्कभाव प्रपेदे। १३ उत्पत्स्यते च मम कोपि समानधर्मा। १४ विपत्स्यते। १५ नैतत्त्वय्युपपद्यते। १६ व्याहता पञ्च पञ्चदश संपद्यन्ते। १७ निष्पद्यन्ते। (ग) १ सह मेघेन तडित् प्रलीयते। २ सतां सद्भि सङ्ग कथमपि हि पुण्येन भवति। ३ मृगा मृगै सङ्गमनुव्रजन्ति। समानशीलव्यसनेषु सख्यम्। ४ खल्वाट, पृष्ठेन कुब्ज। (घ) १ कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। २ साधयितुमलम्। ३ उदताम्यत्। ४ द्वित्राण्यहानि सोढुमर्हसि। ५ नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुम्। ६ वक्तुकामोऽसि। ७ प्रष्टुमना। (ङ) नानावर्णानि।

शब्दकोश—१०५० + २५ = १०७५] अभ्यास ४३ (व्याकरण)

(क) मृद्वीका (अंगूर), द्राक्षा (अंगूर), सेवम् (सेव), आम्रम् (आम), जम्बुः (जामुन), कदलीफलम् (केला), नारङ्गम् (नारंगी, संतरा), आम्रलम् (अमरूद), दाडिमम् (अनार), जम्बीरम् (नीबू), जम्बीरकम् (कागजी नीबू), बीजपूरः (बिजौरा नीबू), उदुम्बरम् (गूलर), कर्कन्धुः (बेर), श्रीपर्णिका (काफल), अमृतफलम् (नागपाती), क्षुमानी (खुमानी), आलुकम् (आलबुखारा), तूलम् (शहतूत), मातुलुङ्ग. (मुसम्मी), क्षीरिका (खिरनी), स्वर्णक्षीरी (मकोय), नारिकेलम् (नारियल), लीचिका (लीची), अञ्जीरम् (अजीर)। (२५)

व्याकरण (स्वसृ, मातृ, युध्, जन्, क्त्वा प्रत्यय)

१ स्वसृ और मातृ शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४९, ५०)
२. युध् और जन् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६६, ६७)

नियम २१९—(क) (समानकर्तृकयो. पूर्वकाले) पढकर, लिखकर आदि 'कर' या 'करके' अर्थ में क्त्वा प्रत्यय होता है। क्त्वा का त्वा शेष रहता है। क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए। त्वा प्रत्यय अव्यय होता है, अतः इसका रूप नहीं चलता। जैसे—भोजन खादित्वा विद्यालय गच्छति। (ख) (अलंखल्वो. प्रतिषेधयोः०) निषेधार्थक अलम् और खलु के साथ धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है। जैसे—अल दत्त्वा (मत दो)। पीत्वा खलु (मत पीओ)। अल हसित्वा (मत हँसो)। (देखो अभ्यास ४४ भी)। (ग) कुछ क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त कर्मप्रवचनीय के तुल्य व्यवहार में आते हैं। जैसे—उद्दिश्य, अधिकृत्य, मुक्त्वा। किमुद्दिश्य (किसलिए), धर्ममधिकृत्य (धर्म के बारे में)।

नियम २२०—क्त्वा (त्वा) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि क्त प्रत्यय से बने रूप में से त या न हटाकर त्वा लगा दो। क्त प्रत्ययवाले सभी नियम यहाँ भी लगते हैं—जैसे पठ् > पठितम्, त्वा में पठित्वा। इसी प्रकार लिखित > लिखित्वा, गत > गत्वा, उक्त > उक्त्वा, कृत > कृत्वा। सक्षेप में नियम ये हैं.—(क) नियम २०८ (क) देखो। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। पठित्वा, लिखित्वा। कृत्वा, हृत्वा, धृत्वा। (ख) नियम २०८ (ग) देखो। गीत्वा, पीत्वा। (ग) नियम २०८ (घ)। दित्वा, सित्वा, मित्वा, स्थित्वा। (घ) २०८ (ङ)। यत्वा, रत्वा, नत्वा, गत्वा, हत्वा, मत्वा। (ङ) नियम २०८ (च)। बद्ध्वा, सृत्वा, दष्ट्वा। (च) नियम २०८ (ज)। उक्त्वा, सुप्त्वा, इष्ट्वा, ऊढ्वा, उषित्वा, गृहीत्वा, पृष्ट्वा। (छ) नियम २१७ (ग) यहाँ भी लगेगा। पक्त्वा, भुक्त्वा, छित्वा, रुद्ध्वा, लब्ध्वा। (ज) नियम २१७ (घ) यहाँ भी लगेगा। च्छ्, श्, ज् को ष्। प्रच्छ्-पृष्ट्वा, दृश्-दृष्ट्वा, यज्-इष्ट्वा, सृज्-सृष्ट्वा। (झ) नियम २१७ (छ)। ह् का ग्ध्वा या ढ्वा वाला रूप। दह्-दग्ध्वा, दुह्-दुग्ध्वा, लिह् लीढ्वा। (ञ) दीर्घ ॠ को ईर् होगा, पॄ को पूर् होगा। तॄ-तीर्त्वा, कॄ-कीर्त्वा, पॄ-पूर्त्वा। (ट) (उदितो वा) जिन धातुओं में से मूलरूप में उ हटा है, वहाँ बीच में इ विकल्प से होगा। अत दो रूप बनेंगे। नियम २०८ (छ) लगेगा, जनित्वा-जात्वा, सनित्वा सात्वा, खनित्वा-खात्वा। (ठ) (अनुनासिकस्य क्विझलो.०) कम्, क्रम्, चम्, दम्, भ्रम्, श्रम् के दो रूप होते हैं। एक इ लगाकर, दूसरा अम् को आन् बनाकर। जैसे—कमित्वा-कान्त्वा, क्रमित्वा-क्रान्त्वा। (ड) इन धातुओं के ये रूप होते हैं—दा > दत्त्वा, धा > हित्वा, हा (छोडकर) > हित्वा, अद् > जग्ध्वा, दिव् > द्यूत्वा, देवित्वा, सिव् > स्यूत्वा, सेवित्वा।

अभ्यास ४२

संस्कृत बनाओ—(क) (स्वसृ, मातृ शब्द) १. वह अपनी बहन (स्वसृ) को लेकर घर आया। २. माता गौरव में सौ पिताओं से भी बढ़कर है। ३. पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाए, पर माता कुमाता नहीं होती। ४. बहू की ननद (ननान्द) से नहीं पटती है, पर देवरानी (यातृ) से अच्छी पटती है। ५ मैं मौसी (मातृष्वसृ) और फूआ (पितृष्वसृ) के घर गया था। ६ लड़की विवाह के बाद दूर भेजी जाती है, अत उसे दुहिता कहते हैं। (ख) (युध्, जन् धातु) १ पदाति पदातियों से लड़ते है और घुड़सवार घुड़सवारों से (सादिन्)। २. ब्रह्मा से प्रजा उत्पन्न होती है। ३ विषयों का ध्यान करने वालों की उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से काम और काम से क्रोध होता है। ४ उसमें कोई गुण नहीं है (विद्)। ५. दुर्जन मित्रों से वियुक्त हो जाता है (वियुज्)। ६ हम अपने काम में लगते हैं (अभियुज्)। ७. ऐसा मेरा विश्वास है (मन्)। ८ वह तुमको बहुत मानता है (मन्)। ९. मैं जब तक जीवित हूँ, लड़ूँगा। (ग) (क्त्वा प्रत्यय) १ जो जन्म लेकर, पढकर, लिखकर, सुनकर और मनन करके (मन्) भी ईश्वरभक्ति नहीं करता, उसका जीवन असार है। २. बालक प्रात उठकर, मुँह धोकर, खाना खाकर, पानी पीकर, पाठ याद करके (स्मृ), लेख लिखकर और बस्ते में (प्रसेव) पुस्तकें रखकर विद्यालय को जाता है। ३ वह घर आकर, खेलकर, कूदकर, हँसकर, उठकर, बैठकर, कुछ देकर, कुछ लेकर, गाकर और नाचकर मनोरंजन करता है। ४ कुल मिलाकर हम सात आदमी हैं। ५. आप इसको उलटा न समझें। ६ समुद्र को छोड़कर महानदी कहाँ उतरती है? ७ वह भौंं चढ़ाकर और बनावटी झगड़ा करके बोला। ८. इसका अर्थ ठीक समझकर अपना कर्तव्य निश्चित करूँगा। (घ) (तृतीया) १ इधर-उधर की मत हाँकिए, सीधी बात कहिए। २. चापलूसी न करिए। ३ बस इतने ही फूल रहने दो। ४ बहुत कष्ट न कीजिए। ५ ऐसे प्राण और पुरुषार्थ से क्या लाभ, जो आपत्तिग्रस्तों को न बचा सकें। ६ क्रुद्ध सर्प क्या खून की इच्छा से कुचलनेवाले को काटता है? ७ उद्यम से ही कार्य सिद्ध होते है, मनोरथों से नहीं। ८ उद्यम के बिना मनोरथ सिद्ध नहीं होते। ९. उपाय से जो चीज सम्भव है, वह पराक्रम से सम्भव नहीं। (ङ) (फलवर्ग) फल स्वास्थ्य और बुद्धि को बढाते हैं। शारीरिक और बौद्धिक उन्नति के लिए फलों का सेवन अनिवार्य है। यह आवश्यक नहीं है कि महँगे फल ही खाए जायँ, सस्ते फल भी उतना ही लाभ देते है। अपनी स्थिति के अनुसार फल खावे। ऋतु के अनुसार अंगूर, अनार, सेब, नासपाती, खुमानी, आम, केला, सन्तरा, अमरूद, जामुन, बेर, काफल, आलूबुखारा, शहतूत, मुसम्मी, नारियल, लीची, अजीर, खिरनी और मकोय खावे।

संकेत —(क) २ पितॄणा शत माता गौरवेणातिरिच्यते। ३ कुपुत्रो जायेत। ४ वधूर्ननान्द्रा न सगच्छते, सजानीते। ६ दुहिता दूरे हिता भवति। (ख) १ सादिनश्च सादिभि। ३ ध्यायतो विषयान्, उपजायते, सगात्, सजायते। ४ गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यन्ते। ५ वियुज्यते। ६ अभियुज्यामहे। ७ इति दृढ मन्ये। ९ यावदह ध्रिये। (ग) २ प्रसेवे। ४ सर्वे मिलित्वा। ५ अन्यथा सभाव्य। ६ उज्झित्वा, अवतरति। ७ भ्रूभङ्ग कृत्वा, कृतककलहम्। ८ परिगृहीतार्थो भूत्वा, निश्चेष्यामि। (घ) १ अलमप्रासङ्गिकेन, प्रकृतमेवानुसधीयताम्। २ अल स्नेहभणितेन। ३ अलमेतावद्भि कुसुमै। ४ कृतमत्यायासेन। ५ आपन्नत्राणविकलै किं प्राणै पौरुषेण वा। ६ अमर्षण शोणितकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्त दशति द्विजिह्व। ९ यच्छक्यम्। (ङ) महार्घाणि, अल्पार्घाणि।

शब्दकोष—१०७५ + २५ = ११००] अभ्यास ४४ (व्याकरण)

(क) आर्द्रालु (पु०, आडू), सीताफलम् (शरीफा), पुनागम् (फाल्सा), आम्रातकम् (१ आँवडा, २. अमावट), आम्रचूर्णम् (अमचूर), कर्कटिका (ककडी), मधुकर्कटी (स्त्री०, चकोतरा), खर्बुजम् (खरबूजा), कालिन्दम् (तरबूज), कर्मरक्षम् (कमरख), खर्जूरम् (खजूर), लकुचम् (बडहल), शृङ्गाटकम् (सिंघाडा), निर्बीजम् (१. बिदाना अगूर, २. बिदाना अनार), शुष्कफलम् (मेवा), वातादम् (बादाम), अक्षोटम् (अखरोट), अङ्कोलम् (पिस्ता), काजवम् (काजू), शुष्कद्राक्षा (किशमिश), मधुरिका (मुनक्का), क्षुधाहरम् (छुहारा), मखान्नम् (मखाना), प्रियालम् (चिरौंजी), पौष्टिकम् (पोस्ता)। (२५)

व्याकरण (नो, वाच्, आप्, शक्, ल्यप्, णमुल् प्रत्यय)

१. नौ और वाच् शब्दो के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५१, ५२)

२. आप् और शक् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६८, ६९)

नियम २२१—(समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्) धातु से पूर्व कोई अव्यय, उपसर्ग या च्वि प्रत्यय हो तो क्त्वा के स्थान पर ल्यप् हो जाता है। ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले नञ् (अ) होगा तो ल्यप् नहीं होगा। ल्यप् अव्यय होता है, अतः इसके रूप नही चलते। जैसे—आलिख्य, सपठ्य, स्वीकृत्य। परन्तु अकृत्वा, अगत्वा।

नियम २२२—ल्यप् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें:—(क) साधारणतया धातु अपने मूल रूप मे रहती है। गुण या वृद्धि नहीं होती है। इ भी बीच मे नहा लगता। जैसे—विलिख्य, आनीय, विहस्य। (ख) (अन्तरङ्गानपि विधीन्०) ल्यप् होने पर धातु को कोई भी आदेश आदि नहीं होगा। जैसे—प्रदाय, विधाय, प्रखन्य, प्रस्थाय, प्रक्रम्य, आपृच्छय, प्रदीव्य, प्रपठ्य। इन स्थानों पर दत्, हि, दीर्घ, इ आदि नहीं हुए। (ग) (न ल्यपि) दा, धा, मा, स्था, गा, पा, हा, सा के आ को ई नहीं होगा। प्रदाय, प्रधाय, प्रगाय, प्रपाय, विहाय आदि। (घ) (वा ल्यपि) गम् आदि के म् का लोप विकल्प से होता है, हन् आदि के न् का लोप नित्य। (लोप होने पर बीच में अगले नियम से त्) आगम्य > आगत्य, प्रणम्य > प्रणत्य। आहत्य, वितत्य, अनुमत्य। (ङ) (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्) ह्रस्व अ, इ, उ, ऋ के बाद ल्यप् से पहले त् लग जाता है। अर्थात् त्य होता है। आगत्य, अधीत्य, विजित्य, सश्रुत्य, प्रहृत्य, प्रकृत्य। (च) दीर्घ ॠ को ईर्, पॄ को पूर् होगा। उत्तीर्य, विकीर्य, प्रपूर्य। (छ) (वचिस्वपि०, ग्रहिज्या०) वच् आदि को सम्प्रसारण होगा। वच् > प्रोच्य, वद् > अनूद्य, वस् > अध्युष्य, स्वप् > प्रसुप्य, ह्वे > आहूय, ग्रह् > सगृह्य, प्रच्छ् > आपृच्छय। (ज) (णेरनिटि) णिजन्त धातुओ के 'इ' का लोप हो जाता है। विचारि > विचार्य। (झ) (ल्यपि लघुपूर्वात्) धातु की उपधा में ह्रस्व अक्षर हो तो इ को अय् होगा। विगणय्य, प्रणमय्य, विरचय्य। (ञ) इनके ये रूप होते हैं—क्षि > प्रक्षीय, प्रापि > प्राप्य, प्रापय्य, वे > प्रवाय, ज्या > प्रज्याय, व्ये > उपव्याय। मी या मि > प्रमाय। ली > विलीय, विलाय।

नियम २२३—(क) (आभीक्ष्ण्ये णमुल् च, नित्यवीप्सयोः) 'बार-बार करना' अर्थ में क्त्वा और णमुल् दोनों होते हैं। इन प्रत्ययों के होने पर शब्द को दो बार पढा जाएगा। स्मृ > स्मार स्मारम्, स्मृत्वा, स्मृत्वा (याद करके)। पाय पायम्, पीत्वा पीत्वा। भोज भोजम्—भुक्त्वा भुक्त्वा। श्राव श्रावम्—श्रुत्वा श्रुत्वा। (ख) (अन्यथैव०) अन्यथा, एवम् आदि के साथ णमुल् होगा। अन्यथाकारम्, एवकारम्, कथकारं ब्रूते।

अभ्यास ४८

संस्कृत बनाओ—(क) (नौ, वाच् शब्द) १. बड़े पुण्यरूपी मूल्य से तुमने यह शरीररूपी नौका खरीदी है। २ वह नौका से तीव्र वेगवाली नदी को पार करता है (उत्तृ)। ३ चित्त, वाणी और क्रिया में सज्जनो की एकरूपता होती है। ४ वाणी उसके पीछे अधीनस्थ के तुल्य चलती है। ५ लौकिक सज्जनों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है, किन्तु आदिकालीन ऋषियो की वाणी के पीछे अर्थ चलता है। ६ यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मणो की वाणी मे बल होता है और क्षत्रियों के बाहुओं मे बल होता है। ७ वे लोग विद्वानों मे सभ्यतम गिने जाते हैं, जो मनोगत बात को वाणी से प्रकट कर सकते हैं। (ख) (आप्, शक् धातु) १ इससे क्या लाभ होगा? २ इससे यह निष्कर्ष निकलता है। ३ तुम चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करो (आप्)। ४ ईश्वर जगत् में व्याप्त है (व्याप्)। ५ परीक्षा समाप्त हुई (समाप्)। ६ कौन इस दुष्कर काम का कर सकता है? ७ राम ही रावण को मार सका। (ग) (ल्यप्, णमुल्) १ तुम किसलिए हम पर दोषारोपण कर रहे हो? २ सत्य विषय पर गाधीजी ने लेख लिखे हैं। ३ यदि युद्ध को त्यागकर मृत्यु का भय न हो तो युद्ध को छोडकर जाना उचित है। ४. कन्या को पति-गृह भेजकर मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो गई है। ५. इस पर अधिक विचार मत करो। ६ सब लोग इष्ट वस्तु को पाकर सुखी हो जाते है। ७. कान बन्द करके, ऐसा न हो। ८ सारी बात पत्र में लिखकर दो। ९ वह हाथ जोड़कर बोला। १० उसने लम्बी साँस लेकर और पृथ्वी पर घुटने टेककर अपनी करुण कथा कही। ११. मेरी बात काटकर क्यो बोलते हो? १२. सज्जन औरों का सत्कार करके, उनकी प्रार्थना स्वीकार करके और उन्हें पुरस्कृत करके सुखी होते हैं। १३. दुर्जन दुर्भाव को मन में रखकर, छिपकर, एकत्र होकर, तिरस्कार करके और दु ख देकर सुख का अनुभव करते हैं। (घ) (चतुर्थी)। १ इससे काम चल जायगा। २ उसने चावलों को धूप में डाला। ३ उन्होंने लड़ाई के लिए कमर कस ली है। ४ मैं उनको कुछ नहीं समझता। ५ जो आपको रुचे (रुच्) वह कीजिए। ६ पापियों का नाम भी न लो, उससे अमगल होगा। (ङ) (फलवर्ग) डाक्टर और वैद्य फलों का बहुत महत्त्व बताते हैं। फल रक्त को शुद्ध करके लाल बनाता है। भोजन के बाद या तीसरे पहर फल खावे। आड़ू, गरीफा, फालसा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज, कमरख, सिंघाड़ा और बिदाना सभी लाभप्रद हैं। मेवा भी पौष्टिक और रक्तवर्धक है। बादाम, अखरोट, पिस्ता, काजू, किशमिश, मुनक्का, छुहारा, मखाना, चिरौंजी और पोस्ता का भी सेवन करो।

सकेत—(क) १ पुण्यपण्येन, क्रायनौ। ३ वाचि। ४ त वाग् वश्येवानुवर्तते। ५ अर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणा पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुधावति। ६ वाचि वीर्यं द्विजानाम्। बाह्वोर्वीर्यं यस्त तत् क्षत्रियाणाम्। ७ भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चिता मनोगत वाचि निवेशयन्ति ये। (ख) १ अत किं प्राप्यते। २ प्राप्नोति। ३ आप्नुहि। ५ समाप्तत्। ७ हन्तुमशकत्। (ग) १ किमुद्दिश्य। २ सत्यमधिकृत्य। ३ यदि समरमपास्य। ४ सम्प्रेष्य। ५ अल विचार्य। ६ सर्वे प्रार्थितमर्थमधिगम्य। ७ पिधाय, शान्त पापम्। ८ वृत्त पत्रमारोप्य। ९ समानीय। १० दीर्घं नि श्वस्य, जानुभ्यामवनौ पतित्वा। ११ मद्वचनमाक्षिप्य। १२ सत्कृत्य, उररीकृत्य, पुरस्कृत्य। १३. मनसिकृत्य, तिरोभूय, सहत्य, तिरस्कृत्य, प्रपीड्य। (घ) १ इद मे इष्टसिद्धये कल्पेत। २. आतपे उज्झितवती। ३ युद्धाय बद्धपरिकरास्ते। ४ तृणाय मन्ये। ६ कथाऽपि खलु पापानामलम-श्रेयसे यत॰। (ङ) भिषग्वरा, अपराह्णे।

शब्दकोष–११०० + २५ = ११२५] अभ्यास ४५ (व्याकरण)

(क) केसरिन् (शेर), द्वीपिन् (व्याघ्र, बघेरा), तरक्षु· (पु०, तेंदुआ), भल्लूक· (भालू), शाखामृग (बन्दर), गोमायु· (पु०, गीदड़), वराहः (सूअर), शल्यः (सेह), वृक· (भेड़िया), कुरङ्ग· (मृग), उक्षन् (बैल), लोमशा (लोमड़ी), महिष· (भैंसा), महिषी (स्त्री०, भैंस), अज (बकरा), मेष· (भेड़), कौलेयक· (कुत्ता), सरमा (कुतिया), खरः (गदहा), मार्जारी (स्त्री०, बिल्ली), वृश्चिक· (बिच्छू), गोधा (गोह), गृहगोधिका (छिपकली), लूता (मकड़ी), कर्णजलौका (१ कानखजूरा, २. गोजर)। (२५)

व्याकरण—(स्रज्, सरित्, चि, अश्, तव्य, अनीय, केलिमर्)

१ स्रज् और सरित् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५३, ५४)

२. चि और अश् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७०, ७१)

नियम २२४—(कृत्य प्रत्यय) (क) (तव्यत्तव्यानीयर.) 'चाहिए' अर्थ में धातु से तव्य, तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय होते हैं। तव्यत् का तव्य और अनीयर् का अनीय शेष रहता है। तव्य और तव्यत् में कोई अन्तर नहीं है। वेद में तव्यत् वाला शब्द स्वरित होगा, तव्य वाला नहीं। (ख) (तयोरेव कृत्यक्त०) कृत्य प्रत्यय अर्थात् तव्य, अनीय आदि भाववाच्य और कर्मवाच्य में होते हैं। (१) जब ये कर्मवाच्य में होंगे तो कर्म के अनुसार इनके लिंग, वचन और विभक्ति होंगे। कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा और क्रिया कर्म के अनुसार। जैसे—तेन त्वया मया अस्माभि· वा पुस्तकानि पठितव्यानि, पठनीयानि वा। (२) जब तव्य और अनीय भाववाच्य में होंगे तो इनमें नपुंसक० एकवचन ही रहेगा, कर्ता में तृतीया होगी। जैसे—तेन हसितव्यम्, हसनीय वा। (३) तव्य और अनीय प्रत्ययान्त के रूप पु० में रामवत्, स्त्रीलिंग में रमावत् और नपु० में गृहवत् चलेंगे।

नियम २२५—'तव्य' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए देखो नियम २१७। वह नियम पूरा लगेगा। 'तव्य' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुमुन्-प्रत्ययान्त धातु-रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दो। जैसे—कर्तुम्—कर्तव्य, पठितुम्—पठितव्य। लेखितव्यम्, हर्तव्यम्।

नियम २२६—'अनीय' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। ल्युट् (अन), अच् (अ), अप् (अ) में भी ये नियम लगेंगे। (क) साधारण-तया धातु में कोई अन्तर नहीं होता। धातु मूलरूप में रहती है। बीच में इ नहीं लगेगा। गम् > गमनीय। हसनीय, पठनीय। पा > पानीय। दानीय, स्नानीय। (ख) धातु के अन्तिम इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर् गुण होगा। उपधा के इ, उ, ऋ को भी क्रमशः ए, ओ, अर् गुण होगा। जैसे—जि > जयनीय, नी > नयनीय, श्रु > श्रवणीय, भू > भवनीय, कृ > करणीय। लेखनीय, शोचनीय, कर्षणीय। (ग) धातु के अन्तिम ए और ऐ को आ होगा। आह्वे > आह्वानीय, गै > गानीय।

नियम २२७—(केलिमर उपसंख्यानम्) चाहिए अर्थ में केलिमर् प्रत्यय भी होता है। इसका एलिम शेष रहता है। पचेलिमा माषा· (पकाने योग्य उड़द)। भिदेलिमा सरला· (तोड़ने योग्य चीड़ के वृक्ष)।

अभ्यास ४५

संस्कृत बनाओ—(क) (स्रज्, सरित् शब्द) १ यदि यह माला प्राणघातक है तो मेरे हृदय पर रखी हुई मुझे क्यों नहीं मारती ? २ अन्धा सिर पर डाली हुई माला को साँप समझकर फेंक देता है। ३. रोग (रुज्) से पीडित को शान्ति नहीं मिलती। ४ ग्रीष्म मे नदियों का जल कम हो जाता है और वर्षा मे बढ जाता है। ५. लक्ष्मी बिजली (विद्युत्) की तरह चपला है। ६ स्त्रियाँ (योषित्) अपने बच्चो के लिए क्या कष्ट नहीं उठातीं ? (ख) (चि, अश् धातु) १ बालिका लता से फूलों को चुनती है (चि)। २. जो धन को इकट्ठा करता है (सञ्चि), पर उसका उपभोग नहीं करता (उपभुज्), उसका वह धन व्यर्थ है। ३ व्यायामप्रिय का शरीर पुष्ट होता है (प्रचि)। ४ राजहंस, तेरी वही श्वेतता है, न बढती है और न घटती है। ५ मैं परिचित हूँ (परिचि) कि वह जो कहता है, वही करता है। ६ व्यापार से धन बढता है (उपचि) और अपव्यय से घटता है (अपचि)। ७ वह अपने कर्तव्य का निश्चय करता है (निश्चि) और उसका पालन करता है। ८ माली माला बनाने के लिए फूलों को इकट्ठा करता है (समुच्चि)। ९ अर्थ को जाननेवाला ही पूर्ण कुशलता प्राप्त करता है। १० अत्युत्कट पाप पुण्यो का फल यहीं मिलता है (अश्)। (ग) (कृत्यप्रत्यय) १ रात्रि में भी पूरा सोना नहीं मिलता। २. गुरुओ की आज्ञा अनुल्लंघनीय होती है। ३ इच्छानुसार काम करना चाहिए, निन्दा कहाँ नहीं मिलती। ४ जलाशय तक प्रेमी के साथ जाए। ५ कभी भी सज्जन शोक के अधीन नहीं होते। ६ भवितव्यता बलवती होती है। ७. होनहार के सर्वत्र द्वार हो जाते हैं। ८. मित्र के वाक्य का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। ९. परस्त्री को नहीं देखना चाहिए। १० जो सुनना था सुन लिया, जो जानना था जान लिया, जो करना था कर लिया। ११ ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए ? १२ पूज्य का अपमान नहीं करना चाहिए। (घ) (चतुर्थी) १. युद्ध के लिए तैयारी करता है। २ देवदत्त को पूआ पसन्द है। ३ यज्ञदत्त राम का सौ रुपये ऋणी है (धारि)। ४ वह विद्या की इच्छा करता है (स्पृह्)। ५ मैं इस दुलारे शिशु को चाहता हूँ (स्पृह्)। ६. यह लकडी खंभे के लिए है, यह सोना कुण्डल के लिए है और यह ऊखल कूटने के लिए है। (ङ) (पशुवर्ग) मनुष्य के तुल्य पशु भी दया के पात्र हैं। पशु हत्या घृणित कार्य है। पशु भी मनुष्य के उपकार को मानते हैं। अकारण ही शेर, बघेरा, तेंदुआ, भालू, बन्दर, गीदड, सूअर, भेडिया, मृग, गाय, बैल, बछडा, भैंसा, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, बकरा, साँप या बिच्छू को नहीं मारना चाहिए।

संकेत—(क) १ स्रगियं यदि जीवितापहा. निहिता। २ स्रजमपि शिरस्यन्ध क्षिप्ता धुनोत्यहिशङ्कया। ४ क्षीयते। ६ सहन्ते। (ख) २ नोपभुङ्क्ते। ३ गात्राणि प्रचीयन्ते। ४ चीयते, न चापचीयते। ५ परिचिनोमि। ६ उपचीयते, अपचीयते। ७ निश्चिनोति। ९ अर्थज्ञ स्सकल भद्रमश्नुते। १० पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते। (ग) १ निकाम शयितव्य नास्ति। २ अविचारणीया। ३ सर्वथा व्यवहर्तव्य कुतो ह्यवचनीयता। ४ ओदकान्त स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य.। ५ शोकवशंगन्तव्या। ७ भवितव्यानाम्। ८ अनतिक्रमणीयम्। ९ अनिर्वर्णनीय परकलत्रम्। १० श्रुत श्रोतव्य, ज्ञात ज्ञातव्यम्, कृत कर्तव्यम्। ११ इत्थगते। १२ अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। (घ) १ सनह्यते। २ रुचतेऽपूप। ५ दुर्ललितायास्मै। ६ यूपाय, अवहननाय उलूखलम्।

शब्दकोष—११२५ + २५ = ११५०] **अभ्यास ४६** (व्याकरण)

(क) पारावतः (कबूतर), चटका (चिड़िया), परभृत. (कोयल), मराल: (हंस), बक. (बगुला), सारसः (सारस), वर्तक (बतख), कीरः (तोता), सारिका (मैना), ध्वाङ्क्षः (कौआ), चिल्ल. (चील), गृध्र (गिद्ध), श्येनः (बाज), कौशिक (उल्लू), खञ्जन (खजन), चाष (नीलकण्ठ), दार्वाघाट (कठफोड़ा), चातकः (चातक), चक्रवाक· (चकवा), बर्हिन् (मोर), षट्पद. (भौंरा), शलभ (१ पतगा, २ टिड्डी), सरघा (मधुमक्खी), वरटा (१ हंसी, २. भिरड, ततैया, बर्र), कुलायः (घोसला)। (२५)

व्याकरण (समिध् , अप् , सु धातु, यत् , ण्यत् , क्यप्)

१ समिध् और अप् शब्दो के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५५, ५६)

२ सु धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७२)

नियम २२८—(यत् प्रत्यय) (अचो यत्) चाहिए या योग्य अर्थ मे आ, इ, ई, उ, ऊ अन्तवाली धातुओ से यत् प्रत्यय होता है। यत् का य शेष रहता है। यत् प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य मे होता है। कर्मवाच्य मे कर्म के तुल्य लिंग, विभक्ति और वचन होंगे। कर्ता मे तृतीया, कर्म में प्रथमा, क्रिया कर्मवत्। भाववाच्य मे कर्ता मे तृतीया, क्रिया में नपु० एकवचन। मया अस्माभि. वा जल पेयम् , दान देयम् , फलानि चेयानि। मया स्थेयम्।

नियम २२९—यत् प्रत्यय लगाने पर धातु में ये अन्तर होते है.—(१) (ईद्यति) आ को ई होकर ए हो जायगा। आ>ए। दा>देयम् , गा>गेयम् , पा> पेयम् , स्था>स्थेयम् , हा>हेयम्। (२) इ और ई को गुण होकर ए हो जाएगा। चि>चेयम, जि>जेयम् , नी>नेयम्। (३) उ और ऊ को गुण ओ होकर अव् हो जाएगा। श्रु>श्रव्यम् , हु>हव्यम् , सु>सव्यम् , भू>भव्यम्।

नियम २३०—इन स्थानो पर भी यत (य) होता है —(१) (पोरदुपधात्) पवर्गान्त और उपधा मे अ वाली धातुओ से यत्। गम्यम् , लभ्यम्। (२) (हनो वा यद्०) हन् से यत् और हन् को वध। हन्>वध्य·। (३) (शकिसहोश्च) शक् और सह् धातु से यत्। शक्यम् , सह्यम्। (४) (गदमदचर०) गद् मद् चर् और यम् धातु से यत्। गद्यम् , मद्यम् , चर्यम, यम्यम्। (५) (अवद्यपण्यवर्या०) अवद्यम् (नीच), पण्यम् (विक्रेय), वर्या (वरणयोग्य स्त्री) ये रूप बनते हैं।

नियम २३१—(ण्यत् प्रत्यय) (१) (ऋहलोर्ण्यत्) ऋकारान्त और हलन्त धातुओ से ण्यत् (य) होगा। अन्तिम ऋ को आर् वृद्धि और उपधा के इ उ ऋ को गुण। कृ>कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्। मृज् + ण्यत् = मार्ग्य होगा। भुज् + ण्यत् = भोज्यम् (भक्ष्य), अन्यत्र भोग्यम् होगा। (२) (त्यजेश्च) त्यज् + ण्यत् = त्याज्यम् होगा। (३) (ओरावश्यके) उकारान्त से अवश्य अर्थ मे। लू>लाव्यम् , पू>पाव्यम्।

नियम २३२—(क्यप् प्रत्यय) (१) (एतिस्तुशास्०) इन धातुओं से क्यप् (य) होगा और ये रूप बनेंगे—इ>इत्य , स्तु>स्तुत्य , शास्>शिष्य , वृ>वृत्य , आदृ>आदृत्य , जुष्>जुष्य.। (२) (मृजेर्विभाषा) मृज्>मृज्य। (३) (भृञोऽसंज्ञायाम्) भृ>भृत्य (नौकर)। (४) (विभाषा कृवृषो) कृ>कृत्यम् , वृष्>वृष्यम्। कृ से ण्यत् होकर कार्यम् भी बनेगा।

अभ्यास ४६

संस्कृत बनाओ—(क) (समिध्, अप् शब्द) १. समिधाओं से अग्नि प्रदीप्त होती है (समिन्ध्)। २. हम समिधा लाने के लिए जा रहे हैं। ३. जल हमारे सुख और इष्ट-प्राप्ति के लिए हो। ४. जल में ओषधि के गुण हैं। ५. जल सुखप्रद है। (ख) (सु धातु) १. उसने गिलोय का रस निचोड़ा (सु)। २ प्राचीन काल में यज्ञों में सोमलता का रस निचोड़ा जाता था। ३. मूर्खता दोषों को छिपा लेती है (संवृ)। ४. रक्षारूपी योग से यह भी प्रतिदिन तप का संचय करता है (संचि)। ५ वह मन के लड्डू खाता है (चि)। (ग) (कृत्य प्रत्यय) १ अत. परीक्षा करके गुप्त प्रेम करना चाहिए। २. सुशिष्य को दी हुई विद्या के तुल्य तुम अशोचनीय हो गई हो। ३. सारी अवस्थाओं में सुन्दर व्यक्ति रमणीय होते हैं। ४. इसको अँगूठी कैसे मिली, इस पर विचार करना चाहिए। ५. भूख मुझे खा जाएगी। ६. ब्राह्मण को नि.स्वार्थभाव से षडङ्ग वेदों को पढ़ना चाहिए और जानना चाहिए। ७ उसके एक अंश का अभिनय किया गया। ८. मूर्ख की बुद्धि दूसरे के विश्वास पर चलती है। ९ वह नींद के अधीन हो गया। १०. स्वहितपरायण नहीं होना चाहिए। ११. ऐसे लोग सभी की हँसी के पात्र होते हैं। १२. अतिथि-विशेष का सम्मान करना चाहिए। १३. पापी निन्दा को प्राप्त होता है। १४ वह कायर है, इसलिए निन्दा को प्राप्त हुआ। १५ तुम मेरी ओर से राजा से कहना। (घ) (पंचमी) १. वह आय से अधिक व्यय करता है। २ मैंने तुम्हारे विश्वास पर और हित समझकर ऐसा किया है। ३. लाचार होकर मैंने चोरी की। ४ यह मेरे शरीर से अपृथक् है। ५. झगड़ालू झगड़े से बाज नहीं आता। ६ अतिपरिचय से तिरस्कार होता है, निरन्तर किसी के घर जाने से अनादर होता है। ७. वह रास्ता भूल गया। ८ कहने से करना अच्छा है। ९. कठिन समय में भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। (ङ) (पक्षिवर्ग) पक्षियों की मधुर ध्वनि किसके मन को बलात् नहीं हर लेती। वनों और उपवनों में पक्षी मधुर संगीत करते हैं। कबूतर, कोयल, हंस, बगुले, बतख, तोता, मैना, कौवे, चील, गिद्ध, बाज, खजन, नीलकंठ, कठफोड़ा, चातक, चकवा, चकवी ये सभी आकाश में उड़ते हैं और मनोरंजन करते हैं। पक्षी वृक्षों में घोंसले बनाकर रहते हैं। भौंरे और मधुमक्खी पुष्पों का पराग ले लेते हैं। मधुमक्खियाँ शहद तैयार करती हैं।

संकेत—(क) १ समिध्यते। ३ शन्नो देवीरभिष्टये आप। ४ अप्सु भेषजम्। ५ आपो हि ष्ठा मयोभुव। (ख) १ अमृतवल्लरीम्। २ सूयते स्म। ३ संवृणोति खलु दोषमज्ञता। ४ रक्षायोगात्। ५ गगनकुसुमानि चिनोति। (ग) १ अत परीक्ष्य कर्तव्य विशेषात् संगत रह। ३ रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। ४ अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। ५ बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि। ६ ब्राह्मणेन निष्कारण षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। ७ एकदेशोऽभिनेयार्थ कृत। ८ मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि। ९ निद्राविधेयता गत। १० भाव्यम्। ११ उपहास्यतामुपयान्ति। १२. समान्य। १३ वाच्यता याति। १४ कातर। १५ मद्वचनात्। (घ) २ त्वत्प्रत्ययात्, अवेक्ष्य। ३ गत्यन्तराभावात्। ४ अव्यतिरिक्त। ५ कलहकाम कलहान्न निवर्तते। ६ अवज्ञा, सन्ततगमनात्। ७ मार्गात् भ्रष्ट। ८ वाच कर्मातिरिच्यते। ९ त्याज्यम्।

शब्दकोष—११५० + २५ = ११७५] अभ्यास ४७ (व्याकरण)

(क) अर्णव (समुद्र), आपगा (नदी) सरस् (नपु० तालाब) सरसी (स्त्री०, झील), ह्रद (बड़ी झील), आहाव: (१ हौज, २ टैंक), तोयम् (जल), वीचि (स्त्री० तरंग), आवर्त (भँवर), कूलम् (तट), सैकतम (रेतीला किनारा), कर्दम (कीचड़), नौ (नाव), पोत (पानी का जहाज), कर्णधार (नाविक, खेवैया) मीन (मछली), कुलीर (केकड़ा), कच्छप (कछुआ), नक्र (मगर), भेक (मेंढक)। (२०)। (ख) विद् (पाना), लिप् (लीपना), सिच् (सींचना), कृत् (काटना), सृज् (बनाना)। (५)।

व्याकरण (गिर्, पुर्, दृप्, प्रच्छ्, घञ् प्रत्यय)

१ गिर् और पुर् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५७, ५८)

२ दृप् और प्रच्छ् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७३, ७४)

नियम २३३—(१ भावे, २ अकर्तरि च कारके०) धातु का अर्थ बताने में तथा कर्ता को छोड़कर अन्य कारक का अर्थ बताने के लिए घञ् प्रत्यय होता है। घञ् का अ शेष रहता है। घञन्त शब्द पुंलिंग होता है। जैसे—हस>हास. (हँसी), पाक (पकना)। घञन्त के साथ कर्म में षष्ठी होती है। भोजनस्य पाक, रामस्य हास.।

नियम २३४—घञ् (अ) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें —(१) धातु के अन्तिम इ ई, उ ऊ और ऋ ॠ को वृद्धि होकर क्रमश ऐ, औ, आर् होंगे। धातु की उपधा के अ को आ, इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर् होगा। चि>काय, नी>नाय, प्रस्तु>प्रस्ताव, भू>भाव, कृ>कार, विकार, प्रकार, उपकार आदि, संस्कृ>संस्कार, अवतॄ>अवतार। पठ्>पाठ, लिख्>लेख, रुध्>रोध, विरोध आदि। (२) (चजोः कु घिण्ण्यतोः) च् को क् और ज् को ग् होगा। पच्>पाक, शुच्>शोक, सिच्>सेक, त्यज>त्याग, भज्>भाग, भुज्>भोग, मृज्>मार्ग, यज्>याग, युज्>योग, रुज्>रोग। (३) इन धातुओं के ये रूप होते हैं—(क) (घञि च भाव०) भाव और करण में रञ्ज् के न् का लोप। रञ्ज्>राग। अन्यत्र रङ्ग। (ख) (निवासचिति०) चि के च् को क् होगा निवास, समूह, शरीर और ढेर अर्थ में। चि>काय। निकाय, गोमयनिकाय। (ग) (मृजेर्वृद्धि) मृज्>मार्ग.। अपामार्ग। (घ) (उपसर्गस्य घञि०) उपसर्गों को विकल्प से दीर्घ होता है। प्रतीहार, परीहार, अपामार्ग। (ङ) (नोदात्तोपदेशस्य०) म् अन्तवाली धातुओं को प्राय वृद्धि नहीं होगी। शम, दम, विश्रम। (अनाचमि०) आचम्, कम्, वम् को वृद्धि होगी। आचाम, काम, वाम.। रम् का राम. होगा। विश्राम शब्द अपाणिनीय है।

नियम २३५—इन स्थानों पर घञ् होता है—(१) (इङश्च) इ धातु से। उप + अधि + इ(आ०)>उपाध्याय। (२)(उपसर्गे रुव) उपसर्ग पहले हो तो रु धातु से। संराव। अन्यत्र रव। (३) (श्रिणीभुवो०) उपसर्गरहित श्रि नी और भू धातु से। श्राय, नाय, भाव.। अन्यत्र प्रश्रय, प्रणय, प्रभव। (४) (प्रे द्रुस्तुस्रुव) प्रपूर्वक द्रु स्तु स्रु धातु से। प्रद्राव., प्रस्ताव, प्रस्राव। (५) (उन्न्योर्ग्रः) उत् और नि पूर्वक गॄ धातु से। उद्गार., निगार.। (६) (परिन्योर्नीणो०) परिणी और नि + इ(पर०)धातु से द्यूत और उचित अर्थ में। परिणाय, न्याय।

अभ्यास ४७

संस्कृत बनाओ—(क) (गिर्, पुर् शब्द) १. भगवान्, अपने क्रोध को रोको, इस प्रकार जबतक देवों की वाणी आकाश में फैली, तबतक शिव के नेत्रों से उत्पन्न अग्नि ने मदन को भस्मसात् कर दिया। २ आप लोगों की प्रिय वाणी से ही मेरा आतिथ्य हो गया। ३ उस बात के समाप्त होने पर वे यह वचन बोले। ४. यह नगरी (पुर्) देवभूमि के तुल्य है। ५ राजा भोज की नगरी मे सभी संस्कृतज्ञ विद्वान् रहते थे। वहाँ न चोर थे, न जुआरी, न शराबी, न कबाबी। (ख) (इष्, प्रच्छ्) १. मैं चाहता हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ और आप मुझे स्मरण करें। २ ब्राह्मण से कुशल पूछे और क्षत्रिय से अनामय। ३ अपने साथी से विदाई लो (आप्रच्छ्)। ४. बछडा सहस्रों गायों में भी अपनी माँ को ढूंढ लेता है (विद्)। ५ अन्धकार शरीर पर लिप्त-सा हो रहा है (लिप्)। ६. कन्याएँ पौधों को सींच रही हैं (सिच्)। ७. चाकू से पेन्सिल को काटता है। ८ मकडी अपने शरीर से ही धागे को उत्पन्न करती है (सृज्)। ९. कौन भला उष्ण जल से नवमालिका को सींचता है (सिच्)? १०. रोगी से पूछो, सुख से सोया था नहीं? ११ तुमने घोर अन्धकार दूर किया (नुद्)। १२. घोर अन्धकार में मेरी अन्तरात्मा डूब-सी रही है (मस्ज्)। १३ भडभूजा भाड में चने भूनता है (भ्रस्ज्)। (ग) (घञ् प्रत्यय) १ प्रसंग के अनुकूल ही कहना चाहिए। २. उर्वशी लक्ष्मी को भी मात करती है। ३ वह कहानी समाप्त हुई। ४. इसका प्रेम बहुत गहरा हो गया है। ५. तूने पिता के द्वारा दिए हुए पैसे को कैसे खर्च किया? ६ वह सदा के लिए सो गई। ७ सन्तान न होने से वह बहुत दुःखित हुआ। ८ हिम्मत न हारना वैभव का मूल है। ९ तुम्हारे दुःख का क्या कारण है? १०. जब आँखें चार होती हैं, मुहब्बत हो ही जाती है। ११ तालाब में पानी बढ़ जाए तो उसको निकाल देना ही उसका प्रतिकार है। हृदय शोक से क्षुब्ध होने पर विलाप से ही सँभलता है। (घ) (पंचमी) १. कीचड़ को धोने से न छूना ही अच्छा है। २. चोर अपमानसहित नगर से निकाला गया। ३. उपदेश देने की अपेक्षा स्वयं करना अच्छा है। ४. तेजोमय ज्योति पृथ्वी से नहीं निकलती। (ङ) (वारिवर्ग) जल जीवन है। तालाब हो या झील, नदी हो या समुद्र, सर्वत्र जल का महत्त्व है। समुद्र का जल ही भाप बनकर बादल और मानसून का रूप ग्रहण करता है और बरसता है। मगर, कछुए, मछली, मेढक, केकड़े आदि जल में सुख से विचरण करते हैं। जल में तरंग, भँवर और कीचड भी होते हैं। नाविक नौका और जहाजों को जल में चलाते हैं।

संकेत—(क) १ सहर, यावद् गिर खे मरुतां चरन्ति। २ सूनृतया। ३ अवसिते, गिरमुज्जगार। ५ द्यूतकारा, मांसाशिन। (ख) १ कार्यलवोपपादनोपयोगेन स्मारयितुमात्मानम्। २. ब्राह्मणम्। ३. आपृच्छस्व सहचरम्। ४ धेनुसहस्रेषु, विन्दति। ५ लिम्पतीव तमोऽङ्गानि। ६ सिञ्चन्ति। ७ कृन्तति। ८ तन्तुनाभ, तन्तून् सृजति। १० रुग्ण सुखशयित पृच्छ। ११ अदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः। १२ मज्जतीव। १३ भ्राष्ट्रमिन्धो भ्राष्ट्रे, भृज्जति। (ग) १. प्रस्तावसदृशम्। २ प्रत्यादेश श्रिय। ३ विच्छेदमाप। ४ अतिभूमि गत। ५ द्रव्यस्य कथं विनियोग कृत। ६ अप्रबोधाय। ७ सन्ततिविच्छेदात्। ८ अनिर्वेद। ९ किंनिमित्त ते सन्ताप। १०. तारामैत्रक चक्षूराग। ११ पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाह प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदय प्रलापैरेव धार्यते। (घ) १ प्रक्षालनाद् हि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्। २ सनिकार निर्वासित। ३ शासनात् करण श्रेय। ४ न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्। (ङ) बाष्परूपेण परिणम्य, जलदागमस्य, सञ्चालयन्ति।

शब्दकोष--११७५ + २५ = १२००] अभ्यास ४८ (व्याकरण)

[क] गात्रम् (शरीर), शिरस् (नपु०, सिर), शिरोरुह (बाल), शिखा (चोटी), पलितम् (सफेद बाल), ललाटम् (माथा), लोचनम् (नेत्र), घ्राणम् (नाक), आस्यम् (मुँह), रसना (जीभ), रदन (दाँत), श्रोत्रम् (कान), कण्ठ. (गला), ग्रीवा (गर्दन), स्कन्ध. (कन्धा), जत्रु (नपु०, कन्धे की हड्डी), कूर्चम् (दाढ़ी), श्मश्रु (नपु० मूँछ), कपोल. (गाल), ओष्ठ. (ओठ), अधर. (नीचे का होठ), भ्रू (स्त्री०, भौं), पक्ष्मन् (नपु०, पलक), वक्षस् (नपु०, छाती), कुक्षि (पु०, पेट)। (२५)

व्याकरण—(दिश्, उपानह्, लिख्, स्पृश्, तृच्, अच्, अप्)

१ दिश् और उपानह् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५९, ६०)

१ लिख् और स्पृश् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७५, ७६)

नियम २३६—(ण्वुल्तृचौ) धातु से 'वाला' (कर्ता) अर्थ में तृच् प्रत्यय होता है। तृच् का 'तृ' शेष रहता है। जैसे—कृ > कर्तृ (करनेवाला), हृ > हर्तृ (हरनेवाला)। कर्ता के अनुसार इसके लिंग, विभक्ति और वचन होते हैं। पुलिंग मे इसके रूप कर्तृ शब्द (शब्द० स० ११) के तुल्य चलेंगे। स्त्रीलिंग मे अन्त मे 'ई' लगाकर नदी (शब्द० ४३) के तुल्य और नपु० में कर्तृ (शब्द० ६७) के तुल्य रूप चलेंगे। प्रायः सभी धातुओं से तृच् प्रत्यय लगाता है। तृच् प्रत्ययान्त के साथ कर्म में षष्ठी होती है। पुस्तकस्य कर्ता, धर्ता, हर्ता वा। धातु को गुण होता है।

नियम २३७—तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर ले। रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि धातु के तुमुन्-प्रत्ययान्त रूप में से तुम् के स्थान पर तृ लगाने से तृच् प्रत्ययान्त रूप बन जाता है। तृच् का प्र० १ मे ता होता है। नियम २१७ (क) से (ज) पूरा लगेगा। (क) धातु को गुण होगा। कृ > कर्तुम् = कर्तृ। हर्ता, धर्ता, भर्ता। जेता, चेता, भविता। (ख) सेट् में इ लगेगा, अनिट् मे नहीं। पठिता, लेखिता, रोदिता। (ग) पक्ता, भोक्ता, छेत्ता। (घ) प्रष्टा, प्रवेष्टा, स्रष्टा। (ङ) आह्वाता, गाता। (च) गन्ता, रन्ता। (छ) दग्धा, द्रोग्धा, दोग्धा, लेढा, वोढा। (ज) सोढा, वोढा, स्रष्टा, द्रष्टा, आरोढा, ग्रहीता प्र० एक० में।

नियम २३८—(१)(पचाद्यच्) पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होता है। अच् का अ शेष रहता है। अच् लगाने से सज्ञाशब्द बन जाते हैं। धातु को गुण होता है। पुल्लिंग होता है। रामवत् रूप होंगे। पच् > पचः। इसी प्रकार नद., चोर., देव., चर, चल., पतः, वदः, मर, क्षम, कोप., व्रण, सर्प, दर्प. आदि। (२)(एरच्) इ या ई अन्तवाली धातुओं से अच् (अ) प्रत्यय होता है। गुण ए होकर अय् आदेश। चि > चयः, जि > जय., नी > नय.। आश्रि > आश्रय.। इसी प्रकार प्रश्रय., विनय., प्रणयः।

नियम २३९—(ॠदोरप्) दीर्घ ॠ, उ या ऊ अन्तवाली धातुओं से अप् (अ) प्रत्यय होता है। गुण होता है, पुलिंग होगा। कॄ > करः, गॄ > गर.। यु > यवः, स्तु > स्तवः। पू > पव., भू > भवः।

अभ्यास ४८

संस्कृत बनाओ—(क) (दिश्, उपानह् शब्द) १ दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और हवा सुखद बहने लगी। २ वायु प्रत्येक दिशा में मकरन्द को फैला रही है (कृ)। ३. दक्षिण दिशा मे सूर्य का भी तेज मन्द हो जाता है। ४. कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाता है तो क्या वह जूता नहीं चाटता? ५ जूता पैर मे हो तो सारी पृथ्वी चमड़े से ढकी-सी दीखती है। (ख) (लिख्, स्पृश् धातु) १ अरसिकों को कविता सुनाना मेरे भाग्य में मत लिखना। २. रात्रि ने तारे रूपी अक्षरों से आकाश मे अन्धकार की प्रशस्ति लिखी है। ३ उसने शिर, बाल, ऑख, नाक, कान और पेट को छुआ। ४. हाथी छूता हुआ भी मार डालता है। ५. वह सोलह वर्ष का हो गया। ६. बिना धन के भी वीर बहुत सम्मानवाले उन्नति के पद को पाता है। ७. किसपर दोष डालूँ (निक्षिप्)? (ग) (तृच् आदि प्रत्यय) १. कौन शरीर को शान्ति देनेवाली शरत्कालीन चॉदनी को वस्त्र से रोकता है? २ विषय ऊपर से मनोहर लगते हैं, पर उनका अन्त दु:खद होता है। ३. विद्वानों के लिए कुछ भी अज्ञात नही है। ४. विनय सज्जनों को प्रिय क्यों न हो, क्योंकि वह योगियों को मुक्ति देता है। ५. लता ही नहीं रही तो फूल कहाँ? ६. जिसको तुम आग समझते थे, वह स्पर्श के योग्य रत्न है। (घ) (षष्ठी) १ ऋषियों के लिए क्या परोक्ष है? २. वीरों का निश्चय कठोर कर्मोंवाला होता है, वह प्रेम-मार्ग को छोड देता है। ३. उसमें ईर्ष्या नाममात्र को नहीं है। ४. उसे खाना खाए आज तीसरा दिन है। ५. तुम्हारी बात सत्य-सी प्रतीत होती है। ६ वर्षा हुए दो सप्ताह हो गए। ७. भूकम्प आए एक महीना हो गया। ८. उसका मुँह हर्ष से खिल गया। ९ उसका मुख कमल की शोभा को धारण करता है। १० उसका सौन्दर्य अवर्णनीय है। (ङ) (शरीरवर्ग) शरीर ही मुख्यत: धर्म का साधन है। शरीर को स्वस्थ रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। स्वच्छ वायु में भ्रमण और व्यायाम से शरीर स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट रहता है। नियमित रूप से स्नान करे और शिर, हाथ, नाक, ऑख, कान, गर्दन, कन्धा, छाती, पेट, जॉघ, पैर और मुँह को जल से या साबुन से धोवे। शिरमें तेल डाले, माथे पर तिलक लगावे, ऑख में अजन लगावे। दाढी को उस्तरे से साफ करे, मूँछ को साफ रखे, नाखूनो को नेल-कटर (नहरनी) से काटे। अगुष्ठ तर्जनी मध्यमा अनामिका और कनिष्ठा, इन पॉचों अगुलियों को पुष्ट रखे।

सकेत—(क) १ प्रसेदु, मरुतो वह्नु सुखा। २ दिशि दिशि, किरति। ३ दक्षिणस्या, मन्दायते। ४ क्रियते, नाश्नात्युपानहम्। ५ उपानद्गूढपादस्य सर्वा चर्मावृतेव भू। (ख) १ अरसिकेषु कवित्वनिवेदन शिरसि मा लिख। २. ताराक्षरै, तम प्रशस्तिम्। ४ स्पृशन्नपि गजो हन्ति। ५ षोडशवर्षवयोऽवस्थामस्पृशत्। ६ स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम्। (ग) १ शरीरनिर्वापयित्री, वारयति। २ आपातरम्या विषया पर्यन्तपरितापिन। ३ धीमताम्, अविषय। ४ योगिना परिणमन् विमुक्तये, केन नास्तु विनय सता प्रिय। ५ लताया पूर्वलूनाया प्रसवस्योद्भव कुत। ६ आशङ्कसे यदग्निम्। (घ) १ किमृषीणाम्। २ वीराणा समयो हि दारुणरस-स्नेहक्रम बाधते। ३ अदत्तावकाशो मत्सरस्य। ४. कृताहारस्य तस्य। ५ सत्यमिव प्रतिभाति। ६. सप्ताहद्वय वृष्टस्य देवस्य। ७ मासैक भुवः कम्पितायाः। ८ हर्षोत्फुल्ल बभौ। ९ उद्वहति। १०. श्रीर्वचनानामविषया। (ङ) शरीरमाद्यम्, फेनिलेन प्रमार्जयेत्, निक्षिपेत्, दद्यात्, कृन्तेत्, नखनिकृन्तनेन, कृन्तेत्।

शब्दकोष--१२०० + २५ = १२२५] अभ्यास ४९ (व्याकरण)

(क)--पृष्ठम् (पीठ), श्रोणिः (स्त्री०, कमर), ऊरुः (पु०, जघा), जानुः (पु०, घुटना), गुल्फः (टखना, पैरके जोडकी हड्डी), बाहुः, (बॉह), कफोणिः (स्त्री०, कोहनी), मणिबन्ध. (कलाई), चपेट. (चपत), मुष्टि (स्त्री०, मुट्ठी), करभ. (कलाई से कनी ॲगुलि तक हाथ का बाहरी भाग), नाडि. (स्त्री०, नाडी), शिरा (स्त्री०, नस), फुप्फुसम् (फेफडा), हृदयम् (हृदय), यकृत् (नपु०, जिगर), प्लीहा (तिल्ली), अन्त्रम् (ऑत), पृष्ठास्थि (नपु०, रीढ), शुक्रम् (वीर्य), रजस् (रज), रुधिरम् (खून), आमिषम् (मास), वसा (चर्बी), मज्जा (हड्डी के अन्दर की चर्बी)। (२५)

व्याकरण (वारि, दधि, कृ, गृ, ल्युट्, ण्वुल्, ट प्रत्यय।)

१. वारि और दधि शब्दो के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ६२, ६३)

२. कृ और गृ धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७७, ७८)

नियम २४०--(ल्युट् प्रत्यय) (१) (ल्युट् च) भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है। ल्युट् के यु को 'अन' हो जाता है। अन प्रत्ययान्त शब्द नपु० होते हैं। धातु को गुण होता है। ल्युट् (अन) प्रत्यय मे भी वही नियम लगते हैं, जो अनीय प्रत्यय में लगते हैं। देखो नियम २२६। गम् > गमनम् (जाना)। इसी प्रकार पठनम्, लेखनम्, जयनम्, पूजनम्। कृ > करणम्। हरणम्, भरणम्, मरणम्, रोदनम्। (२) (करणाधिकरणयोश्च) करण और अधिकरण अर्थों मे भी ल्युट् (अन) होता है। यानम् (जिससे जाते है, सवारी), स्थानम् (जहॉ बैठते हैं), उपकरणम् (जिससे काम करते है, साधन), आवरणम् (जिससे ढकते है)।(३) (कर्मणि च येन०) कर्ता को सुख मिले तो कर्म पहले होने पर धातु से ल्युट् (अन)। नित्य समास होगा। पय.पान सुखम्।(४)(नन्दिग्रहि०)नन्द् आदि से ल्यु(अन)होता है। नन्दन., जनार्दनः, मधुसूदन.।

नियम २४१--(ण्वुल्तृचौ) करनेवाला (कर्ता) अर्थ मे धातु से ण्वुल् प्रत्यय होता है। ण्वुल् के वु को 'अक' हो जाता है। नियम २३४ के तुल्य वृद्धि होगी। कर्ता के तुल्य इसके लिंग होगे। पु० मे रामवत्, स्त्रीलिंग मे 'इका' अन्त मे होगा और रमावत्, नपु० में ज्ञानवत्। कृ > कारकः (करनेवाला), कारिका, कारकम्। पाठकः, लेखक, हारक., उपकारक., सेवक.। (१) (आतो युक्०) आकारान्त धातु मे बीच मे य् लगेगा। दा > दायकः, धा > धायक., पा > पायकः। (२) (नोदात्तोपदेशस्य०) इनमें वृद्धि नहीं होगी। शमक., दमक., गमक, यमक.। जन् को भी वृद्धि नही होती है। जनक.। (३) इन धातुओ के ये रूप होते हैं--हन् > घातक., वध् > वधक, रन्ध् > रन्धक., रभ् > रम्भक, लभ् > लम्भक.।

नियम २४२--(ट प्रत्यय) इन स्थानो पर ट (अ) होता है--(१) (चरेष्ट) अधिकरण पहले होने पर चर् धातु से। कुरुचर.। (२) (भिक्षासेना०) भिक्षा आदि पहले हो, तो चर् धातु से। भिक्षाचर., सेनाचरः, आदायचर.। (३) (पुरोऽग्रतो०)पुरः आदि पहले हों तो सृ धातु से। पुरस्सर., अग्रतस्सर, अग्रेसर, अग्रसरः। (४) (कृञो हेतु०) कृ धातु से हेतु, स्वभाव और अनुकूल अर्थ मे। यशस्करी विद्या, श्राद्धकरः, वचनकर.। (५) (दिवाविभानिशाप्रभा०) दिवा आदि पहले हो तो कृ धातु से। दिवाकर., विभाकर., निशाकर, प्रभाकर., भास्करः, किंकर., लिपिकर, चित्रकर.। (६) (कर्मणि भृतौ) कर्म पहले हो तो कृ धातु से। कर्मकर (नौकर)।

अभ्यास ४९

संस्कृत बनाओ—(क) (वारि, दधि शब्द) १. जिस प्रकार फावडे से खोदकर मनुष्य जल पा लेता है, उसी प्रकार सेवा से गुरुगत विद्या को प्राप्त कर लेता है। २. एक बार चन्द्रमा ने समुद्र के विमल*(शुचि) जल में पड़े हुए अपने प्रतिबिम्ब को देखा और उसने खेदपूर्वक तारा के मुख का स्मरण किया। ३ दूध दही के रूप में परिणत होता है। ४. दही मीठा है, मधु मधुर है, अगूर मीठे हैं, चीनी भी मीठी है। जिसका मन जिसमें लग गया, उसके लिए वही मीठा है। (ख) (कॄ, गॄ धातु) १ यह कोई वीर बालक सेनाओ के ऊपर बाणरूपी हिम को डाल रहा है (कॄ)। २. हवा प्रत्येक दिशा में पराग को फैला रही है (कॄ)। ३. हरिचरणों में यह फूलों की अजलि डाल दी है (प्रकॄ)। ४. घोडे खुरों से धूलि को उठा रहे है (उत्कॄ)। ५. तेरी तलवार शत्रुओं के अगो को टुकडे-टुकडे कर दे (विकॄ)। ६. बैल प्रसन्नचित्त हो मिट्टी खोदता है, अन्नार्थी मुर्गा कूडे को खोदता है, कुत्ता सोने के लिए मिट्टी खोदता है (अपस्कॄ, आ०)। ७. रोगी दवा की गोली को निगलता है (गॄ)। राजा ने वचन कहा (उद्गॄ)। ९. सॉप विष को उगलता है (उद्गॄ)। १०. बालक अन्न के ग्रास को निगलता है (निगॄ)। ११. वह शब्द को नित्य मानता है (सगॄ, आ०)। (ग) (ल्युट् आदि) १. उसने राष्ट्रपतिजी से भेंट की। २. मैं राष्ट्रपतिजी से मिलना चाहता हूँ। ३ मधुर आकृतिवालों के लिए क्या मण्डन नहीं है? ४ जीवन में हँसना, रोना, मरना, जीना, उत्थान, पतन लगा ही रहता है। ५ विद्या यशस्करी है। ६ अधिक खेलने के कारण मुझे बहुत ताना सहना पडा है। (घ) (षष्ठी) १ वह मेरा नि स्वार्थ बन्धु है। २ वह मेरा विश्वासपात्र है। ३ राजा के पास जाता हूँ। ४ वह सत्कार मेरे मनोरथों से भी परे था। ५. लक्ष्मण तुम्हारी याद करता है। ६ वह शिशु पर दया करता है। ७ यदि अपने आपको सँभाल सका तो विदेश जाऊँगा। ८ आपका शिष्यों पर पूरा अधिकार है। ९. पाणिनि वैयाकरणों मे श्रेष्ठ हैं। १० वह साहसियों में धुरीण और विद्वानों में अग्रणी है। ११. क्या तुम पति को याद करती हो? (ङ) (शरीरवर्ग) शरीर की सुरक्षा के लिए प्राणायाम अनिवार्य है। प्राणायाम से फेफडों की सफाई होती है। प्राणायाम से शरीर के प्रत्येक अग में शुद्ध वायु पहुँचती है। पीठ, कमर, घुटना, टखना, कोहनी, कलाई, मुट्ठी, हृदय, आँत, नसे, नाडियाँ, सभी को प्राणायाम से लाभ होता है। वैद्यक के अनुसार वात, पित्त और कफ के विकार से ही शरीर में सभी रोगों की उत्पत्ति होती है। ठीक आहार और विहार से शरीर नीरोग रहता है।

सकेत—(क) १ खनन् खनित्रेण, अधिगच्छति। २ शुचिनि, सक्रान्तम्, सस्मार। ३ दधिभावेन। ४ सिता, तस्य तदेव हि मधुरम्। (ख) १ शरतुषार किरति। ३ प्रकीर्ण। ४ उत्किरन्ति। ५ लवशो विकिरतु। ६ अपस्किरते। ७ गोलिकाम्। ८ उज्जगार। ९ उद्गिरति। १० निगिरति। ११. शब्द नित्य सगिरते। (ग) १ राष्ट्रपतिदर्शन लेभे। २ राष्ट्रपतिदर्शनानुग्रहमिच्छामि। ३ किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्। ४ वरीवर्ति। ६ क्रीडातिशयमन्तरेण महदुपालम्भन गतोऽस्मि। (घ) १ निष्कारण। २ विश्रम्भभूमि। ३ उपैमि। ४ मनोरथानामप्यभूमि। ५ अध्येति तव। ६ शिशो दयते। ७ आत्मन प्रभविष्यामि। ८ प्रभवत्यार्यशिष्यजनस्य। १०. धौरेय साहसिकानामग्रणीर्विदग्धानाम्। ११ कच्चिद्भर्तु स्मरसि।

शब्दकोष–१२२५ + २५ = १२५०] अभ्यास ५० (व्याकरण)

(क) कञ्चुक. (कुर्ता), कञ्चुलिका (ब्लाउज), अधोवस्त्रम् (धोती), शाटिका (साड़ी), पादयाम. (पायजामा), प्रावार. (कोट), प्रावारकम् (शेरवानी), बृहतिका (ओवरकोट), आप्रपदीनम् (पेंट), अन्तरीयम् (पेटीकोट), अर्धोरुकम (अण्डरवीयर, जाँघिया), नक्तकम् (नाइट ड्रेस), प्रच्छदपट. (ओढनी, चुन्नी), स्यूतवर. (सल्वार), रल्लकः (लोई), नीशार. (रजाई), तूलसस्तर. (गद्दा), आस्तरणम् (दरी), प्रच्छद. (चादर), उपधानम् (तकिया), ऊर्णावरकम् (स्वेटर)। (२१)। (ख) कार्पासम् (सूती), कौशेयम् (रेशमी), राङ्कवम (ऊनी), नवलीनकम् (नाइलोन का)। (४)

व्याकरण (अक्षि, अस्थि, क्षिप्, मृ, क, खल्, णिनि प्रत्यय)

१. अक्षि और अस्थि शब्दो के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ६४, ६५)

२. क्षिप् और मृ धातुओ के रूप स्मरण करो (देखो धातु० ७९, ८०)

नियम २४३—(क प्रत्यय) इन स्थानो पर क (अ) प्रत्यय होता है। क का 'अ' शेष रहता है। धातु को गुण नहीं होगा। धातु के अन्तिम आ का लोप होता है। 'वाला' (कर्ता) अर्थ मे क प्रत्यय होता है। (१) (इगुपधज्ञाप्रीकिर. कः) जिन धातुओं की उपधा में इ, उ, ऋ हो उनसे तथा ज्ञा, प्री, कॄ धातु से क प्रत्यय। लिख्>लिख. (लेखक), बुध्>बुध. (विद्वान्), कृश्>कृशः (निर्बल), ज्ञा> ज्ञः, प्री> प्रियः (प्रिय), कॄ>किरः (बखेरनेवाला)। (२) (आतश्चोपसर्गे) उपसर्ग पहले हो तो आकारान्त धातु से क (अ)। क होने पर आ का लोप होता है। प्र+ज्ञा> प्रज्ञ.। विज्ञ., सुज्ञ., अभिज्ञः, आ+ह्वा> आह्वः, प्रह्वः। (३) (आतोऽनुपसर्गे कः) उपसर्ग-भिन्न कोई कर्म पहले हो तो आकारान्त धातु से क। दा>सुखदः, दु.खद., गोद.। त्रा> आतपत्रम्, गोत्रम्, पुत्र., क्षत्रः। पा> द्विपः, गोप., महीप., पादपः। (४) (सुपि स्थ.) कोई शब्द पहले हो तो आकारान्त और स्था धातु से क। पा> द्विपः। स्था>समस्थः, विषमस्थः। (५) (मूलविभुजादिभ्यः कः) मूलविभुज आदि मे क होता है। मूलविभुज., महीध्रः, कुध्र.। (६) (गेहे कः) ग्रह् धातु से गृह अर्थ मे क। ग्रह्> गृहम्।

नियम २४४—(खल् प्रत्यय) (ईषद्दुःसुषु०) ईषत्, दुर् या सु पहले हो तो धातु से खल् (अ) प्रत्यय ही होता है, कठिन या सरल अर्थ में। धातु को गुण होगा। ईषत्करः, दुष्कर., सुकरः। दुर्लभ., सुलभ., दुर्गमः, सुगमः, दुर्जयः, सुजय., दुःसहः, सुसहः।

नियम २४५—(णिनि प्रत्यय) इन स्थानों पर णिनि (इन्) प्रत्यय होता है। नियम २३४ (१) के तुल्य वृद्धि या गुण। पु० में करिन् के तुल्य, स्त्री० में ई लगाकर नदीवत्, नपु० मे वारिवत्। (१) (नन्दिग्रहि०) ग्रह् आदि धातुओं से णिनि (इन्)। ग्रह्>ग्राही। स्थायी, मन्त्री। (२) (सुप्यजातौ णिनिः०) जाति-भिन्न कोई शब्द पहले हो तो धातु से णिनि होगा, स्वभाव अर्थ में। भुज्>उष्णभोजी, आमिषभोजी, निरामिष-भोजी। शाकाहारी, मांसाहारी, मिथ्यावादी, मित्रद्रोही, मनोहारी। वस्> निवासी, प्रवासी। कृ>उपकारी, अपकारी, अधिकारी। (३) (साधुकारिणि) अच्छा करने अर्थ मे। साधुदायी। (४) (कर्तर्युपमाने) उपमान अर्थ में। उष्ट्रक्रोशी, ध्वाङ्क्षरावी। (५) (व्रते) व्रत में। स्थण्डिलशायी। (६) (मन., आत्ममाने खश्च) अपने को समझने अर्थ में मन् धातु से णिनि और खश् (अ)। शब्द के अन्त में म् लगेगा। पण्डितमानी, पण्डितमन्यः।

अभ्यास ५०

संस्कृत बनाओ—(क) (अक्षि, अस्थि शब्द) १. वह आँख से काणा है। २. उसकी आँख में तिनका गिर गया (पत्)। ३. उसे जागते ही रात बीती। ४. कुत्ता हड्डी चाटता है। ५ हड्डियों में फासफोरस भी होता है। (ख) (क्षिप्, मृ धातु) १. नौकर पर दोष लगाता है (क्षिप्)। २. हे मूर्ख सुनार, तू मुझे बार-बार आग में क्यों डालता है (क्षिप्)? जलने पर मेरे अन्दर गुण और बढ़ जाते हैं और मैं खरा सोना हो जाता हूँ। ३. जल में पत्थर फेंकता है (क्षिप्)। ४. उसने सूक्ष्म वस्त्र फेंककर (अवक्षिप्) मुनिवस्त्र पहने। ५. उसने कृष्ण की निन्दा की (अवक्षिप्)। ६. अरे मूर्ख, क्यों इस प्रकार अपमान कर रहा है (आक्षिप्)। ७. बालक ने ढेला ऊपर फेंका (उत्क्षिप्)। ८. वह स्त्री अपना आभूषण सुनार के पास धरोहर रखती है (निक्षिप्)। ९. राजा ने उस पर क्रूर दृष्टि डाली (निक्षिप्)। १०. जले पर नमक डालता है (प्रक्षिप्)। ११ गन्दी चीजें आग में न डालो (प्रक्षिप्)। १२. उसने अपना निबन्ध संक्षिप्त करके लिखा (सक्षिप्)। १३. आत्मा न उत्पन्न होता है (जन्) और न मरता है (मृ)। १४ परमात्मा न कभी मरा, न वृद्ध हुआ। (ग) (क, खल् आदि) १. विज्ञ सुखद वचन ही कहता है, दुःखद नहीं। २ यह काम शीघ्र करना तो सुकर है, पर गुप्त रूप से करना कठिन है। ३. आंधी में भी पहाड़ निष्कम्प रहते हैं। ४. सबके मन की रुचिकर बात कहना अति कठिन है। ५. प्रिय के प्रवास से उत्पन्न दुःख स्त्रियों के लिए अति दु.सह होते हैं। ६. ससार में सुन्दरता सुलभ है, गुणार्जन कठिन है। ७. तुम्हारे लिए मृग पकड़ना कठिन नहीं होगा। ८. वर्षा की इच्छा ऊँची होती है। ९ बन्धुजनों के वियोग सन्तापकारी होते हैं। १० छिद्रान्वेषी लोग दोषों को ही देखते हैं। ११. उसने पृथ्वी उसके हाथों में दे दी। (घ) (सप्तमी) १. चौदहवें दिन खूब जोर से वर्षा हुई थी। २. पति के कहने में रहना (स्था)। ३. सपत्नीजन पर प्रिय-सखी का व्यवहार करना। ४ ऐसा होने पर क्या करना चाहिए? ५. सर्वनाश प्राप्त होने पर विद्वान् व्यक्ति आधा छोड़ देता है। ६. रण में जयश्री उत्कर्ष पर निर्भर है। (ङ) (वस्त्रवर्ग) वस्त्र शरीर को ढकने के लिए हैं। स्वच्छ और धुले हुए वस्त्र पहनने चाहिए (धारि)। प्राचीन पद्धति को अपनानेवाले लोग कुर्ता, धोती पहनते हैं। पाश्चात्य पद्धति को अपनानेवाले लोग कोट, पैंट या पायजामा, शेरवानी पहनते हैं। स्त्रियाँ साड़ी, ब्लाउज, पेटीकोट पहनती हैं। कुर्ता, सलवार और ओढनी का पंजाब में अधिक प्रचलन है। आजकल सूती, रेशमी, ऊनी और नाइलोन के कपड़े अधिक चलते हैं। बिस्तर में दरी, गद्दा, चादर, तकिया, रजाई, लोई, कम्बल, दुलाई काम आते हैं।

संकेत—(क) ३. तस्याक्ष्णोः प्रभातमासीत्। ४ लेढि। ५. भास्वरम्। (ख) १ दोषान् क्षिपति। २. दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणातिरेका, निष्कुद्धम्। ४ अवक्षिप्य, अवस्त। ५ कृष्णमवाक्षिपत्। ६ आक्षिपसि। ७ उदक्षिपत्। ८ हस्ते निक्षिपति। ९ निचिक्षेप। १० क्षार क्षते प्रक्षिपति। ११. अमेध्यम्। १२. सक्षिप्य। १४ न ममार न जीर्यति। (ग) २. शीघ्रमिति सुकरम्, निभृतमिति दुष्करम्। ३. प्रवातेऽपि। ४ सुदुर्लभा सर्वमनोरमा गिरः। ६ सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्। ७ मृगो दुरासद। ८. उत्सर्पिणी। १० छिद्रान्वेषिण। ११. हस्तगामिनीमकरोत्। (घ) १ चतुर्दशे दिवसे धारासारैरवर्षद् देव। २. शासने। ३ वृत्तिम्। ४. एव गते सति। ५ समुत्पन्ने। ६ प्रकर्षतन्त्रा। (ङ) स्वीकुर्वाणा, प्रचलन्ति, शय्यायाम्, कम्बल, द्वितयी, उपयुज्यन्ते।

शब्दकोष—१२५० + २५ = १२७५] **अभ्यास ५१** (व्याकरण)

(क) आभरणम् (आभूषण), मूर्धाभरणम् (वेणी), ललाटाभरणम् (टिकुली), नासाभरणम् (१. नथ, २ बुलाक), नासापुष्पम् (नाक का फूल), कर्णपूर. (कनफूल), कुण्डलम् (कान की बाली), कण्ठाभरणम् (कण्ठा), ग्रैवेयकम् (हसुली), हार. (मोती का हार), एकावली (एक लड का हार), मुक्तावली (मोती की माला), स्रज् (पुष्प-माला), केयूरम् (बाजूबन्द, ब्रेसलेट), कङ्कणम् (कगन), काचवलयम् (चूडी), अङ्गुलीयकम् (अगूठी), कटक. (सोने का कडा), त्रोटकम् (हाथ का तोडा), मेखला (करधन), नूपुरम् (पाजेब), पादाभरणम् (लच्छे), मुकुटम् (मुकुट), मुद्रिका (नामाकित अँगूठी), किंकिणी (घुँघरू)। (२५)

व्याकरण (मधु, कर्तृ, तुद्, मुच्, क्तिन्, अण्, क्विप्)

१. मधु और कर्तृ शब्दो के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ६६, ६७)

२. तुद् और मुच् धातुओ के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८१, ८२)

नियम २४६—(क्तिन् प्रत्यय) (१) (स्त्रियां क्तिन्) धातुओ से स्त्रीलिंग मे क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग ही होते हैं। गुण या वृद्धि नहीं होगी। सम्प्रसारण होगा। ति प्रत्यय से भाववाचक सज्ञा-शब्द बनते है। जैसे—कृ>कृति., धृति., स्तुति, भूति। 'ति' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए देखो नियम २०८ (क), (ग) से (झ)। साधारणतया क्त-प्रत्ययान्त रूप मे त के स्थान पर ति लगाने से ति प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं। जैसे—गा> गीत> गीति, गम्> गत> गति, वच्> उक्त> उक्ति। (क) कृति, हृति, धृति। (ग) गीति, पीति। (घ) उपमिति, स्थिति। (ङ) गति, मति, नति। (छ) जाति, खाति। (ज) उक्ति, इष्टि, सुप्ति। (झ) ग्लानि, म्लानि। (२) (स्थागापापचो भावे) इनसे भावार्थ में क्तिन्। उपस्थिति., गीति, सपीति., पक्ति। (३) (ऊतियूति०) ये रूप बनते हैं—ऊति., हेति., कीर्ति.। (४) (सपदादिभ्यः०) सपद् आदि से क्विन्। सपत्ति., विपत्ति.।

नियम २४७—(अण् प्रत्यय) (कर्मण्यण्) कोई कर्मवाचक शब्द पहले हो तो धातु से अण् (अ) प्रत्यय होता है। धातु को वृद्धि होती है। कुम्भं करोतीति> कुम्भकार.।

नियम २४८—(क्विप् प्रत्यय) इन स्थानों पर क्विप् प्रत्यय होता है। क्विप् का पूरा लोप हो जाएगा, कुछ शेष नहीं रहेगा। (१) (सत्सूद्विष०) उपसर्ग या अन्य कोई शब्द पहले हो तो सद् सू द्विष् दुह् विद् आदि से क्विप्। उपनिषत्। प्रसू। मित्रद्विट्। गोधुक्। वेदवित्। (२) (क्विप् च) धातुओं से क्विप् होता है। उखास्रत्, पर्णध्वत्, वाहभ्रट्। (३) (ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्) ब्रह्म आदि पहले हो तो भूत अर्थ मे हन् धातु से क्विप्। ब्रह्महा, भ्रूणहा, वृत्रहा। (४) (सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः) सु कर्म आदि पहले हो तो कृ धातु से क्विप्। त् अन्त मे जुड जाएगा। सुकृत्, कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्, पुण्यकृत्। भूभृत् के तुल्य रूप चलेंगे। (५) (भ्राजभास०) भ्राज्, भास्, धुर्व्, द्युत्, ऊर्ज्, पुर् आदि से क्विप् होता है। विभ्राट्, भा, धू, विद्युत्, ऊर्क्, पुः।

नियम २४९—(क्वनिप् प्रत्यय) इन स्थानो पर क्वनिप् होता है। इसका 'वन्' शेष रहता है। गुण नहीं होगा। रूप आत्मन् के तुल्य। (१) (दृशेः क्वनिप्) दृश धातु से क्वनिप्। पारदृश्वा। (२) (राजनि युधिकृञ) राजन् पहले हो तो युध् और कृ धातु से क्वनिप्। राजयुध्वा, राजकृत्वा। (३) (सहे च) सह पहले हो तो युध् और कृ धातु से। सहयुध्वा, सहकृत्वा। (४) (अन्येभ्योऽपि०) अन्य धातुओं से भी क्वनिप्। इ> इत्वा, प्रातरित्वा। बीच में त् लगा है।

अभ्यास ५१

संस्कृत बनाओ—(क) (मधु, कर्तृ शब्द) १. भौंरे कमलों से मधु को पीते हैं। २. दुर्जनों के जिह्वाग्र पर मधु रहता है और हृदय में घोर विष। ३. भोजन पकाने के लिए लकड़ियाँ (दारु) लाओ और कुएँ से जल (अम्बु) लाओ। ४ पहाड़ की चोटी पर (सानु) ऋषि मुनि रहते हैं। ५. आग पर राँगा (त्रपु) और लाख (जतु) पिघलाओ। ६. आँसू (अश्रु) मत गिराओ, धैर्य रखो। ७. प्रातः सेफ्टी-रेजर से दाढी (श्मश्रु) बनाओ। ८. ब्रह्म जगत् का कर्ता, भर्ता और संहर्ता है। (ख) (तुद्, मुच्) १. दुर्जन वाणीरूपी बाण से सज्जनों को दु:ख देते हैं (तुद्)। २. भीम ने गदा से शत्रु को चोट मारी (तुद्)। ३. रात्रि बीत गई, बिस्तर छोड़ो (मुच्)। ४. मृगों पर बाण छोड़ता है (मुच्)। ५ सत्यवादी सब पापों से मुक्त हो जाता है। ६ मारो या छोड़ो, यह आपकी इच्छा पर है। (ग) (क्तिन् आदि प्रत्यय) १. मनोरथ के लिए कुछ भी अगम्य नहीं है। २ मरना मनुष्यों का स्वभाव है, इसका उल्टा जीवन है। ३. अविवेक बड़ी आपत्तियों का घर है। ४. विपत्ति में (विपद्) धैर्य और वैभव में क्षमा, यह महात्माओं में ही होता है। ५. विपत्ति में धैर्य धारण करके रहना चाहिए। ६. जन्म लेने-वालों पर विपत्ति आती ही है। ७ विपत्ति के पीछे विपत्ति और संपत्ति के पीछे संपत्ति चलती है। ८ सपत्तियाँ अच्छे आचरणवालों को भी विचलित कर देती हैं। ९. यह वचन मर्मवेधी है। १०. प्राणियों की इस असारता को धिक्कार है। (घ) (सप्तमी) १. भव्यों पर पक्षपात होता ही है। २. सब अपने साथियों पर विश्वास करते हैं। ३. प्रायः ऐश्वर्य से उन्मत्तों में ये विकार बढ़ते हैं। ४. प्रजा राजा पर बहुत अनुरक्त है। ५. साहस में श्री रहती है। ६. उसने चावलों को धूप में डाला। ७. पढ़ाई शुरू करने के समय क्यों खेल रहे हो? ८. प्रसन्नता के स्थान पर दु ख न करो। ९. वर्षा रुकने पर वह घर गया। १०. यह बात मेरी समझ के बाहर है। ११. आप मेरे पिता की जगह पर हैं। १२. मेरी आवाज की पहुँच के अन्दर रहना। १३. सिपाही के आते ही चोर भाग गए। १४. तुम्हारे रहते हुए कौन दीनों को दुःख दे सकता है? २५. यज्ञ करने पर वर्षा हुई। १६. आप भूखे बच्चों को मिठाई दो। (ङ) (आभूषणवर्ग) अलंकार शरीर को अलंकृत करते हैं। सधवा स्त्रियाँ सिर पर बेणी, माथे पर मुकुट और टिकुली, नाक में नथ और नाक का फूल, कान में कनफूल और बाली, गले में हँसुली, कण्ठा, मोती का हार और फूल-माला, बाँह मे बाजूबन्द, कलाई में कंगन और चूड़ा, अँगुलियों में अँगूठी, कमर में करधन, पैरों में पाजेब, लच्छे और घुँघुरू पहनती हैं।

संकेत—(क) २ हालाहलम्। ५ द्रावय। ६ पातय। ८ कर्तृ, भर्तृ संहर्तृ। (ख) १ वाग्बाणेन। २. तुतोद। ३ शय्यां मुञ्च। (ग) १ अगति। २ मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः। ३ अविवेकः परमापदां पदम्। ५. अवलम्ब्य। ६ विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता। ७ विपद् विपदमनुबध्नाति सपत् सपदम्। ८ साधुवृत्तानपि विक्षिपन्ति। ९ मर्मच्छिद्। १० धिगिमां देहभृतामसारताम् (घ) २ सर्वे सगन्धेषु विश्वसिति। ३ मूर्च्छन्ति। ६ सूर्यातपे दत्तवती। ७ अध्ययने प्रारब्धव्ये। ८ हर्षस्थाने अलं विषादेन। ९ शान्ते पानीयवर्षे। १० मम धियः पथि न वर्तते। ११ पितृस्थाने वर्तते। १२ श्रवणगोचरे तिष्ठ। १३ प्रविष्टमात्र एव रक्षिणि। १४ त्वयि वर्तमाने। १६ आगतेभ्यः।

शब्दकोष–१२७५ + २५ = १३००] **अभ्यास ५२** (व्याकरण)

(क) सिन्दूरम् (सिन्दूर), चूर्णकम् (पाउडर), बिन्दु. (बिन्दी), ललाटिका (टीका), तिलकम् (तिलक), पत्रलेखा (पत्रलेखा), कज्जलम् (काजल), गन्धतैलम् (इत्र), हैमम् (स्नो), शर. (क्रीम), दर्पण: (शीशा), प्रसाधनी (कंघी), ओष्ठरञ्जनम् (लिपस्टिक), कपोलरञ्जनम् (रूज), नखरञ्जनम् (नेल पालिश), फेनिलम् (साबुन), शृङ्गारफलकम् (ड्रेसिंग टेबुल), रोममार्जनी (ब्रुश), दन्तधावनम् (१ दाँत का ब्रुश, २ दातून), दन्तपिष्टकम् (टूथ पेस्ट), दन्तचूर्णम् (१. टूथ पाउडर, २ मजन), मेन्धिका (मेंहदी), अलक्तक. (लाक्षारस, महावर), उद्वर्तनम् (उबटन), शृङ्गारधानम् (सिंगारदान)। (२५)

व्याकरण (जगत्, छिद्, भिद्, इष्णु, खश् आदि प्रत्यय)

१. जगत् शब्द के रूप स्मरण करो (देखो शब्द० ६८)

२ छिद् और भिद् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८३, ८४)

नियम २५०—(इष्णुच् प्रत्यय) (अलकृञ्निराकृञ्०) अलकृ, निराकृ आदि धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय होता है। इष्णु शेष रहता है। धातु को गुण, गुरुवत् रूप। अलंकरिष्णु.। निराकरिष्णु.। उत्पतिष्णु.। उन्मदिष्णु। रोचिष्णु। वर्धिष्णु.। सहिष्णु। चरिष्णु।

नियम २५१—(खश् प्रत्यय) इन स्थानों पर खश् होता है। इसका अ शेष रहता है। (अरुर्द्विषद०) खश् होने पर पहले अजन्त शब्द के अन्त मे 'म्' जुड जाएगा। गुण होगा। (१) (एजे. खश्) एजि धातु से खश् (अ)। जनमेजयतीति जनमेजय। (२) इन स्थानों पर खश् होता है—स्तनन्धय., अभ्रंलिहो वायु, मितम्पचः, विधुन्तुद, अरुन्तुद, असूर्यम्पश्या, ललाटन्तप। (३) (आत्ममाने खश्च) अपने आपको समझने अर्थ में खश्। पण्डितमन्य.। कालिंमन्या। स्त्रियमन्यः। नरमन्य।

नियम २५२—(खच् प्रत्यय) खच् का अ शेष रहता है। पूर्वपद में म् जुडेगा। गुण होगा। (१) (प्रियवशे वद. खच्) प्रिय, वश पहले हों तो वद् से खच्। प्रियवद। वशवदः। (२) (गमेः सुपि, विहायसो विह') गम् धातु से खच्। भुजगम, भुजग'। विहगमः, विहग.। (३) (द्विषत्परयोस्तापेः) द्विषत् या पर पहले हों तो तापि से खच्। द्विषन्तपः, परन्तप'। (४) इन स्थानों पर खच् होता है—वाचयम, पुरन्दर., सर्वंसह, कूलकषा नदी, भयकर., अभयकरः, भद्रकर., विश्वम्भरः, पतिंवरा कन्या, अरिन्दम.।

नियम २५३—(अथुच्) अथुच् का अथु शेष रहता है। गुण होगा। (ट्वितोऽथुच्) जिन धातुओं में से टु हटा है, वहाँ अथुच् होगा। वेप् > वेपथु, श्वि > श्वयथु।

नियम २५४—(ष्ट्रन्) (दाम्नीशस०)दा, नी, शस्, स्तु आदि से ष्ट्रन् होता है। इसका त्र शेष रहता है। गुण होगा। दात्रम्, नेत्रम्, शस्त्रम्। पत् > पत्रम्। दंश् > दंष्ट्रा।

नियम २५५—(इत्र) (अर्तिलूधूसूखन०) ऋ, लू, धू, सू, खन, सह्, चर् धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है। गुण होगा। अरित्रम्, लवित्रम्, खनित्रम्, चरित्रम्।

नियम २५६—(उ) (सनाशंसभिक्ष उ') सन् प्रत्यय जिनके अन्त में हो उनसे, आशस् और भिक्ष् धातु से उ प्रत्यय होता है। चिकीर्षु, आशंसु, भिक्षु।

नियम २५७—(ड) ड का अ शेष रहता है। टि का लोप होगा। (१) (सप्तम्यां जनेर्ड.) सप्तम्यन्त शब्द पहले हो तो जन् धातु से ड। सरसिजम्, सरोजम्। (२) इन स्थानों पर भी ड होता है—प्रजा, अज', द्विजः।

नियम २५८—(अ) (अ प्रत्ययात्) प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिंग में अ। बाद में टाप्। चिकीर्षा।

नियम २५९—(युच्) (ण्यासश्रन्थो०) ण्यन्त से युच् (अन) होता है। कारि > कारणा। हारणा, धारणा।

अभ्यास ५२

संस्कृत बनाओ :—(क) (जगत् शब्द) १ सूर्य जगम और स्थावर का आत्मा है। २ जगत् के माता-पिता पार्वती और शिव की वन्दना करता हूँ। ३ यह सारा ससार ही नश्वर है, इसमे भी यह शरीर और अधिक नश्वर है। ४ यदि एक ही काम से ससार को वश में करना चाहते हो तो पर-निन्दा से वाणी को रोको। ५ पत्नी के वियोग में यह सारा ससार वनवत् हो जाता है। ६ पत्नी के स्वर्गवास होने पर संसार जीर्ण अरण्यवत् हो जाता है। ७ मृग ऊँची छलाग के कारण आकाश में अधिक और भूमि पर कम चल रहा है (वियत्)। ८ वृक्ष से पत्ते गिर रहे हैं (पतत्)। ९ लता से फूल गिरे (पतितवत्)। (ख) (छिद्, भिद् धातु) १. इस आत्मा को शस्त्र नहीं काटते हैं (छिद्)। २ हमारे बन्धनों को काटो (छिद्)। ३. तृष्णा को नष्ट करो (छिद्)। ४ मेरे इस सशय को दूर करो (छिद्)। ५. इससे हमारा कुछ नहीं बिगडता (छिद्)। ६ घडा फोडकर, कपडा फाडकर, गधे की सवारी करके, जिस किसी प्रकार हो मनुष्य प्रसिद्धि प्राप्त करे। ७ ठण्डा जल भी क्या पहाड को नहीं तोड देता है (भिद्)? ८ शत्रु ने सन्धि को तोडा (भिद्)। ९. गुप्त बात छ कानों में पडते ही समाप्त हो जाती है। १० उडद को पीसता है (पिष्)। ११. वह व्यर्थ ही पिष्टपेषण करता है। (ग) (इष्णु आदि) १ बन-ठनकर रहने वाले लोग बालों में तेल और इत्र डालते हैं, कघी से बालो को सँवारते हैं, मुँह पर स्नो और क्रीम लगाते हैं। दाँत के ब्रुश पर टूथ पेस्ट लेकर दाँत साफ करते हैं। जूतो पर पालिश कराते हैं और वस्त्रो पर लोहा कराते हैं। २ बडे आदमी मर्मवेधी वचन कभी नहीं कहते। ३ कमल शैवाल से घिरा हुआ भी मनोहर होता है। ४. सज्जन प्रियवादी, शिष्य आज्ञाकारी, दुर्जन भयकर, सत्पुरुष अभयकर, मुनि वाक्सयमी, राजा शत्रुनाशी, महल गगनचुम्बी, राहु चन्द्र-पीडक, सूर्य ललाटतापी और कृपण मितभक्षी है। (घ) (प्रसाधनवर्ग) स्त्रियाँ प्राय शृगार-प्रिय होती हैं। वे सज-धज कर रहना चाहती हैं। वे सिर में सिन्दूर लगाती हैं, माथे पर टीका और बेंदी लगाती हैं, आँखों में काजल, देह में उबटन, नाखूनों पर नेल पालिश, गालो पर रूज, ओठों पर लिपस्टिक, मुँह पर स्नो और क्रीम, पैरो में महावर और हाथों पर मेंहदी लगाती हैं। ड्रेसिग टेबुल पर सिंगारदान और शृगार का सामान रखती हैं। कुछ स्त्रियाँ जूडा बाँधती हैं, कुछ जूडे में जाली लगाती हैं और कुछ बालों में काँटा लगाती हैं।

सकेत —(क) १ जगतस्तस्थुषश्च। २ पितरौ। ३ निखिल जगदेव नश्वरम्, नितराम्। ४. यदीच्छसि वशीकर्तुम्, परापवादात्, निवारय। ५ प्रियानाशे कृत्स्न किल जगदरण्य हि भवति। ६ जगज्जीर्णारण्य भवति च कलत्रे ह्युपरते। ७ उदग्रप्लुतत्वाद् वियति। ८ पतन्ति सन्ति। ९ पतितवन्ति। (ख) २ पाशान्। ४ छिन्धि। ५ न न किञ्चिद् छिद्यते। ६ भित्त्वा, छित्त्वा, कृत्वा गर्दभरोहणम। येन केन प्रकारेण प्रसिद्ध पुरुषो भवेत्। ८ अभिनत्। ९ षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र। १० माषपेष पिनष्टि। (ग) १ अलकरिष्णव, प्रसाधयन्ति, पादूरञ्जन योजयन्ति, अयस्कारयन्ति। २ अरुन्तुदत्व महता ह्यगोचर। ३ सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्यम्। ४ प्रियवद, वशवद, वाचयम, अरिन्दम, अभ्रलिह, विधुन्तुद, ललाटन्तप, मितपच। (घ) अलकरिष्णवो भवन्ति। वेणीबन्ध बध्नन्ति, वेणीजाल युञ्जन्ति, केशशूकान्।

शब्दकोष–१३०० + २५ = १३२५] **अभ्यास ५३** (व्याकरण)

(क) ग्रामः (गाँव), नगरी (कस्बा), नगरम् (शहर), कुटी (कुटिया), भवनम् (मकान), प्रासादः (महल), मार्गः (सडक), राजमार्गः (मुख्य सडक), मृन्मार्गः (कच्ची सडक), दृढमार्गः (पक्की सडक), रथ्या (चौड़ी सडक), वीथिका (१. गली, २. गेलरी), नगरपालिका (म्युनिसिपलिटी), निगमः (कार्पोरेशन), नगराध्यक्ष (म्युनिसिपल चेयरमैन), निगमाध्यक्षः (मेयर), चतुष्पथः (१. चौक, २. चौराहा), पुरोद्यानम् (पार्क), रक्षिस्थानम् (थाना), कोटपालिका (कोतवाली), जनमार्ग (आम रास्ता), उपवेशगृहम् (ड्राइंग रूम), भोजनगृहम् (डाइनिंग रूम), स्नानागारम् (बाथ रूम), भाण्डागारम् (स्टोर रूम)। (२५)

व्याकरण (नामन्, शर्मन्, हिंस्, भञ्ज्, अपत्यार्थक प्रत्यय)

१. नामन् और शर्मन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ६९, ७०)

२ हिंस् और भञ्ज् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८५, ८६)

नियम २६०—सारे तद्धित के लिए यह नियम मुख्यतया स्मरण कर लें। (तद्धितेष्वचामादे, किति च) जिस तद्धित प्रत्यय में से ण्, ञ् या क् हटा होगा, वहाँ पर शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि हो जायगी। (१) ञ् हटेवाले प्रत्यय। जैसे—अञ्, इञ्, ढञ्, ठञ्। (२) ण् हटेवाले प्रत्यय—अण्, छण्, ण्य। (३) क् हटेवाले = ठक्, ढक्।

नियम २६१—(अण् प्रत्यय) अपत्य अर्थात् पुत्र या पुत्री के अर्थ में इन स्थानों पर अण् प्रत्यय होगा। अण् का अ शेष रहेगा। शब्द के प्रथम अक्षर को वृद्धि। (यस्येति च) शब्द के अन्तिम अ, आ, इ और ई का लोप हो जायगा। (१) (तस्यापत्यम्) अपत्य अर्थ में अण् (अ) होगा। वसुदेवस्यापत्यम् > वासुदेवः। उपगु > औपगवः। (२) (अश्वपत्यादिभ्यश्च) अश्वपति आदि से अपत्य अर्थ में अण्। अश्वपति > आश्वपतम्। गणपति > गाणपतम्। (३) (शिवादिभ्योऽण्) शिव आदि से अण्। शिवस्यापत्यम् > शैवः। गङ्गा > गाङ्ग। (४) (ऋष्यन्धकवृष्णि०) ऋषि, अन्धकवंशी, वृष्णिवंशी और कुरुवंशी से अपत्यार्थ में अण्। वसिष्ठ > वासिष्ठः। विश्वामित्र > वैश्वामित्रः। अनिरुद्ध > आनिरुद्धः। नकुल > नाकुलः। सहदेव > साहदेवः। (५) (मातुरुत्सङ्ख्या०) कोई संख्या, सम् या भद्र पहले होगा तो मातृ शब्द से अपत्यार्थ में अण्। मातृ को मातुर् हो जायगा। द्विमातृ > द्वैमातुर। षण्मातृ > षाण्मातुरः। समातृ > सामातुर.।

नियम २६२—(इञ् प्रत्यय) अपत्य अर्थ में इन स्थानों पर इञ् प्रत्यय होगा। इञ् का इ शेष रहेगा। शब्द के प्रथम अक्षर को वृद्धि। हरिवत् रूप चलेंगे। (१) (अत इञ्) अकारान्त शब्दों से इञ्। दशरथ > दाशरथिः (राम)। दक्ष > दाक्षिः। सुमित्रा > सौमित्रिः (लक्ष्मण)। द्रोण > द्रौणिः (अश्वत्थामा)। (२) बाह्वादिभ्यश्च) बाहु आदि से इञ्। उ को गुण ओ होकर अव् हो जाएगा। बाहु > बाहविः।

नियम २६३—(ढक् प्रत्यय) पत्य अर्थ में इन स्थानों पर ढक् होगा। ढ को एय हो जायगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। (१) (स्त्रीभ्यो ढक्) स्त्रीलिंग शब्दों में ढक् (एय)। विनता > वैनतेयः। भगिनी > भागिनेय। (२) (द्व्यचः) दो स्वरवाले स्त्रीलिंग शब्दों से ढक्। कुन्ती > कौन्तेयः, माद्री > माद्रेयः, राधा > राधेय, गङ्गा > गाङ्गेयः।

नियम २६४—(ण्य प्रत्यय) अपत्यार्थ में ण्य। य शेष रहेगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। (१) (दित्यदित्या०) दिति, अदिति, आदित्य, पति अन्तवाले शब्दों से ण्य। दिति > दैत्यः, अदिति > आदित्यः, आदित्य > आदित्यः, प्रजापति > प्राजापत्य। (२) (कुरुनादिभ्यो ण्यः) कुरुवंशी और नकारादि से ण्य। कुरु > कौरव्यः। निषध > नैषध्यः।

अभ्यास ५२

संस्कृत बनाओ—(क) (नामन् , शर्मन् शब्द) १ उसने अपने पुत्र का नाम रघु रखा। २ मानी लोग प्राणों और सुख को सरलता से छोड देते है। ३ अपने किये कर्म को कौन नहीं भोगता (कर्मन्)? ४. वह स्थलमार्ग से चल पडा (वर्त्मन्)। ५. वे सन्मार्ग से जरा भी नहीं हटे (सद्वर्त्मन्)। ६. उसने मन, वचन, शरीर और कर्म से देशसेवा की। ७. उस वचन ने उस पर पूरा असर किया (मर्मन्)। (ख) (हिस् , भञ्ज् धातु) १ जो निरपराध जीवो की हिसा करता है, वह पापी होता है (हिंस्)। २. शुभ कर्म पापों को नष्ट करता है (हिस्)। ३. किसी भी जीव को न मारो। ४ बन्दर बगीचे को तोड-फोड रहा है (भञ्ज्)। ५. राम ने धनुष को तोड दिया (भञ्ज्)। ६ कुलमर्यादाओ को न तोडे। ७. यह सुन्दर भाषण उसकी वाग्मिता को व्यक्त करता है (वि + अञ्ज्)। (ग) (अपत्यार्थक) १. दाशरथि राम ने जामदग्न्य राम को निर्भीकता से उत्तर दिया। २ वासुदेव ने कुन्ती के पुत्र अर्जुन का सारथि होना स्वीकार किया। ३ पृथा के पुत्र भीम ने धृतराष्ट्र के पुत्र दु शासन को मार दिया। ४ राधा के पुत्र कर्ण ने द्रोण पुत्र अश्वत्थामा से कहा—मैं सारथि होऊँ या सारथि-पुत्र, अथवा जो कुछ भी होऊँ, इससे क्या? सत्कुल में जन्म होना भाग्याधीन है, पर पुरुषार्थ करना मेरे हाथ में है। ५ माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव युधिष्ठिर के साथ ही वन में गए। ६ सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने कभी भी राम का साथ नहीं छोडा। (घ) (पुरवर्ग) नगर मे सज्जन, दुर्जन, विद्वान् , अविद्वान् , धनिक, निर्धन, बडे-छोटे, हिन्दू , मुसलमान, ईसाई सभी रहते हैं। नगर की उन्नति सभी नागरिको का कर्तव्य है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, सद्भाव और सहानुभूति से जन-जीवन सुखमय होता है। अत. इन गुणों को अपनाना और इनका उपयोग करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। प्रत्येक देश में गॉव, कस्बे और नगर होते हैं। गॉवों में झोपडियॉ और कुटिया होती हैं, परन्तु नगरों में मकान और महल अधिक होते हैं। शहरों मे पक्की सडकें, चौडी सडकें, मेन रोड और गलियॉ भी होती हैं। वहॉ पार्क, बच्चों के पार्क बिजलीघर,वाटर-वर्क्स, थाना, कोतवाली भी होते हैं। छोटे शहरो में म्युनिसिपलिटी होती है और उसका अध्यक्ष म्युनिसिपल-चेयरमैन होता है। बडे शहरों में कार्पोरेशन होता है और उसका अध्यक्ष मेयर होता है। इनका काम होता है कि नगर की सुरक्षा करें और नगर की उन्नति के लिए सभी साधनों को अपनावें। नगरों में प्रत्येक घर में साधारणतया ड्राइग रूम, डाइनिंग रूम, बाथरूम, स्टोर रूम, रसोई, सोने का कमरा, रहने का कमरा, शौचालय, मूत्रालय और अतिथिगृह होते हैं। कुछ मकानों में यज्ञशाला और बगीचे भी होते हैं।

संकेत—(क) १ नाम्ना रघु चकार। २ असून् शर्म च। ३ कर्म क स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते। ४ प्रतस्थे स्थलवर्त्मना। ५ सद्वर्त्मनो रेखामात्रमपि न व्यतीयु। ६ मनोवाक्कायकर्मभि। ७ तस्य हृदयमर्मास्पृशत्। (ख) २ दुष्कृतानि हिनस्ति। ४ भनक्ति। ७ व्यनक्ति। (ग) ३ पार्थ धार्तराष्ट्रम्। ४ सूतो वा सूतपुत्रो वा। दैवायत्त कुले जन्म मदायत्त तु पौरुषम्। ६ मानित्यम्। (घ) ज्येष्ठा, कनिष्ठा, यवना, ईसुमतानुयायिन, धारणम्, उटजा, बालोद्यानानि, विद्युद्गृहाणि, उदयन्त्राणि, पाकशाला, शयनगृहम् , वासगृहम् , निष्कुटा।

शब्दकोष—१३२५ + २५ = १३५०] अभ्यास ५४ (व्याकरण)

(क) आपणः (दूकान), विपणि. (स्त्री०, बाजार), महाहट्टः (मंडी), प्राकारः (परकोटा), वृतिः (स्त्री०, बाड, घेरा), भित्ति. (स्त्री०, दीवार), द्विभूमिक (दुमंजिला), त्रिभूमिक. (तिमंजिला), चतु.शालम् (चारों ओर मकान, बीच में आँगन), उटजः (झोपडी), मण्डपः (१. मंडप, २. टेन्ट), अन्त पुरम् (रनवास), देहली (देहली), प्रपा (प्याऊ), पथिकालयः (मुसाफिरखाना), अट्टः (अटारी, बुर्जी), वलभी (छज्जा), गोपुरम् (मुख्य द्वार),वेदिका (वेदी), द्वारम् (द्वार), चत्वरम् (चबूतरा), अलिन्द (घर के बाहर का चबूतरा), अजिरम् (आँगन), निश्रेणिः (सीढी, काठ आदि की), सोपानम् (सीढी)। (२५)

व्याकरण (ब्रह्मन्, अहन्, रुध्, भुज्, चातुरर्थिक प्रत्यय)

१. ब्रह्मन् और अहन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७१, ७२)

२. रुध् और भुज् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८७, ८८)

नियम २६५—(रक्तार्थक) रंग आदि से रँगने अर्थ मे ये प्रत्यय होते हैं—(१) (तेन रक्त रागात्) जिससे रंगा जाए, उससे अण् (अ) प्रत्यय। प्रथम स्वर को वृद्धि। कषाय>काषायम् (गेरु से रँगा हुआ वस्त्र)। माञ्जिष्ठम् (मँजीठ से रँगा हुआ)। (२) (नील्या अन्) नीली शब्द से अन् (अ)। नीली> नीलम् (नील से रँगा हुआ)। (३) (पीतात्कन्) पीत से कन् (क)। पीतकम् (पीले रंग से रँगा हुआ)। (४) (हरिद्रा०) हरिद्रा से अञ् (अ)। हारिद्रम् (हल्दी से रँगा हुआ)।

नियम २६६—(कालार्थक) किसी नक्षत्र से युक्त समय या पूर्णिमा होगी तो ये प्रत्यय होंगे। (१) (नक्षत्रेण युक्त. काल) नक्षत्र से अण् (अ)। पुष्य> पौषम् अहः, पौषी रात्रि· (पुष्य से युक्त दिन या रात)। (२) (सास्मिन्०) नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर मास का वह नाम पडता है। अण् (अ) प्रत्यय। पुष्य से युक्त मास—पौषः। चित्रा>चैत्र। विशाखा>वैशाख.। ज्येष्ठा>ज्येष्ठः। अषाढा> आषाढः।

नियम २६७—(देवतार्थक) देवता अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं। (१) (सास्य देवता) देवता अर्थ में अण् (अ)। इन्द्र> ऐन्द्र हवि. (इन्द्र है देवता जिसका)। पशुपति> पाशुपतम्। (२) (सोमाट् ट्यण्) सोम से ट्यण् (य)। सोम>सौम्यम्। (३) (वाय्वृतु०) वायु आदि से यत् (य)। वायु>वायव्यम्। पितृ> पित्र्यम्। (४) (अग्नेर्ढक्) अग्नि से ढक्। ढ को एय। अग्नि>आग्नेयम्।

नियम २६८—(समूहार्थक) समूह अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं:—(१) (तस्य समूह.) समूह अर्थ मे अण् (अ)। काक>काकम् (काक-समूह)। बक> बाकम्। (२) (भिक्षादिभ्योऽण्) भिक्षा आदि से अण् (अ)। भिक्षा>भैक्षम्। युवति> यौवनम् (स्त्री-समूह)। (३) (ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्) ग्राम आदि से तल् (ता)। ग्रामता, जन> जनता (जनसमूह)। बन्धु>बन्धुता। (४) (अनुदात्तादेरञ्) इनसे अञ् (अ) होगा। कपोत>कापोतम्। मयूर>मायूरम् (मयूर-समूह)।

नियम २६९—(अध्ययनार्थक) पढने या जानने अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं:— (१) (तदधीते तद्वेद) पढने या जानने अर्थ में अण् (अ)। (न य्वाभ्या०) संयुक्ताक्षरों मे य् से पहले ऐ, व् से पहले औ लगेगा। व्याकरण> वैयाकरण· (व्याकरण पढने या जाननेवाला)। न्याय> नैयायिक.। (२) (क्रमादिभ्यो वुन्) क्रम आदि से वुन् (अक) होता है। मीमांसा> मीमांसक.।

अभ्यास ५४

संस्कृत बनाओ—(क) (ब्रह्मन् , अहन् शब्द) १ ब्रह्म नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त-स्वभाव सर्वज्ञ और सर्वशक्तियुक्त है। २ सभी दानो मे विद्या-दान श्रेष्ठ है। ३ जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्राह्मण होता है। ४ वह वेद मे (ब्रह्मन्) निष्णात है। ५ चन्द्रमा चाण्डाल के घर से (वेश्मन्) चाँदनी को नहीं हटाता। ६ कवच (वर्मन्) धारण करो, त्यौहार (पर्वन्) मनाओ, वेद (ब्रह्मन्) पढो, घर मे (सद्मन्) सुख से रहो, शुभ लक्षण (लक्ष्मन्) धारण करो। ७ दिन ज्योति का प्रतीक है और रात्रि अन्धकार की। ८ दिन मे ऐसा काम न करो, जिससे रात्रि दु खद प्रतीत हो। ९ दिन प्राय बीत गया है। (ख) (रुध् , भुज् धातु) १ वह बाडे मे गायो को रोकता है। २ प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम करे (रुध्)। ३ आशा का बन्धन ही स्त्रियो के अतिकोमल हृदय को वियोग के समय रोकता है (रुध्)। ४. बिस्तरे पर बैठकर न खावे (भुज्)। ५. पापी आदमी सैकडो दु:खो को भोगता है। ६. उसने राज्य का धरोहर की तरह पालन किया (भुज् , पर०)। ७ यह अकेला ही सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करता है (भुज्)। (ग) (चातुरर्थिक प्रत्यय) १. सन्यासी गेरुआ वस्त्र पहनते है। कुछ लोग नील से रँगे हुए वस्त्रो को पहनते हैं, कुछ पीले रग से रँगे हुए और कुछ हल्दी से रँगे हुए वस्त्रों को। २ सस्कृत मे महीनो के नाम नक्षत्रो के नामो से पडे हैं। पूर्णिमा के दिन जो नक्षत्र होता है, उसके नाम से ही वह मास बोला जाता है। जैसे—चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर चैत्र मास, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, अषाढा से आषाढ, श्रावणा से श्रावण, भद्रपदा से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन, कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ और फल्गुनी से फाल्गुन नाम पड़े हैं। ३. प्राचीन समय में बहुत से अद्भुत गुणोवाले अस्त्र थे। जैसे—आग्नेय, वारुण, वायव्य, पाशुपत आदि। ४ जनता मे प्रेम और बन्धुता होनी चाहिए। ५ काक-समूह, बक समूह, कपोत समूह और मयूर समूह, ये अपने समूह के साथ ही रहते, उडते और बैठते हैं। ६. वैयाकरण व्याकरण पढता है, नैयायिक न्याय को, मीमासक मीमासा को और वेदान्ती वेदान्त को। (घ) (पुरवर्ग) बडे शहरो में बाजार, मडी और दूकाने होती है, जहाँ से नगरनिवासी सामान लाकर अपना आवश्यक कार्य करते हैं। शहरों में दुमजिले, तिमजिले, चौमजिले और आठ मंजिले मकान भी होते हैं। सीढी के द्वारा ऊपर की मजिलो पर पहुँचते है। आजकल बम्बई, कलकत्ता आदि बडे शहरो में लिफ्ट के द्वारा ऊपर की मजिल पर सरलता से पहुँच जाते हैं और उससे ही उतर आते है। प्राचीन नगरों के चारों ओर परकोटा या बाड़ होती थी। मकानों में अटारी, छज्जा, द्वार, मुख्यद्वार, ऑगन, सीढी, दीवार, चबूतरा, देहली, रनवास, मडप भी होते थे। नगरों में प्याऊ, मुसाफिरखाने आदि भी होते थे।

सकेत—(क) २ ब्रह्मदान विशिष्यते। ५ वेश्मन। ६ विधिवत् सपादय। ९ परिणतप्रायमह। (ख) १. व्रजम्। ३. आशाबन्ध। ४ शयनस्थो न भुञ्जीत। ५ भुङ्क्ते। ६. न्यासमिवाभुनक्। ७ भुनक्ति। (घ) चतुर्भूमिका, अष्टभूमिका प्रसादा, उत्थापनयन्त्रेण, ऊर्ध्वभूमिम् , अवतरन्ति।

शब्दकोष—१३५० + २५ = १३७५] अभ्यास ५५ (व्याकरण)

(क) गवाक्ष· (खिड़की), छदि· (स्त्री०, छत), पटलगवाक्ष (स्काई लाइट), वरण्ड· (बरामदा), प्रकोष्ठ (पोर्टिको), कुट्टिमम् (फर्श), कपाटम् (किवाड़), अर्गलम् (अर्गला, किवाड के पीछे का डंडा), कील (चटकनी), नागदन्तक (खूँटी), कक्ष· (कमरा), महाकक्ष (हॉल), लघुकक्ष, (कोठरी), स्तम्भ· (खम्भा), दारु (नपु०, लकड़ी), काच (कॉच), अश्मचूर्णम् (सीमेंट), प्रलेप· (प्लास्टर), तृणम् (फूँस), त्रपु (नपु०, टीन), त्रपुफलकम (टीन की चद्दर), लौहफलकम् (लोहे की चद्दर), प्रणालिका (नाली), खर्परः (खपड़ा)। (२४)। (घ) खर्परावृतम् (खपड़ैल का)। (१)

व्याकरण (हविष्, धनुष्, युज्, तन्, शैषिक प्रत्यय)

१ हविष् और धनुष् शब्दो के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७३, ७४)

२ युज् और तन् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८९, ९०)

नियम २७०—(तत्र जात·, तत्र भव.) सप्तम्यन्त शब्दों से उत्पन्न होना आदि अर्थों में शैषिक प्रत्यय अण् आदि होते हैं। मुख्य प्रत्यय ये हैं—(१) (शेषे) अपत्य आदि से शेष अर्थों मे अण् आदि होते हैं। चक्षुष्>चाक्षुष रूपम् (ऑख से देखने योग्य), श्रवण>श्रावणः शब्द। (२) (राष्ट्रावारपाराद्०) राष्ट्र शब्द से घ (इय) और अवारपार से ख (ईन) होते है। राष्ट्रे जातः>राष्ट्रिय। अवारपार>अवारपारीणः। (३) (ग्रामाद्यखञौ) ग्राम से य और खञ् (ईन) होते हैं। ग्राम्य., ग्रामीण.। (४) (दक्षिणापश्चात्०) दक्षिणा आदि से त्यक् (त्य) होता है। दक्षिणा>दाक्षिणात्य.। पश्चात्>पाश्चात्य। पुरस्>पौरस्त्य· (५) (द्युप्रागपागुदक्०) दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रतीच् से यत् (य) होता है। दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्। (६) (अमेहक्वतसित्रेभ्य०) अमा, इह, क्व, तः और त्र प्रत्ययान्त से त्यप् (त्य) होता है। अमात्य, इहत्य, क्वत्यः, ततस्त्य· तत्रत्य.। (७) (त्यदादीनि च) त्यद् आदि सर्वनामो की वृद्ध सज्ञा होने से छ (ईय) प्रत्यय। तदीयः। यदीय.। (८) (वृद्धाच्छ.) शब्द का प्रथम अक्षर दीर्घ हो तो छ (ईय) प्रत्यय। शाला>शालीय·। मालीयः। (९) (भवतष्ठक्छसौ) भवत् शब्द से ठक् (क) और छस् (ईय) होते हैं। भावत्क·, भवदीयः। (१०) (युष्मदस्मदो०) युष्मद्, अस्मद् शब्द के ये रूप बनते हैं—युष्मदीयः (तुम्हारा), यौष्माकीण, यौष्माक·, तावकीन· (तेरा), तावक, त्वदीय.। अस्मदीय·, आस्माकीन., आस्माक, मामकीन, मामक·, मदीय·। (११) (कालाट्ठञ्) कालवाचकों से ठञ् (इक)। मास>मासिकम्। वार्षिकम्। (१२) (सायंचिर०) सायं चिर आदि के अन्त में तन लग जाता है। सायन्तनम्, चिरन्तनम्, पुरातनम्, सनातनम्।

नियम २७१—(प्रभवति) उत्पन्न होना अर्थ मे अण् (अ)। हिमवत्>

अभ्यास ५५

संस्कृत बनाओ—(क) (हविष् , धनुष् शब्द) १ अग्नि विधिपूर्वक हुत हवि को देवों को पहुँचाता है। २ वह सामग्री और घी से हवन करता है। ३ अग्नि पर घी को (सर्पिष्) पिघलाओ। ४. आकाश मे तारो (ज्योतिष्) की ज्योति (रोचिष्) चमक रही है। ५. उसने धनुष पर अमोघ बाण रखा। ६ ऑख से (चक्षुष्) देखकर आगे पैर रखो। ७. यह शरीर बिना कृत्रिमता के ही सुन्दर है (वपुष्)। ८. इसका शरीर हर्ष से रोमाञ्चित है। ९ आयु मर्मस्थलों की रक्षा करती है (आयुष्)। १०. प्राण ही जीवों की आयु है। (ख) (युज् , तन् धातु०) १ वे सुख के अर्थ मे विषय शब्द का प्रयोग नहीं करते है। २. आत्मा को परमात्मा मे लगाओ। ३ उसने आशीर्वाद दिया। ४. कल नाटक खेला जाएगा (प्रयुज्)। ५ ऋषि असाधुदर्शी है, जो इस शकुन्तला को आश्रम के कार्यों में लगाते है (नियुज्)। ६. उन्मत्त मनुष्य को मूर्खता भी नहीं छोडती है (वियुज्)। ७ सौभाग्य से उसकी जान नहीं गई (वियुज्)। ८ विद्या का सत्कार्य मे उपयोग करे (उपयुज्)। ९ मलिन भी चन्द्रमा का चिह्न शोभा को करता है (तन्)। १० सज्जनों की संगति क्या मगल नहीं करती है (आतन्)? ११. सत्सगति दिशाओं मे कीर्ति को फैलाती है (तन्)। १२. नौकरों ने शामियाना फैलाया (वितन्)। (ग) (शैषिक प्रत्यय) १ पौरस्त्य और पाश्चात्य सस्कृतियों में भेद होते हुए भी पर्याप्त समानता है। दोनों ही मौलिक सिद्धान्तों को मानते और अपनाते हैं। पुरातन हो या नूतन, सभी सस्कृतियों ने विश्व को लाभ पहुँचाया है। २ हे गोविन्द, तुम्हारी वस्तु तुम्हें भेंट करते है। ३ पाणिनीय अष्टाध्यायी सारे व्याकरणो का सार है और विद्वत्ता की पराकाष्ठा है। ४ विद्यालयों और महाविद्यालयो में पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक और वार्षिक परीक्षाएँ भी होती हैं। ५ कन्या पराई सपत्ति है। (घ) (गृहवर्ग) निवास के लिए घरों की आवश्यकता सदा रहती है और सदा रहेगी। समयानुसार इनकी निर्माण-विधि मे अन्तर होता रहा है। प्राचीन समय में ग्रामों मे मकान फूँस के या खपडैल के होते थे। आजकल भी ग्रामो में अधिक मकान फूँस और खपडैल के हैं। नगरों में अधिकाश मकान पक्की ईंटों के होते है। उनमे पक्की ईंटों की छतें होती है। खिडकियाँ, स्काईलाइट, बरामदा, फर्श, किवाड, चटकनी, खूँटी आदि भी होती है। मकानो में सीमेंट का प्लास्टर होता है। कुछ मकानो पर टीन या लोहे की चद्दरें भी लगाई जाती हैं। पहाड में मकानों मे लकडी और कॉच अधिक लगाया जाता है, जिससे खिडकी आदि बन्द होने पर भी प्रकाश अन्दर आ सके और कमरो में अँधेरा न हो।

सकेत—(क) १ वहति। २ हविषा, जुहोति। ३ सर्पि द्रावय। ४ रोचींषि द्योतन्ते। ५ समधत्त। ७ इद किलाव्याजमनोहर वपु। ९ आयुर्मर्माणि रक्षति। १० प्राणो हि भूताना मायु (ख) १ सुखार्थे विषयशब्द न प्रयुञ्जते। ३ आशिष युयुजे। ४ प्रयोक्ष्यते। ५ आश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। ६ वियुङ्क्ते। ७ प्राणैर्न व्ययुज्यत। ८ उपयुञ्जीत। ९ लक्ष्म लक्ष्मी तनोति। १० मङ्गु सता किमु न मङ्गलमातनोति। १२ चन्द्रातप व्यतानिषु। (ग) २ तुभ्यमेव समर्पये। ४ पाक्षिक्य , वार्षिक्य। ५ अर्थो हि कन्या परकीय एव। (घ) पक्वेष्टकानिमितानि, अवरुद्धेष्वपि।

शब्दकोष—१३५० + २५ = १३७५] अभ्यास ५५ (व्याकरण)

(क) गवाक्ष. (खिड़की), छदि. (स्त्री०, छत), पटलगवाक्षः (स्काई लाइट), वरण्ड (बरामदा), प्रकोष्ठ. (पोर्टिको), कुट्टिमम् (फर्श), कपाटम् (किवाड़), अर्गलम् (अर्गला, किवाड के पीछे का डंडा), कील. (चटकनी), नागदन्तक. (खूँटी), कक्ष. (कमरा), महाकक्ष. (हॉल), लघुकक्ष, (कोठरी), स्तम्भ. (खम्बा), दारु (नपु०, लकड़ी), काच (कॉच), अश्मचूर्णम् (सीमेंट), प्रलेप· (प्लास्टर), तृणम् (फूँस), त्रपु (नपु०, टीन), त्रपुफल्कम (टीन की चद्दर), लौहफल्कम् (लोहे की चद्दर), प्रणालिका (नाली), खर्परः (खपड़ा)। (२४)। (घ) खर्परावृतम् (खपड़ैल का)। (१)

व्याकरण (हविष्, धनुष्, युज्, तन्, शैषिक प्रत्यय)

१ हविष् और धनुष् शब्दो के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७३, ७४)

२ युज् और तन् धातुओ के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८९, ९०)

नियम २७०—(तत्र जातः, तत्र भवः) सप्तम्यन्त शब्दों से उत्पन्न होना आदि अर्थों में शैषिक प्रत्यय अण् आदि होते हैं। मुख्य प्रत्यय ये हैं—(१) (शेषे) अपत्य आदि से शेष अर्थों मे अण् आदि होते है। चक्षुष्>चाक्षुष रूपम् (ऑख से देखने योग्य), श्रवण>श्रावण· शब्द। (२) (राष्ट्रावारपाराद्०) राष्ट्र शब्द से घ (इय) और अवारपार से ख (ईन) होते है। राष्ट्रे जातः>राष्ट्रिय.। अवारपार>अवारपारीणः। (३) (ग्रामाद्यखञौ) ग्राम से य और खञ् (ईन) होते हैं। ग्राम्य., ग्रामीण.। (४) (दक्षिणापश्चात्०) दक्षिणा आदि से त्यक् (त्य) होता है। दक्षिणा>दाक्षिणात्य.। पश्चात्>पाश्चात्यः। पुरस्>पौरस्त्य. (५) (द्युप्रागपागुदक्०) दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रतीच् से यत् (य) होता है। दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम। (६) (अमेहक्वतसित्रेभ्य०) अमा, इह, क्व, तः और त्र प्रत्ययान्त से त्यप् (त्य) होता है। अमात्य., इहत्य, क्वत्यः, ततस्त्य. तत्रत्य.। (७) (त्यदादीनि च) त्यद् आदि सर्वनामो की वृद्ध सज्ञा होने से छ (ईय) प्रत्यय। तदीयः। यदीय.। (८) (वृद्धाच्छ) शब्द का प्रथम अक्षर दीर्घ हो तो छ (ईय) प्रत्यय। शाला>शालीयः। मालीय·। (९) (भवतष्ठक्छसौ) भवत् शब्द से ठक् (क) और छस् (ईय) होते हैं। भावत्कः, भवदीय.। (१०) (युष्मदस्मदो०) युष्मद्, अस्मद् शब्द के ये रूप बनते हैं—युष्मदीयः (तुम्हारा), यौष्माकीणः, यौष्माक, तावकीनः (तेरा), तावकः, त्वदीयः। अस्मदीय, आस्माकीन., आस्माक, मामकीन·, मामकः, मदीय.। (११) (कालाट्ठञ्) कालवाचकों से ठञ् (इक)। मास>मासिकम्। वार्षिकम्। (१२) (सायचिर०) सायचिर आदि के अन्त में तन लग जाता है। सायन्तनम्, चिरन्तनम्, पुरातनम्, सनातनम्।

नियम २७१—(प्रभवति) उत्पन्न होना अर्थ मे अण् (अ)। हिमवत्> हैमवती गङ्गा।

नियम २७२—(अधिकृत्य कृते०) जिस विषय को लेकर ग्रन्थ बनाया जाए, वहाँ अण् आदि। शकुन्तला>शाकुन्तलम्। कहानी आदि में प्रत्यय का लोप। वासवदत्ता।

नियम २७३—(तेन प्रोक्तम्) कृति अर्थ मे अण आदि। पाणिनि>पाणिनीयम्।

नियम २७४—इन अर्थों में भी अण् (अ) या इक लगता है। (१) (तद्-गच्छति०) रास्ता या दूत का जाना। स्रुघ्न>स्रौघ्न.। (२) (सोऽस्य निवास.) निवास अर्थ में अण्। स्रौघ्नः। (३) (तस्येदम्) इसका यह है अर्थ में अण्। शरद्>शारदम्। (४) (कृते ग्रन्थे) ग्रन्थ अर्थ में। वररुचि>वाररुचम्।

अभ्यास ५५

संस्कृत बनाओ—(क) (हविष् , धनुष् शब्द) १ अग्नि विधिपूर्वक हुत हवि को देवों को पहुँचाता है। २ वह सामग्री और घी से हवन करता है। ३ अग्नि पर घी को (सर्पिष्) पिघलाओ। ४ आकाश मे तारो (ज्योतिष्) की ज्योति (रोचिष्) चमक रही है। ५ उसने धनुष पर अमोघ बाण रखा। ६. आँख से (चक्षुष्) देखकर आगे पैर रखो। ७ यह शरीर बिना कृत्रिमता के ही सुन्दर है (वपुष्)। ८. इसका शरीर हर्ष से रोमाञ्चित है। ९ आयु मर्मस्थलों की रक्षा करती है (आयुष्)। १०. प्राण ही जीवो की आयु है। (ख) (युज् , तन् धातु०) १. वे सुख के अर्थ मे विषय शब्द का प्रयोग नही करते हैं। २ आत्मा को परमात्मा मे लगाओ। ३ उसने आशीर्वाद दिया। ४. कल नाटक खेला जाएगा (प्रयुज्)। ५. ऋषि असाधुदर्शी है, जो इस शकुन्तला को आश्रम के कार्यों में लगाते है (नियुज्)। ६ उन्मत्त मनुष्य को मूर्खता भी नहीं छोडती है (वियुज्)। ७ सौभाग्य से उसकी जान नहीं गई (वियुज्)। ८ विद्या का सत्कार्य में उपयोग करे (उपयुज्)। ९ मलिन भी चन्द्रमा का चिह्न शोभा को करता है (तन्)। १० सज्जनों की सगति क्या मंगल नही करती है (आतन्)? ११. सत्सगति दिशाओ मे कीर्ति को फैलाती है (तन्)। १२ नौकरो ने शामियाना फैलाया (वितन्)। (ग) (शैषिक प्रत्यय) १ पौरस्त्य और पाश्चात्त्य सस्कृतियो मे भेद होते हुए भी पर्याप्त समानता है। दोनो ही मौलिक सिद्धान्तों को मानते और अपनाते है। पुरातन हो या नूतन, सभी सस्कृतियो ने विश्व को लाभ पहुँचाया है। २. हे गोविन्द, तुम्हारी वस्तु तुम्हें भेंट करते है। ३ पाणिनीय अष्टाध्यायी सारे व्याकरणो का सार है और विद्वत्ता की पराकाष्ठा है। ४ विद्यालयों और महाविद्यालयों में पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक और वार्षिक परीक्षाएँ भी होती हैं। ५ कन्या पराई सपत्ति है। (घ) (गृहवर्ग) निवास के लिए घरों की आवश्यकता सदा रहती है और सदा रहेगी। समयानुसार इनकी निर्माण-विधि में अन्तर होता रहा है। प्राचीन समय में ग्रामों मे मकान फूँस के या खपडैल के होते थे। आजकल भी ग्रामों में अधिक मकान फूँस और खपडैल के हैं। नगरों में अधिकाश मकान पक्की ईंटों के होते है। उनमे पक्की ईंटों की छते होती हैं। खिडकियाँ, स्काईलाइट, बरामदा, फर्श, किवाड, चटकनी, खूँटी आदि भी होती हैं। मकानों में सीमेंट का प्लास्टर होता है। कुछ मकानो पर टीन या लोहे की चद्दरें भी लगाई जाती हैं। पहाड मे मकानों में लकडी और काँच अधिक लगाया जाता है, जिससे खिडकी आदि बन्द होने पर भी प्रकाश अन्दर आ सके और कमरों मे अँधेरा न हो।

सकेत—(क) १ वहति। २ हविषा, जुहोति। ३ सर्पि द्रावय। ४ रोचींषि द्योतन्ते। ५ समधत्त। ७ इद किलाव्याजमनोहर वपु। ९ आयुर्मर्माणि रक्षति। १० प्राणो हि भूताना मायु (ख) १ सुखार्थे विषयशब्द न प्रयुञ्जते। ३ आशिष युयुजे। ४ प्रयोक्ष्यते। ५ आश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। ६ वियुङ्क्ते। ७ प्राणैर्न व्ययुज्यत। ८ उपयुञ्जीत। ९ लक्ष्म लक्ष्मी तनोति। १० सङ्ग सता किमु न मङ्गलमातनोति। १२ चन्द्रातप व्यतानिषु। (ग) २ तुभ्यमेव समर्पये। ४ पाक्षिक्य, वार्षिक्य। ५ अर्थो हि कन्या परकीय एव। (घ) पक्वेष्टकानिर्मितानि, अवस्कद्वेष्वपि।

शब्दकोष—१३७५ + २५ = १४००] अभ्यास ५६ (व्याकरण)

(ग) अङ्ग (१ संबोधन, २. आदरार्थमें), अथ (१. मंगलार्थक, २. प्रारम्भ में, ३ बाद में, ४ प्रश्नार्थक), अथ किम् (१ और क्या, २. हाँ), अधिकृत्य (बारे में), अपि (१. भी, २ प्रश्नार्थक, ३ संशय), आम (हाँ), इति (१. कथनोद्धरण में, २. अतएव), इव (१ सदृश, २ मानो), कच्चित् (आशा करता हूँ कि), क्व क्व (बहुत अन्तर-सूचक), कामम् (भले ही), किमुत (क्या भला), किल (१. वस्तुतः, २ ऐसा कहते हैं, ३ आशा अर्थ में), खलु (१ वस्तुतः, २ प्रार्थनासूचक, ३. निषेधार्थक, ४ क्योंकि), ततः (१. इसलिए, २ तो, ३ वहाँ से, ४ आगे), तथा (१ वैसा, २ और भी, ३. हाँ), तावत् (१. तो, २ तब तक, ३. अभी, ४ वस्तुतः), दिष्ट्या (१ भाग्य से, २. बधाई देना), न न (अवश्य), ननु (१ अवश्य, २ कृपया, ३ क्या, ४. चूँकि), बत (खेद, हर्ष), यथा ˙ तथा (१ जैसा-वैसा, २ इस प्रकार कि, ३. चूँकि ˙ इसलिए, ४. यदि ˙ ˙ तो, ५ जितना उतना), यावत् तावत् (१ उतना ही ˙ जितना, २. सब, ३. जबतक ˙ ˙ तबतक, ४ ज्योंही त्योंही), वरं न (अच्छा है न कि), स्थाने (उचित है)। (२५)

व्याकरण (पयस्, मनस्, ज्ञा धातु, मत्वर्थक प्रत्यय)

१ पयस् और मनस् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७५, ७६)

२ ज्ञा धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९६)

नियम २७५—(१) (तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्) इसके पास है या इसमें है, इन अर्थों में मतुप् प्रत्यय होता है। इसका मत् शेष रहता है। पु० में भगवत् के तुल्य रूप चलेंगे, स्त्री० ई लगाकर नदीवत्, नपु० में जगत् के तुल्य। (२) (मादुपधायाश्च०) शब्द के अन्त में या उपधा में अ, आ या म् हो तो मत् के म को व होता है, अर्थात् मत् > वत्। धन > धनवान् (धनयुक्त)। गुणवान्, विद्यावान्, धीमान्, श्रीमान्, बुद्धिमान्। यव आदि के बाद म को व नहीं होगा। यवमान्, भूमिमान्। (३) (झयः) वर्ग के १ से ४ के बाद मत् को वत् होगा। विद्युत > विद्युत्वान्। (४) (रसादिभ्यश्च) रस आदि से मतुप प्रत्यय होता है। रसवान्, रूपवान्।

नियम २७६—(अत इनिठनौ) अकारान्त शब्दों से युक्त या वाला अर्थ में इनि (इन्) और ठन् (इक) प्रत्यय होते हैं। दण्ड > दण्डी, दण्डिक (दण्डवाला)। धन > धनी, धनिक। इन-प्रत्ययान्त के रूप पु० में करिन् के तुल्य, स्त्री में ई लगाकर नदीवत्, नपु० में मनोहारिन् के तुल्य।

नियम २७७—(लोमादिपामादि०) (१) लोमन् आदि से श प्रत्यय। लोमन् > लोमशः (लोमयुक्त)। रोमन् > रोमश। (२) पामन् आदि से न प्रत्यय। पामन् > पामनः (खाजवाला), अङ्ग > अङ्गना (स्त्री), लक्ष्मी > लक्ष्मण (लक्ष्मीयुक्त)। (३) पिच्छ आदि से इलच् (इल)। पिच्छ > पिच्छिलः। उरस् > उरसिलः।

नियम २७८—(तदस्य सजात०) युक्त अर्थ में तारका आदि शब्दों से इतच् (इत) प्रत्यय होगा। तारका > तारकित नभ। पुष्पित, कुसुमितः, दुःखितः, अङ्कुरितः, क्षुधितः।

नियम २७९—कुछ मत्वर्थक प्रत्यय ये हैं (१) (अस्मायामेधा०) अस् अन्तवाले शब्दों, माया, मेधा, स्रज् से विनि (विन्) प्रत्यय। यशस्वी, मायावी, मेधावी, स्रग्वी। (२) (वाचो ग्मिनिः) वाच् से ग्मिन् प्रत्यय। वाग्मी (सुन्दर वक्ता)। (३) (अर्श आदिभ्योऽच्) अर्शस् आदि से अच् (अ)। अर्शस (बवासीर-युक्त)। (४) (दन्त उन्नत०) दन्त से उरच् (उर)। दन्तुरः। (५) (केशाद् वो०) केश से व प्रत्यय। केश > केशव।

अभ्यास ५६

संस्कृत बनाओ—(क) (पयस्, मनस् शब्द) १ माता शिशु को दूध पिला रही है। २ सॉप को दूध पिलाना केवल उसका विष बढाना है। ३. महात्माओं के मन वचन (वचस्) और कर्म में एकरूपता होती है, पर दुरात्माओं के मन वचन और कर्म में अन्तर होता है। ४ मैंने मन से भी कभी आज तक तुम्हारा बुरा नहीं किया है। ५. मेरा मन सन्देह में ही पडा है। ६ दृढ निश्चयवाले मन को और नीचे की ओर बहते हुए पानी को कौन रोक सकता है? ७. हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ है। ८. यशस्वी को शत्रुओं से अपने यश की रक्षा करनी चाहिए। ९ विमल और कलुषित होता हुआ चित्त बता देता है कि कौन उसका हितैषी है और कौन शत्रु है (चेतस्)। १० उसकी बात पर दुर्भाव का आरोप न लगाओ। (ख) (ज्ञा धातु) १. मैं तपस्या के बल को जानता हूँ। २. जानता हुआ भी मेधावी ससार में जड के तुल्य आचरण करे। ३ हमें घर जाने के लिए आज्ञा दीजिए (अनुज्ञा)। ४. मैं करूँगा, यह प्रतिज्ञा करता हूँ, राम दुबारा नहीं कहता (प्रतिज्ञा)। ५. निर्धनों का अपमान न करो (अवज्ञा)। ६. सौ रुपया लिया है, इस बात से मुकरता है (अपज्ञा)। ७. बहू की सास से पटती है (सज्ञा)। (ग) (मत्वर्थक प्रत्यय) १. बलवान्, धनवान्, गुणवान्, बुद्धिमान्, रूपवान् और श्रीमान् सभी को अपनी विशेषता का अभिमान होता है। २. दण्डी, धनी, दानी, मानी, ज्ञानी और गुणी, ये अपने गुणों से दूसरों को उपकृत करते हैं। ३. यशस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, मेधावी और वाग्मी अपने ज्ञान और तेज से दूसरों का पथप्रदर्शन करते हैं। (घ) (अव्ययवर्ग) १. श्रीमन् (अङ्ग), बच्चे को पढा दीजिए। २ अब (अथ) शब्दानुशासन प्रारम्भ होता है। ३. क्या यह काम कर सकते हैं? ४ अब मैं ग्रीष्म ऋतु के बारे में गाऊँगा। ५. क्या यह चोर तो नहीं है? ६. मैं विदेशी हूँ, अत पूछता हूँ। ७. वह कृष्ण की हँसी-सा कर रहा था। ८. आशा करता हूँ कि आप सकुशल हैं। ९. कहाँ तपस्या और कहाँ तुम्हारा कोमल शरीर। १०. भले ही वह मेरे सामने न बैठे। ११. मुझ पर यम भी प्रहार नहीं कर सकता है, अन्य हिंसकों का तो कहना ही क्या? १२. भाग्य से विपत्ति टल गई। १३. महाराज आपको विजय के लिए बधाई है। १४ वैसा करना, जिससे राजा की कृपा का पात्र हो जाऊँ। १५. मुझे भार उतना दु ख नहीं दे रहा है, जितना बाधति-प्रयोग। १६. जितना पाया, उतना खा लिया। १७ जबतक एक दु.ख समाप्त नहीं होता, तबतक दूसरा उपस्थित हो जाता है। १८ प्राणत्याग अच्छा है, पर मूर्खों का साथ नहीं।

सकेत —(क) १ पाययति। २. पय पानम्। ३ महात्मनाम्, मनस्येक, मनस्यन्यद्। ४ न ते विप्रियं कृतपूर्वम्। ५ सशयमेव गाहते। ६ क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चय मन पयश्च निम्नाभिमुख प्रतापयेत्। ८ यशस्तु रक्ष्य परतो यशोधनै। ९ विमल कलुषीभवच्च चेत कथयत्येव हितैषिण रिपु वा। १० तस्य वचसि दुराशय मा आरोपय। (ख) ३ अनुजानीहि। ४ प्रतिजाने, रामो द्विर्नाभिभाषते। ५ नावजानीत। ६ शतमपजानीते। ७ श्वश्वा सजानीते। (घ) २. अथ। ४. ऋतुमधिकृत्य। ५ अपि चौरो भवेत्। ६ इति। ७ जहासेव। ८ कच्चित् कुशली। ९ क्व क्व। १० कामम्। ११ किमुतान्यहिंस्रा। १२ दिष्ट्या प्रतिहत दुर्जातम्। १३ दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते। १४ तथा यथा। १५ तथा यथा बाधति बाधते। १६ यावत् तावत्। १७. यावत् तावत्। १८ वर न।

शब्दकोष—१४०० + २५ = १४२५] अभ्यास ५७ (व्याकरण)

(ख) पीड् (उ०, दुःख देना), पॄ (उ०, पूरा करना), तड् (उ०, चोट मारना), खण्ड् (उ०, तोड़ना), क्षल् (उ०, धोना), तुल् (उ०, तोलना), पाल् (उ०, रक्षा करना), तिज् (उ०, तेज करना), कृत् (उ०, गुणगान करना), तन्त्र् (आ०, शासन करना, पालन करना), मन्त्र् (आ०, मन्त्रणा करना), त्रुट् (आ०, तोड़ना), तर्ज् (आ० धमकाना), अर्थ् (आ०, प्रार्थना करना), कुत्स् (आ०, दोष लगाना), भर्त्स् (आ०, डाँटना), टङ्क् (उ०, खोदना, लगाना), पश् (उ०, बाँधना), धृ (उ०, धारण करना), मृष् (उ०, क्षमा करना), लङ्घ् (उ०, उल्लघन करना), घुष् (उ०, घोषणा करना), ईर् (उ०, प्रेरणा देना), प्री (उ०, प्रसन्न करना), गवेष् (उ०, गवेषणा करना)। (२५)। सूचना—इन सबके रूप चुर् के तुल्य चलेंगे।

व्याकरण—(पाद, दन्त, बन्ध्, मन्थ्, विभक्त्यर्थ प्रत्यय)

१ पाद और दन्त के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २)।

२. बन्ध् और मन्थ् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९२, ९३)

नियम २८०—(तः प्रत्यय) (१) (पञ्चम्यास्तसिल्) पञ्चमी विभक्ति के स्थान पर तसिल् (तः) प्रत्यय होता है। यस्मात् > यतः। ततः, इतः, अतः, अग्रतः, सर्वतः, उभयतः। त्वत्तः, मत्तः, अस्मत्तः, युष्मत्तः। (२) (कु तिहोः) किम् को कु हो जाएगा। कस्मात् > कुतः। (३) (पर्यभिभ्यां च) परि और अभि से तः प्रत्यय। परितः, अभितः।

नियम २८१—(त्र प्रत्यय) (१) (सप्तम्यास्त्रल्) सप्तमी के स्थान पर त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है। कुत्र, यत्र, तत्र, सर्वत्र, उभयत्र, अत्र, अन्यत्र, बहुत्र। (२) (किमोऽत्, क्वाति) किम् के क्व और कुत्र दोनों रूप होते हैं। (३) (इदमो हः) इदम् का इह (यहाँ) भी रूप बनता है। (४) (इतराभ्योऽपि०) पञ्चमी और सप्तमी के अतिरिक्त भी तः और त्र होते हैं। स भवान् > तत्रभवान्, ततोभवान् (पूज्य आप)। अयं भवान् > अत्रभवान् (पूज्य आप)। अत्रभवती (पूज्य स्त्री)।

नियम २८२—(१) (सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा) सर्व आदि से समय अर्थ में 'दा' प्रत्यय होता है। सर्वदा, एकदा, अन्यदा, किम् > कदा, यदा, तदा। (२) (सर्वस्य सो०) सर्व को स भी हो जाता है। सदा। (३) (अधुना) इदम् को अधुना हो जाता है। अधुना (अब)। (४) (दानीं च) इदम् से दानीम् प्रत्यय भी होता है। इदानीम् (अब)। (५) (तदो दा च) तद् से दानीम् भी होता है। तदानीम् (तब)।

नियम २८३—(१) (प्रकारवचने थाल्) 'प्रकार' अर्थ में किम् आदि से थाल् (था) प्रत्यय होगा। तेन प्रकारेण > तथा। इसी प्रकार—यथा, सर्वथा, उभयथा (दोनो प्रकारसे), अन्यथा। (२) (इदमस्थमुः) इदम् से था की जगह थम् होगा। इदम् > इत्थम्। (३) (किमश्च) किम् से भी था को थम्। किम् > कथम् (कैसे)।

नियम २८४—(सङ्ख्याया विधार्थे धा) सङ्ख्यावाची शब्दों से प्रकार अर्थ में 'धा' प्रत्यय होता है। एकधा, द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा। बहुधा, शतधा, सहस्रधा।

नियम २८५—(प्रमाण आदि अर्थ मे) (१) (प्रमाणे द्वयसच्०) प्रमाण अर्थात् नाप-तोल आदि अर्थ में द्वयस, दघ्न और मात्र प्रत्यय होते हैं। जाँघ तक—ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्। हस्तमात्रम्, मुष्टिमात्रम्, कटिमात्रम्। (२) (यत्तदेतेभ्यः०) यत् आदि से परिमाण अर्थ में वत् प्रत्यय। यावान्, तावान्, एतावान्। किम् का कियान्, इदम् का इयान् होता है।

अभ्यास ५७

संस्कृत बनाओ—(क) (पाद, दन्त, मनस् शब्द) १ उसने गुरु के पैर छुए। २. अपराधी ने राजा के पैर छूकर क्षमा माँगी। ३. मनुष्य द्विपाद् और पशु चतुष्पाद् होते हैं। ४. इस पुस्तक का मूल्य सवा रुपया है। ५ दाँतों को ब्रुश से साफ करो और दाँतों में कोई तिनका फँसा हो तो दाँत सफा करने की सींक से उसे निकाल दो। ६. उसके वचन (वचस्) से मेरा हृदय द्रवित हो गया। ७ उसकी बात (वचस्) मेरे हृदय पर असर कर गई। ८. उसके हृदय (चेतस्) पर उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ा। ९. मेरा मन सन्देह में पड़ा है। १०. ये विचार मेरे मन में उत्पन्न हुए (प्रादुर्भू)। ११ आज हवा बन्द है। १२. यहाँ घोर अँधेरा है। १३ वृद्धावस्था में इसे तृष्णा लगी हुई है। १४. यह उसकी बात (वचस्) का निष्कर्ष है। १५ मैं तुम्हारी बात का समर्थन नहीं करता। १६. मेरी पूरी बात सुनो। १७ उसके हृदय (चेतस्) में कुतूहलता उत्पन्न हुई। १८. उसका मन नरम हो गया। १९. तेज तेज में (तेजस्) शान्त होता है। (ख) (बन्ध्, मन्थ् धातु) १ उसने उससे प्रीति लगाई (बन्ध्)। २ अपने बालों को ठीक बाँधो (बन्ध्)। ३. पुण्यात्मा कर्मों से बद्ध नहीं होता। ४ चूड़ामणि पैर में नहीं पहना जाता। ५. चित्रकूट मेरी दृष्टि को आकृष्ट कर रहा है। ६. क्या यह श्लोक तुमने बनाया है (बन्ध्)? ७ उसने बाहुयुद्ध के लिए कमर कस ली। ८. मैं हाथ जोड़कर तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ (प्रार्थ्)। ९. इसको बीच में मत टोको। १० उसने फिर अपने काम में मन लगाया। ११ देवों ने समुद्र से अमृत को मथकर निकाला (मन्थ्)। १२. मैं युद्ध में सौ कौरवों को नष्ट करूँगा (मन्थ्)। (ग) (विभक्त्यर्थ प्रत्यय) १. कण्व को आश्रम के वृक्ष तुमसे भी अधिक प्रिय हैं, ऐसा मैं सोचता हूँ। २ तीर्थ का जल और अग्नि ये अन्य वस्तु से शुद्धि के योग्य नहीं हैं। ३. इस विषय में मैं पूज्य आपको प्रमाण मानता हूँ। ४. वह वश आठ भागों में विभक्त होकर फैला (प्रसृ)। ५. यहाँ वहाँ जहाँ कहीं से भी छात्र आवें, उन्हें विद्यादान दो। ६. जब-तब मुझे पत्र लिखते रहना। ७. कहाँ कैसे व्यवहार करें? यहाँ इस प्रकार से और वहाँ उस प्रकार से बरतें। ८ वहाँ कितना जल है? कहीं कमर भर, कहीं घुटने भर, कहीं जाँघ भर। (घ) (क्रियावर्ग) १. जो दुःख दे, चोट मारे, डराये, धमकावे, डाँटे, व्रत को तोड़े, मर्यादा का उल्लघन करे और दोष लगावे, उसके साथ न रहे और न उससे मित्रता करे। २ छात्र अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है, नौकर बर्तन धोता है, बनिया चीनी तोलता है, राजा प्रजा की रक्षा करता है (पाल्), धार धरने वाला शस्त्रों और अस्त्रों को तेज करता है, कवि राजा का गुणगान करता है, राजा प्रजा पर शासन करता है, राजा मन्त्रियों से मन्त्रणा करता है और सज्जनों को प्रेरित करता है।

सकेत—(क) १ पस्पर्श। २ पादयोर्निपत्य क्षमा ययाचे। ४ सपादरूप्यकम्। ५. निविष्ट चेत्, दन्तशोधन्या। ६. द्रवीभूतम्। ७ हृदयमर्मास्पृशत्। ८ लेभेऽन्तर चेतसि नोपदेश। ९ सशयमेव गाहते। ११ निर्वात नभ। १२ सूचीभेद्य तम। १३ परिणतवयसि, पीडयति। १५ वचो नाभिनन्दामि। १६ सावशेषम्। १७ कुतूहलेन कृतं पदम्। १८ मार्दवमभजन। १९ शाम्यति। (ख) १ तस्या, बबन्ध। ३ न बध्यते। ४ बध्यते। ५ बध्नाति। ६ बद्ध। ७ परिकर बबन्ध। ८ अञ्जलिं बद्ध्वा, प्रार्थये। ९ मैनमन्तरा प्रतिबधान। १० बबन्ध। (ग) १ त्वत्त, तर्कयामि। २ नान्यत शुद्धिमर्हत। ३ अत्रभवन्त प्रमाणीकरोमि। ४ भिन्नोऽष्टधा विससार। ६ यदा कदा। ८ कटिदघ्नम्, जानुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्। (घ) १ पीडयेत्, भाययेत्। २ पारयति, प्रक्षालयति, तोलयति, तेजयति, कीर्तयति, तन्त्रयते, मन्त्रयते, प्रेरयति।

शब्दकोष १४२५ + २५ = १४५०] **अभ्यास ५८** (व्याकरण)

(क) कार्तस्वरम् (सुवर्ण, सोना), रजतम् (चाँदी), चन्द्रलोहम् (जर्मन सिलवर), आयसम् (लोहा), निष्कलङ्कायसम् (स्टेनलेस स्टील), ताम्रकम् (ताँबा), पीतलम् (पीतल), कांस्यम् (कांसा, फूल), कांस्यकूटः (कसकुट), मौक्तिकम् (मोती), इन्द्रनीलः (नीलम), वैदूर्यम् (लहसुनिया), हीरकः (हीरा), प्रवालम् (मूँगा), पुष्पराग: (पुखराग), मरकतम् (पन्ना), माणिक्यम् (चुन्नी), अभ्रकम् (अभ्रक), पीतकम् (हरताल), गन्धकः (गन्धक), तुत्थाञ्जनम् (तूतिया), पारदः (पारा), यशदम् (जस्त), सीसम् (सीसा), स्फटिका (फिटकिरी) (२५)

व्याकरण (गोपा, विश्वपा, क्री, ग्रह्, भावार्थक प्रत्यय)

१. गोपा शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३)। विश्वपा गोपा के तुल्य।

२. क्री और ग्रह् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९४, ९५)

नियम २८६—(तस्य भावस्त्वतलौ) भाव (हिन्दी 'पन') अर्थ मे शब्द के अन्त मे त्व और ता लगते है। त्व-प्रत्ययान्त के रूप नपु० मे ही चलेंगे, गृहवत्। ता-प्रत्ययान्त के रूप रमावत्। लघु > लघुत्वम्, लघुता (हल्कापन)। गुरु > गुरुत्वम्, गुरुता। ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, विद्वस् > विद्वत्त्वम्, विद्वत्ता। महत् > महत्त्वम्, महत्ता।

नियम २८७— (ष्यञ् प्रत्यय) (१) (वर्णदृढादिभ्य. ष्यञ् च) वर्णवाचको और दृढ आदि शब्दो से ष्यञ् (य) प्रत्यय होगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। शुक्ल > शौक्ल्यम् (सफेदी)। कृष्ण > कार्ष्ण्यम् (कालापन)। दृढ > दार्ढ्यम् (दृढता)। (२) (गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः०) गुणवाचक और ब्राह्मण आदि शब्दो से ष्यञ् (य)। शूर > शौर्यम्। सुन्दर > सौन्दर्यम्। धीर > धैर्यम्। सुख > सौख्यम्। कवि > काव्यम्। (३) (चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे०) चतुर्वर्ण आदि से स्वार्थ मे ष्यञ् (य)। चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। षड्गुण > षाड्गुण्यम्। सेना > सैन्यम्। समीप > सामीप्यम्। त्रिलोक > त्रैलोक्यम्।

नियम २८८—(इमनिच् प्रत्यय) (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा) पृथु आदि से भाव अर्थ मे इमनिच् (इमन्) प्रत्यय होता है। टि (अन्तिम स्वर-सहित अंश) का लोप होगा। (र ऋतो०) शब्द के ऋ को र होगा। पृथु > प्रथिमा। लघु > लघिमा, गुरु > गरिमा, अणु > अणिमा, महत् > महिमा, मृदु > म्रदिमा।

नियम २८९—भावार्थक कुछ अन्य प्रत्यय ये हैं—(१) (इगन्ताच्च लघुपूर्वात्) शब्द के अन्त में इ, उ या ऋ हो और उससे पहले ह्रस्व स्वर हो तो शब्द से अण् (अ) होगा। शुचि > शौचम् (स्वच्छता), मुनि > मौनम् (मौन), पृथु > पार्थवम् (मोटापा)। (२) (सख्युर्य.) सखि से य प्रत्यय होगा। सखि > सख्यम् (मित्रता)। (३) (पत्यन्त०) पति अन्तवाले शब्दों, पुरोहित आदि और राजन् से यक् (य) होगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। सेनापति > सैनापत्यम्। पौरोहित्यम्। राजन् > राज्यम्। (४) (प्राणभृज्जाति०) प्राणी, जातिवाचक और आयु-वाचक से अञ् (अ)। अश्व > आश्वम्। कुमार > कौमारम्। कैशोरम्। (५) (हायनान्त०) हायन अन्तवाले और युवन् आदि से अण् (अ)। द्वैहायनम् (२ वर्ष का)। युवन् > यौवनम्।

नियम २९०—(वत्, क) (१) (तेन तुल्य क्रिया चेद् वतिः) तृतीयान्त से तुल्य अर्थ मे वति (वत्), क्रियासाम्य मे। ब्राह्मणेन तुल्य > ब्राह्मणवत् अधीते। (२) (तत्र तस्येव) सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त से तुल्य अर्थ में वत्। मथुरायामिव > मथुरावत्। चैत्रवत्। (३) (इवे प्रतिकृतौ) तत्सदृश मूर्ति या चित्र अर्थ में कन् (क)। अश्व इव > अश्वकः।

अभ्यास ५८

संस्कृत बनाओ—(क) (गोपा, विश्वपा शब्द) १ ग्वाला गायों को चराता है, उनकी सेवा करता है और उनकी रक्षा करता है। २ ईश्वर विश्वपा है, वह विश्व का पालन करता है। ३ शख बजानेवाला (शखध्मा) शख बजाता है। ४. धूम्रपान करनेवाले (धूम्रपा) बीडी, सिगरेट और हुक्का पीते हैं। ५. सोमपान करनेवाला (सोमपा) सोम पीता है। (ख) (क्री, ग्रह् धातु) १ प्राणों के मूल्य से यश खरीदो। २ बनिया सामान खरीदता है और ग्रहकों को बेचता है (विक्री)। ३. वर वधू का हाथ पकडता है (ग्रह्)। ४ प्रजा के कल्याण के लिए ही उसने प्रजा से कर लिया (ग्रह्)। ५. राजा चोरों को पकडे (ग्रह्) और उन्हे जेल में डाल दे। ६ लोभी को धन से जीतो (ग्रह्)। ७. मुझ मूर्खबुद्धि ने भी वैसा ही समझ लिया (ग्रह्)। ८ लोग ऐसा समझते हैं (ग्रह्)। ९. पापी का नाम भी न ले (ग्रह्)। १०. तुमने यह पुस्तक कितने मूल्य में खरीदी (ग्रह्)। ११. मनुष्य पुराने कपडो को उतारकर नवीन वस्त्रों को पहनता है (ग्रह्)। १२ बलवान् के साथ लडाई न करे (विग्रह्)। १३. आप मुझे विद्यादान से अनुगृहीत करें (अनुग्रह्)। १४ राजा पापियों और चोरों को दण्ड दे (निग्रह्)। १५ इस आतिथ्य-सत्कार को स्वीकार कीजिए (प्रतिग्रह्)। १६. इन्द्रियों को सयम में रखो (निग्रह्)। १७. माली फूलों को इकट्ठा करके (सग्रह्) लाया और उनसे उसने मालाएँ बनाईं। १८. इस विषय में मुनि बुरा नहीं मानेगे। १९. क्या कारण है कि गुरुजी अभी तक खुश नहीं हुए? (ग) (भावार्थक) १ प्रतिष्ठा उत्सुकतामात्र को नष्ट करती है। २ ढीठ, क्यों स्वच्छन्द हो रही है। ३ इस विषय में उन सबकी एक राय है। ४ नम्बर से लडकों को मिठाई बॉटो (वितृ)। ५. महान् राज्य भी मुझे सुख नहीं देता। ६ ससार में मनुष्य के अपने कर्म ही उसे गौरव या हीनता देते हैं। ७ त्रुटि करना मानव-सुलभ है। ८. दुष्टों पर सिधाई दिखाना नीति नहीं है। ९. सन्तान-हीनता दु.खद है। १० क्षण-क्षण में जो नवीनता को प्राप्त हो, वही सौन्दर्य है। (घ) (धातुवर्ग) ससार में धातुओं का बहुत महत्त्व है। धातुओं से ही सभी उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। सोना, चॉदी, मोती, नीलम, लहसुनिया, हीरा, मूँगा, पुखराग, पन्ना और चुन्नी ये बहुमूल्य धातुएँ हैं और आभूषणो आदि मे इनका उपयोग होता है। जर्मन सिल्वर, लोहा, स्टेनलेस स्टील, तॉबा, पीतल, कॉसा, कसकुट, जस्ता और शीशे के विविध प्रकार के वर्तन आदि बनते हैं।

सकेत—(क) ३ धमति (ध्मा)। ४ तमाखुवीटिकाम्, तमाखुवर्तिकाम, धूम्रनलिकाम्। (ख) १ प्राणमूल्ये। २ पण्यान्, विक्रीणीते। ३ पाणि गृह्णाति। ५ गृह्णीयात्, कारायां निक्षिपेत्। ७ गृहीतम्। १० कियता मूल्येन गृहीतम्। ११ विहाय, गृह्णाति। १२ न विगृह्णीयात्। १३ अनुगृह्णातु। १५. प्रतिगृह्यतामातिथेय सत्कार। १७ सगृह्य। १८. न दोष ग्रहीष्यति। १९ नाद्यापि प्रसाद गृह्णाति। (ग) (भावार्थक) १ औत्सुक्यमात्रमवसाययति। २ पुरोभागे, किं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे। ३ ऐकमत्यम्। ४ आनुपूर्व्येण। ५ न सौख्यमावहति। ६ लोके गुरुत्व विपरीतता वा स्वचेष्टितान्येव नर नयन्ति। ७ लघिमा। ८ आर्जव हि कुटिलेषु। ९ अनपत्यता। १० नवतामुपैति, तदेव रूप रमणीयताया।

शब्दकोष-१४५० + २५ = १४७५] अभ्यास ५९ (व्याकरण)

(क) नव रसाः (नौ रस), सप्त स्वराः (सात स्वर), मन्द्र. (कोमल स्वर), मध्य. (मध्यम स्वर), तारः (तीव्र स्वर), आरोहः (चढाव), अवरोहः (उतार), वीणा (सितार), मुरली (स्त्री०, बाँसुरी), मनोहारिवाद्यम् (हारमोनियम), सारङ्गी (स्त्री०, १. वायोलिन, २. सारंगी), तन्त्रीकवाद्यम् (पियानो), तानपूरः (तानपूरा), जलतरङ्गः (जलतरंग), मुरजः (तबला), ढोलकः (ढोलक), मञ्जीरम् (मजीरा), दुन्दुभिः (पु०, स्त्री०, नगाड़ा), पटहः (ढोल), तूर्यम् (तुरही, सहनाई), डिण्डिमः (ढिंढोरा), वादित्रगण. (बैण्ड), वीणावाद्यम् (बीनबाजा, नफीरी), सज्ञाशङ्ख. (बिगुल), कोणः (मिजराब) । (२५) ।

व्याकरण (कति, चुर्, चिन्त्, तर, तम, ईयस्, इष्ठ)

१ कति शब्द के रूप स्मरण करो । (दे० शब्द० ९९) ।

२. चुर् और चिन्त् धातुओ के रूप स्मरण करो । (देखो धातु० ९७, ९८)

नियम २९१—(द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ) दो की तुलना में विशेषण शब्द से तरप् (तर) और ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय होते हैं । तर प्रत्यय लगाने पर पु० में रामवत्, स्त्री० मे रमावत् और नपु० में गृहवत् रूप चलेंगे । ईयस् लगाने पर पु० में श्रेयस् (शब्द० ३९) के तुल्य, स्त्री० मे अन्त में ई लगाकर नदीवत् और नपु० में मनस् के तुल्य रूप चलेगे । जिससे विशेषता दिखाई जाती है, उसमें पचमी होगी । रामः श्यामात् पटुतर., पटीयान् वा ।

नियम २९२—(अतिशायने तमबिष्ठनौ) बहुतों में से एक की विशेषता बताने अर्थ में तमप् (तम) और इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय होते हैं । दोनों के रूप पु० में रामवत्, स्त्री० मे रमावत्, नपु० मे गृहवत् चलेंगे । जिससे विशेषता बताई जाती है, उसमे षष्ठी या सप्तमी होगी । छात्राणा छात्रेषु वा राम. पटुतमः पटिष्ठ. वा ।

नियम २९३—ईयस् और इष्ठ के बारे मे ये बाते स्मरण रखें—(१) (अजादी गुणवचनादेव) ईयस् और इष्ठ गुणवाचको से ही लगेंगे, अन्य से नही । तर, तम सर्वत्र लगते है । (२) (टेः) ईयस् या इष्ठ बाद में होगा तो टि (अन्तिम स्वर-सहित अश) का लोप होगा । (३) (र ऋतो०) शब्द के ऋ को र् होगा । (४) (स्थूल-दूर०) स्थूल दूर आदि के अन्तिम र, ल या व का लोप होगा, ईयस् या इष्ठ बाद में होगा तो । (५) (प्रियस्थिर०) प्रिय, स्थिर आदि को प्र, स्थ आदि होते हैं । विशेष प्रसिद्ध रूप ये है । कोष्ठगत शब्द शेष रहता है । इन शब्दों मे तर तम भी लगते हैं ।

प्रशस्य (श्र)	श्रेयान्	श्रेष्ठः	गुरु (गर्)	गरीयान्	गरिष्ठः
वृद्ध, प्रशस्य (ज्य)	ज्यायान्	ज्येष्ठः	दीर्घ (द्राघ्)	द्राघीयान्	द्राघिष्ठ.
अन्तिक (नेद्)	नेदीयान्	नेदिष्ठः	बहु (भू)	भूयान्	भूयिष्ठ.
बाढ (साध्)	साधीयान्	साधिष्ठः	युवन् (कन्)	कनीयान्	कनिष्ठ
स्थूल (स्थू)	स्थवीयान्	स्थविष्ठ.	पटु (पट्)	पटीयान्	पटिष्ठः
दूर (दू)	दवीयान्	दविष्ठ.	लघु (लघ्)	लघीयान्	लघिष्ठ.
प्रिय (प्र)	प्रेयान्	प्रेष्ठः	महत् (मह्)	महीयान्	महिष्ठः
स्थिर (स्थ)	स्थेयान्	स्थेष्ठः	मृदु (म्रद्)	म्रदीयान्	म्रदिष्ठ.
उरु (वर्)	वरीयान्	वरिष्ठः	बलिन् (बल्)	बलीयान्	बलिष्ठः

अभ्यास ५९

संस्कृत बनाओ—(क) (कति शब्द) १. कितनी अग्नियाँ हैं और कितने सूर्य हैं ? २. मन, तू स्मरण कर कि तूने कितने पाप किए हैं और कितने पुण्य । ३. कुछ ही पैर चलकर वह तन्वी रुक गई । ४ उस पर्वत पर उसने कुछ महीने बिताए (नी) । ५. कदम्ब पर कुछ फूल खिले हैं । ६ कुछ दिन बीतने पर वह घर लौटा । (ख) (चुर्, चिन्त्) १. चोर ने तिजोरी तोड़कर तीन एक हजार रुपये के, दस एक सौ के, पचास दस रुपए के और अस्सी पाँच रुपए के नोट चुराए । २. नारद ने चन्द्रमा की शोभा को चुराया । ३. सोचो, किस बहाने से हम आश्रम में जावें । ४. सज्जन की हानि को मन से भी न सोचे (चिन्त्) । ५. पिता तुम्हारी देख-भाल करेंगे (चिन्त्) । ६. पाखण्डियों और कुकर्मियों की वाणी से भी पूजा न करे (अर्च्) । ७. ऐसी वाणी न कहे (उदीर्), जिससे दूसरे के हृदय को दुःख पहुँचे । ८. कार्य पूरा करने का इच्छुक मनस्वी न दु.ख की परवाह करता है और न सुख की । ९. धर्म की प्राचीन मान्यताओं का पता चलाओ (गवेष्) । १०. वह मुँह पर घूँघट काढ़ती है । ११ भारतीय सरकार ने गोहत्या-निरोध की घोषणा की (घुष्) । १२. चित्रकार कपड़े पर नेहरूजी का चित्र बनाता है (चित्र्) । १३ मैं दुर्योधन की जघा को चूर-चूर कर दूँगा (चूर्ण्) । १४. वह आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत कर रही है (अवतंस्) । १५. विद्या और धन को बड़े परिश्रम से एकत्र करे (अर्ज्) । (ग) (तर, तम आदि) १. यशोधनों के लिए यश बड़ी चीज है (गुरु) । २ बड़े लोग स्वभाव से ही कम बोलते हैं । ३. बड़ों की सहायता से क्षुद्र भी सफल हो जाता है । ४ जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है (गुरु) । ५. स्वधर्म परधर्म से बढ़कर है । ६. राम श्याम से अधिक, बड़ा (प्रशस्य), अच्छा (बाढ), प्रिय, विशाल (उरु), भारी (गुरु), लम्बा (दीर्घ), चतुर (पटु), महान् और बलवान् (बलिन्) है और श्याम राम से हलका (लघु), छोटा (युवन्), कोमल (मृदु) और कृश है । ७. कृष्ण सबसे अधिक बड़ा, अच्छा, प्रिय, विशाल, भारी, लम्बा, चतुर, महान् और बलवान् है और यज्ञदत्त सबसे अधिक हलका, छोटा, कोमल और कृश है । (घ) (नाट्यवर्ग) विभाव, अनुभाव और सचारिभावों के सयोग से रस की निष्पत्ति होती है । शृगार, वीर आदि नौ रस हैं और उनके रति उत्साह आदि नौ स्थायिभाव हैं । निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पचम ये सात स्वर हैं । इनके प्रथम अक्षरों को लेकर स रे ग म आदि सरगम बना है । सगीत में कोमल, मध्यम और तीव्र स्वरों के तीन सप्तक होते हैं । स्वरों का आरोह और अवरोह होता है । प्राचीन वाद्यों में से सितार, बाँसुरी, सारगी, तानपूरा, तबला, ढोलक, मजीरा, नगाडा, ढोल, तुरही, ढिढोरा इनका प्रचलन अभी तक है । नवीन वाद्यों में हारमोनियम, वायोलिन, पियानो, जलतरग, बैंड, बीनबाजा और बिगुल का अधिक प्रचलन है । सगीत जीवन को सरस और मधुर बनाता है ।

सकेत —(क) ३ कतिचिदेव । ४ कतिचित् । ५ कतिपयकुसुमोद्गम कदम्ब । ६. कतिपयदिवसापगमे । (ख) १ लौहमञ्जूषा विदार्य, सहस्ररूप्यकनाणकानि, नाणकानि । २ अचूचुरत् । ३ अपदेशेन । ५ त्वा चिन्तयिष्यति । ६ पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वाड मात्रेणापि नार्चयेत् । ७ उदीरयेत् । ८ मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दु खं न च सुखम् । ९ गवेषय । १० मुखमवगुण्ठयति । ११ सर्वकार, अघोषयत् । १२ चित्रयति । १३ सचूर्णयिष्यामि । १४ अवतंसयति । १५ अर्जयेत् । (ग) १ यशोधनाना हि यशो गरीय । २ महीयास , मितभाषिण- । ३. महत्सहाय कार्यान्त क्षोदीयानपि गच्छति । ४ गरीयसी । ५ श्रेयान् । ६ ज्यायान्, साधीयान् ।

शब्दकोष -१४७५ + २५ = १५००] अभ्यास ६० (व्याकरण)

(क) कासः (खाँसी), प्रतिश्यायः (जुकाम), ज्वर. (बुखार), विषमज्वर. (मलेरिया), शीतज्वर. (इन्फ्लुएन्जा,'फ्लु), प्रलापकज्वर. (निमोनिया), सन्निपातज्वर. (टाइफाइड), राजयक्ष्मन् (पु०, तपेदिक, टी०बी०), शीतला (चेचक), मन्थरज्वर.(मोतीझरा), अतिसार. (दस्त), प्रवाहिका (पेचिश, संग्रहणी), वमथु. (पु०, कै), विषूचिका (हैजा), रक्तचापः (ब्लडप्रेसर), पिटकः (फोडा), पिटिका (फुंसी), अर्शस् (नपु०, बवासीर), प्रमेह. (प्रमेह), मधुमेह. (बहुमूत्र, डाएबिटीज़), पाण्डु (पु०, पीलिया), अजीर्णम् (कब्ज), उपदंश. (गरमी, सिफलिस), विद्रधि. (पु०, विषव्रणम्, केन्सर), पक्षाघात. (लकवा मारना)। (२५)

नियम २९४—(विकारार्थक) विकार अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं—(१) (तस्य विकार.) विकार अर्थ में अण् (अ)। भस्मन्> भास्मनः। (२) (मयड्वैतयो०) विकार और अवयव अर्थ में मय प्रत्यय। अश्मन्> अश्ममयम्। (३)(गोश्च पुरीषे) गोबर अर्थ में मय। गो> गोमय। (४)(गोपयसोर्यत्) गो और पयस् से यत्(य)। गव्यम्। पयस्यम्।

नियम २९५—(ठक्) इन अर्थों में ठक् (इक) होता है। प्रथम स्वर को वृद्धि। (१) (तेन दीव्यति०) जुआ खेलना आदि अर्थों में। अक्ष> आक्षिकः। (२) (संस्कृतम्) बनाने अर्थ में। दधि> दाधिकम्। (३) (तरति) तैरने अर्थ में। उडुप> औडुपिकः (नाव से पार करनेवाला)। (४) (चरति) सवारी करना अर्थ मे। हस्तिन्> हास्तिक.। (५) (रक्षति) रक्षा अर्थ मे। समाज> सामाजिक.।

नियम २९६—(यत्) इन स्थानों पर यत् (य) होता है.—(१) (तद्वहति०) ढोने अर्थ मे यत्। रथ>रथ्यः। (२) (धुरो यड्ढकौ) धुर् से य और ढक् (एय)। धुर्> धुर्य, धौरेय.। (३) (नौवयोधर्म०) नौ आदि से। नौ>नाव्यम्। (४)(तत्र साधुः) शिष्ट अर्थ में यत्। शरण> शरण्य.। (५) (सभाया य.) सभा से य प्रत्यय। सभ्यः। (६) (पथ्यतिथि०) पथिन् आदि से ढञ् (एय)। पथिन्>पाथेयम्। अतिथि>आतिथेयम्।

नियम २९७—(छ, यत्) छ का ईय, यत् का य रहता है। (१) (उगवादिभ्यो०) हित अर्थ में उकारान्त और गो आदि से यत्। शङ्कु> शङ्कव्यम्। गो> गव्यम्। (२) (तस्मै हितम्) हित अर्थ में छ (ईय)। वत्स> वत्सीयः। (३) (शरीरावयवाद्यत्) शरीरावयवों से यत् (य)। दन्त्यम्, कण्ठ्यम्। (४) (आत्मन्विश्वजन०) आत्मन् आदि से हित अर्थ मे ख(ईन)। आत्मन्> आत्मनीनम्। विश्वजन>विश्वजनीनम्।

नियम २९८—(ठञ्) ठ को इक। (१) (तेन क्रीतम्) खरीदने अर्थ मे ठञ् (इक)। सप्तति>साप्ततिकम्। (२) (तदर्हति) योग्य होने अर्थ मे ठञ् (इक)। श्वेतछत्र> श्वैतछत्रिकः। (३) (दण्डादिभ्यो यत्) दण्ड आदि से यत् (य)। दण्ड> दण्ड्य·।

नियम २९९—(स्वार्थिक) (१) (प्रज्ञादिभ्यश्च) प्रज्ञ आदि से स्वार्थ मे अण् (अ)। प्रज्ञ> प्राज्ञः, देवता>दैवतः, बन्धु>बान्धवः। (२) (अल्पे, ह्रस्वे) अल्प और छोटा अर्थ में कन् (क)। तैल> तैलकम्, वृक्ष>वृक्षक·।

नियम ३००—(१) (कृभ्वस्तियोगे०) वैसा हो जाना अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है। च्वि का कुछ नहीं शेष रहता है। बाद में कृ, भू, अस् का प्रयोग होता है। च्वि होने पर शब्द के अ को ई, इ और उ को दीर्घ होगा। शुक्ल> शुक्लीकरोति, कृष्णीकरोति। (२) (विभाषा साति०) सम्पूर्ण अर्थ में साति (सात्)। भस्मसात्, अग्निसात्। (३) (नित्यवीप्सयोः) बार-बार और द्विरुक्ति अर्थ में पद को द्वित्व होता है। भुक्त्वा भुक्त्वा। वृक्षं वृक्षं सिञ्चति। (४) (ईषदसमाप्तौ०) कुछ कम अर्थ में कल्प, देश्य, देशीय प्रत्यय होते हैं। लगभग ५ वर्षका—पञ्चवर्षदेशीय,—देश्यः। मध्याह्नकल्पः।

अभ्यास ६०

संस्कृत बनाओ—(क) (कथ्, भक्ष् धातु) १. उन दोनों की संपत्ति का क्या कहना ? २. उन्होंने जनक से कहा कि राम धनुष को देखना चाहते हैं। ३. कथा के बहाने से यहाँ नीति ही कही गई है। ४ दूसरे का उच्छिष्ट न खावे। ५ गुरु आज्ञा देते हैं (आज्ञापि) कि पापो को छोडो। ६. स्त्री अलंकारो से अपने शरीर को विभूषित करती है (भूष्)। ७. बालक मिठाई का स्वाद लेता है (आस्वद्)। ८ वह बर्तनो को माँजता है (मृज्), शत्रुओं को तपाता है (तप्), सज्जनो को तृप्त करता है (तृप्), मान्यो का मान करता है (मान्) और दुष्टों को दबाता है (धृष्)। (ख) (तद्धित प्रत्यय) १. शारीरिक पुष्टि के लिए पंचगव्य का सेवन करना चाहिए। २ जुआरी पासों से जुआ खेलता है (दिव्)। ३. सभ्य अपने-अपने स्थानो को लौट गए। ४. अहिंसा का सिद्धान्त अपनी भलाई और विश्व की भलाई दोनों के लिए है। ५ राम लगभग अठारह वर्ष का है। ६. अब लगभग दोपहर का समय है। ७. वह लगभग मरा हुआ है। ८. आग सब वस्तुओं को भस्मसात् कर देती है। ९ नेहरूजी का कथन था कि श्रमिको की गन्दी बस्तियों को जला दो और उनके लिए साफ मकान बनाओ। १०. एकचित्त होकर देशोद्धार मे लगो (प्रवृत्)। ११. कुल मिलाकर मुझे बीस रुपए दो। १२. यह बात मुझको ही संकेत करती है। १३. मकान जलकर राख हो गए। १४. यह बात सर्वत्र फैल गई है। (ग) (रोगवर्ग) १ मुझे बड़ा शिरदर्द है। २. यह फोड़े पर फोडा निकला है। ३ उसके रोग का शीघ्र इलाज करो। ४. आज मेरी तबीयत पहले से ठीक है। ५. रोग को ठीक जाने बिना उसका इलाज नहीं करना चाहिए। ६ इसका रोग बहुत बढ़ गया है। ७. रोगी की जान खतरे में है। ८. उसका रोग असाध्य है। (घ) (रोगवर्ग) शरीर व्याधियों का घर है। अत कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सर्वोत्तम मूल आरोग्य है। अत. सदा स्वस्थ रहने का प्रयत्न करना चाहिए। सात्त्विक भोजन, उचित आहार-विहार, दैनिक व्यायाम, भ्रमण, योगासन और प्राणायाम से शरीर नीरोग रहता है। इन नियमों पर ध्यान न देने से ही खाँसी, जुकाम, बुखार, मलेरिया, इन्फ्लुएन्जा, निमोनिया, टाइफाइड, तपेदिक, चेचक, मोतीझरा, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, हैजा, फोडा, फुंसी, बवासीर, प्रमेह, मधुमेह, कब्ज आदि रोग होते हैं। केन्सर, लकवा मारना, तपेदिक और दिल के रोग, ये घातक रोग हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि रोगों का कारण जीवन की अनियमितता है। जीवन को नियमित बनावें और वेद के शब्दों में नीरोग होकर सौ वर्ष जीवें। सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब सुख देखें और कोई दुःखी न हो।

संकेत—(क) १. किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य। २ मैथिलाय कथयाबभूव। ३ छलेन। ५ वर्जयं। ६ भूषयति। ७ आस्वादयति। ८ मार्जयति, तापयति, तर्पयति, मानयति, धर्षयति। (ख) २ आक्षिक, अक्षै। ३ प्रतिजग्मु। ४ आत्मलीनो विश्वजनीनश्च वर्तते। ५ अष्टादशवर्षदेशीय। ६ मध्याह्नकल्प। ७ मृतप्राय। ९. शीर्णान्यावासस्थानानि अग्निसात् कुरुत। १० एकचित्तीभूय। ११ पिण्डीकृत्य। १२ कथा, लक्ष्यीकरोति। १३ भस्मीभूतानि। १४ वृत्त बहुलीभूतम्। (ग) १ बलवती शिरोवेदना मा बाधते। २ गण्डस्योपरि पिटिका संवृत्ता। ३. विकारो विलम्बाक्षम। ४ अस्ति मे विशेषोऽद्य। ५ विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भ प्रतीकारस्य। ६ अतिभूमिं गत। ७ आतुरो जीवितसंशये वर्तते। (घ) हृद्रोगा। जीवेम शरद शतम्। सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

व्याकरण

आवश्यक-निर्देश

१. शब्दरूप-सग्रह मे उन सभी शब्दो (१०० शब्दों) का सग्रह किया गया है, जो अधिक प्रचलित है। जिन शब्दो का प्रयोग बहुत कम होता है या सर्वथा नही होता है, उनका समावेश इसमें नहीं किया गया है।

२. शब्दों और धातुओ के रूप के साथ अभ्यासो की सख्याएँ दी गई हैं। उसका भाव यह है कि उस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास मे हुआ है और उस प्रकार से चलनेवाले शब्द या धातु भी उस अभ्यास में दिए गए हैं। अनुवाद-वाले प्रकरण मे उस शब्द या धातु के अभ्यास मे उसी प्रकार चलनेवाले शब्द या धातु यथास्थान कोष्ठ मे दिए गए हैं, उनके रूप भी निर्दिष्ट शब्द या धातु के तुल्य चलावें।

३. सक्षेप के लिए निम्नलिखित सकेतो का उपयोग किया गया है :—

(क) शब्दरूपों मे प्रथमा आदि के लिए उनके प्रथम अक्षर रखे गए हैं। जैसे—प्र० = प्रथमा, द्वि० = द्वितीया, तृ० = तृतीया, च० = चतुर्थी, प० = पचमी, ष० = षष्ठी, स० = सप्तमी, स० = सबोधन।

(ख) पु० = पुलिंग, स्त्री० = स्त्रीलिंग, नपु० = नपुसक लिंग। एक० = एकवचन, द्वि० = द्विवचन, बहु० = बहुवचन। दे० अ० = देखो अभ्यास, अ० = अभ्यास। प्रत्येक शब्द या धातु के रूप मे ऊपर से नीचे की ओर प्रथम पक्ति एकवचन की है, दूसरी द्विवचन की और तीसरी बहुवचन की। जो शब्द किसी विशेष वचन में ही चलते हैं, उनमे उसी वचन के रूप हैं।

(ग) धातुरूपों में प्र० पु० या प्र० = प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष), म० पु० या म० = मध्यम पुरुष, उ० पु० या उ० = उत्तम पुरुष। पर० या प० = परस्मैपद, आत्मने० या आ० = [illegible] उभय० या उ० = उभयपद।

४ [illegible] नहीं होता, अत. उनके रूप सबोधन में नहीं

(१) शब्दरूप-संग्रह

(क) अजन्त पुंलिंग शब्द

(१) राम (राम) (देखो अभ्यास १)

रामः	रामौ	रामा.	प्र०
रामम्	,,	रामान्	द्वि०
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	तृ०
रामाय	,,	रामेभ्य.	च०
रामात्	,,	,,	प०
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्	ष०
रामे	,,	रामेषु	स०
हे राम	हे रामौ	हे रामा.	स०

(२) पाद (पैर) (देखो अभ्यास ५७)

प्र०	पादः	पादौ	पादा.
द्वि०	पादम्	,,	पद.
तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
च०	पदे	,,	पद्भ्यः
प०	पद·	,,	,,
ष०	पद.	पदो.	पदाम्
स०	पदि	,,	पत्सु
स०	हे पाद	हे पादौ	हे पादाः

सूचना—पाद के पूरे रूप राम के तुल्य भी चलेंगे। पाद के तुल्य ही दन्त (दत्) के द्वितीया बहु० आदि में दत., दता, दद्भ्याम् आदि रूप होंगे।

(३) गोपा (ग्वाला) (दे० अ० ५७)

गोपाः	गोपौ	गोपाः	प्र०
गोपाम्	,,	गोपः	द्वि०
गोपा	गोपाभ्याम्	गोपाभिः	तृ०
गोपे	,,	गोपाभ्यः	च०
गोप.	,,	,,	प०
,,	गोपोः	गोपाम्	ष०
गोपि	,,	गोपासु	स०
हे गोपा.	हे गोपौ	हे गोपाः	स०

(४) हरि (विष्णु) (देखो अ० ४)

प्र०	हरि.	हरी	हरय.
द्वि०	हरिम्	,,	हरीन्
तृ०	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभि.
च०	हरये	,,	हरिभ्य.
प०	हरेः	,,	,,
ष०	,,	हर्योः	हरीणाम्
स०	हरौ	,,	हरिषु
स०	हे हरे	हे हरी	हे हरय.

(५) सखि (मित्र) (दे० अ० १९)

सखा	सखायौ	सखायः	प्र०
सखायम्	,,	सखीन्	द्वि०
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभि.	तृ०
सख्ये	,,	सखिभ्यः	च०
सख्यु·	,,	,,	प०
,,	सख्यो.	सखीनाम्	ष०
सख्यौ	,,	सखिषु	स०
हे सखे	हे सखायौ	हे सखाय.	स०

(६) पति (पति) (दे० अ० २०)

प्र०	पतिः	पती	पतय.
द्वि०	पतिम्	,,	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	,,	पतिभ्यः
प०	पत्युः	,,	,,
ष०	,,	पत्यो.	पतीनाम्
स०	पत्यौ	,,	पतिषु
स०	हे पते	हे पती	हे पतयः

सूचना—स्त्रीलिंग में सखी के रूप नदीवत् चलेंगे।

व्याकरण

आवश्यक-निर्देश

१. शब्दरूप-संग्रह में उन सभी शब्दों (१०० शब्दों) का संग्रह किया गया है, जो अधिक प्रचलित हैं। जिन शब्दों का प्रयोग बहुत कम होता है या सर्वथा नहीं होता है, उनका समावेश इसमें नहीं किया गया है।

२. शब्दों और धातुओं के रूप के साथ अभ्यासों की संख्याएँ दी गई हैं। उसका भाव यह है कि उस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास में हुआ है और उस प्रकार से चलनेवाले शब्द या धातु भी उस अभ्यास में दिए गए हैं। अनुवाद-वाले प्रकरण में उस शब्द या धातु के अभ्यास में उसी प्रकार चलनेवाले शब्द या धातु यथास्थान कोष्ठ में दिए गए हैं, उनके रूप भी निर्दिष्ट शब्द या धातु के तुल्य चलावें।

३. संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है :—

(क) शब्दरूपों में प्रथमा आदि के लिए उनके प्रथम अक्षर रखे गए हैं। जैसे—प्र० = प्रथमा, द्वि० = द्वितीया, तृ० = तृतीया, च० = चतुर्थी, पं० = पंचमी, ष० = षष्ठी, स० = सप्तमी, सं० = संबोधन।

(ख) पुं० = पुंलिंग, स्त्री० = स्त्रीलिंग, नपुं० = नपुंसक लिंग। एक० = एकवचन, द्वि० = द्विवचन, बहु० = बहुवचन। दे० अ० = देखो अभ्यास, अ० = अभ्यास। प्रत्येक शब्द या धातु के रूप में ऊपर से नीचे की ओर प्रथम पंक्ति एकवचन की है, दूसरी द्विवचन की और तीसरी बहुवचन की। जो शब्द किसी विशेष वचन में ही चलते हैं, उनमें उसी वचन के रूप हैं।

(ग) धातुरूपों में प्र० पु० या प्र० = प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष), म० पु० या म० = मध्यम पुरुष, उ० पु० या उ० = उत्तम पुरुष। पर० या प० = परस्मैपद, आत्मने० या आ० = आत्मनेपद, उभय० या उ० = उभयपद।

४. सर्वनाम शब्दों का संबोधन नहीं होता, अतः उनके रूप संबोधन में नहीं दिए गए हैं।

५. शब्दरूपों के लिए ये नियम स्मरण कर लें—(१) (अट्कुप्वाङ्नुम्-व्यवायेऽपि) र् और ष् के बाद न को ण होता है, यदि अट् (स्वर, ह, य, व, र), कवर्ग, पवर्ग, आ, न् बीच में हो तो भी न् को ण् होगा। ऋ वाले शब्दों में भी यह नियम लगेगा। अतः र्, ऋ और ष् वाले शब्दों में इस नियम के अनुसार न् को ण् करें, अन्यत्र न् ही रहेगा। (२) (इण्कोः, आदेशप्रत्यययोः) अ को छोड़कर अन्य स्वरों के बाद तथा कवर्ग के बाद प्रत्यय के स् को ष् हो जाता है। धातुओं में भी यह नियम लगेगा। जैसे—रामेषु, हरिषु, कर्तृषु, वाक्षु।

(१) शब्दरूप-संग्रह

(क) अजन्त पुंलिंग शब्द

(१) राम (राम) (देखो अभ्यास १)

रामः	रामौ	रामाः	प्र०
रामम्	,,	रामान्	द्वि०
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	तृ०
रामाय	,,	रामेभ्यः	च०
रामात्	,,	,,	प०
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्	ष०
रामे	,,	रामेषु	स०
हे राम	हे रामौ	हे रामाः	सं०

(२) पाद (पैर) (देखो अभ्यास ५७)

प्र०	पादः	पादौ	पादाः
द्वि०	पादम्	,,	पदः
तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
च०	पदे	,,	पद्भ्यः
प०	पदः	,,	,,
ष०	पदः	पदोः	पदाम्
स०	पदि	,,	पत्सु
सं०	हे पाद	हे पादौ	हे पादाः

सूचना—पाद के पूरे रूप राम के तुल्य भी चलेंगे। पाद के तुल्य ही दन्त (दत्) के द्वितीया बहु० आदि में दतः, दता, दद्भ्याम् आदि रूप होंगे।

(३) गोपा (ग्वाला) (दे० अ० ५७)

गोपाः	गोपौ	गोपाः	प्र०
गोपाम्	,,	गोपः	द्वि०
गोपा	गोपाभ्याम्	गोपाभिः	तृ०
गोपे	,,	गोपाभ्यः	च०
गोपः	,,	,,	प०
,,	गोपोः	गोपाम्	ष०
गोपि	,,	गोपासु	स०
हे गोपा	हे गोपौ	हे गोपाः	सं०

(४) हरि (विष्णु) (देखो अ० ४)

प्र०	हरिः	हरी	हरयः
द्वि०	हरिम्	,,	हरीन्
तृ०	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
च०	हरये	,,	हरिभ्यः
प०	हरेः	,,	,,
ष०	,,	हर्योः	हरीणाम्
स०	हरौ	,,	हरिषु
सं०	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

(५) सखि (मित्र) (दे० अ० १९)

सखा	सखायौ	सखायः	प्र०
सखायम्	,,	सखीन्	द्वि०
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	तृ०
सख्ये	,,	सखिभ्यः	च०
सख्युः	,,	,,	प०
,,	सख्योः	सखीनाम्	ष०
सख्यौ	,,	सखिषु	स०
हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः	सं०

(६) पति (पति) (दे० अ० २०)

प्र०	पतिः	पती	पतयः
द्वि०	पतिम्	,,	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	,,	पतिभ्यः
प०	पत्युः	,,	,,
ष०	,,	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	,,	पतिषु
सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः

सूचना—स्त्रीलिंग में सखी के रूप नदीवत् चलेंगे।

(७) भूपति (राजा) (हरिवत्) (दे० अ० ४)

भूपति	भूपती	भूपतय:	प्र०
भूपतिम्	,,	भूपतीन्	द्वि०
भूपतिना	भूपतिभ्याम	भूपतिभिः	तृ०
भूपतये	,,	भूपतिभ्य	च०
भूपतेः	,,	,,	प०
,,	भूपत्यो	भूपतीनाम्	ष०
भूपतौ	,,	भूपतिषु	स०
हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतय.	स०

(८) सुधी (विद्वान्) (दे० अ० २१)

सुधी	सुधियो	सुधिय.
सुधियम्	,,	,,
सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभि
सुधिये	,,	सुधीभ्य.
सुधियः	,,	,,
,,	सुधियो	सुधियाम्
सुधियि	,	सुधीषु
हे सुधी:	हे सुधियौ	हे सुधियः

(९) गुरु (गुरु) (दे० अ० ५)

गुरु.	गुरू	गुरव:	प्र०
गुरुम्	,,	गुरून्	द्वि०
गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभि.	तृ०
गुरवे	,,	गुरुभ्यः	च०
गुरो	,,	,,	प०
,,	गुर्वोः	गुरूणाम्	ष०
गुरौ	,,	गुरुषु	स०
हे गुरो	हे गुरू	हे गुरवः	स०

(१०) स्वभू (ब्रह्मा) (दे० अ० २१)

स्वभू:	स्वभुवौ	स्वभुवः
स्वभुवम्	,,	,,
स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः
स्वभुवे	,,	स्वभूभ्यः
स्वभुव.	,,	,,
,,	स्वभुवो:	स्वभुवाम्
स्वभुवि	,,	स्वभूषु
हे स्वभू.	हे स्वभुवौ	हे स्वभुवः

(११) कर्तृ (करनेवाला) (दे० अ० २२)

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	प्र०
कर्तारम्	,,	कर्तॄन्	द्वि०
कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ०
कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः	च०
कर्तुः	,,	,,	प०
,,	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्	ष०
कर्तरि	,,	कर्तृषु	स०
हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तार	स०

(१२) पितृ (पिता) (दे० अ० २३)

पिता	पितरौ	पितरः
पितरम्	,,	पितॄन्
पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
पित्रे	,,	पितृभ्य.
पितुः	,,	,,
,,	पित्रोः	पितॄणाम्
पितरि	,,	पितृषु
हे पित.	हे पितरौ	हे पितरः

(१३) नृ (मनुष्य) (पितृवत्)
(दे० अ० २३)

ना	नरौ	नरः	प्र०
नरम्	,,	नॄन्	द्वि०
न्रा	नृभ्याम्	नृभिः	तृ०
न्रे	,,	नृभ्यः	च०
नुः	,,	,,	प०
,,	न्रोः	नृणाम्, नॄणाम्	ष०
नरि	,,	नृषु	स०
हे नः	हे नरौ	हे नरः	सं०

(१४) गो (बैल या गाय) पु०, स्त्री०,
(दे० अ० २८)

प्र०	गौः	गावौ	गावः
द्वि०	गाम्	,,	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	,,	गोभ्यः
प०	गोः	,,	,,
ष०	,,	गवोः	गवाम्
स०	गवि	,,	गोषु
सं०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

(ख) हलन्त पुंलिंग शब्द

(१५) पयोमुच् (बादल) (दे० अ० २६)

पयोमुक्	पयोमुचौ	पयोमुचः	प्र०
पयोमुचम्	,,	,,	द्वि०
पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः	तृ०
पयोमुचे	,,	पयोमुग्भ्यः	च०
पयोमुचः	,,	,,	प०
,,	पयोमुचोः	पयोमुचाम्	ष०
पयोमुचि	,,	पयोमुक्षु	स०
हे पयोमुक्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः	सं०

(१६) प्राञ्च् (पूर्वी) (दे० अ० २५)

प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
प्राञ्चम्	,,	प्राचः
प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
प्राचे	,,	प्राग्भ्यः
प्राचः	,,	,,
,,	प्राचोः	प्राचाम्
प्राचि	,,	प्राक्षु
हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

(१७) उदञ्च् (उत्तरी) (दे० अ० २५)

उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः	प्र०
उदञ्चम्	,,	उदीचः	द्वि०
उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः	तृ०
उदीचे	,,	उदग्भ्यः	च०
उदीचः	,,	,,	प०
,,	उदीचोः	उदीचाम्	ष०
उदीचि	,,	उदक्षु	स०
हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः	सं०

(१८) वणिज् (बनिया) (दे० अ० २६)

वणिक्	वणिजौ	वणिजः
वणिजम्	,,	,,
वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
वणिजे	,,	वणिग्भ्यः
वणिजः	,,	,,
,,	वणिजोः	वणिजाम्
वणिजि	,,	वणिक्षु
हे वणिक्	हे वणिजौ	हे वणिजः

(७) भूपति (राजा) (हरिवत्) (दे०अ० ४) (८) सुधी (विद्वान्) (दे० अ० २१)

भूपतिः	भूपती	भूपतय	प्र०	सुधी.	सुधियौ	सुधिय
भूपतिम्	,,	भूपतीन्	द्वि०	सुधियम्	,,	,,
भूपतिना	भूपतिभ्याम	भूपतिभि.	तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभि.
भूपतये	,,	भूपनिभ्य·	च०	सुधिये	,	सुधीभ्य
भूपतेः	,,	,,	प०	सुधियः	,,	,,
,,	भूपत्यो	भूपतीनाम्	ष०	,,	सुधियो.	सुधियाम्
भूपतौ	,,	भूपतिषु	स०	सुधियि	,	सुधीषु
हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतय	स०	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

(९) गुरु (गुरु) (दे० अ० ५) (१०) स्वभू (ब्रह्मा) (दे० अ० २१)

गुरु.	गुरू	गुरव	प्र०	स्वभू	स्वभुवौ	स्वभुवः
गुरुम्	,,	गुरून्	द्वि०	स्वभुवम्	,,	,,
गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभि.	तृ०	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः
गुरवे	,,	गुरुभ्यः	च०	स्वभुवे	,,	स्वभूभ्यः
गुरो·	,,	,,	प०	स्वभुवः	,,	,,
,,	गुर्वो·	गुरूणाम्	ष०	,,	स्वभुवोः	स्वभुवाम्
गुरौ	,,	गुरुषु	स०	स्वभुवि	,,	स्वभूषु
हे गुरो	हे गुरू	हे गुरवः	स०	हे स्वभूः	हे स्वभुवौ	हे स्वभुवः

(११) कर्तृ (करनेवाला) (दे० अ० २२) (१२) पितृ (पिता) (दे० अ० २३)

कर्ता	कर्तारौ	कर्तार·	प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
कर्तारम्	,,	कर्तॄन्	द्वि०	पितरम्	,,	पितॄन्
कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः	च०	पित्रे	,,	पितृभ्यः
कर्तुः	,,	,,	प०	पितु.	,,	,,
,,	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्	ष०	,,	पित्रो.	पितॄणाम्
कर्तरि	,,	कर्तृषु	स०	पितरि	,,	पितृषु
हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तार.	स०	हे पित·	हे पितरौ	हे पितर·

(१३) नृ (मनुष्य) (पितृवत्) (दे० अ० २३)

ना	नरौ	नरः	प्र०
नरम्	,,	नॄन्	द्वि०
न्रा	नृभ्याम्	नृभिः	तृ०
न्रे	,,	नृभ्य	च०
नु	,,	,,	प०
,,	न्रो.	नृणाम्, नॄणाम्	ष०
नरि	,,	नृषु	स०
हे नः	हे नरौ	हे नरः	स०

(१४) गो (बैल या गाय) पु०, स्त्री०, (दे० अ० २४)

गौ.	गावौ	गाव.
गाम्	,,	गा.
गवा	गोभ्याम्	गोभिः
गवे	,,	गोभ्य.
गो	,,	,,
,,	गवो.	गवाम्
गवि	,,	गोपु
हे गौ	हे गावौ	हे गावः

(ख) हलन्त पुंलिंग शब्द

(१५) पयोमुच् (बादल) (दे० अ० २६)

पयोमुक्	पयोमुचौ	पयोमुच.	प्र०
पयोमुचम्	,,	,,	द्वि०
पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः	तृ०
पयोमुचे	,,	पयोमुग्भ्य.	च०
पयोमुच·	,,	,,	प०
,,	पयोमुचो·	पयोमुचाम्	ष०
पयोमुचि	,,	पयोमुक्षु	स०
हे पयामुक्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः	स०

(१६) प्राञ्च् (पूर्वी) (दे० अ० २५)

प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
प्राञ्चम्	,,	प्राच·
प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
प्राचे	,,	प्राग्भ्य.
प्राच.	,,	,,
,,	प्राचोः	प्राचाम्
प्राचि	,,	प्राक्षु
हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

(१७) उदञ्च् (उत्तरी) (दे० अ० २५)

उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्च	प्र०
उदञ्चम्	,,	उदीच.	द्वि०
उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भि	तृ०
उदीचे	,,	उदग्भ्य.	च०
उदीच	,,	,,	प०
,,	उदीचो	उदीचाम्	ष०
उदीचि	,,	उदक्षु	स०
हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्च	स०

(१८) वणिज् (बनिया) (दे० अ० २६)

वणिक्	वणिजौ	वणिजः
वणिजम्	,,	,,
वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
वणिजे	,,	वणिग्भ्यः
वणिज.	,,	,,
,,	वणिजो·	वणिजाम्
वणिजि	,,	वणिक्षु
हे वणिक्	हे वणिजौ	हे वणिज.

(१९) भूभृत् (राजा, पर्वत) (दे० अ० २७) **(२०) भगवत् (भगवान्)** (दे० अ० २८)

भूभृत्	भूभृतौ	भूभृत·	प्र०	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्त
भूभृतम्	,,	,,	द्वि०	भगवन्तम्	,,	भगवत
भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भि	तृ०	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भि
भूभृते	,,	भूभृद्भ्य	च०	भगवते	,,	भगवद्भ्य
भूभृत	,,	,,	प०	भगवत	,,	,,
,,	भूभृतो	भूभृताम्	ष०	,,	भगवतो	भगवताम्
भूभृति	,,	भूभृत्सु	स०	भगवति	,,	भगवत्सु
हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृत.	स०	हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्त

(२१) धीमत् (बुद्धिमान्) (दे० अ० २८) **(२२) महत् (महान्)** (दे० अ० २९)

धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः	प्र०	महान्	महान्तौ	महान्त
धीमन्तम्	,,	धीमत	द्वि०	महान्तम्	,,	महत
धीमता	धीमद्भ्याम्	धीमद्भि	तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भि
धीमते	,,	धीमद्भ्य	च०	महते	,,	महद्भ्य
धीमत	,,	,,	पं०	महतः	,,	,,
,,	धीमतो	धीमताम्	ष०	,,	महतो	महताम्
धीमति	,,	धीमत्सु	स०	महति	,,	महत्सु
हे धीमन्	हे धीमन्तौ	हे धीमन्त	स०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्त

(२३) भवत् (आप) (दे० अ० २९) **(२४) पठत् (पढ़ता हुआ)** (दे० अ० ३०)

भवान्	भवन्तौ	भवन्तः	प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्त
भवन्तम्	,,	भवत	द्वि०	पठन्तम्	,,	पठत
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भि	तृ०	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भि
भवते ·	,,	भवद्भ्य	च०	पठते	,,	पठद्भ्य
भवतः	,,	,,	प०	पठत.	,,	,,
,,	भवतो	भवताम्	ष०	,,	पठतो	पठताम्
भवति	,,	भवत्सु	स०	पठति	,,	पठत्सु
हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्त	स०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्त

सूचना—स्त्रीलिंग में भवती के रूप नदी (शब्द० ४३) के तुल्य चलेंगे।

(२५) यावत् (जितना) (दे० अ० ३०)

यावान्	यावन्तौ	यावन्त.	प्र०
यावन्तम्	,,	यावत.	द्वि०
यावता	यावद्भ्याम्	यावद्भिः	तृ०
यावते	,,	यावद्भ्यः	च०
यावतः	,,	,,	प०
,,	यावतोः	यावताम्	ष०
यावति	,,	यावत्सु	स०
हे यावत्	हे यावन्तौ	हे यावन्तः	स०

(२६) बुध् (विद्वान्) (दे० अ० ३१)

प्र०	भुत्	बुधौ	बुध.
द्वि०	बुधम्	,,	,,
तृ०	बुधा	भुद्भ्याम्	भुद्भि
च०	बुधे	,,	भुद्भ्य.
प०	बुध.	,,	,,
ष०	,,	बुधोः	बुधाम्
स०	बुधि	,,	भुत्सु
स०	हे भुत्	हे बुधौ	हे बुध.

—

(२७) आत्मन् (आत्मा) (दे० अ० ३२)

आत्मा	आत्मानौ	आत्मान.	प्र०
आत्मानम्	,,	आत्मन.	द्वि०
आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः	तृ०
आत्मने	,,	आत्मभ्य.	च०
आत्मनः	,,	,,	प०
,,	आत्मनोः	आत्मनाम्	ष०
आत्मनि	,,	आत्मसु	स०
हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मान॰	सं०

(२८) राजन् (राजा) (दे० अ० ३२)

प्र०	राजा	राजानौ	राजान
द्वि०	राजानम्	,,	राज्ञ.
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभि.
च०	राज्ञे	,,	राजभ्यः
प०	राज्ञ	,,	,,
ष०	,,	राज्ञो.	राज्ञाम्
स०	राज्ञि,राजनि	,,	राजसु
सं०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

—

(२९) श्वन् (कुत्ता) (दे० अ० ३३)

श्वा	श्वानौ	श्वान.	प्र०
श्वानम्	,,	शुन.	द्वि०
शुना	श्वभ्याम्	श्वभि.	तृ०
शुने	,,	श्वभ्यः	च०
शुन.	,,	,,	प०
,,	शुनो	शुनाम्	ष०
शुनि	,,	श्वसु	स०
हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वान	स०

(३०) युवन् (युवक) (दे० अ० ३३)

प्र०	युवा	युवानौ	युवान.
द्वि०	युवानम्	,,	यून
तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
च०	यूने	,,	युवभ्य.
प०	यूनः	,,	,,
ष०	,,	यूनो	यूनाम्
स०	यूनि	,,	युवसु
स०	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवा

(२१) वृत्रहन् (इन्द्र) (दे० अ० ३४)

वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहण:	प्र०
वृत्रहणम्	,,	वृत्रघ्न:	द्वि०
वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभि:	तृ०
वृत्रघ्ने	,,	वृत्रहभ्य	च०
वृत्रघ्न:	,,	,,	प०
,,	वृत्रघ्नो:	वृत्रघ्नाम्	ष०
वृत्रघ्नि / वृत्रहणि	,,	वृत्रहसु	स०
हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहण:	स०

(२२) मघवन् (इन्द्र) (दे० अ० ३४)

प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवान:
द्वि०	मघवानम्	,,	मघोन:
तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभि:
च०	मघोने	,,	मघवभ्य:
प०	मघोन:	,,	,,
ष०	,,	मघोनो:	मघोनाम्
स०	मघोनि	,,	मघवसु
स०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवान:

सूचना—इसका ही मघवत् शब्द बनाकर भगवत् (शब्द० २०) के तुल्य भी रूप चलावें।

(२३) करिन् (हाथी) (दे० अ० ३५)

करी	करिणौ	करिण:	प्र०
करिणम्	,,	,,	द्वि०
करिणा	करिभ्याम्	करिभि:	तृ०
करिणे	,,	करिभ्य:	च०
करिण:	,,	,,	पं०
,,	करिणो:	करिणाम्	ष०
करिणि	,,	करिषु	स०
हे करिन्	हे करिणौ	हे करिण:	स०

(२४) पथिन् (मार्ग) (दे० अ० ३५)

प्र०	पन्था:	पन्थानौ	पन्थान:
द्वि०	पन्थानम्	,,	पथ:
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभि:
च०	पथे	,,	पथिभ्य:
पं०	पथ:	,,	,,
ष०	,,	पथो:	पथाम्
स०	पथि	,,	पथिषु
स०	हे पन्था:	हे पन्थानौ	हे पन्थान:

(२५) तादृश् (वैसा) (दे० अ० ३६)

तादृक्	तादृशौ	तादृश:	प्र०
तादृशम्	,,	,,	द्वि०
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भि:	तृ०
तादृशे	,,	तादृग्भ्य:	च०
तादृश:	,,	,,	प०
,,	तादृशो:	तादृशाम्	ष०
तादृशि	,,	तादृक्षु	स०
हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृश:	स०

(२६) विद्वस् (विद्वान्) (दे० अ० ३७)

प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांस:
द्वि०	विद्वांसम्	,,	विदुष:
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भि:
च०	विदुषे	,,	विद्वद्भ्य:
प०	विदुष:	,,	,,
ष०	,,	विदुषो:	विदुषाम्
स०	विदुषि	,,	विद्वत्सु
स०	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांस:

(३७) पुंस् (पुरुष) (दे० अ० ३७) (३८) चन्द्रमस् (चन्द्रमा) (दे० अ० ३६)

पुमान्	पुमांसौ	पुमांस.	प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
पुमांसम्	,,	पुंसः	द्वि०	चन्द्रमसम्	,,	,,
पुंसा	पुम्भ्याम्	पुंभि.	तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
पुंसे	,,	पुम्भ्यः	च०	चन्द्रमसे	,,	चन्द्रमोभ्यः
पुंस.	,,	,,	प०	चन्द्रमस.	,,	,,
,,	पुंसोः	पुंसाम्	ष०	,,	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
पुंसि	,,	पुंसु	स०	चन्द्रमसि	,,	चन्द्रमस्सु
हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांस	स०	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

(३९) श्रेयस् (अधिक प्रशंसनीय) (दे० अ० ३८) (४०) अनडुह् (बैल) (दे० अ० ३८)

श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः	प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
श्रेयांसम्	,,	श्रेयस.	द्वि०	अनड्वाहम्	,,	अनडुहः
श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभि.	तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
श्रेयसे	,,	श्रेयोभ्य.	च०	अनडुहे	,,	अनडुद्भ्यः
श्रेयसः	,,	,,	प०	अनडुहः	,,	,,
,,	श्रेयसोः	श्रेयसाम्	ष०	,,	अनडुहो.	अनडुहाम्
श्रेयसि	,,	श्रेयस्सु	स०	अनडुहि	,,	अनडुत्सु
हे श्रेयन्	हे श्रेयांसौ	हे श्रेयांस.	स०	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

(ग) स्त्रीलिंग शब्द

(४१) रमा (लक्ष्मी) (दे० अ० २) (४२) मति (बुद्धि) (दे० अ० ३९)

रमा	रमे	रमा	प्र०	मति.	मती	मतयः
रमाम्	,,	,,	द्वि०	मतिम्	,,	मतीः
रमया	रमाभ्याम्	रमाभि.	तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
रमायै	,,	रमाभ्य	च०	मत्यै, मतये	,,	मतिभ्य
रमाया.	,,	,,	प०	मत्याः, मतेः	,,	,,
,,	रमयो	रमाणाम्	ष०	,, ,,	मत्यो.	मतीनाम्
रमायाम्	,,	रमासु	स०	मत्याम्, मतौ	,,	मतिषु
हे रमे	हे रमे	हे रमा.	स०	हे मते	हे मती	हे मतय.

(४३) नदी (नदी) (दे० अ० ४०) (४४) लक्ष्मी (लक्ष्मी) (दे० अ० ४०)

नदी	नद्यौ	नद्यः	प्र०	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
नदीम्	,,	नदीः	द्वि०	लक्ष्मीम्	,,	लक्ष्मीः
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
नद्यै	,,	नदीभ्यः	च०	लक्ष्म्यै	,,	लक्ष्मीभ्यः
नद्याः	,,	,,	पं०	लक्ष्म्याः	,,	,,
,,	नद्योः	नदीनाम्	ष०	,,	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
नद्याम्	,,	नदीषु	स०	लक्ष्म्याम्	,,	लक्ष्मीषु
हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः	सं०	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः

(४५) स्त्री (स्त्री) (दे० अ० ४१) (४६) श्री (लक्ष्मी) (दे० अ० ४१)

स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	प्र०	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
स्त्रियम्, स्त्रीम्	,,	स्त्रियः, स्त्रीः	द्वि०	श्रियम्	,,	,,
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्यः	च०	श्रियै, श्रिये	,,	श्रीभ्यः
स्त्रियाः	,,	,,	पं०	श्रियाः, श्रियः	,,	,,
,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्	ष०	,, ,,	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु	स०	श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु
हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः	सं०	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

(४७) धेनु (गाय) (दे० अ० ४२) (४८) वधू (बहू) (दे० अ० ४२)

धेनुः	धेनू	धेनवः	प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
धेनुम्	,,	धेनूः	द्वि०	वधूम्	,,	वधूः
धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः	तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः	च०	वध्वै	,,	वधूभ्यः
धेन्वाः, धेनोः	,,	,,	पं०	वध्वाः	,,	,,
,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्	ष०	,,	वध्वोः	वधूनाम्
धेन्वाम्, धेनौ	,,	धेनुषु	स०	वध्वाम्	,,	वधूषु
हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः	सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

(४९) स्वसृ (बहिन) (दे० अ० ४३)

स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः	प्र०
स्वसारम्	,,	स्वसॄः	द्वि०
स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः	तृ०
स्वस्रे	,,	स्वसृभ्यः	च०
स्वसुः	,,	,,	प०
,,	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्	ष०
स्वसरि	,,	स्वसृषु	स०
हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः	स०

(५०) मातृ (माता) (दे० अ० ४३)

प्र०	माता	मातरौ	मातरः
द्वि०	मातरम्	,,	मातॄः
तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च०	मात्रे	,,	मातृभ्यः
प०	मातुः	,,	,,
ष०	,,	मात्रोः	मातॄणाम्
स०	मातरि	,,	मातृषु
स०	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

(५१) नौ (नाव) (दे० अ० ४४)

नौः	नावौ	नावः	प्र०
नावम्	,,	,,	द्वि०
नावा	नौभ्याम्	नौभिः	तृ०
नावे	,,	नौभ्यः	च०
नावः	,,	,,	प०
,,	नावोः	नावाम्	ष०
नावि	,,	नौषु	स०
हे नौः	हे नावौ	हे नावः	स०

(५२) वाच् (वाणी) (दे० अ० ४४)

प्र०	वाक्, -ग्	वाचौ	वाचः
द्वि०	वाचम्	,,	,,
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	,,	वाग्भ्यः
प०	वाचः	,,	,,
ष०	,,	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	,,	वाक्षु
स०	हे वाक्, -ग्	वाचौ	हे वाचः

(५३) स्रज् (माला) (दे० अ० ४५)

स्रक्	स्रजौ	स्रजः	प्र०
स्रजम्	,,	,,	द्वि०
स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः	तृ०
स्रजे	,,	स्रग्भ्यः	च०
स्रजः	,,	,,	प०
,,	स्रजोः	स्रजाम्	ष०
स्रजि	,,	स्रक्षु	स०
हे स्रक्	हे स्रजौ	स्रजः	स०

(५४) सरित् (नदी) (दे० अ० ४५)

प्र०	सरित्	सरितौ	सरितः
द्वि०	सरितम्	,,	,,
तृ०	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
च०	सरिते	,,	सरिद्भ्यः
प०	सरितः	,,	,,
ष०	,,	सरितोः	सरिताम्
स०	सरिति	,,	सरित्सु
स०	हे सरित्	हे सरितौ	हे सरितः

(५५) समिध् (समिधा) (दे० अ० ४६)

समित्	समिधौ	समिधः	प्र०
समिधम्	,,	,,	द्वि०
समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः	तृ०
समिधे	,,	समिद्भ्यः	च०
समिधः	,,	,,	प०
,,	समिधोः	समिधाम्	ष०
समिधि	,,	समित्सु	स०
हे समित्	हे समिधौ	हे समिधः	सं०

(५६) अप् (जल) (दे० अ० ४६)

प्र०	आपः
द्वि०	अपः
तृ०	अद्भिः
च०	अद्भ्यः
प०	,,
ष०	अपाम्
स०	अप्सु
सं०	हे आपः

सूचना—अप् के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(५७) गिर् (वाणी) (दे० अ० ४७)

गीः	गिरौ	गिरः	प्र०
गिरम्	,,	,,	द्वि०
गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः	तृ०
गिरे	,,	गीर्भ्यः	च०
गिरः	,,	,,	प०
,,	गिरोः	गिराम्	ष०
गिरि	,,	गीर्षु	स०
हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः	सं०

(५८) पुर् (नगर) (दे० अ० ४७)

प्र०	पूः	पुरौ	पुरः
द्वि०	पुरम्	,,	,,
तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
च०	पुरे	,,	पूर्भ्यः
प०	पुरः	,,	,,
ष०	,,	पुरोः	पुराम्
स०	पुरि	,,	पूर्षु
सं०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः

(५९) दिश् (दिशा) (दे० अ० ४८)

दिक्	दिशौ	दिशः	प्र०
दिशम्	,,	,,	द्वि०
दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः	तृ०
दिशे	,,	दिग्भ्यः	च०
दिशः	,,	,,	पं०
,,	दिशोः	दिशाम्	ष०
दिशि	,,	दिक्षु	
हे दिक्	हे दिशौ	हे	

(६०) उपानह् (जूता) (दे० अ० ४८)

प्र०	उपानत्	उपानहौ	उपानहः
द्वि०	उपानहम्	,,	,,
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०	उपानहे	,,	उपानद्भ्यः
पं०	उपानहः	,,	,,
ष०	,,	उपानहोः	उपानहाम्

(घ) नपुंसकलिंग शब्द

(६१) गृह (घर) (दे० अ० २) — (६२) वारि (जल) (दे० अ० ४९)

गृहम्	गृहे	गृहाणि	प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
गृहेण	गृहाभ्याम्	गृहैः	तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
गृहाय	,,	गृहेभ्यः	च०	वारिणे	,,	वारिभ्यः
गृहात्	,,	,,	प०	वारिणः	,,	,,
गृहस्य	गृहयोः	गृहाणाम्	ष०	,,	वारिणोः	वारीणाम्
गृहे	,,	गृहेषु	स०	वारिणि	,,	वारिषु
हे गृह	हे गृहे	हे गृहाणि	सं०	हे वारि, वारे	हे वारिणी	हे वारीणि

सूचना—मनोहारिन् आदि इन् अन्तवालों के रूप वारि के तुल्य चलेंगे। दो स्थानों पर अन्तर होगा। षष्ठी बहु० में 'इनाम्' अन्त में रहेगा और स० एक० में 'इन्'।

---

(६३) दधि (दही) (दे० अ० ४९) — (६४) अक्षि (आँख) (दधिवत्) (दे० अ० ५०)

दधि	दधिनी	दधीनि	प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	तृ०	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
दध्ने	,,	दधिभ्यः	च०	अक्ष्णे	,,	अक्षिभ्यः
दध्नः	,,	,,	प०	अक्ष्णः	,,	,,
,,	दध्नोः	दध्नाम्	ष०	,,	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
दध्नि, दधनि	,,	दधिषु	स०	अक्ष्णि, अक्षणि	,,	अक्षिषु
हे दधि, दधे	हे दधिनी	हे दधीनि	सं०	हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि

---

(६५) अस्थि (हड्डी) (दधिवत्)(दे०अ०५०) — (६६) मधु (शहद) (दे० अ० ५१)

अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि	प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभिः	तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
अस्थ्ने	,,	अस्थिभ्यः	च०	मधुने	,,	मधुभ्यः
अस्थ्नः	,,	,,	प०	मधुनः	,,	,,
,,	अस्थ्नोः	अस्थ्नाम्	ष०	,,	मधुनोः	मधूनाम्
अस्थ्नि, अस्थनि	,,	अस्थिषु	स०	मधुनि	,,	मधुषु
हे अस्थि, अस्थे	हे अस्थिनी	हे अस्थीनि	सं०	हे मधु, मधो	हे मधुनी	हे मधूनि

(६७) कर्तृ (करनेवाला) (दे० अ० ५१) (६८) जगत् (संसार) (दे० अ० ५५)

कर्तृ				जगत्		
कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि	प्र०	जगत्	जगती	जगन्ति
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभि	तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भि.
कर्तृणे	,,	कर्तृभ्य.	च०	जगते	,,	जगद्भ्य
कर्तृणः	,,	,,	प०	जगतः	,,	,,
,,	कर्तृणो.	कर्तॄणाम्	ष०	,,	जगतो.	जगताम्
कर्तृणि	,,	कर्तृषु	स०	जगति	,,	जगत्सु
हे कर्तृ, कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि	स०	हे जगत्	हे जगती	हे जगन्ति

सूचना—कर्तृ के तृतीया एक० से सप्तमी बहु० तक कर्तृ पु० (शब्द० ११) के तुल्य भी रूप चलेंगे।

(६९) नामन् (नाम) (दे० अ० ५३) (७०) शर्मन् (सुख) (दे० अ० ५३)

नामन्				शर्मन्		
नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि	प्र०	शर्म	शर्मणी	शर्माणि
,,	,, ,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः	तृ०	शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभि.
नाम्ने	,,	नामभ्य	च०	शर्मणे	,,	शर्मभ्यः
नाम्नः	,,	,,	प०	शर्मणः	,,	,,
,,	नाम्नो.	नाम्नाम्	ष०	,,	शर्मणोः	शर्मणाम्
नाम्नि, नामनि	,,	नामसु	स०	शर्मणि	,,	शर्मसु
हे नाम, नामन्	नाम्नी, नामनी	नामानि	स०	हे शर्म, शर्मन्	हे शर्मणी	हे शर्माणि

(७१) ब्रह्मन् (ब्रह्म, वेद) (दे० अ० ५४) (७२) अहन् (दिन) (दे० अ० ५४)

ब्रह्मन्				अहन्		
ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि	प्र०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,, ,,	,,
ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभि.	तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभि.
ब्रह्मणे	,,	ब्रह्मभ्यः	च०	अह्ने	,,	अहोभ्यः
ब्रह्मणः	,,	,,	पं०	अह्नः	,,	,,
,,	ब्रह्मणो.	ब्रह्मणाम्	ष०	,,	अह्नोः	अह्नाम्
ब्रह्मणि	,,	ब्रह्मसु	स०	अह्नि, अहनि	,,	अहःसु, -स्सु
हे ब्रह्म, ब्रह्मन्	हे ब्रह्मणी	हे ब्रह्माणि	स०	हे अहः	हे अह्नी, अहनी	हे अहानि

(७३) हविष् (हवि) (दे० अ० ५५)

हविः	हविषी	हवींषि	प्र०
,,	,,	,,	द्वि०
हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः	तृ०
हविषे	,,	हविर्भ्यः	च०
हविषः	,,	,,	प०
,,	हविषोः	हविषाम्	ष०
हविषि	,,	हविःषु,-ष्षु	स०
हे हविः	हे हविषी	हवींषि	स०

(७४) धनुष् (धनुष) (दे० अ० ५५)

प्र०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
च०	धनुषे	,,	धनुर्भ्यः
प०	धनुषः	,,	,,
ष०	,,	धनुषोः	धनुषाम्
स०	धनुषि	,,	धनुःषु,-ष्षु
स०	हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

(७५) पयस् (दूध, जल) (दे० अ० ५६)

पयः	पयसी	पयांसि	प्र०
,,	,,	,,	द्वि०
पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः	तृ०
पयसे	,,	पयोभ्यः	च०
पयसः	,,	,,	प०
,,	पयसोः	पयसाम्	ष०
पयसि	,,	पयःसु,-स्सु	स०
हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि	स०

(७६) मनस् (मन) (दे० अ० ५६)

प्र०	मनः	मनसी	मनांसि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
च०	मनसे	,,	मनोभ्यः
प०	मनसः	,,	,,
ष०	,,	मनसोः	मनसाम्
स०	मनसि	,,	मनःसु,-स्सु
स०	हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

(ङ) सर्वनाम शब्द

(७७) (क) सर्व (सब) पुंलिंग (दे० अ० ६)

सर्वः	सर्वौ	सर्वे	प्र०
सर्वम्	,,	सर्वान्	द्वि०
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	तृ०
सर्वस्मै	,,	सर्वेभ्यः	च०
सर्वस्मात्	,,	,,	प०
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	ष०
सर्वस्मिन्	,,	सर्वेषु	स०

(७७) (ग) सर्व (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८)

प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वि०	सर्वाम्	,,	,,
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	,,	सर्वाभ्यः
प०	सर्वस्याः	,,	,,
ष०	,,	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	,,	सर्वासु

(७७) (ख) सर्व (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	प्र०
,,	,,	,,	द्वि०

शेष पुंलिंग के तुल्य (दे० ७७, क)

(७८)(क)विश्व(सब)पुंलिंग(दे०अ०६)

विश्वः	विश्वौ	विश्वे	प्र०
विश्वम्	,,	विश्वान्	द्वि०
विश्वेन	विश्वाभ्याम्	विश्वैः	तृ०
विश्वस्मै	,,	विश्वेभ्यः	च०
विश्वस्मात्	,,	,,	प०
विश्वस्य	विश्वयोः	विश्वेषाम्	ष०
विश्वस्मिन्	,,	विश्वेषु	स०

(७९)(क)पूर्व(पहला)पुंलिंग(दे०अ०६)

प्र०	पूर्व.	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वि०	पूर्वम्	,,	पूर्वान्
तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वै.
च०	पूर्वस्मै	,,	पूर्वेभ्य.
प०	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	,,	,,
ष०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
स०	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	,,	पूर्वेषु

(७८)(ख)विश्व(नपुंसकलिंग)(दे०अ०७)

विश्वम्	विश्वे	विश्वानि	प्र०
,,	,,	,,	द्वि०

शेष पुलिंग के तुल्य (दे० अ० ७८, क)

(७९)(ख)पूर्व(नपुंसकलिंग)(दे०अ०७)

प्र०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
द्वि०	,,	,,	,,

(शेष पुलिंग के तुल्य (देखो ७९, क)

(७८) (ग) विश्व(स्त्रीलिंग)(दे०अ०८)

विश्वा	विश्वे	विश्वाः	प्र०
विश्वाम्	,,	,,	द्वि०
विश्वया	विश्वाभ्याम्	विश्वाभिः	तृ०
विश्वस्यै	,,	विश्वाभ्यः	च०
विश्वस्या.	,,	,,	प०
,,	विश्वयोः	विश्वासाम्	ष०
विश्वस्याम्	,,	विश्वासु	स०

(७९) (ग) पूर्व (स्त्रीलिंग) (दे०अ०८)

प्र०	पूर्वा	पूर्वे	पूर्वाः
द्वि०	पूर्वाम्	,,	,,
तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभिः
च०	पूर्वस्यै	,,	पूर्वाभ्यः
प०	पूर्वस्या.	,,	,,
ष०	,,	पूर्वयोः	पूर्वासाम्
स०	पूर्वस्याम्	,,	पूर्वासु

(८०)(क)अन्य(दूसरा)पुंलिंग(दे०अ० ६)

अन्य.	अन्यौ	अन्ये	प्र०
अन्यम्	,,	अन्यान्	द्वि०
अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै.	तृ०
अन्यस्मै	,,	अन्येभ्य·	च
अन्यस्मात्	,,	,,	
अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्	
अन्यस्मिन्	,,	अन्येषु	

(८०)(ग)अन्य(स्त्रीलिंग)(दे० अ०८)

प्र०	अन्या	अन्ये	अन्याः
द्वि०	अन्याम्	,,	,,
तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्	अन्याभिः

(८०)(ख)अन्य(नपुंसकलिंग)(दे० अ०

अन्यत्	अन्ये	अन्यानि	प्र०
,,	,,	,,	द्वि०

शेष पुंलिंग के तुल्य (८०, क)

(८१)(क) तत् (वह) पुंलिंग (दे० अ० ६)				(८२)(क) यत् (जो) पुंलिंग (दे० अ० ६)		
स.	तौ	ते	प्र०	यः	यौ	ये
तम्	,,	तान्	द्वि०	यम्	,,	यान्
तेन	ताभ्याम्	तैः	तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
तस्मै	,,	तेभ्यः	च०	यस्मै	,,	येभ्य.
तस्मात्	,,	,,	प०	यस्मात्	,,	,,
तस्य	तयो.	तेषाम्	ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
तस्मिन्	,,	तेषु	स०	यस्मिन्	,,	येषु

(८१)(ख) तत् (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)				(८२)(ख) यत् (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)		
तत्	ते	तानि	प्र०	यत्	ये	यानि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
शेष पुल्गि के तुल्य (देखो ८१, क)				शेष पुल्गि के तुल्य (देखो ८२, क)		

(८१)(ग) तत् (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८)				(८२)(ग) यत् (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८)		
सा	ते	ता.	प्र०	या	ये	या॰
ताम्	,,	,,	द्वि०	याम्	,,	,,
तया	ताभ्याम्	ताभिः	तृ०	यया	याभ्याम्	याभि.
तस्यै	,,	ताभ्य.	च०	यस्यै	,,	याभ्य
तस्या॰	,,	,,	प०	यस्या.	,,	,,
,,	तयो	तासाम्	ष०	,,	ययो.	यासाम्
तस्याम्	,,	तासु	स०	यस्याम्	,,	यासु

(८३)(क) एतत् (यह) पुंलिंग (तत् के तुल्य)				(८४)(क) किम् (क्या) पुंलिंग (तत् के तुल्य)		
एष	एतौ	एते	प्र०	क	कौ	के
एतम्	,,	एतान्	द्वि०	कम्	,,	कान्
शेष तत् पुल्गि (८१, क) के तुल्य।				शेष तत् पुल्गि (८१, क) के तुल्य।		

(८३)(ख) एतत् (नपुंसकलिंग)				(८४)(ख) किम् (नपुंसक०)		
एतत्	एते	एतानि	प्र०	किम्	के	कानि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
शेष तत् नपु० (८१, ख) के तुल्य।				शेष तत् नपु० (८१, ख) के तुल्य।		

(८३)(ग) एतत् (स्त्रीलिंग)				(८४)(ग) किम् (स्त्रीलिंग)		
एषा	एते	एता	प्र०	का	के	काः
एताम्	,,	,,	द्वि०	काम्	,,	,,
शेप तत् स्त्रील्गि (८१, ग) के तुल्य।				शेष तत् स्त्रीलिंग (८१, ग) के तुल्य।		

(८५) युष्मद् (तू) (दे० अ० ११) — (८६) अस्मद् (मैं) (दे० अ० १२)

त्वम्	युवाम्	यूयम्	प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
त्वाम त्वा	,, वाम्	युष्मान् व.	द्वि०	माम् मा	,, नौ	अस्मान् न·
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि	तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि
तुभ्यम ते	,, वाम्	युष्मभ्यम् व.	च०	मह्यम् मे	,, नौ	अस्मभ्यम नः
त्वत्	युवाभ्याम	युष्मत्	प०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
तव ते	युवयो· वाम्	युष्माकम् वः	ष०	मम मे	आवयोः नौ	अस्माकम् नः
त्वयि	युवयो.	युष्मासु	स०	मयि	आवयो.	अस्मासु

(८७) (क) इदम् (यह) पुंलिंग (दे० अ० ९) — (८८) (क) अदस् (वह) पुंलिंग (दे० अ० १०)

अयम्	इमौ	इमे	प्र०	असौ	अमू	अमी
इमम्	,	इमान्	द्वि०	अमुम्	,,	अमून्
अनेन	आभ्याम्	एभि	तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभि.
अस्मै	,,	एभ्यः	च०	अमुष्मै	,,	अमीभ्य
अस्मात्	,,	,,	प०	अमुष्मात्	,,	,,
अस्य	अनयो·	एषाम्	ष०	अमुष्य	अमुयो.	अमीषाम्
अस्मिन्	,,	एषु	स०	अमुष्मिन्	,,	अमीषु

(८७) (ख) इदम् (नपुंसक०) — (८८) (ख) अदस् (नपुंसक०)

इदम्	इमे	इमानि	प्र०	अदः	अमू	अमूनि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,

शेष पुलिंग के तुल्य (देखो ८७, क) — शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८८, क)

(८७) (ग) इदम् (स्त्रीलिंग) — (८८) (ग) अदस् (स्त्रीलिंग)

इयम्	इमे	इमा.	प्र०	असौ	अमू	अमू·
इमाम्	,,	,,	द्वि०	अमूम्	,,	,,
अनया	आभ्याम्	आभिः	तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभि.
अस्यै	,,	आभ्यः	च०	अमुष्यै	,,	अमूभ्य.
अस्या	,,	,,	पं०	अमुष्याः	,,	,,
,,	अनयो.	आसाम्	ष०	,,	अमुयोः	अमूषाम्
अस्याम्	,,	आसु	स०	अमुष्याम्	,	अमूषु

(८९) एक (एक) (दे० अ० १३) — (९०) द्वि (दो) (दे० अ० १४)

पुंलिंग	नपुंसक	स्त्रीलिंग		पुंलिंग	नपुं०, स्त्रीलिंग
एक	एकम्	एका	प्र०	द्वौ	द्वे
एकम्	,,	एकाम्	द्वि०	,,	,,
एकेन	एकेन	एकया	तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै	च०	,,	,,
एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः	पं०	,,	,,
एकस्य	एकस्य	,,	ष०	द्वयो	द्वयो
एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्	स०	,,	,,

सूचना-एक के केवल एक० मे रूप चलते हैं। सूचना-द्वि के द्वि० मे ही रूप चलेंगे।

(९१) (त्रि) तीन) (दे० अ० १५) — (९२) चतुर् (चार) (दे० अ० १६)

पुं०	नपुं०	स्त्री०		पुं०	नपुं०	स्त्री०
त्रय	त्रीणि	तिस्र	प्र०	चत्वार	चत्वारि	चतस्र:
त्रीन्	,,	,,	द्वि०	चतुर	,,	,,
त्रिभि	त्रिभि.	तिसृभिः	तृ०	चतुर्भि.	चतुर्भि	चतसृभिः
त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्य.	च०	चतुर्भ्य	चतुर्भ्य	चतसृभ्य.
,,	,,	,,	पं०	,,	,,	,,
त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	ष०	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु	स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

सूचना—त्रि के बहु० में ही रूप चलते हैं। सूचना—चतुर् के बहु० में ही रूप चलते हैं।

(९३) पञ्चन् (पाँच)	(९४) षष् (छः)		(९५) सप्तन् (सात)
पञ्च	षट्, षड्	प्र०	सप्त
,,	,, ,,	द्वि०	,,
पञ्चभि	षड्भि.	तृ०	सप्तभि.
पञ्चभ्य	षड्भ्य.	च०	सप्तभ्य.
,,	,,	पं०	,,
पञ्चानाम्	षण्णाम्	ष०	सप्तानाम्
पञ्चसु	षट्सु	स०	सप्तसु

सूचना—३ से १८ तक की संख्याओं के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(९६) अष्टन् (आठ)			(९७) नवन् (नौ)	(९८) दशन् (दश)
अष्ट	अष्टौ	प्र०	नव	दश
,,	,,	द्वि०	,,	,,
अष्टभिः	अष्टाभिः	तृ०	नवभिः	दशभि
अष्टभ्यः	अष्टाभ्यः	च०	नवभ्यः	दशभ्यः
,,	,,	प०	,,	,,
अष्टानाम्	अष्टानाम्	ष०	नवानाम्	दशानाम्
अष्टसु	अष्टासु	स०	नवसु	दशसु

सूचना—अष्टन् , नवन् ; दशन् के रूप बहुवचन में ही चलते हैं ।

(९९) कति (कितने) (दे० अ० ५९)		(१००) उभ (दोनों) (दे० अ० ६०)	
		पु०	नपु०, स्त्री०
कति	प्र०	उभौ	उभे
,,	द्वि०	,,	,,
कतिभिः	तृ०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
कतिभ्य.	च०	,,	,,
,,	प०	,,	,,
कतीनाम्	ष०	उभयो	उभयो.
कतिषु	स०	,,	,,

सूचना—कति के रूप बहु० में ही चलते हैं ।

सूचना—उभ के रूप तीनो लिंगों में केवल द्विवचन में ही चलते हैं ।

---

(२) संख्याएँ

१ एकः, एकम्, एका
२ द्वौ, द्वे, द्वे
३ त्रय, त्रीणि, तिस्र·
४ चत्वारः, चत्वारि, चतस्रः
५ पञ्च
६ षट्
७ सप्त
८ अष्ट, अष्टौ
९ नव
१० दश
११ एकादश
१२ द्वादश
१३ त्रयोदश
१४ चतुर्दश
१५ पञ्चदश
१६ षोडश
१७ सप्तदश
१८ अष्टादश
१९ नवदश
एकोनविंशति
२० विंशतिः
२१ एकविंशतिः
२२ द्वाविंशति
२३ त्रयोविंशतिः
२४ चतुर्विंशतिः
२५ पञ्चविंशति.
२६ षड्विंशति.
२७ सप्तविंशति.
२८ अष्टाविंशतिः
२९ नवविंशतिः
एकोनत्रिंशत्
३० त्रिंशत्
३१ एकत्रिंशत्
३२ द्वात्रिंशत्
३३ त्रयस्त्रिंशत्
३४ चतुस्त्रिंशत्
३५ पञ्चत्रिंशत्
३६ षट्त्रिंशत्
३७ सप्तत्रिंशत्
३८ अष्टात्रिंशत्
३९ नवत्रिंशत्
एकोनचत्वारिंशत्
४० चत्वारिंशत्
४१ एकचत्वारिंशत्
४२ द्विचत्वारिंशत्
द्वाचत्वारिंशत्
४३ त्रिचत्वारिंशत्
त्रयश्चत्वारिंशत्
४४ चतुश्चत्वारिंशत्
४५ पञ्चचत्वारिंशत्
४६ षट्चत्वारिंशत्
४७ सप्तचत्वारिंशत्
४८ अष्टचत्वारिंशत्
अष्टाचत्वारिंशत्
४९ नवचत्वारिंशत्
एकोनपञ्चाशत्
५० पञ्चाशत्
५१ एकपञ्चाशत्
५२ द्विपञ्चाशत्
द्वापञ्चाशत्
५३ त्रिपञ्चाशत्
त्रयःपञ्चाशत्
५४ चतुःपञ्चाशत्
५५ पञ्चपञ्चाशत्
५६ षट्पञ्चाशत्
५७ सप्तपञ्चाशत्
५८ अष्टपञ्चाशत्
अष्टापञ्चाशत्
५९ नवपञ्चाशत्
एकोनषष्टि.
६० षष्टि.
६१ एकषष्टि.
६२ द्विषष्टिः, द्वाषष्टिः
६३ त्रिषष्टि.
त्रय.षष्टिः
६४ चतुःषष्टिः
६५ पञ्चषष्टि.
६६ षट्षष्टिः
६७ सप्तषष्टि.
६८ अष्टषष्टिः
अष्टाषष्टिः
६९ नवषष्टिः
एकोनसप्ततिः
७० सप्तति.
७१ एकसप्ततिः
७२ द्विसप्तति.
द्वासप्तति·
७३ त्रिसप्तति.
त्रयःसप्ततिः
७४ चतुःसप्तति.
७५ पञ्चसप्तति·

७६ षट्सप्ततिः
७७ सप्तसप्ततिः
७८ अष्टसप्ततिः
अष्टासप्ततिः
७९ नवसप्ततिः
एकोनाशीतिः
८० अशीतिः
८१ एकाशीतिः
८२ द्व्यशीतिः
८३ त्र्यशीतिः
८४ चतुरशीतिः
८५ पञ्चाशीतिः
८६ षडशीतिः
८७ सप्ताशीतिः
८८ अष्टाशीतिः
८९ नवाशीतिः
एकोननवतिः
९० नवतिः
९१ एकनवतिः
९२ द्विनवतिः
द्वानवतिः
९३ त्रिनवतिः
त्रयोनवतिः
९४ चतुर्नवतिः
९५ पञ्चनवतिः
९६ षण्णवतिः
९७ सप्तनवतिः
९८ अष्टनवतिः
अष्टानवतिः
९९ नवनवतिः
एकोनशतम्
१०० शतम् ।

१ हजार—सहस्रम् । १० हजार—अयुतम् । १ लाख—लक्षम् । १० लाख—नियुतम्, प्रयुतम् । १ करोड—कोटिः । १० करोड—दशकोटिः । १ अरब—अर्बुदम् । १० अरब—दशार्बुदम् । १ खरब—खर्वम् । १० खरब—दशखर्वम् । १ नील—नीलम् । १० नील—दशनीलम् । १ पद्म—पद्मम् । १० पद्म—दशपद्मम् । १ शख—शखम् । १० शख—दशशखम् । १ महाशख—महाशखम् ।

सूचना—१ (क) १०१ आदि सख्याओं के लिए अधिक शब्द लगाकर सख्या-शब्द बनावें । जैसे—१०१ एकाधिक शतम् । १०२ द्व्यधिक शतम् आदि । (ख) २०० आदि के लिए दो आदि सख्यावाचक शब्द पहले रखकर बाद में 'शती' रखें, या शत पहले रखकर द्वयम्, त्रयम् आदि रखें । जैसे—२००, द्विशती, शतद्वयम् । ३०० त्रिशती, शतत्रयम्, ४०० चतुःशती, ५०० पञ्चशती, ६०० षट्शती, ७०० सप्तशती (हिन्दी सतसई), ८०० अष्टशती, ९०० नवशती आदि ।

२. त्रि ३ से लेकर १८ (अष्टादशन्) तक सारे शब्दों के रूप केवल बहुवचन में चलते हैं । दशन् से अष्टादशन् तक दशन् के तुल्य ।

३. एकोनविंशति से नवविंशति तक सारे शब्द एकवचनान्त स्त्रीलिंग हैं । इनके रूप एकवचन में ही चलते हैं । इकारान्त विंशति, सप्तति, अशीति, नवति तथा जिनके अन्त में ये हों, उनके रूप मति के तुल्य चलेंगे । तकारान्त त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत् के रूप सरित् के तुल्य (शब्द स० ५४) चलेंगे ।

४. शतम्, सहस्रम्, अयुतम्, लक्षम्, नियुतम्, प्रयुतम् आदि शब्द सदा एकवचनान्त नपुसक हैं । गृहवत् एकवचन में रूप चलेंगे । कोटि के मतिवत् । शत, सहस्र आदि शब्द काव्यों में अनन्त सख्या के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं । 'शत सहस्रमयुत सर्वमानन्त्यवाचकम्' ।

५. संख्येय शब्द (प्रथम, द्वितीय आदि) बनाने के लिए अभ्यास १८ का व्याकरण देखो ।

(३) धातुरूप-संग्रह

आवश्यक-निर्देश

१. संस्कृत मे सारी धातुओ को १० विभागो मे बाँटा गया है। उन्हे 'गण' कहते हैं, अत १० गण हैं। धातु और तिङ् (ति, त आदि) प्रत्यय के बीच मे होनेवाले अ, उ, नु आदि को 'विकरण' कहते है। इनके अन्तर के आधार पर ही ये गण बनाए गए हैं। ये 'विकरण' लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् मे ही होते है, अन्य ६ लकारो मे नहीं होते, यह स्मरण रखें। प्रत्येक गण मे तीनो प्रकार की धातुएँ होती हैं, परस्मैपदी (ति, तः, अन्ति आदिवाली), आत्मनेपदी (ते, एते, अन्ते आदिवाली) और उभयपदी (पूर्वोक्त दोनो प्रकार के रूपवाली)। प्रत्येक गण की विशेषताएँ आगे प्रत्येक गण विवरण में दी गई हैं। यहाँ अधिक प्रसिद्ध १०० धातुओं के रूप दिए गए हैं।

२. प्रत्येक गण के विवरण में उस गण में आनेवाली धातुओ के अन्त में क्या सक्षिप्त-रूप लगेंगे, इसका विवरण दिया गया है। उस गण की धातुओ के अन्त में उन लकारों में निर्दिष्ट सक्षिप्त-रूप लगावें।

३. गणो के अन्तर के कारण लट्, लुट्, आशीर्लिङ्, लृङ्, लिट् और लुङ् में कोई अन्तर नहीं होता। अत सभी गणो में इन लकारों में एक से ही रूप चलेंगे। इन लकारों के सक्षिप्त-रूप आगे दिए हैं, उन्हें स्मरण कर लें। सभी गणों मे उन्हीं सक्षिप्त-रूपों को लगावें। अतएव धातु रूपों में लट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् के प्रारम्भिक रूप ही सकेतमात्र दिए गए हैं। सभी धातुओं के लिट् और लुङ् के पूरे रूप दिए गए हैं।

४. दसों गणों के विकरण और मुख्य कार्य ये हैं—

गण	विकरण	कार्य
(१) भ्वादिगण	अ	लट् आदि में धातु को गुण होगा।
(२) अदादिगण	×	लट् आदि के एक०में धातु को गुण होगा।
(३) जुहोत्यादिगण	×	लट् आदि में धातु को द्वित्व और एक० में गुण।
(४) दिवादिगण	य	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(५) स्वादिगण	नु (नो)	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(६) तुदादिगण	अ	,, ,,
(७) रुधादिगण	न (न्)	,, ,,
(८) तनादिगण	उ (ओ)	लट् आदि में धातु को पर० में गुण होगा।
(९) क्र्यादिगण	ना (नी)	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(१०) चुरादिगण	अय	लट् आदि में धातु को गुण या वृद्धि होगी।

(क) लकारों के संक्षिप्त-रूप

परस्मैपद		लट्		आत्मनेपद		लट्
ति	त.	अन्ति	प्र०	ते	इते (आते)	अन्ते (अते)
सि	थः	थ	म०	से	इथे (आथे)	ध्वे
मि	व.	म	उ०	इ (ए)	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अन्तु	प्र०	ताम्	इताम् (आताम्)	अन्ताम् (अताम्)
—, हि	तम्	त	म०	स्व	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पहले अ या आ)				लङ् (धातु से पहले अ या आ)	
त	ताम्	अन्	प्र०	त	इताम् (आताम्)	अन्त (अत)
•	तम्	त	म०	थाः	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि

विधिलिङ् (परस्मैपद) / **विधिलिङ्** (आत्मनेपद)

ईत्	ईताम्	ईयु.	यात्	याताम्	युः	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
ई	ईतम्	ईत	या.	यातम्	यात	म०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
ईयम्	ईव	ईम	याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

	लृट्				लृट्	
(इ) स्यति	स्यत	स्यन्ति	प्र०	(इ) स्यते	स्येते	स्यन्ते
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म०	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
स्यामि	स्याव.	स्याम.	उ०	स्ये	स्यावहे	स्यामहे
	लुट्				लुट्	
(इ) ता	तारौ	तारः	प्र०	(इ) ता	तारौ	तारः
तासि	तास्थ॰	तास्थ	म०	तासे	तासाथे	ताध्वे
तास्मि	तास्वः	तास्म.	उ०	ताहे	तास्वहे	तास्महे
	आशीर्लिङ्				आशीर्लिङ्	
(X) यात्	यास्ताम्	यासु॰	प्र०	(इ) सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
या	यास्तम्	यास्त	म०	सीष्ठा.	सीयास्थाम्	सीध्वम्
यासम्	यास्व	यास्म	उ०	सीय	सीवहि	सीमहि
	लृङ् (धातु से पहले अ लगेगा)				लृङ् (धातु से पहले अ लगेगा)	
(इ) स्यत्	स्यताम्	स्यन्	प्र०	(इ) स्यत	स्येताम्	स्यन्त
स्यः	स्यतम्	स्यत	म०	स्यथा	स्येथाम्	स्यध्वम्
स्यम्	स्याव	स्याम	उ०	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

सूचना—लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में सेट् में स० रूप से पहले इ भी लगेगा।

परस्मैपद-लिट्

अ	अतुः	उः	प्र० पु०
(इ)थ	अथुः	अ	म० पु०
अ	(इ)व	(इ)म	उ० पु०

लुङ् (१. स्-लोप वाला भेद)

त्	ताम्	उः (अन्)	प्र० पु०
:	तम्	त	म० पु०
अम्	व	म	उ० पु०

(२. अ-वाला भेद)

अत्	अताम्	अन्	प्र० पु०
अः	अतम्	अत	म० पु०
अम्	आव	आम	उ० पु०

(३ द्वित्व-वाला भेद)

अत्	अताम्	अन्	प्र० पु०
अः	अतम्	अत	म० पु०
अम्	आव	आम	उ० पु०

(४. स्-वाला भेद)

सीत्	स्ताम्	सुः	प्र० पु०
सीः	स्तम्	स्त	म० पु०
सम्	स्व	स्म	उ० पु०

(५. इष्-वाला भेद)

ईत्	इष्टाम्	इषुः	प्र० पु०
ईः	इष्टम्	इष्ट	म० पु०
इषम्	इष्व	इष्म	उ० पु०

(६. सिष्-वाला भेद)

सीत्	सिष्टाम्	सिषुः	प्र० पु०
सीः	सिष्टम्	सिष्ट	म० पु०
सिषम्	सिष्व	सिष्म	उ० पु०

(७. स-वाला भेद)

सत्	सताम्	सन्	प्र० पु०
स	सतम्	सत	म० पु०
सम्	साव	साम	उ० पु०

आत्मनेपद-लिट्

इ	आते	इरे
(इ)से	आथे	(इ)ध्वे
ए	(इ)वहे	(इ)महे

लुङ् (१. स-लोप वाला भेद)

सूचना—यह भेद आत्मनेपद में नहीं होता। लुङ् के ७ भेद होते हैं। आगे रूपों मे लुङ् के आगे सख्या से इसका निर्देश होगा।

(२. अ-वाला भेद)

अत	एताम्	अन्त
अथाः	एथाम्	अध्वम्
ए	आवहि	आमहि

(३. द्वित्व-वाला भेद)

अत	एताम्	अन्त
अथाः	एथाम्	अध्वम्
ए	आवहि	आमहि

(४. स्-वाला भेद)

स्त	साताम्	सत
स्थाः	साथाम्	ध्वम्
सि	स्वहि	स्महि

(५. इष्-वाला भेद)

इष्ट	इषाताम्	इषत
इष्ठाः	इषाथाम्	इध्वम्-ढ्वम्
इषि	इष्वहि	इष्महि

(६. सिष्-वाला भेद)

सूचना—आत्मनेपद में यह भेद नहीं होता।

(७. स-वाला भेद)

सत	साताम्	सन्त
सथाः	साथाम्	सध्वम्
सि	सावहि	सामहि

(१) भ्वादिगण

(१) भ्वादिगण की प्रथम धातु भू है, अत: इसका नाम
दसो गणों में यह गण सबसे मुख्य है। सबसे अधिक धातुएँ इ
गण तक धातुपाठ में वर्णित धातुओं की संख्या १९४८
धातुसंख्या १९९३ है। इसमें से भ्वादिगण की धातुअ।
ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण धातुपाठ की आधे से अधिक धातु

(२) भ्वादिगण की विशेषताएँ ये हैं—(क) (कर्तरि श
के बीच मे शप् (अ) विकरण लगता है। इसलिए धातु के अन
अन्ति आदि लगेंगे। मूल प्रत्यय ति, त. आदि हैं। (ख) धातु के
उ ऊ, ऋ ॠ को तथा उपधा (अन्तिम अक्षर से पूर्व) के इ, उ, ऋ
ओ, अर् गुण हो जाता है। बाद मे गुण के ए को अय् और ओ को
है। जैसे—भू> भवति, जि>जयति, हृ> हरति, शुच्> शोचति, मुद्>

(३) लट् आदि मे धातु के अन्त में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे।
लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे।

परस्मैपद	लट्			आत्मनेपद	लट्	
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
	लोट्				लोट्	
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)			लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एतायाम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एथायाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

(१) भ्वादिगण

(१) भ्वादिगण की प्रथम धातु भू है, अतः इसका नाम भ्वादिगण पड़ा। दसों गणों में यह गण सबसे मुख्य है। सबसे अधिक धातुएँ इसी गण में हैं। चुरादिगण तक धातुपाठ में वर्णित धातुओं की संख्या १९४४ है, तथा कण्ड्वादि को लेकर धातुसंख्या १९९३ है। इसमें से भ्वादिगण की धातुओं की संख्या १०१० है। अतः ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण धातुपाठ की आधे से अधिक धातुएँ भ्वादिगण में हैं।

(२) भ्वादिगण की विशेषताएँ ये हैं—(क) (कर्तरि शप्) धातु और प्रत्यय के बीच में शप् (अ) विकरण लगता है। इसलिए धातु के अन्त में अति, अतः, अन्ति आदि लगेंगे। मूल प्रत्यय ति, तः आदि हैं। (ख) धातु के अन्तिम स्वर इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ को तथा उपधा (अन्तिम अक्षर से पूर्व) के इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् गुण हो जाता है। बाद में गुण के ए को अय् और ओ को अव् हो जाता है। जैसे—भू> भवति, जि>जयति, हृ> हरति, शुच्>शोचति, मुद्>मोदते।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे।

परस्मैपद लट् — **आत्मनेपद लट्**

अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे

लोट् — **लोट्**

अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ) — **लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)**

अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि

विधिलिङ् — **विधिलिङ्**

एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

(२) हस् (हँसना) (भू के तुल्य) (दे० अ० १) — **(३) पठ् (पढ़ना) (भू के तुल्य) (दे० अ० २)**

हस्				पठ्		
	लट्				लट्	
हसति	हसतः	हसन्ति	प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
हससि	हसथः	हसथ	म० पु०	पठसि	पठथः	पठथ
हसामि	हसावः	हसामः	उ० पु०	पठामि	पठावः	पठामः
	लोट्				लोट्	
हसतु	हसताम्	हसन्तु	प्र० पु०	पठतु	पठताम्	पठन्तु
हस	हसतम्	हसत	म० पु०	पठ	पठतम्	पठत
हसानि	हसाव	हसाम	उ० पु०	पठानि	पठाव	पठाम
	लङ्				लङ्	
अहसत्	अहसताम्	अहसन्	प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
अहसः	अहसतम्	अहसत	म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
अहसम्	अहसाव	अहसाम	उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
हसेत्	हसेताम्	हसेयुः	प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
हसेः	हसेतम्	हसेत	म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
हसेयम्	हसेव	हसेम	उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम
हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति	लृट्	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
हसिता	हसितारौ	हसितारः	लुट्	पठिता	पठितारौ	पठितारः
हस्यात्	हस्यास्ताम्	हस्यासुः	आ० लिङ्	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
अहसिष्यत्	अहसिष्यताम्	अहसिष्यन्	लृङ्	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
	लिट्				लिट्	
जहास	जहसतुः	जहसुः	प्र० पु०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
जहसिथ	जहसथुः	जहस	म० पु०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
जहास, जहस	जहसिव	जहसिम	उ० पु०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अहसीत्	अहसिष्टाम्	अहसिषुः	प्र० पु०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः
अहसीः	अहसिष्टम्	अहसिष्ट	म० पु०	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
अहसिषम्	अहसिष्व	अहसिष्म	उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

सूचना—पठ् के लुङ् में अपठीत् आदि भी रूप होते हैं। हस् (लुङ्) के तुल्य रूप चलेंगे।

(४) रक्ष् (रक्षा करना) (भू के तुल्य) (दे० अ० २) — **(५) वद् (बोलना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ३)**

लट्

रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति	प्र० पु०	वदति	वदतः	वदन्ति
रक्षसि	रक्षथः	रक्षथ	म० पु०	वदसि	वदथः	वदथ
रक्षामि	रक्षावः	रक्षामः	उ० पु०	वदामि	वदावः	वदामः

लोट्

रक्षतु	रक्षताम्	रक्षन्तु	प्र० पु०	वदतु	वदताम्	वदन्तु
रक्ष	रक्षतम्	रक्षत	म० पु०	वद	वदतम्	वदत
रक्षाणि	रक्षाव	रक्षाम	उ० पु०	वदानि	वदाव	वदाम

लङ्

अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्	प्र० पु०	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
अरक्षः	अरक्षतम्	अरक्षत	म० पु०	अवदः	अवदतम्	अवदत
अरक्षम्	अरक्षाव	अरक्षाम	उ० पु०	अवदम्	अवदाव	अवदाम

विधिलिङ्

रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः	प्र० पु०	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
रक्षेः	रक्षेतम्	रक्षेत	म० पु०	वदेः	वदेतम्	वदेत
रक्षेयम्	रक्षेव	रक्षेम	उ० पु०	वदेयम्	वदेव	वदेम

रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति	लृट्	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
रक्षिता	रक्षितारौ	रक्षितारः	लुट्	वदिता	वदितारौ	वदितारः
रक्ष्यात्	रक्ष्यास्ताम्	रक्ष्यासुः	आ० लिङ्	उद्यात्	उद्यास्ताम्	उद्यासुः
अरक्षिष्यत्	अरक्षिष्यताम्	अरक्षिष्यन्	लृङ्	अवदिष्यत्	अवदिष्यताम्	अवदिष्यन्

लिट्

ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः	प्र० पु०	उवाद	ऊदतुः	ऊदुः
ररक्षिथ	ररक्षथुः	ररक्ष	म० पु०	उवदिथ	ऊदथुः	ऊद
ररक्ष	ररक्षिव	ररक्षिम	उ० पु०	उवाद, उवद	ऊदिव	ऊदिम

लुङ् (५)

अरक्षीत्	अरक्षिष्टाम्	अरक्षिषुः	प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	
अरक्षीः	अरक्षिष्टम्	अरक्षिष्ट	म० पु०	अवादीः	अवादिष्टम्	
अरक्षिषम्	अरक्षिष्व	अरक्षिष्म	उ० पु०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादि[illegible]

(६) गम् (जाना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ३) | (७) दृश् (देखना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ४)

सूचना—लट् आदि में गम् को गच्छ् होगा। सूचना—लट् आदि में दृश् को पश्य् होगा।

	लट्				लट्	
गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति	प्र० पु०	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ	म० पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः	उ० पु०	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः
	लोट्				लोट्	
गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु	प्र० पु०	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
गच्छ	गच्छतम्	गच्छत	म० पु०	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम	उ० पु०	पश्यानि	पश्याव	पश्याम
	लङ्				लङ्	
अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्	प्र० पु०	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत	म० पु०	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम	उ० पु०	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः	प्र० पु०	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत	म० पु०	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम	उ० पु०	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम
	—				—	
गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति	लृट्	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः	लुट्	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः	आ० लिङ्	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्	लृङ्	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
	लिट्				लिट्	
जगाम	जग्मतुः	जग्मुः	प्र० पु०	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
जगमिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म	म० पु०	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम	उ० पु०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम
	लुङ् (२)				लुङ् (२), (४)	
अगमत्	अगमताम्	अगमन्	प्र० पु०	(क) अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
अगमः	अगमतम्	अगमत	म० पु०	अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
अगमम्	अगमाव	अगमाम	उ० पु०	अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम
				(ख) अद्राक्षीत्	[illegible]म	अद्राक्षुः
				अद्राक्षी "		

(१०) घ्रा (सूँघना) (भू के तुल्य) (दे० अ० १३)

सूचना—लट् आदि में घ्रा को जिघ्र् होगा।

(११) सद् (बैठना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ५)

सूचना—लट् आदि में सद् को सीद् होगा।

घ्रा				सद्		
	लट्				लट्	
जिघ्रति	जिघ्रत.	जिघ्रन्ति	प्र० पु०	सीदति	सीदतः	सीदन्ति
जिघ्रसि	जिघ्रथ.	जिघ्रथ	म० पु०	सीदसि	सीदथः	सीदथ
जिघ्रामि	जिघ्रावः	जिघ्रामः	उ० पु०	सीदामि	सीदावः	सीदामः
	लोट्				लोट्	
जिघ्रतु	जिघ्रताम्	जिघ्रन्तु	प्र० पु०	सीदतु	सीदताम्	सीदन्तु
जिघ्र	जिघ्रतम्	जिघ्रत	म० पु०	सीद	सीदतम्	सीदत
जिघ्राणि	जिघ्राव	जिघ्राम	उ० पु०	सीदानि	सीदाव	सीदाम
	लङ्				लङ्	
अजिघ्रत्	अजिघ्रताम्	अजिघ्रन्	प्र० पु०	असीदत्	असीदताम्	असीदन्
अजिघ्रः	अजिघ्रतम्	अजिघ्रत	म० पु०	असीदः	असीदतम्	असीदत
अजिघ्रम्	अजिघ्राव	अजिघ्राम	उ० पु०	असीदम्	असीदाव	असीदाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
जिघ्रेत्	जिघ्रेताम्	जिघ्रेयुः	प्र० पु०	सीदेत्	सीदेताम्	सीदेयु.
जिघ्रेः	जिघ्रेतम्	जिघ्रेत	म० पु०	सीदेः	सीदेतम्	सीदेत
जिघ्रेयम्	जिघ्रेव	जिघ्रेम	उ० पु०	सीदेयम्	सीदेव	सीदेम
	—				—	
घ्रास्यति	घ्रास्यतः	घ्रास्यन्ति	लट्	सत्स्यति	सत्स्यतः	सत्स्यन्ति
घ्राता	घ्रातारौ	घ्रातारः	लुट्	सत्ता	सत्तारौ	सत्तार.
घ्रेयात्, घ्रायात्	घ्रेयास्ताम्, घ्रायास्ताम्	घ्रेयासुः, घ्रायासुः	आ० लिङ्	सद्यात्	सद्यास्ताम्	सद्यासुः
अघ्रास्यत्	अघ्रास्यताम्	अघ्रास्यन्	लृङ्	असत्स्यत्	असत्स्यताम्	असत्स्यन्
	लिट्				लिट्	
जघ्रौ	जघ्रतु.	जघ्रु.	प्र० पु०	ससाद	सेदतु.	सेदुः
जघ्रिथ, जघ्राथ	जघ्रथुः	जघ्र	म० पु०	सेदिथ, ससत्थ	सेदथु॰	सेद
जघ्रौ	जघ्रिव	जघ्रिम	उ० पु०	ससाद, ससद	सेदिव	सेदिम
	लुङ् (क) (१)				लुङ् (२)	
अघ्रात्	अघ्राताम्	अघ्रुः	प्र० पु०	असदत्	असदताम्	असदन्
अघ्राः	अघ्रातम्	अघ्रात	म० पु०	असद.	असदतम्	असदत
अघ्राम्	अघ्राव	अघ्राम	उ० पु०	असदम्	असदाव	असदाम
	लुङ् (ख) (६)					
अघ्रासीत्	अघ्रासिष्टाम्	अघ्रासिषुः	प्र०			
अघ्रासीः	अघ्रासिष्टम्	अघ्रासिष्ट	म०			
अघ्रासिषम्	अघ्रासिष्व	अघ्रासिष्म	उ०			

(१२) पच् (पकाना) (भू के तुल्य)
(दि० अ० ११)

(१३) नम (नमस्कार करना)
(दि० अ० ११)

लट्

पच्			पुरुष	नम्		
पचति	पचतः	पचन्ति	प्र० पु०	नमति	[illegible]	[illegible]
पचसि	पचथ	पचथ	म० पु०	नमसि	[illegible]	[illegible]
पचामि	पचाव	पचामः	उ० पु०	नमामि	नमाव	[illegible]

लोट्

पच्			पुरुष	नम्		
पचतु	पचताम्	पचन्तु	प्र० पु०	नमतु	नमताम्	नमन्तु
पच	पचतम्	पचत	म० पु०	नम	नमतम्	नमत
पचानि	पचाव	पचाम	उ० पु०	नमानि	नमाव	नमाम

लङ्

पच्			पुरुष	नम्		
अपचत्	अपचताम्	अपचन्	प्र० पु०	अनमत्	अनमताम्	अनमन्
अपचः	अपचतम्	अपचत	म० पु०	अनम	अनमतम्	अनमत
अपचम्	अपचाव	अपचाम	उ० पु०	अनमम्	अनमाव	अनमाम

विधिलिङ्

पच्			पुरुष	नम्		
पचेत्	पचेताम्	पचेयुः	प्र० पु०	नमेत्	नमेताम्	नमेयु
पचेः	पचेतम्	पचेत	म० पु०	नमेः	नमेतम्	नमेत
पचेयम्	पचेव	पचेम	उ० पु०	नमेयम्	नमेव	नमेम

पच्			लकार	नम्		
पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति	लृट्	नस्यति	नस्यत	नस्यन्ति
पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः	लुट्	नन्ता	नन्तारौ	नन्तारः
पच्यात्	पच्यास्ताम्	पच्यासुः	आ० लिङ्	नम्यात्	नम्यास्ताम्	नम्यासुः
अपक्ष्यत्	अपक्ष्यताम्	अपक्ष्यन्	लृङ्	अनस्यत्	अनस्यताम्	अनस्यन्

लिट्

पच्			पुरुष	नम्		
पपाच	पेचतुः	पेचुः	प्र० पु०	ननाम	नेमतुः	नेमुः
पेचिथ, पपक्थ	पेचथुः	पेच	म० पु०	नेमिथ, ननन्थ	नेमथुः	नेम
पपाच, पपच	पेचिव	पेचिम	उ० पु०	ननाम, ननम	नेमिव	नेमिम

लुङ् (४) / **लुङ् (६)**

पच्			पुरुष	नम्		
अपाक्षीत्	अपाक्ताम्	अपाक्षुः	प्र० पु०	अनसीत्	अनसिष्टाम्	अनसिषुः
अपाक्षीः	अपाक्तम्	अपाक्त	म० पु०	अनसीः	अनसिष्टम्	अनसिष्ट
अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म	उ० पु०	अनसिषम्	अनसिष्व	अनसिष्म

(१४) स्मृ (स्मरण करना) (दे० अ० १२) (१५) जि (जीतना) (दे० अ० १२)

	लट्				लट्	
स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति	प्र० पु०	जयति	जयतः	जयन्ति
स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ	म० पु०	जयसि	जयथः	जयथ
स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः	उ० पु०	जयामि	जयावः	जयामः
	लोट्				**लोट्**	
स्मरतु	स्मरताम्	स्मरन्तु	प्र० पु०	जयतु	जयताम्	जयन्तु
स्मर	स्मरतम्	स्मरत	म० पु०	जय	जयतम्	जयत
स्मराणि	स्मराव	स्मराम	उ० पु०	जयानि	जयाव	जयाम
	लङ्				**लङ्**	
अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्	प्र० पु०	अजयत्	अजयताम्	अजयन्
अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत	म० पु०	अजयः	अजयतम्	अजयत
अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम	उ० पु०	अजयम्	अजयाव	अजयाम
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः	प्र० पु०	जयेत्	जयेताम्	जयेयुः
स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत	म० पु०	जयेः	जयेतम्	जयेत
स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम	उ० पु०	जयेयम्	जयेव	जयेम
स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति	लृट्	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
स्मर्ता	स्मर्तारौ	स्मर्तारः	लुट्	जेता	जेतारौ	जेतारः
स्मर्यात्	स्मर्यास्ताम्	स्मर्यासुः	आ० लिङ्	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः
अस्मरिष्यत्	अस्मरिष्यताम्	अस्मरिष्यन्	लृङ्	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
	लिट्				**लिट्**	
सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः	प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर	म० पु०	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम	उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम
	लुङ् (४)				**लुङ् (४)**	
अस्मार्षीत्	अस्मार्ष्टाम्	अस्मार्षुः	प्र० पु०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
अस्मार्षीः	अस्मार्ष्टम्	अस्मार्ष्ट	म० पु०	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
अस्मार्षम्	अस्मार्ष्व	अस्मार्ष्म	उ० पु०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

(१६) श्रु (सुनना) (दे. अ. २०)

लट् (श्रु को शृ)

शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	प्र० पु०
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	म० पु०
शृणोमि	शृणुवः,-ण्वः	शृणुमः,-ण्मः	उ० पु०

लोट् (श्रु को शृ)

शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु	प्र० पु०
शृणु	शृणुतम्	शृणुत	म० पु०
शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम	उ० पु०

लङ् (श्रु को शृ)

अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्	प्र० पु०
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत	म० पु०
अशृणवम्	अशृणुव,-ण्व	अशृणुम,-ण्म	उ० पु०

विधिलिङ् (श्रु को शृ)

शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः	प्र० पु०
शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात	म० पु०
शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम	उ० पु०

श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति	लृट्
श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः	लुट्
श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः	आ० लिङ्
अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्	लृङ्

लिट्

शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः	प्र० पु०
शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव	म० पु०
शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम	उ० पु०

लुङ् (४)

अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः	प्र० पु०
अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट	म० पु०
अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म	उ० पु०

सूचना—लट् आदि में श्रु को शृ होगा।

(१७) कृष् (जोतना) (दे. अ. १४)

लट्

कर्षति	कर्षतः	कर्षन्ति
कर्षसि	कर्षथः	कर्षथ
कर्षामि	कर्षावः	कर्षामः

लोट्

कर्षतु	कर्षताम्	कर्षन्तु
कर्ष	कर्षतम्	कर्षत
कर्षाणि	कर्षाव	कर्षाम

लङ्

अकर्षत्	अकर्षताम्	अकर्षन्
अकर्षः	अकर्षतम्	अकर्षत
अकर्षम्	अकर्षाव	अकर्षाम

विधिलिङ्

कर्षेत्	कर्षेताम्	कर्षेयुः
कर्षेः	कर्षेतम्	कर्षेत
कर्षेयम्	कर्षेव	कर्षेम

क्रक्ष्यति / कर्क्ष्यति	क्रक्ष्यतः / कर्क्ष्यतः	क्रक्ष्यन्ति / कर्क्ष्यन्ति
क्रष्टा,	कर्ष्टा (दोनों प्रकार से)	
कृष्यात्	कृष्यास्ताम्	कृष्यासुः
अक्रक्ष्यत्,	अकर्क्ष्यत् (दोनों प्रकार से)	

लिट्

चकर्ष	चकृषतुः	चकृषुः
चकर्षिथ	चकृषथुः	चकृष
चकर्ष	चकृषिव	चकृषिम

लुङ् (४)

अकार्क्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्क्षुः
अकार्क्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
अकार्क्षम्	अकार्क्ष्व	अकार्क्ष्म

सूचना—लुङ् में अकृक्षत् और अक्राक्षीत् भी रूप बनेंगे। दृश् (७) के लुङ् के तुल्य रूप चलावे।

(१८) वस् (रहना) (दे. अ. १४) (१९) त्यज (छोड़ना) (दे. अ. १५)

वस्				त्यज		
	लट्				लट्	
वसति	वसत	वसन्ति	प्र० पु०	त्यजति	त्यजतः	त्यजन्ति
वससि	वसथ·	वसथ	म० पु०	त्यजसि	त्यजथः	त्यजथ
वसामि	वसाव.	वसामः	उ० पु०	त्यजामि	त्यजावः	त्यजामः
	लोट्				लोट्	
वसतु	वसताम्	वसन्तु	प्र० पु०	त्यजतु	त्यजताम	त्यजन्तु
वस	वसतम्	वसत	म० पु०	त्यज	त्यजतम्	त्यजत
वसानि	वसाव	वसाम	उ० पु०	त्यजानि	त्यजाव	त्यजाम
	लङ्				लङ्	
अवसत्	अवसताम्	अवसन्	प्र० पु०	अत्यजत्	अत्यजताम्	अत्यजन्
अवसः	अवसतम्	अवसत	म० पु०	अत्यज·	अत्यजतम्	अत्यजत
अवसम्	अवसाव	अवसाम	उ० पु०	अत्यजम्	अत्यजाव	अत्यजाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
वसेत्	वसेताम्	वसेयुः	प्र० पु०	त्यजेत्	त्यजेताम्	त्यजेयु·
वसेः	वसेतम्	वसेत	म० पु०	त्यजे	त्यजेतम्	त्यजेत
वसेयम्	वसेव	वसेम	उ० पु०	त्यजेयम्	त्यजेव	त्यजेम
	—				—	
वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति	लृट्	त्यक्ष्यति	त्यक्ष्यत	त्यक्ष्यन्ति
वस्ता	वस्तारौ	वस्तार	लुट्	त्यक्ता	त्यक्तारौ	त्यक्तारः
उष्यात्	उष्यास्ताम्	उष्यासु·	आ० लिङ्	त्यज्यात्	त्यज्यास्ताम्	त्यज्यासुः
अवत्स्यत्	अवत्स्यताम्	अवत्स्यन्	लृङ्	अत्यक्ष्यत्	अत्य·यताम्	अत्यक्ष्यन्
	लिट्				लिट्	
उवास	ऊषतु·	ऊषुः	प्र० पु०	तत्याज	तत्यजतु	तत्यजुः
उवसिथ, उवस्थ	उषथु.	ऊष	म० पु०	तत्यजिथ, तत्यक्थ	तत्यजथु.	तत्यज
उवास, उवस	ऊषिव	ऊषिम	उ० पु०	तत्याज, तत्यज	तत्यजिव	तत्यजिम
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सु.	प्र० पु०	अत्याक्षीत्	अत्याक्ताम्	अत्याक्षुः
अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त	म० पु०	अत्याक्षी	अत्याक्तम्	अत्याक्त
अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म	उ० पु०	अत्याक्षम्	अत्याक्ष्व	अत्याक्ष्म

भ्वादिगण (आत्मनेपदी धातुएँ)

(२०) सेव् (सेवा करना) (दे० अ० ६)

लट्				लोट्		
सेवते	सेवेते	सेवन्ते	प्र० पु०	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे	म० पु०	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
सेवे	सेवावहे	सेवामहे	उ० पु०	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लङ्				विधिलिङ्		
असेवत	असेवेताम्	असेवन्त	प्र० पु०	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्	म० पु०	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
असेवे	असेवावहि	असेवामहि	उ० पु०	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

लृट्				लुट्		
सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते	प्र० पु०	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे	म० पु०	सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे	उ० पु०	सेविताहे	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

आशीर्लिङ्				लृङ्		
सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्	प्र० पु०	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्	म० पु०	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि	उ० पु०	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

लिट्				लुङ् (५)		
सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे	प्र० पु०	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
सिषेविषे	सिषेवाथे	सिषेविध्वे	म० पु०	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविध्वम्
सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे	उ० पु०	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

सूचना—लङ्, लुङ् और लृङ् में धातु से पहले 'अ' लगता है। यदि धातु का प्रथम अक्षर स्वर होगा तो धातु से पहले 'आ' लगेगा और सन्धि-कार्य भी होगा।

(२१) लभ् (पाना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ९)

(२२) वृध् (बढ़ना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ७)

लट्

लभते	लभेते	लभन्ते	प्र० पु०	वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते
लभसे	लभेथे	लभध्वे	म० पु०	वर्धसे	वर्धेथे	वर्धध्वे
लभे	लभावहे	लभामहे	उ० पु०	वर्धे	वर्धावहे	वर्धामहे

लोट्

लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्	प्र० पु०	वर्धताम्	वर्धेताम्	वर्धन्ताम्
लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्	म० पु०	वर्धस्व	वर्धेथाम्	वर्धध्वम्
लभै	लभावहै	लभामहै	उ० पु०	वर्धै	वर्धावहै	वर्धामहै

लङ्

अलभत	अलभेताम्	अलभन्त	प्र० पु०	अवर्धत	अवर्धेताम्	अवर्धन्त
अलभया.	अलभेथाम्	अलभध्वम्	म० पु०	अवर्धथाः	अवर्धेथाम्	अवर्धध्वम्
अलभे	अलभावहि	अलभामहि	उ० पु०	अवर्धे	अवर्धावहि	अवर्धामहि

विधिलिङ्

लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्	प्र० पु०	वर्धेत	वर्धेयाताम्	वर्धेरन्
लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्	म० पु०	वर्धेथाः	वर्धेयाथाम्	वर्धेध्वम्
लभेय	लभेवहि	लभेमहि	उ० पु०	वर्धेय	वर्धेवहि	वर्धेमहि

लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते	लृट्	वर्धिष्यते, वर्त्स्यति (दोनों प्रकार से)
लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः	लुट्	वर्धिता वर्धितारौ वर्धितारः
लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्	आ० लिङ्	वर्धिषीष्ट वर्धिषीयास्ताम् वर्धिषीरन्
अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त	लृङ्	अवर्धिष्यत, अवर्त्स्यत् (दोनों प्रकार से)

लिट्

लेभे	लेभाते	लेभिरे	प्र० पु०	ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे
लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे	म० पु०	ववृधिषे	ववृधाथे	ववृधिध्वे
लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे	उ० पु०	ववृधे	ववृधिवहे	ववृधिमहे

लुङ् (४) — **लुङ् (क) (५)**

अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत	प्र० पु०	अवर्धिष्ट	अवर्धिषाताम्	अवर्धिषत
अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्	म० पु०	अवर्धिष्ठाः	अवर्धिषाथाम्	अवर्धिध्वम्
अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि	उ० पु०	अवर्धिषि	अवर्धिष्वहि	अवर्धिष्महि

लुङ् (ख) (२)

अवृधत्	अवृधताम्	अवृधन्
अवृध.	अवृधतम्	अवृधत
अव	अवृधाव	अवृधाम

भ्वादिगण (उभयपदी धातुएँ)

(२७) नी (ले जाना) परस्मैपद   आत्मनेपद (दे अ १८)

	लट्				लट्	
नयति	नयत	नयन्ति	प्र०	नयते	नयेते	नयन्ते
नयसि	नयथः	नयथ	म०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
नयामि	नयाव.	नयाम	उ०	नये	नयावहे	नयामहे
	लोट्				**लोट्**	
नयतु	नयताम्	नयन्तु	प्र०	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
नय	नयतम्	नयत	म०	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
नयानि	नयाव	नयाम	उ०	नयै	नयावहै	नयामहै
	लङ्				**लङ्**	
अनयत्	अनयताम्	अनयन्	प्र०	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
अनयः	अनयतम्	अनयत	म०	अनयथा.	अनयेथाम्	अनयध्वम्
अनयम्	अनयाव	अनयाम	उ०	अनये	अनयावहि	अनयामहि
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
नयेत्	नयेताम्	नयेयु	प्र०	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
नयेः	नयेतम्	नयेत	म०	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
नयेयम्	नयेव	नयेम	उ०	नयेय	नयेवहि	नयेमहि
	—				—	
नेष्यति	नेष्यत	नेष्यन्ति	लृट्	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
नेता	नेतारौ	नेतारः	लुट्	नेता	नेतारौ	नेतारः
नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासु	आ०लिङ्	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्	लृङ्	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
	लिट्				**लिट**	
निनाय	निन्यतु	निन्यु	प्र०	निन्ये	निन्याते	[illegible]
निनयिथ,निनेथ	निन्यथु	निन्य	म०	निन्यिषे	निन्याथे	[illegible]
निनाय,निनय	निन्यिव	निन्यिम	उ०	निन्ये	निन्यिवहे	[illegible]
	लुङ् (४)				**लुङ् (४)**	
अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषु	प्र०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
अनैषी	अनैष्टम्	अनैष्ट	म०	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म	उ०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

(२५) वृत् (होना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ६)

लट्

वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते	प्र०
वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे	म०
वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे	उ०

लोट्

वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्	प्र०
वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्	म०
वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै	उ०

लङ्

अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त	प्र०
अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्	म०
अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि	उ०

विधिलिङ्

वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्	प्र०
वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्	म०
वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि	उ०

वर्तिष्यते, वर्त्स्यति (दोनों प्रकार से) लृट्

वर्तिता वर्तितारौ वर्तितारः लुट्

वर्तिषीष्ट वर्तिषीयास्ताम्० आ० लिङ्

अवर्तिष्यत, अवर्त्स्यत् (दोनों प्रकार से) लृङ्

लिट्

ववृते	ववृताते	ववृतिरे	प्र०
ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिध्वे	म०
ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे	उ०

लुङ् (क) (५)

अवर्तिष्ट	अवर्तिषाताम्	अवर्तिषत	प्र०
अवर्तिष्ठाः	अवर्तिषाथाम्	अवर्तिध्वम्	म०
अवर्तिषि	अवर्तिष्वहि	अवर्तिष्महि	उ०

लुङ् (ख) (२)

अवृतत्	अवृतताम्	अवृतन्	प्र०
अवृतः	अवृततम्	अवृतत	म०
अवृतम्	अवृताव	अवृताम	उ०

(२६) ईक्ष (देखना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ७)

लट्

ईक्षते	ईक्षेते	ईक्षन्ते
ईक्षसे	ईक्षेथे	ईक्षध्वे
ईक्षे	ईक्षावहे	ईक्षामहे

लोट्

ईक्षताम्	ईक्षेताम्	ईक्षन्ताम्
ईक्षस्व	ईक्षेथाम्	ईक्षध्वम्
ईक्षै	ईक्षावहै	ईक्षामहै

लङ्

ऐक्षत	ऐक्षेताम्	ऐक्षन्त
ऐक्षथाः	ऐक्षेथाम्	ऐक्षध्वम्
ऐक्षे	ऐक्षावहि	ऐक्षामहि

विधिलिङ्

ईक्षेत	ईक्षेयाताम्	ईक्षेरन्
ईक्षेथाः	ईक्षेयाथाम्	ईक्षेध्वम्
ईक्षेय	ईक्षेवहि	ईक्षेमहि

ईक्षिष्यते	ईक्षिष्येते	ईक्षिष्यन्ते
ईक्षिता	ईक्षितारौ	ईक्षितारः
ईक्षिषीष्ट	ईक्षिषीयास्ताम्०	
ऐक्षिष्यत	ऐक्षिष्येताम्०	

लिट्

ईक्षाञ्चक्रे	ईक्षाञ्चक्राते	ईक्षाञ्चक्रिरे
ईक्षाञ्चकृषे	ईक्षाञ्चक्राथे	ईक्षाञ्चकृढ्वे
ईक्षाञ्चक्रे	ईक्षाञ्चकृवहे	ईक्षाञ्चकृमहे

लुङ् (५)

ऐक्षिष्ट	ऐक्षिषाताम्	ऐक्षिषत
ऐक्षिष्ठाः	ऐक्षिषाथाम्	ऐक्षिध्वम्
ऐक्षिषि	ऐक्षिष्वहि	ऐक्षिष्महि

भ्वादिगण (उभयपदी धातुएँ)

(२७) नी (ले जाना) परस्मैपद | **आत्मनेपद (दे अ. १८)**

परस्मैपद				आत्मनेपद		
	लट्				लट्	
नयति	नयत•	नयन्ति	प्र०	नयते	नयेते	नयन्ते
नयसि	नयथः	नयथ	म०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
नयामि	नयाव	नयाम	उ०	नये	नयावहे	नयामहे
	लोट्				लोट्	
नयतु	नयताम्	नयन्तु	प्र०	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
नय	नयतम्	नयत	म०	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
नयानि	नयाव	नयाम	उ०	नयै	नयावहै	नयामहै
	लङ्				लङ्	
अनयत्	अनयताम्	अनयन्	प्र०	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
अनयः	अनयतम्	अनयत	म०	अनयथा	अनयेथाम्	अनयध्वम्
अनयम्	अनयाव	अनयाम	उ०	अनये	अनयावहि	अनयामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नयेत्	नयेताम्	नयेयु	प्र०	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
नये•	नयेतम्	नयेत	म०	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
नयेयम्	नयेव	नयेम	उ०	नयेय	नयेवहि	नयेमहि
नेष्यति	नेष्यत	नेष्यन्ति	लट्	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
नेता	नेतारौ	नेतार•	लुट्	नेता	नेतारौ	नेतारः
नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासु॰	आ०लिङ्	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्	लृङ्	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
	लिट्				लिट	
निनाय	निन्यतु	निन्यु	प्र०	निन्ये	निन्याते	[illegible]
निनयिथ,निनेथ	निन्यथु	निन्य	म०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यि
निनाय,निनय	निन्यिव	निन्यिम	उ०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषु	प्र०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
अनैषी	अनैष्टम्	अनैष्ट	म०	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म	उ०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

(२८) हृ (हरना) परस्मैपद — **आत्मनेपद (दे. अ. १९)**

लट्				लट्		
हरति	हरतः	हरन्ति	प्र०	हरते	हरेते	हरन्ते
हरसि	हरथः	हरथ	म०	हरसे	हरेथे	हरध्वे
हरामि	हरावः	हरामः	उ०	हरे	हरावहे	हरामहे

लोट्				लोट्		
हरतु	हरताम्	हरन्तु	प्र०	हरताम्	हरेताम्	हरन्ताम्
हर	हरतम्	हरत	म०	हरस्व	हरेथाम्	हरध्वम्
हराणि	हराव	हराम	उ०	हरै	हरावहै	हरामहै

लङ्				लङ्		
अहरत्	अहरताम्	अहरन्	प्र०	अहरत	अहरेताम्	अहरन्त
अहरः	अहरतम्	अहरत	म०	अहरथाः	अहरेथाम्	अहरध्वम्
अहरम्	अहराव	अहराम	उ०	अहरे	अहरावहि	अहरामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
हरेत्	हरेताम्	हरेयुः	प्र०	हरेत	हरेयाताम्	हरेरन्
हरेः	हरेतम्	हरेत	म०	हरेथाः	हरेयाथाम्	हरेध्वम्
हरेयम्	हरेव	हरेम	उ०	हरेय	हरेवहि	हरेमहि

हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति	लृट्	हरिष्यते	हरिष्येते	हरिष्यन्ते
हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः	लुट्	हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
ह्रियात्	ह्रियास्ताम्	ह्रियासुः	आ०लिङ्	हृषीष्ट	हृषीयास्ताम्	हृषीरन्
अहरिष्यत्	अहरिष्यताम्	अहरिष्यन्	लृङ्	अहरिष्यत	अहरिष्येताम्	अहरिष्यन्त

लिट्				लिट्		
जहार	जह्रतुः	जह्रुः	प्र०	जह्रे	जह्राते	जह्रिरे
जहर्थ	जह्रथुः	जह्र	म०	जह्रिषे	जह्राथे	जह्रिध्वे
जहार, जहर	जह्रिव	जह्रिम	उ०	जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे

लुङ् (४)				लुङ् (४)		
अहार्षीत्	अहार्ष्टाम्	अहार्षुः	प्र०	अहृत	अहृषाताम्	अहृषत
अहार्षीः	अहार्ष्टम्	अहार्ष्ट	म०	अहृथाः	अहृषाथाम्	अहृढ्वम्
अहार्षम्	अहार्ष्व	अहार्ष्म	उ०	अहृषि	अहृष्वहि	अहृष्महि

(२९) याच् (माँगना) परस्मैपद — आत्मनेपद (दे० अ० १६)

लट्				लट्		
याचति	याचतः	याचन्ति	प्र०	याचते	याचेते	याचन्ते
याचसि	याचथः	याचथ	म०	याचसे	याचेथे	याचध्वे
याचामि	याचावः	याचामः	उ०	याचे	याचावहे	याचामहे

लोट्				लोट्		
याचतु	याचताम्	याचन्तु	प्र०	याचताम्	याचेताम्	याचन्ताम्
याच	याचतम्	याचत	म०	याचस्व	याचेथाम्	याचध्वम्
याचानि	याचाव	याचाम	उ०	याचै	याचावहै	याचामहै

लङ्				लङ्		
अयाचत्	अयाचताम्	अयाचन्	प्र०	अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त
अयाचः	अयाचतम्	अयाचत	म०	अयाचथाः	अयाचेथाम्	अयाचध्वम्
अयाचम्	अयाचाव	अयाचाम	उ०	अयाचे	अयाचावहि	अयाचामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
याचेत्	याचेताम्	याचेयुः	प्र०	याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्
याचेः	याचेतम्	याचेत	म०	याचेथाः	याचेयाथाम्	याचेध्वम्
याचेयम्	याचेव	याचेम	उ०	याचेय	याचेवहि	याचेमहि

याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति	लृट्	याचिष्यते	याचिष्येते	याचिष्यन्ते
याचिता	याचितारौ	याचितारः	लुट्	याचिता	याचितारौ	याचितारः
याच्यात्	याच्यास्ताम्	याच्यासुः	आ० लिङ्	याचिषीष्ट	याचिषीयास्ताम्०	
अयाचिष्यत्	अयाचिष्यताम्०		लृङ्	अयाचिष्यत	अयाचिष्येताम्०	

लिट्				लिट्		
ययाच	ययाचतुः	ययाचुः	प्र०	ययाचे	ययाचाते	ययाचिरे
ययाचिथ	ययाचथुः	ययाच	म०	ययाचिषे	ययाचाथे	ययाचिध्वे
ययाच	ययाचिव	ययाचिम	उ०	ययाचे	ययाचिवहे	ययाचिमहे

लुङ् (५)				लुङ् (५)		
अयाचीत्	अयाचिष्टाम्	अयाचिषुः	प्र०	अयाचिष्ट	अयाचिषाताम्	अयाचिषत
अयाचीः	अयाचिष्टम्	अयाचिष्ट	म०	अयाचिष्ठाः	अयाचिषाथाम्	।चि
अयाचिषम्	अयाचिष्व	अयाचिष्म	उ०	अयाचिषि	अयाचिष्वहि	अयाचिष्महि

(३०) वह् (ढोना) परस्मैपद — **आत्मनेपद (दे० अ० १७)**

लट्

वहति	वहतः	वहन्ति	प्र०	वहते	वहेते	वहन्ते
वहसि	वहथः	वहथ	म०	वहसे	वहेथे	वहध्वे
वहामि	वहावः	वहामः	उ०	वहे	वहावहे	वहामहे

लोट्

वहतु	वहताम्	वहन्तु	प्र०	वहताम्	वहेताम्	वहन्ताम्
वह	वहतम्	वहत	म०	वहस्व	वहेथाम्	वहध्वम्
वहानि	वहाव	वहाम	उ०	वहै	वहावहै	वहामहै

लङ्

अवहत्	अवहताम्	अवहन्	प्र०	अवहत	अवहेताम्	अवहन्त
अवहः	अवहतम्	अवहत	म०	अवहथाः	अवहेथाम्	अवहध्वम्
अवहम्	अवहाव	अवहाम	उ०	अवहे	अवहावहि	अवहामहि

विधिलिङ्

वहेत्	वहेताम्	वहेयुः	प्र०	वहेत	वहेयाताम्	वहेरन्
वहेः	वहेतम्	वहेत	म०	वहेथाः	वहेयाथाम्	वहेध्वम्
वहेयम्	वहेव	वहेम	उ०	वहेय	वहेवहि	वहेमहि

वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वोढा	वोढारौ	वोढारः	लुट्	वोढा	वोढारौ	वोढारः
उह्यात्	उह्यास्ताम्	उह्यासुः	आ०लिङ्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त

लिट्

उवाह	ऊहतुः	ऊहुः	प्र०	ऊहे	ऊहाते	ऊहिरे
उवहिथ, उवोढ	ऊहथुः	ऊह	म०	ऊहिषे	ऊहाथे	ऊहिध्वे
उवाह, उवह	ऊहिव	ऊहिम	उ०	ऊहे	ऊहिवहे	ऊहिमहे

लुङ् (४)

अवाक्षीत्	अवोढाम्	अवाक्षुः	प्र०	अवोढ	अवक्षाताम्	अवक्षत
अवाक्षीः	अवोढम्	अवोढ	म०	अवोढाः	अवक्षाथाम्	अवोढ्वम्
अवाक्षम्	अवाक्ष्व	अवाक्ष्म	उ०	अवक्षि	अवक्ष्वहि	अवक्ष्महि

(२) अदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु अद् (खाना) है, अतः गण का नाम अदादिगण पड़ा। (अदिप्रभृतिभ्यः शपः) अदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में कोई विकरण नहीं लगता है (शप् का लोप होता है)। धातु के अन्त में केवल ति, तः आदि लगते हैं। उपर्युक्त लकारों में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में ७२ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में सक्षिप्त-रूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सक्षिप्त-रूप ही लगेंगे। लृट् आदि में सेट् (इ वाली) धातुओं में सक्षिप्त-रूप से पहले इ भी लगता है, अनिट् (इ-नहीं वाली) धातुओं में केवल सक्षिप्त-रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (स० रूप)				आत्मनेपद (स० रूप)		
	लट्				लट्	
ति	तः	अन्ति	प्र०	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म०	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ०	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अन्तु	प्र०	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म०	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
त्	ताम्	अन्	प्र०	त	आताम्	अत
	तम्	त	म०	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
या०	यातम्	यात	म०	ईथा०	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

अदादिगण (परस्मैपदी धातुएँ)

(३१) अद् (खाना) (दे० अ० २३)

लट्				लोट्		
अत्ति	अत्तः	अदन्ति	प्र०	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
अत्सि	अत्थः	अत्थ	म०	अद्धि	अत्तम्	अत्त
अद्मि	अद्वः	अद्मः	उ०	अदानि	अदाव	अदाम

लङ्				विधिलिङ्		
आदत्	आत्ताम्	आदन्	प्र०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
आदः	आत्तम्	आत्त	म०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
आदम्	आद्व	आद्म	उ०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लृट्				लुट्		
अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति	प्र०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ	म०	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः	उ०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

आशीर्लिङ्				लृङ्		
अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासुः	प्र०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
अद्याः	अद्यास्तम्	अद्यास्त	म०	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म	उ०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

लिट् (क)				लुङ् (२) (अद् को घस्)		
आद	आदतुः	आदुः	प्र०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
आदिथ	आदथुः	आद	म०	अघसः	अघसतम्	अघसत
आद	आदिव	आदिम	उ०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

लिट् (ख) (अद् को घस्)			
जघास	जक्षतुः	जक्षुः	प्र०
जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष	म०
जघास, जघस	जक्षिव	जक्षिम	उ०

(३२) अस् (होना) (दे. अ. २४) — (३३) इ (जाना) (दे. अ. ३०)

सूचना—लिट्, लुङ् आदि में अस् को भू होगा । सूचना—इ को लुङ् में गा होगा ।

अस्				इ		
लट्				लट्		
अस्ति	स्तः	सन्ति	प्र०	एति	इतः	यन्ति
असि	स्थः	स्थ	म०	एषि	इथः	इथ
अस्मि	स्वः	स्मः	उ०	एमि	इवः	इमः
लोट्				लोट्		
अस्तु	स्ताम्	सन्तु	प्र०	एतु	इताम्	यन्तु
एधि	स्तम्	स्त	म०	इहि	इतम्	इत
असानि	असाव	असाम	उ०	अयानि	अयाव	अयाम
लङ्				लङ्		
आसीत्	आस्ताम्	आसन्	प्र०	ऐत्	ऐताम्	आयन्
आसीः	आस्तम्	आस्त	म०	ऐः	ऐतम्	ऐत
आसम्	आस्व	आस्म	उ०	आयम्	ऐव	ऐम
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
स्यात्	स्याताम्	स्युः	प्र०	इयात्	इयाताम्	इयुः
स्याः	स्यातम्	स्यात	म०	इयाः	इयातम्	इयात
स्याम्	स्याव	स्याम	उ०	इयाम्	इयाव	इयाम

—— ——

भविष्यति	भविष्यतः०	(भू के तुल्य) लट्	एष्यति	एष्यतः	एष्यन्ति
भविता	भवितारौ०	(,,) लुट्	एता	एतारौ	एतारः
भूयात्	भूयास्ताम्०	(,,) आ० लिङ्	ईयात्	ईयास्ताम्	ईयासुः
अभविष्यत्	अभविष्यताम्०	(,,) लृङ्	ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्

लिट् (भू के तुल्य)				लिट्		
बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र०	इयाय	ईयतुः	ईयुः
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म०	इययिथ, इयेथ	ईयथुः	ईय
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम
लुङ् (१) (भू के तुल्य)				लुङ् (१) (इ को गा)		
अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	प्र०	अगात्	अगाताम्	अगुः
अभूः	अभूतम्	अभूत	म०	अगाः	अगातम्	अगात
अभूवम्	अभूव	अभूम	उ०	अगाम्	अगाव	अगाम

(३४) रुद् (रोना) (दे० अ० २८)

लट्

रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	प्र०
रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ	म०
रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः	उ०

लोट्

रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु	प्र०
रुदिहि	रुदितम्	रुदित	म०
रोदानि	रोदाव	रोदाम	उ०

लङ्

अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्	प्र०
अरोदी., अरोद.	अरुदितम्	अरुदित	म०
अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम	उ०

विधिलिङ्

रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः	प्र०
रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात	म०
रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम	उ०

रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति	लृट्
रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः	लुट्
रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः	आ० लिङ्
अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्०		लृङ्

लिट्

रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः	प्र०
रुरोदिथ	रुरुदथु॰	रुरुद	म०
रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम	उ०

लुङ् (क) (२)

अरुदत्	अरुदताम्	अरुदन्	प्र०
अरुदः	अरुदतम्	अरुदत	म०
अरुदम्	अरुदाव	अरुदाम	उ०

लुङ् (ख) (५)

अरोदीत्	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः	प्र०
अरोदी॰	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट	म०
	अरोदिष्व	अरोदिष्म	उ०

(३५) स्वप् (सोना) (दे० अ० २८)

लट्

स्वपिति	स्वपित॰	स्वपन्ति
स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
स्वपिमि	स्वपिव.	स्वपिमः

लोट्

स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

लङ्

अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
अस्वपीः, अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

विधिलिङ्

स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्यु.
स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

स्वप्स्यति	स्वप्स्यत.	स्वप्स्यन्ति
स्वप्ता	स्वप्तारौ	स्वप्तारः
सुप्यात्	सुप्यास्ताम्	सुप्यासुः
अस्वप्स्यत्	अस्वप्स्यताम्०	

लिट्

सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथु	सुषुप
सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम

लुङ् (४)

अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

(३६) दुह् (दुहना) (दे० अ० २७) (३७) लिह् (चाटना) (दे० अ० २७)

सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं । सूचना—केवल परस्मै० के रूप दिए हैं ।

	लट्				लट्	
दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति	प्र०	लेढि	लीढः	लिहन्ति
धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध	म०	लेक्षि	लीढः	लीढ
दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः	उ०	लेह्मि	लिह्वः	लिह्मः
	लोट्				लोट्	
दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु	प्र०	लेढु	लीढाम्	लिहन्तु
दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध	म०	लीढि	लीढम्	लीढ
दोहानि	दोहाव	दोहाम	उ०	लेहानि	लेहाव	लेहाम
	लङ्				लङ्	
अधोक्,–ग्	अदुग्धाम्	अदुहन्	प्र०	अलेट्,–ड्	अलीढाम्	अलिहन्
अधोक्,–ग्	अदुग्धम्	अदुग्ध	म०	,, ,,	अलीढम्	अलीढ
अदोहम्	अदुह्व	अदुह्म	उ०	अलेहम्	अलिह्व	अलिह्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दुह्यात्	दुह्याताम्	दुह्युः	प्र०	लिह्यात्	लिह्याताम्	लिह्युः
दुह्याः	दुह्यातम्	दुह्यात	म०	लिह्याः	लिह्यातम्	लिह्यात
दुह्याम्	दुह्याव	दुह्याम	उ०	लिह्याम्	लिह्याव	लिह्याम

धोक्ष्यति	धोक्ष्यतः	धोक्ष्यन्ति	लृट्	लेक्ष्यति	लेक्ष्यतः	लेक्ष्यन्ति
दोग्धा	दोग्धारौ	दोग्धारः	लुट्	लेढा	लेढारौ	लेढारः
दुह्यात्	दुह्यास्ताम्	दुह्यासुः	आ०लिङ्	लिह्यात्	लिह्यास्ताम्	लिह्यासुः
अधोक्ष्यत्	अधोक्ष्यताम्	अधोक्ष्यन्	लृङ्	अलेक्ष्यत्	अलेक्ष्यताम्०	
	लिट्				लिट्	
दुदोह	दुदुहतुः	दुदुहुः	प्र०	लिलेह	लिलिहतुः	लिलिहुः
दुदोहिथ	दुदुहथुः	दुदुह	म०	लिलेहिथ	लिलिहथुः	लिलिह
दुदोह	दुदुहिव	दुदुहिम	उ०	लिलेह	लिलिहिव	लिलिहिम
	लुङ् (७)				लुङ् (७)	
अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्	प्र०	अलिक्षत्	अलिक्षताम्	अलिक्षन्
अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत	म०	अलिक्षः	अलिक्षतम्	अलिक्षत
अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम	उ०	अलिक्षम्	अलिक्षाव	अलिक्षाम

(३४) रुद् (रोना) (दे० अ० २८)

लट्

रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	प्र०
रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ	म०
रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः	उ०

लोट्

रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु	प्र०
रुदिहि	रुदितम्	रुदित	म०
रोदानि	रोदाव	रोदाम	उ०

लङ्

अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्	प्र०
अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित	म०
अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम	उ०

विधिलिङ्

रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः	प्र०
रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात	म०
रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम	उ०

रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति	लृट्
रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः	लुट्
रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः	आ० लिङ्
अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्०		लृङ्

लिट्

रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः	प्र०
रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद	म०
रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम	उ०

लुङ् (क) (२)

अरुदत्	अरुदताम्	अरुदन्	प्र०
अरुदः	अरुदतम्	अरुदत	म०
अरुदम्	अरुदाव	अरुदाम	उ०

लुङ् (ख) (५)

अरोदीत्	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः	प्र०
अरोदीः	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट	म०
[illegible]	अरोदिष्व	अरोदिष्म	उ०

(३५) स्वप् (सोना) (दे० अ० २८)

लट्

स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः

लोट्

स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

लङ्

अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
अस्वपीः, अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

विधिलिङ्

स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

स्वप्स्यति	स्वप्स्यतः	स्वप्स्यन्ति
स्वप्ता	स्वप्तारौ	स्वप्तारः
सुप्यात्	सुप्यास्ताम्	सुप्यासुः
अस्वप्स्यत्	अस्वप्स्यताम्०	

लिट्

सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथुः	सुषुप
सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम

लुङ् (४)

अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

---

(२६) दुह् (दुहना) (दे० अ० २७) (२७) लिह् (चाटना) (दे० अ० २७)

सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं । **सूचना**—केवल परस्मै० के रूप दिए है ।

	लट्				लट्	
दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति	प्र०	लेढि	लीढ	लिहन्ति
धोक्षि	दुग्ध.	दुग्ध	म०	लेक्षि	लीढ.	लीढ
दोह्मि	दुह्व.	दुह्म.	उ०	लेह्मि	लिह्व.	लिह्मः
	लोट्				लोट्	
दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु	प्र०	लेढु	लीढाम्	लिहन्तु
दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध	म०	लीढि	लीढम्	लीढ
दोहानि	दोहाव	दोहाम	उ०	लेहानि	लेहाव	लेहाम
	लङ्				लङ्	
अधोक्,—ग्	अदुग्धाम्	अदुहन्	प्र०	अलेट्,—ड्	अलीढाम्	अलिहन्
अधोक्,—ग्	अदुग्धम्	अदुग्ध	म०	,, ,,	अलीढम्	अलीढ
अदोहम्	अदुह्व	अदुह्म	उ०	अलेहम्	अलिह्व	अलिह्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दुह्यात्	दुह्यातम्	दुह्युः	प्र०	लिह्यात्	लिह्याताम्	लिह्यु.
दुह्या.	दुह्यातम्	दुह्यात	म०	लिह्याः	लिह्यातम्	लिह्यात
दुह्याम्	दुह्याव	दुह्याम	उ०	लिह्याम्	लिह्याव	लिह्याम

धोक्ष्यति	धोक्ष्यतः	धोक्ष्यन्ति	लृट्	लेक्ष्यति	लेक्ष्यत	लेक्ष्यन्ति
दोग्धा	दोग्धारौ	दोग्धारः	लुट्	लेढा	लेढारौ	लेढार॰
दुह्यात्	दुह्यास्ताम्	दुह्यासु.	आ०लिङ्	लिह्यात्	लिह्यास्ताम्	लिह्यासु.
अधोक्ष्यत्	अधोक्ष्यताम्	अधोक्ष्यन्	लृङ्	अलेक्ष्यत्	अलेक्ष्यताम्०	

	लिट्				लिट्	
दुदोह	दुदुहतुः	दुदुहु	प्र०	लिलेह	लिलिहतु.	लिलिहु.
दुदोहिथ	दुदुहथु	दुदुह	म०	लिलेहिथ	लिलिहथु.	लिलिह
दुदोह	दुदुहिव	दुदुहिम	उ०	लिलेह	लिलिहिव	लिलिहि
	लुङ् (७)				लुङ् (७)	
अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्	प्र०	अलिक्षत्	अलिक्षताम्	अलिक्षन्
अधुक्ष.	अधुक्षतम्	अधुक्षत	म०	अलिक्षः	अलिक्षतम्	अलिक्षत
अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम	उ०	अलिक्षम्	अलिक्षाव	अलिक्षाम

(३८) हन् (मारना) (दे० अ० २९)　　(३९) स्तु (स्तुति करना) (दे० अ० २९)

	हन्			स्तु		
	लट्				लट्	
हन्ति	हतः	घ्नन्ति	प्र०	स्तौति, स्तवीति	स्तुतः	स्तुवन्ति
हन्सि	हथः	हथ	म०	स्तौषि, स्तवीषि	स्तुथः	स्तुथ
हन्मि	हन्वः	हन्मः	उ०	स्तौमि, स्तवीमि	स्तुवः	स्तुमः
	लोट्				लोट्	
हन्तु	हताम्	घ्नन्तु	प्र०	स्तौतु, स्तवीतु	स्तुताम्	स्तुवन्तु
जहि	हतम्	हत	म०	स्तुहि	स्तुतम्	स्तुत
हनानि	हनाव	हनाम	उ०	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम
	लङ्				लङ्	
अहन्	अहताम्	अघ्नन्	प्र०	अस्तौत्, अस्तवीत्	अस्तुताम्	अस्तुवन्
अहन्	अहतम्	अहत	म०	अस्तौः, अस्तवीः	अस्तुतम्	अस्तुत
अहनम्	अहन्व	अहन्म	उ०	अस्तवम्	अस्तुव	अस्तुम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः	प्र०	स्तुयात्	स्तुयाताम्	स्तुयुः
हन्याः	हन्यातम्	हन्यात	म०	स्तुयाः	स्तुयातम्	स्तुयात
हन्याम्	हन्याव	हन्याम	उ०	स्तुयाम्	स्तुयाव	स्तुयाम
हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति	लृट्	स्तोष्यति	स्तोष्यतः	स्तोष्यन्ति
हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः	लुट्	स्तोता	स्तोतारौ	स्तोतारः
वध्यात्	वध्यास्ताम्	वध्यासुः	आ०लिङ्	स्तूयात्	स्तूयास्ताम्	स्तूयासुः
अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्०		लृङ्	अस्तोष्यत्	अस्तोष्यताम्०	
	लिट्				लिट्	
जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः	प्र०	तुष्टाव	तुष्टुवतुः	तुष्टुवुः
जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न	म०	तुष्टोथ	तुष्टुवथुः	तुष्टुव
जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम	उ०	तुष्टाव, तुष्टव	तुष्टुव	तुष्टुम
	लुङ् (५) (हन् को वध)				लुङ् (५)	
अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः	प्र०	अस्तावीत्	अस्ताविष्टाम्	अस्ताविषुः
अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट	म०	अस्तावीः	अस्ताविष्टम्	अस्ताविष्ट
	अवधिष्व	अवधिष्म	उ०	अस्ताविषम्	अस्ताविष्व	अस्ताविष्म

(४०) या (जाना) (दे० अ० २६)				(४१) पा (रक्षा करना) (दे० अ० २६)		
	लट्				लट्	
याति	यातः	यान्ति	प्र०	पाति	पातः	पान्ति
यासि	याथः	याथ	म०	पासि	पाथः	पाथ
यामि	यावः	यामः	उ०	पामि	पावः	पामः
	लोट्				लोट्	
यातु	याताम्	यान्तु	प्र०	पातु	पाताम्	पान्तु
याहि	यातम्	यात	म०	पाहि	पातम्	पात
यानि	याव	याम	उ०	पानि	पाव	पाम
	लङ्				लङ्	
अयात्	अयाताम्	अयुः, अयान्	प्र०	अपात्	अपाताम्	अपुः, अपान्
अयाः	अयातम्	अयात	म०	अपाः	अपातम्	अपात
अयाम्	अयाव	अयाम	उ०	अपाम्	अपाव	अपाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यायात्	यायाताम्	यायुः	प्र०	पायात्	पायाताम्	पायुः
यायाः	यायातम्	यायात	म०	पायाः	पायातम्	पायात
यायाम्	यायाव	यायाम	उ०	पायाम्	पायाव	पायाम

यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति	लृट्	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
याता	यातारौ	यातारः	लुट्	पाता	पातारौ	पातारः
यायात्	यायास्ताम्	यायासुः	आ०लिङ्	पायात्	पायास्ताम्	पायासुः
अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्	लृङ्	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
	लिट्				लिट्	
ययौ	ययतुः	ययुः	प्र०	पपौ	पपतुः	पपुः
ययिथ, ययाथ	ययथुः	यय	म०	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
ययौ	ययिव	ययिम	उ०	पपौ	पपिव	पपिम
	लुङ् (६)				लुङ् (६)	
अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः	प्र०	अपासीत्	अपासिष्टाम्	अपासिषुः
अयासीः	अयासिष्टम्	अयासिष्ट	म०	अपासीः	अपासिष्टम्	अपासिष्ट
अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म	उ०	अपासिषम्	अपासिष्व	अपासिष्म

(४२) शास् (शिक्षा देना) (दे० अ० २२) (४३) विद् (जानना) (दे० अ० ३०)

	लट्				लट्	
शास्ति	शिष्टः	शासति	प्र०	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ	म०	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
शास्मि	शिष्वः	शिष्मः	उ०	वेद्मि	विद्वः	विद्मः
	लोट्				लोट्	
शास्तु	शिष्टाम्	शासतु	प्र०	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
शाधि	शिष्टम्	शिष्ट	म०	विद्धि	वित्तम्	वित्त
शासानि	शासाव	शासाम	उ०	वेदानि	वेदाव	वेदाम
	लङ्				लङ्	
अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः	प्र०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः
अशाः, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट	म०	अवेः, अवेत्	अवित्तम्	अवित्त
अशासम्	अशिष्व	अशिष्म	उ०	अवेदम्	अविद्व	अविद्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः	प्र०	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात	म०	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम	उ०	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति	लृट्	वेदिष्यति	वेदिष्यतः	वेदिष्यन्ति
शासिता	शासितारौ	शासितारः	लुट्	वेदिता	वेदितारौ	वेदितारः
शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः	आ०लिङ्	विद्यात्	विद्यास्ताम्	विद्यासुः
अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्०		लृङ्	अवेदिष्यत्	अवेदिष्यताम्०	
	लिट्				लिट्	
शशास	शशासतुः	शशासुः	प्र०	विवेद	विविदतुः	विविदुः
शशासिथ	शशासथुः	शशास	म०	विवेदिथ	विविदथुः	विविद
शशास	शशासिव	शशासिम	उ०	विवेद	विविदिव	विविदिम
	लुङ् (२)				लुङ् (५)	
अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्	प्र०	अवेदीत्	अवेदिष्टाम्	अवेदिषुः
अशिषः	अशिषतम्	अशिषत	म०	अवेदीः	अवेदिष्टम्	अवेदिष्ट
अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम	उ०	अवेदिषम्	अवेदिष्व	अवेदिष्म

सूचना—(१) लट् मे वेद विदतुः विदुः, वेत्थ विदथुः विद, वेद विद्व विद्म, भी रूप होते हैं।

(२) लिट् और लोट् में विदा + कृ वाले अर्थात् विदाचकार और विदाकरोतु आदि भी रूप होते हैं।

अदादिगण—आत्मनेपदी धातुएँ

(४४) आस् (बैठना) (दे० अ० ३१)

लट्				लोट्		
आस्ते	आसाते	आसते	प्र०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
आस्से	आसाथे	आध्वे	म०	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
आसे	आस्वहे	आस्महे	उ०	आसै	आसावहै	आसामहै

लङ्				विधिलिङ्		
आस्त	आसाताम्	आसत	प्र०	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
आस्था	आसाथाम्	आध्वम्	म०	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
आसि	आस्वहि	आस्महि	उ०	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

लृट्				लुट्		
आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते	प्र०	आसिता	आसितारौ	आसितारः
आसिष्यसे	आसिष्येथे	आसिष्यध्वे	म०	आसितासे	आसितासाथे	आसिताध्वे
आसिष्ये	आसिष्यावहे	आसिष्यामहे	उ०	आसिताहे	आसितास्वहे	आसितास्महे

आशीर्लिङ्				लृङ्		
आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्	प्र०	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त
आसिषीष्ठाः	आसिषीयास्थाम्	आसिषीध्वम्	म०	आसिष्यथाः	आसिष्येथाम्	आसिष्यध्वम्
आसिषीय	आसिषीवहि	आसिषीमहि	उ०	आसिष्ये	आसिष्यावहि	आसिष्यामहि

लिट् (आसा + कृ)				लुङ् (५)		
आसाचक्रे	आसाचक्राते	आसाचक्रिरे	प्र०	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
—चकृषे	—चक्राथे	—चकृढ्वे	म०	आसिष्ठाः	आसिषाथाम्	आसिध्वम्
—चक्रे	—चकृवहे	—चकृमहे	उ०	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्महि

(४५) शी (सोना) (दे० अ० ३२) (४६) अधि + इ (पढ़ना) (दे० अ० ३२)

	लट्				लट्	
शेते	शयाते	शेरते	प्र०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
शेषे	शयाथे	शेध्वे	म०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
शये	शेवहे	शेमहे	उ०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे
	लोट्				लोट्	
शेताम्	शयाताम्	शेरताम्	प्र०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्	म०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
शयै	शयावहै	शयामहै	उ०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै
	लङ्				लङ्	
अशेत	अशयाताम्	अशेरत	प्र०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्	म०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
अशयि	अशेवहि	अशेमहि	उ०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्	प्र०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्	म०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
शयीय	शयीवहि	शयीमहि	उ०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते	लृट्	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
शयिता	शयितारौ	शयितारः	लुट्	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्०		आ०लिङ्	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्०	
अशयिष्यत	अशयिष्येताम्०		लृङ्	अध्यैष्यत, अध्यगीष्यत (दोनों प्रकार से)		
	लिट्				लिट् (इ को गा)	
शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे	प्र०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे	म०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे	उ०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे
	लुङ् (५)				लुङ् (क) (४)	
अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत	प्र०	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिध्वम्	म०	अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्
अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि	उ०	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

(४७) ब्रू (कहना) परस्मैपद आत्मनेपद (दे० अ० २५)

सूचना—लट् आदि में ब्रू को वच् होगा। सूचना—लट् आदि में ब्रू को वच्।

लट्

ब्रवीति, आह	ब्रूतः, आहतुः	ब्रुवन्ति, आहुः	प्र०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
ब्रवीषि, आत्थ	ब्रूथः, आहथुः	ब्रूथ	म०	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः	उ०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लोट्

ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु	प्र०	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत	म०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम	उ०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

लङ्

अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्	प्र०	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत	म०	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम	उ०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

विधिलिङ्

ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः	प्र०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात	म०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम	उ०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः	लुट्	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः	आ०लिङ्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त

लिट्

उवाच	ऊचतुः	ऊचुः	प्र०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
उवचिथ, उवक्थ	ऊचथुः	ऊच	म०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उवाच, उवच	ऊचिव	ऊचिम	उ०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

लुङ् (२)

अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्	प्र०	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
अवोचः	अवोचतम्	अवोचत	म०	अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम	उ०	अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि

(२) जुहोत्यादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है। उसके रूप जुहोति आदि होते हैं, अत. गण का नाम जुहोत्यादिगण पडा। जुहोत्यादिगण मे भी अदादिगण के तुल्य धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में कोई विकरण नही लगता है। (जुहोत्यादिभ्य· श्लु., श्लौ) उक्त लकारों मे धातु को द्वित्व होता है अर्थात् धातु को दो बार पढा जाता है और द्वित्व के प्रथम भाग मे कुछ परिवर्तन भी होते हैं। उक्त लकारों में धातु को एकवचन मे गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में २४ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त मे सक्षिप्त-रूप निम्नलिखित लगेगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सक्षिप्तरूप ही लगेगे। लृट् आदि में सेट् धातुओं में सक्षिप्तरूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् मे नही।

परस्मैपद (स० रूप)				आत्मनेपद (स० रूप)		
	लट्				लट्	
ति	तः	अति	प्र०	ते	आते	अते
सि	थ.	थ	म०	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ०	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अतु	प्र०	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म०	स्व	अथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
त्	ताम्	उ.	प्र०	त	आताम्	अत
:	तम्	त	म०	था.	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	यु·	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
या.	यातम्	यात	म०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

—

(४८) हु (हवन करना) (दे० अ० ३३)				(४९) भी (डरना) (दे० अ० ३३)		
परस्मैपदी				परस्मैपदी		
	लट्				लट्	
जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	प्र०	बिभेति	बिभीतः	बिभ्यति
जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	म०	बिभेषि	बिभीथः	बिभीथ
जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	उ०	बिभेमि	बिभीवः	बिभीमः
	लोट्				लोट्	
जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु	प्र०	बिभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत	म०	बिभीहि	बिभीतम्	बिभीत
जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम	उ०	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम
	लङ्				लङ्	
अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	प्र०	अबिभेत्	अबिभीताम्	अबिभयुः
अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	म०	अबिभेः	अबिभीतम्	अबिभीत
अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	उ०	अबिभयम्	अबिभीव	अबिभीम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः	प्र०	बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात	म०	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम	उ०	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम
होष्यति	होष्यतः	होष्यन्ति	लृट्	भेष्यति	भेष्यतः	भेष्यन्ति
होता	होतारौ	होतारः	लुट्	भेता	भेतारौ	भेतारः
हूयात्	हूयास्ताम्	हूयासुः	आ०लिङ्	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासुः
अहोष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्	लृङ्	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्
	लिट् (क)				लिट् (क)	
जुहाव	जुहुवतुः	जुहुवुः	प्र०	बिभाय	बिभ्यतुः	बिभ्युः
जुहविथ, जुहोथ	जुहुवथुः	जुहुव	म०	बिभयिथ, बिभेथ	बिभ्यथुः	बिभ्य
जुहाव, जुहव	जुहुविव	जुहुविम	उ०	बिभाय, बिभय	बिभ्यिव	बिभ्यिम
	लिट् (ख) (जुहवा + कृ)				लिट् (ख) (बिभया + कृ)	
जुहवाञ्चकार	—चक्रतुः	—चक्रुः	प्र०	बिभयाञ्चकार	—चक्रतुः	—चक्रुः
—चकर्थ	—चक्रथुः	—चक्र	म०	—चकर्थ	—चक्रथुः	—चक्र
—चकार, चकर	—चकृव	—चकृम	उ०	—चकार, चकर	—चकृव	—चकृम
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अहौषीत्	अहौष्टाम्	अहौषुः	प्र०	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः
अहौषीः	अहौष्टम्	अहौष्ट	म०	अभैषीः	अभैष्टम्	अभैष्ट
अहौषम्	अहौष्व	अहौष्म	उ०	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म

(५०) हा (छोड़ना) (दे० अ० ३४) — परस्मैपदी | (५१) ही (लज्जित होना) (दे० अ० ३४) — परस्मैपदी

	लट्				**लट्**	
जहाति	जहीतः	जहति	प्र०	जिह्रेति	जिह्रीतः	जिह्रियति
जहासि	जहीथः	जहीथ	म०	जिह्रेषि	जिह्रीथः	जिह्रीथ
जहामि	जहीवः	जहीमः	उ०	जिह्रेमि	जिह्रीवः	जिह्रीमः
	लोट्				**लोट्**	
जहातु	जहीताम्	जहतु	प्र०	जिह्रेतु	जिह्रीताम्	जिह्रियतु
जहाहि, जहीहि	जहीतम्	जहीत	म०	जिह्रीहि	जिह्रीतम्	जिह्रीत
जहानि	जहाव	जहाम	उ०	जिह्रयाणि	जिह्रयाव	जिह्रयाम
	लङ्				**लङ्**	
अजहात्	अजहीताम्	अजहुः	प्र०	अजिह्रेत्	अजिह्रीताम्	अजिह्रयुः
अजहाः	अजहीतम्	अजहीत	म०	अजिह्रेः	अजिह्रीतम्	अजिह्रीत
अजहाम्	अजहीव	अजहीम	उ०	अजिह्रयम्	अजिह्रीव	अजिह्रीम
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः	प्र०	जिह्रीयात्	जिह्रीयाताम्	जिह्रीयुः
जह्याः	जह्यातम्	जह्यात	म०	जिह्रीयाः	जिह्रीयातम्	जिह्रीयात
जह्याम्	जह्याव	जह्याम	उ०	जिह्रीयाम्	जिह्रीयाव	जिह्रीयाम
हास्यति	हास्यतः	हास्यन्ति	लृट्	ह्रेष्यति	ह्रेष्यतः	ह्रेष्यन्ति
हाता	हातारौ	हातारः	लुट्	ह्रेता	ह्रेतारौ	ह्रेतारः
हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासुः	आ०लिङ्	ह्रीयात्	ह्रीयास्ताम्	ह्रीयासुः
अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्	लृङ्	अह्रेष्यत्	अह्रेष्यताम्	अह्रेष्यन्
	लिट्				**लिट्**	
जहौ	जहतुः	जहुः	प्र०	जिह्राय	जिह्रियतुः	जिह्रियुः
जहिथ, जहाथ	जहथुः	जह	म०	जिह्रयिथ, जिह्रेथ	जिह्रियथुः	जिह्रिय
जहौ	जहिव	जहिम	उ०	जिह्राय, जिह्रय	जिह्रियिव	जिह्रियिम
	लुङ् (६)				**लुङ् (४)**	
अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः	प्र०	अह्रैषीत्	अह्रैष्टाम्	अह्रैषुः
अहासीः	अहासिष्टम्	अहासिष्ट	म०	अह्रैषीः	अह्रैष्टम्	अह्रैष्ट
अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म	उ०	अह्रैषम्	अह्रैष्व	अह्रैष्म

सूचना—ह्री के लिट् में जिह्रया + कृ अर्थात् जिह्रयाञ्चकार आदि भी रूप होते हैं।

(५२) भृ (पालन करना) (दे० अ० ३५) (५३) मा (तोलना, नापना) (दे० अ० ३५)

उभयपदी | आत्मनेपदी

सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं।

	लट्				लट्	
बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति	प्र०	मिमीते	मिमाते	मिमते
बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ	म०	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः	उ०	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे
	लोट्				लोट्	
बिभर्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु	प्र०	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत	म०	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
बिभराणि	बिभराव	बिभराम	उ०	मिमै	मिमावहै	मिमामहै
	लङ्				लङ्	
अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः	प्र०	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत	म०	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्
अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम	उ०	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयुः	प्र०	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
बिभृयाः	बिभृयातम्	बिभृयात	म०	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
बिभृयाम्	बिभृयाव	बिभृयाम	उ०	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि

भरिष्यति	भरिष्यतः	भरिष्यन्ति	लृट्	मास्यते	मास्येते	मास्यन्ते
भर्ता	भर्तारौ	भर्तारः	लुट्	माता	मातारौ	मातारः
भ्रियात्	भ्रियास्ताम्	भ्रियासुः	आ० लिङ्	मासीष्ट	मासीयास्ताम्	मासीरन्
अभरिष्यत्	अभरिष्यताम्	अभरिष्यन्	लृङ्	अमास्यत	अमास्येताम्	अमास्यन्त
	लिट्				लिट्	
बभार	बभ्रतुः	बभ्रुः	प्र०	ममे	ममाते	ममिरे
बभर्थ	बभ्रथुः	बभ्र	म०	ममिषे	ममाथे	ममिध्वे
बभार, बभर	बभृव	बभृम	उ०	ममे	ममिवहे	ममिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अभार्षीत्	अभार्ष्टाम्	अभार्षुः	प्र०	अमास्त	अमासाताम्	अमासत
अभार्षीः	अभार्ष्टम्	अभार्ष्ट	म०	अमास्थाः	अमासाथाम्	अमाध्वम्
अभार्षम्	अभार्ष्व	अभार्ष्म	उ०	अमासि	अमास्वहि	अमास्महि

सूचना—लिट् में बिभरा + कृ अर्थात् बिभराञ्चकार आदि भी रूप बनेंगे।

(५४) दा (देना) परस्मैपद　　　　**आत्मनेपद (दे. अ. ३६)**

लट्				लट्		
ददाति	दत्तः	ददति	प्र०	दत्ते	ददाते	ददते
ददासि	दत्थः	दत्थ	म०	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
ददामि	दद्वः	दद्मः	उ०	ददे	दद्वहे	दद्महे

लोट्				लोट्		
ददातु	दत्ताम्	ददतु	प्र०	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
देहि	दत्तम्	दत्त	म०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
ददानि	ददाव	ददाम	उ०	ददै	ददावहै	ददामहै

लङ्				लङ्		
अददात्	अदत्ताम्	अददुः	प्र०	अदत्त	अददाताम्	अददत
अददाः	अदत्तम्	अदत्त	म०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
अददाम्	अदद्व	अदद्म	उ०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः	प्र०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
दद्याः	दद्यातम्	दद्यात	म०	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
दद्याम्	दद्याव	दद्याम	उ०	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति	लृट्	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
दाता	दातारौ	दातारः	लुट्	दाता	दातारौ	दातारः
देयात्	देयास्ताम्	देयासुः	आ० लिङ्	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्	लृङ्	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त

लिट्				लिट्		
ददौ	ददतुः	ददुः	प्र०	ददे	ददाते	ददिरे
ददिथ, ददाथ	ददथुः	दद	म०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
ददौ	ददिव	ददिम	उ०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

लुङ् (१)				लुङ् (४)		
अदात्	अदाताम्	अदुः	प्र०	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
अदाः	अदातम्	अदात	म०	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिध्वम्
अदाम्	अदाव	अदाम	उ०	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

(५५) धा (धारण करना) परस्मैपद　　　आत्मनेपद (दे० अ० ३७)

	लट्				लट्	
दधाति	धत्तः	दधति	प्र०	धत्ते	दधाते	दधते
दधासि	धत्थ	धत्थ	म०	धत्से	दधाते	धद्ध्वे
दधामि	दध्वः	दध्मः	उ०	दधे	दध्वहे	दध्महे
	लोट्				लोट्	
दधातु	धत्ताम्	दधतु	प्र०	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
धेहि	धत्तम्	धत्त	म०	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
दधानि	दधाव	दधाम	उ०	दधै	दधावहै	दधामहै
	लङ्				लङ्	
अदधात्	अधत्ताम्	अदधु	प्र०	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
अदधाः	अधत्तम्	अधत्त	म०	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
अदधाम्	अदध्व	अदध्म	उ०	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः	प्र०	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
दध्या.	दध्यातम्	दध्यात	म०	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
दध्याम्	दध्याव	दध्याम	उ०	दधीय	दधीवहि	दधीमहि
	—				—	
धास्यति	धास्यत	धास्यन्ति	लट्	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
धाता	धातारौ	धातार॰	लुट्	धाता	धातारौ	धातारः
धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासु.	आ० लिङ्	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्
अधास्यत्	अधास्यताम्	अधास्यन्	लृङ्	अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त
	लिट्				लिट्	
दधौ	दधतु॰	दधु	प्र०	दधे	दधाते	दधिरे
दधि, दधाथ	दधथु	दध	म०	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
दधौ	दधिव	दधिम	उ०	दधे	दधिवहे	दधिमहे
	लुङ् (१)				लुङ् (४)	
अधात्	अधाताम्	अधु	प्र०	अधित	अधिषाताम्	अधिषत
अधा.	अधातम्	अधात	म०	अधिथा	अधिषाथाम्	अधिध्वम्
अधाम्	अधाव	अधाम	उ०	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि

(४) दिवादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु दिव् (चमकना आदि) है, अतः गण का नाम दिवादिगण पड़ा। (दिवादिभ्यः श्यन्) दिवादिगण की धातुओं मे धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्यन् (य) विकरण लगता है और धातु को गुण नहीं होता। इस गण की धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त मे 'य' लगाकर परस्मैपद मे भू धातु के तुल्य और आत्मनेपद में सेव् धातु के तुल्य रूप चलावे।

(२) इस गण में १४१ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे।

लट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लङ् मे पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे।

लट् आदि मे सेट् धातुओं में संक्षिप्तरूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				**लट्**	
यति	यतः	यन्ति	प्र०	यते	येते	यन्ते
यसि	यथ.	यथ	म०	यसे	येथे	यध्वे
यामि	यावः	याम	उ०	ये	यावहे	यामहे
	लोट्				**लोट्**	
यतु	यताम्	यन्तु	प्र०	यताम्	येताम्	यन्ताम्
य	यतम्	यत	म०	यस्व	येथाम्	यध्वम्
यानि	याव	याम	उ०	यै	यावहै	यामहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				**लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)**	
यत्	यताम्	यन्	प्र०	यत	येताम्	यन्त
यः	यतम्	यत	म०	यथाः	येथाम्	यध्वम्
यम्	याव	याम	उ०	ये	यावहि	यामहि
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
येत्	येताम्	येयुः	प्र०	येत	येयाताम्	येरन्
येः	येतम्	येत	म०	येथाः	येयाथाम्	येध्वम्
येयम्	येव	येम	उ०	येय	येवहि	येमहि

दिवादिगण—परस्मैपदी धातुएँ

(५६) दिव् (चमकना आदि) (दे०अ० ३८) (५७) नृत् (नाचना) (दे०अ० ३८)

	लट्				लट्	
दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति	प्र०	नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति
दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ	म०	नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ
दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः	उ०	नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः
	लोट्				लोट्	
दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु	प्र०	नृत्यतु	नृत्यताम्	नृत्यन्तु
दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत	म०	नृत्य	नृत्यतम्	नृत्यत
दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम	उ०	नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम
	लङ्				लङ्	
अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्	प्र०	अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत	म०	अनृत्य	अनृत्यतम्	अनृत्यत
अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम	उ०	अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः	प्र०	नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः
दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत	म०	नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत
दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम	उ०	नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम

देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति	लृट्	नर्तिष्यति,	नर्त्स्यति (दोनों प्रकार से)	
देविता	देवितारौ	देवितारः	लुट्	नर्तिता	नर्तितारौ	नर्तितारः
दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः	आ०लिङ्	नृत्यात्	नृत्यास्ताम्	नृत्यासुः
अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	०	लृङ्	अनर्तिष्यत्	अनर्त्स्यत् (दोनों प्रकार से)	

	लिट्				लिट्	
दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः	प्र०	ननर्त	ननृततुः	ननृतुः
दिदेविथ	दिदिवथुः	दिदिव	म०	ननर्तिथ	ननृतथुः	ननृत
दिदेव	दिदिविव	दिदिविम	उ०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः	प्र०	अनर्तीत्	अनर्तिष्टाम्	अनर्तिषुः
अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट	म०	अनर्तीः	अनर्तिष्टम्	अनर्तिष्ट
अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म	उ०	अनर्तिषम्	अनर्तिष्व	अनर्तिष्म

(५८) नश् (नष्ट होना) (दे० अ० ३९)   (५९) भ्रम् (घूमना) (दे० अ० ३९)

	लट्				लट्	
नश्यति	नश्यतः	नश्यन्ति	प्र०	भ्राम्यति	भ्राम्यत	भ्राम्यन्ति
नश्यसि	नश्यथ	नश्यथ	म०	भ्राम्यसि	भ्राम्यथ	भ्राम्यथ
नश्यामि	नश्याव	नश्यामः	उ०	भ्राम्यामि	भ्राम्यावः	भ्राम्याम.
	लोट्				लोट्	
नश्यतु	नश्यताम्	नश्यन्तु	प्र०	भ्राम्यतु	भ्राम्यताम्	भ्राम्यन्तु
नश्य	नश्यतम्	नश्यत	म०	भ्राम्य	भ्राम्यतम्	भ्राम्यत
नश्यानि	नश्याव	नश्याम	उ०	भ्राम्याणि	भ्राम्याव	भ्राम्याम
	लङ्				लङ्	
अनश्यत्	अनश्यताम्	अनश्यन्	प्र०	अभ्राम्यत्	अभ्राम्यताम्	अभ्राम्यन्
अनश्य.	अनश्यतम्	अनश्यत	म०	अभ्राम्य	अभ्राम्यतम्	अभ्राम्यत
अनश्यम्	अनश्याव	अनश्याम	उ०	अभ्राम्यम्	अभ्राम्याव	अभ्राम्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नश्येत्	नश्येताम्	नश्येयुः	प्र०	भ्राम्येत्	भ्राम्येताम्	भ्राम्येयुः
नश्ये	नश्येतम्	नश्येत	म०	भ्राम्ये	भ्राम्येतम्	भ्राम्येत
नश्येयम्	नश्येव	नश्येम	उ०	भ्राम्येयम्	भ्राम्येव	भ्राम्येम

नशिष्यति, नङ्क्ष्यति (दोनों प्रकार से) लृट् भ्रमिष्यति भ्रमिष्यतः भ्रमिष्यन्ति
नशिता, नष्टा (दोनो प्रकार से) लुट् भ्रमिता भ्रमितारौ भ्रमितार
नश्यात् नश्यास्ताम् नश्यासु.आ०लिङ् भ्रम्यात् भ्रम्यास्ताम् भ्रम्यासु.
अनशिष्यत्, अनङ्क्ष्यत् (दोनो प्रकार से) लृङ् अभ्रमिष्यत् अभ्रमिष्यताम्०

	लिट्				लिट्	
ननाश	नेशतुः	नेशु.	प्र०	बभ्राम	बभ्रमतुः भ्रेमतु.	बभ्रमु भ्रेमु
नेशिथ ननष्ठ	नेशथु·	नेश	म०	बभ्रमिथ भ्रेमिथ	बभ्रमथुः भ्रेमथु	बभ्रम भ्रेम
ननाश ननश	नेशिव नेश्व	नेशिम नेश्म	उ०	बभ्राम बभ्रम	बभ्रमिव भ्रेमिव	बभ्रमिम भ्रेमिम
	लुङ् (२)				लुङ् (२)	
अनशत्	अनशताम्	अनशन्	प्र०	अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्
अनशः	अनशतम्	अनशत	म०	अभ्रमः	अभ्रमतम्	अभ्रमत
अनशम्	अनशाव	अनशाम	उ०	अभ्रमम्	अभ्रमाव	अभ्रमाम

सूचना—भ्रम् भ्वादिगणी भी है, अत· भ्रमति, भ्रमतु, अभ्रमत्, भ्रमेत् वाले रूप भी बनेंगे।

(६०)श्रम् (परिश्रम करना) (दे० अ० ४०) (६१) सिव् (सीना)(दे० अ० ३०)

लट्				लट्		
श्राम्यति	श्राम्यत.	श्राम्यन्ति	प्र०	सीव्यति	सीव्यतः	सीव्यन्ति
श्राम्यसि	श्राम्यथ.	श्राम्यथ	म०	सीव्यसि	सीव्यथ॰	सीव्यथ
श्राम्यामि	श्राम्याव	श्राम्याम॰	उ०	सीव्यामि	सीव्याव.	सीव्याम

लोट्				लोट्		
श्राम्यतु	श्राम्यताम्	श्राम्यन्तु	प्र०	सीव्यतु	सीव्यताम्	सीव्यन्तु
श्राम्य	श्राम्यतम्	श्राम्यत	म०	सीव्य	सीव्यतम्	सीव्यत
श्राम्याणि	श्राम्याव	श्राम्याम	उ०	सीव्यानि	सीव्याव	सीव्याम

लङ्				लङ्		
अश्राम्यत्	अश्राम्यताम्	अश्राम्यन्	प्र०	असीव्यत्	असीव्यताम्	असीव्यन्
अश्राम्य	अश्राम्यतम्	अश्राम्यत	म०	असीव्य.	असीव्यतम्	असीव्यत
अश्राम्यम्	अश्राम्याव	अश्राम्याम	उ०	असीव्यम्	असीव्याव	असीव्याम

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
श्राम्येत्	श्राम्येताम्	श्राम्येयु.	प्र०	सीव्येत्	सीव्येताम्	सीव्येयुः
श्राम्ये.	श्राम्येतम्	श्राम्येत	म०	सीव्ये	सीव्येतम्	सीव्येत
श्राम्येयम्	श्राम्येव	श्राम्येम	उ०	सीव्येयम्	सीव्येव	सीव्येम

श्रमिष्यति	श्रमिष्यत	श्रमिष्यन्ति	लृट्	सेविष्यति	सेविष्यत	सेविष्यन्ति
श्रमिता	श्रमितारौ	श्रमितार	लुट्	सेविता	सेवितारौ	सेवितार
श्रम्यात्	श्रम्यास्ताम्	श्रम्यासुः	आ० लिङ्	सीव्यात्	सीव्यास्ताम्	सीव्यासुः
अश्रमिष्यत्	अश्रमिष्यताम्०		लृङ्	असेविष्यत्	असेविष्यताम्०	

लिट्				लिट्		
शश्राम	शश्रमतु॰	शश्रमु	प्र०	सिषेव	सिषिवतु	सिषिवु
शश्रमिथ	शश्रमथु	शश्रम	म०	सिषेविथ	सिषिवथु	सिषिव
शश्राम,शश्रम	शश्रमिव	शश्रमिम	उ०	सिषेव	सिषिविव	सिषिविम

लुङ् (२)				लुङ् (५)		
अश्रमत्	अश्रमताम्	अश्रमन्	प्र०	असेवीत्	असेविष्टाम्	असेविषु॰
अश्रम.	अश्रमतम्	अश्रमत	म०	असेवी	असेविष्टम्	असेविष्ट
अश्रमम्	अश्रमाव	अश्रमाम	उ०	असेविषम्	असेविष्व	असेविष्म

(६२) सो (नष्ट होना) (दे० अ० ४१)				(६३) शो (छीलना) (दे० अ० ४१)		
	लट्				लट्	
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र०	श्यति	श्यतः	श्यन्ति
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म०	श्यसि	श्यथः	श्यथ
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ०	श्यामि	श्यावः	श्यामः
	लोट्				लोट्	
स्यतु	स्यताम्	स्यन्तु	प्र०	श्यतु	श्यताम्	श्यन्तु
स्य	स्यतम्	स्यत	म०	श्य	श्यतम्	श्यत
स्यानि	स्याव	स्याम	उ०	श्यानि	श्याव	श्याम
	लङ्				लङ्	
अस्यत्	अस्यताम्	अस्यन्	प्र०	अश्यत्	अश्यताम्	अश्यन्
अस्यः	अस्यतम्	अस्यत	म०	अश्यः	अश्यतम्	अश्यत
अस्यम्	अस्याव	अस्याम	उ०	अश्यम्	अश्याव	अश्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
स्येत्	स्येताम्	स्येयुः	प्र०	श्येत्	श्येताम्	श्येयुः
स्येः	स्येतम्	स्येत	म०	श्येः	श्येतम्	श्येत
स्येयम्	स्येव	स्येम	उ०	श्येयम्	श्येव	श्येम
	—				—	
सास्यति	सास्यतः	सास्यन्ति	लृट्	शास्यति	शास्यतः	शास्यन्ति
साता	सातारौ	सातारः	लुट्	शाता	शातारौ	शातारः
सेयात्	सेयास्ताम्	सेयासुः	आ०लिङ्	शायात्	शायास्ताम्	शायासुः
असास्यत्	असास्यताम्	असास्यन्	लृङ्	अशास्यत्	अशास्यताम्	अशास्यन्
	लिट्				लिट्	
ससौ	ससतुः	ससुः	प्र०	शशौ	शशतुः	शशुः
ससिथ, ससाथ	ससथुः	सस	म०	शशिथ, शशाथ	शशथुः	शश
ससौ	ससिव	ससिम	उ०	शशौ	शशिव	शशिम
	लुङ् (क) (१)				लुङ् (क) (१)	
असात्	असाताम्	असुः	प्र०	अशात्	अशाताम्	अशुः
असाः	असातम्	असात	म०	अशाः	अशातम्	अशात
असाम्	असाव	असाम	उ०	अशाम्	अशाव	अशाम
	लुङ् (ख) (६)				लुङ् (ख) (६)	
असासीत्	असासिष्टाम्	असासिषुः	प्र०	अशासीत्	अशासिष्टाम्	अशासिषुः
असासीः	असासिष्टम्	असासिष्ट	म०	अशासीः	अशासिष्टम्	अशासिष्ट
असासिषम्	असासिष्व	असासिष्म	उ०	अशासिषम्	अशासिष्व	अशासिष्म

(६४) कुप् (क्रुद्ध होना) (दे अ. ४२) | **(६५) पद् (जाना) (दे. अ. ४२) आत्मनेपदी**

लट्				लट्		
कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति	प्र०	पद्यते	पद्येते	पद्यन्ते
कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ	म०	पद्यसे	पद्येथे	पद्यध्वे
कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः	उ०	पद्ये	पद्यावहे	पद्यामहे
लोट्				**लोट्**		
कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु	प्र०	पद्यताम्	पद्येताम्	पद्यन्ताम्
कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत	म०	पद्यस्व	पद्येथाम्	पद्यध्वम्
कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम	उ०	पद्यै	पद्यावहै	पद्यामहै
लङ्				**लङ्**		
अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्	प्र०	अपद्यत	अपद्येताम्	अपद्यन्त
अकुप्य	अकुप्यतम्	अकुप्यत	म०	अपद्यथाः	अपद्येथाम्	अपद्यध्वम्
अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम	उ०	अपद्ये	अपद्यावहि	अपद्यामहि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयुः	प्र०	पद्येत	पद्येयाताम्	पद्येरन्
कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत	म०	पद्येथाः	पद्येयाथाम्	पद्येध्वम्
कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम	उ०	पद्येय	पद्येवहि	पद्येमहि
—				—		
कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति	लृट्	पत्स्यते	पत्स्येते	पत्स्यन्ते
कोपिता	कोपितारौ	कोपितारः	लुट्	पत्ता	पत्तारौ	पत्तारः
कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासुः	आ० लिङ्	पत्सीष्ट	पत्सीयास्ताम्	पत्सीरन्
अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्०		लृङ्	अपत्स्यत	अपत्स्येताम्०	
लिट्				**लिट्**		
चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपुः	प्र०	पेदे	पेदाते	पेदिरे
चुकोपिथ	चुकुपथुः	चुकुप	म०	पेदिषे	पेदाथे	पेदिध्वे
चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम	उ०	पेदे	पेदिवहे	पेदिमहे
लुङ् (२)				**लुङ् (४)**		
अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्	प्र०	अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
अकुप	अकुपतम्	अकुपत	म०	अपत्थाः	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम	उ०	अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

(६२) सो (नष्ट होना) (दे० अ० ४१) — (६३) शो (छीलना) (दे० अ० ४१)

सो				शो		
	लट्				लट्	
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र०	श्यति	श्यतः	श्यन्ति
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म०	श्यसि	श्यथः	श्यथ
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ०	श्यामि	श्यावः	श्यामः
	लोट्				लोट्	
स्यतु	स्यताम्	स्यन्तु	प्र०	श्यतु	श्यताम्	श्यन्तु
स्य	स्यतम्	स्यत	म०	श्य	श्यतम्	श्यत
स्यानि	स्याव	स्याम	उ०	श्यानि	श्याव	श्याम
	लङ्				लङ्	
अस्यत्	अस्यताम्	अस्यन्	प्र०	अश्यत्	अश्यताम्	अश्यन्
अस्यः	अस्यतम्	अस्यत	म०	अश्य॰	अश्यतम्	अश्यत
अस्यम्	अस्याव	अस्याम	उ०	अश्यम्	अश्याव	अश्याम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
स्येत्	स्येताम्	स्येयुः	प्र०	श्येत्	श्येताम्	श्येयुः
स्येः	स्येतम्	स्येत	म०	श्येः	श्येतम्	श्येत
स्येयम्	स्येव	स्येम	उ०	श्येयम्	श्येव	श्येम
	—				—	
सास्यति	सास्यतः	सास्यन्ति	लृट्	शास्यति	शास्यत.	शास्यन्ति
साता	सातारौ	सातारः	लुट्	शाता	शातारौ	शातारः
सेयात्	सेयास्ताम्	सेयासुः	आ०लिङ्	शायात्	शायास्ताम्	शायासुः
असास्यत्	असास्यताम्	असास्यन्	लृङ्	अशास्यत्	अशास्यताम्	अशास्यन्
	लिट्				लिट्	
ससौ	ससतुः	ससुः	प्र०	शशौ	शशतुः	शशुः
ससिथ,ससाथ	ससथु.	सस	म०	शशिथ,शशाथ	शशथुः	शश
ससौ	ससिव	ससिम	उ०	शशौ	शशिव	शशिम
	लुङ् (क) (१)				लुङ् (क) (१)	
असात्	असाताम्	असुः	प्र०	अशात्	अशाताम्	अशुः
असाः	असातम्	असात	म०	अशाः	अशातम्	अशात
असाम्	असाव	असाम	उ०	अशाम्	अशाव	अशाम
	लुङ् (ख) (६)				लुङ् (ख) (६)	
असासीत्	असासिष्टाम्	असासिषुः	प्र०	अशासीत्	अशासिष्टाम्	अशासिषुः
असासीः	असासिष्टम्	असासिष्ट	म०	अशासी.	अशासिष्टम्	अशासिष्ट
असासिषम्	असासिष्व	असासिष्म	उ०	अशासिषम्	अशासिष्व	अशासिष्म

(६४) कुप् (क्रुद्ध होना) (दे. अ. ४२)

लट्

कुप्यति	कुप्यत	कुप्यन्ति	प्र०
कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ	म०
कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्याम.	उ०

लोट्

कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु	प्र०
कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत	म०
कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम	उ०

लङ्

अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्	प्र०
अकुप्य	अकुप्यतम्	अकुप्यत	म०
अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम	उ०

विधिलिङ्

कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयु.	प्र०
कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत	म०
कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम	उ०

कोपिष्यति	कोपिष्यत	कोपिष्यन्ति	लट्
कोपिता	कोपितारौ	कोपितार	लुट्
कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासु.	आ० लिङ्
अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्०		लङ्

लिट्

चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपु.	प्र०
चुकोपिथ	चुकुपथु	चुकुप	म०
चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम	उ०

लुङ् (२)

अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्	प्र०
अकुप	अकुपतम्	अकुपत	म०
अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम	उ०

(६५) पद् (जाना) (दे अ. ४२)

आत्मनेपदी

लट्

पद्यते	पद्येते	पद्यन्ते
पद्यसे	पद्यथे	पद्यध्वे
पद्ये	पद्यावहे	पद्यामहे

लोट्

पद्यताम्	पद्येताम्	पद्यन्ताम्
पद्यस्व	पद्येथाम्	पद्यध्वम्
पद्यै	पद्यावहै	पद्यामहै

लङ्

अपद्यत	अपद्येताम्	अपद्यन्त
अपद्यथाः	अपद्येथाम्	अपद्यध्वम्
अपद्ये	अपद्यावहि	अपद्यामहि

विधिलिङ्

पद्येत	पद्येयाताम्	पद्येरन्
पद्येथा.	पद्येयाथाम्	पद्येध्वम्
पद्येय	पद्येवहि	पद्येमहि

पत्स्यते	पत्स्येते	पत्स्यन्ते
पत्ता	पत्तारौ	पत्तारः
पत्सीष्ट	पत्सीयास्ताम्	पत्सीरन्
अपत्स्यत	अपत्स्येताम्०	

लिट्

पेदे	पेदाते	पेदिरे
पेदिषे	पेदाथे	पेदिध्वे
पेदे	पेदिवहे	पेदिमहे

लुङ् (४)

अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
अपत्था	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

(७०) चि (इकट्ठा करना) (दे० अ० ४५) (७१) अश् (व्याप्त होना)(दे० अ० ४५)

सूचना—उभय० है, केवल परस्मै० के रूप दिए हैं । आत्मनेपदी

लट्				लट्		
चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति	प्र०	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ	म०	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
चिनोमि	चिनुव , न्वः	चिनुम , -न्म	उ०	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे

लोट्				लोट्		
चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु	प्र०	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
चिनु	चिनुतम्	चिनुत	म०	अश्नुष्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम	उ०	अश्नवै	अश्नवावहै	अश्नवामहै

लङ्				लङ्		
अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्	प्र०	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत	म०	आश्नुथाः	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
अचिनवम्	अचिनुव	अचिनुम	उ०	आश्नुवि	आश्नुवहि	आश्नुमहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	प्र०	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	म०	अश्नुवीथाः	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	उ०	अश्नुवीय	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि

चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति	लृट्	अशिष्यते, अक्ष्यते	(दोनों प्रकार से)
चेता	चेतारौ	चेतारः	लुट्	अशिता, अष्टा	(,,)
चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः	आ० लिङ्	अशिषीष्ट, अक्षीष्ट	(,,)
अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्	लृङ्	आशिष्यत, आक्ष्यत	(,,)

लिट् (क)				लिट्		
चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः	प्र०	आनशे	ते	आनशिरे
चिचयिथ, चिचेथ	चिच्यथुः	चिच्य	म०	आनशिषे		नशिध्वे
चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम	उ०	आनशे		

(ख) चिकाय चिक्यतुः आदि ।

लुङ् (४)						
अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः	प्र०	आशिष्ट		
अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट		आशिष्ठाः		
अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म	उ०			

सूचना—आत्मने० में सु (७२) आ० के तु

स्वादिगण—परस्मैपदी धातुएँ

(६८) आप् (पाना) (दे० अ० ४४)				(६९) शक् (सकना) (दे० अ० ४४)		
	लट्					लट्
आप्नोति	आप्नुत	आप्नुवन्ति	प्र०	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
आप्नोषि	आप्नुथ	आप्नुथ	म०	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः	उ०	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुम
	लोट्					लोट्
आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु	प्र०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत	म०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
आप्नवानि	आप्नवाम	आप्नवाम	उ०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम
	लङ्					लङ्
आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्	प्र०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत	म०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम	उ०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः	प्र०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः
आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात	म०	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम	उ०	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम
	—					—
आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति	लृट्	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः	लुट्	शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः	आ०लिङ्	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्	लृङ्	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्०	
	लिट्					लिट्
आप	आपतुः	आपुः	प्र०	शशाक	शेकतुः	शेकुः
आपिथ	आपथुः	आप	म०	शेकिथ, शशक्थ	शेकथुः	शेक
आप	आपिव	आपिम	उ०	शशाक, शशक	शेकिव	शेकिम
	लुङ् (२)				लुङ् (२)	
आपत्	आपताम्	आपन्	प्र०	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
आपः	आपतम्	आपत	म०	अशकः	अशकतम्	अशकत
आपम्	आपाव	आपाम	उ०	अशकम्	अशकाव	अशकाम

(७०) चि (इकट्ठा करना) (दे० अ० ४५) (७१) अश् (व्याप्त होना)(दे० अ० ४५)

सूचना—उभय० है, केवल परस्मै० के रूप दिए हैं। आत्मनेपदी

लट्				लट्		
चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति	प्र०	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ	म०	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
चिनोमि	चिनुवः, न्वः	चिनुमः, न्मः	उ०	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे

लोट्				लोट्		
चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु	प्र०	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
चिनु	चिनुतम्	चिनुत	म०	अश्नुष्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम	उ०	अश्नवै	अश्नवावहै	अश्नवामहै

लङ्				लङ्		
अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्	प्र०	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत	म०	आश्नुथाः	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
अचिनवम्	अचिनुव	अचिनुम	उ०	आश्नुवि	आश्नुवहि	आश्नुमहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	प्र०	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	म०	अश्नुवीथाः	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	उ०	अश्नुवीय	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि

चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति	लृट्	अशिष्यते, अक्ष्यते (दोनों प्रकार से)
चेता	चेतारौ	चेतारः	लुट्	अशिता, अष्टा (,,)
चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः	आ०लिङ्	अशिषीष्ट, अक्षीष्ट (,,)
अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्	लृङ्	आशिष्यत, आक्ष्यत (,,)

लिट् (क)				लिट्		
चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः	प्र०	आनशे	आनशाते	आनशिरे
चिचयिथ, चिचेथ	चिच्यथुः	चिच्य	म०	आनशिषे	आनशाथे	आनशिध्वे
चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम	उ०	आनशे	आनशिवहे	आनशिमहे

(ख) चिकाय चिक्यतुः आदि।

लुङ् (४)				लुङ् (क) (५)		
अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः	प्र०	आशिष्ट	आशिषाताम्	आशिषत
अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट	म०	आशिष्ठाः	आशिषाथाम्	आशिढ्वम्
अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म	उ०	आशिषि	आशिष्वहि	आशिष्महि

सूचना—आत्मने० में सु (७२) आ० के तुल्य। (ख) आष्ट, आक्षाताम् इत्यादि।

उभयपदी धातु

(७२) सु (रस निकालना) (दे० अ० ४६)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
सुनोति	सुनुत	सुन्वन्ति	प्र०	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
सुनोषि	सुनुथ.	सुनुथ	म०	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
सुनोमि	सुनुवः	सुनुम.	उ०	सुन्वे	सुनुवहे	सुनुमहे
लोट्				लोट्		
सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	प्र०	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
सुनु	सुनुतम्	सुनुत	म०	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	उ०	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै
लङ्				लङ्		
असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	प्र०	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
असुनो.	असुनुतम्	असुनुत	म०	असुनुथा	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
असुनवम्	असुनुव	असुनुम	उ०	असुन्वि	असुनुवहि	असुनुमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयु	प्र०	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
सुनुया.	सुनुयातम्	सुनुयात	म०	सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	उ०	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

सोष्यति	सोष्यत.	सोष्यन्ति	लृट्	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
सोता	सोतारौ	सोतार.	लुट्	सोता	सोतारौ	सोतार.
सूयात्	सूयास्ताम्	सूयासु	आ० लिङ्	सोषीष्ट	सोषीयास्ताम्०	
असोष्यत्	असोष्यताम्०		लृङ्	असोष्यत	असोष्येताम्०	

लिट्				लिट्		
सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः	प्र०	सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
सुषविथ, सुषोथ	सुषुवथु	सुषुव	म०	सुषुविषे	सुषुवाथे	सुषुविध्वे
सुषाव, सुषव	सुषुविव	सुषुविम	उ०	सुषुवे	सुषुविवहे	सुषुविमहे
लुङ् (५)				लुङ् (४)		
असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः	प्र०	असोष्ट	असोषाताम्	असोषत
असावी.	असाविष्टम्	असाविष्ट	म०	असोष्ठा.	असोषाथाम्	असोढ्वम्
[illegible]विषम्	असाविष्व	असाविष्म	उ०	असोषि	असोष्वहि	असोष्महि

(६) तुदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु तुद् (दुःख देना) है, अत गण का नाम तुदादि-गण पड़ा। (तुदादिभ्य. श) तुदादिगण की धातुओ मे लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् मे श (अ) विकरण लगता है। भ्वादिगण मे भी 'अ' विकरण लगता है। अन्तर यह है कि भ्वादिगण मे लट् आदि मे धातु को गुण होता है, परन्तु तुदादि० मे धातु को गुण नहीं होगा।

(२) (क) लट् आदि मे धातु के अन्तिम इ और ई को इय् होगा, उ और ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ॠ को ईर् होगा। जैसे—रि > रियति, सू > सुवति, मृ > म्रियते, गॄ > गिरति। (ख) (शे मुचादीनाम्) मुच् आदि धातुओं मे बीच में न् लग जाता है। मुच् > मुञ्चति, विद् > विन्दति, लिप् > लिम्पति, सिच् > सिञ्चति, कृत् > कृन्तति।

(३) इस गण में १५७ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेगे। परस्मैपद में भू के तुल्य और आत्मनेपद मे सेव् के तुल्य रूप चलावें। लिट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् मे पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट स०रूप ही लगेगे। सेट् मे लट् आदि मे स०रूप से पहले इ भी लगेगा।

परस्मैपद (स० रूप)				आत्मनेपद (स० रूप)		
	लट्				लट्	
अति	अत	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथ.	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आव	आम	उ०	ए	आवहे	आमहे
	लोट्				लोट्	
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अ	अतम्	अत	म०	अथा.	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
एत्	एताम्	एयु	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
ए	एतम्	एत	म०	एथा.	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

उभयपदी धातु

(७२) सु (रस निकालना) (दे० अ० ४६)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	प्र०	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ	म०	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
सुनोमि	सुनुवः	सुनुमः	उ०	सुन्वे	सुनुवहे	सुनुमहे
लोट्				लोट्		
सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	प्र०	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
सुनु	सुनुतम्	सुनुत	म०	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	उ०	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै
लङ्				लङ्		
असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	प्र०	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
असुनोः	असुनुतम्	असुनुत	म०	असुनुथाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
असुनवम्	असुनुव	असुनुम	उ०	असुन्वि	असुनुवहि	असुनुमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः	प्र०	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात	म०	सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	उ०	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति	लृट्	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
सोता	सोतारौ	सोतारः	लुट्	सोता	सोतारौ	सोतारः
सूयात्	सूयास्ताम्	सूयासुः	आ० लिङ्	सोषीष्ट	सोषीयास्ताम्०	
असोष्यत्	असोष्यताम्०		लृङ्	असोष्यत	असोष्येताम्०	

लिट्				लिट्		
सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः	प्र०	सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
सुषविथ, सुषोथ	सुषुवथुः	सुषुव	म०	सुषुविषे	सुषुवाथे	सुषुविध्वे
सुषाव, सुषव	सुषुविव	सुषुविम	उ०	सुषुवे	सुषुविवहे	सुषुविमहे
लुङ् (५)				लुङ् (४)		
असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः	प्र०	असोष्ट	असोषाताम्	असोषत
असावीः	असाविष्टम्	असाविष्ट	म०	असोष्ठाः	असोषाथाम्	असोढ्वम्
[illegible]विषम्	असाविष्व	असाविष्म	उ०	असोषि	असोष्वहि	असोष्महि

(६) तुदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु तुद् (दुःख देना) है, अत गण का नाम तुदादिगण पड़ा। (तुदादिभ्य. श.) तुदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श (अ) विकरण लगता है। भ्वादिगण में भी 'अ' विकरण लगता है। अन्तर यह है कि भ्वादिगण में लट् आदि में धातु को गुण होता है, परन्तु तुदादि० में धातु को गुण नहीं होगा।

(२) (क) लट् आदि मे धातु के अन्तिम इ और ई को इय् होगा, उ और ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ॠ को ईर् होगा। जैसे—रि > रियति, सू > सुवति, मृ > म्रियते, गॄ > गिरति। (ख) (शे मुचादीनाम्) मुच् आदि धातुओं में बीच में न् लग जाता है। मुच् > मुञ्चति, विद् > विन्दति, लिप् > लिम्पति, सिच् > सिञ्चति, कृत् > कृन्तति।

(३) इस गण में १५७ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। परस्मैपद में भू के तुल्य और आत्मनेपद में सेव् के तुल्य रूप चलावें। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं०रूप ही लगेंगे। सेट् में लृट् आदि में सं०रूप से पहले इ भी लगेगा।

परस्मैपद (सं० रूप) — आत्मनेपद (सं० रूप)

लट्

अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे

लोट्

अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ) — लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)

अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि

विधिलिङ्

एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

परस्मैपदी-धातुएँ

(७३) इष् (चाहना) (दे० अ० ४७) **(७४) प्रच्छ् (पूछना) (दे० अ० ४७)**

सूचना—लट् आदि मे इष् को इच्छ् होगा। सूचना—लट् आदि में प्रच्छ् को पृच्छ्।

	लट्				लट्	
इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति	प्र०	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ	म०	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः	उ०	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छाम
	लोट्				लोट्	
इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु	प्र०	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
इच्छ	इच्छतम्	इच्छत	म०	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम	उ०	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम
	लङ्				लङ्	
ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्	प्र०	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत	म०	अपृच्छ	अपृच्छतम्	अपृच्छत
ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम	उ०	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः	प्र०	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत	म०	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम	उ०	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम
एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति	लृट्	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
एषिता, एष्टा (दोनों प्रकार से)			लुट्	प्रष्टा	प्रष्टारौ	प्रष्टारः
इष्यात्	इष्यास्ताम्	इष्यासुः	आ०लिङ्	पृच्छ्यात्	पृच्छ्यास्ताम्०	
ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्	लृङ्	अप्रक्ष्यत्	अप्रक्ष्यताम्०	
	लिट्				लिट्	
इयेष	ईषतुः	ईषुः	प्र०	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
इयेषिथ	ईषथुः	ईष	म०	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
इयेष	ईषिव	ईषिम	उ०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम
	लुङ् (५)				लुङ् (४)	
ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः	प्र०	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट	म०	अप्राक्षीः	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
[illegible]	ऐषिष्व	ऐषिष्म	उ०	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्म

(७५) लिख् (लिखना) (दे० अ० ४८) | **(७६) स्पृश् (छूना) (दे० अ० ४८)**

	लट्				लट्	
लिखति	लिखतः	लिखन्ति	प्र०	स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति
लिखसि	लिखथः	लिखथ	म०	स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ
लिखामि	लिखावः	लिखामः	उ०	स्पृशामि	स्पृशावः	स्पृशामः
	लोट्				लोट्	
लिखतु	लिखताम्	लिखन्तु	प्र०	स्पृशतु	स्पृशताम्	स्पृशन्तु
लिख	लिखतम्	लिखत	म०	स्पृश	स्पृशतम्	स्पृशत
लिखानि	लिखाव	लिखाम	उ०	स्पृशानि	स्पृशाव	स्पृशाम
	लङ्				लङ्	
अलिखत्	अलिखताम्	अलिखन्	प्र०	अस्पृशत्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्
अलिखः	अलिखतम्	अलिखत	म०	अस्पृशः	अस्पृशतम्	अस्पृशत
अलिखम्	अलिखाव	अलिखाम	उ०	अस्पृशम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः	प्र०	स्पृशेत्	स्पृशेताम्	स्पृशेयुः
लिखेः	लिखेतम्	लिखेत	म०	स्पृशेः	स्पृशेतम्	स्पृशेत
लिखेयम्	लिखेव	लिखेम	उ०	स्पृशेयम्	स्पृशेव	स्पृशेम

लेखिष्यति	लेखिष्यतः	लेखिष्यन्ति	लृट्	स्पर्क्ष्यति	स्प्रक्ष्यति (दोनों प्रकार से)	
लेखिता	लेखितारौ	लेखितारः	लुट्	स्पर्ष्टा,	स्प्रष्टा	,, ,,
लिख्यात्	लिख्यास्ताम्	लिख्यासुः	आ०लिङ्	स्पृश्यात्	स्पृश्यास्ताम्	०
अलेखिष्यत्	अलेखिष्यताम्	०	लृङ्	अस्पर्क्ष्यत्	अस्प्रक्ष्यत् (दोनों प्रकार से)	
	लिट्				लिट्	
लिलेख	लिलिखतुः	लिलिखुः	प्र०	पस्पर्श	पस्पृशतुः	पस्पृशुः
लिलेखिथ	लिलिखथुः	लिलिख	म०	पस्पर्शिथ	पस्पृशथुः	पस्पृश
लिलेख	लिलिखिव	लिलिखिम	उ०	पस्पर्श	पस्पृशिव	पस्पृशिम
	लुङ् (५)				लुङ् (क) (४)	
अलेखीत्	अलेखिष्टाम्	अलेखिषुः	प्र०	अस्पार्क्षीत्	अस्पार्ष्टाम्	अस्पार्क्षुः
अलेखीः	अलेखिष्टम्	अलेखिष्ट	म०	अस्पार्क्षीः	अस्पार्ष्टम्	अस्पार्ष्ट
अलेखिषम्	अलेखिष्व	अलेखिष्म	उ०	अस्पार्क्षम्	अस्पार्क्ष्व	अस्पार्क्ष्म
	—		लुङ् (ख) (४)	अस्प्राक्षीत्	अस्प्राष्टाम्०	(पूर्ववत्)
			लुङ् (ग) (७)	अस्पृक्षत्	अस्पृक्षताम्	अस्पृक्षन्
				अस्पृक्षः	अस्पृक्षतम्	अस्पृक्षत
				अस्पृक्षम्	अस्पृक्षाव	अस्पृक्षाम

(७७) कॄ (फैलाना) (दे० अ० ४९) **(७८) गॄ (निगलना) (दे० अ० ४९)**

लट्				लट्		
किरति	किरतः	किरन्ति	प्र०	गिरति	गिरतः	गिरन्ति
किरसि	किरथः	किरथ	म०	गिरसि	गिरथः	गिरथ
किरामि	किरावः	किरामः	उ०	गिरामि	गिरावः	गिरामः
लोट्				**लोट्**		
किरतु	किरताम्	किरन्तु	प्र०	गिरतु	गिरताम्	गिरन्तु
किर	किरतम्	किरत	म०	गिर	गिरतम्	गिरत
किराणि	किराव	किराम	उ०	गिराणि	गिराव	गिराम
लङ्				**लङ्**		
अकिरत्	अकिरताम्	अकिरन्	प्र०	अगिरत्	अगिरताम्	अगिरन्
अकिरः	अकिरतम्	अकिरत	म०	अगिरः	अगिरतम्	अगिरत
अकिरम्	अकिराव	अकिराम	उ०	अगिरम्	अगिराव	अगिराम
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
किरेत्	किरेताम्	किरेयुः	प्र०	गिरेत्	गिरेताम्	गिरेयुः
किरेः	किरेतम्	किरेत	म०	गिरेः	गिरेतम्	गिरेत
किरेयम्	किरेव	किरेम	उ०	गिरेयम्	गिरेव	गिरेम

करिष्यति, करीष्यति (दोनों प्रकार से) लृट् गरिष्यति गरीष्यति (दोनों प्रकार से)
करिता, करीता (,,) लुट् गरिता, गरीता (,,)
कीर्यात् कीर्यास्ताम् कीर्यासुः आ०लिङ् गीर्यात् गीर्यास्ताम् गीर्यासुः
अकरिष्यत् अकरीष्यत् (दोनों प्रकार से) लृङ् अगरिष्यत् अगरीष्यत् (दोनों प्रकार से)

लिट्				लिट्		
चकार	चकरतुः	चकरुः	प्र०	जगार	जगरतुः	जगरुः
चकरिथ	चकरथुः	चकर	म०	जगरिथ	जगरथुः	जगर
चकार, चकर	चकरिव	चकरिम	उ०	जगार, जगर	जगरिव	जगरिम
लुङ् (५)				**लुङ् (५)**		
अकारीत्	अकारिष्टाम्	अकारिषुः	प्र०	अगारीत्	अगारिष्टाम्	अगारिषुः
अकारीः	अकारिष्टम्	अकारिष्ट	म०	अगारीः	अगारिष्टम्	अगारिष्ट
अकारिषम्	अकारिष्व	अकारिष्म	उ०	अगारिषम्	अगारिष्व	अगारिष्म

सूचना—(अचि विभाषा) गॄ धातु के र् को ल् होता है, स्वर बाद में हो तो। अतः आशीर्लिङ् को छोड़कर सर्वत्र र के स्थान पर ल वाले भी रूप बनेंगे। जैसे—
गिलतु, अगिलत्, गिलेत्, गलिष्यति, गलिता, अगलिष्यत्, जगाल, अगालीत्।

(७९) क्षिप् (फेंकना) (दे० अ० ५०)

सूचना—धातु उभयपदी है। यहाँ परस्मैपद के ही रूप दिए हैं। आत्मनेपद मे तुद् (८१) के तुल्य।

(८०) मृ (मरना) (दे० अ० ५०)

सूचना—यह लट्, लुट्, लङ् और लिट् में परस्मै० है, अन्यत्र आत्मनेपदी।

	लट्				लट्	
क्षिपति	क्षिपतः	क्षिपन्ति	प्र०	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते
क्षिपसि	क्षिपथः	क्षिपथ	म०	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
क्षिपामि	क्षिपावः	क्षिपामः	उ०	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे
	लोट्				लोट्	
क्षिपतु	क्षिपताम्	क्षिपन्तु	प्र०	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
क्षिप	क्षिपतम्	क्षिपत	म०	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
क्षिपाणि	क्षिपाव	क्षिपाम	उ०	म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै
	लङ्				लङ्	
अक्षिपत्	अक्षिपताम्	अक्षिपन्	प्र०	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
अक्षिपः	अक्षिपतम्	अक्षिपत	म०	अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
अक्षिपम्	अक्षिपाव	अक्षिपाम	उ०	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्षिपेत्	क्षिपेताम्	क्षिपेयु.	प्र०	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
क्षिपेः	क्षिपेतम्	क्षिपेत	म०	म्रियेथा.	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
क्षिपेयम्	क्षिपेव	क्षिपेम	उ०	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि
क्षेप्स्यति	क्षेप्स्यत॰	क्षेप्स्यन्ति	लृट्	मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति
क्षेप्ता	क्षेप्तारौ	क्षेप्तारः	लुट्	मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः
क्षिप्यात्	क्षिप्यास्ताम्	क्षिप्यासुः	आ०लिङ्	मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	०
अक्षेप्स्यत्	अक्षेप्स्यताम्	अक्षेप्स्यन्	लृङ्	अमरिष्यत्	अमरिष्यताम्	०
	लिट्				लिट्	
चिक्षेप	चिक्षिपतुः	चिक्षिपुः	प्र०	ममार	मम्रतु.	मम्रु.
चिक्षेपिथ	चिक्षिपथुः	चिक्षिप	म०	ममर्थ	मम्रथु	मम्र
चिक्षेप	चिक्षिपिव	चिक्षिपिम	उ०	ममार, ममर	मम्रिव	मम्रिम
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अक्षैप्सीत्	अक्षैप्ताम्	अक्षैप्सुः	प्र०	अमृत	अमृषाताम्	अमृषत
अक्षैप्सीः	अक्षैप्तम्	अक्षैप्त	म०	अमृथाः	अमृषाथाम्	अमृढ्वम्
अक्षैप्सम्	अक्षैप्स्व	अक्षैप्स्म	उ०	अमृषि	अमृष्वहि	अमृष्महि

तुदादिगण, उभयपदी धातुएँ

(८१) तुद् (दुःख देना) (दे० अ० ५१)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
तुदति	तुदतः	तुदन्ति	प्र०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
तुदसि	तुदथः	तुदथ	म०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
तुदामि	तुदावः	तुदामः	उ०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे
लोट्				लोट्		
तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु	प्र०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
तुद	तुदतम्	तुदत	म०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
तुदानि	तुदाव	तुदाम	उ०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै
लङ्				लङ्		
अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्	प्र०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
अतुदः	अतुदतम्	अतुदत	म०	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम	उ०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदायमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः	प्र०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
तुदेः	तुदेतम्	तुदेत	म०	तुदेथा	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
तुदेयम्	तुदेव	तुदेम	उ०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति	लृट्	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः	लुट्	तोत्ता	तोत्ता[illegible]	तोत्[illegible]
तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः	आ०लिङ्	तुत्सीष्ट	[illegible]	[illegible]
अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्	०	लृङ्	अतोत्स्यत		

लिट्				
तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः	प्र०	तुतुदे
तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद	म०	तुतुदिषे
तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम	[illegible]	ततदे

लुङ् (४)		
अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	[illegible]
अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त
अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म

(८५) हिंस् (हिंसा करना) (दे० अ० ५३) (८६) भञ्ज् (तोड़ना) (दे० अ० ५३)

परस्मैपदी				परस्मैपदी		
	लट्				लट्	
हिनस्ति	हिंस्तः	हिंसन्ति	प्र०	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
हिनस्सि	हिंस्थः	हिंस्थ	म०	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
हिनस्मि	हिंस्वः	हिंस्मः	उ०	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः
	लोट्				लोट्	
हिनस्तु	हिंस्ताम्	हिंसन्तु	प्र०	भनक्तु	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु
हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त	म०	भङ्ग्धि	भङ्क्तम्	भङ्क्त
हिनसानि	हिनसाव	हिनसाम	उ०	भनजानि	भनजाव	भनजाम
	लङ्				लङ्	
अहिनत्	अहिंस्ताम्	अहिंसन्	प्र०	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
अहिन	अहिंस्तम्	अहिंस्त	म०	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
अहिनसम्	अहिंस्व	अहिंस्म	उ०	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
हिंस्यात्	हिंस्याताम्	हिंस्युः	प्र०	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
हिंस्याः	हिंस्यातम्	हिंस्यात	म०	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम	उ०	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम
	—				—	
हिंसिष्यति	हिंसिष्यतः	हिंसिष्यन्ति	लृट्	भङ्क्ष्यति	भङ्क्ष्यतः	भङ्क्ष्यन्ति
हिंसिता	हिंसितारौ	हिंसितारः	लुट्	भङ्क्ता	भङ्क्तारौ	भङ्क्तारः
हिंस्यात्	हिंस्यास्ताम्	हिंस्यासुः	आ०लिङ्	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः
अहिंसिष्यत्	अहिंसिष्यताम्	०	लृङ्	अभङ्क्ष्यत्	अभङ्क्ष्यताम्	०
	लिट्				लिट्	
जिहिंस	जिहिंसतुः	जिहिंसुः	प्र०	बभञ्ज	बभञ्जतुः	बभञ्जुः
जिहिंसिथ	जिहिंसथुः	जिहिंस	म०	बभञ्जिथ, बभङ्क्थ	बभञ्जथुः	बभञ्ज
जिहिंस	जिहिंसिव	जिहिंसिम	उ०	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम
	लुङ् (५)				लुङ् (४)	
अहिंसीत्	अहिंसिष्टाम्	अहिंसिषुः	प्र०	अभाङ्क्षीत्	अभाङ्क्ताम्	अभाङ्क्षुः
अहिंसीः	अहिंसिष्टम्	अहिंसिष्ट	म०	अभाङ्क्षीः	अभाङ्क्तम्	अभाङ्क्त
अहिंसिषम्	अहिंसिष्व	अहिंसिष्म	उ०	अभाङ्क्षम्	[illegible]	[illegible]क्ष्म

रुधादिगण । उभयपदी धातुएँ

(८७) रुध् (रोकना, ढकना) (दे० अ० ५४)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
रुणद्धि	रुन्ध	रुन्धन्ति	प्र०	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
रुणत्सि	रुन्ध	रुन्ध	म०	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
रुणध्मि	रुन्ध्व.	रुन्ध्म	उ०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे
लोट्				लोट्		
रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु	प्र०	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
रुन्धि	रुन्धम्	रुन्ध	म०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	उ०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै
लङ्				लङ्		
अरुणत्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्	प्र०	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
अरुण	अरुन्धम्	अरुन्ध	म०	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्
अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	उ०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	प्र०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	म०	रुन्धीथा	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	उ०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि
रोत्स्यति	रोत्स्यत.	रोत्स्यन्ति	लृट्	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धार	लुट्	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धार
रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासु	आ०लिङ्	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	०
अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	०	लृङ्	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	०
लिट्				लिट्		
रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधु.	प्र०	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
रुरोधिथ	रुरुधथु.	रुरुध	म०	रुरुधिषे	रुरुधाथे	रुरुधिध्वे
रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम	उ०	रुरुधे	रुरुधिवहे	रुरुधिमहे
लुङ् (क) (४)				लुङ् (४)		
अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सु	प्र०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
अरौत्सी	अरौद्धम्	अरौद्ध	म०	अरुद्धा.	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
अरौत्सम्	अरौत्स्व	अरौत्स्म	उ०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि
(ख) (२) अरुधत्	अरुधताम्	अरुधन्	प्र०			
अरुध	अरुधतम्	अरुधत	म०			
अरुधम्	अरुधाव	अरुधाम	उ०			

(८८) भुज् (पालन करना) (दे० अ० ५४) (८८) भुज् (खाना) (दे० अ० ५४)

सूचना—पालन करना अर्थ में परस्मैपदी है। **सूचना**—खाना और उपभोग करना अर्थ में आत्मनेपदी है।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति	प्र०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ	म०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः	उ०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे
	लोट्				लोट्	
भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु	प्र०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त	म०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम	उ०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै
	लङ्				लङ्	
अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्	प्र०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त	म०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म	उ०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः	प्र०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात	म०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम	उ०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति	लृट्	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः	लुट्	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः	आ० लिङ्	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	०
अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	०	लृङ्	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	०
	लिट्				लिट्	
बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः	प्र०	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज	म०	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे
बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम	उ०	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः	प्र०	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त	म०	अभुक्थाः	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म	उ०	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि

(८९) युज् (लगना, जोड़ना, मिलाना, नियुक्त करना) (दे० अ० ५५)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
युनक्ति	युङ्क्तः	युञ्जन्ति	प्र०	युङ्क्ते	युञ्जाते	युञ्जते
युनक्षि	युङ्क्थ	युङ्क्थ	म०	युङ्क्षे	युञ्जाथे	युङ्ग्ध्वे
युनज्मि	युञ्ज्वः	युञ्ज्मः	उ०	युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे
लोट्				लोट्		
युनक्तु	युङ्क्ताम्	युञ्जन्तु	प्र०	युङ्क्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्
युङ्ग्धि	युङ्क्तम्	युङ्क्त	म०	युङ्क्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ग्ध्वम्
युनजानि	युनजाव	युनजाम	उ०	युनजै	युनजावहै	युनजामहै
लङ्				लङ्		
अयुनक्	अयुङ्क्ताम्	अयुञ्जन्	प्र०	अयुङ्क्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत
अयुनक्	अयुङ्क्तम्	अयुङ्क्त	म०	अयुङ्क्थाः	अयुञ्जाथाम्	अयुङ्ग्ध्वम्
अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म	उ०	अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्युः	प्र०	युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्
युञ्ज्याः	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात	म०	युञ्जीथाः	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्
युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम	उ०	युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि

योक्ष्यति	योक्ष्यतः	योक्ष्यन्ति	लृट्	योक्ष्यते	योक्ष्येते	योक्ष्यन्ते
योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः	लुट्	योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः
युज्यात्	युज्यास्ताम्	युज्यासुः	आ० लिङ्	युक्षीष्ट	युक्षीयास्ताम्०	
अयोक्ष्यत्	अयोक्ष्यताम्०		लृङ्	अयोक्ष्यत	अयोक्ष्येताम्०	

लिट्				लिट्		
युयोज	युयुजतुः	युयुजुः	प्र०	युयुजे	युयुजाते	युयुजिरे
युयोजिथ	युयुजथुः	युयुज	म०	युयुजिषे	युयुजाथे	युयुजिध्वे
युयोज	युयुजिव	युयुजिम	उ०	युयुजे	युयुजिवहे	युयुजिमहे
लुङ् (क) (४)				लुङ् (४)		
अयौक्षीत्	अयौक्ताम्	अयौक्षुः	प्र०	अयुक्त	अयुक्षाताम्	अयुक्षत
अयौक्षीः	अयौक्तम्	अयौक्त	म०	अयुक्थाः	अयुक्षाथाम्	अयुग्ध्वम्
अयौक्षम्	अयौक्ष्व	अयौक्ष्म	उ०	अयुक्षि	अयुक्ष्वहि	अयुक्ष्महि

लुङ् (ख) (२)

अयुजत् अयुजताम् अयुजन् आदि ।

(८८) भुज् (पालन करना) (दे० अ० ५४) (८८) भुज् (खाना) (दे० अ० ५४)

सूचना—पालन करना अर्थ मे परस्मैपदी है। सूचना—खाना और उपभोग करना अर्थ मे आत्मनेपदी है।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति	प्र०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ	म०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः	उ०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे
	लोट्				लोट्	
भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु	प्र०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त	म०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम	उ०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै
	लङ्				लङ्	
अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्	प्र०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त	म०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म	उ०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः	प्र०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात	म०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम	उ०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि
	—				—	
भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति	लृट्	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः	लुट्	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः	आ० लिङ्	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	०
अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	०	लृङ्	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	०
	लिट्				लिट्	
बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः	प्र०	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज	म०	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे
बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम	उ०	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः	प्र०	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त	म०	अभुक्थाः	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म	उ०	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि

(८९) युज् (लगना, जोड़ना, मिलाना, नियुक्त करना) (दे० अ० ५५)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
युनक्ति	युङ्क्तः	युञ्जन्ति	प्र०	युङ्क्ते	युञ्जाते	युञ्जते
युनक्षि	युङ्क्थः	युङ्क्थ	म०	युङ्क्षे	युञ्जाथे	युङ्ग्ध्वे
युनज्मि	युञ्ज्वः	युञ्ज्मः	उ०	युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे
लोट्				लोट्		
युनक्तु	युङ्क्ताम्	युञ्जन्तु	प्र०	युङ्क्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्
युङ्ग्धि	युङ्क्तम्	युङ्क्त	म०	युङ्क्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ग्ध्वम्
युनजानि	युनजाव	युनजाम	उ०	युनजै	युनजावहै	युनजामहै
लङ्				लङ्		
अयुनक्	अयुङ्क्ताम्	अयुञ्जन्	प्र०	अयुङ्क्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत
अयुनक्	अयुङ्क्तम्	अयुङ्क्त	म०	अयुङ्क्थाः	अयुञ्जाथाम्	अयुङ्ग्ध्वम्
अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म	उ०	अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्युः	प्र०	युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्
युञ्ज्याः	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात	म०	युञ्जीथाः	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्
युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम	उ०	युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि
योक्ष्यति	योक्ष्यतः	योक्ष्यन्ति	लृट्	योक्ष्यते	योक्ष्येते	योक्ष्यन्ते
योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः	लुट्	योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः
युज्यात्	युज्यास्ताम्	युज्यासुः	आ० लिङ्	युक्षीष्ट	युक्षीयास्ताम्०	
अयोक्ष्यत्	अयोक्ष्यताम्०		लृङ्	अयोक्ष्यत	अयोक्ष्येताम्०	
लिट्				लिट्		
युयोज	युयुजतुः	युयुजुः	प्र०	युयुजे	युयुजाते	[illegible]
युयोजिथ	युयुजथुः	युयुज	म०	युयुजिषे	युयुजाथे	युयु[illegible]
युयोज	युयुजिव	युयुजिम	उ०	युयुजे	युयुजिवहे	युयु[illegible]
लुङ् (क) (४)				लुङ् (४)		
अयौक्षीत्	अयौक्ताम्	अयौक्षुः	प्र०	अयुक्त	अयुक्षाताम्	अयुक्षत
अयौक्षीः	अयौक्तम्	अयौक्त	म०	अयुक्थाः	अयुक्षाथाम्	अयुग्ध्वम्
अयौक्षम्	अयौक्ष्व	अयौक्ष्म	उ०	अयुक्षि	अयुक्ष्वहि	अयुक्ष्महि

लुङ् (ख) (२)

अयुजत् अयुजताम् अयुजन् आदि ।

(८) तनादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, अतः गण का नाम तनादिगण पड़ा। (तनादिकृञ्भ्य उ) तनादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में 'उ' विकरण लगता है।

(२) (क) धातुओं की उपधा के उ और ऋ को लट् आदि में विकल्प से गुण होता है। अतः उनके लट् आदि में दो रूप बनेंगे। क्षिणु्>क्षिणोति, क्षेणोति। (ख) (अत उत्सार्वधातुके) कृ धातु के ऋ को उर् हो जाता है, क्ङित् और ङित् वाले स्थानों पर। अतः परस्मैपद में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में द्विवचन और बहुवचन में ऋ को उर् होता है। आत्मनेपद में लट् आदि में सर्वत्र उर्। लोट् उत्तमपुरुष में दोनों पदों में गुण ही होता है। (ग) उ विकरण को परस्मै० लट् आदि के एक० में गुण होता है। परस्मै० विधिलिङ् और आत्मने० में उ ही रहता है। लोट् उ० पु० में गुण होगा।

(३) इस गण में १० धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृ० १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
लट्				लट्		
ओति	उतः	वन्ति	प्र०	उते	वाते	वते
ओषि	उथ	उथ	म०	उषे	वाथे	उध्वे
ओमि	उवः, वः	उमः, मः	उ०	वे	उवहे, वहे	उमहे, महे
लोट्				लोट्		
ओतु	उताम्	वन्तु	प्र०	उताम्	वाताम्	वताम्
उ	उतम्	उत	म०	उष्व	वाथाम्	उध्वम्
अवानि	अवाव	अवाम	उ०	अवै	अवावहै	अवामहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
ओत्	उताम्	वन्	प्र०	उत	वाताम्	वत
ओः	उतम्	उत	म०	उथाः	वाथाम्	उध्वम्
अवम्	उव, व	उम, म	उ०	वि	उवहि, वहि	उमहि, महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
उयात्	उयाताम्	उयुः	प्र०	वीत	वीयाताम्	वीरन्
उयाः	उयातम्	उयात	म०	वीथाः	वीयाथाम्	वीध्वम्
उयाम्	उयाव	उयाम	उ०	वीय	वीवहि	वीमहि

तनादिगण । उभयपदी धातुएँ

(९०) तन् (फैलाना) (दे० अ० ५५)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	प्र०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
तनोषि	तनुथः	तनुथ	म०	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
तनोमि	तनुवः	तनुमः	उ०	तन्वे	तनुवहे	तनुमहे
लोट्				**लोट्**		
तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	प्र०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
तनु	तनुतम्	तनुत	म०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
तनवानि	तनवाव	तनवाम	उ०	तनवै	तनवावहै	तनवामहै
लङ्				**लङ्**		
अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	प्र०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	म०	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
अतनवम्	अतनुव	अतनुम	उ०	अतन्वि	अतनुवहि	अतनुमहि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः	प्र०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात	म०	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	उ०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि
—						—
तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति	लृट्	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
तनिता	तनितारौ	तनितारः	लुट्	तनिता	तनितारौ	तनितारः
तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः	आ० लिङ्	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	०
अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्	०	लृङ्	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	०
लिट्				**लिट्**		
ततान	तेनतुः	तेनुः	प्र०	तेने	तेनाते	तेनिरे
तेनिथ	तेनथुः	तेन	म०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
ततान, ततन	तेनिव	तेनिम	उ०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे
लुङ् (क) (५)				**लुङ् (५)**		
अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषुः	प्र०	अतत, अतनिष्ट	अतनिषाताम्	अतनिषत
अतनीः	अतनिष्टम्	अतनिष्ट	म०	अतथाः, अतनिष्ठाः	अतनिषाथाम्	अतनिध्वम्
अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म	उ०	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि
लुङ् (ख) (५)				—		

अतानीत् अतानिष्टाम्० आदि (पूर्ववत्) ।

(९१) कृ (करना) (दे० अ० २१-२२)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
करोति	कुरुत	कुर्वन्ति	प्र०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	म०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	उ०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट्				लोट्		
करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	प्र०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
कुरु	कुरुतम्	कुरुत	म०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
करवाणि	करवाव	करवाम	उ०	करवै	करवावहै	करवामहै

लङ्				लङ्		
अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	प्र०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	म०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	उ०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	प्र०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	म०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	उ०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

—				—		
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	लृट्	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	लुट्	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः	आ०लिङ्	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	०
अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	०	लृङ्	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	०

लिट्				लिट्		
चकार	चक्रतुः	चक्रुः	प्र०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र	म०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
चकार, चकर	चकृव	चकृम	उ०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

लुङ् (४)				लुङ् (४)		
अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः	प्र०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट	म०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म	उ०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

(९) क्र्यादिगण

१ इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, अतः गण का नाम क्र्यादिगण पड़ा । (क्र्यादिभ्य. श्ना) क्र्यादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् मे धातु और प्रत्यय के बीच में श्ना (ना) विकरण होता है ।

२ (क) लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता । (ख) 'ना' विकरण परस्मै० के लट्, लोट्, लङ् के एक० में ना रहता है । दोनों पदों में लोट् उ० पु० मे ना रहेगा । अन्यत्र ना को नी होता है । जहाँ बाद में स्वर होता है, वहाँ ना का न् रहता है । परस्मै० लोट् म० पु० एक० मे ना को नी होता है या आन होता है । (ग) धातु की उपधा मे न् होगा तो लट् आदि में न् का लोप हो जाएगा । (घ) (हल. श्नः शानज्झौ) व्यजनान्त धातुओं के बाद परस्मै० लोट् म० पु० एक० मे ना को आन हो जायगा और हि का लोप होगा । अत. 'आन' शेष रहेगा । बन्ध्>बधान, ग्रह्>गृहाण । (ङ) (प्वादीनां ह्रस्व·) पू आदि धातुओं को लट् आदि में ह्रस्व होगा । पू>पुनाति । धू>धुनाति । (च) (ग्रहोऽलिटि दीर्घ.) ग्रह् धातु के बाद इ को ई हो जाएगा, लिट् को छोड़कर । ग्रहीष्यति, ग्रहीता ।

३ इस गण में ६१ धातुएँ हैं ।

४. लट् आदि में धातु के बाद ये संक्षिप्तरूप लगेंगे । लिट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं० रूप ही लगेंगे ।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
नाति	नीत	नन्ति	प्र०	नीते	नाते	नते
नासि	नीथ	नीथ	म०	नीषे	नाथे	नीध्वे
नामि	नीव	नीम.	उ०	ने	नीवहे	नीमहे
	लोट्				लोट्	
नातु	नीताम्	नन्तु	प्र०	नीताम्	नाताम्	नत
नीहि (आन)	नीतम्	नीत	म०	नीष्व	नाथाम्	नी
नानि	नाव	नाम	उ०	नै	नावहै	ना
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
नात्	नीताम्	नन्	प्र०	नीत	नाताम्	नत
ना	नीतम्	नीत	म०	नीथा.	नाथाम्	नाध्व
नाम्	नीव	नीम	उ०	नि	नीवहि	नीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नीयात्	नीयाताम्	नीयु	प्र०	नीत	नीयाताम्	नीरन्
नीया	नीयातम्	नीयात	म०	नीथा	नीयाथाम्	नीध्वम्
नीयाम्	नीयाव	नीयाम	उ०	नीय	नीवहि	नीमहि

१४

(९१) कृ (करना) (दे० अ० २१-२२)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	प्र०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	म०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	उ०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट्				लोट्		
करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	प्र०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
कुरु	कुरुतम्	कुरुत	म०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
करवाणि	करवाव	करवाम	उ०	करवै	करवावहै	करवामहै

लङ्				लङ्		
अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	प्र०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	म०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	उ०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	प्र०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	म०	कुर्वीथा	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	उ०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

—				—		
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	लृट्	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	लुट्	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः	आ०लिङ्	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	०
अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	०	लृङ्	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	०

लिट्				लिट्		
चकार	चक्रतुः	चक्रुः	प्र०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र	म०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
चकार, चकर	चकृव	चकृम	उ०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

लुङ् (४)				लुङ् (४)		
अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः	प्र०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट	म०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म	उ०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

(९) क्र्यादिगण

१ इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, अत. गण का नाम क्र्यादिगण पडा । (क्र्यादिभ्य. श्ना) क्र्यादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् मे धातु और प्रत्यय के बीच में श्ना (ना) विकरण होता है ।

२. (क) लट् आदि मे धातु को गुण नही होता । (ख) 'ना' विकरण परस्मै० के लट्, लोट्, लङ् के एक० में ना रहता है । दोनो पदों में लोट् उ० पु० मे ना रहेगा । अन्यत्र ना को नी होता है । जहाँ बाद मे स्वर होता है, वहाँ ना का न् रहता है । परस्मै० लोट् म० पु० एक० मे ना को नी होता है या आन होता है । (ग) धातु की उपधा मे न् होगा तो लट् आदि में न् का लोप हो जाएगा । (घ) (हल. श्नः शानज्झौ) व्यजनान्त धातुओं के बाद परस्मै० लोट् म० पु० एक० मे ना को आन हो जायगा और हि का लोप होगा । अत. 'आन' शेष रहेगा । बन्ध्>बधान, ग्रह्> गृहाण । (ङ) (प्वादीना ह्रस्व) पू आदि धातुओं को लट् आदि मे ह्रस्व होगा । पू>पुनाति । धू>धुनाति । (च) (ग्रहोऽलिटि दीर्घ.) ग्रह् धातु के बाद इ को ई हो जाएगा, लिट् को छोडकर । ग्रहीष्यति, ग्रहीता ।

३. इस गण में ६१ धातुएँ हैं ।

४. लट् आदि मे धातु के बाद ये सक्षिप्तरूप लगेंगे । लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट स० रूप ही लगेंगे ।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
नाति	नीत	नन्ति	प्र०	नीते	नाते	नते
नासि	नीथ	नीथ	म०	नीषे	नाथे	नीध्वे
नामि	नीव	नीम.	उ०	ने	नीवहे	नीमहे
	लोट्				लोट्	
नातु	नीताम्	नन्तु	प्र०	नीताम्	नाताम्	नताम्
नीहि (आन)	नीतम्	नीत	म०	नीष्व	नाथाम्	नीध्वम्
नानि	नाव	नाम	उ०	नै	नावहै	नामहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
नात्	नीताम्	नन्	प्र०	नीत	नाताम्	नत
ना	नीतम्	नीत	म०	नीथाः	नाथाम्	नीध्वम्
नाम्	नीव	नीम	उ०	नि	नीवहि	नीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
नीयात्	नीयाताम्	नीयु	प्र०	नीत	नीयाताम्	नीरन्
नीया	नीयातम्	नीयात	म०	नीया	नीयाथाम्	
नीयाम्	नीयाव	नीयाम	उ०	नीय	नीवहि	

(९१) कृ (करना) (दे० अ० २१-२२)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	प्र०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	म०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	उ०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे
लोट्				लोट्		
करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	प्र०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
कुरु	कुरुतम्	कुरुत	म०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
करवाणि	करवाव	करवाम	उ०	करवै	करवावहै	करवामहै
लङ्				लङ्		
अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	प्र०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	म०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	उ०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	प्र०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	म०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	उ०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि
—				—		
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	लृट्	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	लुट्	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः	आ०लिङ्	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	०
अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	०	लृङ्	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	०
लिट्				लिट्		
चकार	चक्रतुः	चक्रुः	प्र०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र	म०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
चकार, चकर	चकृव	चकृम	उ०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे
लुङ् (४)				लुङ् (४)		
अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः	प्र०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट	म०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म	उ०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

(९) क्र्यादिगण

१ इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, अतः गण का नाम क्र्यादिगण पड़ा। (क्र्यादिभ्यः श्ना) क्र्यादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में श्ना (ना) विकरण होता है।

२ (क) लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता। (ख) 'ना' विकरण परस्मै० के लट्, लोट्, लङ् के एक० में ना रहता है। दोनों पदों में लोट् उ० पु० में ना रहेगा। अन्यत्र ना को नी होता है। जहाँ बाद में स्वर होता है, वहाँ ना का न् रहता है। परस्मै० लोट् म० पु० एक० में ना को नी होता है या आन होता है। (ग) धातु की उपधा में न् होगा तो लट् आदि में न् का लोप हो जाएगा। (घ) (हलः श्नः शानज्झौ) व्यंजनान्त धातुओं के बाद परस्मै० लोट् म० पु० एक० में ना को आन हो जायगा और हि का लोप होगा। अतः 'आन' शेष रहेगा। बन्ध्>बधान, ग्रह्>गृहाण। (ङ) (प्वादीनां ह्रस्वः) पू आदि धातुओं को लट् आदि में ह्रस्व होगा। पू>पुनाति। धू>धुनाति। (च) (ग्रहोऽलिटि दीर्घः) ग्रह् धातु के बाद इ को ई हो जाएगा, लिट् को छोड़कर। ग्रहीष्यति, ग्रहीता।

३. इस गण में ६१ धातुएँ हैं।

४ लट् आदि में धातु के बाद ये संक्षिप्तरूप लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं० रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				**लट्**	
नाति	नीतः	नन्ति	प्र०	नीते	नाते	नते
नासि	नीथः	नीथ	म०	नीषे	नाथे	नीध्वे
नामि	नीवः	नीमः	उ०	ने	नीवहे	नीमहे
	लोट्				**लोट्**	
नातु	नीताम्	नन्तु	प्र०	नीताम्	नाताम्	नताम्
नीहि (आन)	नीतम्	नीत	म०	नीष्व	नाथाम्	नीध्वम्
नानि	नाव	नाम	उ०	नै	नावहै	नामहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				**लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)**	
नात्	नीताम्	नन्	प्र०	नीत	नाताम्	नत
नाः	नीतम्	नीत	म०	नीथाः	नाथाम्	नीध्वम्
नाम्	नीव	नीम	उ०	नि	नीवहि	नीमहि
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
नीयात्	नीयाताम्	नीयुः	प्र०	नीत	नीयाताम्	—
नीयाः	नीयातम्	नीयात	म०	नीथाः	नीयाथाम्	
नीयाम्	नीयाव	नीयाम	उ०	नीय	नीवहि	

क्र्यादिगण । परस्मैपदी धातुएँ

(९२) बन्ध् (बाँधना) (दे० अ० ५७) (९३) मन्थ् (मथना) (दे० अ० ५७)

	लट्				लट्	
बध्नाति	बध्नीत	बध्नन्ति	प्र०	मथ्नाति	मथ्नीत.	मथ्नन्ति
बध्नासि	बध्नीथ	बध्नीथ	म०	मथ्नासि	मथ्नीथ.	मथ्नीथ
बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीम	उ०	मथ्नामि	मथ्नीवः	मथ्नीम
	लोट्				लोट्	
बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु	प्र०	मथ्नातु	मथ्नीताम्	मथ्नन्तु
बधान	बध्नीतम्	बध्नीत	म०	मथान	मथ्नीतम्	मथ्नीत
बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम	उ०	मथ्नानि	मथ्नाव	मथ्नाम
	लङ्				लङ्	
अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्	प्र०	अमथ्नात्	अमथ्नीताम्	अमथ्नन्
अबध्ना.	अबध्नीतम्	अबध्नीत	म०	अमथ्नाः	अमथ्नीतम्	अमथ्नीत
अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम	उ०	अमथ्नाम्	अमथ्नीव	अमथ्नीम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयु	प्र०	मथ्नीयात्	मथ्नीयाताम्	मथ्नीयु
बध्नीया.	बध्नीयातम्	बध्नीयात	म०	मथ्नीया	मथ्नीयातम्	मथ्नीयात
बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम	उ०	मथ्नीयाम्	मथ्नीयाव	मथ्नीयाम

भन्त्स्यति	भन्त्स्यतः	भन्त्स्यन्ति	लृट्	मन्थिष्यति	मन्थिष्यतः	मन्थिष्यन्ति
बन्द्धा	बन्द्धारौ	बन्द्धारः	लुट्	मन्थिता	मन्थितारौ	मन्थितार·
बध्यात्	बध्यास्ताम्	बध्यासु.	आ० लिङ्	मथ्यात्	मथ्यास्ताम्	मथ्यासु
अभन्त्स्यत्	अभन्त्स्यताम्	०	लृङ्	अमन्थिष्यत्	अमन्थिष्यताम्	०

	लिट्				लिट्	
बबन्ध	बबन्धतु	बबन्धुः	प्र०	ममन्थ	ममन्थतुः	ममन्थुः
बबन्धिथ	बबन्धथु	बबन्ध	म०	ममन्थिथ	ममन्थथु.	ममन्थ
बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम	उ०	ममन्थ	ममन्थिव	ममन्थिम
	लुङ् (४)				लुङ् (५)	
अभान्त्सीत्	अबान्द्धाम्	अभान्त्सु.	प्र०	अमन्थीत्	अमन्थिष्टाम्	अमन्थिषु.
अभान्त्सी.	अबान्द्धम्	अबान्द्ध	म०	अमन्थीः	अमन्थिष्टम्	अमन्थिष्ट
अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म	उ०	अमन्थिषम्	अमन्थिष्व	अमन्थिष्म

उभयपदी धातुएँ

(९५) क्री (मोल लेना) (दे० अ० ५८)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	प्र०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	म०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	उ०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे
	लोट्				लोट्	
क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	प्र०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	म०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	उ०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै
	लङ्				लङ्	
अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	प्र०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	म०	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	उ०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	प्र०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	म०	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	उ०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि
क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति	लृट्	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः	लुट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासुः	आ०लिङ्	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्०	
अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्०		लृङ्	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्०	
	लिट्				लिट्	
चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः	प्र०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
चिक्रयिथ, चिक्रेथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय	म०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम	उ०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चि[illegible]
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः	प्र०	अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
अक्रैषीः	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट	म०	अक्रेष्ठाः	अक्रेषाथाम्	अक्रेढ्वम्
अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म	उ०	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि

(९५) ग्रह् (पकड़ना) (दे० अ० ५८)

सूचना—लट् आदि में ग्रह् को गृह् होगा। सूचना—लट् आदि में ग्रह् को गृह्।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
गृह्णाति	गृह्णीत	गृह्णन्ति	प्र०	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
गृह्णासि	गृह्णीथ	गृह्णीथ	म०	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
गृह्णामि	गृह्णीव	गृह्णीम.	उ०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे
लोट्				लोट्		
गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु	प्र०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत	म०	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम	उ०	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै
लङ्				लङ्		
अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्	प्र०	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत	म०	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम	उ०	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः	प्र०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात	म०	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम	उ०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति	लृट्	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः	लुट्	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासुः	आ० लिङ्	ग्रहीषीष्ट	ग्रहीषीयास्ताम्०	
अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्०		लृङ्	अग्रहीष्यत	अग्रहीष्येताम्०	

लिट्				लिट्		
जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः	प्र०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
जग्रहिथ	जगृहथुः	जगृह	म०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिध्वे
जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम	उ०	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे
लुङ् (५)				लुङ् (५)		
अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः	प्र०	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट	म०	अग्रहीष्ठाः	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीध्वम्
अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म	उ०	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि

(९६) ज्ञा (जानना) (दे० अ० ५६)

सूचना—लट् आदि मे ज्ञा को 'जा' होगा । सूचना—लट् आदि में ज्ञा को जा होगा ।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
जानाति	जानीत:	जानन्ति	प्र०	जानीते	जानाते	जानते
जानासि	जानीथ:	जानीथ	म०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
जानामि	जानीव:	जानीम:	उ०	जाने	जानीवहे	जानीमहे
लोट्				लोट्		
जानातु	जानीताम्	जानन्तु	प्र०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
जानीहि	जानीतम्	जानीत	म०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
जानानि	जानाव	जानाम	उ०	जानै	जानावहै	जानामहै
लङ्				लङ्		
अजानात्	अजानीताम्	अजानन्	प्र०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
अजाना:	अजानीतम्	अजानीत	म०	अजानीथा:	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
अजानाम्	अजानीव	अजानीम	उ०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयु:	प्र०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
जानीया:	जानीयातम्	जानीयात	म०	जानीथा:	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम	उ०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

ज्ञास्यति	ज्ञास्यत:	ज्ञास्यन्ति	लृट्	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातार:	लुट्	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातार:
ज्ञायात्,	ज्ञेयात् (दोनों प्रकार से)		आ०लिङ्	ज्ञासीष्ट	ज्ञासीयास्ताम्	०
अज्ञास्यत्	अज्ञास्यताम्	०	लृङ्	अज्ञास्यत	अज्ञास्येताम्	०

लिट्				लिट्		
जज्ञौ	जज्ञतु:	जज्ञु:	प्र०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथु:	जज्ञ	म०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम	उ०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे
लुङ् (६)				लुङ् (४)		
अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषु:	प्र०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
अज्ञासी:	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट	म०	अज्ञास्था:	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म	उ०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

चुरादिगण । उभयपदी धातुएँ

(९७) चुर् (चुराना) (दे० अ० ५९)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति	प्र०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ	म०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः	उ०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे
लोट्				लोट्		
चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु	प्र०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
चोरय	चोरयतम्	चोरयत	म०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम	उ०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै
लङ्				लङ्		
अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	प्र०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
अचोरय	अचोरयतम्	अचोरयत	म०	अचोरयथा	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	उ०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
चोरयेत्	चोरनेताम्	चोरयेयुः	प्र०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
चोरये	चोरयेतम्	चोरयेत	म०	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	उ०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति	लृट्	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	०
चोरयिता	चोरयितारौ	चोरयितारः	लुट्	चोरयिता	चोरयितारौ	०
चोर्यात्	चोर्यास्ताम्	चोर्यासुः	आ०लिङ्	चोरयिषीष्ट	चोरयिषीयास्ताम्	०
अचोरयिष्यत्	अचोरयिष्यताम्	०	लृङ्	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्येताम्	०

लिट् (क) (चोरया + कृ)				लिट् (क) (चोरया + कृ)		
चोरयाञ्चकार	–चक्रतुः	–चक्रुः	प्र०	चोरयाञ्चक्रे	–चक्राते	–चक्रिरे
–चकर्थ	–चक्रथुः	–चक्र	म०	–चकृषे	–चक्राथे	–चकृढ्वे
–चकार, चकर	–चकृव	–चकृम	उ०	–चक्रे	–चकृवहे	–चकृमहे

(ख) (चोरया + भू) चोरयाबभूव आदि । (ख) (चोरया + भू) चोरयाबभूव आदि

(ग) (चोरयाम् + अस्) चोरयामास आदि । (ग) (चोरयाम् + अस्) चोरयामास आदि

लुङ् (३)				लुङ् (३)		
अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्	प्र०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
अचूचुर	अचूचुरतम्	अचूचुरत	म०	अचूचुरथा	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम	उ०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि

(१०) चुरादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु चुर् (चुराना) है, अतः गण का नाम चुरादिगण पड़ा। (सत्याप चुरादिभ्यो णिच्) चुरादिगण में दसों लकारों में धातु से णिच् (अय्) प्रत्यय होता है। लट् आदि में शप् (अ) और लग जाने से धातु और प्रत्यय के बीच में 'अय' विकरण हो जाता है।

(२) **सूचना**—प्रेरणार्थक धातुओं में भी 'हेतुमति च' सूत्र से णिच् प्रत्यय करने पर चुरादिगण की धातुओं के तुल्य ही दसों लकारों में रूप चलेंगे।

(३) (क) णिच् (अय्) करने पर धातु के अन्तिम इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ को क्रमशः ऐ, औ, आर् वृद्धि होगी। पृ > पारयति, चि > चाययति। (ख) उपधा में अ, इ, उ, ऋ हों तो उन्हें क्रमशः आ, ए, ओ, अर् होगा। कथ्, गण्, रच् आदि कुछ धातुओं में अ को आ नहीं होता है। (ग) लृट् में परस्मै० में इष्यति लगेगा और आत्मने० में इष्यते आदि। (घ) (अर्तिह्री० आतां पुङ्णौ) आकारान्त धातुओं में आ के बाद प् और लग जाता है। आ + ज्ञा > आज्ञापयति।

(४) इस गण में ४१० धातुएँ हैं। चुरादिगण तक पूरी धातुसंख्या १९४४ है।

(५) चुरादिगणी धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में 'अय' लगाकर परस्मै० में भू के तुल्य और आत्मने० में सेव् के तुल्य रूप चलावें। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं० रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
लट् (धातु + अय्)				**लट् (धातु + अय्)**		
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
लोट् (धातु + अय्)				**लोट् (धातु + अय्)**		
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु + अय्) (धातु से पहले अ या आ)				**लङ् (धातु + अय्)**		
अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि
विधिलिङ् (धातु + अय्)				**विधिलिङ् (धातु + अय्)**		
एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

चुरादिगण । उभयपदी धातुएँ

(९७) चुर् (चुराना) (दे० अ० ५९)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति	प्र०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ	म०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः	उ०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे
लोट्				लोट्		
चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु	प्र०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
चोरय	चोरयतम्	चोरयत	म०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम	उ०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै
लङ्				लङ्		
अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	प्र०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
अचोरय	अचोरयतम्	अचोरयत	म०	अचोरयथा	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	उ०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः	प्र०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
चोरये	चोरयेतम्	चोरयेत	म०	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	उ०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति	लृट्	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	०
चोरयिता	चोरयितारौ	चोरयितारः	लुट्	चोरयिता	चोरयितारौ	०
चोर्यात्	चोर्यास्ताम्	चोर्यासुः	आ०लिङ्	चोरयिषीष्ट	चोरयिषीयास्ताम्	०
अचोरयिष्यत्	अचोरयिष्यताम् ०		लृङ्	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्येताम्	०

लिट् (क) (चोरया + कृ)				लिट् (क) (चोरया + कृ)		
चोरयाञ्चकार	—चक्रतुः	—चक्रुः	प्र०	चोरयाञ्चक्रे	—चक्राते	—चक्रिरे
—चकर्थ	—चक्रथुः	—चक्र	म०	—चकृषे	—चक्राथे	—चकृढ्वे
—चकार, चकर	—चकृव	—चकृम	उ०	—चक्रे	—चकृवहे	—चकृमहे

(ख) (चोरया + भू) चोरयाम्बभूव आदि । (ख) (चोरया + भू) चोरयाम्बभूव आदि

(ग) (चोरयाम् + अस्) चोरयामास आदि । (ग) (चोरयाम् + अस्) चोरयामास आदि

लुङ् (३)				लुङ् (३)		
अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्	प्र०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
अचूचुर	अचूचुरतम्	अचूचुरत	म०	अचूचुरथा	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम	उ०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि

(ग) भाव-कर्म-वाच्य

(१०४) कृ (करना) (दे० अ० ३१-३२)　　(१०५) दा (देना) (दे० अ० ३१-३२)

सूचना—भाववाच्य मे प्र० पु० एक० ही रहेगा।　　सूचना—भाववाच्य में प्र० पु० एक० ही रहेगा।

कर्मवाच्य—लट्				कर्मवाच्य—लट्		
क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते	प्र०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे	म०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे	उ०	दीये	दीयावहे	दीयामहे
	लोट्				लोट्	
क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्	प्र०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्	म०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै	उ०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै
	लङ्				लङ्	
अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त	प्र०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्	म०	अदीयथा	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि	उ०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्	प्र०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
क्रियेथा	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्	म०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि	उ०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

करिष्यते, कारिष्यते (दोनों प्रकार से)	लृट्०	दास्यते, दायिष्यते	(दोनो प्रकार से)
कर्ता, कारिता (,, ,,)	लुट्	दाता, दायिता	(,, ,,)
कृषीष्ट, कारिषीष्ट (,, ,,)	आ०लिङ्	दासीष्ट, दायिषीष्ट	(,, ,,)
अकरिष्यत, अकारिष्यत(,, ,,)	लृङ्	अदास्यत, अदायिष्यत	(,, ,,)

	लिट्				लिट्	
चक्रे	चक्राते	चक्रिरे	प्र०	ददे	ददाते	ददिरे
चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे	म०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
चक्रे	चकृवहे	चकृमहे	उ०	ददे	ददिवहे	ददिमहे
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अकारि	अकारिषाताम्	अकारिषत	प्र०	अदायि	अदायिषाताम्	अदायिषत
अकारिष्ठा	अकारिषाथाम्	अकारिढ्वम्	म०	अदायिष्ठा	अदायिषाथाम्	अदायिढ्वम्
[illegible]	अकारिष्वहि	अकारिष्महि	उ०	अदायिषि	अदायिष्वहि	अदायिष्महि

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
आघयत्	अघयेत्	अघ्यात्	आजिघत्	आघयिष्यत्	अघयति	अघ्यते
आङ्कयत्	अङ्कयेत्	अङ्क्यात्	आञ्चिकत्	आङ्कयिष्यत्	अङ्कयति	अङ्क्यते
आनक्	अञ्ज्यात्	अज्यात्	आञ्जीत्	आङ्क्ष्यत्	आञ्जयति	अज्यते
आटत्	अटेत्	अट्यात्	आटीत्	आटिष्यत्	आटयति	अट्यते
आतत्	अतेत्	अत्यात्	आतीत्	आतिष्यत्	आतयति	अत्यते
आदत्	अद्यात्	अद्यात्	अघसत्	आत्स्यत्	आदयदि	अद्यते
आनत्	अन्यात्	अन्यात्	आनीत्	आनिष्यत्	आनयति	अन्यते
आयत	अयेत	अयिषीष्ट	आयिष्ट	आयिष्यत	आययते	अय्यते
आर्चत्	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्	अर्चयति	अर्च्यते
आर्जत्	अर्जेत्	अर्ज्यात्	आर्जीत्	आर्जिष्यत्	अर्जयति	अर्ज्यते
आर्हत्	अर्हेत्	अर्ह्यात्	आर्हीत्	आर्हिष्यत्	अर्हयति	अर्ह्यते
आवत्	अवेत्	अव्यात्	आवीत्	आविष्यत्	आवयति	अव्यते
आश्नुत	अश्नुवीत	अशिषीष्ट	आशिष्ट	आशिष्यत	आशयति	अश्यते
आश्नात्	अश्नीयात्	अश्यात्	आशीत्	आशिष्यत	आशयति	अश्यते
आसीत्	स्यात्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
आस्यत्	अस्येत्	अस्यात्	आस्थत्	आसिष्यत्	आसयति	अस्यते
आसूयत्	असूयेत्	असूय्यात्	आसूयीत्	आसूयिष्यत्	असूययति	असूय्यते
आन्दोलयत्	आन्दोल्येत्	आन्दोल्यात्	आन्दुदोलत्	आन्दोलयिष्यत्	आन्दोलयति	आन्दोल्यते
आप्नोत्	आप्नुयात्	आप्यात्	आपत्	आप्स्यत्	आपयति	आप्यते
आपयत्	आपयेत्	आप्यात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	आपयति	आप्यते
आस्त	आसीत	आसिषीष्ट	आसिष्ट	आसिष्यत	आसयति	आस्यते
ऐत्	इयात्	ईयात्	अगात्	ऐष्यत्	गमयति	ईयते
अध्यैत	अधीयीत	अध्येषीष्ट	अध्यैष्ट	अध्यैष्यत	अध्यापयति	अधीयते
ऐष्यत्	इष्येत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐच्छत्	इच्छेत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐक्षत	ईक्षेत	ईक्षिषीष्ट	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिष्यत	ईक्षयति	ईक्ष्यते
ऐरयत्	ईरयेत्	ईर्यात्	ऐरिरत्	ऐरयिष्यत्	ईरयति	ईर्यते
ऐर्ष्यत्	ईर्ष्येत्	ईर्ष्यात्	ऐर्ष्यीत्	ऐर्ष्यिष्यत्	ईर्ष्ययति	ईर्ष्यते
ऐहत	ईहेत	ईहिषीष्ट	ऐहिष्ट	ऐहिष्यत	ईहयति	ईह्यते
औज्झत्	उज्झेत्	उज्झ्यात्	औज्झीत्	औज्झिष्यत्	उज्झयति	उज्झ्यत

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
आघयत्	अघयेत्	अघ्यात्	आजिघत्	आघयिष्यत्	अघयति	अघ्यते
आङ्कयत्	अङ्कयेत्	अङ्क्यात्	आञ्चिकत्	आङ्कयिष्यत्	अङ्कयति	अङ्क्यते
आनक्	अञ्ज्यात्	अज्यात्	आञ्जीत्	आञ्जिष्यत्	आञ्जयति	अज्यते
आटत्	अटेत्	अट्यात्	आटीत्	आटिष्यत्	आटयति	अट्यते
आतत्	अतेत्	अत्यात्	आतीत्	आतिष्यत्	आतयति	अत्यते
आदत्	अद्यात्	अद्यात्	अघसत्	आत्स्यत्	आदयदि	अद्यते
आनत्	अन्यात्	अन्यात्	आनीत्	आनिष्यत्	आनयति	अन्यते
आयत	अयेत	अयिषीष्ट	आयिष्ट	आयिष्यत	आययते	अय्यते
आर्चत्	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्	अर्चयति	अर्च्यते
आर्जत्	अर्जेत्	अर्ज्यात्	आर्जीत्	आर्जिष्यत्	अर्जयति	अर्ज्यते
आर्हत्	अर्हेत्	अर्ह्यात्	आर्हीत्	आर्हिष्यत्	अर्हयति	अर्ह्यते
आवत्	अवेत्	अव्यात्	आवीत्	आविष्यत्	आवयति	अव्यते
आश्नुत	अश्नुवीत	अशिषीष्ट	आशिष्ट	आशिष्यत	आशयति	अश्यते
आश्नात्	अश्नीयात्	अश्यात्	आशीत्	आशिष्यत	आशयलि	अश्यते
आसीत्	स्यात्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
आस्यत्	अस्येत्	अस्यात्	आस्थत्	आसिष्यत्	आसयति	अस्यते
आसूयत्	असूयेत्	असूय्यात्	आसूयीत्	आसूयिष्यत्	असूययति	असूय्यते
आन्दोल्यत्	आन्दोल्येत्	आन्दोल्यात्	आन्दुदोलत्	आन्दोलयिष्यत्	आन्दोलयति	आन्दोल्यते
आप्नोत्	आप्नुयात्	आप्यात्	आपत्	आप्स्यत्	आपयति	आप्यते
आपयत्	आपयेत्	आप्यात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	आपयति	आप्यते
आस्त	आसीत	आसिषीष्ट	आसिष्ट	आसिष्यत	आसयति	आस्यते
ऐत्	इयात्	ईयात्	अगात्	ऐष्यत्	गमयति	ईयते
अध्यैत	अधीयीत	अध्येषीष्ट	अध्यैष्ट	अध्यैष्यत	अध्यापयति	अधीयते
ऐष्यत्	इष्येत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐच्छत्	इच्छेत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐक्षत	ईक्षेत	ईक्षिषीष्ट	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिष्यत	ईक्षयति	ईक्ष्यते
ऐरयत्	ईरयेत्	ईर्यात्	ऐरिरत्	ऐरयिष्यत्	ईरयति	ईर्यते
ऐर्ष्यत्	ईर्ष्येत्	ईर्ष्यात्	ऐर्ष्यीत्	ऐर्ष्यिष्यत	ईर्ष्ययति	ईर्ष्यते
ऐहत	ईहेत	ईहिषीष्ट	ऐहिष्ट	ऐहिष्यत	ईहयति	ईह्यते
औज्झत्	उज्झेत्	उज्झ्यात्	औज्झीत्	औज्झिष्यत्	उज्झयति	उज्झ्यत

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
अघ्	(१० उ०, पाप करना)	अघयति ते	अघयाचकार	अघयिता	अघयिष्यति	अघयतु
अङ्क्	(१० उ०, चिह्न०)	अङ्कयति-ते	अङ्कयाचकार	अङ्कयिता	अङ्कयिष्यति	अङ्कयतु
अञ्ज्	(७ प०, स्वच्छ०)	अनक्ति	आनञ्ज	अञ्जिता	अञ्जिष्यति	अनक्तु
अट्	(१ प०, घूमना)	अटति	आट	अटिता	अटिष्यति	अटतु
अत्	(१ प०, सदा घूमना)	अतति	आत	अतिता	अतिष्यति	अततु
अद्	(२ प०, खाना)	अत्ति	आद, जघास	अत्ता	अत्स्यति	अत्तु
अन्	(२ प०, जीवित रहना) प्र +	अनिति	आन	अनिता	अनिष्यति	अनितु
अय्	(१ आ०, जाना) परा +	अयते	अयाञ्चक्रे	अयिता	अयिष्यते	अयताम्
अर्च्	(१ प०, पूजना)	अर्चति	आनर्च	अर्चिता	अर्चिष्यति	अर्चतु
अर्ज्	(१ प०, संग्रह०)	अर्जति	आनर्ज	अर्जिता	अर्जिष्यति	अर्जतु
अर्ह्	(१ प०, योग्य होना)	अर्हति	आनर्ह	अर्हिता	अर्हिष्यति	अर्हतु
अव्	(१ प०, रक्षा०)	अवति	आव	अविता	अविष्यति	अवतु
अश्	(५ आ०, व्याप्त०)	अश्नुते	आनशे	अशिता	अशिष्यते	अश्नुताम्
अश्	(९ प०, खाना)	अश्नाति	आश	अशिता	अशिष्यति	अश्नातु
अस्	(२ प०, होना)	अस्ति	बभूव	भविता	भविष्यति	अस्तु
अस्	(४ प०, फेंकना)	अस्यति	आस	असिता	असिष्यति	अस्यतु
असू	(११ प०, द्रोह०)	असूयति	असूयाचकार	असूयिता	असूयिष्यति	असूयतु
आन्दोल्	(१० उ०, हिलना)	अन्दोलयति	अन्दोलयाचकार	आन्दोलयिता	आन्दोलयिष्यति	अन्दोलयतु
आप्	(५ प०, पाना)	आप्नोति	आप	आप्ता	आप्स्यति	आप्नोतु
आप्	(१० उ०, पहुँचना)	आपयति-ते	आपयाचकार	आपयिता	आपयिष्यति	आपयतु
आस्	(२ आ०, बैठना)	आस्ते	आसाचक्रे	आसिता	आसिष्यते	आस्ताम्
इ	(२ प०, जाना)	एति	इयाय	एता	एष्यति	एतु
इ	(अधि + इ २ आ०, पढना)	अधीते	अधिजगे	अध्येता	अध्येष्यते	अधीताम्
इष्	(४ प०, जाना) अनु +	इष्यति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इष्यतु
इष्	(६ प०, चाहना)	इच्छति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इच्छतु
ईक्ष्	(१ आ०, देखना)	ईक्षते	ईक्षाचक्रे	ईक्षिता	ईक्षिष्यते	ईक्षताम्
ईर्	(१० उ०, प्रेरणा०) प्र +	ईरयति-ते	ईरयाञ्चकार	ईरयिता	ईरयिष्यति	ईरयतु
ईर्ष्य्	(१ प०, ईर्ष्या०)	ईर्ष्यति	ईर्ष्याचकार	ईर्ष्यिता	ईर्ष्यिष्यति	ईर्ष्यतु
ईह्	(१ आ०, चाहना)	ईहते	ईहाचक्रे	ईहिता	ईहिष्यते	ईहताम्
उज्झ्	(६ प०, छोडना)	उज्झति	उज्झाचकार	उज्झिता	उज्झिष्यति	उज्झतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
आघयत्	अघयेत्	अघ्यात्	आजिघत्	आघयिष्यत्	अघयति	अघ्यते
आङ्कयत्	अङ्कयेत्	अङ्क्यात्	आञ्चिकत्	आङ्कयिष्यत्	अङ्कयति	अङ्क्यते
आनक्	अञ्ज्यात्	अज्यात्	आञ्जीत्	आञ्जिष्यत्	आञ्जयति	अज्यते
आटत्	अटेत्	अट्यात्	आटीत्	आटिष्यत्	आटयति	अट्यते
आतत्	अतेत्	अत्यात्	आतीत्	आतिष्यत्	आतयति	अत्यते
आदत्	अद्यात्	अद्यात्	अघसत्	आत्स्यत्	आदयदि	अद्यते
आनत्	अन्यात्	अन्यात्	आनीत्	आनिष्यत्	आनयति	अन्यते
आयत	अयेत	अयिषीष्ट	आयिष्ट	आयिष्यत	आययते	अय्यते
आर्चत्	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्	अर्चयति	अर्च्यते
आर्जत्	अर्जेत्	अर्ज्यात्	आर्जीत्	आर्जिष्यत्	अर्जयति	अर्ज्यते
आर्हत्	अर्हेत्	अर्ह्यात्	आर्हीत्	आर्हिष्यत्	अर्हयति	अर्ह्यते
आवत्	अवेत्	अव्यात्	आवीत्	आविष्यत्	आवयति	अव्यते
आश्नुत	अश्नुवीत	अशिषीष्ट	आशिष्ट	आशिष्यत	आशयति	अश्यते
आश्नात्	अश्नीयात्	अश्यात्	आशीत्	आशिष्यत	आशयति	अश्यते
आसीत्	स्यात्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
आस्यत्	अस्येत्	अस्यात्	आस्थत्	आसिष्यत्	आसयति	अस्यते
आसूयत्	असूयेत्	असूय्यात्	आसूयीत्	आसूयिष्यत्	असूययति	असूय्यते
आन्दोलयत्	आन्दोलयेत्	आन्दोल्यात्	आन्दुदोलत्	आन्दोलयिष्यत्	आन्दोलयति	आन्दोल्यते
आप्नोत्	आप्नुयात्	आप्यात्	आपत्	आप्स्यत्	आपयति	आप्यते
आपयत्	आपयेत्	आप्यात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	आपयति	आप्यते
आस्त	आसीत	आसिषीष्ट	आसिष्ट	आसिष्यत	आसयति	आस्यते
ऐत्	इयात्	ईयात्	अगात्	ऐष्यत्	गमयति	ईयते
अध्यैत	अधीयीत	अध्येषीष्ट	अध्यैष्ट	अध्यैष्यत	अध्यापयति	अधीयते
ऐष्यत्	इष्येत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐच्छत्	इच्छेत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐक्षत	ईक्षेत	ईक्षिषीष्ट	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिष्यत	ईक्षयति	ईक्ष्यते
ऐरयत्	ईरयेत्	ईर्यात्	ऐरिरत्	ऐरयिष्यत्	ईरयति	ईर्यते
ऐर्ष्यत्	ईर्ष्येत्	ईर्ष्यात्	ऐर्ष्यीत्	ऐर्ष्यिष्यत्	ईर्ष्ययति	ईर्ष्यते
ऐहत	ईहेत	ईहिषीष्ट	ऐहिष्ट	ऐहिष्यत	ईहयति	ईह्यते
औज्झत्	उज्झेत्	उज्झ्यात्	औज्झीत्	औज्झिष्यत्	उज्झयति	उज्झ्यत

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
उन्द्	(७ प०, भिगोना)	उनत्ति	उन्दाञ्चकार	उन्दिता	उन्दिष्यति	उनत्तु
ऊह्	(१ आ०, तर्क०)	ऊहते	ऊहाञ्चक्रे	ऊहिता	ऊहिष्यते	ऊहताम्
ऋच्छ्	(६ प०, जाना)	ऋच्छति	आनर्च्छ	ऋच्छिता	ऋच्छिष्यति	ऋच्छतु
एज्	(१ प०, काँपना)	एजति	एजाञ्चकार	एजिता	एजिष्यति	एजतु
एध्	(१ आ०, बढ़ना)	एधते	एधाञ्चक्रे	एधिता	एधिष्यते	एधताम्
कण्डू	(११ उ०, खुजाना)	कण्डूयति-ते	कण्डूयाञ्चकार	कण्डूयिता	कण्डूयिष्यति	कण्डूयतु
कथ्	(१० उ०, कहना) प०	कथयति	कथयाञ्चकार	कथयिता	कथयिष्यति	कथयतु
	आ०	कथयते	कथयाञ्चक्रे	कथयिता	कथयिष्यते	कथयताम्
कम्	(१ आ०, चाहना)	कामयते	कामयाञ्चक्रे	कामयिता	कामयिष्यते	कामयताम्
कम्प्	(१ आ०, काँपना)	कम्पते	चकम्पे	कम्पिता	कम्पिष्यते	कम्पताम्
काङ्क्ष्	(१ प०, चाहना)	काङ्क्षति	चकाङ्क्ष	काङ्क्षिता	काङ्क्षिष्यति	काङ्क्षतु
काश्	(१ आ०, चमकना)	काशते	चकाशे	काशिता	काशिष्यते	काशताम्
कास्	(१ आ०, खाँसना)	कासते	कासाञ्चक्रे	कासिता	कासिष्यते	कासताम्
कित्	(१ प०, चिकित्सा०)	चिकित्सति	चिकित्सा-चकार	चिकित्सिता	चिकित्सिष्यते	चिकित्सतु
कील्	(१ प०, गाड़ना)	कीलति	चिकील	कीलिता	कीलिष्यति	कीलतु
कु	(२ प०, गूँजना)	कौति	चुकाव	कोता	कोष्यति	कौतु
कुञ्च्	(१ प०, कम होना)	कुञ्चति	चुकुञ्च	कुञ्चिता	कुञ्चिष्यति	कुञ्चतु
कुत्स्	(१० आ०, दोष देना)	कुत्सयते	कुत्सयाञ्चक्रे	कुत्सयिता	कुत्सयिष्यते	कुत्सयताम्
कुप्	(४ प०, क्रोध०)	कुप्यति	चुकोप	कोपिता	कोपिष्यति	कुप्यतु
कुर्द्	(१ आ०, कूदना)	कूर्दते	चुकूर्दे	कूर्दिता	कूर्दिष्यते	कूर्दताम्
कूज्	(१ प०, चूँ-चूँ करना)	कूजति	चुकूज	कूजिता	कूजिष्यति	कूजतु
कृ	(८ उ०, करना) प०	करोति	चकार	कर्ता	करिष्यति	करोतु
	आ०	कुरुते	चक्रे	कर्ता	करिष्यते	कुरुताम्
कृत्	(६ प०, काटना)	कृन्तति	चकर्त	कर्तिता	कर्तिष्यति	कृन्ततु
क्लृप्	(१ आ०, समर्थ होना)	कल्पते	चक्लृपे	कल्पिता	कल्पिष्यते	कल्पताम्
कृष्	(१ प०, जोतना)	कर्षति	चकर्ष	कर्ष्टा	कर्क्ष्यति	कर्षतु
कॄ	(६ प०, बखेरना)	किरति	चकार	करिता	करिष्यति	किरतु
कॄत	(१० उ०, नाम लेना)	कीर्तयति-ते	कीर्तयाञ्चकार	कीर्तयिता	कीर्तयिष्यति	कीर्तयतु
क्रन्द्	(१ प०, रोना)	क्रन्दति	चक्रन्द	क्रन्दिता	क्रन्दिष्यति	क्रन्दतु
क्रम्	(१ प०, चलना)	क्रामति	चक्राम	क्रमिता	क्रमिष्यति	क्रामतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अक्रीणात्	क्रीणीयात्	क्रीयात्	अक्रैषीत्	अक्रेष्यत्	क्रापयति ते	क्रीयते
अक्रीणीत	क्रीणीत	क्रेषीष्ट	अक्रेष्ट	अक्रेष्यत	,,	,,
अक्रीडत्	क्रीडेत्	क्रीड्यात्	अक्रीडीत्	अक्रीडिष्यत्	क्रीडयति	क्रीड्यते
अक्रुध्यत्	क्रुध्येत्	क्रुध्यात्	अक्रुधत्	अक्रोत्स्यत्	क्रोधयति	क्रुध्यते
अक्रोशत्	क्रोशेत्	क्रुश्यात्	अक्रुक्षत्	अक्रोक्ष्यत्	क्रोशयति	क्रुश्यते
अक्लाम्यत्	क्लाम्येत्	क्लम्यात्	अक्लमत्	अक्लमिष्यत्	क्लमयति	क्लम्यते
अक्लिद्यत्	क्लिद्येत्	क्लिद्यात्	अक्लिदत्	अक्लेदिष्यत्	क्लेदयति	क्लिद्यते
अक्लिश्यत	क्लिश्येत	क्लेशिषीष्ट	अक्लेशिष्ट	अक्लेशिष्यत	क्लेशयति	क्लिश्यते
अक्लिश्नात्	क्लिश्नीयात्	क्लिश्यात्	अक्लेक्षीत्	अक्लेशिष्यत्	,,	,,
अक्वणत्	क्वणेत्	क्वण्यात्	अक्वणीत्	अक्वणिष्यत्	क्वाणयति	क्वण्यते
अक्वथत्	क्वथेत्	क्वथ्यात्	अक्वथीत्	अक्वथिष्यत्	क्वाथयति	क्वथ्यते
अक्षमत	क्षमेत	क्षमिषीष्ट	अक्षमिष्ट	अक्षमिष्यत	क्षमयति	क्षम्यते
अक्षाम्यत्	क्षाम्येत्	क्षम्यात्	अक्षमत्	अक्षमिष्यत्	,,	,,
अक्षरत्	क्षरेत्	क्षर्यात्	अक्षारीत्	अक्षरिष्यत्	क्षारयति	क्षर्यते
अक्षालयत्	क्षाल्येत्	क्षाल्यात्	अचिक्षलत्	अक्षालयिष्यत्	क्षाल्यति	क्षाल्यते
अक्षयत्	क्षयेत्	क्षीयात्	अक्षैषीत्	अक्षेष्यत्	क्षाययंति	क्षीयते
अक्षिपत्	क्षिपेत्	क्षिप्यात्	अक्षैप्सीत्	अक्षेप्स्यत्	क्षेपयति	क्षिप्यते
अक्षीबत	क्षीबेत	क्षीबिषीष्ट	अक्षीबिष्ट	अक्षीबिष्यत	क्षीबयति	क्षीब्यते
अक्षुणत्	क्षुन्द्यात्	क्षुद्यात्	अक्षुदत्	अक्षोत्स्यत्	क्षोदयति	क्षुद्यते
अक्षोभत	क्षोभेत	क्षोभिषीष्ट	अक्षुभत	अक्षोभिष्यत	क्षोभयति	क्षुभ्यते
अक्षायत्	क्षायेत्	क्षायात्	अक्षासीत्	अक्षास्यत्	क्षपयति	क्षायते
अक्ष्णौत्	क्ष्णुयात्	क्ष्णूयात्	अक्ष्णविष्यत्	अक्ष्णावीत्	क्ष्णावयति	क्ष्णूयते
अखण्डयत्	खण्डयेत्	खण्डयात्	अचखण्डत्	अखण्डयिष्यत्	खण्डयति	खण्ड्यते
अखनत्	खनेत्	खन्यात्	अखनीत्	अखनिष्यत्	खानयति	खायते
अखादत्	खादेत्	खाद्यात्	अखादीत्	अखादिष्यत्	खादयति	खाद्यते
अखिद्यत	खिद्येत	खित्सीष्ट	अखित्त	अखेत्स्यत	खेदयति	खिद्यते
अखेलत्	खेलेत्	खेल्यात्	अखेलीत्	अखेलिष्यत्	खेलयति	खेल्यते
अगणयत्	गणयेत्	गण्यात्	अजीगणत्	अगणयिष्यत्	गणयति	गण्यते
अगदत्	गदेत्	गद्यात्	अगादीत्	अगदिष्यत्	गादयति	गद्यते
अगच्छत्	गच्छेत्	गम्या[illegible]	अगमत	[illegible]	[illegible]	[illegible]

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट
गर्ज्	(१ प०, गरजना)	गर्जति	जगर्ज	गर्जिता	गर्जिष्यति	गर्जतु
गर्ह्	(१ आ०, निन्दा करना)	गर्हते	जगर्हे	गर्हिता	गर्हिष्यते	गर्हताम्
गर्ह्	(१० उ०, ,, ,,)	गर्हयति-ते	गर्हयाञ्चकार	गर्हयिता	गर्हयिष्यति	गर्हयतु
गवेष्	(१० उ०, खोजना)	गवेषयति	गवेषयाञ्चकार	गवेषयिता	गवेषयिष्यति	गवेषयतु
गाह्	(१ आ०, घुसना)	गाहते	जगाहे	गाहिता	गाहिष्यते	गाहताम्
गुञ्ज्	(१ प०, गूँजना)	गुञ्जति	जुगुञ्ज	गुञ्जिता	गुञ्जिष्यति	गुञ्जतु
गुण्ट्	(१०उ०, घूँघट०) अव +	गुण्ठयति	गुण्ठयाञ्चकार	गुण्ठयिता	गुण्ठयिष्यति	गुण्ठयतु
गुप्	(१ प०, रक्षा करना)	गोपायति	जुगोप	गोपिता	गोपिष्यति	गोपायतु
गुप्	(१ आ०, निन्दा करना)	जुगुप्सते	जुगुप्साञ्चक्रे	जुगुप्सिता	जुगुप्सिष्यते	जुगुप्सताम्
गुम्फ्	(६ प०, गूँथना)	गुम्फति	जुगुम्फ	गुम्फिता	गुम्फिष्यति	गुम्फतु
गुह्	(१ उ०, छिपाना)	गूहति-ते	जुगूह	गूहिता	गूहिष्यति	गूहतु
गॄ	(६ प०, निगलना)	गिरति	जगार	गरिता	गरिष्यति	गिरतु
गॄ	(९ प०, कहना)	गृणाति	,,	,,	,,	गृणातु
गै	(१ प०, गाना)	गायति	जगौ	गाता	गास्यति	गायतु
ग्रन्थ्	(९ प०, सग्रह०)	ग्रथ्नाति	जग्रन्थ	ग्रन्थिता	ग्रन्थिष्यति	ग्रथ्नातु
ग्रस्	(१ आ०, खाना)	ग्रसते	जग्रसे	ग्रसिता	ग्रसिष्यते	ग्रसताम्
ग्रह्	(९ उ०, लेना)	प०—गृह्णाति	जग्राह	ग्रहीता	ग्रहीष्यति	गृह्णातु
		आ० गृह्णीते	जगृहे	ग्रहीता	ग्रहीष्यते	गृह्णीताम्
ग्लै	(१ प०, थकना)	ग्लायति	जग्लौ	ग्लाता	ग्लास्यति	ग्लायतु
घट्	(१ आ०, लगना)	घटते	जघटे	घटिता	घटिष्यते	घटताम्
घुष्	(१० उ०, घोषणा०)	घोषयति	घोषयाञ्चकार	घोषयिता	घोषयिष्यति	घोषयतु
घूर्ण्	(१ आ०, घूमना)	घूर्णते	जुघूर्णे	घूर्णिता	घूर्णिष्यते	घूर्णताम्
घूर्ण्	(६ प०, घूमना)	घूर्णति	जुघूर्ण	घूर्णिता	घूर्णिष्यति	घूर्णतु
घ्रा	(१ प०, सूँघना)	जिघ्रति	जघ्रौ	घ्राता	घ्रास्यति	जिघ्रतु
चकास्	(२ प०, चमकना)	चकास्ति	चकासाञ्चकार	चकासिता	चकासिष्यति	चकास्तु
चक्ष्	(२ आ०, कहना) आ +	आचष्टे	आचचक्षे	आख्याता	आख्यास्यति	आचष्टाम्
चम्	(आ + १प०, पीना)	आचामति	आचचाम	आचमिता	आचमिष्यति	आचामतु
चर्	(१ प०, चलना)	चरति	चचार	चरिता	चरिष्यति	चरतु
चर्व्	(१ प०, चबाना)	चर्वति	चचर्व	चर्विता	चर्विष्यति	चर्वतु
चल्	(१ प०, हिलना)	चलति	चचाल	चलिता	चलिष्यति	चलतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अगर्जत्	गर्जेत्	गर्ज्यात्	अगर्जीत्	अगर्जिष्यत्	गर्जयति	गर्ज्यते
अगर्हत	गर्हेत	गर्हिषीष्ट	अगर्हिष्ट	अगर्हिष्यत	गर्हयति	गर्ह्यते
अगर्हयत्	गर्हयेत्	गर्ह्यात्	अजगर्हत्	अगर्हयिष्यत्	,,	,,
अगवेषयत्	गवेषयेत्	गवेष्यात्	अजगवेषत्	अगवेषयिष्यत्	गवेषयति	गवेष्यते
अगाहत	गाहेत	गाहिषीष्ट	अगाहिष्ट	अगाहिष्यत	गाहयति	गाह्यते
अगुञ्जत्	गुञ्जेत्	गुञ्ज्यात्	अगुञ्जीत्	अगुञ्जिष्यत्	गुञ्जयति	गुञ्ज्यते
अगुण्ठयत्	गुण्ठयेत्	गुण्ठ्यात्	अजुगुण्ठत्	अगुण्ठयिष्यत्	गुण्ठयति	गुण्ठ्यते
अगोपायत्	गोपायेत्	गुप्यात्	अगौप्सीत्	अगोपिष्यत्	गोपयति	गुप्यते
अजुगुप्सत	जुगुप्सेत	जुगुप्सिषीष्ट	अजुगुप्सिष्ट	अजुगुप्सिष्यत	जुगुप्सयति	जुगुप्स्यते
अगुम्फत्	गुम्फेत्	गुम्फ्यात्	अगुम्फीत्	अगुम्फिष्यत्	गुम्फयति	गुम्फ्यते
अगूहत्	गूहेत्	गुह्यात्	अगूहीत्	अगूहिष्यत्	गूहयति	गुह्यते
अगिरत्	गिरेत्	गीर्यात्	अगारीत्	अगरिष्यत्	गारयति	गीर्यते
अगृणात्	गृणीयात्	,,	,	,,	,,	,,
अगायत्	गायेत्	गेयात्	अगासीत्	अगास्यत्	गापयति	गीयते
अग्रथ्नात्	ग्रथ्नीयात्	ग्रथ्यात्	अग्रन्थीत्	अग्रन्थिष्यत्	ग्रन्थयति	ग्रथ्यते
अग्रसत	ग्रसेत	ग्रसिषीष्ट	अग्रसिष्ट	अग्रसिष्यत	ग्रासयति	ग्रस्यते
अगृह्णात्	गृह्णीयात्	गृह्यात्	अग्रहीत्	अग्रहीष्यत्	ग्राहयति	गृह्यते
अगृह्णीत	गृह्णीत	ग्रहीषीष्ट	अग्रहीष्ट	अग्रहीष्यत	,,	,,
अग्लायत्	ग्लायेत्	ग्लायात्	अग्लासीत्	अग्लास्यत्	ग्लापयति	ग्लायते
अघटत	घटेत	घटिषीष्ट	अघटिष्ट	अघटिष्यत	घटयति	घट्यते
अघोषयत्	घोषयेत्	घोष्यात्	अजूघुषत्	अघोषयिष्यत्	घोषयति	घोष्यते
अघूर्णत	घूर्णेत	घूर्णिषीष्ट	अघूर्णिष्ट	अघूर्णिष्यत	घूर्णयति	घूर्ण्यते
अघूर्णत्	घूर्णेत्	घूर्ण्यात्	अघूर्णीत्	अघूर्णिष्यत्	,,	,
अजिघ्रत्	जिघ्रेत्	घ्रेयात्	अघ्रात्	अघ्रास्यत्	घ्रापयति	घ्रायते
अचकात्	चकास्यात्	चकास्यात्	अचकासीत्	अचकासिष्यत्	चकासयति	चकास्यते
आचष्ट	आचक्षीत	आख्यायात्	आख्यत्	आख्यास्यत्	ख्यापयति	ख्यायते
आचामत्	आचामेत्	आचम्यात्	आचमीत्	आचमिष्यत्	आचामयति	आचम्यते
अचरत्	चरेत्	चर्यात्	अचारीत्	अचरिष्यत्	चारयति	चर्यते
अचर्वत्	चर्वेत्	चर्व्यात्	अचर्वीत्	अचर्विष्यत्	चर्वयति	चर्व्यते
अचलत्	चलेत्	चल्यात्	अचालीत्	अचलिष्यत्	चलयति	चल्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
चि (५ उ०, चुनना)	प०—	चिनोति	चिचाय	चेता	चेष्यति	चिनोतु
	आ०—	चिनुते	चिच्ये	चेता	चेष्यते	चिनुताम्
चित् (१ प०, समझना)		चेतति	चिचेत	चेतिता	चेतिष्यति	चेततु
चित् (१० आ०, सोचना)		चेतयते	चेतयाचक्रे	चेतयिता	चेतयिष्यते	चेतयताम्
चित्र् (१०उ०, चित्र बनाना)		चित्रयति	चित्रयाञ्चकार	चित्रयिता	चित्रयिष्यति	चित्रयतु
चिन्त् (१० उ०, सोचना)		चिन्तयति	चिन्तयाञ्चकार	चिन्तयिता	चिन्तयिष्यति	चिन्तयतु
	आ०—	—ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्
चिह्न् (१० उ०, चिह्न लगाना)		चिह्नयति	चिह्नयाञ्चकार	चिह्नयिता	चिह्नयिष्यति	चिह्नयतु
चुद् (१० उ०, प्रेरणा देना)		चोदयति	चोदयाञ्चकार	चोदयिता	चोदयिष्यते	चोदयतु
चुम्ब् (१ प०, चूमना)		चुम्बति	चुचुम्ब	चुम्बिता	चुम्बिष्यति	चुम्बतु
चुर् (१० उ०, चुराना)		चोरयति	चोरयाञ्चकार	चोरयिता	चोरयिष्यति	चोरयतु
	आ०—	—ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्
चूर्ण् (१० उ०, चूर करना)		चूर्णयति	चूर्णयाञ्चकार	चूर्णयिता	चूर्णयिष्यति	चूर्णयतु
चूष् (१ प०, चूसना)		चूषति	चुचूष	चूषिता	चूषिष्यति	चूषतु
चेष्ट् (१ आ०, चेष्टा करना)		चेष्टते	चिचेष्टे	चेष्टिता	चेष्टिष्यते	चेष्टताम्
छद् (१० उ०, ढकना)	आ +	छादयति	छादयाञ्चकार	छादयिता	छादयिष्यति	छादयतु
छिद् (७ उ०, काटना)		छिनत्ति	चिच्छेद	छेत्ता	छेत्स्यति	छिनत्तु
छुर् (६ प०, काटना)		छुरति	चुच्छोर	छुरिता	छुरिष्यति	छुरतु
छो (४ प०, काटना)		छ्यति	चच्छौ	छाता	छास्यति	छ्यतु
जन् (४ आ०, पैदा होना)		जायते	जज्ञे	जनिता	जनिष्यते	जायताम्
जप् (१ प०, जपना)		जपति	जजाप	जपिता	जपिष्यति	जपतु
जल्प् (१ प०, बात करना)		जल्पति	जजल्प	जल्पिता	जल्पिष्यति	जल्पतु
जागृ (२ प०, जागना)		जागर्ति	जजागार	जागरिता	जागरिष्यति	जागर्तु
जि (१ प०, जीतना)		जयति	जिगाय	जेता	जेष्यति	जयतु
जीव् (१ प०, जीना)		जीवति	जिजीव	जीविता	जीविष्यति	जीवतु
जुष् (१० उ०, प्रसन्न होना)		जोषयति	जोषयाञ्चकार	जोषयिता	जोषयिष्यति	जोषयतु
जृम्भ् (१ आ०, जँभाई लेना)		जृम्भते	जजृम्भे	जृम्भिता	जृम्भिष्यते	जृम्भताम्
जॄ (४ प०, वृद्ध होना)		जीर्यते	जजार	जरिता	जरिष्यति	जीर्यतु
ज्ञा (९ उ०, जानना)	प०—	जानाति	जज्ञौ	ज्ञाता	ज्ञास्यति	जानातु
	आ०—	जानीते	जज्ञे	ज्ञाता	ज्ञास्यते	जानीताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अचिनोत्	चिनुयात्	चीयात्	अचैषीत्	अचेष्यत्	चाययति	चीयते
अचिनुत	चिन्वीत	चेषीष्ट	अचेष्ट	अचेष्यत	,,	,,
अचेतत्	चेतेत्	चित्यात्	अचेतीत्	अचेतिष्यत्	चेतयति	चित्यते
अचेतयत	चेतयेत	चेतयिषीष्ट	अचीचितत	अचेतयिष्यत	,,	चेत्यते
अचित्रयत्	चित्रयेत्	चित्र्यात्	अचिचित्रत्	अचित्रयिष्यत्	चित्रयति	चित्र्यते
अचिन्तयत्	चिन्तयेत्	चिन्त्यात्	अचिचिन्तत्	अचिन्तयिष्यत्	चिन्तयति	चिन्त्यते
—यत	—येत	चिन्तयिषीष्ट	—न्तत	—ष्यत	,,	,,
अचिह्नयत्	चिह्नयेत्	चिह्न्यात्	अचिचिह्नत	अचिह्नयिष्यत्	चिह्नयति	चिह्न्यते
अचोदयत्	चोदयेत्	चोद्यात्	अचूचुदत्	अचोदयिष्यत्	चोदयति	चोद्यते
अचुम्बत्	चुम्बेत्	चुम्ब्यात्	अचुम्बीत्	अचुम्बिष्यत्	चुम्बयति	चुम्ब्यते
अचोरयत्	चोरयेत्	चोर्यात्	अचूचुरत्	अचोरयिष्यत्	चोरयति	चोर्यते
—त	—त	चोरयिषीष्ट	—रत	—त	,,	,,
अचूर्णयत्	चूर्णयेत्	चूर्ण्यात्	अचुचूर्णत्	अचूर्णयिष्यत्	चूर्णयति	चूर्ण्यते
अचूषत्	चूषेत्	चूष्यात्	अचूषीत्	अचूषिष्यत्	चूषयति	चूष्यते
अचेष्टत	चेष्टेत	चेष्टिषीष्ट	अचेष्टिष्ट	अचेष्टिष्यत	चेष्टयति	चेष्टयते
अच्छादयत्	छादयेत्	छाद्यात्	अचिच्छदत्	अच्छादयिष्यत्	छादयति	छाद्यते
अच्छिनत्	छिन्द्यात्	छिद्यात्	अच्छैत्सीत्	अच्छेत्स्यत्	छेदयति	छिद्यते
अच्छुरत्	छुरेत्	छुर्यात्	अच्छुरीत्	अच्छुरिष्यत्	छोरयति	छुर्यते
अच्छ्यत्	छ्येत्	छायात्	अच्छात्	अच्छास्यत्	छाययति	छायते
अजायत	जायेत	जनिषीष्ट	अजनिष्ट	अजनिष्यत	जनयति	जन्यते
अजपत्	जपेत्	जप्यात्	अजपीत्	अजपिष्यत्	जापयति	जप्यते
अजल्पत्	जल्पेत्	जल्प्यात्	अजल्पीत्	अजल्पिष्यत्	जल्पयति	जल्प्यते
अजागः	जागृयात्	जागर्यात्	अजागरीत्	अजागरिष्यत्	जागरयति	जागर्यते
अजयत्	जयेत्	जीयात्	अजैषीत्	अजेष्यत्	जापयति	जीयते
अजीवत्	जीवेत्	जीव्यात्	अजीवीत्	अजीविष्यत्	जीवयति	जीव्यते
अजोषयत्	जोषयेत्	जोष्यात्	अजूजुषत्	अजोषयिष्यत्	जोषयति	जोष्यते
अजृम्भत	जृम्भेत	जृम्भिषीष्ट	अजृम्भिष्ट	अजृम्भिष्यत	जृम्भयति	जृम्भ्यते
अजीर्यत्	जीर्येत्	जीर्यात्	अजरीत्	अजरिष्यत्	जरयति	जीर्यते
अजानात्	जानीयात्	ज्ञेयात्	अज्ञासीत्	अज्ञास्यत्	ज्ञापयति	ज्ञायते
अजानीत	जानीत	ज्ञासीष्ट	अज्ञास्त	अज्ञास्यत	,,	,,

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
ज्ञा	(१०उ०, आज्ञा देना) आ +	ज्ञापयति	ज्ञापयाञ्चकार	ज्ञापयिता	ज्ञापयिष्यति	ज्ञापयतु
ज्वर्	(१ प०, रुग्ण होना)	ज्वरति	जज्वार	ज्वरिता	ज्वरिष्यति	ज्वरतु
ज्वल्	(१ प०, जलना)	ज्वलति	जज्वाल	ज्वलिता	ज्वलिष्यति	ज्वलतु
टङ्क्	(१०उ०, चिह्न लगाना)	टङ्कयति	टङ्कयाञ्चकार	टङ्कयिता	टङ्कयिष्यति	टङ्कयतु
डी	(१आ०, उडना) उत् +	डयते	डिड्ये	डयिता	डयिष्यते	डयताम्
डी	(४ आ०, ,,) उत् +	डीयते	,,	,,	,,	डीयताम्
ढौक्	(१ आ०, पहुँचना)	ढौकते	डुढौके	ढौकिता	ढौकिष्यते	ढौकताम्
तक्ष्	(१ पा०, छीलना)	तक्षति	ततक्ष	तक्षिता	तक्षिष्यति	तक्षतु
तड्	(१० उ०, पीटना)	ताडयति	ताडयाञ्चकार	ताडयिता	ताडयिष्यति	ताडयतु
तन्	(८ उ०, फैलाना) प०—	तनोति	ततान	तनिता	तनिष्यति	तनोतु
	आ०—	तनुते	तेने	तनिता	तनिष्यते	तनुताम्
तन्त्र्	(१०आ०, पालन०)	तन्त्रयते	तन्त्रयाञ्चक्रे	तन्त्रयिता	तन्त्रयिष्यते	तन्त्रयताम्
तप्	(१ प०, तपना)	तपति	ततap	तप्ता	तप्स्यति	तपतु
तर्क्	(१० उ०, सोचना)	तर्कयति	तर्कयाञ्चकार	तर्कयिता	तर्कयिष्यति	तर्कयतु
तर्ज्	(१०आ०, डाँटना)	तर्जयते	तर्जयाञ्चक्रे	तर्जयिता	तर्जयिष्यते	तर्जयताम्
तस्	(१०उ०, सजाना) अव +	तसयति	तसयाञ्चकार	तसयिता	तसयिष्यति	तसयतु
तिज्	(१आ०, क्षमा करना)	तितिक्षते	तितिक्षाञ्चक्रे	तितिक्षिता	तितिक्षिष्यते	तितिक्षताम्
तुद्	(६उ०, दुःख देना)	तुदति–ते	तुतोद	तोत्ता	तोत्स्यति	तुदतु
तुरण्	(११प०, जल्दी करना)	तुरण्यति	तुरणाञ्चकार	तुरणिता	तुरणिष्यति	तुरण्यतु
तुल्	(१० उ०, तोलना)	तोलयति	तोलयाञ्चकार	तोलयिता	तोलयिष्यति	तोलयतु
तुष्	(४ प०, तुष्ट होना)	तुष्यति	तुतोष	तोष्टा	तोक्ष्यति	तुष्यतु
तृप्	(४ प०, तृप्त होना)	तृप्यति	ततर्प	तर्पिता	तर्पिष्यति	तृप्यतु
तृष्	(४ प०, प्यासा होना)	तृष्यति	ततर्ष	तर्षिता	तर्षिष्यति	तृष्यतु
तॄ	(१ प०, तैरना)	तरति	ततार	तरिता	तरिष्यति	तरतु
त्यज्	(१ प०, छोडना)	त्यजति	तत्याज	त्यक्ता	त्यक्ष्यति	त्यजतु
त्रप्	(१ आ०, लजाना)	त्रपते	त्रेपे	त्रपिता	त्रपिष्यते	त्रपताम्
त्रस्	(४ प०, डरना)	त्रस्यति	तत्रास	त्रसिता	त्रसिष्यति	त्रस्यतु
त्रुट्	(६ प०, टूटना)	त्रुटति	तुत्रोट	त्रुटिता	त्रुटिष्यति	त्रुटतु
त्रुट्	(१०आ०, तोडना)	त्रोटयते	त्रोटयाञ्चक्रे	त्रोटयिता	त्रोटयिष्यते	त्रोटयताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अज्ञापयत्	ज्ञापयेत्	ज्ञाप्यात्	अजिज्ञपत्	अज्ञापयिष्यत्	ज्ञापयति	ज्ञाप्यते
अज्वरत्	ज्वरेत्	ज्वर्यात्	अज्वारीत्	अज्वरिष्यत्	ज्वरयति	ज्वर्यते
अज्वलत्	ज्वलेत्	ज्वल्यात्	अज्वालीत्	अज्वलिष्यत्	ज्वालयति	ज्वल्यते
अटकयत्	टकयेत्	टक्यात्	अटटकत्	अटकयिष्यत्	टकयति	टक्यते
अडयत	डयेत	डयिषीष्ट	अडयिष्ट	अडयिष्यत	डाययति	डीयते
अडीयत	डीयेत	,,	,,	,,	,,	,,
अढौकत	ढौकेत	ढौकिषीष्ट	अढौकिष्ट	अढौकिष्यत	ढौकयति	ढौक्यते
अतक्षत्	तक्षेत्	तक्ष्यात्	अतक्षीत्	अतक्षिष्यत्	तक्षयति	तक्ष्यते
अताडयत्	ताडयेत्	ताड्यात्	अतीतडत्	अताडयिष्यत्	ताडयति	ताड्यते
अतनोत्	तनुयात्	तन्यात्	अतानीत्	अतनिष्यत्	तानयति	तन्यते
अतनुत	तन्वीत	तनिषीष्ट	अतनिष्ट	अतनिष्यत	,,	,,
अतन्त्रयत	तन्त्रयेत	तन्त्रयिषीष्ट	अततन्त्रत	अतन्त्रयिष्यत	तन्त्रयति	तन्त्र्यते
अतपत्	तपेत्	तप्यात्	अताप्सीत्	अतप्स्यत्	तापयति	तप्यते
अतर्कयत्	तर्कयेत्	तर्क्यात्	अततर्कत्	अतर्कयिष्यत्	तर्कयति	तर्क्यते
अतर्जत्	तर्जेत्	तर्ज्यात्	अतर्जीत्	अतर्जिष्यत्	तर्जयति	तर्ज्यते
अतर्जयत	तर्जयेत	तर्जयिषीष्ट	अततर्जत	अतर्जयिष्यत	,,	,,
अतसयत्	तसयेत्	तस्यात्	अततसत्	अतसयिष्यत्	तसयति	तस्यते
अतितिक्षत	तितिक्षेत	तितिक्षिषीष्ट	अतितिक्षिष्ट	अतितिक्षिष्यत	तेजयति	तितिक्ष्यते
अतुदत्	तुदेत्	तुद्यात्	अतौत्सीत्	अतोत्स्यत्	तोदयति	तुद्यते
अतुरण्यत्	तुरण्येत्	तुरण्यात्	अतुरणीत्	अतुरणिष्यत्	तुरणयति	तुरण्यते
अतोलयत्	तोलयेत्	तोल्यात्	अतूतुलत्	अतोलयिष्यत्	तोलयति	तोल्यते
अतुष्यत्	तुष्येत्	तुष्यात्	अतुषत्	अतोक्ष्यत्	तोषयति	तुष्यते
अतृप्यत्	तृप्येत्	तृप्यात्	अतृपत्	अतर्पिष्यत्	तर्पयति	तृप्यते
अतृष्यत्	तृष्येत्	तृष्यात्	अतृषत्	अतर्षिष्यत्	तर्षयति	तृष्यते
अतरत्	तरेत्	तीर्यात्	अतारीत्	अतरिष्यत्	तारयति	तीर्यते
अत्यजत्	त्यजेत्	त्यज्यात्	अत्याक्षीत्	अत्यक्ष्यत्	त्याजयति	त्यज्यते
अत्रपत	त्रपेत	त्रपिषीष्ट	अत्रपिष्ट	अत्रपिष्यत	त्रपयति	त्रप्यते
अत्रस्यत्	त्रस्येत्	त्रस्यात्	अत्रसीत्	अत्रसिष्यत्	त्रासयति	त्रस्यते
अत्रुटत्	त्रुटेत्	त्रुट्यात्	अत्रुटीत्	अत्रुटिष्यत्	त्रोटयति	त्रुट्यते
अत्रोटयत	त्रोटयेत	त्रोटयिषीष्ट	अतुत्रुटत	अत्रोटयिष्यत	,,	त्रोट्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
त्रै	(१आ०, बचाना)	त्रायते	तत्रे	त्राता	त्रास्यते	त्रायताम्
त्वक्ष्	(१प०, छीलना)	त्वक्षति	तत्वक्ष	त्वक्षिता	त्वक्षिष्यति	त्वक्षतु
त्वर्	(१आ०, जल्दी करना)	त्वरते	तत्वरे	त्वरिता	त्वरिष्यते	त्वरताम्
त्विष्	(१ उ०, चमकना)	त्वेषति—ते	तित्वेष	त्वेष्टा	त्वेक्ष्यति	त्वेषतु
दण्ड्	(१०उ०, दण्डदेना)	दण्डयति—ते	दण्डयाञ्चकार	दण्डयिता	दण्डयिष्यति	दण्डयतु
दम्	(४प०, दमन करना)	दाम्यति	ददाम	दमिता	दमिष्यति	दाम्यतु
दम्भ्	(५प०, धोखा देना)	दभ्नोति	ददम्भ	दम्भिता	दम्भिष्यति	दभ्नोतु
दय्	(१आ०, दया करना)	दयते	दयाञ्चक्रे	दयिता	दयिष्यते	दयताम्
दश्	(१ प०, डँसना)	दशति	ददश	दष्टा	दक्ष्यति	दशतु
दह्	(१ प०, जलाना)	दहति	ददाह	दग्धा	धक्ष्यति	दहतु
दा	(१ प०, देना)	यच्छति	ददौ	दाता	दास्यति	यच्छतु
दा	(२ प०, काटना)	दाति	,,	,,	,,	दातु
दा	(३ उ०, देना)	प०—ददाति	,,	,,	,,	ददातु
		आ०—दत्ते	ददे	,,	दास्यते	दत्ताम्
दिव्	(४प०, चमकना आदि)	दीव्यति	दिदेव	देविता	देविष्यति	दीव्यतु
दिव्	(१०आ०, रुलाना)	देवयते	देवयाञ्चक्रे	देवयिता	देवयिष्यते	देवयताम्
दिश्	(६उ०, देना, कहना)	दिशति-ते	दिदेश	देष्टा	देक्ष्यति	दिशतु
दीक्ष्	(१आ०, दीक्षा देना)	दीक्षते	दिदीक्षे	दीक्षिता	दीक्षिष्यते	दीक्षताम्
दीप्	(४आ०, चमकना)	दीप्यते	दिदीपे	दीपिता	दीपिष्यते	दीप्यताम्
दु	(५प०, दुःखित होना)	दुनोति	दुदाव	दोता	दोष्यति	दुनोतु
दुष्	(४ प०, बिगड़ना)	दुष्यति	दुदोष	दोष्टा	दोक्ष्यति्	दुष्यतु
दुह्	(२उ०, दुहना)	प०—दोग्धि	दुदोह	दोग्धा	धोक्ष्यति	दोग्धु
		आ०—दुग्धे	दुदुहे	,,	—ते	दुग्धाम्
दू	(४आ०, दुःखित होना)	दूयते	दुदुवे	दविता	दविष्यते	दूयताम्
दृ	(६आ०, आदरकरना)	आ + आद्रियते	आदद्रे	आदर्ता	आदरिष्यते	आद्रियताम्
दृप्	(४ प०, गर्व करना)	दृप्यति	ददर्प	दर्पिता	दर्पिष्यति	दृप्यतु
दृश्	(१ प०, देखना)	पश्यति	ददर्श	द्रष्टा	द्रक्ष्यति	पश्यतु
दॄ	(९ प०, फाड़ना)	दृणाति	ददार	दरिता	दरिष्यति	दृणातु
दो	(४ प०, काटना)	द्यति	ददौ	दाता	दास्यति	द्यतु
द्युत्	(१ आ०, चमकना)	द्योतते	दिद्युते	द्योतिता	द्योतिष्यते	द्योतताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अत्रायत	त्रायेत	त्रासीष्ट	अत्रास्त	अत्रास्यत	त्रापयति	त्रायते
अत्वक्षत्	त्वक्षेत्	त्वक्ष्यात्	अत्वक्षीत्	अत्वक्षिष्यत्	त्वक्षयति	त्वक्ष्यते
अत्वरत	त्वरेत	त्वरिषीष्ट	अत्वरिष्ट	अत्वरिष्यत	त्वरयति	त्वर्यते
अत्वेषत्	त्वेषेत्	त्विष्यात्	अत्विक्षत्	अत्वेक्ष्यत्	त्वेषयति	त्विष्यते
अदण्डयत्	दण्डयेत्	दण्ड्यात्	अददण्डत्	अदण्डयिष्यत्	दण्डयति	दण्ड्यते
अदाम्यत्	दाम्येत्	दम्यात्	अदमत्	अदमिष्यत्	दमयते	दम्यते
अदम्नोत्	दम्नुयात्	दम्यात्	अदम्भीत्	अदम्भिष्यत्	दम्भयति	दम्यते
अदयत	दयेत	दयिषीष्ट	अदयिष्ट	अदयिष्यत	दाययति	दय्यते
अदशत्	दशेत्	दश्यात्	अदाङ्क्षीत्	अदक्ष्यत्	दशयति	दश्यते
अदहत्	दहेत्	दह्यात्	अधाक्षीत्	अधक्ष्यत्	दाहयति	दह्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अदात्	दायात्	दायात्	अदासीत्	,,	,,	दायते
अददात्	दद्यात्	देयात्	अदात्	,,	,,	दीयते
अदत्त	ददीत	दासीष्ट	अदित	अदास्यत	,,	,,
अदीव्यत्	दीव्येत्	दीव्यात्	अदेवीत्	अदेविष्यत्	देवयति	दीव्यते
अदेवयत	देवयेत	देवयिषीष्ट	अदीदिवत	अदेवयिष्यत	देवयति	देव्यते
अदिशत्	दिशेत्	दिश्यात्	अदिक्षत्	अदेक्ष्यत्	देशयति	दिश्यते
अदीक्षत	दीक्षेत	दीक्षिषीष्ट	अदीक्षिष्ट	अदीक्षिष्यत	दीक्षयति	दीक्ष्यते
अदीप्यत	दीप्येत	दीपिषीष्ट	अदीपिष्ट	अदीपिष्यत	दीपयति	दीप्यते
अदुनोत्	दुनुयात्	दूयात्	अदौषीत्	अदोष्यत्	दावयति	दूयते
अदुष्यत्	दुष्येत्	दुष्यात्	अदुषत्	अदोक्ष्यत्	दूषयति	दुष्यते
अधोक्	दुह्यात्	दुह्यात्	अधुक्षत्	अधोक्ष्यत्	दोहयति	दुह्यते
अदुग्ध	दुहीत	धुक्षीष्ट	अधुक्षत	—क्ष्यत	,,	,,
अदूयत	दूयेत	दविषीष्ट	अदविष्ट	अदविष्यत	दावयति	दूयते
आद्रियत	आद्रियेत	आदृषीष्ट	आदृत	आदरिष्यत	आदारयति	आद्रियते
अदृप्यत्	दृप्येत्	दृप्यात्	अदृपत्	अदर्पिष्यत्	दर्पयति	दृप्यते
अपश्यत्	पश्येत्	दृश्यात्	अद्राक्षीत्	अद्रक्ष्यत्	दर्शयति	दृश्यते
अदृणात्	दृणीयात्	दीर्यात्	अदारीत्	अदरिष्यत्	दारयति	दीर्यते
अद्यत्	द्येत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अद्योतत	द्योतेत	द्योतिषीष्ट	अद्योतिष्ट	अद्योतिष्यत	द्योतयति	द्युत्यते

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
न्यद्रात्	निद्रायात्	निद्रायात्	न्यद्रासीत्	न्यद्रास्यत्	निद्रापयति	निद्रायते
अद्रवत्	द्रवेत्	द्रूयात्	अदुद्रुवत्	अद्रोष्यत्	द्रावयति	द्रूयते
अद्रुह्यत्	द्रुह्येत्	द्रुह्यात्	अद्रुहत्	अद्रोहिष्यत्	द्रोहयति	द्रुह्यते
अद्वेट्	द्विष्यात्	द्विष्यात्	अद्विक्षत्	अद्वेक्ष्यत्	द्वेषयति	द्विष्यते
अदधात्	दध्यात्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयति	धीयते
अधत्त	दधीत	धासीष्ट	अधित	अधास्यत	,,	,,
अधावत्	धावेत्	धाव्यात्	अधावीत्	अधाविष्यत्	धावयति	धाव्यते
अधुनोत्	धुनुयात्	धूयात्	अधौषीत्	अधोष्यत्	धावयति	धूयते
अधुक्षत	धुक्षेत	धुक्षिषीष्ट	अधुक्षिष्ट	अधुक्षिष्यत	धुक्षयति	धुक्ष्यते
अधूनोत्	धूनुयात्	धूयात्	अधावीत्	अधोष्यत्	धूनयति	धूयते
अधूपायत्	धूपायेत्	धूपाय्यात्	अधूपायीत्	अधूपायिष्यत्	धूपाययति	धूपाय्यते
अधरत्	धरेत्	ध्रियात्	अधार्षीत्	अधरिष्यत्	धारयति	ध्रियते
अधारयत्	धारयेत्	धार्यात्	अदीधरत्	अधारयिष्यत्	,,	धार्यते
अधर्षयत्	धर्षयेत्	धर्ष्यात्	अदधर्षत्	अधर्षयिष्यत्	धर्षयति	धर्ष्यते
अधयत्	धयेत्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयते	धीयते
अधमत्	धमेत्	ध्मायात्	अध्मासीत्	अध्मास्यत्	ध्मापयति	ध्मायते
अध्यायत्	ध्यायेत्	ध्यायात्	अध्यासीत्	अध्यास्यत्	ध्यापयति	ध्यायते
अध्वनत्	ध्वनेत्	ध्वन्यात्	अध्वानीत्	अध्वनिष्यत्	ध्वनयति	ध्वन्यते
अध्वसत	ध्वसेत	ध्वसिषीष्ट	अध्वसिष्ट	अध्वसिष्यत	ध्वसयति	ध्वस्यते
अनदत्	नदेत्	नद्यात्	अनादीत्	अनदिष्यत्	नादयति	नद्यते
अनन्दत्	नन्देत्	नन्द्यात्	अनन्दीत्	अनन्दिष्यत्	नन्दयति	नन्द्यते
अनमत्	नमेत्	नम्यात्	अनसीत्	अनस्यत्	नमयति	नम्यते
अनश्यत्	नश्येत्	नश्यात्	अनशत्	अनशिष्यत्	नाशयति	नश्यते
अनह्यत्	नह्येत्	नह्यात्	अनात्सीत्	अनत्स्यत्	नाहयति	नह्यते
अनेनेक्	नेनिज्यात्	निज्यात्	अनिजत्	अनेक्ष्यत्	नेजयति	निज्यते
अनिन्दत्	निन्देत्	निन्द्यात्	अनिन्दीत्	अनिन्दिष्यत्	निन्दयति	निन्द्यते
अनयत्	नयेत्	नीयात्	अनैषीत्	अनेष्यत्	नाययति	नीयते
अनयत	नयेत	नेषीष्ट	अनेष्ट	अनेष्यत	,,	,,
अनौत्	नुयात्	नूयात्	अनावीत्	अनविष्यत्	नावयति	नूयते
अनुदत्	नुदेत्	नुद्यात्	अनौत्सीत्	अनोत्स्यत्	नोदयति	नुद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
द्रा (२ प०, सोना) नि +		निद्राति	निदद्रौ	निद्राता	निद्रास्यति	निद्रातु
द्रु (१ प०, पिघलना)		द्रवति	दुद्राव	द्रोता	द्रोष्यति	द्रवतु
द्रुह् (४ प०, द्रोह करना)		द्रुह्यति	दुद्रोह	द्रोहिता	द्रोहिष्यति	द्रुह्यतु
द्विष् (२ उ०, द्वेष करना)		द्वेष्टि	दिद्वेष	द्वेष्टा	द्वेक्ष्यति	द्वेष्टु
धा (३ उ०, धारण करना)	प०—	दधाति	दधौ	धाता	धास्यति	दधातु
	आ०—	धत्ते	दधे	,,	धास्यते	धत्ताम्
धाव् (१ उ०, दौड़ना, धोना)		धावति ते	दधाव	धाविता	धाविष्यति	धावतु
धु (५ उ०, हिलाना)		धुनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धुनोतु
धुक्ष् (१ आ०, जलना)		धुक्षते	दुधुक्षे	धुक्षिता	धुक्षिष्यते	धुक्षताम्
धू (५ उ०, हिलाना)		धूनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धूनोतु
धूप् (१ प०, सुखाना)		धूपायति	धूपायाञ्चकार	धूपायिता	धूपायिष्यति	धूपायतु
धृ (१ उ०, रखना)		धरति-ते	दधार	धर्ता	धरिष्यति	धरतु
धृ (१० उ०, रखना)		धारयति-ते	धारयाञ्चकार	धारयिता	धारयिष्यति	धारयतु
धृष् (१० उ०, दबाना)		धर्षयति ते	धर्षयाञ्चकार	धर्षयिता	धर्षयिष्यति	धर्षयतु
धे (१ प०, पीना, चूसना)		धयति	दधौ	धाता	धास्यति	धयतु
ध्मा (१ प०, फूँकना)		धमति	दध्मौ	ध्माता	ध्मास्यति	धमतु
ध्यै (१ प०, सोचना)		ध्यायति	दध्यौ	ध्याता	ध्यास्यति	ध्यायतु
ध्वन् (१ प०, शब्द करना)		ध्वनति	दध्वान	ध्वनिता	ध्वनिष्यति	ध्वनतु
ध्वस् (१ आ०, नष्ट होना)		ध्वसते	दध्वसे	ध्वसिता	ध्वसिष्यते	ध्वसताम्
नद् (१ प०, नाद करना)		नदति	ननाद	नदिता	नदिष्यति	नदतु
नन्द् (१ प०, प्रसन्न होना)		नन्दति	ननन्द	नन्दिता	नन्दिष्यति	नन्दतु
नम् (१ प०, झुकना) प्र +		नमति	ननाम	नन्ता	नंस्यति	नमतु
नश् (४ प०, नष्ट होना)		नश्यति	ननाश	नशिता	नशिष्यति	नश्यतु
नह् (४ उ०, बाँधना)		नह्यति ते	ननाह	नद्धा	नत्स्यति	नह्यतु
निज् (३ उ०, धोना)		नेनेक्ति	निनेज	नेक्ता	नेक्ष्यति	नेनेक्तु
निन्द् (१ प०, निन्दा०)		निन्दति	निनिन्द	निन्दिता	निन्दिष्यति	निन्दतु
नी (१ उ०, ले जाना)	प०—	नयति	निनाय	नेता	नेष्यति	नयतु
	आ०—	नयते	निन्ये	,,	नेष्यते	नयताम्
नु (२ प०, स्तुति०)		नौति	नुनाव	नविता	नविष्यति	नौतु
नुद् (६ उ०, प्रेरणा देना)		नुदति-ते	नुनोद	नोत्ता	नोत्स्यति	नुदतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
न्यद्रात्	निद्रायात्	निद्रायात्	न्यद्रासीत्	न्यद्रास्यत्	निद्रापयति	निद्रायते
अद्रवत्	द्रवेत्	द्रूयात्	अदुद्रुवत्	अद्रोष्यत्	द्रावयति	द्रूयते
अद्रुह्यत्	द्रुह्येत्	द्रुह्यात्	अद्रुहत्	अद्रोहिष्यत्	द्रोहयति	द्रुह्यते
अद्वेट्	द्विष्यात्	द्विष्यात्	अद्विक्षत्	अद्वेक्ष्यत्	द्वेषयति	द्विष्यते
अदधात्	दध्यात्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयति	धीयते
अधत्त	दधीत	धासीष्ट	अधित	अधास्यत	,,	,,
अधावत्	धावेत्	धाव्यात्	अधावीत्	अधाविष्यत्	धावयति	धाव्यते
अधुनोत्	धुनुयात्	धूयात्	अधौषीत्	अधोष्यत्	धावयति	धूयते
अधुक्षत	धुक्षेत	धुक्षिषीष्ट	अधुक्षिष्ट	अधुक्षिष्यत	धुक्षयति	धुक्ष्यते
अधूनोत्	धूनुयात्	धूयात्	अधावीत्	अधोष्यत्	धूनयति	धूयते
अधूपायत्	धूपायेत्	धूपाय्यात्	अधूपायीत्	अधूपायिष्यत्	धूपाययति	धूपाय्यते
अधरत्	धरेत्	ध्रियात्	अधाषात्	अधरिष्यत्	धारयति	ध्रियते
अधारयत्	धारयेत्	धार्यात्	अदीधरत्	अधारयिष्यत्	,,	धार्यते
अधर्षयत्	धर्षयेत्	धर्ष्यात्	अदधर्षत्	अधर्षयिष्यत्	धर्षयति	धर्ष्यते
अधयत्	धयेत्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयते	धीयते
अधमत्	धमेत्	ध्मायात्	अध्मासीत्	अध्मास्यत्	ध्मापयति	ध्मायते
अध्यायत्	ध्यायेत्	ध्यायात्	अध्यासीत्	अध्यास्यत्	ध्यापयति	ध्यायते
अध्वनत्	ध्वनेत्	ध्वन्यात्	अध्वानीत्	अध्वनिष्यत्	ध्वनयति	ध्वन्यते
अध्वसत	ध्वसेत	ध्वसिषीष्ट	अध्वसिष्ट	अध्वसिष्यत	ध्वसयति	ध्वस्यते
अनदत्	नदेत्	नद्यात्	अनादीत्	अनदिष्यत्	नादयति	नद्यते
अनन्दत्	नन्देत्	नन्द्यात्	अनन्दीत्	अनन्दिष्यत्	नन्दयति	नन्द्यते
अनमत्	नमेत्	नम्यात्	अनसीत्	अनस्यत्	नमयति	नम्यते
अनश्यत्	नश्येत्	नश्यात्	अनशत्	अनशिष्यत्	नाशयति	नश्यते
अनह्यत्	नह्येत्	नह्यात्	अनात्सीत्	अनत्स्यत्	नाहयति	नह्यते
अनेनेक्	नेनिज्यात्	निज्यात्	अनिजत्	अनेक्ष्यत्	नेजयति	निज्यते
अनिन्दत्	निन्देत्	निन्द्यात्	अनिन्दीत्	अनिन्दिष्यत्	निन्दयति	निन्द्यते
अनयत्	नयेत्	नीयात्	अनैषीत्	अनेष्यत्	नाययति	नीयते
अनयत	नयेत	नेषीष्ट	अनेष्ट	अनेष्यत	,,	,,
अनौत्	नुयात्	नूयात्	अनावीत्	अनविष्यत्	नावयति	नूयते
अनुदत्	नुदेत्	नुद्यात्	अनौत्सीत्	अनोत्स्यत्	नोदयति	नुद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
नृत्	(४ प०, नाचना)	नृत्यति	ननर्त	नर्तिता	नर्तिष्यति	नृत्यतु
पच्	(१ उ०, पकाना) प०—	पचति	पपाच	पक्ता	पक्ष्यति	पचतु
	आ०—	पचते	पेचे	,,	पक्ष्यते	पचताम्
पठ्	(१ प०, पढ़ना)	पठति	पपाठ	पठिता	पठिष्यति	पठतु
पण्	(१ आ०, खरीदना)	पणते	पेणे	पणिता	पणिष्यते	पणताम्
पत्	(१ प०, गिरना)	पतति	पपात	पतिता	पतिष्यति	पततु
पद्	(४ आ०, जाना)	पद्यते	पेदे	पत्ता	पत्स्यते	पद्यताम्
पश्	(१० उ०, बाँधना)	पाशयति-ते	पाशयाञ्चकार	पाशयिता	पाशयिष्यति	पाशयतु
पा	(१ प०, पीना)	पिबति	पपौ	पाता	पास्यति	पिबतु
पा	(२ प०, रक्षा करना)	पाति	पपौ	,,	,,	पातु
पाल्	(१० उ०, पालना)	पालयति-ते	पालयाञ्चकार	पालयिता	पालयिष्यति	पालयतु
पिष्	(७ प०, पीसना)	पिनष्टि	पिपेष	पेष्टा	पेक्ष्यति	पिनष्टु
पीड्	(१० उ०, दुःख देना)	पीडयति ते	पीडयाञ्चकार	पीडयिता	पीडयिष्यति	पीडयतु
पुष्	(४ प०, पुष्ट करना)	पुष्यति	पुपोष	पोष्टा	पोक्ष्यति	पुष्यतु
पुष्	(९ प०, ,,)	पुष्णाति	,,	पोषिता	पोषिष्यति	पुष्णातु
पुष्	(१० उ०, पालना)	पोषयति-ते	पोषयाञ्चकार	पोषयिता	पोषयिष्यति	पोषयतु
पू	(१ आ०, पवित्र०)	पवते	पुपुवे	पविता	पविष्यते	पवताम्
पू	(९ उ०, पवित्र०)	पुनाति	पुपाव	पविता	पविष्यति	पुनातु
पूज्	(१० उ०, पूजना)	पूजयति ते	पूजयाञ्चकार	पूजयिता	पूजयिष्यति	पूजयतु
पूर्	(१० उ०, भरना)	पूरयति-ते	पूरयाञ्चकार	पूरयिता	पूरयिष्यति	पूरयतु
पॄ	(३ प०, पालना)	पिपर्ति	पपार	परिता	परिष्यति	पिपर्तु
पॄ	(१० उ०, पालना)	पारयति-ते	पारयाञ्चकार	पारयिता	पारयिष्यति	पारयतु
प्यै	(१ आ०, बढ़ना) आ +	प्यायते	पप्ये	प्याता	प्यास्यते	प्यायताम्
प्रच्छ्	(६ प०, पूछना)	पृच्छति	पप्रच्छ	प्रष्टा	प्रक्ष्यति	पृच्छतु
प्रथ्	(१ आ०, फैलना)	प्रथते	पप्रथे	प्रथिता	प्रथिष्यते	प्रथताम्
प्री	(४ आ०, प्रसन्न होना)	प्रीयते	पिप्रिये	प्रेता	प्रेष्यते	प्रीयताम्
प्री	(९ उ०, प्रसन्न करना)	प्रीणाति	पिप्राय	प्रेता	प्रेष्यति	प्रीणातु
प्री	(१० उ०, ,,)	प्रीणयति	प्रीणयाञ्चकार	प्रीणयिता	प्रीणयिष्यति	प्रीणयतु
प्लु	(१ आ०, कूदना)	प्लवते	पुप्लुवे	प्लोता	प्लोष्यते	प्लवताम्
प्लुष्	(१ प०, जलाना)	प्लोषति	पुप्लोष	प्लोषिता	प्लोषिष्यति	प्लोषतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अनृत्यत्	नृत्येत्	नृत्यात्	अनर्तीत्	अनर्तिष्यत्	नर्तयते	नृत्यते
अपचत्	पचेत्	पच्यात्	अपाक्षीत्	अपक्ष्यत्	पाचयति	पच्यते
अपचत	पचेत	पक्षीष्ट	अपक्त	अपक्ष्यत	,,	,,
अपठत्	पठेत्	पठ्यात्	अपाठीत्	अपठिष्यत्	पाठयति	पठ्यते
अपणत	पणेत	पणिषीष्ट	अपणिष्ट	अपणिष्यत	पाणयति	पण्यते
अपतत्	पतेत्	पत्यात्	अपप्तत्	अपतिष्यत्	पातयति	पत्यते
अपद्यत	पद्येत	पत्सीष्ट	अपादि	अपत्स्यत	पादयति	पद्यते
अपाशयत्	पाशयेत्	पाश्यात्	अपीपशत्	अपाशयिष्यत्	पाशयति	पाश्यते
अपिबत्	पिबेत्	पेयात्	अपात्	अपास्यत्	पाययति	पीयते
अपात्	पायात्	पायात्	अपासीत्	,,	पालयति	पायते
अपालयत्	पालयेत्	पाल्यात्	अपीपलत्	अपालयिष्यत्	,,	पाल्यते
अपिनट्	पिष्यात्	पिष्यात्	अपिषत्	अपेक्ष्यत्	पेषयति	पिष्यते
अपीडयत्	पीडयेत्	पीड्यात्	अपिपीडत्	अपीडयिष्यत्	पीडयति	पीड्यते
अपुष्यत्	पुष्येत्	पुष्यात्	अपुषत्	अपोक्ष्यत्	पोषयति	पुष्यते
अपुष्णात्	पुष्णीयात्	,,	अपोषीत्	अपोषिष्यत्	,,	,,
अपोषयत्	पोषयेत्	पोष्यात्	अपूपुषत्	अपोषयिष्यत्	,,	पोष्यते
अपवत	पवेत	पविषीष्ट	अपविष्ट	अपविष्यत	पावयति	पूयते
अपुनात्	पुनीयात्	पूयात्	अपावीत्	अपविष्यत्	,,	,,
अपूजयत्	पूजयेत्	पूज्यात्	अपूपुजत्	अपूजयिष्यत्	पूजयति	पूज्यते
अपूरयत्	पूरयेत्	पूर्यात्	अपूपुरत्	अपूरयिष्यत्	पूरयति	पूर्यते
अपिप	पिपूर्यात्	पूर्यात्	अपारीत्	अपरिष्यत्	पारयति	पूर्यते
अपारयत्	पारयेत्	पार्यात्	अपीपरत्	अपारयिष्यत्	पारयति	पार्यते
अप्यायत	प्यायेत	प्यासीष्ट	अप्यास्त	अप्यास्यत	प्यापयति	प्यायते
अपृच्छत्	पृच्छेत्	पृच्छयात्	अप्राक्षीत्	अप्रक्ष्यत्	प्रच्छयति	पृच्छयते
अप्रथत	प्रथेत	प्रथिषीष्ट	अप्रथिष्ट	अप्रथिष्यत	प्रथयति	प्रथ्यते
अप्रीयत	प्रीयेत	प्रेषीष्ट	अप्रेष्ट	अप्रेष्यत	प्राययति	प्रीयते
अप्रीणात्	प्रीणीयात्	प्रीयात्	अप्रैषीत्	अप्रेष्यत्	प्रीणयति	,,
अप्रीणयत्	प्रीणयेत्	प्रीण्यात्	अपिप्रीणत्	अप्रीणयिष्यत्	,,	प्रीण्यते
अप्लवत	प्लवेत	प्लोषीष्ट	अप्लोष्ट	अप्लोष्यत	प्लावयति	प्लूयते
अप्लोषत्	प्लोषेत्	प्लुष्यात्	अप्लोषीत्	अप्लोषिष्यत्	प्लोषयति	प्लुष्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
फल्	(१ प०, फलना)	फलति	पफाल	फलिता	फलिष्यति	फलतु
बध्	(१ आ०, बीभत्स होना)	बीभत्सते	बीभत्साचक्रे	बीभत्सिता	बीभत्सिष्यते	बीभत्सताम्
बध्	(१० उ०, बाँधना)	बाधयति	बाधयाञ्चकार	बाधयिता	बाधयिष्यति	बाधयतु
बन्ध्	(९ प०, बाँधना)	बध्नाति	बबन्ध	बन्द्धा	भन्त्स्यति	बध्नातु
बाध्	(१ आ०, पीडा देना)	बाधते	बबाधे	बाधिता	बाधिष्यते	बाधताम्
बुध्	(१ उ०, समझना)	बोधति-ते	बुबोध	बोधिता	बोधिष्यति	बोधतु
बुध्	(४ आ०, जानना)	बुध्यते	बुबुधे	बोद्धा	भोत्स्यते	बुध्यताम्
ब्रू	(२ उ०, बोलना) प०—	ब्रवीति	उवाच	वक्ता	वक्ष्यति	ब्रवीतु
	आ०—	ब्रूते	ऊचे	,,	वक्ष्यते	ब्रूताम्
भक्ष्	(१० उ०, खाना) प०-	भक्षयति	भक्षयाञ्चकार	भक्षयिता	भक्षयिष्यति	भक्षयतु
	आ०—	भक्षयते	भक्षयाचक्रे	,,	—ते	—ताम्
भज्	(१ उ०, सेवा करना)	भजति ते	बभाज	भक्ता	भक्ष्यति	भजतु
भञ्ज्	(७ प०, तोडना)	भनक्ति	बभञ्ज	भक्ता	भक्ष्यति	भनक्तु
भण्	(१ प०, कहना)	भणति	बभाण	भणिता	भणिष्यति	भणतु
भर्त्स्	(१० आ०, डाँटना)	भर्त्सयते	भर्त्सयाचक्रे	भर्त्सयिता	भर्त्सयिष्यते	भर्त्सयताम्
भा	(२ प०, चमकना)	भाति	बभौ	भाता	भास्यति	भातु
भाष्	(१ आ०, कहना)	भाषते	बभाषे	भाषिता	भाषिष्यते	भाषताम्
भास्	(१ आ०, चमकना)	भासते	बभासे	भासिता	भासिष्यते	भासताम्
भिक्ष्	(१ आ०, माँगना)	भिक्षते	बिभिक्षे	भिक्षिता	भिक्षिष्यते	भिक्षताम्
भिद्	(७ उ०, तोडना)	भिनत्ति	बिभेद	भेत्ता	भेत्स्यति	भिनत्तु
भी	(३ प०, डरना)	बिभेति	बिभाय	भेता	भेष्यति	बिभेतु
भुज्	(७ प०, पालना)	भुनक्ति	बुभोज	भोक्ता	भोक्ष्यति	भुनक्तु
भुज्	(७ आ०, खाना)	भुङ्क्ते	बुभुजे	,,	—ते	भुङ्क्ताम्
भू	(१ प०, होना)	भवति	बभूव	भविता	भविष्यति	भवतु
भूष्	(१० उ०, सजाना)	भूषयति-ते	भूषयाञ्चकार	भूषयिता	भूषयिष्यति	भूषयतु
भृ	(१ उ०, पालना)	भरति-ते	बभार	भर्ता	भरिष्यति	भरतु
भृ	(३ उ०, पालना)	बिभर्ति	,,	,,	,,	बिभर्तु
भ्रम्	(१ प०, घूमना)	भ्रमति	बभ्राम	भ्रमिता	भ्रमिष्यति	भ्रमतु
भ्रम्	(४ प०, घूमना)	भ्राम्यति	,,	,,	,,	भ्राम्यतु
भ्रंश्	(१ आ०, गिरना)	भ्रंशते	बभ्रंशे	भ्रंशिता	भ्रंशिष्यते	भ्रंशताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अफलत्	फलेत्	फल्यात्	अफालीत्	अफलिष्यत्	फालयति	फल्यते
अबीभत्सत	बीभत्सेत	बीभत्सिषीष्ट	अबीभत्सिष्ट	अबीभत्सिष्यत	बीभत्सयति	बीभत्स्यते
अबाधयत्	बाधयेत्	बाध्यात्	अबीबधत्	अबाधयिष्यत्	बाधयति	बाध्यते
अबध्नात्	बध्नीयात्	बध्यात्	अभान्त्सीत्	अभन्त्स्यत्	बन्धयति	बध्यते
अबाधत	बाधेत	बाधिषीष्ट	अबाधिष्ट	अबाधिष्यत	बाधयति	बाध्यते
अबोधत्	बोधेत्	बुध्यात्	अबुधत्	अबोधिष्यत्	बोधयति	बुध्यते
अबुध्यत	बुध्येत	भुत्सीष्ट	अबोधि	अभोत्स्यत	,,	,,
अब्रवीत्	ब्रूयात्	उच्यात्	अवोचत्	अवक्ष्यत्	वाचयति	उच्यते
अब्रूत	ब्रुवीत	वक्षीष्ट	अवोचत	अवक्ष्यत	,,	,,
अभक्षयत्	भक्षयेत्	भक्ष्यात्	अबभक्षत्	अभक्षयिष्यत्	भक्षयति	भक्ष्यते
—यत	—येत	भक्षयिषीष्ट	—क्षत	—ष्यत	,,	,,
अभजत्	भजेत्	भज्यात्	अभाक्षीत्	अभक्ष्यत्	भाजयति	भज्यते
अभनक्	भञ्ज्यात्	भज्यात्	अभाङ्क्षीत्	अभङ्क्ष्यत्	भञ्जयति	भज्यते
अभणत्	भणेत्	भण्यात्	अभाणीत्	अभणिष्यत्	भाणयति	भण्यते
अभर्त्सयत	भर्त्सयेत	भर्त्सयिषीष्ट	अबभर्त्सत	अभर्त्सयिष्यत	भर्त्सयति	भर्त्स्यते
अभात्	भायात्	भायात्	अभासीत्	अभास्यत्	भापयति	भायते
अभाषत	भाषेत	भाषिषीष्ट	अभाषिष्ट	अभाषिष्यत	भाषयति	भाष्यते
अभासत	भासेत	भासिषीष्ट	अभासिष्ट	अभासिष्यत	भासयति	भास्यते
अभिक्षत	भिक्षेत	भिक्षिषीष्ट	अभिक्षिष्ट	अभिक्षिष्यत	भिक्षयति	भिक्ष्यते
अभिनत्	भिन्द्यात्	भिद्यात्	अभिदत्	अभेत्स्यत्	भेदयति	भिद्यते
अबिभेत्	बिभीयात्	भीयात्	अभैषीत्	अभेष्यत्	भाययति	भीयते
अभुनक्	भुञ्ज्यात्	भुज्यात्	अभौक्षीत्	अभोक्ष्यत्	भोजयति	भुज्यते
अभुङ्क्त	भुञ्जीत	भुक्षीष्ट	अभुक्त	—त	,,	,,
अभवत्	भवेत्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
अभूषयत्	भूषयेत्	भूष्यात्	अबुभूषत्	अभूषयिष्यत्	भूषयति	भू॰
अभरत्	भरेत्	भ्रियात्	अभार्षीत्	अभरिष्यत्	भारयति	भ्रि
अबिभः	बिभृयात्	,,	,,	,,	,,	,,
अभ्रमत्	भ्रमेत्	भ्रम्यात्	अभ्रमीत्	अभ्रमिष्यत्	भ्रमयति	भ्र॰
अभ्राम्यत्	भ्राम्येत्	,,	अभ्रमत्	,,	,,	,,
अभ्रशत	भ्रशेत	भ्रशिषीष्ट	अभ्रशिष्ट	अभ्रशिष्यत	भ्रशयति	भ्र॰

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
भ्रस्ज् (६ उ०, भूनना)	भृज्जति-ते	बभ्रज्ज	भ्रष्टा	भ्रक्ष्यति	भृज्जतु
भ्राज् (१ आ०, चमकना)	भ्राजते	बभ्राजे	भ्राजिता	भ्राजिष्यते	भ्राजताम्
मण्ड् (१० उ०, सजाना)	मण्डयति-ते	मण्डयाञ्चकार	मण्डयिता	मण्डयिष्यति	मण्डयतु
मथ् (१ प०, मथना)	मथति	ममाथ	मथिता	मथिष्यति	मथतु
मद् (४ प०, प्रसन्न होना)	माद्यति	ममाद	मदिता	मदिष्यति	माद्यतु
मन् (४ आ०, मानना)	मन्यते	मेने	मन्ता	मंस्यते	मन्यताम्
मन् (८ आ०, मानना)	मनुते	,,	मनिता	मनिष्यते	मनुताम्
मन्त्र् (१० आ० मन्त्रणा०)	मन्त्रयते	मन्त्रयाञ्चक्रे	मन्त्रयिता	मन्त्रयिष्यते	मन्त्रयताम्
मन्थ् (९ प०, मथना)	मथ्नाति	ममन्थ	मन्थिता	मन्थिष्यति	मथ्नातु
मस्ज् (६ प०, डूबना)	मज्जति	ममज्ज	मङ्क्ता	मङ्क्ष्यति	मज्जतु
मा (१ प०, नापना)	माति	ममौ	माता	मास्यति	मातु
मा (३ आ०, नापना)	मिमीते	ममे	माता	मास्यते	मिमीताम्
मान् (१ आ०, जिज्ञासा०)	मीमांसते	मीमांसाञ्चक्रे	मीमांसिता	मीमांसिष्यते	मीमांसताम्
मान् (१० उ०, आदर०)	मानयति ते	मानयाञ्चकार	मानयिता	मानयिष्यति	मानयतु
मार्ग् (१० उ०, ढूँढना)	मार्गयति-ते	मार्गयाञ्चकार	मार्गयिता	मार्गयिष्यति	मार्गयतु
मार्ज् (१०उ०, साफ करना)	मार्जयति ते	मार्जयाञ्चकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मिल् (६ उ०, मिलना)	मिलति ते	मिमेल	मेलिता	मेलिष्यति	मिलतु
मिश्र् (१० उ०, मिलाना)	मिश्रयति ते	मिश्रयाञ्चकार	मिश्रयिता	मिश्रयिष्यति	मिश्रयतु
मिह् (१ प०, गीला करना)	मेहति	मिमेह	मेढा	मेक्ष्यति	मेहतु
मील् (१ प०, आँख मीचना)	मीलति	मिमील	मीलिता	मीलिष्यति	मीलतु
मुच् (६ उ०, छोडना)	प०—मुञ्चति	मुमोच	मोक्ता	मोक्ष्यति	मुञ्चतु
	आ०—मुञ्चते	मुमुचे	,,	मोक्ष्यते	मुञ्चताम्
मुच् (१० उ०, मुक्त करना)	मोचयति ते	मोचयाञ्चकार	मोचयिता	मोचयिष्यति	मोचयतु
मुद् (१ आ०, प्रसन्न होना)	मोदते	मुमुदे	मोदिता	मोदिष्यते	मोदताम्
मुर्च्छ् (१ प०, मूर्छित होना)	मूर्च्छति	मुमूर्च्छ	मूर्च्छिता	मूर्च्छिष्यति	मूर्च्छतु
मुष् (९ प०, चुराना)	मुष्णाति	मुमोष	मोषिता	मोषिष्यति	मुष्णातु
मुह् (४ प०, मोह में पडना)	मुह्यति	मुमोह	मोहिता	मोहिष्यति	मुह्यतु
मृ (६ आ०, मरना)	म्रियते	ममार	मर्ता	मरिष्यति	म्रियताम्
मृग् (१० आ०, ढूँढना)	मृगयते	मृगयाञ्चक्रे	मृगयिता	मृगयिष्यते	मृगयताम्
(२ प०, साफ करना)	मार्ष्टि	ममार्ज	मर्जिता	मर्जिष्यति	मार्ष्टु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अभृजत्	भृज्जेत्	भृज्यात्	अभ्राक्षीत्	अभ्रक्ष्यत्	भ्रज्जयति	भृज्ज्यते
अभ्राजत	भ्राजेत	भ्राजिषीष्ट	अभ्राजिष्ट	अभ्राजिष्यत	भ्राजयति	भ्राज्यते
अमण्डयत्	मण्डयेत्	मण्ड्यात्	अममण्डत्	अमण्डयिष्यत्	मण्डयति	माण्ड्यते
अमथत्	मथेत्	मथ्यात्	अमथीत्	अमथिष्यत्	माथयति	मथ्यते
अमाद्यत्	माद्येत्	मद्यात्	अमदीत्	अमदिष्यत्	मदयति	मद्यते
अमन्यत	मन्येत	मंसीष्ट	अमंस्त	अमंस्यत	मानयति	मन्यते
अमनुत	मन्वीत	मनिषीष्ट	अमत	अमनिष्यत	,,	,,
अमन्त्रयत	मन्त्रयेत	मन्त्रयिषीष्ट	अममन्त्रत	अमन्त्रयिष्यत	मन्त्रयति	मन्त्र्यते
अमथ्नात्	मथ्नीयात्	मथ्यात्	अमन्थीत्	अमन्थिष्यत्	मन्थयति	मथ्यते
अमज्जत्	मज्जेत्	मज्ज्यात्	अमाङ्क्षीत्	अमङ्क्ष्यत्	मज्जयति	मज्ज्यते
अमात्	मायात्	मेयात्	अमासीत्	अमास्यत्	मापयति	मीयते
अमिमीत	मिमीत	मासीष्ट	अमास्त	अमास्यत	,,	,,
अमीमांसत	मीमांसेत	मीमांसिषीष्ट	अमीमांसिष्ट	अमीमांसिष्यत	मीमांसयति	मीमांस्यते
अमानयत्	मानयेत्	मान्यात्	अमीमनत्	अमानयिष्यत्	मानयति	मान्यते
अमार्गयत्	मार्गयेत्	मार्ग्यात्	अममार्गत्	अमार्गयिष्यत्	मार्गयति	मार्ग्यते
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमिलत्	मिलेत्	मिल्यात्	अमेलीत्	अमेलिष्यत्	मेलयति	मिल्यते
अमिश्रयत्	मिश्रयेत्	मिश्र्यात्	अमिमिश्रत्	अमिश्रयिष्यत्	मिश्रयति	मिश्र्यते
अमेहत्	मेहेत्	मिह्यात्	अमिक्षत्	अमेक्ष्यत्	मेहयति	मिह्यते
अमीलत्	मीलेत्	मील्यात्	अमेलीत्	अमीलिष्यत्	मीलयति	मील्यते
अमुञ्चत्	मुञ्चेत्	मुच्यात्	अमुचत्	अमोक्ष्यत्	मोचयति	मुच्यते
अमुञ्चत	मुञ्चेत	मुक्षीष्ट	अमुक्त	अमोक्ष्यत	,,	,,
अमोचयत्	मोचयेत्	मोच्यात्	अमूमुचत्	अमोचयिष्यत्	मोचयति	मोच्यते
अमोदत	मोदेत	मोदिषीष्ट	अमोदिष्ट	अमोदिष्यत	मोदयति	मुद्यते
अमूर्च्छत्	मूर्च्छेत्	मूर्च्छ्यात्	अमूर्च्छीत्	अमूर्च्छिष्यत्	मूर्च्छयति	मूर्च्छ्यते
अमुष्णात्	मुष्णीयात्	मुष्यात्	अमोषीत्	अमोषिष्यत्	मोषयति	मुष्यते
अमुह्यत्	मुह्येत्	मुह्यात्	अमुहत्	अमोहिष्यत्	मोहयति	मुह्यते
अम्रियत	म्रियेत	मृषीष्ट	अमृत	अमरिष्यत्	मारयति	म्रियते
अमृगयत	मृगयेत	मृगयिषीष्ट	अममृगत	अमृगयिष्यत	मृगयति	मृग्यते
अमार्ट्	मृज्यात्	मृज्यात्	अमार्जीत्	अमार्जिष्यत्	मार्जयति	मृज्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
मृज्	(१० उ०, साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयाञ्चकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मृष्	(१० उ०, क्षमा करना)	मर्षयति-ते	मर्षयाञ्चकार	मर्षयिता	मर्षयिष्यति	मर्षयतु
म्ना	(१ प०, मानना) आ +	मनति	मम्नौ	म्नाता	म्नास्यति	मनतु
म्लै	(१ प०, मुरझाना)	म्लायति	मम्लौ	म्लाता	म्लास्यति	म्लायतु
यज्	(१ उ०, यज्ञ करना)	यजति-ते	इयाज	यष्टा	यक्ष्यति	यजतु
यत्	(१ आ०, यत्न करना)	यतते	येते	यतिता	यतिष्यते	यतताम्
यन्त्र्	(१० उ०, नियमित०)	यन्त्रयति	यन्त्रयाञ्चकार	यन्त्रयिता	यन्त्रयिष्यति	यन्त्रयतु
यम्	(१ प०, रोकना) नि +	यच्छति	ययाम	यन्ता	यस्यति	यच्छतु
यस्	(४ प०, यत्न करना)	यस्यति	ययास	यसिता	यसिष्यति	यस्यतु
या	(२ प०, जाना)	याति	ययौ	याता	यास्यति	यातु
याच्	(१ उ०, माँगना) प०-	याचति	ययाच	याचिता	याचिष्यति	याचतु
	आ०—	याचते	ययाचे	,,	—ते	—ताम्
यापि	(या + णिच्, बिताना)	यापयति	यापयाञ्चकार	यापयिता	यापयिष्यति	यापयतु
युज्	(४ आ०, ध्यान लगाना)	युज्यते	युयुजे	योक्ता	योक्ष्यते	युज्यताम्
युज्	(७ उ०, मिलाना)	युनक्ति	युयोज	,,	योक्ष्यति	युनक्तु
युज्	(१० उ०, लगाना)	योजयति-ते	योजयाञ्चकार	योजयिता	योजयिष्यति	योजयतु
युध्	(४ आ०, लड़ना)	युध्यते	युयुधे	योद्धा	योत्स्यते	युध्यताम्
रक्ष्	(१ प०, रक्षा करना)	रक्षति	ररक्ष	रक्षिता	रक्षिष्यति	रक्षतु
रच्	(१० उ०, बनाना)	रचयति-ते	रचयाञ्चकार	रचयिता	रचयिष्यति	रचयतु
रञ्ज्	(४ उ०, प्रसन्न होना)	रज्यति-ते	ररञ्ज	रङ्क्ता	रङ्क्ष्यति	रज्यतु
रट्	(१ प०, रटना)	रटति	रराट	रटिता	रटिष्यति	रटतु
रम्	(१ आ०, रमना)	रमते	रेमे	रन्ता	रंस्यते	रमताम्
	(वि + रम्, पर०)	विरमति	विरराम	विरन्ता	विरंस्यति	विरमतु
रस्	(१० उ०, स्वाद लेना)	रसयति-ते	रसयाञ्चकार	रसयिता	रसयिष्यति	रसयतु
राज्	(१ उ०, चमकना) प०-	राजति	रराज	राजिता	राजिष्यति	राजतु
	आ०—	राजते	रेजे	,,	—ते	—ताम्
राध्	(५ प०, पूरा करना)	राध्नोति	रराध	राद्धा	रात्स्यति	राध्नोतु
रु	(२ प०, शब्द करना)	रौति	रुराव	रविता	रविष्यति	रौतु
रुच्	(१आ०, अच्छा लगना)	रोचते	रुरुचे	रोचिता	रोचिष्यते	रोचताम्
रुद्	(२ प०, रोना)	रोदिति	रुरोद	रोदिता	रोदिष्यति	रोदितु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमर्षयत्	मर्षयेत्	मर्ष्यात्	अममर्षत्	अमर्षयिष्यत्	मर्षयति	मर्ष्यते
अमनत्	मनेत्	म्नायात्	अम्नासीत्	अम्नास्यत्	म्नापयति	म्नायते
अम्लायत्	म्लायात्	म्लायात्	अम्लासीत्	अम्लास्यत्	म्लापयति	म्लायते
अयजत्	यजेत्	इज्यात्	अयाक्षीत्	अयक्ष्यत्	याजयति	इज्यते
अयतत	यतेत	यतिषीष्ट	अयतिष्ट	अयतिष्यत	यातयति	यत्यते
अयन्त्रयत्	यन्त्रयेत्	यन्त्र्यात्	अययन्त्रत्	अयन्त्रयिष्यत्	यन्त्रयति	यन्त्र्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	यम्यात्	अयंसीत्	अयंस्यत्	नियमयति	नियम्यते
अयस्यत्	यस्येत्	यस्यात्	अयसत्	अयसिष्यत्	आयासयते	यस्यते
अयात्	यायात्	यायात्	अयासीत्	अयास्यत्	यापयति	यायते
अयाचत्	याचेत्	याच्यात्	अयाचीत्	अयाचिष्यत्	याचयति	याच्यते
—त	याचेत	याचिषीष्ट	अयाचिष्ट	—त	,,	,,
अयापयत्	यापयेत्	याप्यात्	अयीयपत्	अयापयिष्यत्	—	याप्यते
अयुज्यत	युज्येत	युक्षीष्ट	अयुक्त	अयोक्ष्यत	योजयति	युज्यते
अयुनक्	युञ्ज्यात्	युज्यात्	अयुजत्	अयोक्ष्यत्	,,	,,
अयोजयत्	योजयेत्	योज्यात्	अयुजत	अयोजयिष्यत्	,,	योज्यते
अयुध्यत	युध्येत	युत्सीष्ट	अयुद्ध	अयोत्स्यत	योधयति	युध्यते
अरक्षत्	रक्षेत्	रक्ष्यात्	अरक्षीत्	अरक्षिष्यत्	रक्षयति	रक्ष्यते
अरचयत्	रचयेत्	रच्यात्	अररचत्	अरचयिष्यत्	रचयति	रच्यते
अरज्यत्	रज्येत्	रज्यात्	अराङ्क्षीत्	अरङ्क्ष्यत्	रञ्जयति	रज्यते
अरटत्	रटेत्	रट्यात्	अरटीत्	अरटिष्यत्	राटयति	रट्यते
अरमत	रमेत	रंसीष्ट	अरंस्त	अरंस्यत	रमयति	रम्यते
व्यरमत्	विरमेत्	विरम्यात्	व्यरंसीत्	व्यरंस्यत्	विरमयति	विरम्यते
अरसयत्	रसयेत्	रस्यात्	अररसत्	अरसयिष्यत्	रसयति	रस्यते
अराजत्	राजेत्	राज्यात्	अराजीत्	अराजिष्यत्	राजयति	राज्यते
—त	—त	राजिषीष्ट	अराजिष्ट	अराजिष्यत	,,	,,
अराध्नोत्	राध्नुयात्	राध्यात्	अरात्सीत्	अरात्स्यत्	राधयति	राध्यते
अरौत्	रुयात्	रूयात्	अरावीत्	अराविष्यत्	रावयति	रूयते
अरोचत	रोचेत	रोचिषीष्ट	अरोचिष्ट	अरोचिष्यत	रोचयते	रुच्यते
अरोदीत्	रुद्यात्	रुद्यात्	अरुदत्	अरोदिष्यत्	रोदयति	रुद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
रुध्	(७ उ०, रोकना) प०—	रुणद्धि	रुरोध	रोद्धा	रोत्स्यति	रुणद्धु
	आ०—	रुन्धे	रुरुधे	,,	—ते	रुन्धाम्
रुह्	(१ प०, उगना)	रोहति	रुरोह	रोढा	रोक्ष्यति	रोहतु
रूप्	(१० उ०, रूप बनाना)	रूपयति-ते	रूपयाचकार	रूपयिता	रूपयिष्यति	रूपयतु
लक्ष्	(१० उ०, देखना)	लक्षयति-ते	लक्षयाचकार	लक्षयिता	लक्षयिष्यति	लक्षयतु
लग्	(१ प०, लगना)	लगति	ललाग	लगिता	लगिष्यति	लगतु
लङ्घ्	(१ आ०, लाँघना)उत् +	लङ्घते	ललङ्घे	लघिता	लघिष्यते	लघताम्
लङ्घ्	(१० उ०, लाँघना)	लघयति-ते	लघयाचकार	लघयिता	लघयिष्यति	लघयतु
लड्	(१० उ०, प्यार करना)	लाडयति-ते	लाडयाचकार	लाडयिता	लाडयिष्यति	लाडयतु
लप्	(१ प०, बोलना)	लपति	ललाप	लपिता	लपिष्यति	लपतु
लभ्	(१ आ०, पाना)	लभते	लेभे	लब्धा	लप्स्यते	लभताम्
लम्ब्	(१ आ०, लटकना)	लम्बते	ललम्बे	लम्बिता	लम्बिष्यते	लम्बताम्
लष्	(१ उ०, चाहना)	लषति-ते	ललाष	लषिता	लषिष्यति	लषतु
लस्	(१प०,शोभित होना)वि +	लसति	ललास	लसिता	लसिष्यति	लसतु
लस्ज्	(लज्, ६ आ०, लज्जित०)	लज्जते	ललज्जे	लज्जिता	लज्जिष्यते	लज्जताम्
लिख्	(६ प०, लिखना)	लिखति	लिलेख	लेखिता	लेखिष्यति	लिखतु
लिङ्ग्	(आ +, १ प०, आलिंगन करना)	आलिंगति	आलिलिंग	आलिंगिता	आलिंगिष्यति	आलिंगतु
लिप्	(६ उ०, लीपना)	लिम्पति-ते	लिलेप	लेप्ता	लेप्स्यति	लिम्पतु
लिह्	(२ उ०, चाटना)	लेढि	लिलेह	लेढा	लेक्ष्यति	लेढु
ली	(४ आ०, लीन होना)	लीयते	लिल्ये	लेता	लेष्यते	लीयताम्
लुट्	(१ प०, लोटना)	लोटति	लुलोट	लोटिता	लोटिष्यति	लोटतु
लुड्	(१ प०, बिलोना)आ +	लोडति	लुलोड	लोडिता	लोडिष्यति	लोडतु
लुप्	(४ प०, लुप्त होना)	लुप्यति	लुलोप	लोपिता	लोपिष्यति	लुप्यतु
लुप्	(६ उ०, नष्ट करना)	लुम्पति-ते	,,	लोप्ता	लोप्स्यति	लुम्पतु
लुभ्	(४ प०, लोभ करना)	लुभ्यति	लुलोभ	लोभिता	लोभिष्यति	लुभ्यतु
लू	(९ उ०, काटना)	लुनाति	लुलाव	लविता	लविष्यति	लुनातु
लोक्	(१० उ०, देखना)आ +	लोकयति-ते	लोकयाचकार	लोकयिता	लोकयिष्यति	लोकयतु
लोच्	(१० उ०,देखना)आ +	लोचयति	लोचयाचकार	लोचयिता	लोचयिष्यति	लोचयतु
वच्	(१० उ०, बाँचना)	वाचयति	वाचयाचकार	वाचयिता	वाचयिष्यति	वाचयतु
वञ्च्	(१० आ०, ठगना)	वञ्चयते	वञ्चयाचक्रे	वञ्चयिता	वञ्चयिष्यते	वञ्चयताम्
वद्	(१ प०, बोलना)	वदति	उवाद	वदिता	वदिष्यति	वदतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अरुणत्	रुन्ध्यात्	रुध्यात्	अरुधन्	अरोत्स्यत्	रोधयति	रुध्यते
अरुन्ध	रुन्धीत	रुत्सीष्ट	अरुद्ध	—त	,,	,,
अरोहत्	रोहेत्	रुह्यात्	अरुक्षत्	अरोक्ष्यत्	रोहयति	रुह्यते
अरूपयत्	रूपयेत्	रूप्यात्	अरुरूपत्	अरूपयिष्यत्	रूपयति	रूप्यते
अलक्षयत्	लक्षयेत्	लक्ष्यात्	अललक्षत्	अलक्षयिष्यत्	लक्षयति	लक्ष्यते
अलगत्	लगेत्	लग्यात्	अलगीत्	अलगिष्यत्	लगयति	लग्यते
अलघत	लघेत	लघिषीष्ट	अलघिष्ट	अलघिष्यत	लघयति	लघ्यते
अलघयत्	लघयेत्	लघ्यात्	अललघत्	अलघयिष्यत्	,,	,,
अलाडयत्	लाडयेत्	लाड्यात्	अलीलडत्	अलाडयिष्यत्	लाडयति	लाड्यते
अलपत्	लपेत्	लप्यात्	अलपीत्	अलपिष्यत्	लापयति	लप्यते
अलभत	लभेत	लप्सीष्ट	अलब्ध	अलप्स्यत	लम्भयति	लभ्यते
अलम्बत	लम्बेत	लम्बिषीष्ट	अलम्बिष्ट	अलम्बिष्यत	लम्बयति	लम्ब्यते
अलषत्	लषेत्	लष्यात्	अलषीत्	अलषिष्यत्	लाषयति	लष्यते
अलसत्	लसेत्	लस्यात्	अलसीत्	अलसिष्यत्	लासयति	लस्यते
अलजत	लजेत	लजिषीष्ट	अलजिष्ट	अलजिष्यत	लजयति	लज्यते
अलिखत्	लिखेत्	लिख्यात्	अलेखीत्	अलेखिष्यत्	लेखयति	लिख्यते
आलिंगत्	आलिंगेत्	आलिंग्यात्	आलिंगीत्	आलिंगिष्यत्	आलिंगयति	आलिंग्यते
अलिम्पत्	लिम्पेत्	लिप्यात्	अलिपत्	अलेप्स्यत्	लेपयति	लिप्यते
अलेट्	लिह्यात्	लिह्यात्	अलिक्षत्	अलेक्ष्यत्	लेहयति	लिह्यते
अलीयत	लीयेत	लेषीष्ट	अलेष्ट	अलेष्यत	लाययति	लीयते
अलोटत्	लोटेत्	लुट्यात्	अलोटीत्	अलोटिष्यत्	लोटयति	लुट्यते
अलोडत्	लोडेत्	लुड्यात्	अलोडीत्	अलोडिष्यत्	लोडयति	लुड्यते
अलुप्यत्	लुप्येत्	लुप्यात्	अलुपत्	अलोपिष्यत्	लोपयति	लुप्यते
अलुम्पत्	लुम्पेत्	,,	,,	अलोप्स्यत्	,,	,,
अलुभ्यत्	लुभ्येत्	लुभ्यात्	अलोभीत्	अलोभिष्यत्	लोभयति	लुभ्यते
अलुनात्	लुनीयात्	लूयात्	अलावीत्	अलविष्यत्	लावयति	लूयते
अलोकयत्	लोकयेत्	लोक्यात्	अलुलोकत्	अलोकयिष्यत्	लोकयति	लोक्यते
अलोचयत्	लोचयेत्	लोच्यात्	अलुलोचत्	अलोचयिष्यत्	लोचयति	लोच्यते
अवाचयत्	वाचयेत्	वाच्यात्	अवीवचत्	अवाचयिष्यत्	वाचयति	वाच्यते
अवञ्चयत	वञ्चयेत	वञ्चयिषीष्ट	अववञ्चत	अवञ्चयिष्यत	वञ्चयति	वञ्च्यते
अवदत्	वदेत्	उद्यात्	अवादीत्	अवदिष्यत्	वादयति	उद्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
वन्द्	(१ आ०, प्रणाम०)	वन्दते	ववन्दे	वन्दिता	वन्दिष्यते	वन्दताम्
वप्	(१ उ०, बोना)	वपति ते	उवाप	वप्ता	वप्स्यति	वपतु
वम्	(१ प०, उगलना)	वमति	ववाम	वमिता	वमिष्यति	वमतु
वस्	(१ प०, रहना)	वसति	उवास	वस्ता	वत्स्यति	वसतु
वह्	(१ उ०, ढोना)	वहति-ते	उवाह	वोढा	वक्ष्यति	वहतु
वा	(२ प०, हवा चलना)	वाति	ववौ	वाता	वास्यति	वातु
वाञ्छ्	(१ प०, चाहना)	वाञ्छति	ववाञ्छ	वाञ्छिता	वाञ्छिष्यति	वाञ्छतु
विद्	(२ प०, जानना)	वेत्ति	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	वेत्तु
विद्	(४ आ०, होना)	विद्यते	विविदे	वेत्ता	वेत्स्यते	विद्यताम्
विद्	(६ उ०, पाना)	विन्दति-ते	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	विन्दतु
विद्	(१० आ०, कहना) नि +	वेदयते	वेदयाञ्चक्रे	वेदयिता	वेदयिष्यते	वेदयताम्
विश्	(६ प०, घुसना) प्र +	विशति	विवेश	वेष्टा	वेक्ष्यति	विशतु
वीज्	(१० उ०, पखा हिलाना)	वीजयति-ते	विजयाञ्चकार	वीजयिता	वीजयिष्यति	वीजयतु
वृ	(५ उ०, चुनना)	वृणोति	ववार	वरिता	वरिष्यति	वृणोतु
वृ	(९ आ०, छाँटना)	वृणीते	वव्रे	वरिता	वरिष्यते	वृणीताम्
वृ	(१० उ०, हटाना, ढकना)	वारयति ते	वारयाञ्चकार	वारयिता	वारयिष्यति	वारयतु
वृज्	(१० उ०, छोड़ना)	वर्जयति-ते	वर्जयाञ्चकार	वर्जयिता	वर्जयिष्यति	वर्जयतु
वृत्	(१ आ०, होना)	वर्तते	ववृते	वर्तिता	वर्तिष्यते	वर्तताम्
वृध्	(१ आ०, बढ़ना)	वर्धते	ववृधे	वर्धिता	वर्धिष्यते	वर्धताम्
वृष्	(१ प०, बरसना)	वर्षति	ववर्ष	वर्षिता	वर्षिष्यति	वर्षतु
वे	(१ उ०, बुनना)	वयति-ते	ववौ	वाता	वास्यति	वयतु
वेप्	(१ आ०, काँपना)	वेपते	विवेपे	वेपिता	वेपिष्यते	वेपताम्
वेष्ट्	(१ आ०, घेरना)	वेष्टते	विवेष्टे	वेष्टिता	वेष्टिष्यते	वेष्टताम्
व्यथ्	(१ आ०, दुःखित होना)	व्यथते	विव्यथे	व्यथिता	व्यथिष्यते	व्यथताम्
व्यध्	(४ प०, बींधना)	विध्यति	विव्याध	व्यद्धा	व्यत्स्यति	विध्यतु
व्रज्	(१ प०, जाना) परि +	व्रजति	वव्राज	व्रजिता	व्रजिष्यति	व्रजतु
शक्	(५ प०, सकना)	शक्नोति	शशाक	शक्ता	शक्ष्यति	शक्नोतु
शङ्क्	(१ आ०, शंका करना)	शङ्कते	शशङ्के	शङ्किता	शङ्किष्यते	शङ्कताम्
शप्	(१ उ०, शाप देना)	शपति-ते	शशाप	शप्ता	शप्स्यति	शपतु
शम्	(४ प०, शान्त होना)	शाम्यति	शशाम	शमिता	शमिष्यति	शाम्यतु
शंस्	(१ प०, प्रशंसा करना) प्र+	शंसति	शशंस	शंसिता	शंसिष्यति	शंसतु
शान्	(१ उ०, तेज करना)	शीशांसति	शीशांसाञ्चकार	शीशांसिता	शीशांसिष्यति	शीशांसतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अवन्दत	वन्देत	वन्दिषीष्ट	अवन्दिष्ट	अवन्दिष्यत	वन्दयति	वन्द्यते
अवपत्	वपेत्	उप्यात्	अवाप्सीत्	अवप्स्यत्	वापयति	उप्यते
अवमत्	वमेत्	वम्यात्	अवमीत्	अवमिष्यत्	वमयति	वम्यते
अवसत्	वसेत्	उष्यात्	अवात्सीत्	अवत्स्यत्	वासयति	उष्यते
अवहत्	वहेत्	उह्यात्	अवाक्षीत्	अवक्ष्यत्	वाहयति	उह्यते
अवात्	वायात्	वायात्	अवासीत्	अवास्यत्	वापयति	वायते
अवाञ्छत्	वाञ्छेत्	वाञ्छ्यात्	अवाञ्छीत्	अवाञ्छिष्यत्	वाञ्छयति	वाञ्छ्यते
अवेत्	विद्यात्	विद्यात्	अवेदीत्	अवेदिष्यत्	वेदयति	विद्यते
अविद्यत	विद्येत	वित्सीष्ट	अवित्त	अवेत्स्यत	,,	,,
अविन्दत्	विन्देत्	विद्यात्	अविदत्	अवेदिष्यत्	,,	
अवेदयत	वेदयेत	वेदयिषीष्ट	अवीविदत	अवेदयिष्यत	,,	वेद्यते
अविशत्	विशेत्	विश्यात्	अविक्षत्	अवेक्ष्यत्	वेशयति	विश्यते
अवीजयत्	वीजयेत्	वीज्यात्	अवीविजत्	अवीजयिष्यत्	वीजयति	वीज्यते
अवृणोत्	वृणुयात्	व्रियात्	अवारीत्	अवरिष्यत्	वारयति	व्रियते
अवृणीत	वृणीत	वृषीष्ट	अवरिष्ट	अवरिष्यत	,,	
अवारयत्	वारयेत्	वार्यात्	अवीवरत्	अवारयिष्यत्	,,	वार्यते
अवर्जयत्	वर्जयेत्	वर्ज्यात्	अवीवृजत्	अवर्जयिष्यत्	वर्जयति	वर्ज्यते
अवर्तत	वर्तेत	वर्तिषीष्ट	अवर्तिष्ट	अवर्तिष्यत	वर्तयति	वृत्यते
अवर्धत	वर्धेत	वर्धिषीष्ट	अवर्धिष्ट	अवर्धिष्यत	वर्धयति	वृध्यते
अवर्षत्	वर्षेत्	वृष्यात्	अवर्षीत्	अवर्षिष्यत्	वर्षयति	वृष्यते
अवयत्	वयेत्	ऊयात्	अवासीत्	अवास्यत्	वाययति	ऊयते
अवेपत	वेपेत	वेपिषीष्ट	अवेपिष्ट	अवेपिष्यत	वेपयति	वेप्यते
अवेष्टत	वेष्टेत	वेष्टिषीष्ट	अवेष्टिष्ट	अवेष्टिष्यत्	वेष्टयति	वेष्ट्यते
अव्यथत	व्यथेत	व्यथिषीष्ट	अव्यथिष्ट	अव्यथिष्यत	व्यथयति	व्यथ्यते
अविध्यत्	विध्येत्	विध्यात्	अव्यात्सीत्	अव्यत्स्यत्	व्यधयति	विध्यते
अव्रजत्	व्रजेत्	व्रज्यात्	अव्राजीत्	अव्रजिष्यत्	व्राजयति	व्रज्यते
अशक्नोत्	शक्नुयात्	शक्यात्	अशकत्	अशक्ष्यत्	शाकयति	शक्यते
अशकत	शकेत	शकिषीष्ट	अशकिष्ट	अशकिष्यत	शकयति	शक्यते
अशपत्	शपेत्	शप्यात्	अशाप्सीत्	अशप्स्यत्	शापयति	शप्यते
अशाम्यत्	शाम्येत्	शम्यात्	अशमत्	अशमिष्यत्	शमयति	शम्यते
अशसत्	शसेत्	शस्यात्	अशसीत्	अशसिष्यत्	शसयति	शस्यते
अशीशासत्	शीशासेत्	शीशास्यात्	अशीशासीत्	अशीशासिष्यत्	शीशासयति	शीशास्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
वन्द्	(१ आ०, प्रणाम०)	वन्दते	ववन्दे	वन्दिता	वन्दिष्यते	वन्दताम्
वप्	(१ उ०, बोना)	वपति ते	उवाप	वप्ता	वप्स्यति	वपतु
वम्	(१ प०, उगलना)	वमति	ववाम	वमिता	वमिष्यति	वमतु
वस्	(१ प०, रहना)	वसति	उवास	वस्ता	वत्स्यति	वसतु
वह्	(१ उ०, ढोना)	वहति-ते	उवाह	वोढा	वक्ष्यति	वहतु
वा	(२ प०, हवा चलना)	वाति	ववौ	वाता	वास्यति	वातु
वाञ्छ्	(१ प०, चाहना)	वाञ्छति	ववाञ्छ	वाञ्छिता	वाञ्छिष्यति	वाञ्छ
विद्	(२ प०, जानना)	वेत्ति	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	वेत्तु
विद्	(४ आ०, होना)	विद्यते	विविदे	वेत्ता	वेत्स्यते	विद्यता
विद्	(६ उ०, पाना)	विन्दति-ते	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	विन्दतु
विद्	(१० आ०, कहना) नि +	वेदयते	वेदयाञ्चक्रे	वेदयिता	वेदयिष्यते	वेदयत
विश्	(६ प०, घुसना) प्र +	विशति	विवेश	वेष्टा	वेक्ष्यति	विशतु
वीज्	(१० उ०, पखा हिलाना)	वीजयति-ते	विजयाञ्चकार	वीजयिता	वीजयिष्यति	वीज
वृ	(५ उ०, चुनना)	वृणोति	ववार	वरिता	वरिष्यति	वृणोतु
वृ	(९ आ०, छाँटना)	वृणीते	वव्रे	वरिता	वरिष्यते	वृणीत
वृ	(१०उ०,हटाना,ढकना)	वारयति-ते	वारयाञ्चकार	वारयिता	वारयिष्यति	वारय
वृज्	(१० उ०, छोडना)	वर्जयति-ते	वर्जयाञ्चकार	वर्जयिता	वर्जयिष्यति	वर्जय
वृत्	(१ आ०, होना)	वर्तते	ववृते	वर्तिता	वर्तिष्यते	वर्तत
वृध्	(१ आ०, बढना)	वर्धते	ववृधे	वर्धिता	वर्धिष्यते	वर्धता
वृष्	(१ प०, बरसना)	वर्षति	ववर्ष	वर्षिता	वर्षिष्यति	वर्षतु
वे	(१ उ०, बुनना)	वयति-ते	ववौ	वाता	वास्यति	वयतु
वेप्	(१ आ०, काँपना)	वेपते	विवेपे	वेपिता	वेपिष्यते	वेपत
वेष्ट्	(१ आ०, घेरना)	वेष्टते	विवेष्टे	वेष्टिता	वेष्टिष्यते	वेष्टत
व्यथ्	(१ आ०,दु:खित होना)	व्यथते	विव्यथे	व्यथिता	व्यथिष्यते	व्यथ
व्यध्	(४ प०, बींधना)	विध्यति	विव्याध	व्यद्धा	व्यत्स्यति	विध्य
व्रज्	(१ प०, जाना) परि +	व्रजति	वव्राज	व्रजिता	व्रजिष्यति	व्रजतु
शक्	(५ प०, सकना)	शक्नोति	शशाक	शक्ता	शक्ष्यति	शक्नो
शङ्क्	(१आ०,शंका करना)	शङ्कते	शशङ्के	शङ्किता	शङ्किष्यते	शङ्कत
शप्	(१ उ०, शाप देना)	शपति-ते	शशाप	शप्ता	शप्स्यति	शपतु
शम्	(४ प०, शान्त होना)	शाम्यति	शशाम	शमिता	शमिष्यति	शाम्य
शंस्	(१ प०,प्रशंसा करना)प्र+	शंसति	शशंस	शंसिता	शंसिष्यति	शंसतु
शान्	(१ उ०, तेज करना)	शीशांसति	शीशांसाञ्चकार	शीशांसिता	शीशांसिष्यति	शीशांस

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अवन्दत	वन्देत	वन्दिषीष्ट	अवन्दिष्ट	अवन्दिष्यत	वन्दयति	वन्द्यते
अवपत्	वपेत्	उप्यात्	अवाप्सीत्	अवप्स्यत्	वापयति	उप्यते
अवमत्	वमेत्	वम्यात्	अवमीत्	अवमिष्यत्	वमयति	वम्यते
अवसत्	वसेत्	उष्यात्	अवात्सीत्	अवत्स्यत्	वासयति	उष्यते
अवहत्	वहेत्	उह्यात्	अवाक्षीत्	अवक्ष्यत्	वाहयति	उह्यते
अवात्	वायात्	वायात्	अवासीत्	अवास्यत्	वापयति	वायते
अवाञ्छत्	वाञ्छेत्	वाञ्छ्यात्	अवाञ्छीत्	अवाञ्छिष्यत्	वाञ्छयति	वाञ्छ्यते
अवेत्	विद्यात्	विद्यात्	अवेदीत्	अवेदिष्यत्	वेदयति	विद्यते
अविद्यत	विद्येत	वित्सीष्ट	अवित्त	अवेत्स्यत	,	,
अविन्दत्	विन्देत्	विद्यात्	अविदत्	अवेदिष्यत्	,,	
अवेदयत	वेदयेत	वेदयिषीष्ट	अवीविदत	अवेदयिष्यत	,,	वेद्यते
अविशत्	विशेत्	विश्यात्	अविक्षत्	अवेक्ष्यत्	वेशयति	विश्यते
अवीजयत्	वीजयेत्	वीज्यात्	अवीविजत्	अवीजयिष्यत्	वीजयति	वीज्यते
अवृणोत्	वृणुयात्	व्रियात्	अवारीत्	अवरिष्यत्	वारयति	व्रियते
अवृणीत	वृणीत	वृषीष्ट	अवरिष्ट	अवरिष्यत	,,	,
अवारयत्	वारयेत्	वार्यात्	अवीवरत्	अवारयिष्यत्	,,	वार्यते
अवर्जयत्	वर्जयेत्	वर्ज्यात्	अवीवृजत्	अवर्जयिष्यत्	वर्जयति	वर्ज्यते
अवर्तत	वर्तेत	वर्तिषीष्ट	अवर्तिष्ट	अवर्तिष्यत	वर्तयति	वृत्यते
अवर्धत	वर्धेत	वर्धिषीष्ट	अवर्धिष्ट	अवर्धिष्यत	वर्धयति	वृध्यते
अवर्षत्	वर्षेत्	वृष्यात्	अवर्षीत्	अवर्षिष्यत्	वर्षयति	वृष्यते
अवयत्	वयेत्	ऊयात्	अवासीत्	अवास्यत्	वाययति	ऊयते
अवेपत	वेपेत	वेपिषीष्ट	अवेपिष्ट	अवेपिष्यत	वेपयति	वेप्यते
अवेष्टत	वेष्टेत	वेष्टिषीष्ट	अवेष्टिष्ट	अवेष्टिष्यत्	वेष्टयति	वेष्ट्यते
अव्यथत	व्यथेत	व्यथिषीष्ट	अव्यथिष्ट	अव्यथिष्यत	व्यथयति	व्यथ्यते
अविध्यत्	विध्येत्	विध्यात्	अव्यात्सीत्	अव्यत्स्यत्	व्याधयति	विध्यते
अव्रजत्	व्रजेत्	व्रज्यात्	अव्राजीत्	अव्रजिष्यत्	व्राजयति	व्रज्यते
अशक्नोत्	शक्नुयात्	शक्यात्	अशक्त्	अशक्ष्यत्	शाकयति	शक्यते
अशकत	शकेत	शकिषीष्ट	अशकिष्ट	अशकिष्यत	शाकयति	शक्यते
अशपत्	शपेत्	शप्यात्	अशाप्सीत्	अशप्स्यत्	शापयति	शप्यते
अशाम्यत्	शाम्येत्	शम्यात्	अशमत्	अशमिष्यत्	शमयति	शम्यते
अशसत्	शसेत्	शस्यात्	अशसीत्	अशसिष्यत्	शसयति	शस्यते
अशीशासत्	शीशासेत्	शीशास्यात्	अशीशासीत्	अशीशासिष्यत्	शीश्ध।	

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
शास्	(२ प०, शिक्षा देना)	शास्ति	शशास	शासिता	शासिष्यति	शास्तु
शिक्ष्	(१ आ०, सीखना)	शिक्षते	शिशिक्षे	शिक्षिता	शिक्षिष्यते	शिक्षताम्
शी	(२ आ०, सोना)	शेते	शिश्ये	शयिता	शयिष्यते	शेताम्
शुच्	(१ प०, शोक करना)	शोचति	शुशोच	शोचिता	शोचिष्यति	शोचतु
शुध्	(४ प०, शुद्ध होना)	शुध्यति	शुशोध	शोद्धा	शोत्स्यति	शुध्यतु
शुभ्	(१ आ०, चमकना)	शोभते	शुशुभे	शोभिता	शोभिष्यते	शोभताम्
शुष्	(४ प०, सूखना)	शुष्यति	शुशोष	शोष्टा	शोक्ष्यति	शुष्यतु
शॄ	(९ प०, नष्ट करना)	शृणाति	शशार	शरिता	शरिष्यति	शृणातु
शो	(४ प०, छीलना)	श्यति	शशौ	शाता	शास्यति	श्यतु
श्चुत्	(१ प०, चूना)	श्चोतति	चुश्चोत	श्चोतिता	श्चोतिष्यति	श्चोततु
श्रम्	(४ प०, श्रम करना)	श्राम्यति	शश्राम	श्रमिता	श्रमिष्यति	श्राम्यतु
श्रि	(१उ०, आश्रयलेना)	आ + श्रयति-ते	शिश्राय	श्रयिता	श्रयिष्यति	श्रयतु
श्रु	(१ प०, सुनना)	शृणोति	शुश्राव	श्रोता	श्रोष्यति	शृणोतु
श्लाघ्	(१आ०,प्रशंसाकरना)	श्लाघते	शश्लाघे	श्लाघिता	श्लाघिष्यते	श्लाघताम्
श्लिष्	(४ प०, आलिंगन०)	श्लिष्यति	शिश्लेष	श्लेष्टा	श्लेक्ष्यति	श्लिष्यतु
श्वस्	(२ प०, साँस लेना)	श्वसिति	शश्वास	श्वसिता	श्वसिष्यति	श्वसितु
ष्ठिव्	(१ प०, थूकना)	नि + ष्ठीवति	तिष्ठेव	ष्ठेविता	ष्ठेविष्यति	ष्ठीवतु
सञ्ज्	(१ प०, मिलना)	सजति	ससञ्ज	सङ्क्ता	सङ्क्ष्यति	सजतु
सद्	(१ प०, बैठना)	नि + षीदति	ससाद	सत्ता	सत्स्यति	सीदतु
सह्	(१ आ०, सहना)	सहते	सेहे	सहिता	सहिष्यते	सहताम्
साध्	(५ प०, पूरा करना)	साध्नोति	ससाध	साद्धा	सात्स्यति	साध्नोतु
सान्त्व्	(१०उ०,धैर्य बँधाना)	सान्त्वयति	सान्त्वयाञ्चकार	सान्त्वयिता	सान्त्वयिष्यति	सान्त्वयतु
सि	(५ उ०, बाँधना)	सिनोति	सिषाय	सेता	सेष्यति	सिनोतु
सिच्	(६ उ०, सींचना)	सिञ्चति-ते	सिषेच	सेक्ता	सेक्ष्यति	सिंचतु
सिध्	(४ प०, पूरा होना)	सिध्यति	सिषेध	सेद्धा	सेत्स्यति	सिध्यतु
सिव्	(४ प०, सीना)	सीव्यति	सिषेव	सेविता	सेविष्यति	सीव्यतु
सु	(५ उ०, निचोड़ना)	सुनोति	सुषाव	सोता	सोष्यति	सुनोतु
सू	(२ आ०, जन्म देना)	सूते	सुषुवे	सविता	सविष्यते	सूताम्
सूच्	(१० उ०, सूचना देना)	सूचयति	सूचयाञ्चकार	सूचयिता	सूचयिष्यति	सूचयतु
सूत्र्	(१०उ०, संक्षिप्तकरना)	सूत्रयति	सूत्रयाञ्चकार	सूत्रयिता	सूत्रयिष्यति	सूत्रयतु
सृ	(१ प०, सरकना)	सरति	ससार	सर्ता	सरिष्यति	सरतु
[illegible]	(६ प० बनाना)	सृजति	ससर्ज	स्रष्टा	स्रक्ष्यति	सृजतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अशात्	शिष्यात्	शिष्यात्	अशिषत्	अशासिष्यत्	शासयति	शिष्यते
अशिक्षत	शिक्षेत	शिक्षिषीष्ट	अशिक्षिष्ट	अशिक्षिष्यत	शिक्षयति	शिक्ष्यते
अशेत	शयीत	शयिषीष्ट	अशयिष्ट	अशयिष्यत	शाययति	शय्यते
अशोचत्	शोचेत्	शुच्यात्	अशोचीत्	अशोचिष्यत्	शोचयति	शुच्यते
अशुध्यत्	शुध्येत्	शुध्यात्	अशुधत्	अशोत्स्यत्	शोधयति	शुध्यते
अशोभत	शोभेत	शोभिषीष्ट	अशोभिष्ट	अशोभिष्यत	शोभयति	शुभ्यते
अशुष्यत्	शुष्येत्	शुष्यात्	अशुषत्	अशोक्ष्यत्	शोषयति	शुष्यते
अशृणात्	शृणीयात्	शीर्यात्	अशारीत्	अशरिष्यत्	शारयति	शीर्यते
अस्यत्	श्येत्	शायात्	अशासीत्	अशास्यत्	शाययति	शायते
अश्चोतत्	श्चोतेत्	श्चुत्यात्	अश्चोतीत्	अश्चोतिष्यत्	श्चोतयति	श्चुत्यते
अश्राम्यत्	श्राम्येत्	श्रम्यात्	अश्रमत्	अश्रमिष्यत्	श्रमयति	श्रम्यते
अश्रयत्	श्रयेत्	श्रीयात्	अशिश्रियत्	अश्रयिष्यत्	श्राययति	श्रीयते
अशृणोत्	शृणुयात्	श्रूयात्	अश्रौषीत्	अश्रोष्यत्	श्रावयति	श्रूयते
अश्लाघत	श्लाघेत	श्लाघिषीष्ट	अश्लाघिष्ट	अश्लाघिष्यत	श्लाघयति	श्लाघ्यते
अश्लिष्यत्	श्लिष्येत्	श्लिष्यात्	अश्लिक्षत्	अश्लेक्ष्यत्	श्लेषयति	श्लिष्यते
अश्वसीत्	श्वस्यात्	श्वस्यात्	अश्वसीत्	अश्वसिष्यत्	श्वासयति	श्वस्यते
अष्ठीवत्	ष्ठीवेत्	ष्ठीव्यात्	अष्ठेवीत्	अष्ठेविष्यत्	ष्ठेवयति	ष्ठीव्यते
असजत्	सजेत्	सज्यात्	असाङ्क्षीत्	असङ्क्ष्यत्	सञ्जयति	सज्यते
असीदत्	सीदेत्	सद्यात्	असदत्	असत्स्यत्	सादयति	सद्यते
असहत	सहेत	सहिषीष्ट	असहिष्ट	असहिष्यत	साहयति	सह्यते
असाध्नोत्	साध्नुयात्	साध्यात्	असात्सीत्	असात्स्यत्	साधयति	साध्यते
असान्त्वयत्	सान्त्वयेत्	सान्त्व्यात्	अससान्त्वत्	असान्त्वयिष्यत्	सान्त्वयति	सान्त्व्यते
असिनोत्	सिनुयात्	सीयात्	असैषीत्	असेष्यत्	साययति	सीयते
असिञ्चत्	सिंचेत्	सिच्यात्	असिचत्	असेक्ष्यत्	सेचयति	सिच्यते
असिध्यत्	सिध्येत्	सिध्यात्	असिधत्	असेत्स्यत्	साधयति	सिध्यते
असीव्यत्	सीव्येत्	सीव्यात्	असेवीत्	असेविष्यत्	सेवयति	सीव्यते
असुनोत्	सुनुयात्	सूयात्	असावीत्	असोष्यत्	सावयति	सूयते
असूत	सुवीत	सविषीष्ट	असविष्ट	असविष्यत	,,	,,
असूचयत्	सूचयेत्	सूच्यात्	असूसुचत्	असूचयिष्यत्	सूचयति	सूच्यते
असूत्रयत्	सूत्रयेत्	सूत्र्यात्	असुसूत्रत्	असूत्रयिष्यत्	सूत्रयति	सूत्र्यते
असरत्	सरेत्	स्रियात्	असार्षीत्	असरिष्यत्	सारयति	स्रियते
असृजत्	सृजेत	सृज्यात	अस्राक्षीत	अस्रक्ष्यत	सर्जयति	सृज्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
सेव्	(१आ०, सेवा करना)	सेवते	सिषेवे	सेविता	सेविष्यते	सेवताम्
सो	(४ प०, नष्ट होना)	अव + स्यति	ससौ	साता	सास्यति	स्यतु
स्खल्	(१ प०, गिरना)	स्खलति	चस्खाल	स्खलिता	स्खलिष्यति	स्खलतु
स्तु	(२ उ०, स्तुति करना)	स्तौति	तुष्टाव	स्तोता	स्तोष्यति	स्तौतु
स्तृ	(९ उ०, ढकना, फैलाना)	स्तृणाति	तस्तार	स्तरिता	स्तरिष्यति	स्तृणातु
स्था	(१ प०, रुकना)	तिष्ठति	तस्थौ	स्थाता	स्थास्यति	तिष्ठतु
स्ना	(२ प०, नहाना)	स्नाति	सस्नौ	स्नाता	स्नास्यति	स्नातु
स्निह्	(४ प०, स्नेह करना)	स्निह्यति	सिष्णेह	स्नेहिता	स्नेहिष्यति	स्निह्यतु
स्पन्द्	(१ आ०, फड़कना)	स्पन्दते	पस्पन्दे	स्पन्दिता	स्पन्दिष्यते	स्पन्दताम्
स्पर्ध्	(१ आ०, स्पर्धा करना)	स्पर्धते	पस्पर्धे	स्पर्धिता	स्पर्धिष्यते	स्पर्धताम्
स्पृश्	(६ प०, छूना)	स्पृशति	पस्पर्श	स्प्रष्टा	स्प्रक्ष्यति	स्पृशतु
स्पृह्	(१० उ०, चाहना)	स्पृहयति	स्पृहयाचकार	स्पृहयिता	स्पृहयिष्यति	स्पृहयतु
स्फुट्	(६ प०, खिलना)	स्फुटति	पुस्फोट	स्फुटिता	स्फुटिष्यति	स्फुटतु
स्फुर्	(६ प०, फड़कना)	स्फुरति	पुस्फोर	स्फुरिता	स्फुरिष्यति	स्फुरतु
स्मि	(१ आ०, मुस्कराना)	स्मयते	सिस्मिये	स्मेता	स्मेष्यते	स्मयताम्
स्मृ	(१ प०, सोचना)	स्मरति	सस्मार	स्मर्ता	स्मरिष्यति	स्मरतु
स्यन्द्	(१ आ०, बहना)	स्यन्दते	सस्यन्दे	स्यन्दिता	स्यन्दिष्यते	स्यन्दताम्
स्रस्	(१ आ०, सरकना)	स्रसते	सस्रसे	स्रसिता	स्रसिष्यते	स्रसताम्
स्रु	(१ प०, चूना, निकलना)	स्रवति	सुस्राव	स्रोता	स्रोष्यति	स्रवतु
स्वद्	(१ उ०, स्वाद लेना)	आ+स्वादयति	स्वादयाचकार	स्वादयिता	स्वादयिष्यति	स्वादयतु
स्वप्	(२ प०, सोना)	स्वपिति	सुष्वाप	स्वप्ता	स्वप्स्यति	स्वपितु
हन्	(२ प०, मारना)	हन्ति	जघान	हन्ता	हनिष्यति	हन्तु
हस्	(१ प०, हँसना)	हसति	जहास	हसिता	हसिष्यति	हसतु
हा	(३ प०, छोड़ना)	जहाति	जहौ	हाता	हास्यति	जहातु
हिंस्	(७ प०, हिंसा करना)	हिनस्ति	जिहिंस	हिंसिता	हिंसिष्यति	हिनस्तु
हु	(३ प०, यज्ञ करना)	जुहोति	जुहाव	होता	होष्यति	जुहोतु
हृ	(१ उ०, ले जाना, चुराना)	हरति-ते	जहार	हर्ता	हरिष्यति	हरतु
हृष्	(४ प०, खुश होना)	हृष्यति	जहर्ष	हर्षिता	हर्षिष्यति	हृष्यतु
ह्नु	(२ आ०, छिपाना)	अप + ह्नुते	जुह्नुवे	ह्नोता	ह्नोष्यते	ह्नुताम्
ह्रस्	(१ प०, कम होना)	ह्रसति	जह्रास	ह्रसिता	ह्रसिष्यति	ह्रसतु
ह्री	(३ प०, लज्जा करना)	जिह्रेति	जिह्राय	ह्रेता	ह्रेष्यति	जिह्रेतु
ह्वे	(१ उ० बुलाना)	आ + आह्वयति	आजुहाव	आह्वाता	आह्वास्यति	आह्वयतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
असेवत	सेवेत	सेविषीष्ट	असेविष्ट	असेविष्यत	सेवयति	सेव्यते
अस्यत्	स्येत्	सेयात्	असासीत्	असास्यत्	साययति	सीयते
अस्खलत्	स्खलेत्	स्खल्यात्	अस्खालीत्	अस्खलिष्यत्	स्खल्यति	स्खल्यते
अस्तौत्	स्तुयात्	स्तूयात्	अस्तावीत्	अस्तोष्यत्	स्तावयति	स्तूयते
अस्तृणात्	स्तृणीयात्	स्तीर्यात्	अस्तारीत्	अस्तरिष्यत्	स्तारयति	स्तीर्यते
अतिष्ठत्	तिष्ठेत्	स्थेयात्	अस्थात्	अस्थास्यत्	स्थापयति	स्थीयते
अस्नात्	स्नायात्	स्नायात्	अस्नासीत्	अस्नास्यत्	स्नपयति	स्नायते
अस्निह्यत्	स्निह्येत्	स्निह्यात्	अस्निहत्	अस्नेहिष्यत्	स्नेहयति	स्निह्यते
अस्पन्दत	स्पन्देत	स्पन्दिषीष्ट	अस्पन्दिष्ट	अस्पन्दिष्यत	स्पन्दयति	स्पन्द्यते
अस्पर्धत	स्पर्धेत	स्पर्धिषीष्ट	अस्पर्धिष्ट	अस्पर्धिष्यत	स्पर्धयति	स्पर्ध्यते
अस्पृशत्	स्पृशेत्	स्पृश्यात्	अस्प्राक्षीत्	अस्प्रक्ष्यत्	स्पर्शयति	स्पृश्यते
अस्पृहयत्	स्पृहयेत्	स्पृह्यात्	अपस्पृहत्	अस्पृहयिष्यत्	स्पृहयति	स्पृह्यते
अस्फुटत्	स्फुटेत्	स्फुट्यात्	अस्फुटीत्	अस्फुटिष्यत्	स्फोटयति	स्फुट्यते
अस्फुरत्	स्फुरेत्	स्फूर्यात्	अस्फुरीत्	अस्फुरिष्यत्	स्फारयति	स्फूर्यते
अस्मयत	स्मयेत	स्मेषीष्ट	अस्मेष्ट	अस्मेष्यत	स्माययति	स्मायते
अस्मरत्	स्मरेत्	स्मर्यात्	अस्मार्षीत्	अस्मरिष्यत्	स्मारयति	स्मर्यते
अस्यन्दत	स्यन्देत	स्यन्दिषीष्ट	अस्यन्दिष्ट	अस्यन्दिष्यत	स्यन्दयति	स्यद्यते
अस्रसत	स्रसेत	स्रसिषीष्ट	अस्रसिष्ट	अस्रसिष्यत	स्रसयति	स्रस्यते
अस्रवत्	स्रवेत्	स्रूयात्	असुस्रुवत्	अस्रोष्यत्	स्रावयति	स्रूयते
अस्वादयत्	स्वादयेत्	स्वाद्यात्	असिष्वदत्	अस्वादयिष्यत्	स्वादयति	स्वाद्यते
अस्वपीत्	स्वप्यात्	सुप्यात्	अस्वाप्सीत्	अस्वप्स्यत्	स्वापयति	सुप्यते
अहन्	हन्यात्	वध्यात्	अवधीत्	अहनिष्यत्	घातयति	हन्यते
अहसत्	हसेत्	हस्यात्	अहसीत्	अहसिष्यत्	हासयति	हस्यते
अजहात्	जह्यात्	हेयात्	अहासीत्	अहास्यत्	हापयति	हीयते
अहिनत्	हिंस्यात्	हिस्यात्	अहिंसीत्	अहिंसिष्यत्	हिंसयति	हिंस्यते
अजुहोत्	जुहुयात्	हूयात्	अहौषीत्	अहोष्यत्	हावयति	हूयते
अहरत्	हरेत्	ह्रियात्	अहार्षीत्	अहरिष्यत्	हारयति	ह्रियते
अहृष्यत्	हृष्येत्	हृष्यात्	अहृषत्	अहर्षिष्यत्	हर्षयति	हृष्यते
अह्नुत	ह्नुवीत	ह्नोषीष्ट	अह्नोष्ट	अह्नोष्यत	ह्नावयति	ह्नयते
अह्रसत्	ह्रसेत्	ह्रस्यात्	अह्रासीत्	अह्रसिष्यत्	ह्रासयति	ह्रस्यते
अजिह्रेत्	जिह्रीयात्	ह्रीयात्	अह्रैषीत्	अह्रेष्यत्	ह्रेपयति	ह्रीयते
आह्वयत्	आह्वयेत्	आहूयात्	आह्वत्	आह्वास्यत्	आह्वाययति	आहूयते

(१) अकर्मक धातुएँ

लज्जासत्तास्थितिजागरण वृद्धिक्षयभयजीवतिमरणम् ।
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगण तमकर्मकमाहु. ॥

इन अर्थों वाली धातुएँ अकर्मक (कर्म-रहित) होती हैं·—लज्जा, होना, रुकना या बैठना, जागना, बढना, घटना, डरना, जीना, मरना, सोना, खेलना, अच्छा लगना, चमकना ।

(२) अनिट् धातुएँ (जिनमे बीच में इ नहीं लगता)

ऊ ऋदन्त औ' शी श्रि डी को छोडकर एकाच् सब ।
शक् पच् वच मुच् सिच् प्रच्छ् त्यज् भज् , भुज् यज सृज् मस्ज युज ॥
अद् पद्य खिद् छिद् विद्य तुद् नुद् भिद् सद क्रुध् क्षुध् बुध ।
बन्ध् युध् रुध् साध् व्यध् शुध् , सिध् मन्य हन् क्षिप् आप् तप ॥ १ ॥
तृप्य दृप् लिप् लुप् वप स्वप् , शप् सृप रभ् लभ् गम ।
नम् यम् रम क्रुश् दश् दिश् दृश् , मृश् विश स्पृश् पुष्य तुष ॥
कृष् तुष् द्विष क्लिष् शुष्य शिष् वस् , दह् दिह् लिह औ' रुह् वह ।
धातु ये सब अनिट् हैं, परिगणन इनका है यह ॥ २ ॥

सूचना—अन्त्याक्षरो के क्रम से ये धातुएँ पद्यबद्ध है । दिवादिगणी धातुओ में, इस प्रकार की अन्य धातुओं से अन्तर के लिए, अन्त मे य लगा है । पहले क् अन्तवाली शक् धातु, बाद में च् अन्तवाली, इसी प्रकार क्रमश· धातुएँ हैं । अजन्त धातुओ में ऊकारान्त और दीर्घ ऋकारान्त तथा शी श्रि डी धातु सेट् है, शेष अनिट् है । जैसे—चि, जि, कृ, हृ, धृ, भृ आदि । केवल विशेष प्रचलित धातुओं का ही सग्रह है । अप्रचलित ३० धातुओं का सग्रह नही है । सेट् धातुओ में धातु और प्रत्यय के बीच में इ लगता है । इट् का अर्थ है 'इ' । सेट् का अर्थ है, स + इट् अर्थात् 'इ' वाली । इसी प्रकार अनिट् का अर्थ है. अन् + इट् अर्थात् 'इ-नहीं' वाली धातुएँ ।

(५) प्रत्यय-विचार

(१) क्त (२) क्तवतु प्रत्यय (देखो अभ्यास ३७, ३८, ३९)

सूचना—क्त और क्तवतु प्रत्यय भूतकाल में होते हैं। क्त का त और क्तवतु का तवत् शेष रहता है। क्त कर्मवाच्य या भाववाच्य में होता है, क्तवतु कर्तृवाच्य में। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होती है। सम्प्रसारण होता है। अन्य नियमों के लिए देखो अभ्यास ३७-३९। क्त प्रत्ययान्त के रूप पुंलिंग में रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत् और नपुंसकलिंग में गृहवत् चलेंगे। यहाँ केवल पुंलिंग के ही रूप दिए गए हैं। क्त-प्रत्ययान्त का क्तवतु-प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल प्रकार यह है कि क्त-प्रत्ययान्त के बाद में 'वत्' और जोड़ दें। अभ्यास ३९ में दिए नियमानुसार तीनों लिंगों में रूप चलाएँ। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अद्	जग्ध.	कृष्	कृष्ट.	घ्रा	घ्रात. घ्राण.	त्यज्	त्यक्त.
	(अन्नम्)	कॄ	कीर्णः			त्रै	त्रात.
अधि+इ	अधीत.	क्रन्द्	क्रन्दित.	चर्	चरित	दश्	दष्ट
अर्च्	अर्चित	क्रम्	क्रान्तः	चल्	चलित	दण्ड्	दण्डितः
अस् (२प)	भूतः	क्री	क्रीत.	चि	चित	दम्	दान्त.
आप्	आप्त	क्रीड्	क्रीडित.	चिन्त्	चिन्तितः	दय्	दयित·
आ+रभ्	आरब्ध.	क्रुध्	क्रुद्ध.	चुर्	चोरित	दह्	दग्ध
आलम्ब्	आलम्बित.	क्षि	क्षीण.	चेष्ट्	चेष्टितः	दा	दत्त.
आ+ह्वे	आहूत	क्षिप्	क्षिप्त	छिद्	छिन्न.	दिव्	द्यून., द्यूत
इ	इत.	क्षुभ्	क्षुब्ध.	जन्	जात	दिश्	दिष्ट
इष्	इष्ट.	खन्	खात	जि	जित.	दीप्	दीप्त.
ईक्ष्	ईक्षित·	खाद्	खादित	जीव्	जीवित	दुह्	दुग्ध
उत्+डी	उड्डीन	गण्	गणित.	जॄ	जीर्ण	दृश्	दृष्ट.
कथ्	कथित	गम्	गत	ज्ञा	ज्ञात.	दो (दा)	दितः
कम्	कान्त.	गर्ज्	गर्जित	ज्वल्	ज्वलित	द्युत्	द्योतित.
कम्प्	कम्पित	गॄ	गीर्ण	तन्	तत	धा	हितः
कुप्	कुपित	गै (गा)	गीत	तप्	तप्त	धाव्	धावितः
कूर्द्	कूर्दित	ग्रस्	ग्रस्त.	तुष्	तुष्ट	धृ	धृत
कृ	कृत·	ग्रह्	गृहीत.	तृप्	तृप्त.	ध्मा	ध्मात

व्ये	व्यात.
व्यस्	व्यस्त
नम्	नत.
नश्	नष्ट
निन्द्	निन्दित
नी	नीत
नृत्	नृत्त.
पच्	पक्व.
पठ्	पठित.
पत्	पतित.
पद्	पन्न.
पलाय्	पलायित
पा (१ प०)	पीतः
पाल्	पालित
पुष्	पुष्ट
पूज्	पूजित·
पॄ	पूर्ण.
प्रच्छ्	पृष्ट
प्रथ्	प्रथित
प्र + हि	प्रहित.
प्रेर्	प्रेरित
बन्ध्	बद्ध
बुध्	बुद्ध
ब्रू	उक्तः
भक्ष्	भक्षित
भज्	भक्त.
भञ्ज्	भग्न.
भण्	भणित
भाष्	भाषित.
भिद्	भिन्नः
भी	भीत.
भुज्	भुक्त.
भू	भूत.
भृ	भृत
भ्रम्	भ्रान्त
मद्	मत्त
मन्	मत
मन्थ्	मन्थित
मा	मित.
मिल्	मिलित
मुच्	मुक्त
मुद्	मुदित.
मुह्	मुग्ध, मूढ.
मूर्च्छ्	मूर्च्छित.
मृज्	मृष्ट
यज्	इष्ट·
यत्	यतित.
यम्	यत·
या	यात.
याच्	याचित
युज्	युक्तः
युध्	युद्ध.
रक्ष्	रक्षित
रच्	रचित
रञ्ज्	रक्त
रम्	रत
रुच्	रुचित.
रुद्	रुदित.
रुध्	रुद्ध
रुह्	रूढः
लभ्	लब्ध.
लप	लपितः
लिख्	लिखित·
लिह्	लीढ.
लुभ्	लुब्ध.
वच् (ब्रू)	उक्त
वद्	उदित·
वन्द्	वन्दित·
वप्	उप्त.
वस्	उषित
वह्	ऊढ.
वा	वात.
वि + कस्	विकसित
विद् (२प.)	विदित.
विद् (१०)	वेदित
विश्	विष्ट.
वृत्	वृत्तः
वृध्	वृद्ध·
वे	उत
व्यथ्	व्यथित
व्यध्	विद्ध.
शक्	शकित
शक्	शक्त.
शप्	शप्त
शम्	शान्त.
शास्	शिष्ट
शिक्ष्	शिक्षित
शी	शयित.
शुच्	शुचित.
शुभ्	शोभित.
शुष्	शुष्क.
शॄ	शीर्ण.
श्रि	श्रितः
श्रु	श्रुत.
श्लिष्	श्लिष्टः
सद्	सन्न.
सन्	सात.
सह्	सोढ.
साध्	साधित.
सिच्	सिक्त.
सिध्	सिद्ध.
सिव्	स्यूत
सृज्	सृष्ट
सेव्	सेवितः
सो (सा)	सित.
स्तु	स्तुत.
स्था	स्थित
स्ना	स्नात.
स्निह्	स्निग्ध.
स्पृश्	स्पृष्ट
स्वप्	सुप्त.
स्वाद्	स्वादित.
स्विद्	स्विन्न.
हन्	हतः
हस्	हसितः
हा (३प०)	हीन.
हा (३आ०)	हानः
हिंस्	हिंसित.
हु	हुत,
हृ	हृत
हृष्	हृष्ट.
ह्रस्	ह्रसितः
ह्री	ह्रीत., ह्रीणः
ह्वे	हूत.

(२) शतृ प्रत्यय (देखो अभ्यास ४०)

सूचना—परस्मैपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शतृ होता है। शतृ का अत् शेष रहता है। पुलिंग में पठत् के तुल्य, स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुंसकलिंग में जगत् के तुल्य रूप चलेंगे। यहाँ पर केवल पुलिंग के रूप दिए गए हैं। रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४०। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अदन्	चल्	चलन्	पत्	पतन्	व्यध्	विध्यन्
अर्च्	अर्चन्	चि	चिन्वन्	पा (१ प०)	पिबन्	शक्	शक्नुवन्
अस् (२ प०)	सन्	छिद्	छिन्दन्	पाल्	पालयन्	शप्	शपन्
आप्	आप्नुवन्	जप्	जपन्	पूज्	पूजयन्	शम्	शाम्यन्
आ + रुह्	आरोहन्	जि	जयन्	प्रच्छ्	पृच्छन्	शुष्	शुष्यन्
आ + ह्वे	आह्वयन्	जीव्	जीवन्	प्रेर्	प्रेरयन्	श्रि	श्रयन्
इ	यन्	ज्वल्	ज्वलन्	बन्ध्	बध्नन्	श्रु	शृण्वन्
इष्	इच्छन्	तप्	तपन्	भक्ष्	भक्षयन्	सद्	सीदन्
कुप्	कुप्यन्	तुद्	तुदन्	भज्	भजन्	सिच्	सिञ्चन्
कृष्	कर्षन्	तुष्	तुष्यन्	भिद्	भिन्दन्	सिव्	सीव्यन्
कॄ	किरन्	तॄ	तरन्	भृ	भरन्	सृ	सरन्
क्रन्द्	क्रन्दन्	त्यज्	त्यजन्	भू	भवन्	सृज्	सृजन्
क्रम्	क्राम्यन्	दण्ड्	दण्डयन्	भ्रम्	भ्रमन्, भ्राम्यन्	सृप्	सर्पन्
क्रीड्	क्रीडन्	दह्	दहन्			स्तु	स्तुवन्
क्रुध्	क्रुध्यन्	दिव्	दीव्यन्	मिल्	मिलन्	स्था	तिष्ठन्
क्षम्	क्षाम्यन्	दिश्	दिशन्	रक्ष्	रक्षन्	स्पृश्	स्पृशन्
क्षिप्	क्षिपन्	दुह्	दुहन्	रच्	रचयन्	स्मृ	स्मरन्
खन्	खनन्	दृश्	पश्यन्	रुद्	रुदन्	स्वप्	स्वपन्
खाद्	खादन्	धाव्	धावन्	लष्	लषन्	हन्	हनन्
गण्	गणयन्	धृ	धरन्	लिख्	लिखन्	हस्	हसन्
गम्	गच्छन्	ध्यै	ध्यायन्	लिह्	लिहन्	हा (३ प०)	जहत्
गर्ज्	गर्जन्	नम्	नमन्	वद्	वदन्	हिंस्	हिंसन्
गॄ	गिरन्	नश्	नश्यन्	वस्	वसन्	हु	जुह्वत्
गै	गायन्	निन्द्	निन्दन्	वह्	वहन्	हृ	हरन्
घ्रा	जिघ्रन्	नृत्	नृत्यन्	विश्	विशन्	हृष्	हृष्यन्
चर्	चरन्	पठ्	पठन्	वृष्	वर्षन्	ह्वे	ह्वयन्

(४) शानच् प्रत्यय

(देखो अभ्यास ४१)

सूचना—आत्मनेपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शानच् होता है। उभयपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शतृ और शानच् दोनों होते हैं। शानच् का आन शेष रहता है। शानच् प्रत्ययान्त के रूप पु० में रामवत्, स्त्री० में आ लगाकर रमावत् और नपु० में गृहवत् चलेंगे। यहाँ पर पुंलिंग के ही रूप दिए हैं। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

आत्मनेपदी धातुएँ				उभयपदी धातुएँ		
अधि + ई	अधीयान.	मन्	मन्यमानः	कथ्	कथयन्	कथयमानः
आ + रम्	आरभमाणः	मुद्	मोदमानः	कृ	कुर्वन्	कुर्वाणः
आ+लम्ब्	आलम्बमानः	मृ	म्रियमाणः	क्री	क्रीणन्	क्रीणानः
आस्	आसीन.	यत्	यतमान.	ग्रह्	गृह्णन्	गृह्णान.
ईक्ष्	ईक्षमाण.	याच्	याचमानः	चि	चिन्वन्	चिन्वानः
ईह्	ईहमानः	युध्	युध्यमानः	चिन्त्	चिन्तयन्	चिन्तयमानः
उद् + डी	उड्डयमानः	रुच्	रोचमानः	चुर्	चोरयन्	चोरयमाणः
कम्प्	कम्पमानः	लभ्	लभमानः	ज्ञा	जानन्	जानानः
कूर्द्	कूर्दमानः	वन्द्	वन्दमानः	तन्	तन्वन्	तन्वानः
गाह्	गाहमानः	वि+राज्	विराजमानः	दा	ददत्	ददानः
ग्रस्	ग्रसमानः	वृत्	वर्तमान.	धा	दधत्	दधान.
चेष्ट्	चेष्टमानः	वृध्	वर्धमानः	नी	नयन्	नयमानः
जन्	जायमान.	व्यथ्	व्यथमानः	पच्	पचन्	पचमानः
त्रै	त्रायमाणः	शक्	शकमानः	ब्रू	ब्रुवन्	ब्रुवाणः
त्वर्	त्वरमाण.	भिक्ष्	भिक्षमाणः	भुज्	भुञ्जन्	भुञ्जानः
दय्	दयमानः	शी	शयान.	मुच्	मुञ्चन्	मुञ्चमानः
द्युत्	द्योतमानः	शुच्	शोचमानः	यज्	यजन्	यजमानः
ध्वंस्	ध्वंसमानः	शुभ्	शोभमानः	युज्	युञ्जन्	युञ्जानः
पलाय्	पलायमानः	श्लाघ्	श्लाघमानः	रुध्	रुन्धन्	रुन्धानः
प्रथ्	प्रथमान.	सं + पद्	सम्पद्यमानः	वह्	वहन्	वहमानः
बाध्	बाधमान.	सह्	सहमानः	श्रि	श्रयन्	श्रयमाणः
भास्	भासमानः	सेव्	सेवमान.	सु	सुन्वन्	सुन्वानः
भिक्ष्	भिक्षमाणः	स्मि	स्मयमानः	हृ	हरन्	हरमाणः

(५) तुमुन्, (६) तव्यत्, (७) तृच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४२, ४५, ४८)

सूचना—(क) तुमुन् प्रत्यय 'को' 'के लिए' अर्थ मे होता है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। तुमुन्-प्रत्ययान्त अव्यय होता है, अतः रूप नहीं चलते। धातु को गुण होता है। विशेष नियमो के लिए देखें अभ्यास ४२। **(ख)** तव्यत् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दे। तव्यत् प्रत्यय 'चाहिये' अर्थ में होता है। तव्यत् का तव्य शेष रहता है। पु० में तव्य-प्रत्ययान्त के रूप रामवत्, स्त्री० मे आ लगाकर रमावत्, नपु० में गृहवत् चलेंगे। विशेष नियमो के लिए देखें अभ्यास ४५। **(ग)** तृच् प्रत्यय कर्ता या 'करने वाला' अर्थ में होता है। तृच् का तृ शेष रहता है। तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप मे तुम् के स्थान पर तृ लगा दें। तृच् प्रत्ययान्त के रूप पु० में कर्तृ के तुल्य, स्त्री० में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपु० मे कर्तृ नपु० के तुल्य चलेंगे। तृच् प्रत्यय के विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४८। उदाहरणार्थ—तुम्, तव्य, तृ लगाकर इन धातुओं के ये रूप होंगे। कृ-कर्तुम्, कर्तव्य, कर्तृ। हृ-हर्तुम्, हर्तव्य, हर्तृ। लिख्-लेखितुम्, लेखितव्य, लेखितृ। तव्य और तृच् में तुम् के तुल्य ही सन्धि के कार्य होंगे। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अद्	अत्तुम्	ईक्ष्	ईक्षितुम्	क्री	क्रेतुम्	ग्रस्	ग्रसितुम्
अधि + इ	अध्येतुम्	कथ्	कथयितुम्	क्रीड्	क्रीडितुम्	ग्रह्	ग्रहीतुम्
अर्च्	अर्चितुम्	कम्	कमितुम्	क्रुध्	क्रोद्धुम्	घ्रा	घ्रातुम्
अस्(२प)	भवितुम्	कम्प्	कम्पितुम्	क्षम्	क्षमितुम्	चर्	चरितुम्
आप्	आप्तुम्	कुप्	कोपितुम्	क्षिप्	क्षेप्तुम्	चल्	चलितुम्
आ+रभ्	आरब्धुम्	कूर्द्	कूर्दितुम्	खन्	खनितुम्	चि	चेतुम्
आ+रुह्	आरोढुम्	कृ	कर्तुम्	खाद्	खादितुम्	चिन्त्	चिन्तयितुम्
आ+लप्	आलपितुम्	कृप्	कल्पितुम्	गण्	गणयितुम्	चुर्	चोरयितुम्
आस्	आसितुम्	कृष्	कर्ष्टुम्	गम्	गन्तुम्	चेष्ट्	चेष्टितुम्
आ+ह्वे	आह्वातुम्	कॄ	करितुम्	गर्ज्	गर्जितुम्	छिद्	छेत्तुम्
इ	एतुम्	क्रन्द्	क्रन्दितुम्	गॄ	गरितुम्	जन्	जनितुम्
इष्	एषितुम्	क्रम्	क्रमितुम्	गै (गा)	गातुम्	जप्	जपितुम्

जि	जेतुम्	पद्	पत्तुम्	याच्	याचितुम्	शप्	शप्तुम्
जीव्	जीवितुम्	पलाय्	पलायितुम्	युज्	योक्तुम्	शम्	शमितुम्
ज्ञा	ज्ञातुम्	पा (१,२प)	पातुम्	युध्	योद्धुम्	शिक्ष्	शिक्षितुम्
ज्वल्	ज्वलितुम्	पाल्	पालयितुम्	रक्ष्	रक्षितुम्	शी	शयितुम्
डी	डयितुम्	पुष्	पोषितुम्	रच्	रचयितुम्	शुच्	शोचितुम्
तप्	तप्तुम्	पूज्	पूजयितुम्	रम्	रन्तुम्	शुभ्	शोभितुम्
तृप्	तर्पितुम्	प्रच्छ्	प्रष्टुम्	राज्	राजितुम्	श्रि	श्रयितुम्
तृ	तरितुम्	प्रेर्	प्रेरयितुम्	रुच्	रोचितुम्	श्रु	श्रोतुम्
त्यज्	त्यक्तुम्	बन्ध्	बन्द्धुम्	रुद्	रोदितुम्	श्लिष्	श्लेष्टुम्
त्रै	त्रातुम्	बाध्	बाधितुम्	रुध्	रोद्धुम्	सह्	सोढुम्
दश्	दष्टुम्	बुध्	बोद्धुम्	लभ्	लब्धुम्	सिच्	सेक्तुम्
दह्	दग्धुम्	ब्रू	वक्तुम्	लम्ब्	लम्बितुम्	सिध्	सेद्धुम्
दा	दातुम्	भक्ष्	भक्षयितुम्	लष्	लषितुम्	सिव्	सेवितुम्
दिश्	देष्टुम्	भज्	भक्तुम्	लिख्	लेखितुम्	सु	सोतुम्
दीक्ष्	दीक्षितुम्	भाष्	भाषितुम्	लिह्	लेढुम्	सृ	सर्तुम्
दुह्	दोग्धुम्	भिद्	भेत्तुम्	लुभ्	लोभितुम्	सृज्	स्रष्टुम्
द्युत्	द्योतितुम्	भी	भेतुम्	वच्	वक्तुम्	सृप्	सर्प्तुम्
द्रुह्	द्रोग्धुम्	भुज्	भोक्तुम्	वद्	वदितुम्	सेव्	सेवितुम्
धा	धातुम्	भू	भवितुम्	वन्द्	वन्दितुम्	स्तु	स्तोतुम्
धाव्	धावितुम्	भृ	भर्तुम्	वप्	वप्तुम्	स्था	स्थातुम्
धृ	धर्तुम्	भ्रम्	भ्रमितुम्	वस्	वस्तुम्	स्ना	स्नातुम्
ध्यै	ध्यातुम्	मन्	मन्तुम्	वह्	वोढुम्	स्पर्ध्	स्पर्धितुम्
ध्वस्	ध्वसितुम्	मा	मातुम्	विद्(४,६,७)	वेत्तुम्	स्पृश्	स्प्रष्टुम्
नम्	नन्तुम्	मिल्	मेलितुम्	विश्	वेष्टुम्	स्मृ	स्मर्तुम्
नश्	नशितुम्	मुच्	मोक्तुम्	वृ(१०)	वारयितुम्	हन्	हन्तुम्
निन्द्	निन्दितुम्	मुद्	मोदितुम्	वृत्	वर्तितुम्	हस्	हसितुम्
नी	नेतुम्	मृ	मर्तुम्	वृध्	वर्धितुम्	हा	हातुम्
नृत्	नर्तितुम्	यज्	यष्टुम्	वृष्	वर्षितुम्	हिंस्	हिंसितुम्
पच्	पक्तुम्	यत्	यतितुम्	वे	वातुम्	हु	होतुम्
पठ्	पठितुम्	यम्	यन्तुम्	शक्	शकितुम्	हृ	हर्तुम्
पत्	पतितुम्	या	यातुम्	शक्	शक्तुम्	हृष्	हर्षितुम्

(८) क्त्वा, (९) ल्यप् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४३,४४)

सूचना—'कर' या 'करके' अर्थ में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय होते हैं। क्त्वा का त्वा और ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले उपसर्ग नहीं होगा तो क्त्वा होगा। यदि उपसर्ग पहले होगा तो ल्यप् होगा। दोनों प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं, अतः इनके रूप नहीं चलते। दोनों प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४३, ४४। जिन उपसर्गों के साथ ल्यप् वाले रूप अधिक प्रचलित हैं, वही यहाँ दिए गए हैं। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

धातु	क्त्वा	ल्यप्
अद्	जग्ध्वा	प्रजग्ध्य
अधि + इ	—	अधीत्य
अर्च्	अर्चित्वा	समर्च्य
अस् (२ प०)	भूत्वा	सम्भूय
अस् (४ प०)	असित्वा	प्रास्य
आ + इ	—	आइत्य
आप्	आप्त्वा	प्राप्य
आस्	आसित्वा	उपास्य
इ	इत्वा	प्रेत्य
इष्	इष्ट्वा	समिष्य
ईक्ष्	ईक्षित्वा	समीक्ष्य
उत् + डी	—	उड्डीय
कम्	कमित्वा	सकाम्य
कूर्द्	कूर्दित्वा	प्रकूर्द्य
कृ	कृत्वा	उपकृत्य
कृष्	कृष्ट्वा	आकृष्य
कॄ	कीर्त्वा	विकीर्य
क्रन्द्	क्रन्दित्वा	आक्रन्द्य
क्रम्	क्रमित्वा, क्रान्त्वा	सक्रम्य
क्री	क्रीत्वा	विक्रीय
क्रीड्	क्रीडित्वा	प्रक्रीड्य
क्रुध्	क्रुद्ध्वा	सक्रुध्य
क्षम्	क्षमित्वा	सक्षम्य
क्षिप्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य
क्षुभ्	क्षुभित्वा	प्रक्षुभ्य
खन्	खनित्वा, खात्वा	उत्खन्य, उत्खाय
गण्	गणयित्वा	विगणय्य
गम्	गत्वा	आगम्य, आगत्य
गॄ	गीर्त्वा	उद्गीर्य
गै (गा)	गीत्वा	प्रगाय
ग्रस्	ग्रसित्वा	सग्रस्य
ग्रह्	गृहीत्वा	सगृह्य
घ्रा	घ्रात्वा	आघ्राय
चर्	चरित्वा	आचर्य
चल्	चलित्वा	प्रचल्य
चि	चित्वा	सचित्य
चिन्त्	चिन्तयित्वा	सचिन्त्य
चुर्	चोरयित्वा	सचोर्य
छिद्	छित्वा	उच्छिद्य
जन्	जनित्वा	सजाय
जप्	जपित्वा	सजप्य
जि	जित्वा	विजित्य
जीव्	जीवित्वा	सजीव्य

ज्ञा	ज्ञात्वा	विज्ञाय
ज्वल्	ज्वलित्वा	प्रज्वल्य
तन्	तनित्वा	वितत्य
तप्	तप्त्वा	सतप्य
तुष्	तुष्ट्वा	सतुष्य
तॄ	तीर्त्वा	उत्तीर्य
त्यज्	त्यक्त्वा	परित्यज्य
दश्	दष्ट्वा	सदश्य
दह्	दग्ध्वा	सदह्य
दा	दत्त्वा	आदाय
दिव्	देवित्वा	सदीव्य
दिश्	दिष्ट्वा	उपदिश्य
दीप्	दीपित्वा	सदीप्य
दुह्	दुग्ध्वा	सदुह्य
दृश्	दृष्ट्वा	सदृश्य
द्युत्	द्योतित्वा	विद्युत्य
धा	हित्वा	विधाय
धाव्	धावित्वा	प्रधाव्य
धृ	धृत्वा	आधृत्य
ध्मा	ध्मात्वा	आध्माय
ध्यै	ध्यात्वा	सध्याय
नम्	नत्वा	प्रणम्य
नश्	नष्ट्वा	विनश्य
नि + वृ	—	निवृत्य
नी	नीत्वा	आनीय
नुद्	नुत्वा	प्रणुद्य
नृत्	नर्तित्वा	प्रनृत्य
पच्	पक्त्वा	सपच्य
पठ्	पठित्वा	सपठ्य
पत्	पतित्वा	निपत्य
पद्	पत्त्वा	सपद्य
पलाय् (परा + अय्)	—	पलाय्य
पा (१ प.)	पीत्वा	निपाय
पाल्	पालयित्वा	सपाल्य
पुष्	पुष्ट्वा	सपुष्य
पूज्	पूजयित्वा	सपूज्य
पॄ	पूर्त्वा	आपूर्य
प्रच्छ्	पृष्ट्वा	सपृच्छ्य
बन्ध्	बद्ध्वा	आबध्य
बुध्	बुद्ध्वा	प्रबुध्य
ब्रू	उक्त्वा	प्रोच्य
भक्ष्	भक्षयित्वा	सभक्ष्य
भज्	भक्त्वा	विभज्य
भञ्ज्	भङ्क्त्वा	विभज्य
भाष्	भाषित्वा	सभाष्य
भिद्	भित्त्वा	प्रभिद्य
भी	भीत्वा	सभीय
भुज्	भुक्त्वा	उपभुज्य
भू	भूत्वा	सभूय
भृ	भृत्वा	सभृत्य
भ्रश्	भ्रष्ट्वा	प्रभ्रश्य
भ्रम्	भ्रमित्वा भ्रान्त्वा	सभ्रम्य
मथ्	मथित्वा	विमथ्य
मन्	मत्वा	अनुमत्य
मा	मित्वा	प्रमाय
मिल्	मिलित्वा	समिल्य
मुच्	मुक्त्वा	विमुच्य
मुह्	मुग्ध्वा	समुह्य
यज्	इष्ट्वा	समिज्य
यम्	यत्वा	सयम्य
या	यात्वा	प्रयाय

याच्	याचित्वा	अनुयाच्य	शम्	शान्त्वा	निशम्य
युज्	युक्त्वा	प्रयुज्य	शास्	शिष्ट्वा	अनुशिष्य
युध्	युद्ध्वा	प्रयुध्य	शी	शयित्वा	सशय्य
रक्ष्	रक्षित्वा	सरक्ष्य	शुष्	शुष्ट्वा	परिशुष्य
रच्	रचयित्वा	विरचय्य	श्रि	श्रित्वा	आश्रित्य
रभ्	रब्ध्वा	आरभ्य	श्रु	श्रुत्वा	सश्रुत्य
रम्	रत्वा	विरम्य	श्लिष्	श्लिष्ट्वा	आश्लिष्य
रुद्	रुदित्वा	विरुद्य	श्वस्	श्वसित्वा	विश्वस्य
रुध्	रुद्ध्वा	विरुध्य	सद्	सत्त्वा	निषद्य
रुह्	रूढ्वा	आरुह्य	सह्	सहित्वा	ससह्य
लप्	लपित्वा	विलप्य	साध्	साद्ध्वा	प्रसाध्य
लभ्	लब्ध्वा	उपलभ्य	सिच्	सिक्त्वा	अभिषिच्य
लम्ब्	लम्बित्वा	आलम्ब्य	सिध्	सिद्ध्वा	निषिध्य
लष्	लषित्वा	अभिलष्य	सिव्	सेवित्वा	ससीव्य
लिख्	लिखित्वा	आलिख्य	सृज्	सृष्ट्वा	विसृज्य
लिह्	लीढ्वा	आलिह्य	सेव्	सेवित्वा	निषेव्य
ली	लीत्वा	निलीय	सो	सित्वा	अवसाय
लुभ्	लुब्ध्वा	प्रलुभ्य	स्तु	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य
वद्	उदित्वा	अनूद्य	स्था	स्थित्वा	प्रस्थाय
वन्द्	वन्दित्वा	अभिवन्द्य	स्ना	स्नात्वा	प्रस्नाय
वप्	उप्त्वा	समुप्य	स्निह्	स्निग्ध्वा	उपस्निह्य
वस्	उषित्वा	उपोष्य	स्पृश्	स्पृष्ट्वा	सस्पृश्य
वह्	ऊढ्वा	प्रोह्य	स्मृ	स्मृत्वा	विस्मृत्य
विद् (२ प०)	विदित्वा	सविद्य	स्वप्	सुप्त्वा	सषुप्य
विद् (१०)	वेदयित्वा	निवेद्य	हन्	हत्वा	निहत्य
विश्	विष्ट्वा	प्रविश्य	हस्	हसित्वा	विहस्य
वृत्	वर्तित्वा	निवृत्य	हा (३ प०)	हित्वा	विहाय
वृध्	वर्धित्वा	सवृध्य	हु	हुत्वा	आहुत्य
वृष्	वर्षित्वा	प्रवृष्य	हृ	हृत्वा	प्रहृत्य
व्यध्	विद्ध्वा	आविध्य	हृष्	हृषित्वा	प्रहृष्य
शप्	शप्त्वा	अभिशप्य	ह्वे	हूत्वा	आहूय

(१०) ल्युट् , (११) अनीयर् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४५, ४९)

सूचना—(क) ल्युट् प्रत्यय भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से लगता है। ल्युट् का 'अन' शेष रहता है। धातु को गुण होता है। ल्युट्-प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग होता है। अन्य नियमों के लिए देखें अभ्यास ४९। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होता है। अनीयर् का 'अनीय' शेष रहता है। अनीयर् प्रत्यय वाला रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि ल्युट् के अन के स्थान पर अनीय लगा दें। अन्य नियमों के लिए देखें अभ्यास ४५। जैसे—कृ का कारण, करणीय। दा-दान, दानीय। पठ्-पठन, पठनीय। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

धातु	रूप	धातु	रूप	धातु	रूप	धातु	रूप
अद्	अदनम्	कूर्द्	कूर्दनम्	ग्रस्	ग्रसनम्	त्रै (त्रा)	त्राणम्
अधि+इ	अध्ययनम्	कृ	करणम्	ग्रह्	ग्रहणम्	दंश्	दशनम्
अन्विष्	अन्वेषणम्	कृप्	कल्पनम्	घ्रा	घ्राणम्	दण्ड्	दण्डनम्
अर्च्	अर्चनम्	कृष्	कर्षणम्	चर्	चरणम्	दम्	दमनम्
अर्ज्	अर्जनम्	कॄ	करणम्	चल्	चलनम्	दह्	दहनम्
अस् (२)	भवनम्	क्रन्द्	क्रन्दनम्	चि	चयनम्	दा	दानम्
अस् (४)	असनम्	क्रम्	क्रमणम्	चिन्त्	चिन्तनम्	दिव्	देवनम्
आ+क्रम्	आक्रमणम्	क्री	क्रयणम्	चुर्	चोरणम्	दिश्	देशनम्
आ+चर्	आचरणम्	क्रीड्	क्रीडनम्	चेष्ट्	चेष्टनम्	दीप्	दीपनम्
आ+रम्	आरमणम्	क्रुध्	क्रोधनम्	छिद्	छेदनम्	दुह्	दोहनम्
आ+रुह्	आरोहणम्	क्लिश्	क्लेशनम्	जन्	जननम्	दृश्	दर्शनम्
आ+लप्	आलपनम्	क्षम्	क्षमणम्	जप्	जपनम्	द्युत्	द्योतनम्
आस्	आसनम्	क्षिप्	क्षेपणम्	जि	जयनम्	द्रुह्	द्रोहणम्
आ+ह्वे	आह्वानम्	खन्	खननम्	जीव्	जीवनम्	धा	धानम्
इ	अयनम्	खाद्	खादनम्	ज्ञा	ज्ञानम्	धाव्	धावनम्
इष्	एषणम्	गण्	गणनम्	ज्वल्	ज्वलनम्	धृ	धरणम्
ईक्ष्	ईक्षणम्	गम्	गमनम्	डी	डयनम्	ध्यै (ध्या)	ध्यानम्
उद्+डी	उड्डयनम्	गर्ज्	गर्जनम्	तप्	तपनम्	ध्वस्	ध्वसनम्
कथ्	कथनम्	गाह्	गाहनम्	तुष्	तोषणम्	नन्द्	नन्दनम्
कम्	कमनम्	गॄ	गरणम्	तृप्	तर्पणम्	नम्	नमनम्
कम्प्	कम्पनम्	गै (गा)	गानम्	तॄ	तरणम्	नश्	नशनम्
कुप्	कोपनम्	ग्रन्थ्	ग्रन्थनम्	त्यज्	त्यजनम्	नि+गॄ	निगरणम्

निन्द्	निन्दनम्	भुज्	भोजनम्	लभ्	लभनम्	शम्	शमनम
नि+यम्	नियमनम्	भू	भवनम्	लम्ब्	लम्बनम्	शास्	शासनम्
नि+वस्	निवसनम्	भृ	भरणम्	लष्	लषणम्	शिक्ष्	शिक्षणम्
नि+विद्	निवेदनम्	भ्रश्	भ्रशनम्	लस्	लसनम्	शी	शयनम्
नि+सिध्	निषेधनम्	भ्रम्	भ्रमणम्	लिख्	लेखनम्	शुभ्	शोभनम्
नी	नयनम्	मद्	मदनम्	लिह्	लेहनम्	शुष्	शोषणम्
नृत्	नर्तनम्	मन्	मननम्	ली	लयनम्	श्रि	श्रयणम्
पच्	पचनम्	मन्थ्	मन्थनम्	लुट्	लोटनम्	श्रु	श्रवणम्
पठ्	पठनम्	मा	मानम्	लुप्	लोपनम्	स+मिल्	समेलनम्
पत्	पतनम्	मिल्	मेलनम्	लुभ्	लोभनम्	सद्	सदनम्
पलाय्	पलायनम्	मुच्	मोचनम्	लोक्	लोकनम्	सह्	सहनम्
पा (१, २)	पानम्	मुद्	मोदनम्	लोच्	लोचनम्	साध्	साधनम्
पाल्	पालनम्	मुष्	मोषणम्	वच्	वचनम्	सिच्	सेचनम्
पुष्	पोषणम्	मुह्	मोहनम्	वञ्च्	वञ्चनम्	सिव्	सेवनम्
पूज्	पूजनम्	मृ	मरणम्	वद्	वदनम्	सु	सवनम्
प्र+काश्	प्रकाशनम्	यज्	यजनम्	वन्द्	वन्दनम्	सृ	सरणम्
प्रच्छ्	प्रच्छनम्	यत्	यतनम्	वप्	वपनम्	सृज्	सर्जनम्
प्र + आप्	प्रापणम्	यम्	यमनम्	वर्ण्	वर्णनम्	सृप्	सर्पणम्
प्र + विश्	प्रवेशनम्	या	यानम्	वह्	वहनम्	सेव्	सेवनम्
प्र + हस्	प्रहसनम्	याच्	याचनम्	वि + किस्	विकसनम्	स्तु	स्तवनम्
प्रेर् (प्र + ईर्)	प्रेरणम्	युज्	योजनम्	विद्	वेदनम्	स्था	स्थानम्
प्रेष्	प्रेषणम्	युध्	योधनम्	वि + धा	विधानम	स्ना	स्नानम्
बन्ध्	बन्धनम्	रञ्ज्	रञ्जनम्	वि + नश्	विनशनम्	स्निह्	स्नेहनम्
बाध्	बाधनम्	रक्ष्	रक्षणम्	वि + लप्	विलपनम्	स्पृश्	स्पर्शनम्
बुध्	बोधनम्	रच्	रचनम्	वि + श्वस्	विश्वसनम्	स्मृ	स्मरणम्
ब्रू	वचनम्	रम्	रमणम्	वृ	वरणम्	स्रस्	स्रसनम्
भज्	भजनम्	राज्	राजनम्	वृत्	वर्तनम्	स्वप्	स्वपनम्
भक्ष्	भक्षणम्	रुच्	रोचनम्	वृध्	वर्धनम्	हन्	हननम्
भज्	भजनम्	रुद्	रोदनम्	वृष्	वर्षणम	हु	हवनम
भाष्	भाषणम्	रुध्	रोधनम्	वेप्	वेपनम्	हृ	हरणम्
भिद्	भेदनम्	लप्	लपनम्	शप्	शपनम्	हृष्	हर्षणम्

(१०) ल्युट्, (११) अनीयर् प्रत्यय

(देखो अभ्यास ४५, ४९)

सूचना—(क) ल्युट् प्रत्यय भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से लगता है। ल्युट् का 'अन' शेष रहता है। धातु को गुण होता है। ल्युट्-प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग होता है। अन्य नियमों के लिए देखें अभ्यास ४९। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होता है। अनीयर् का 'अनीय' शेष रहता है। अनीयर् प्रत्यय वाला रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि ल्युट् के अन के स्थान पर अनीय लगा दें। अन्य नियमों के लिए देखें अभ्यास ४५। जैसे—कृ का कारण, करणीय। दा-दान, दानीय। पठ्-पठन, पठनीय। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अद्	अदनम्	कूर्द्	कूर्दनम्	ग्रस्	ग्रसनम्	त्रै (त्रा)	त्राणम्
अधि+इ	अध्ययनम्	कृ	करणम्	ग्रह्	ग्रहणम्	दश्	दशनम्
अन्विष्	अन्वेषणम्	कृप्	कल्पनम्	घ्रा	घ्राणम्	दण्ड्	दण्डनम्
अर्च्	अर्चनम्	कृष्	कर्षणम्	चर्	चरणम्	दम्	दमनम्
अर्ज्	अर्जनम्	कॄ	करणम्	चल्	चलनम्	दह्	दहनम्
अस् (२)	भवनम्	क्रन्द्	क्रन्दनम्	चि	चयनम्	दा	दानम्
अस् (४)	असनम्	क्रम्	क्रमणम्	चिन्त्	चिन्तनम्	दिव्	देवनम्
आ+क्रम्	आक्रमणम्	क्री	क्रयणम्	चुर्	चोरणम्	दिश्	देशनम्
आ+चर्	आचरणम्	क्रीड्	क्रीडनम्	चेष्ट्	चेष्टनम्	दीप्	दीपनम्
आ+रभ्	आरभणम्	क्रुध्	क्रोधनम्	छिद्	छेदनम्	दुह्	दोहनम्
आ+रुह्	आरोहणम्	क्लिश्	क्लेशनम्	जन्	जननम्	दृश्	दर्शनम्
आ+लप्	आलपनम्	क्षम्	क्षमणम्	जप्	जपनम्	द्युत्	द्योतनम्
आस्	आसनम्	क्षिप्	क्षेपणम्	जि	जयनम्	द्रुह्	द्रोहणम्
आ+ह्वे	आह्वानम्	खन्	खननम्	जीव्	जीवनम्	धा	धानम्
इ	अयनम्	खाद्	खादनम्	ज्ञा	ज्ञानम्	धाव्	धावनम्
इष्	एषणम्	गण्	गणनम्	ज्वल्	ज्वलनम्	धृ	धरणम्
ईक्ष्	ईक्षणम्	गम्	गमनम्	डी	डयनम्	ध्यै (ध्या)	ध्यानम्
उद्+डी	उड्डयनम्	गर्ज्	गर्जनम्	तप्	तपनम्	ध्वस्	ध्वसनम्
कथ्	कथनम्	गाह्	गाहनम्	तुष्	तोषणम्	नन्द्	नन्दनम्
कम्	कमनम्	गॄ	गरणम्	तृप्	तर्पणम्	नम्	नमनम्
कम्प्	कम्पनम्	गै (गा)	गानम्	तॄ	तरणम्	नश्	नशनम्
कुप्	कोपनम्	ग्रन्थ्	ग्रन्थनम्	त्यज्	त्यजनम्	नि+गॄ	निगरणम्

निन्द्	निन्दनम्	भुज्	भोजनम्	लभ्	लभनम्	शम्	शमनम्
नि+यम्	नियमनम्	भू	भवनम्	लम्ब्	लम्बनम्	शास्	शासनम्
नि+वस्	निवसनम्	भृ	भरणम्	लष्	लषणम्	शिक्ष्	शिक्षणम्
नि+विद्	निवेदनम्	भ्रश्	भ्रशनम्	लस्	लसनम्	शी	शयनम्
नि+सिध्	निषेधनम्	भ्रम्	भ्रमणम्	लिख्	लेखनम्	शुभ्	शोभनम्
नी	नयनम्	मद्	मदनम्	लिह्	लेहनम्	शुष्	शोषणम्
नृत्	नर्तनम्	मन्	मननम्	ली	लयनम्	श्रि	श्रयणम्
पच्	पचनम्	मन्थ्	मन्थनम्	लुट्	लोटनम्	श्रु	श्रवणम्
पठ्	पठनम्	मा	मानम्	लुप्	लोपनम्	सम्+मिल्	सम्मेलनम्
पत्	पतनम्	मिल्	मेलनम्	लुभ्	लोभनम्	सद्	सदनम्
पलाय्	पलायनम्	मुच्	मोचनम्	लोक्	लोकनम्	सह्	सहनम्
पा (१, २)	पानम्	मुद्	मोदनम्	लोच्	लोचनम्	साध्	साधनम्
पाल्	पालनम्	मुष्	मोषणम्	वच्	वचनम्	सिच्	सेचनम्
पुष्	पोषणम्	मुह्	मोहनम्	वञ्च्	वञ्चनम्	सिव्	सेवनम्
पूज्	पूजनम्	मृ	मरणम्	वद्	वदनम्	सु	सवनम्
प्र+काश्	प्रकाशनम्	यज्	यजनम्	वन्द्	वन्दनम्	सृ	सरणम्
प्रच्छ्	प्रच्छनम्	यत्	यतनम्	वप्	वपनम्	सृज्	सर्जनम्
प्र + आप्	प्रापणम्	यम्	यमनम्	वर्ण्	वर्णनम्	सृप्	सर्पणम्
प्र + विश्	प्रवेशनम्	या	यानम्	वह्	वहनम्	सेव्	सेवनम्
प्र + हस्	प्रहसनम्	याच्	याचनम्	वि + कस्	विकसनम	स्तु	स्तवनम्
प्रेर् (प्र + ईर्)	प्रेरणम्	युज्	योजनम्	विद्	वेदनम्	स्था	स्थानम्
प्रेष्	प्रेषणम्	युध्	योधनम्	वि + धा	विधानम	स्ना	स्नानम्
बन्ध्	बन्धनम्	रञ्ज्	रञ्जनम्	वि + नश्	विनशनम्	स्निह्	स्नेहनम्
बाध्	बाधनम्	रक्ष्	रक्षणम्	वि + लप्	विलपनम्	स्पृश्	स्पर्शनम्
बुध्	बोधनम्	रच्	रचनम्	वि + श्वस्	विश्वसनम्	स्मृ	स्मरणम्
ब्रू	वचनम्	रम्	रमणम्	वृ	वरणम्	स्रंस्	स्रंसनम्
भज्	भजनम्	राज्	राजनम्	वृत्	वर्तनम्	स्वप्	स्वपनम्
भक्ष्	भक्षणम्	रुच्	रोचनम्	वृध्	वर्धनम्	हन्	हननम्
भञ्ज्	भञ्जनम्	रुद्	रोदनम्	वृष्	वर्षणम	हु	हवनम
भाष्	भाषणम्	रुध्	रोधनम्	वेप्	वेपनम्	हृ	हरणम्
भिद्	भेदनम्	लप्	लपनम्	शप्	शपनम्	हृष्	हर्षणम्

(१२) घञ् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४७)

सूचना—भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। घञ् का 'अ' शेष रहता है। घञन्त शब्द पुंलिंग होता है। घञ् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४७। घञ्-प्रत्ययान्त शब्द उपसर्गों के साथ बहुत प्रचलित हैं। उपसर्ग लगाकर स्वयं अन्य रूप बनावें। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

अधि + इ	अध्यायः	चर्	चार.	प्र + भू	प्रभाव.	वि + लप्	विलापः
अभि+लप्	अभिलाष.	चल्	चाल.	प्र + विश्	प्रवेशः	वि + वह्	विवाहः
अव + तॄ	अवतारः	चि	कायः	प्र + सद्	प्रसाद.	वि + श्रम्	विश्रमः
अव+लिह्	अवलेहः	चुर्	चोरः	प्र + सृ	प्रसारः	वि + श्वस्	विश्वासः
अस् (२५०)	भावः	छिद्	छेद.	प्र + स्तु	प्रस्ताव.	वि + सृज्	विसर्गः
आ + क्षिप्	आक्षेप.	जप्	जापः	प्र + हृ	प्रहारः	वृष्	वर्षः
आ + गम्	आगमः	तप्	ताप	बुध्	बोध	शप्	शापः
आ + चर्	आचार	त्यज्	त्याग.	भज्	भाग	शम्	शमः
आ + दृश्	आदर्शः	दह्	दाह	भिद्	भेदः	शुच्	शोकः
आ + धृ	आधार	दा	दायः	भुज्	भोग.	शुष्	शोषः
आ + मुद्	आमोदः	दिव्	देव.	मिल्	मेल	श्रि	श्राय
आ + रुह्	आरोह	दुह्	दोह	मुह्	मोह.	श्रु	श्रावः
आ + वृत्	आवर्त	द्रुह्	द्रोह.	मृज्	मार्ग.	श्लिष्	श्लेषः
आ + हन्	आघात.	धा	धाय	यज्	याग.	सं + कृ	संस्कार
उत् + पद्	उत्पाद.	नश्	नाश.	युज्	योग.	सं + तन्	सन्तानः
उत् + सह्	उत्साह.	नि + इ	न्याय.	युध्	योध.	सं + तुष्	सन्तोष.
उप + दिश्	उपदेश.	नि + वस्	निवास.	रञ्ज्	राग	सं + मन्	समानः
कम्	काम	नि + सिध्	निषेध.	रम्	राम.	सं + यम्	संयमः
कुप्	कोप.	पच्	पाक.	रुध्	रोध.	सिच्	सेक.
कृ	कार.	पठ्	पाठ.	लभ्	लाभ.	सृज्	सर्गः
कृष्	कर्ष.	पत्	पात.	लिख्	लेखः	स्निह्	स्नेहः
क्षिप्	क्षेप.	पुष्	पोष	लुभ्	लोभः	स्पृश्	स्पर्श.
क्षुभ्	क्षोभ.	प्र + काश्	प्रकाशः	वद्	वादः	स्वप्	स्वाप.
गम्	गम	प्र + कृ	प्रकारः	वि + कस्	विकास.	हस्	हास.
ग्रस्	ग्रास.	प्र + कृष्	प्रकर्ष.	वि + कृप्	विकल्प.	हृ	हारः
ग्रह्	ग्राह.	प्र + नम्	प्रणाम.	विद्	वेदः	हृष्	हर्षः

(१३) ण्वुल् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४९)

सूचना—कर्ता या 'करने वाला' अर्थ मे ण्वुल् प्रत्यय होता है। ण्वुल् के स्थान पर 'अक' शेष रहता है। धातु को गुण या वृद्धि होगी। कर्ता के अनुसार तीनो लिंग होते हैं। विशेष नियम के लिए देखे अभ्यास ४९। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई है।

अध्यापि	अध्यापक.	द्विष्	द्वेषक	प्र + विश्	प्रवेशक.	रुध्	रोधकः
अन्विष्	अन्वेषक.	धा	धायक·	प्र + सृ	प्रसारक.	लिख्	लेखकः
उद् + पद्	उत्पादक	धाव्	धावक.	प्र + स्तु	प्रस्तावक.	वच्	वाचक
उद् + धृ	उद्धारक·	धृ	धारक	प्रेर् (प्र + ईर्)	प्रेरक.	वह्	वाहक·
उद्+मद्	उन्मादक.	ध्यै	ध्यायक	बन्ध्	बन्धक	वि + कस्	विकासक.
उप+दिश	उपदेशक	ध्वस्	ध्वसक	बाध्	बाधक	वि + आप्	व्यापक
उप+आस्	उपासक	नश्	नाशक.	बुध्	बोधक	वि + धा	विधायकः
कृ	कारक	निन्द्	निन्दक	ब्रू	वाचक.	वि + भज्	विभाजकः
कृष्	कर्षक	नि + विद्	निवेदक	भक्ष्	भक्षक·	वि+स्कम्भ्	विष्कम्भक
क्रीड्	क्रीडक.	नि + वृ	निवारक·	भज्	भाजक	वृध्	वर्धक
खाद्	खादक·	नि+सिध्	निषेधक	भाष्	भाषक	वृष्	वर्षक.
गण्	गणक	नी	नायक.	भिद्	भेदक	शास्	शासक
गम्	गमक	नृत्	नर्तक.	भुज्	भोजक	शिक्ष्	शिक्षक.
गै	गायक	पच्	पाचक.	भू	भावक.	शुष्	शोषक.
ग्रह्	ग्राहक	पठ्	पाठक.	मुच्	मोचक	श्रु	श्रावकः
चि	चायकः	पत्	पातक	मुद्	मोदकः	स + चल्	सचालकः
चिन्त्	चिन्तक	परि + ईक्ष्	परीक्षक.	मुह्	मोहक·	स + तप्	सतापक.
छिद्	छेदक	पा	पायक	मृ	मारक.	स + युज्	सयोजकः
जन्	जनक	पाल्	पालक.	यज्	याचक	स + हृ	सहारक.
तॄ	तारक	पुष्	पोषक	यम्	यमक.	साध्	साधक
दह्	दाहक·	पूज्	पूजक	याच्	याचक	सिच्	सेचक.
दीप्	दीपक	प्र+काश्	प्रकाशक.	युज्	योजक.	सेव्	सेवक
दुह्	दोहक	प्र + क्षिप्	प्रक्षेपक.	युध्	योधक.	स्था	स्थापक
दृश्	दर्शक	प्र + चर्	प्रचारक	रज्	रजक	स्मृ	स्मारक·
द्युत्	द्योतक	प्रच्छ्	प्रच्छक	रक्ष्	रक्षक.	हन्	घातकः
द्रुह्	द्रोहक	प्र + दा	प्रदायक.	रुच्	रोचक.	हृष्	हर्षकः

(१४) क्तिन्, (१५) यत् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४६, ५१)

सूचना—(क) भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ५१। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अजन्त धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का 'य' शेष रहता है। तीनों लिंगों में रूप चलते हैं। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४६। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

क्तिन् प्रत्यय						यत् प्रत्यय	
अधि + इ	अधीतिः	तृप्	तृप्तिः	यम्	यतिः	अधि + इ	अध्येयम्
अस् (२प.)	भूति.	दीप्	दीप्तिः	युज्	युक्तिः	आ + ख्या	आख्येयम्
आप्	आप्तिः	दृश्	दृष्टिः	रम्	रतिः	उप + मा	उपमेयम्
आ + सज्	आसक्तिः	धृ	धृति	रुह्	रूढिः	क्री	क्रेयम्
आ + सद्	आसत्ति.	नम्	नति.	वि + आप्	व्याप्ति.	क्षि	क्षेयम्
आ + हु	आहुति.	नी	नीति.	वि + नश्	विनष्टिः	गै (गा)	गेयम्
इष्	इष्टि.	पच्	पक्ति	वि + श्रम्	विश्रान्ति.	घ्रा	घ्रेयम्
उप + लभ्	उपलब्धि.	पा (१ प)	पीतिः	वृत्	वृत्तिः	चि	चेयम्
ऋध्	ऋद्धिः	पुष्	पुष्टिः	वृध्	वृद्धि.	जि	जेयम्
कम्	कान्ति.	पॄ	पूर्तिः	वृष्	वृष्टिः	ज्ञा	ज्ञेयम्
कृ	कृति	प्र + आप्	प्राप्ति.	शक्	शक्तिः	दा	देयम्
कृष्	कृष्टि.	प्री	प्रीतिः	शम्	शान्ति.	धा	धेयम्
कॄ	कीर्तिः	बुध्	बुद्धि.	शुध्	शुद्धि.	ध्यै (ध्या)	ध्येयम्
कृत्	कीर्तिः	ब्रू	उक्तिः	श्रु	श्रुति.	नी	नेयम्
क्रम्	क्रान्ति	भज्	भक्ति	स + पद्	सपत्तिः	पा (१प)	पेयम्
क्षम्	क्षान्ति.	भी	भीति	स + सृ	ससृति	भू	भव्यम्
गम्	गति.	भुज्	भुक्तिः	स + हृ	सहृतिः	मा	मेयम्
गै	गीतिः	भू	भूति	सिध्	[illegible]	वि + [illegible]	
चि	चिति	भ्रम्	भ्रान्ति.	सृज्			
छिद्	छित्तिः	मन्		स्तु			
जन्	जातिः	मा					
ज्ञा	ज्ञाति	मुच्					
तुष्	तुष्टिः	यज्					

(६) सन्धि-विचार

(क) स्वर-सन्धि

(१) (इको यणचि) इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र्, ऌ को ल् हो जाता है, यदि बाद मे कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—

(१) प्रति+एक =प्रत्येक	(२) पठतु+एकः = पठत्वेक.	(३) पितृ + आ = पित्रा
इति+अत्र = इत्यत्र	अनु + अय. = अन्वय·	मातृ + ए = मात्रे
इति + आह इत्याह	मधु + अरि = मध्वरि	धातृ+अंश =धात्रंश.
यदि+अपि=यद्यपि	गुरु + आज्ञा = गुर्वाज्ञा	कर्तृ + आ = कर्त्रा
सुधी + उपास्य. =	पठतु + अत्र = पठत्वत्र	कर्तृ + ई = कर्त्री
सुध्युपास्य.	वधू + औ = वध्वौ	(४) ऌ+आकृति =लाकृति.

(२) (एचोऽयवायावः) ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो नहीं)। जैसे—

(१) हरे + ए = हरये	(२) भो + अति = भवति	(३) नै + अक =नायक
कवे + ए = कवये	पो + अन· = पवन·	गै + अक.=गायक.
ने + अनम्=नयनम्	विष्णो + ए = विष्णवे	गै + अति=गायति
जे + अ. = जय·	भानो + ए = भानवे	(४) पौ + अक =पावकः
सचे + अ. = सचय	भो + अनम् = भवनम्	द्वौ + एतौ=द्वावेतौ

(३) (क) (वान्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है, बाद मे य से प्रारम्भ होने वाला कोई प्रत्यय हो तो। (ख) (गोर्यूतौ, अध्वपरिमाणे च) गो शब्द के ओ को अव् होता है बाद में यूति शब्द हो तो, मार्ग की लम्बाई के अर्थ मे। (ग) (धातोस्तन्निमित्तस्यैव) धातु के ओ को अव् और औ को आव् होता है यकारादि प्रत्यय बाद मे हो तो। यह तभी होगा जब ओ या औ प्रत्यय के कारण हुआ हो। जैसे—

(क) गो + यम् = गव्यम्	(ख) गो + यूति. = गव्यूति	(ग) लो + यम् = लव्यम्
नौ + यम् = नाव्यम्		भौ + यम् = भाव्यम्

(४) (आद्गुणः) (१) अ या आ के बाद इ या ई हो तो दोनो को 'ए' होगा। (२) अ या आ के बाद उ या ऊ हो तो दोनो को 'ओ' होगा। (३) अ या आ के बाद ऋ या ॠ हो तो दोनो को 'अर्' होगा। (४) अ या आ के बाद ऌ होगा तो दोनों को 'अल्' होगा।—जैसे—

(१) महा + ईशः=महेश.	(२) पर+उपकार.=परोपकार	(३)महा + ऋषि.=महर्षि
गण + ईश·=गणेशः	महा+उत्सव =महोत्सव	राज+ऋषि =राजर्षि
उप + इन्द्रः=उपेन्द्रः	गंगा+उदकम्=गंगोदकम्	ग्रीष्म+ऋतु·=ग्रीष्मर्तु.
रमा + ईश·=रमेशः	हित+उपदेशः=हितोपदेशः	(४)तव+ऌकारः=तवल्कारः

(१४) क्तिन् , (१५) यत् प्रत्यय

(देखो अभ्यास ४६, ५१)

सूचना—(क) भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ५१। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अजन्त धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का 'य' शेष रहता है। तीनों लिंगों मे रूप चलते हैं। विशेष नियमों के लिए देखो अभ्यास ४६। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

क्तिन् प्रत्यय						यत् प्रत्यय	
अधि + इ	अधीतिः	तृप्	तृप्तिः	यम्	यतिः	अधि + इ	अध्येयम्
अस् (२प.)	भूति.	दीप्	दीप्तिः	युज्	युक्तिः	आ + ख्या	आख्येयम्
आप्	आप्तिः	दृश्	दृष्टिः	रम्	रतिः	उप + मा	उपमेयम्
आ + सज्	आसक्तिः	धृ	धृतिः	रुह्	रूढिः	क्री	क्रेयम्
आ + सद्	आसत्तिः	नम्	नति.	वि + आप्	व्याप्तिः	क्षि	क्षेयम्
आ + हु	आहुतिः	नी	नीतिः	वि + नश्	विनष्टिः	गै (गा)	गेयम्
इष्	इष्टिः	पच्	पक्तिः	वि + श्रम्	विश्रान्तिः	घ्रा	घ्रेयम्
उप + लभ्	उपलब्धिः	पा (१ प)	पीतिः	वृत्	वृत्तिः	चि	चेयम्
ऋध्	ऋद्धिः	पुष्	पुष्टिः	वृध्	वृद्धिः	जि	जेयम्
कम्	कान्ति.	पॄ	पूर्तिः	वृष्	वृष्टिः	ज्ञा	ज्ञेयम्
कृ	कृतिः	प्र + आप्	प्राप्तिः	शक्	शक्तिः	दा	देयम्
कृष्	कृष्टि	प्री	प्रीति.	शम्	शान्ति	धा	धेयम्
कॄ	कीर्तिः	बुध्	बुद्धि.	शुध्	शुद्धिः	ध्यै (ध्या)	ध्येयम्
कृत्	कीर्ति.	ब्रू	उक्ति.	श्रु	श्रुति.	नी	नेयम्
क्रम्	क्रान्तिः	भज्	भक्तिः	सं + पद्	संपत्ति	पा (१प.)	पेयम्
क्षम्	क्षान्ति.	भी	भीतिः	सं + स्तु	संस्तुति	भू	भव्यम्
गम्	गति	भुज्	भुक्तिः	सं + हृ	संहृति	मा	मेयम्
गै	गीतिः	भू	भूतिः	सिध्	सिद्धिः	वि + धा	विधेयम्
चि	चितिः	भ्रम्	भ्रान्ति.	सृज्	सृष्टिः	श्रु	श्रव्यम्
छिद्	छित्तिः	मन्	मति.	स्तु	स्तुतिः	सु	सव्यम्
जन्	जाति	मा	मितिः	स्था	स्थिति	स्था	स्थेयम्
ज्ञा	ज्ञाति	मुच्	मुक्तिः	स्मृ	स्मृति	हा	हेयम्
तुष्	तुष्टि	यज्	इष्टिः	स्वप्	सुप्तिः	हु	हव्यम्

(६) सन्धि-विचार

(क) स्वर-सन्धि

(१) (इको यणचि) इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र्, ल को ल् हो जाता है, यदि बाद में कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—

(१) प्रति+एक =प्रत्येक	(२) पठतु+एकः = पठत्वेक.	(३) पितृ + आ = पित्रा
इति+अत्र = इत्यत्र	अनु + अयः = अन्वय	मातृ + ए = मात्रे
इति + आह इत्याह	मधु + अरिः = मध्वरि	धातृ+अंश =धात्रंश.
यदि+अपि=यद्यपि	गुरु + आशा = गुर्वाशा	कर्तृ + आ = कर्त्रा
सुधी + उपास्यः =	पठतु + अत्र = पठत्वत्र	कर्तृ + ई = कर्त्री
सुध्युपास्य	वधू + औ = वध्वौ	(४)ल+आकृति =लाकृति

(२) (एचोऽयवायावः) ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो नहीं)। जैसे—

(१) हरे + ए = हरये	(२) भो + अति = भवति	(३) नै + अकः=नायक
कवे + ए = कवये	पो + अनः = पवन	गै + अकः=गायक
ने + अनम्=नयनम्	विष्णो + ए = विष्णवे	गै + अति=गायति
जे + अः = जयः	भानो + ए = भानवे	(४) पौ + अकः =पावकः
सचे + अः = सचयः	भो + अनम् = भवनम्	द्वौ + एतौ=द्वावेतौ

(३) (क) (वान्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है, बाद में य से प्रारम्भ होने वाला कोई प्रत्यय हो तो। (ख) (गोर्यूतौ, अध्वपरिमाणे च) गो शब्द के ओ को अव् होता है बाद में यूति शब्द हो तो, मार्ग की लम्बाई के अर्थ में। (ग) (धातोस्तन्निमित्तस्यैव) धातु के ओ को अव् और औ को आव् होता है यकारादि प्रत्यय बाद में हो तो। यह तभी होगा जब ओ या औ प्रत्यय के कारण हुआ हो। जैसे—

(क) गो + यम् = गव्यम्	(ख) गो + यूतिः = गव्यूति	(ग) लो + यम् = लव्यम्
नौ + यम् = नाव्यम्		भौ + यम् = भाव्यम्

(४) (आद्गुणः) (१) अ या आ के बाद इ या ई हो तो दोनों को 'ए' होगा। (२) अ या आ के बाद उ या ऊ हो तो दोनों को 'ओ' होगा। (३) अ या आ के बाद ऋ या ॠ हो तो दोनों को 'अर्' होगा। (४) अ या आ के बाद ऌ होगा तो दोनों को 'अल्' होगा।—जैसे—

(१) महा + ईशः=महेश	(२) पर+उपकार =परोपकार	(३)महा + ऋषिः =महर्षिः
गण + ईशः=गणेशः	महा+उत्सव =महोत्सव	राज+ऋषि =राजर्षि
उप + इन्द्रः=उपेन्द्रः	गंगा+उदकम्=गंगोदकम्	ग्रीष्म+ऋतुः=ग्रीष्मर्तुः
रमा + ईशः=रमेशः	हित+उपदेशः=हितोपदेशः	(४)तव+ऌकारः=तवल्कार

(५) (वृद्धिरेचि) (१) अ या आ के बाद ए या ऐ हो तो दोनों को 'ऐ' होगा। (२) अ या आ के बाद ओ या औ हो तो दोनो को 'औ' होगा।

(१) अत्र + एक. = अत्रैकः
कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्
सा + एषा = सैषा
देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्

(२) तण्डुल + ओदनम् = तण्डुलौदनम्
गङ्गा + ओघ. = गङ्गौघ.
देव + औदार्यम् = देवौदार्यम्
कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम्

(६) (क) (एत्येधत्यूठ्सु) अ या आ के बाद एकारादि इ धातु या एध् धातु हो या ऊठ् (ऊ) हो तो दोनो को मिलकर एक वृद्धि अक्षर (ऐ या औ) होता है। अ या आ + ए = ऐ। अ या आ + ओ या ऊ = औ। उप + एति = उपैति। अप + एति = अपैति। उप + एधते = उपैधते। प्रष्ठ + ऊह. = प्रष्ठौहः। विश्व + ऊह. = विश्वौह.। (ख) (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्) अक्ष + ऊहिनी मे वृद्धि होकर 'अक्षौहिणी' रूप बनता है। (ग) (स्वादीरेरिणोः) स्व के बाद ईर या ईरिन् होगा तो वृद्धि होगी। स्व + ईर = स्वैर.। स्व + ईरिन् = स्वैरिन्, स्वैरी। स्व = ईरिणी = स्वैरिणी। (घ) (प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु) प्र के बाद ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य हो तो वृद्धि होती है। प्र + ऊह. = प्रौह.। प्र + ऊढः = प्रौढ.। प्र + ऊढि. = प्रौढि। प्र + एष. = प्रैष.। प्र + एष्य. = प्रैष्य.।

(७) (एङः पदान्तादति) पद (अर्थात् सुबन्त या तिङन्त) के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसको पूर्वरूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। (अ हटा है, इस बात के सूचनार्थ ऽ(अवग्रहचिह्न) लगा दिया जाता है। जैसे—

(१) हरे + अव = हरेऽव
लोके + अस्मिन् = लोकेऽस्मिन्
विद्यालये + अस्मिन् = विद्यालयेऽस्मिन्

(२) विष्णो = अव = विष्णोऽव
रामो + अधुना = रामोऽधुना
लोको + अयम् = लोकोऽयम्

(८) (एङि पररूपम्) उपसर्ग के अ के बाद धातु का ए या ओ हो तो दोनों के स्थान पर पररूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। अर्थात् (१) अ + ए = ए, (२) अ + ओ = ओ। जैसे—

(१) प्र + एजते = प्रेजते | (२) उप + ओषति = उपोषति

(९) (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) शकन्धु आदि शब्दों में टि (अर्थात् अन्तिम स्वर सहित अगला अंश) को पररूप हो जाता है। शक + अन्धु = शकन्धुः। कर्क + अन्धु. = कर्कन्धु। मनस् + ईषा = मनीषा। कुल + अटा = कुलटा। पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलि। मार्त + अण्ड. = मार्तण्ड.। (क) (सीमन्तः केशवेशे) सीम + अन्तः = सीमन्त. (बालों मे माँग)। अन्यत्र सीमान्त. (हद)। (ख) (सारङ्गः पशुपक्षिणोः) सार + अङ्ग = सारङ्ग. (पशु, पक्षी)। अन्यत्र साराङ्ग.। (ग) (ओत्वोष्ठयोः समासे वा) समास में विकल्प से ओतु, ओष्ठ को पररूप। स्थूल + ओतु. = स्थूलोतुः, स्थूलौतु.। बिम्ब + ओष्ठः = बिम्बोष्ठ., बिम्बौष्ठ.।

(१०) (उपसर्गादृति धातौ) अकारान्त उपसर्ग के बाद कोई ऋ से प्रारम्भ होनेवाली धातु हो तो दोनो को आर् वृद्धि हो जायगी। अ + ऋ = आर्। उप + ऋच्छति = उपार्च्छति। प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति।

(११) (अचो रहाभ्यां द्वे) किसी स्वर के बाद र् या ह् हो और उसके बाद कोई यर् (ह् को छोडकर कोई व्यजन) हो तो उसे विकल्प से द्वित्व हो जाता है। जैसे—कार् + य=कार्य्य, कार्य। कर् + तव्य=कर्त्तव्य, कर्तव्य। कर् + म=कर्म्म, कर्म।

(१२) (ओमाङोश्च) अ के बाद ओम् या आङ् (आ) हो तो पररूप अर्थात् दोनों को ओम् या आ होता है। शिवाय + ओं नम॰ = शिवायो नम.। शिव + एहि (आ + इहि) = शिवेहि।

(१३) (अकः सवर्णे दीर्घः) अ इ उ ऋ के बाद कोई सवर्ण (सदृश) अक्षर हो तो दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर हो जाता है। अर्थात् (१) अ या आ + अ या आ = आ। (२) इ या ई + इ या ई = ई। (३) उ या ऊ + उ या ऊ = ऊ। (४) ऋ + ऋ = ॠ।

(१)हिम + आलय.=हिमालय	(२) गिरि + ईश =गिरीश	(३)गुरु + उपदेश =गुरूपदेश.
विद्या + आलय =विद्यालय	श्री + ईश =श्रीश	विष्णु + उदय. = विष्णूदय
दैत्य + अरि = दैत्यारिः	इति + इदम्=इतीदम्	(४)होतृ + ऋकार.=होतॄकार.

(१४) (सर्वत्र विभाषा गोः) गो शब्द के बाद अ हो तो विकल्प से उसे प्रकृतिभाव (वैसा ही रहना) होता है। गो + अग्रम् = गोअग्रम्, गोऽग्रम्।

(१५) (अवङ् स्फोटायनस्य) स्वर बाद में हो तो गो शब्द के ओ को अवङ् (अव) हो जाता है विकल्प से। गो + अग्रम् = गवाग्रम्। गो + अक्ष =गवाक्ष।

(१६) (इन्द्रे च) गो के ओ को अवङ् (अव) होगा, इन्द्र बाद मे हो तो। गो + इन्द्र॰ = गवेन्द्र।

(१७) (ऋत्यक.) ह्रस्व या दीर्घ अ इ उ के बाद ऋ हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव होगा। जहाँ सन्धि नहीं होगी वहाँ यदि शब्द का अन्तिम अक्षर दीर्घ होगा तो वह ह्रस्व हो जायगा। ब्रह्मा + ऋषि॰ = ब्रह्मऋषि, ब्रह्मर्षि। सप्त + ऋषीणाम् = सप्तर्षीणाम्, सप्तऋषीणाम्।

(१८) (प्रत्यभिवादेऽशूद्रे) अभिवादन के प्रत्युत्तर में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत (३) हो जाता है और वह उदात्त होता है। आयुष्मानेधि देवदत्त ३।

(१९) (दूराद्धूते च) दूर से सम्बोधन में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत होगा। आगच्छ देवदत्त ३।

(२०) (ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्) शब्द या धातु के द्विवचन के ई, ऊ और ए के साथ कोई सन्धि नहीं होती। हरी + एतौ = हरी एतौ। विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ। गङ्गे + अमू = गङ्गेअमू। पचेते + इमौ = पचेते इमौ।

(२१) (अदसो मात्) अदस् शब्द के म् के बाद ई या ऊ होंगे तो उसके साथ कोई सन्धि नहीं होगी। अमी + ईशा॰=अमी ईशा॰। अमू + आसाते=अमू आसाते।

(ख) हल्-सन्धि (व्यंजन-सन्धि)

(२२) (स्तोः श्चुना श्चुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् को श् और तवर्ग को चवर्ग होगा। त्>च्, द्>ज्, न्>ञ्, स्>श्। जैसे—

रामस् + च = रामश्च	सत् + चित् = सच्चित्	सद् + जनः = सज्जनः
कस् + चित् = कश्चित्	सत् + चरित्रः = सच्चरित्रः	उद् + ज्वलः = उज्ज्वलः
हरिस् + शेते = हरिश्शेते	उत् + चारणम् = उच्चारणम्	शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय

(२३) (शात्) श् के बाद तवर्ग को चवर्ग नहीं होगा। (नियम २२ का अपवाद सूत्र)। प्रश् + न = प्रश्नः। विश् + नः = विश्नः।

(२४) (ष्टुना ष्टुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग होगा। त्>ट्, द्>ड्, न्>ण्। स्>ष्। जैसे—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः	इष् + तः = इष्टः	उद् + डीनः = उड्डीनः
रामस् + टीकते = रामष्टीकते	दुष् + तः = दुष्टः	विष् + नुः = विष्णुः
पेष् + ता = पेष्टा	तत् + टीका = तट्टीका	कृष् + नः = कृष्णः

(२५) (क) (न पदान्ताट्टोरनाम्) पद के अन्तिम टवर्ग के बाद स् और तवर्ग को ष् और टवर्ग नहीं होते, नाम् को छोड़कर। (नियम २४ का अपवाद)। षट् + सन्तः = षट् सन्तः। षट् + ते = षट् ते।

(ख) (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्) टवर्ग के बाद नाम्, नवति, नगरी हों तो नियम २४ के अनुसार इनके न को ण होगा। (बाद में नियम २९ के अनुसार ड् को ण् होगा)। षड् + नाम् = षण्णाम्। षड् + नवतिः = षण्णवतिः। षड् + नगर्यः = षण्णगर्यः।

(२६) (तोः षि) तवर्ग के बाद ष हो तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होगा। सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः।

(२७) (झलां जशोऽन्ते) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, झल् पद के अन्तिम अक्षर हों तो। (पद का अर्थ है सुबन्त शब्द या तिङन्त धातुएँ)। जैसे—

दिक् + अम्बरः = दिगम्बरः	चित् + आनन्दः = चिदानन्दः	षट् + एव = षडेव
दिक् + गजः = दिग्गजः	जगत् + ईशः = जगदीशः	षट् + आननः = षडाननः
अच् + अन्तः = अजन्तः	उत् + देश्यम् = उद्देश्यम्	सुप् + अन्तः = सुबन्तः

(२८) (झलां जश् झशि) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हों तो। (विशेष—यह नियम पद के बीच में लगता है और नियम २७ पद के अन्त में। यही दोनों में भेद है)। जैसे—

दघ् + ध = दग्धः	बुध् + धिः = बुद्धिः	लभ् + धः = लब्धः
दुघ् + धम् = दुग्धम्	सिध् + धिः = सिद्धि	क्षुभ् + धः = क्षुब्धः
द्रोघ् + धा = द्रोग्धा	वृध् + धिः = वृद्धिः	आरभ् + धम् = आरब्धम्

(२९) (क) (यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा) पदान्त यर् (ह् के अतिरिक्त सभी व्यंजन) के बाद अनुनासिक (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो यर् को अपने वर्ग का पंचम अक्षर हो जायगा। यह नियम ऐच्छिक है। (ख) (प्रत्यये भाषायां नित्यम्) यदि प्रत्यय का 'म' इत्यादि बाद में होगा तो यह नियम ऐच्छिक नहीं होगा, अपितु नित्य लगेगा।

दिक् + नागः = दिङ्नागः	सद् + मतिः = सन्मतिः	तत् + मात्रम् = तन्मात्रम्
तत् + न = तन्न	पद् + नगः = पन्नगः	तत् + मयम् = तन्मयम्
एतत् + मुरारिः = एतन्मुरारि	षट् + मुखः = षण्मुखः	वाक् + मयम् = वाङ्मयम्

(३०) (तोर्लि) तवर्ग के बाद ल हो तो तवर्ग को भी ल् हो जाता है। अर्थात् (१) त् या द् + ल = ल्ल, (२) न् + ल = ँल्ल। जैसे—

तत् + लयः = तल्लयः	उद् + लेखः = उल्लेखः
तत् + लीन = तल्लीन	विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति

(३१) (उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) उद् के बाद स्था या स्तम्भ् धातु हो तो उसे पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् स्था और स्तम्भ् के स् को थ् होगा। बाद में नियम ३२ के अनुसार थ् का लोप हो जायगा। उद् + स्थानम् = उत्थानम्। उद् = स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्। द् को नियम ३४ से त्।

(३२) (झरो झरि सवर्णे) व्यंजन के बाद झर् (वर्ग के १, २, ३, ४ और श ष स) का विकल्प से लोप होता है, बाद में सवर्ण (वैसा ही) झर् हो तो। उद् + थ्थानम् = उत्थानम्। रुन्ध् + धः = रुन्धः। कृष्णर्द् + धि = कृष्णर्धिः।

(३३) (झयो होऽन्यतरस्याम्) झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद ह् हो तो उसे विकल्पसे पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर हो जाता है। क् या ग् + ह = ग्घ, त् या द् + ह = द्ध। वाग् + हरिः = वाग्घरि, वाग्हरिः। तद् + हितः = तद्धित।

(३४) (खरि च) झलों (१, २, ३, ४, ऊष्म) को चर् (१, उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं, बाद में खर् (१, २, श, ष, स) हो तो। ग् > क्, ज् > च्, द् > त्।

सद् + कारः = सत्कारः	तद् + परः = तत्परः	तज् + छिवः = तच्छिव
उद् + पन्नः = उत्पन्न	उद् + साहः = उत्साहः	दिग् + पालः = दिक्पाल

(३५) (क) (शश्छोऽटि) पदान्त झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद श् हो तो उसको छ् हो जाता है, यदि उस श् के बाद अट् (स्वर, ह्, य्, व्, र्) हो तो। श् को छ् होने पर पूर्ववर्ती द् को नियम २२ से ज् और ज् को नियम ३४ से च्। पूर्ववर्ती त् हो तो नियम २२ से च्। यह नियम विकल्प से लगता है।

तद् (तत्) + शिवः = तच्शिव तच्छिवः	सत् + शील = सच्छील
,, ,, + शिला = तच्छिला, तच्शिला	उत् + श्रायः = उच्छ्रायः

(ख) (छत्वममीति वाच्यम्) श् के बाद अम् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग का ५) हो तो भी श् को विकल्प से छ् होगा। तत् + श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन।

(३६) (मोऽनुस्वारः) पदान्त म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में कोई हल् (व्यजन) हो तो। बाद मे स्वर होगा तो अनुस्वार कदापि नही होगा। जैसे—

हरिम् +	वन्दे =	हरिं वन्दे	सत्यम् +	वद =	सत्यं वद
कार्यम् +	कुरु =	कार्यं कुरु	धर्मम् +	चर =	धर्मं चर

(३७) (नश्चापदान्तस्य झलि) अपदान्त न् और म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद मे झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) हो तो। जैसे—यशान् + सि=यशांसि। पयान् + सि = पयांसि। नम् + स्यति = नंस्यति। आक्रम् + स्यते=आक्रंस्यते। यह नियम पद के बीच में लगता है।

(३८) (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) अनुस्वार के बाद यय् (श, ष, स, ह को छोडकर सभी व्यजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण (अगले वर्ण का पचम अक्षर) हो जाता है। जैसे—

अं + कः =	अङ्कः	अं + चित. =	अञ्चित	शां + तः =	शान्तः
शं + का =	शङ्का	गुं + फित =	गुम्फित.	गुं + फितः =	गुम्फितः

(३९) (वा पदान्तस्य) पद के अन्तिम अनुस्वार के बाद यय् (श, ष, श, ह को छोडकर सभी व्यजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण विकल्प से होगा। यह नियम पदान्त में लगता है। त्वं + करोषि = त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। सम् + गच्छध्वम् = सङ्गच्छध्वम्, संगच्छध्वम्।

(४०) (मो राजि समः क्वौ) सम् के बाद राज् शब्द हो तो सम् के म् को म् ही रहता है। उसको अनुस्वार नहीं होता। सम् + राट् = सम्राट्। सम्राजौ, सम्राजः।

(४१) (ङ्णोः कुक्टुक्शरि) ङ् या ण् के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विकल्प से बीच मे क् या ट् जुड जाते है। ङ् के बाद क् और ण् के बाद ट्। प्राङ् + षष्ठः = प्राङ्क्षष्ठ. प्राङ्षष्ठ.। सुगण् + षष्ठः = सुगण्ट्षष्ठ., सुगण्षष्ठः।

(४२) (डः सि धुट्) ड् के बाद स हो बीच मे ध् विकल्प से जुड जाता है। नियम ३४ से ध् को त् और पूर्ववर्ती ड् को ट्। षड् + सन्त = षट्त्सन्त. षट्सन्त.।

(४३) (नश्च) न् के बाद स हो तो बीच में विकल्प से ध् जुड जाता है। नियम ३४ से ध् को त्। सन् + स. = सन्त्सः, सन्सः।

(४४) (शि तुक्) पदान्त न् के बाद श् हो तो विकल्प से बीच में त् जुड जाता है। नियम ३५ से श् को छ्। सन् + शम्भु. = सञ्च्छम्भुः, सञ्छम्भु.।

(४५) (ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्) ह्रस्व स्वर के बाद ङ् ण् न् हों और बाद में कोई स्वर हो तो बीच मे एक ङ्, ण्, न् और जुड जाता है। जैसे—प्रत्यङ् + आत्मा=प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण् + ईश.=सुगण्णीश.। सन् + अच्युत.=सन्नच्युत.।

(४६)(क) (रषाभ्यां नो णः समानपदे) र्, ष् या ऋ ॠ के बाद न् को ण् हो जाता है। जैसे—कीर् + नः = कीर्णः, पूर् + नः = पूर्ण.। पूष् + ना = पूष्णा। पितृ + नाम् = पितृणाम्। (ख) (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि) र् और ष् के बाद न् को ण् होगा, बीच मे स्वर, ह्, अन्तस्थ, कवर्ग, पवर्ग, आ, न् हो तो भी। रामेन = रामेण। (ग) (पदान्तस्य) पद के अन्तिम न् को ण् नहीं होता। रामान् का रामान् ही रहेगा।

(४७) (क) (अपदान्तस्य मूर्धन्यः, इण्कोः, आदेशप्रत्यययोः) अ आ को छोडकर सभी स्वर, ह, अन्तःस्थ और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि वह किसी के स्थान पर आदेश हुआ हो या प्रत्यय का स् हो। पद के अन्तिम स् को ष् नहीं होगा। जैसे—रामे + सु = रामेषु, हरि + सु = हरिषु। अधुक् + सत् = अधुक्षत्। (ख) (नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि) इण् (अ आ से भिन्न स्वर, ह, अन्तःस्थ) और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि बीच में नुम् (न्), विसर्ग (ः) और श् ष् स् मे से कोई एक हो तो भी। धनून् + सि = धनूंषि। पिपठीष् + सु = पिपठीष्षु। पिपठीः + सु = पिपठीःषु।

(४८) (समः सुटि, संपुंकानां सो वक्तव्यः) सम् + स्कर्ता में म् के स्थान पर रु होकर स् हो जाता है और उससे पहले अनुस्वार (ं) या अनुनासिक ँ लग जाता है। बीच् के एक स् का लोप भी हो जायगा। सम् + स्कर्ता = सँस्कर्ता, संस्कर्ता। सम् + कृ धातु होने पर इसी प्रकार ं स् लगाकर सन्धि होगी। संस्करोति, संस्कृतम्, संस्कार आदि।

(४९) (पुमः खय्यम्परे) पुम् के म् को रु होकर नियम ४८ के अनुसार स् हो जाएगा, बाद में कोकिल, पुत्र आदि शब्द हों तो। स् से पहले ं या ँ लग जाएँगे। पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः। पुम् + पुत्र = पुंस्पुत्रः।

(५०) (नश्छव्यप्रशान्) पद के अन्तिम न् को रु (ः, स्) होता है, यदि छव् (च् छ्, ट्, ठ्, त्, थ्) बाद में हो और छव् के बाद अम् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के पञ्चम अक्षर) हो तो। प्रशान् शब्द मे नियम नहीं लगेगा। न् को स् होने पर उससे पहले ं या ँ लग जाएँगे। इस नियम का रूप होगा—न् + छव् = ँ स् + छव् या ं स् + छव्। नियम २२ के अनुसार श्चुत्व प्राप्त होगा तो होगा।

कस्मिन् + चित् = कस्मिंश्चित्	शार्ङ्गिन् + छिन्धि = शार्ङ्गिंश्छिन्धि
धीमान् + च = धीमांश्च	चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रिंस्त्रायस्व
तस्मिन् + तरौ = तस्मिंस्तरौ	तस्मिन् + तथा = तस्मिंस्तथा

(५१) (कानाम्रेडिते) कान् + कान् में पहले कान् के न् को रु होकर स् होगा और उससे पहले ँ या ं होगा। कान् + कान् = काँस्कान्, कांस्कान्।

(५२) (क) (छे च) ह्रस्व स्वर के बाद छ हो तो बीच में त् लग जाता है। नियम २२ से त् को च् हो जाएगा। स्व + छाया = स्वच्छाया। शिव + छाया = शिवच्छाया। स्व + छन्दः = स्वच्छन्दः (ख) (दीर्घात्) दीर्घ स्वर के बाद छ हो तो भी बीच में त् लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। चे + छिद्यते = चेच्छिद्यते। (ग) (पदान्ताद् वा) पद के अन्तिम दीर्घ अक्षर के बाद छ हो तो विकल्प से त् लगेगा। लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया। (घ) (आङ्माङोश्च) आ और मा के बाद छ होगा तो त् नित्य लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। आ + छादयति = आच्छादयति। मा + छिदत् = माच्छिदत्।

(ग) विसर्ग-सन्धि (स्वादि-सन्धि)

(५३) (ससजुषो रुः) पद के अन्तिम स् को रु (र्) होता है। सजुष् शब्द के ष् को भी रु होता है। (सूचना—इस रु को साधारणतया नियम ५४ से विसर्ग होकर विसर्ग : ही शेष रहता है। जैसे—राम + स् = रामः, कृष्ण + स् = कृष्णः। इसको ही नियम ६६, ६७, ६८ से उ या य् होता है। जहाँ उ या य् नहीं होगा, वहाँ र् शेष रहता है। अतः अ आ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद स् या विसर्ग का र् शेष रहता है, बाद में कोई स्वर या व्यजन (वर्ग के ३, ४, ५ हो तो)। जैसे—

हरिः + अवदत् = हरिरवदत्	वधूः + एषा = वधूरेषा
शिशुः + आगच्छत् = शिशुरागच्छत्	गुरो + भाषणम् = गुरोर्भाषणम्
पितुः + इच्छा = पितुरिच्छा	हरेः + द्रव्यम् = हरेर्द्रव्यम्

(५४) (खरवसानयोर्विसर्जनीयः) र् को विसर्ग होता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो या कुछ न हो तो। पुनर् + पृच्छति = पुनः पृच्छति। राम + स् (र्) = रामः। (सूचना—पु० शब्दो के प्रथमा एक० मे जो विसर्ग दीखता है, वह स् का ही विसर्ग है। उसको नियम ५३ से रु (र्) होता है और नियम ५४ से र् को विसर्ग (:)।

(५५) (विसर्जनीयस्य सः) विसर्ग के बाद खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो तो विसर्ग को स् हो जाता है। (श् या चवर्ग बाद मे हो तो नियम २२ से श्चुत्व सन्धि भी)। जैसे—

हरिः + त्रायते = हरिस्त्रायते	विष्णु + त्राता = विष्णुस्त्राता
रामः + तिष्ठति = रामस्तिष्ठति	बालः + चलति = बालश्चलति
कः + चित् = कश्चित्	जनाः + तिष्ठन्ति = जनास्तिष्ठन्ति

(५६) (वा शरि) विसर्ग के बाद शर् (श, ष स) हो तो विसर्ग को विसर्ग और स् दोनों होते है। श्चुत्व या ष्टुत्व (नियम २२, २४) यदि प्राप्त होंगे तो लगेंगे। जैसे—

हरिः + शेते = हरिःशेते, हरिश्शेते	रामः + षष्ठः = रामष्षष्ठः
रामः + शेते = रामःशेते, रामश्शेते	बालः + स्वपिति = बालस्स्वपिति

(५७) (कस्कादिषु च) कस्क आदि शब्दों में विसर्ग से पहले अ या आ होगा तो विसर्ग को स् होगा, यदि इण् (इ, उ) होगा तो ष् होगा। कः + कः = कस्कः। कौतः + कुतः = कौतस्कुतः। सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका। धनु + कपालम् = धनुष्कपालम्। भाः + करः = भास्करः।

(५८) (सोऽपदादौ, पाशकल्पककाम्येष्विति०) पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को स् हो जाएगा। पयः + पाशम् = पयस्पाशम्। यशः + कल्पम् = यशस्कल्पम्। यशः + कम् = यशस्कम्। यशस्काम्यति।

(५९) (इणः षः) पाश, कल्प, क, काम्य प्रत्यय बाद मे हो तो विसर्ग को ष् हो जायगा, यदि वह विसर्ग इ, उ के बाद होगा तो। सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्कल्पम्, सर्पिष्कम्।

(६०) (नमस्पुरसोर्गत्योः) गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्ग को स् होता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। (कृ धातु बाद में होती है तो नमस्, पुरस् गतिसंज्ञक होते हैं) नमः + करोति = नमस्करोति। पुरः + करोति = पुरस्करोति।

(६१) (इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य) उपधा (अन्तिम से पूर्ववर्ण) मे इ या उ हो तो उसके विसर्ग को ष् होता है, बाद मे कवर्ग या पवर्ग हो तो। यह विसर्ग प्रत्यय का नहीं होना चाहिए। निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्। निः + क्रान्तः = निष्क्रान्त। आविः + कृतम् = आविष्कृतम्। दुः + कृतम् = दुष्कृतम्।

(६२) (तिरसोऽन्यतरस्याम्) तिरस् के विसर्ग को स् विकल्प से होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। तिरः + करोति = तिरस्करोति, तिरःकरोति। तिरः + कृतम् = तिरस्कृतम्।

(६३) (इसुसोः सामर्थ्ये) इस् और उस् के विसर्ग को विकल्प से ष् होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद मे हो तो। दोनों पदों में मिलने की सामर्थ्य होनी चाहिए, तभी ष् होगा। सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति, सर्पिःकरोति। धनुः + करोति = धनुष्करोति, धनुःकरोति।

(६४) (नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य) समास होने पर इस् और उस् के विसर्ग को नित्य ष् होगा, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। इस् और उस् वाला शब्द उत्तरपद (बाद के पद) में नहीं होना चाहिए। सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका।

(६५) (अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य) अ के बाद विसर्ग को स् नित्य होता है, समास में, बाद में कृ कम् आदि हों तो। यह विसर्ग अव्यय का नहीं होना चाहिए और उत्तरपद में न हो। अयः + कारः = अयस्कारः। अयः + कामः = अयस्कामः। इसी प्रकार अयस्कंस, अयस्कुम्भ, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा, अयस्कर्णी।

(६६) (अतो रोरप्लुतादप्लुते) ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या ः) को उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ हो तो। (सूचना—इस उ को पूर्ववर्ती अ के साथ सन्धि-नियम ४ से गुण करके ओ हो जाता है और बाद के अ को सन्धि नियम ७ से पूर्वरूप सन्धि होती है। अतएव अ र् या अः + अ = ओऽ होता है।) जैसे—

शिवः (शिव र्) + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः	कः + अयम् = कोऽयम्
रामः (राम र्) + अस्ति = रामोऽस्ति	रामः + अवदत् = रामोऽवदत्
कः (क र्) + अपि = कोऽपि	देवः + अधुना = देवोऽधुना

(६७) (हशि च) ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या ः) को उ हो जाता है, बाद में हश् (वर्ग के ३, ४, ५ ह, अन्तःस्थ) हो तो। सूचना—सन्धिनियम ६६ बाद में अ हो तब लगता है, यह बाद में हश् हो तो। उ करने के बाद सन्धिनियम ४ से अ + उ को गुण होकर ओ होगा। अतः अः + हश् = ओ + हश् होगा, अर्थात् अः को ओ होगा।)

शिवः (शिव र्) + वन्द्यः = शिवो वन्द्यः	देवः + गच्छति = देवो गच्छति
रामः (राम र्) + वदति = रामो वदति	बालः + हसति = बालो हसति

प्रत्यय-परिचय (धातु का मूलरूप कोष्ठ में है)

धातु	अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ।शानच्	क्त्वा	ल्यप्
अद्	(अद, २ प० खाना)	जग्धः	जग्धवान्	अदन्	जग्ध्वा	प्रजग्ध्य
अश्	(अशू, ५ आ०, व्याप्त०)	अष्टः	अष्टवान्	अश्नुवान·	अशित्वा	समश्य
अस्	(अस, २ प०, होना)	भूत.	भूतवान्	सन्	भूत्वा	सभूय
आप्	(आप्लृ, ५ प०, पाना)	आप्तः	आप्तवान्	आप्नुवन्	आप्त्वा	प्राप्य
आस्	(आस, २ आ०, बैठना)	आसित.	आसितवान्	आसीन.	आसित्वा	उपास्य
इ	(इण्, २ प०, जाना)	इत	इतवान्	यन्	इत्वा	प्रेत्य
इ, अधि +	(इङ्, २आ०, पढना)	अधीतः	अधीतवान्	अधीयान	—	अधीत्य
इष्	(इष, ६ प०, चाहना)	इष्ट	इष्टवान्	इच्छन्	इष्ट्वा	समिष्य
ईक्ष्	(ईक्ष, १ आ०, देखना)	ईक्षित·	ईक्षितवान्	ईक्षमाणः	ईक्षित्वा	समीक्ष्य
कथ्	(कथ, १० उ०, कहना)	कथितः	कथितवान्	कथयन्	कथयित्वा	सकथ्य
कुप्	(कुप, ४ प०, क्रोध०)	कुपित	कुपितवान्	कुप्यन्	कोपित्वा	प्रकुप्य
कृ	(डुकृञ्, ८ उ०, करना)	कृत	कृतवान्	कुर्वन्	कृत्वा	उपकृत्य
कृष्	(कृष, १ प०, जोतना)	कृष्ट	कृष्टवान्	कर्षन्	कृष्ट्वा	प्रकृष्य
कॄ	(कॄ, ६ प०, बखेरना)	कीर्ण.	कीर्णवान्	किरन्	कीर्त्वा	प्रकीर्य
क्री	(डुक्रीञ्, ९ उ०, खरीदना)	क्रीतः	क्रीतवान्	क्रीणन्	क्रीत्वा	विक्रीय
क्षिप्	(क्षिप, ६ उ०, फेकना)	क्षिप्त·	क्षिप्तवान्	क्षिपन्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य
गम्	(गम्लृ, १ प०, जाना)	गत.	गतवान्	गच्छन्	गत्वा	आगत्य
गॄ	(गॄ, ६ प०, निगलना)	गीर्णः	गीर्णवान्	गिरन्	गीर्त्वा	उद्गीर्य
ग्रह्	(ग्रह, ९ उ०, लेना)	गृहीत.	गृहीतवान्	गृह्णन्	गृहीत्वा·	सगृह्य
घ्रा	(घ्रा, १ प०, सूँघना)	घ्रातः	घ्रातवान्	जिघ्रन्	घ्रात्वा	आघ्राय
चि	(चिञ्, ५ उ०, चुनना)	चित.	चितवान्	चिन्वन्	चित्वा	सचित्य
चिन्त्	(चिति, १० उ०, सोचना)	चिन्तितः	चिन्तितवान्	चिन्तयन्	चिन्तयित्वा	सचिन्त्य
चुर्	(चुर, १० उ०, चुराना)	चोरितः	चोरितवान्	चोरयन्	चोरयित्वा	सचोर्य
छिद्	(छिदिर्, ७ उ०, काटना)	छिन्न.	छिन्नवान्	छिन्दन्	छित्त्वा	सछिद्य
जन्	(जनी, ४ आ०, पैदा होना)	जातः	जातवान्	जायमान.	जनित्वा	सजाय
जि	(जि, १ प०, जीतना)	जित.	जितवान्	जयन्	जित्वा	विजित्य
ज्ञा	(ज्ञा, ९ उ०, जानना)	ज्ञातः	ज्ञातवान्	जानन्	ज्ञात्वा	विज्ञाय
तन्	(तनु, ८ उ०, फैलाना)	तत.	ततवान्	तन्वन्	तनित्वा	वितत्य
तुद्	(तुद, ६ उ०, दुःख देना)	तुन्नः	तुन्नवान्	तुदन्	तुत्त्वा	सतुद्य
त्यज्	(त्यज, १ प०, छोडना)	त्यक्तः	त्यक्तवान्	त्यजन्	त्यक्त्वा	परित्यज्य
दा	(डुदाञ्, ३ उ०, देना)	दत्त.	दत्तवान्	ददत्	दत्त्वा	आदाय
दिव्	(दिवु, ४ प०, चमकना)	द्यूतः	द्यूतवान्	दीवयन्	देवित्वा	सदीव्य

तुमन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्मवाच्य	णिच्	सन्
अत्तुम्	अत्तव्यम्	अत्ता	अदनम्	अद्यते	आदयति	जिघत्सति
अशितुम्	अशितव्यम्	अशिता	अशनम्	अश्यते	आशयति	अशिशिषते
भवितुम्	भवितव्यम्	भविता	भवनम्	भूयते	भावयति	बुभूषति
आप्तुम्	आप्तव्यम्	आप्ता	आपनम्	आप्यते	आपयति	ईप्सति
आसितुम्	आसितव्यम्	आसिता	आसनम्	आस्यते	आसयति	आसिसिषते
एतुम्	एतव्यम्	एता	अयनम्	ईयते	गमयति	जिगमिषति
अध्येतुम्	अध्येतव्यम्	अध्येता	अध्ययनम्	अधीयते	अध्यापयति	अधिजिगासते
एषितुम्	एषितव्यम्	एषिता	एषणम्	इष्यते	एषयति	एषिषति
ईक्षितुम्	ईक्षितव्यम्	ईक्षिता	ईक्षणम्	ईक्ष्यते	ईक्षयति	ईचिक्षिषते
कथयितुम्	कथयितव्यम्	कथयिता	कथनम्	कथ्यते	कथयति	चिकथयिषति
कोपितुम्	कोपितव्यम्	कोपिता	कोपनम्	कुप्यते	कोपयति	चुकोपिषति
कर्तुम्	कर्तव्यम्	कर्ता	करणम्	क्रियते	कारयति	चिकीर्षति
कर्ष्टुम्	कर्ष्टव्यम्	कर्ष्टा	कर्षणम्	कृष्यते	कर्षयति	चिकृक्षति
करितुम्	करितव्यम्	करिता	करणम्	कीर्यते	कारयति	चिकरिषति
क्रेतुम्	क्रेतव्यम्	क्रेता	क्रयणम्	क्रीयते	क्रापयति	चिक्रीषति
क्षेप्तुम्	क्षेप्तव्यम्	क्षेप्ता	क्षेपणम्	क्षिप्यते	क्षेपयति	चिक्षिप्सति
गन्तुम्	गन्तव्यम्	गन्ता	गमनम्	गम्यते	गमयति	जिगमिषति
गरितुम्	गरितव्यम्	गरिता	गरणम्	गीर्यते	गारयति	जिगरिषति
ग्रहीतुम्	ग्रहीतव्यम्	ग्रहीता	ग्रहणम्	गृह्यते	ग्राहयति	जिघृक्षति
घ्रातुम्	घ्रातव्यम्	घ्राता	घ्राणम्	घ्रायते	घ्रापयति	जिघ्रासति
चेतुम्	चेतव्यम्	चेता	चयनम्	चीयते	चापयति	चिचीषति
चिन्तयितुम्	चिन्तयितव्यम्	चिन्तयिता	चिन्तनम्	चिन्त्यते	चिन्तयति	चिचिन्तयिषति
चोरयितुम्	चोरयितव्यम्	चोरयिता	चोरणम्	चोर्यते	चोरयति	चुचोरयिषति
छेत्तुम्	छेत्तव्यम्	छेत्ता	छेदनम्	छिद्यते	छेदयति	चिच्छित्सति
जनितुम्	जनितव्यम्	जनिता	जननम्	जायते	जनयति	जिजनिषते
जेतुम्	जेतव्यम्	जेता	जयनम्	जीयते	जापयति	जिगीषति
ज्ञातुम्	ज्ञातव्यम्	ज्ञाता	ज्ञानम्	ज्ञायते	ज्ञापयति	जिज्ञासते
तनितुम्	तनितव्यम्	तनिता	तननम्	तन्यते	तानयति	तितसति
तोत्तुम्	तोत्तव्यम्	तोत्ता	तोदनम्	तुद्यते	तोदयति	तुतुत्सति
त्यक्तुम्	त्यक्तव्यम्	त्यक्ता	त्यजनम्	त्यज्यते	त्याजयति	तित्यक्षति
दातुम्	दातव्यम्	दाता	दानम्	दीयते	दापयति	दित्सति
देवितुम्	देवितव्यम्	देविता	देवनम्	दीव्यते	देवयति	दिदेविषति

धातु	अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ शानच्	क्त्वा	ल्यप्
दुह्	(दुह्, २ उ०, दुहना)	दुग्धः	दुग्धवान्	दुहन्	दुग्ध्वा	सदुह्य
दृश्	(दृशिर्, १ प०, देखना)	दृष्टः	दृष्टवान्	पश्यन्	दृष्ट्वा	सदृश्य
धा	(डुधाञ्, ३ उ०, धारण०)	हितः	हितवान्	दधत्	हित्वा	विधाय
नम्	(णम, १ प०, झुकना)	नतः	नतवान्	नमन्	नत्वा	प्रणम्य
नश्	(णश, ४ प०, नष्ट होना)	नष्ट·	नष्टवान्	नश्यन्	नशित्वा	विनश्य
नी	(णीञ्, १ उ०, ले जाना)	नीतः	नीतवान्	नयन्	नीत्वा	आनीय
नृत्	(नृती, ४ प०, नाचना)	नृत्तः	नृत्तवान्	नृत्यन्	नर्तित्वा	प्रनृत्य
पच्	(डुपचष्, १ उ०, पकाना)	पक्वः	पक्ववान्	पचन्	पक्त्वा	सपच्य
पठ्	(पठ, १ प०, पढ़ना)	पठितः	पठितवान्	पठन्	पठित्वा	सपठ्य
पद्	(पद, ४ आ०, जाना)	पन्नः	पन्नवान्	पद्यमान·	पत्त्वा	विपद्य
पा	(पा, १ प०, पीना)	पीत·	पीतवान्	पिबन्	पीत्वा	निपाय
पा	(पा, २ प०, रक्षा करना)	पात·	पातवान्	पान्	पात्वा	प्रपाय
प्रच्छ्	(प्रच्छ, ६ प०, पूछना)	पृष्ट	पृष्टवान्	पृच्छन्	पृष्ट्वा	सपृच्छ्य
बन्ध्	(बन्ध, ९ प०, बाँधना)	बद्ध·	बद्धवान्	बध्नन्	बद्ध्वा	सबध्य
ब्रू	(ब्रूञ्, २ उ०, बोलना)	उक्त·	उक्तवान्	ब्रुवन्	उक्त्वा	प्रोच्य
भक्ष्	(भक्ष, १० उ०, खाना)	भक्षितः	भक्षितवान्	भक्षयन्	भक्षयित्वा	समक्ष्य
भञ्ज्	(भञ्जो, ७ प०, तोड़ना)	भग्न·	भग्नवान्	भञ्जन्	भक्त्वा	विभज्य
भिद्	(भिदिर् ७ उ०, तोड़ना)	भिन्नः	भिन्नवान्	भिन्दन्	भित्त्वा	सभिद्य
भी	(ञिभी, ३ प०, डरना)	भीतः	भीतवान्	बिभ्यत्	भीत्वा	सभीय
भुज्	(भुज ७ उ०, पालना, खाना)	भुक्तः	भुक्तवान्	भुञ्जान	भुक्त्वा	सभुज्य
भू	(भू, १ प०, होना)	भूत·	भूतवान्	भवन्	भूत्वा	सभूय
भृ	(डुभृञ्, ३ प०, पालना)	भृत	भृतवान्	बिभ्रत्	भृत्वा	सभृत्य
भ्रम्	(भ्रमु, ४ प०, घूमना)	भ्रान्त·	भ्रान्तवान्	भ्राम्यन्	भ्रान्त्वा	सभ्रम्य
मन्थ्	(मन्थ, ९ प०, मथना)	मथित·	मथितवान्	मथ्नन्	मन्थित्वा	समथ्य
मा	(माङ्, ३ आ०, नापना)	मित	मितवान्	मिमानः	मित्वा	उपमीय
मुच्	(मुच्लृ, ६, उ०, छोड़ना)	मुक्त·	मुक्तवान्	मुञ्चन्	मुक्त्वा	विमुच्य
मुद्	(मुद, १ आ०, प्रसन्न०)	मुदित·	मुदितवान्	मोदमान·	मुदित्वा	प्रमुद्य
मृ	(मृङ्, ६ आ०, मरना)	मृतः	मृतवान्	म्रियमाण·	मृत्वा	प्रमृत्य
या	(या, २ प०, जाना)	यातः	यातवान्	यान्	यात्वा	प्रयाय
याच्	(डुयाचृ, १ उ०, माँगना)	याचित·	याचितवान्	याचमानः	याचित्वा	प्रयाच्य
युज्	(युजिर्, ७ उ०, मिलाना)	युक्त·	युक्तवान्	युञ्जन्	युक्त्वा	प्रयुज्य
युध्	(युध, ४ आ०, लड़ना)	युद्ध·	युद्धवान्	युध्यमान·	युद्ध्वा	प्रयुध्य
रक्ष्	(रक्ष, १ प०, रक्षा०)	रक्षितः	रक्षितवान्	रक्षन्	रक्षित्वा	सरक्ष्य
रुद्	(रुदिर्, २ प०, रोना)	रुदितः	रुदितवान्	रुदन्	रुदित्वा	प्ररुद्य

तुमन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
दोग्धुम्	दोग्धव्यम्	दोग्धा	दोहनम्	दुह्यते	दोहयति	दुधुक्षति
द्रष्टुम्	द्रष्टव्यम्	द्रष्टा	दर्शनम्	दृश्यते	दर्शयति	दिदृक्षते
धातुम्	धातव्यम्	धाता	धानम्	धीयते	धापयति	धित्सति
नन्तुम्	नन्तव्यम्	नन्ता	नमनम्	नम्यते	नमयति	निनसति
नशितुम्	नशितव्यम्	नशिता	नशनम्	नश्यते	नाशयति	निनशिषति
नेतुम्	नेतव्यम्	नेता	नयनम्	नीयते	नाययति	निनीषति
नर्तितुम्	नर्तितव्यम्	नर्तिता	नर्तनम्	नृत्यते	नर्तयति	निनर्तिषति
पक्तुम्	पक्तव्यम्	पक्ता	पचनम्	पच्यते	पाचयति	पिपक्षति
पठितुम्	पठितव्यम्	पठिता	पठनम्	पठ्यते	पाठयति	पिपठिषति
पत्तुम्	पत्तव्यम्	पत्ता	पदनम्	पद्यते	पादयति	पित्सते
पातुम्	पातव्यम्	पाता	पानम्	पीयते	पाययति	पिपासति
पातुम्	पातव्यम्	पाता	पानम्	पायते	पालयति	पिपासति
प्रष्टुम्	प्रष्टव्यम्	प्रष्टा	प्रच्छनम्	पृच्छयते	प्रच्छयति	पिप्रच्छिषति
बन्धुम्	बन्धव्यम्	बन्धा	बन्धनम्	बध्यते	बन्धयति	बिभन्त्सति
वक्तुम्	वक्तव्यम्	वक्ता	वचनम्	उच्यते	वाचयति	विवक्षति
भक्षयितुम्	भक्षयितव्यम्	भक्षयिता	भक्षणम्	भक्ष्यते	भक्षयति	बिभक्षयिषति
भङ्क्तुम्	भङ्क्तव्यम्	भङ्क्ता	भञ्जनम्	भज्यते	भञ्जयति	बिभङ्क्षति
भेत्तुम्	भेत्तव्यम्	भेत्ता	भेदनम्	भिद्यते	भेदयति	बिभित्सति
भेतुम्	भेतव्यम्	भेता	भयनम्	भीयते	भाययति	बिभीषति
भोक्तुम्	भोक्तव्यम्	भोक्ता	भोजनम्	भुज्यते	भोजयति	बुभुक्षति-ते
भवितुम्	भवितव्यम्	भविता	भवनम्	भूयते	भावयति	बुभूषति
भर्तुम्	भर्तव्यम्	भर्ता	भरणम्	भ्रियते	भारयति	बुभूर्षति
भ्रमितुम्	भ्रमितव्यम्	भ्रमिता	भ्रमणम्	भ्रम्यते	भ्रमयति	बिभ्रमिषति
मन्थितुम्	मन्थितव्यम्	मन्थिता	मन्थनम्	मथ्यते	मन्थयति	मिमन्थिषति
मातुम्	मातव्यम्	माता	मानम्	मीयते	माययति	मित्सते
मोक्तुम्	मोक्तव्यम्	मोक्ता	मोचनम्	मुच्यते	मोचयति	मुमुक्षते
मोदितुम्	मोदितव्यम्	मोदिता	मोदनम्	मुद्यते	मोदयति	मुमुदिषते
मर्तुम्	मर्तव्यम्	मर्ता	मरणम्	म्रियते	मारयति	मुमूर्षति
यातुम्	यातव्यम्	याता	यानम्	यायते	यापयति	यियासति
याचितुम्	याचितव्यम्	याचिता	याचनम्	याच्यते	याचयति	यियाचिषति
योक्तुम्	योक्तव्यम्	योक्ता	योजनम्	युज्यते	योजयति	युयुक्षति-ते
योद्धुम्	योद्धव्यम्	योद्धा	योधनम्	युध्यते	योधयति	युयुत्सते
रक्षितुम्	रक्षितव्यम्	रक्षिता	रक्षणम्	रक्ष्यते	रक्षयति	रिरक्षिषति
रोदितुम्	रोदितव्यम्	रोदिता	रोदनम्	रुद्यते	रोदयति	रुरुदिषति

तुमुन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
रोद्धुम्	रोद्धव्यम्	रोद्धा	रोधनम्	रुध्यते	रोधयति	रुरुत्सति
लब्धुम्	लब्धव्यम्	लब्धा	लभनम्	लभ्यते	लम्भयति	लिप्सते
लेखितुम्	लेखितव्यम्	लेखिता	लेखनम्	लिख्यते	लेखयति	लिलिखिषति
लेढुम्	लेढव्यम्	लेढा	लेहनम्	लिह्यते	लेहयति	लिलिक्षति-ते
वदितुम्	वदितव्यम्	वदिता	वदनम्	उद्यते	वादयति	विवदिषति
वस्तुम्	वस्तव्यम्	वस्ता	वसनम्	उष्यते	वासयति	विवत्सति
वोढुम्	वोढव्यम्	वोढा	वहनम्	उह्यते	वाहयति	विवक्षति-ते
वेदितुम्	वेदितव्यम्	वेदिता	वेदनम्	विद्यते	वेदयति	विविदिषति
वर्तितुम्	वर्तितव्यम्	वर्तिता	वर्तनम्	वृत्यते	वर्तयति	विवर्तिषते
वर्धितुम्	वर्धितव्यम्	वर्धिता	वर्धनम्	वृध्यते	वर्धयति	विवर्धिषते
शक्तुम्	शक्तव्यम्	शक्ता	शकनम्	शक्यते	शाकयति	शिक्षति
शासितुम्	शासितव्यम्	शासिता	शासनम्	शिष्यते	शासयति	शिशासिषति
शयितुम्	शयितव्यम्	शयिता	शयनम्	शय्यते	शाययति	शिशयिषते
शातुम्	शातव्यम्	शाता	शानम्	शायते	शाययति	शिशासति
श्रमितुम्	श्रमितव्यम्	श्रमिता	श्रमणम्	श्राम्यते	श्रमयति	शिश्रमिषति
श्रोतुम्	श्रोतव्यम्	श्रोता	श्रवणम्	श्रूयते	श्रावयति	शुश्रूषते
सत्तुम्	सत्तव्यम्	सत्ता	सदनम्	सद्यते	सादयति	सिसत्सति
सोढुम्	सोढव्यम्	सोढा	सहनम्	सह्यते	साहयति	सिसहिषते
सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेविता	सेवनम्	सेव्यते	सेवयति	सिसेविषति
सोतुम्	सोतव्यम्	सोता	सवनम्	सूयते	सावयति	सुसूषति
सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेविता	सेवनम्	सेव्यते	सेवयति	सिसेविषते
सातुम्	सातव्यम्	साता	सानम्	सीयते	साययति	सिषासति
स्तोतुम्	स्तोतव्यम्	स्तोता	स्तवनम्	स्तूयते	स्तावयति	तुष्टूषति
स्थातुम्	स्थातव्यम्	स्थाता	स्थानम्	स्थीयते	स्थापयति	तिष्ठासति
स्प्रष्टुम्	स्प्रष्टव्यम्	स्प्रष्टा	स्पर्शनम्	स्पृश्यते	स्पर्शयति	पिस्पृक्षति
स्मर्तुम्	स्मर्तव्यम्	स्मर्ता	स्मरणम्	स्मर्यते	स्मारयति	सुस्मूर्षते
स्वप्तुम्	स्वप्तव्यम्	स्वप्ता	स्वपनम्	सुप्यते	स्वापयति	सुषुप्सति
हन्तुम्	हन्तव्यम्	हन्ता	हननम्	हन्यते	घातयति	जिघांसति
हसितुम्	हसितव्यम्	हसिता	हसनम्	हस्यते	हासयति	जिहसिषति
हातुम्	हातव्यम्	हाता	हानम्	हीयते	हापयति	जिहासति
हिंसितुम्	हिंसितव्यम्	हिंसिता	हिंसनम्	हिंस्यते	हिंसयति	जिहिंसिषति
होतुम्	होतव्यम्	होता	हवनम्	हूयते	हावयति	जुहूषति
हर्तुम्	हर्तव्यम्	हर्ता	हरणम्	ह्रियते	हारयति	जिहीर्षति
ह्वेतुम्	ह्वेतव्यम्	ह्वेता	ह्वयणम्	ह्वीयते	ह्वेपयति	जिह्वीषति

धातु	अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ	शानच्	क्त्वा	ल्यप्
रुध् (रुधिर्, ७ उ०, रोकना)		रुद्ध॰	रुद्धवान्	रुन्धन्		रुद्ध्वा	विरुध्य
लभ् (डुलभष्, १ आ०, पाना)		लब्ध.	लब्धवान्		लभमानः	लब्ध्वा	उपलभ्य
लिख् (लिख, ६ प०, लिखना)		लिखित.	लिखितवान्	लिखन्		लिखित्वा	आलिख्य
लिह् (लिह, २ उ०, चाटना)		लीढः	लीढवान्	लिहन्		लीढ्वा	संलिह्य
वद् (वद, १ प०, बोलना)		उदितः	उदितवान्	वदन्		उदित्वा	अनूद्य
वस् (वस, १ प०, रहना)		उषितः	उषितवान्	वसन्		उषित्वा	प्रोष्य
वह् (वह, १ उ०, ढोना)		ऊढः	ऊढवान्	वहन्		ऊढ्वा	प्रोह्य
विद् (विद, २ प०, जानना)		विदितः	विदितवान्	विदन्		विदित्वा	संविद्य
वृत् (वृतु, १ आ०, होना)		वृत्तः	वृत्तवान्		वर्तमानः	वर्तित्वा	निवृत्य
वृध् (वृधु, १ आ०, बढना)		वृद्ध.	वृद्धवान्		वर्धमान.	वर्धित्वा	संवृध्य
शक् (शक्ल, ५ प०, सकना)		शक्त.	शक्तवान्	शक्नुवन्		शक्त्वा	संशक्य
शास् (शासु, २ प०, शिक्षा०)		शिष्ट	शिष्टवान्	शासत्		शिष्ट्वा	अनुशिष्य
शी (शीङ्, २ आ०, सोना)		शयितः	शयितवान्		शयानः	शयित्वा	संशय्य
शो (शो, ४ प०, छीलना)		शात.	शातवान्	श्यन्		शात्वा	संशाय
श्रम् (श्रमु, ४ प०, श्रम०)		श्रान्त॰	श्रान्तवान्	श्राम्यन्		श्रमित्वा	परिश्रम्य
श्रु (श्रु, १ प०, सुनना)		श्रुत.	श्रुतवान्	शृण्वन्		श्रुत्वा	संश्रुत्य
सद् (षद्लृ, १ प०, बैठना)		सन्न	सन्नवान्	सीदन्		सत्त्वा	निषद्य
सह् (षह, १ आ०, सहना)		सोढः	सोढवान्		सहमान.	सोढ्वा	संसह्य
सिव् (षिवु, ४ प०, सीना)		स्यूतः	स्यूतवान्	सीव्यन्		सेवित्वा	संसीव्य
सु (षुञ्, ५ उ०, निचोड़ना)		सुत.	सुतवान्	सुन्वन्		सुत्वा	प्रसुत्य
सेव् (षेवृ, १ आ०, सेवा०)		सेवितः	सेवितवान्		सेवमान.	सेवित्वा	संसेव्य
सो (षो, ४ प०, नष्ट होना)		सित.	सितवान्	स्यन्		सित्वा	अवसाय
स्तु (ष्टुञ्, २ उ०, स्तुति०)		स्तुतः	स्तुतवान्	स्तुवन्		स्तुत्वा	प्रस्तुत्य
स्था (ष्ठा, १ प०, रुकना)		स्थित॰	स्थितवान्	तिष्ठन्		स्थित्वा	प्रस्थाय
स्पृश् (स्पृश, ६ प० छूना)		स्पृष्ट.	स्पृष्टवान्	स्पृशन्		स्पृष्ट्वा	संस्पृश्य
स्मृ (स्मृ, १ प०, स्मरण०)		स्मृतः	स्मृतवान्	स्मरन्		स्मृत्वा	विस्मृत्य
स्वप् (ञिष्वप्, २ प०, सोना)		सुप्त.	सुप्तवान्	स्वपन्		सुप्त्वा	संसुप्य
हन् (हन, २ प०, मारना)		हत.	हतवान्	घ्नन्		हत्वा	निहत्य
हस् (हसे, १ प०, हँसना)		हसितः	हसितवान्	हसन्		हसित्वा	विहस्य
हा (ओहाक्, ३प०, छोड़ना)		हीन.	हीनवान्	जहत्		हित्वा	विहाय
हिंस् (हिसि, ७ प०, हिंसा०)		हिंसित.	हिंसितवान्	हिंसन्		हिंसित्वा	विहिंस्य
हु (हु, ३ प०, हवन करना)		हुत	हुतवान्	जुह्वत्		हुत्वा	आहुत्य
हृ (हृञ्, १ उ०, हरण०)		हृत.	हृतवान्	हरन्		हृत्वा	प्रहृत्य
ह्री (ह्री, ३ प०, लजाना)		ह्रीण॰	ह्रीणवान्	जिह्रियत्		ह्रीत्वा	संह्रीय

तुमुन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
रोद्धुम्	रोद्धव्यम्	रोद्धा	रोधनम्	रुध्यते	रोधयति	रुरुत्सति
लब्धुम्	लब्धव्यम्	लब्धा	लभनम्	लभ्यते	लम्भयति	लिप्सते
लेखितुम्	लेखितव्यम्	लेखिता	लेखनम्	लिख्यते	लेखयति	लिलिखिषति
लेढुम्	लेढव्यम्	लेढा	लेहनम्	लिह्यते	लेहयति	लिलिक्षति-ते
वदितुम्	वदितव्यम्	वदिता	वदनम्	उद्यते	वादयति	विवदिषति
वस्तुम्	वस्तव्यम्	वस्ता	वसनम्	उष्यते	वासयति	विवत्सति
वोढुम्	वोढव्यम्	वोढा	वहनम्	उह्यते	वाहयति	विवक्षति-ते
वेदितुम्	वेदितव्यम्	वेदिता	वेदनम्	विद्यते	वेदयति	विविदिषति
वर्तितुम्	वर्तितव्यम्	वर्तिता	वर्तनम्	वृत्यते	वर्तयति	विवर्तिषते
वर्धितुम्	वर्धितव्यम्	वर्धिता	वर्धनम्	वृध्यते	वर्धयति	विवर्धिषते
शक्तुम्	शक्तव्यम्	शक्ता	शकनम्	शक्यते	शाकयति	शिक्षति
शासितुम्	शासितव्यम्	शासिता	शासनम्	शिष्यते	शासयति	शिशासिषति
शयितुम्	शयितव्यम्	शयिता	शयनम्	शय्यते	शाययति	शिशयिषते
शातुम्	शातव्यम्	शाता	शानम्	शायते	शाययति	शिशासति
श्रमितुम्	श्रमितव्यम्	श्रमिता	श्रमणम्	श्राम्यते	श्रमयति	शिश्रमिषति
श्रोतुम्	श्रोतव्यम्	श्रोता	श्रवणम्	श्रूयते	श्रावयति	शुश्रूषते
सत्तुम्	सत्तव्यम्	सत्ता	सदनम्	सद्यते	सादयति	सिसत्सति
सोढुम्	सोढव्यम्	सोढा	सहनम्	सह्यते	साहयति	सिसहिषते
सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेविता	सेवनम्	सेव्यते	सेवयति	सिसेविषति
सोतुम्	सोतव्यम्	सोता	सवनम्	सूयते	सावयति	सुसूषति
सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेविता	सेवनम्	सेव्यते	सेवयति	सिसेविषते
सातुम्	सातव्यम्	सांता	सानम्	सीयते	साययति	सिषासति
स्तोतुम्	स्तोतव्यम्	स्तोता	स्तवनम्	स्तूयते	स्तावयति	तुष्टूषति
स्थातुम्	स्थातव्यम्	स्थाता	स्थानम्	स्थीयते	स्थापयति	तिष्ठासति
स्प्रष्टुम्	स्प्रष्टव्यम्	स्प्रष्टा	स्पर्शनम्	स्पृश्यते	स्पर्शयति	पिस्पृक्षति
स्मर्तुम्	स्मर्तव्यम्	स्मर्ता	स्मरणम्	स्मर्यते	स्मारयति	सुस्मूर्षते
स्वप्तुम्	स्वप्तव्यम्	स्वप्ता	स्वपनम्	सुप्यते	स्वापयति	सुषुप्सति
हन्तुम्	हन्तव्यम्	हन्ता	हननम्	हन्यते	घातयति	जिघांसति
हसितुम्	हसितव्यम्	हसिता	हसनम्	हस्यते	हासयति	जिहसिषति
हातुम्	हातव्यम्	हाता	हानम्	हीयते	हापयति	जिहासति
हिंसितुम्	हिंसितव्यम्	हिंसिता	हिंसनम्	हिंस्यते	हिंसयति	जिहिंसिषति
होतुम्	होतव्यम्	होता	हवनम्	हूयते	हावयति	जुहूषति
हर्तुम्	हर्तव्यम्	हर्ता	हरणम्	ह्रियते	हारयति	जिहीर्षति
हेतुम्	हेतव्यम्	हेता	हयणम्	हीयते	हेपयति	जिहीषति

(८) वाक्यार्थक-शब्द (वाक्यार्थ-बोधक शब्द)

सूचना—यहाँ पर उदाहरणार्थ कतिपय वाक्यार्थ-बोधक शब्दों का संग्रह किया गया है। निम्नलिखित पद्धति को अपनाकर सैकड़ों इस प्रकार के शब्द बनाए जा सकते हैं।

(१) समास

(क) अव्ययीभाव समास—अव्ययीभाव समास करने से बहुत से वाक्यार्थक शब्द बनते हैं। इसमें कुछ अव्यय वाक्यांश का बोध कराते हैं। जैसे—कृष्ण के समीप—**उपकृष्णम्**, मद्र देश की समृद्धि—**सुमद्रम्**, यवनों का क्षय—**दुर्यवनम्**, मक्खियों का अभाव—**निर्मक्षिकम्**, इस समय सोना उचित नहीं है—**अतिनिद्रम्**, गंगा के किनारे किनारे—**अनुगङ्गम्**, शक्ति का उल्लंघन न करके या शक्ति के अनुसार—**यथाशक्ति**, आँख के समुख—**प्रत्यक्षम्**, आँख से ओझल—**परोक्षम्**, हर घर की ओर—**प्रतिगृहम्**, तिनके को भी न छोड़कर—**सतृणम्**।

(ख) तत्पुरुष समास—१. (मयूरव्यंसकादि) जैसे—जिसके पास कुछ नहीं है—**अकिंचन**, जहाँ केवल खाने-पीने की ही बात चलती है—**अश्नीतपिबता**, खाओ और मस्त रहो, जहाँ पर यही प्रसंग रहता है—**खादतमोदता**, जिसको कहीं से कोई डर नहीं है—**अकुतोभय**। २. (पात्रेसमितादि) केवल खाने के साथी—**पात्रेसमिता**, अपने घर कुत्ता भी शेर होता है—**गेहेशूर**, **गेहेनर्दी**। ३. (प्रादिसमास) प्रकृष्ट आचार्य—**प्राचार्य**, माला को अतिक्रमण करने वाला—**अतिमाल**, पढ़ाई से तंग आया हुआ—**पर्यध्ययनः**, कौशाम्बी से निकला हुआ—**निष्कौशाम्बि**। दो अंगुल नाप की—**द्व्यङ्गुल दारु** (लकड़ी)।

(ग) बहुव्रीहि—जिसको जल मिल गया है—**प्राप्तोदक**, जिसने रथ ढोया है, ऐसा बैल—**ऊढरथ अनड्वान्**, जिसके वस्त्र पीले हैं, ऐसे विष्णु—**पीताम्बर हरि**, जिसमें वीर पुरुष रहते हैं, ऐसा गाँव—**वीरपुरुषक ग्राम**, जिसके पत्ते गिर गए हैं, ऐसा वृक्ष—**प्रपर्ण वृक्ष**, जिसके कोई पुत्र नहीं है—**अपुत्र**, जिसके पास चितकबरी गाएँ हैं—**चित्रगु**, जो औरत के वचन को ही प्रमाण मानता है—**स्त्रीप्रमाण**, जिसने सोने की अँगूठी पहनी हुई है—**हैममुद्रिक**, बीस के करीब—**आसन्नविंशा**, दो या तीन—**द्वित्रा**, पाँच या छः—**पञ्चषा**, बाल खींचकर झगड़ा हुआ—**केशाकेशि**, हाथापाई करके झगड़ा हुआ—**मुष्टीमुष्टि**, जिसकी पत्नी जवान है—**युवजानि**, दो पैरों वाला—**द्विपाद्**, चार पैरों वाला—**चातुष्पाद्**, पुष्ट छाती वाला—**व्यूढोरस्क**।

(घ) एकशेष—माता और पिता—**पितरौ**, भाई और बहिन—**भ्रातरौ**, हंस और हंसी—**हंसौ**, पुत्र और पुत्री—**पुत्रौ**, सास और ससुर—**श्वशुरौ**।

(२) तद्धित प्रत्यय

(क) अपत्यार्थक—(पुत्र या पुत्री अर्थ में अण्, इञ् आदि प्रत्यय) वसुदेव का पुत्र—वासुदेव, शिव का पुत्र—शैव। इसी प्रकार विश्वामित्र> वैश्वामित्र, दशरथ> दाशरथि (राम), सुमित्रा> सौमित्रि (लक्ष्मण), द्रोण> द्रौणि (अश्वत्थामा), विनता> वैनतेय. (गरुड), बहिन का पुत्र—भागिनेय. (भानजा), कुन्ती> कौन्तेय., माद्री> माद्रेय, पृथा> पार्थ, पाण्डु के पुत्र—पाण्डवा, कुरु के पुत्र या वशज> कौरवा, राधा का पुत्र—राधेय (कर्ण), दिति के पुत्र—दैत्या, दनु के पुत्र—दानवा, अदिति के पुत्र—आदित्या। (राजा अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) पञ्चाल देश का राजा—पाञ्चाल, पुरु जनपद का राजा—पौरव, अग देश का राजा—आङ्ग, बग का राजा—बाङ्ग, मगध का राजा—मागध, कम्बोज का राजा—काम्बोज।

(ख) चातुरर्थिक—१ (रक्तार्थक या रग से रँगने अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) गेरु से रँगा हुआ वस्त्र—काषायम्, मँजीठ से रँगा हुआ—माञ्जिष्ठम्, नील से रँगा हुआ—नीलम्, पीले रग से रँगा हुआ—पीतकम्, हल्दी से रँगा हुआ—हारिद्रम्। २. (देवतार्थक अण् आदि) इन्द्र जिसका देवता है—ऐन्द्रं हवि। इसी प्रकार पशुपति> पाशुपतम्, सोम> सौम्यम्, वायु> वायव्यम्, अग्नि> आग्नेयम्, ३. (समूह अर्थ में अण् आदि) कौओं का समूह—काकम्, बकों का समूह> बाकम्। इसी प्रकार भिक्षा> भैक्षम्, युवति> यौवनम्, जन> जनता, ग्राम> ग्रामता, बन्धु> बन्धुता। ४ (पढने या जानने वाला अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) व्याकरण पढने या जाननेवाला—वैयाकरण। इसी प्रकार न्याय> नैयायिक,। मीमासा> मीमासक, पुराण> पौराणिक, इतिहास> ऐतिहासिक।

(ग) शैषिक—१. (होना आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्यय) आँख से देखने योग्य—चाक्षुष रूपम्, कान से सुनने योग्य—श्रावण शब्द। राष्ट्र में होने वाला> राष्ट्रिय, गाँव में रहने वाला> ग्राम्य, ग्रामीण, दक्षिण में रहने वाला> दाक्षिणात्य, पश्चिम में रहने वाला—पाश्चात्त्य, पूर्व में रहने वाला—पौरस्त्य, समीप रहने वाला—अमात्य। मास में होने वाला—मासिकम्, वर्ष> वार्षिकम्, दिन> दैनिकम्। शाम को होने वाला—सायन्तनम्, पहले होने वाला—पुरातनम्। २ (उत्पन्न होना अर्थ में अण् आदि) हिमालय से उत्पन्न होने वाली—हैमवती गङ्गा। ३ (ग्रन्थ-निर्माण अर्थ मे अण् आदि) शकुन्तला विषयक ग्रन्थ—शाकुन्तलम्। वासवदत्ता> वासवदत्ता। ४ (कृति अर्थ मे अण् आदि) पाणिनि की कृति—पाणिनीयम्। वररुचि> वाररुचम्। ५. (मार्ग, निवास, इसका यह आदि अर्थों मे अण् आदि) स्रुघ्न का निवासी—स्रौघ्न, शरद्-सम्बन्धी—शारदम्।

(घ) मत्वर्थक—१. (वाला या मतुप् के अर्थ में मत्, इन्, इक आदि प्रत्यय) गुणों से युक्त—गुणवान्। इसी प्रकार धन>धनवान्, विद्या>, विद्यावान्, धी>धीमान्, श्री>श्रीमान्, बुद्धि>बुद्धिमान्, रूप>रूपवती स्त्री। गुणो से युक्त—गुणिन्, धन से युक्त>धनिन्। दण्ड>दण्डिन्, कर>करिन्। धन वाला—धनिकः। माया>मायिक। लोमवाला—लोमश, सुन्दर अङ्गो वाली—अङ्गना। तारो से युक्त—तारकितं नभ। इसी प्रकार पुष्प>पुष्पित, कुसुम>कुसुमित, दुःख>दु खित., क्षुधा>क्षुधित, अङ्कुर>अङ्कुरित। (युक्त अर्थ मे विन् प्रत्यय) यश वाला—यशस्वी। इसी प्रकार तेजस्>तेजस्वी, माया>मायावी, मेधा>मेधावी, ओजस्>ओजस्वी। अत्युत्तम वाणी (बोलने) वाला>वाग्मी, बकवाद करने वाला—वाचाल, वाचाट। बडे दाँत वाला—दन्तुर, बडी तोद वाला—तुन्दिल।

(ङ) (प्रमाण या नाप-तोल अर्थ में द्वयस, दघ्न, मात्र प्रत्यय) कमर तक—कटिमात्रम्। घुटने तक—जानुदघ्नम्। जाँघ तक—ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्।

(च) (विकार अर्थ में अण् आदि) मिट्टी का बना हुआ—मार्तिकम्। पत्थर का बना हुआ—आश्म, राँगा का बना हुआ—जातुषम्। इसी प्रकार गो>गव्यम्, पयस्>पयस्यम्।

(छ) (विविध अर्थों में तद्धित प्रत्यय) पाशो से खेलने वाला—आक्षिक। दही से बना हुआ—दाधिकम्। नाव से पार करने वाला—नाविक। उडुप>औडुपिक। हाथी की सवारी करने वाला—हास्तिक। समाज की रक्षा करने वाला—सामाजिक। रथ को ढोने वाला—रथ्य। धुरा को ढोने वाला—धुर्य, धौरेयः। सभा मे शिष्टता से रहने वाला—सभ्य, शरणागतों पर सज्जन—शरण्य, अतिथियों पर सज्जन—आतिथेय। दाँतो के लिए हितकर—दन्त्यम्, गले के लिए हितकर—कण्ठ्यम्। अपने लिए हितकर—आत्मनीनम्। ७० रु० में खरीदा—साप्ततिकम्। खान में काम करने वाला—आकरिक। एक गुरु से पढने वाले—सतीर्थ्या। एक माता से उत्पन्न—सोदर्य.. समानोदर्य।

(ज) (तस्येदम्, इसका यह अर्थ मे अण् आदि) देवो का—दैविकम्, भूतो का—भौतिकम्, आत्मा-सम्बन्धी—आध्यात्मिकम्। देवता और असुरो का—दैवासुरम्। उपगु का>औपगवम्।

(झ) (जैसा न हो, वैसा होना या वैसा करना अर्थ में च्वि प्रत्यय) काले को सफेद करता है—शुक्लीकरोति। काला करता है—कृष्णीकरोति। इसी प्रकार ग्रामीकरोति, भस्मन्>भस्मीकरोति, भस्मीभवति।

(३) तिङ् प्रत्यय

(क) (उपसर्ग + धातु) धातुओं से पहले उपसर्ग आदि लगाने से पूरे वाक्य का अर्थ निकलता है। जैसे—उपकार करता है—उपकरोति, उपकार किया—उपाकरोत्, उपकृतम्। इसी प्रकार प्रहार करता है—प्रहरति, विहार करता है—विहरति, सहार करता है—संहरति, अनुकरण करता है—अनुकरोति, प्रणाम करता है—प्रणमति, सस्कार करता है—संस्करोति, अनुभव करता है—अनुभवति, तिरस्कार करता है—तिरस्करोति, उत्पन्न करता है—उत्पादयति, सवाद करता है—संवदति, अनुग्रह करता है—अनुगृह्णाति।

(ख) (करवाना अर्थ में णिच् प्रत्यय) पढाता या पढवाता है—पाठयति, करवाता है—कारयति, भेजता है—गमयति, डराता है—भाययति, खरीदवाता है—क्रापयति, समझाता है—अधिगमयति, विश्वास दिलाता है—प्रत्याययति, साफ कराता है—मार्जयति।

(ग) (इच्छा करना या चाहना अर्थ में सन् प्रत्यय) पढना चाहता है—पिपठिषति। सन्-प्रत्ययान्त से उ लगाकर सज्ञा-शब्द भी बनते हैं। जैसे—पढने का इच्छुक—पिपठिषु। करना चाहता है, करने का इच्छुक—चिकीर्षति, चिकीर्षु.। जाना चाहता है, जाने का इच्छुक—जिगमिषति, जिगमिषु। इसी प्रकार युध्> युयुत्सते, युयुत्सु, हन्> जिघासति, जिघासु॰, प्रच्छ्> पिप्रच्छिषति, पिप्रच्छिषुः, मृ> मुमूर्षति, मुमूर्षु., आप्> ईप्सति, ईप्सु॰, दृश्> दिदृक्षते, दिदृक्षु.। देना चाहता है, देने का इच्छुक—दित्सति, दित्सु प्राप्त करना चाहता है, प्राप्त करने का इच्छुक—लिप्सते, लिप्सु। काम करना चाहता है, करने का इच्छुक—विधित्सति, विधित्सु।

(घ) (बार-बार करना अर्थ में यङ् प्रत्यय) बार बार नाचता है—नरीनृत्यते। बार-बार जीतता है—जेजीयते, बार-बार पढता है—पापठ्यते, बार बार घूमता है—बम्भ्रम्यते, बार-बार करता है—चेक्रीयते।

(ङ) (नामधातु प्रत्यय) अपने लिए पुत्र चाहता है—पुत्रीयति, पुत्रकाम्यति। शिष्य को पुत्रवत् मानता है—पुत्रीयति छात्रम्। कृष्णवत् आचरण करता है—कृष्णायते। अप्सरा के तुल्य आचरण करता है—अप्सरायते। सूत्र बनाता है—सूत्रयति। पटपट शब्द करता है—पटपटायते। खटखट करता है—खटखटाकरोति।

(४) कृत्-प्रत्यय

(क) (चाहिए या योग्य अर्थ में तव्य और अनीय प्रत्यय) करना चाहिए—कर्तव्यम्, करणीयम्। देना चाहिए—दातव्यम्, दानीयम्। लिखना चाहिए—लेखितव्यम्, लेखनीयम्। हँसना चाहिए—हसितव्यम्, हसनीयम्। गाना चाहिए—गातव्यम्, गानीयम्। पीना चाहिए—पातव्यम्, पानीयम्। स्मरण करना चाहिए—स्मर्तव्यम्, स्मरणीयम्। जाना चाहिए—गन्तव्यम्, गमनीयम्। बुलाना चाहिए—आह्वातव्यम्, आह्वानीयम्। खरीदना चाहिए—क्रेतव्यम्, क्रयणीयम्। बेचना चाहिए—विक्रेतव्यम्, विक्रयणीयम्। उठना चाहिए—उत्थातव्यम्, उत्थानीयम्।

(ख) (चाहिए या योग्य अर्थ में यत् और ण्यत् प्रत्यय) देने योग्य—देयम्। गाने योग्य—गेयम्। पीने योग्य—पेयम्। रुकना चाहिए—स्थेयम्। छोडना चाहिए—हेयम्। जीतना चाहिए—जेयम्। इकट्ठा करना चाहिए—चेयम्। सुनना चाहिए—श्रव्यम्। करने योग्य—कार्यम्। हरने योग्य—हार्यम्। रखने योग्य—धार्यम्। छोडने योग्य—त्याज्यम्। खाने योग्य—भोज्यम्। उपभोग के योग्य—भोग्यम्।

(ग) (करनेवाला अर्थ में अण्, क, ट आदि प्रत्यय) घडा बनाने-वाला—कुम्भकार.। माला बनाने वाला—मालाकार.। जल लाने वाला—कहार.। धन देने वाला—धनद। जल देने वाला—जलद। सुख देने वाला—सुखद.। दुःख देने वाला—दुःखदः। धूप से बचाने वाला—आतपत्रम्। यश को करने वाली—यशस्करी विद्या। आज्ञा-पालन करने वाला—वचनकर। काम करने वाला नौकर—कर्मकर। चित्र बनाने वाला—चित्रकर। सेना में घूमने वाला—सेनाचरः।

(घ) (करनेवाला अर्थ में इष्णु और क्विप्) सजकर रहने वाला—अलंकरिष्णु। सहन करने वाला—सहिष्णु। प्रभुत्व करने वाला—प्रभविष्णु। मन्त्र बनाने वाला—मन्त्रकृत्। सोम तैयार करने वाला—सोमकृत्। पृथ्वी का पालन करने वाला—भूभृत्।

(ङ) (स्वभाव अर्थ में णिनि) शाकाहार करने वाला—शाकाहारी, निरामिषभोजी। मांसाहार स्वभाव वाला—मांसाहारी, आमिषभोजी। झूठ बोलने वाला—मिथ्यावादी। गर्म खाने वाला—उष्णभोजी। शराब पीने वाला—सुरापायी, मद्यप। अपने आपको पंडित मानने वाला—पण्डितमानी, पण्डितंमन्यः।

(९) पत्रादि-लेखन-प्रकारः

आवश्यक निर्देश

पत्रों के लेखन में निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रखे :—

(१) पत्र-लेखन बहुत सरल और स्पष्ट भाषा में होना चाहिए। इसमे प्राय· वार्तालाप में व्यवहृत भाषा का ही रूप अपनाया जाता है, जिससे पत्र का भाव सरलता से हृदयगम हो सके।

(२) पत्रों में अनावश्यक विशेषणो का परित्याग करना चाहिए। पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न पत्र में अनुचित है, यह निबन्ध आदि में कुछ अश तक शिष्ट-सम्मत है।

(३) जिस उद्देश्य से पत्र लिखा गया है, उसका स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।

(४) पत्र यथासम्भव सक्षिप्त होना चाहिए। उसमे आवश्यक बातों का ही उल्लेख करना चाहिए। अनावश्यक बातों का उल्लेख और विस्तार उचित नहीं है।

(५) साधारणतया पत्रों को ४ श्रेणी में बॉट सकते हैं। तदनुसार ही उनका लेखन होता है। (क) अतिपरिचित व्यक्तियों को। (ख) सामान्य परिचित व्यक्तियों को। (ग) अपरिचित व्यक्तियों को। (घ) केवल व्यावहारिक पत्र।

(क) (१) पिता, पुत्र, माता, मित्र, पत्नी, पति आदि के लिए ऐसे पत्र होते हैं। इनमें प्रारम्भ में ऊपर दाहिनी ओर स्व स्थान-नाम तथा तिथि या दिनाक देना चाहिए। (२) उसके नीचे सम्बोधनपूर्वक अपने से बडों को प्रणामः, नमस्कारः, नमस्ते आदि लिखें। समान आयुवालों को नमस्ते, छोटों को स्वस्ति, आशीर्वादः आदि। (३) पत्र के अन्त में बडों के लिए 'भवदाज्ञाकारी', 'भवत्कृपाकाक्षी' आदि, समान आयुवालों को 'भवदीय.', 'भावत्कः' आदि, छोटों को 'शुभाकाक्षी', 'शुभचिन्तकः' आदि लिखना चाहिए। (४) पत्र का पता लिखने में पहली पक्ति में व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए। उसके नीचे उपाधि आदि। दूसरी पक्ति में ग्राम-नाम, मुहल्ला या सडक आदि का नाम। तीसरी पक्ति में पोस्ट आफिस (डाकखाना) का नाम। चौथी पक्ति में जिले का नाम। यदि दूसरे प्रान्त या देश के लिए हो तो अन्त में प्रान्त या देश का नाम लिखे।

(ख) सामान्य परिचित में सम्बोधन में व्यक्ति का नाम निर्देश करें। शेष पूर्ववत्।

(ग) अपरिचितों को सम्बोधन में 'श्रीमन्', 'महोदय' आदि लिखे। अन्त में 'भवदीयः' या 'भावत्कः'। शेष पूर्ववत्। इसमे काम की बात ही मुख्यरूप से लिखें।

(घ) केवल व्यावहारिक पत्रों में—(१) प्रारम्भ में अधिकारी, व्यक्ति या कम्पनी आदि का नाम एव कार्यालय-सम्बन्धी पता लिखे। (२) तदनन्तर सम्बोधन में 'श्रीमन्' या 'महोदय'। (३) प्रणाम., नमस्ते आदि न लिखें। (४) अन्त मे 'भवदीय.'। (५) केवल कार्य सम्बन्धी बात लिखें। पारिवारिक या वैयक्तिक नहीं।

(१) पित्रे पत्रम्

प्रयाग—विश्वविद्यालयः
तिथिः—श्रावण-शुक्ला १०, २०२१ वि०

श्रीमतो माननीयस्य पितृवर्यस्य चरणारविन्दयोः ! सादर प्रणतिततिः ।

अत्र श तत्रास्तु । समधिगत मया भावत्क कृपापत्रम् । अवगत च निखिल वृत्तम् । अद्यत्वेऽध्ययनकर्मण्येव नितरा व्यापृतोऽस्मि । एम० ए० सस्कृतविषये प्रवेशमवाप्यातितरा मुदमावहे । वेदाना गुणगरिमा, उपनिषदा हृदयावर्जकत्वम्, कालिदासादिमहाकवीना कलाकौशलम्, भारतीयसस्कृते॰ साधिष्ठता, भाषाविज्ञानस्य वैज्ञानिकी सरणिर्मनोज्ञता च स्वान्त मे प्रतिपल प्रसादयति । आशासे कृतभूरिपरिश्रमः सद्य एव समेष्वपि विषयेषु दाक्षिण्यमासादयितास्मि । मान्याया मातुश्चरणयोः प्रणतिर्वाच्या ।

भवदाज्ञाकारी सूनुः—भारतेन्दुः

(२) सुहृदे पत्रम्

नैनीतालतः
दिनाङ्कः २१-४-१९६५ ईसवीयः

प्रियमित्र श्यामलाल यादव ! सप्रणय नमस्ते ।

अत्र कुशल तत्रास्तु । भवत्प्रेमपत्र प्राप्य मानस मेऽतीव मोदमावहति । परिवारे सर्वेषामपि कुशलतामवगत्य हृष्टोऽस्मि । ऐषमस्तने सवत्सरे ग्रीष्मर्तौ सपरिवार नैनीतालागमनाय मतिर्विधेया । नगरमेतत् प्राकृतिकसुषमायाः सर्वस्वम्, पर्वतमालापरिवृतम्, शीतलाच्छोदसभृतसरसा सनाथम्, वन्यवृक्षवीरुद्भिराजितम्, कृत्रिमाकृत्रिमोभयोपकरणसकुलम्, सततशीतलसदागतिमनोहर रमणीय च । आशासेऽऽगमनेनानुग्रहीष्यन्ति माम् । कुशलमन्यत् । ज्येष्ठेभ्यो नमः, कनिष्ठेभ्यश्च स्वस्ति । पत्रोत्तरप्रदानेनानुग्राह्योऽहम् ।

भवद्बन्धुः—सुरेन्द्रनाथो दीक्षितः

(३) भ्रात्रे पत्रम्

गुरुकुल-महाविद्यालय-ज्वालापुरतः
दिनाङ्कः २०-६-१९६५ ई०

प्रिय बन्धुवर विजयकुमार ! सस्नेह नमस्ते ।

अत्र श तत्रास्तु । एतदवगत्य भवान्नून हर्षमनुभविष्यति यदह सवत्सरेऽस्मिन् शास्त्रिपरीक्षामुत्तीर्णः । तत्र च प्रथमा श्रेणिः सप्राप्ता । साम्प्रतमह सस्कृतविषये एम० ए० परीक्षा दित्सामि । आशासे परेशप्रसादात् तत्रापि साफल्यमाप्स्यामि । सर्वेऽपि गुरवो मयि कृपापराः । शिष्ट विशिष्ट स्वः । परिचितेभ्यो नमः ।

भवद्बन्धुः—रामचन्द्रः शर्मा

(४) अवकाशार्थं प्रार्थनापत्रम्

श्रीमन्तः प्रधानाचार्यमहोदयाः,

राजकीय-महाविद्यालयः, नैनीतालः ।

मान्यवर !

अहमद्य दिनद्वयाद् शीतज्वरेण पीडितोऽस्मि । ज्वरकृततापेन भृशं कार्श्यमुपगतोऽस्मि । अतो विद्यालयमागन्तुं न प्रभवामि । कृपया दिवसद्वयस्यावकाशं स्वीकृत्य मामनुग्रहीष्यन्ति श्रीमन्तः ।

भवतामाज्ञाकारी शिष्यः—हरगोविन्दो जोशी

(५) पुस्तकप्रेषणार्थं प्रकाशकाय आदेशः

श्रीप्रबन्धकमहोदयाः,

विश्वविद्यालय-प्रकाशनम्, भैरवनाथः, वाराणसी ।

श्रीमन्तः,

दृष्टिपथमुपागतं मे भवत्प्रकाशितं "प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी"-नामकं पुस्तकम् । ग्रन्थस्यास्योपयोगितां समीक्ष्य नितरां हृतहृदयोऽस्मि । कृपया पुस्तकपञ्चकम् अधोनिर्दिष्टस्थाने वी० पी० पी० द्वारा शीघ्रं सम्प्रेष्यानुग्रहीतव्यम् ।

दिनाकः—२०-६-१९६५ ई०

भवदीयः—डा० सुरेन्द्रनाथ-दीक्षितो व्याकरणाचार्यः, एम०ए०, पी-एच० डी०,
हिन्दी-प्राध्यापकः, एल० एस० कालेजः, मुजफ्फरपुरम् ।

(६) निमन्त्रणपत्रम्

श्रीमन्महोदय !

एतद् विज्ञाय नूनं भवन्तो हर्षमनुभविष्यन्ति यत् परेशस्य महत्याऽनुकम्पया मम ज्येष्ठाया दुहितुर्विमलादेव्याः शुभपाणिग्रहणसंस्कारो वाराणसी-वास्तव्यस्य श्रीमतो रामचन्द्रप्रसादगुप्तस्य ज्येष्ठपुत्रेण एम० ए० इत्युपाधिविभूषितेन श्रीसुरेन्द्रप्रसादगुप्तेन सह दिनाके २-७-१९६५ ईसवीये रात्रौ दशवादने सम्पत्स्यते । सर्वेऽपि भवन्तः सादरं सविनयं च प्रार्थ्यन्ते यत् सपरिवारं निर्दिष्टसमये समागत्य वरवधूयुगलं स्वाशीर्वादप्रदानेनानुग्रहीष्यन्त्यस्मान् ।

१०१९, मुट्ठीगंजः,
प्रयाग.

भवद्दर्शनाभिलाषी—
बैजनाथप्रसादगुप्त

दिनाकः—२६-६-१९६५ ई०

(स्वीकृति सूचनयाऽनुग्राह्यः)

(७) परिषदः सूचना

श्रीमन्तो मान्याः,

सविनयमेतद् निवेद्यते यद् आस्माकीनाया महाविद्यालयीयसस्कृतपरिषदः साप्ताहिकमधिवेशनम् आगामिनि शुक्रवासरे (दिनाक.—२६-२-१९६५ ई०) सायकाले चतुर्वादने महाविद्यालयस्य महाकक्षे भविष्यति। सर्वेषामपि विद्यार्थिनामुपाध्यायाना चोपस्थितिः सादर सविनय प्राथ्यते।

दिनाकः—२३-२-१९६५ ई० निवेदिका—

(कु०) माया त्रिपाठी (मन्त्रिणी)

(८) प्रस्तावः, अनुमोदनम्, समर्थनं च

(१) (क) आदरणीया. सभासदः, प्रिया विद्यार्थिबान्धवाश्च '

सौभाग्यमेतदस्माक यदद्य (कर्णपुरस्थ-डी० ए० वी० कॉलेज-सस्थायाः सस्कृत-विभागस्याध्यक्षवर्याः श्रीमन्तो डा० हरिदत्तशास्त्रिणः, नवतीर्था, व्याकरणवेदान्ताचार्याः, एम० ए०, पी-एच० डी० आदि-विविधोपाधिविभूषिताः) अत्र समायाताः सन्ति। अत. प्रस्तौमि यत् श्रीमन्तो मान्या विद्वद्वरेण्या आचार्यवर्या अद्यतन्याः सभाया अस्याः सभापतित्व स्वीकृत्यास्मान् अनुग्रहीष्यन्तीति। आशासे एतेषा सभापतित्वे सदसोऽस्य सर्वमपि कार्यकलाप सुचारुतया सम्पत्स्यते इति। आशासे अन्येऽपि सभासदः प्रस्तावस्या-स्यानुमोदन समर्थन च करिष्यन्ति।

(२) (क) मान्या सभासदः !

अहमेतस्याः सभाया मन्त्रिपदार्थे (सभापतिपदार्थम्, उपसभापतिपदार्थम्, कोषाध्यक्षपदार्थम्) श्रीमत. ' नाम प्रस्तवीमि।

(ख) अह प्रस्तावस्यास्य हृदयेनानुमोदन करोमि।

(ग) अह प्रस्तावस्यास्य हार्दिक समर्थन करोमि।

(९) पुरस्कार-वितरणम्

श्रीयुताय''(रामचन्द्रशर्मणे), (एम० ए०) कक्षायाः (द्वितीय) वर्षस्थाय '' (व्याख्यान-प्रतियोगिताया सर्वप्रथमस्थानप्राप्त्यर्थं) निमित्त ' (प्रथम) पारितोषिकमिद सहर्ष प्रदीयते।

. .....

मन्त्री समासचालकः (सभाध्यक्षः, प्रधानः)

(१०) जयन्ती समारोहः

एतत् ससूचयन्त्या मया भूयान् प्रहर्षोऽनुभूयते यदागामिनि शुक्रवासरे गुरुपूर्णिमा-दिवसे (आषाढ पूर्णिमा वि० २०१७) दिनाङ्के ८–७–१९६० ईसवीये महाविद्यालयस्य महाकक्षे सायकाले चतुर्वादने व्यास जयन्ती-समारोहः सयोजयिष्यते। समेषामपि सस्कृत-ज्ञाना सस्कृतप्रेमिणा च समुपस्थितिः प्रार्थ्यते। आशासे यत् सर्वैरपि यथासमय समागत्य महाकवये श्रीमते व्यासाय श्रद्धाञ्जलिं समर्प्य, तद्गुणग्राम समाकर्ण्य, तद्विरचितानि हृद्यानि पद्यानि निशम्य, गूढभावावलिविभूषिता तदीयामाध्यात्मिकविद्या च श्राव श्राव स्वान्तःसुखमनुभविष्यते इति।

दिनाङ्क. ६–७–१९६० ई०

(कु०) रश्मि-कोचरः

सभा-सयोजिका

(११) दर्शनार्थं समय-याचना

श्रीमन्तो मुख्यमन्त्रिमहोदयाः डा० सम्पूर्णानन्दमहाभागाः,

उत्तर प्रदेशः, लक्ष्मणपुरम् (लखनऊ)

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः,

अह कालिदास-जयन्ती-समारोहविषयमाश्रित्यात्रभवद्भिः सह किञ्चिदालपितु-कामोऽस्मि। आशासे भवन्तो दशकलामात्रसमयप्रदानेन मामनुग्रहीष्यन्ति। भवन्निर्दिष्ट-समये भवता सविधे समागत्य भवद्दर्शनेन भवत्परामर्शेन चात्मान कृतकृत्य मस्ये।

दिनाङ्कः ६–७–१९६० ई०

भवद्दर्शनाभिलाषी

प्रेमनाथः

(१२) व्याख्यानम्

श्रीमन्त. परमसमाननीयाः परिषत्पतयः! आदरणीयाः सभासदश्च!

अद्याह भवता समक्षे (विद्या, अहिंसा, देश सेवा, समाज-सुधार-) विषयमङ्गी-कृत्य किंचिद् वक्तुकामोऽस्मि। सस्कृतभाषाभाषणस्यानभ्यासवशाद् न सभाव्यते साधी-यस्या भावाभिव्यक्त्या भाषितुम्। पदे पदे स्खलनमपि च सभाव्यते। 'गच्छतः स्खलन क्वापि भवत्येव प्रमादत.। हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः'। अतः प्रमाद-प्रभूतास्त्रुटयो मे भवद्भिः क्षन्तव्याः परिमार्जनीयाश्च। (तदनन्तर व्याख्यानस्य प्रारम्भ)।

(८) निबन्ध-माला

आवश्यक-निर्देश

(१) किसी विषय पर अपने विचारों और भावों को सुन्दर, सुगठित, सुबोध एव क्रमबद्ध भाषा में लिखने को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है :—१. निबन्ध की सामग्री। २. निबन्ध की शैली।

निबन्ध की सामग्री एकत्र करने के ३ साधन हैं:—१. निरीक्षण अर्थात् प्रकृति को स्वयं देखना और ज्ञान एकत्र करना। २. अध्ययन अर्थात् पुस्तकों आदि से उस विषय का ज्ञान प्राप्त करना। ३. मनन अर्थात् स्वय उस विषय पर विचार या चिन्तन करना।

(२) निबन्ध-लेखन में इन बातों का सदा ध्यान रखें—(क) **प्रस्तावना या आरम्भ**—प्रारम्भ में विषय का निर्देश, उसका लक्षण आदि रखें। (ख) **विवेचन**—बीच में विषय का विस्तृत विवेचन करें। उस वस्तु के लाभ, हानि, गुण, अवगुण, उपयोगिता, अनुपयोगिता आदि का विस्तृत विचार करें। अपने कथन की पुष्टि में सूक्ति, पद्य या श्लोक उद्धरणरूप में दे सकते हैं। (ग) **उपसंहार**—अन्त में अपने कथन का सारांश सक्षेप में दें। प्रस्तावना और उपसहार एक या दो सन्दर्भ (पैराग्राफ) में ही हों। अधिक स्थान विवेचन में दें।

(३) निबन्ध की शैली के विषय में इन बातों का ध्यान रखें :—१. भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हो। २. भाषा प्रारम्भ से अन्त तक एक-सी हो। ३. भाषा में प्रवाह हो। स्वाभाविकता हो। ४. उपयुक्त और असदिग्ध शब्दों का प्रयोग करें। ५. भाषा सरल, सरस, सुबोध और आकर्षक हो। ६. लोकोक्ति और अलकारों को भी स्थान दें। ७. अनावश्यक विस्तार, पुनरुक्ति, अधिक पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा क्लिष्टता का त्याग करें।

(४) निबन्ध के मुख्यतया तीन भेद हैं :—

(क) **वर्णनात्मक निबन्ध**—इसमें पशु, पक्षी, नदी, ग्राम, नगर, पर्वत, समुद्र, ऋतु-वर्णन, यात्रा, पर्व, रेल, तार, विमान आदि का स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन होता है।

(ख) **विवरणात्मक निबन्ध**—इनमें घटित घटनाओं, युद्धों, प्राचीन कथाओं, ऐतिहासिक वर्णनों, जीवन-चरितों आदि का सग्रह होता है।

(ग) **विचारात्मक निबन्ध**—इनमें आध्यात्मिक, मनोविज्ञान-सम्बन्धी, सामाजिक, राजनीतिक तथा अमूर्त विषयों चिन्ता, क्रोध, अहिंसा, सत्य, परोपकार आदि का सग्रह होता है। इन निबन्धों में इन विषयों के गुण, दोष, लाभ, हानि आदि का विचार होता है।

उदाहरण के लिए २० निबन्ध अतिप्रसिद्ध विषयों पर प्रौढ सस्कृत में दिए गए हैं।

१. वेदानां महत्त्वम्

वेदशब्दार्थः—'विद ज्ञाने' इति ज्ञानार्थकाद् विद्धातोर्घञि प्रत्यये कृते वेद इति रूप निष्पद्यते। एव वेदशब्दो ज्ञानार्थकः। ज्ञानराशिर्वेद इति वक्तु शक्यते। विद सत्तायाम्, विद विचारणे, विद्लृ लाभे, विद चेतनाख्याननिवासेषु इति धातुभ्योऽपि घञि वेदरूप निष्पद्यते। वेदा ज्ञानराशित्वात् शाश्वतस्थायिनः, ज्ञाननिधय, मानवहितप्रापकाः, मनुज-कर्तव्य-बोधका इति विविधधात्वर्थग्रहणाद् ज्ञायते।

वेदानां वैशिष्ट्यम्—वेदार्थानुशीलनाद् ज्ञायते यद् वेदा हि विविधज्ञान-विज्ञान-राशयः, सस्कृतेराधाररूपा., कर्तव्याकर्तव्यावबोधका., शुभाशुभनिदर्शकाः, जीवनस्योन्नायकाः, विश्वहितसपादका., आचार-सचारका, सुखशान्तिसाधकाः, ज्ञानालोकप्रसारकाः, सत्यतायाः सरणयः, कलाकलापप्रेरकाः, आशाया आश्रयाः, नैराश्य-विनाशकाः, चतुर्वर्गावाप्तिसोपानस्वरूपाश्च सन्ति।

वेदाना महत्त्वविचारचिन्ताया कतिपयेऽनुयोगाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते। कति वेदा.? किं वेदाना महत्त्वम्? किं वेदाना वेदत्वम्? किं तत्र विशिष्ट ज्ञानम्? कि तेषा व्यावहारिकी उपयोगिता? किं वेदाध्ययनस्य जीवने उपयोगित्वम्? कि च समस्याबहुले जगति समस्या-निराकरणत्व वेदानाम्? कि च वेदाना धार्मिक राजनीतिकम् आर्थिक भाषा-वैज्ञानिकम् ऐतिहासिक काव्यशास्त्रीय शास्त्रीय सामाजिक सास्कृतिक च महत्त्वम्? इत्येवात्र समासतो विम्रियते प्रस्तूयते च।

वैदिकं साहित्यम्—मुख्यत्वेन वेदशब्दः ऋग्यजुःसामाथर्वनामभिः प्रचलिताना चतसृणा वेदसहिताना बोधकः। एतेषामेव चतुर्णां वेदाना व्याख्यानभूता ब्राह्मणग्रन्था. सन्ति, येषु वैदिककर्मकाण्डस्य विशद वर्णनमस्ति। एतेषु वेदानाम् आध्यात्मिकी व्याख्याऽपि प्रस्तूयते। एतेषा परिशिष्टरूपेण आरण्यकग्रन्थाः सन्ति। एषु अध्यात्मविद्याया विवेचन प्राप्यते। उपनिषत्सु च तस्या एवाध्यात्मविद्यायाश्चरमोत्कर्ष सलभ्यते। वैदिकसाहित्यशब्देन समग्रोऽपि मन्त्र-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषत्-सग्रहरूपो निर्दिश्यते। अतएव 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप० श्रौत० ३१) इति निर्दिश्यते।

वेदानां धार्मिकं महत्त्वम्—वेदा मन्वादिभिः ऋषिभि. परमप्रमाणत्वेनोपन्यस्ता.। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (मनुस्मृति २–६) इति समुद्घोषयता मनुना समग्रस्यापि वेदनिधेर्धर्माधाररूपेण प्रतिष्ठा विहिता। मानवस्याखिल कृत्यजात कर्तव्याकर्तव्य वा वेदेषु विशदतया निरूप्यते। अतएव वेदा आचारसहिता रूपेण प्रमाणीक्रियन्ते।

यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ (मनु० २-७)

सर्वेऽपि विद्वत्तल्लजा भारतीया दार्शनिकाः, आचारशिक्षणप्रवणाः स्मृतिकाराः, शब्दतत्त्वमीमांसादक्षा वैयाकरणाः, अन्ये च शास्त्रकारा वेदानां परमप्रामाण्यं प्रतिपदम् उद्घोषयन्ति । अतएव महर्षिणा पतञ्जलिना कर्तव्यत्वेन समादिश्यते यत्—

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्ययो ज्ञेयश्च ।
(महाभाष्य, आह्निक १)

स्मृतिकारैर्न एतावतैव विरम्यते, अपितु निर्दिश्यते यद् ब्राह्मणेन एकनिष्ठया वेदाध्ययनं सपाद्यम् । एतद् ब्राह्मणस्य परमं तपः । यश्च वेदाध्ययनम् अवमत्य शास्त्रान्तरे कृतमतिः, स जीवन्नेव सपरिवारः शूद्रत्वम् उपयाति ।

वेदमेव सदाऽभ्यस्येत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ मनु० २-१६६

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ मनु० २-१६८

वेदानां सांस्कृतिकं महत्त्वम्—भारतीयायाः संस्कृतेर्मूलस्रोतोऽनुसंधीयते चेत् तर्हि वेदा एव तन्मूलस्रोतस्त्वेनोपतिष्ठन्ति । वेदेष्वेव प्रत्नतमा भारतीया संस्कृतिर्वर्णिताऽस्ति । भारतीयायाः संस्कृतेर्मूलरूपं वेदेष्वेवोपलभ्यते । वेदेष्वेव प्राक्तनभारतीयानां जीवनदर्शनं, कार्यकलापः, आचार-विचाराः, नैतिकं सामाजिकं च चरितं प्राप्यते । मानवानां विविधकर्तव्यादिनिर्धारणं तत्रैवोपलभ्यते । उक्तं च मनुना—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ मनु० १-२१

लोकमान्य-तिलकमहाभागास्तु वेदेषु प्रामाण्यबुद्धिमेव आर्यत्वस्य लक्षणं व्यादिशन्ति—'प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु', वेदेष्वेवार्याणां संस्कृतेर्विशुद्धं रूपं विस्तरशः प्राप्यते । आर्याणां यज्ञेषु दृढविश्वासः, एकेश्वरवादेन सहैव बहुदेवतावादस्यापि स्वीकरणम्, अनासक्तभावनया कर्मविधिः, ईश्वरस्य सर्वव्यापकत्वम्, ज्ञानकर्मणोः समन्वयः, भौतिकवादं प्रत्यनास्था, पुनर्जन्मनि विश्वासः, मोक्षस्य जीवनोद्देश्यत्वं चेत्यादितथ्यानि वेदेष्वेव प्राप्यन्ते ।

विश्वसंस्कृतेरैतिह्यं गवेषितं चेत् तर्हि वेदा एव सर्वप्रमुखत्वेन दृष्टिपथम् अवतरन्ति । अस्मिन् संसारे संस्कृतेः सभ्यतायाश्च कथमिव विकासोऽभूदित्यर्थं वेदानुशीलनम् अनिवार्यम् आपद्यते । तत एव क्रमिकविकासस्य प्रक्रिया प्राप्यते । अतएव यजुर्वेदे प्राप्यते—'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा' (यजु० ७-१४), वैदिकी संस्कृतिः प्रथमा संस्कृतिरासीत् ।

शास्त्रीयं महत्त्वम्—वेदाना शास्त्रीय महत्त्व सर्वतोमुख्य वर्तते । 'सर्वज्ञानमयो हि स ' इति वदता मनुना वेदाना सर्वविधज्ञाननिधानत्वम् उरीकृतम् । यदि विचारदृशा समीक्ष्यते तर्हि वेदेषु बीजरूपेण दार्शनिकाः सिद्धान्ता., राजनीतिः, समाजशास्त्रम् , अध्यात्मम् , मनोविज्ञानम् , आयुर्वेदः, गणितम् , अर्थशास्त्रम् , नाट्यशास्त्रम् , काव्यशास्त्रम् , कामशास्त्रम् , अन्याश्च विविधाः कलास्तत्र तत्र वर्ण्यन्ते । वैदिक दर्शनम् अध्यात्मतत्त्व चोपादाय उपनिषदो विविधानि दर्शनानि च प्रवृत्तानि । तथ्यमेतद् निदर्शनरूपेण नाट्यशास्त्रकृतो भरतमुनेर्विवेचनेन विशदीभवति ।

जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ नाट्यशास्त्र १—१७

नैतिकं महत्त्वम्—वेदानाम् आचारशिक्षा-दृष्ट्या, नैतिक-दर्शनरूपेण चातीव महत्त्व वर्तते । कर्तव्योद्बोधनरूपेण तेषा परम प्रामाण्यं वर्तते । किं कर्म, किम् अकर्मेति चिन्ताया वेदा एवादर्शरूपेण प्रस्तूयन्ते । अतएव मनुनोच्यते—

वेद. स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विध प्राहु. साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥ मनु० २—१२

श्रुतिस्मृत्युदित धर्मम् अनुतिष्ठन् हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तम सुखम् ॥ मनु० २—९

धर्मचिन्ताया कर्तव्यविचारणे च वेदाः परमप्रमाणभूताः सन्ति ।
धर्मं जिज्ञासमानाना प्रमाण परम श्रुतिः । मनु० २—१३

सामाजिकं महत्त्वम्—समाजशास्त्रीयदृष्ट्याऽपि वेदा अत्यन्त महत्त्वपूर्णाः सन्ति । समाजस्य विकासस्य, सभ्यताया. समुन्नतेः, वर्णाना विविधवृत्तिपराणा नराणा च कर्मकलापस्य, सामाजिक्या व्यवस्थायाश्च महत्त्वपूर्णम् इतिवृत्त वेदेषूपलभ्यते । प्राक्तनस्य समाजस्य किं स्वरूपमासीदित्यपि तत एवाप्तु पार्यते ।

आर्थिकं महत्त्वम्—अर्थशास्त्रदृष्ट्याऽपि वेदाना महत्त्वम् अस्ति । वेदेषु प्रत्नाया अर्थव्यवस्थाया. स्वरूप स्फुट समवाप्यते । आदान-प्रदानस्य, क्रय-विक्रयस्य, व्यापारस्य वाणिज्यस्य च, गवादिपशूनाम् , कृषि-धान्यादीना च का व्यवस्थाऽवस्था चासीदित्यपि तत्र प्राप्तु शक्यते । आदान-प्रदानस्य महत्त्व यजुर्वेदे वर्ण्यते :—

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहार च हरासि मे निहार निहराणि ते ॥ यजु० ३-५०

राजनीतिक महत्त्वम्—राजनीतिशास्त्रदृष्ट्यापि वेदाना महत्त्व नावमूल्ययितु शक्यते । वेदेषु राज्ञः प्रजायाश्च कर्माणि, राजतन्त्रस्य विविध स्वरूपम् , राज्ञो वरणम् , सभाया. समितेश्च सस्थापना, मन्त्रिपरिषदो मनोनयनम् , राजतन्त्रीया प्रजातन्त्रीया च शासनव्यवस्था, शत्रु-सहार', सामदण्डादिविधीना प्रयोगः, समुपलभ्यन्ते । वेदेषु राज्ञो

निर्वाचनस्य प्रजातन्त्रीयाया राज्यव्यवस्थायाश्चापि समुल्लेखो विविधेषु स्थलेषु उपलभ्यते। तद्यथा—

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु० (अथर्व० ६—८७—१)
त्वा विशो वृणता राज्याय। (अथर्व० ३—४—२)
महते जानराज्याय०। (यजु० ९—४०)

भाषावैज्ञानिकं महत्त्वम्—तुलनात्मकभाषाविज्ञानस्याध्ययनाय वेदानाम् अतीव महत्त्व विद्यते। वेदा विश्वस्य प्राचीनतमाः समुपलब्धाः ग्रन्था.। तत्रापि ऋग्वेदस्य प्राचीनतमत्वेन भाषायाः प्राचीनतमं रूपं प्राप्यते। पारसीकधर्मग्रन्थ-जेन्दावेस्ता-(छन्दोऽवस्था)-ग्रन्थेन सह तुलनायाम् अवेस्ता-भाषया सह वैदिकभाषाया घनिष्ठः सबन्धो दृश्यते। ऋग्वेदीया मन्त्रा अवेस्ताभाषायाम् अवेस्ता-मन्त्राश्च वैदिकमन्त्रेषु च परिवर्तयितु शक्यन्ते। तुलनात्मक-भाषाविज्ञानस्य दृष्ट्या विशेषतो वेदानाम् अध्ययन पाश्चात्त्यदेशेषु प्रवृत्तम्। वैदिक-सस्कृतभाषाया लौकिक-सस्कृतस्य, ततश्च भाषाणाम् अन्यासा जनिक्रमस्यावबोधाय वेदानाम् अध्ययनम् अनिवार्यम्।

ऐतिहासिकं महत्त्वम्—वेदेषु कतिपये ऐतिह्यावबोधकाः सन्दर्भा अपि तत्र तत्रोपलभ्यन्ते। तानाश्रित्य सदर्भान् विद्वद्भिः प्राचीनतमम् ऐतिह्य प्रस्तूयते। तत्र गङ्गादीना नदीनाम् (ऋग्० १०-७५-५), दाशराज्ञयुद्धस्य (ऋग्० ७—८३—७), पञ्च जनानाम् (ऋग्० ३—३७—९), विविधाना वर्णाना वृत्तीना च (यजु० ३०.५—२२) उल्लेखः प्राप्यते।

काव्यशास्त्रीयं साहित्यिकं च महत्त्वम्—काव्यशास्त्रीयदृष्ट्याऽपि वेदानां महत्त्व प्रशस्यम्। तत्र अनुप्रास-यमक-रूपकादीनाम् अलकाराणा प्रयोगोऽनेकत्र प्राप्यते। उषःसूक्ते उषसो वर्णने कवित्वस्य स्फुट दर्शन जायते। सुन्दरी युवतिः स्ववस्त्राणीव उषाः स्वीय सौन्दर्यं विस्तारयति। सकलेऽपि भुवने तस्याः सौन्दर्यम् आह्लादकारि व्याप्नोति।

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः॥
(ऋग्० ३—६१—४)

एव वेदाध्ययन जीवन पावयति, चिन्ताकुल जगत् चिन्तायास्त्रायते, लोकाना विविधाः समस्या निवारयति, जीवनम् उन्नमयति सद्भावांश्च प्रेरयति, इति सर्वथा वेदाना महत्त्व सिध्यति।

वेदाना महत्त्वम् ... विद्भिः वेदाध्ययने स्वजीवन यापितम्। तद् यथा मोतीलाल शर्मा-वासुदेवशरण प्रभृतयोः विद्वत्तल्लजाः।

२. वेदाङ्गानि, तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता:

वेदार्थावबोधाय तत्स्वराद्यवगमाय तद्विनियोगज्ञानाय चासीद् महत्यावश्यकता केषाञ्चित् सहायकग्रन्थानाम्। एतदभावपूर्तये एव जनिरभवद् वेदाङ्गानाम्। षडिमानि वेदाङ्गानि। १ शिक्षा, २. व्याकरणम्, ३. छन्द., ४. निरुक्तम्, ५. ज्योतिषम्, ६. कल्पः। तथा चोच्यते—'शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दसा चय.। ज्योतिषामयन चैव वेदाङ्गानि षडेव तु'। षडिमान्यङ्गानि वेदार्थबोधादिविधौ उपकुर्वन्तीति निरूप्यतेऽत्र। षण्णामेतेषा महत्त्व निरीक्ष्यैव प्रतिपाद्यते पाणिनीयशिक्षायाम्'—"छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते॥ शिक्षा घ्राण तु वेदस्य मुख व्याकरण स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते" ॥ (श्लो० ४१-४२)।

वेदाङ्गानामेतेषा विवरण तेषा वेदार्थबोधोपयोगिता च समासतोऽत्र प्रस्तूयते।

(१) शिक्षा—शिक्षाग्रन्था वर्णोच्चारणविधि विशेषतो वर्णयन्ति। कथ वर्णा उच्चारणीया, किं तेषा स्थानम्, कश्च तत्र यत्न', कण्ठताल्वादीनामुच्चारणे किं महत्त्वम्, कति वर्णाः, कथ कायमारुतो वर्णत्वेन विपरिणमते, कति स्थानानि, कति स्वराः, कथ च ते प्रयोज्या इत्यादयो विषया. शिक्षाग्रन्थेषु विविच्यन्ते। वर्णोच्चारणादिविधिज्ञानमन्तरेण न शक्यो वेदाना विशुद्धः पाठोऽर्थावगमश्चेति शिक्षाग्रन्थाना विशिष्ट महत्त्वम्। साम्प्रत केचन शिक्षाग्रन्था उपलभ्यन्ते। तेषा सम्बन्धश्च केनचिद् विशिष्टेन वेदेन वर्तते। तद्यथा—ऋग्वेदादे' पाणिनीयशिक्षा, शुक्लयजुर्वेदस्य याज्ञवल्क्यशिक्षा, कृष्णयजुर्वेदस्य व्यासशिक्षा, सामवेदस्य नारदशिक्षा, अथर्ववेदस्य माण्डूकीशिक्षा। अन्येऽपि केचन शिक्षाग्रन्थाः सन्ति। यथा—भरद्वाजशिक्षा, वसिष्ठशिक्षादय.। (२) व्याकरणम्—व्याकरणे प्रकृति-प्रत्ययस्य विचारः, उदात्तादिस्वरविचार', उदात्तादिस्वरसचारनियमाः, सन्धि-नियमा., शब्दरूपधातुरूपादिनिर्माणनियमाः, प्रकृते प्रत्ययस्य च स्वरूपावधारण तदर्थनिर्धारण चेति विविधा विषया विविच्यन्ते। वेदेषु प्रकृति-प्रत्ययविचारस्य स्वरस्य च महन्महत्त्वमिति तत्र व्याकरणमेव साहाय्यमनुतिष्ठतीति षडङ्गेषु व्याकरणमेव प्रधानम्। सस्कृतव्याकरणं प्रातिशाख्यमूलकमेव। वेदाना प्रतिशाखामाश्रित्य व्याकरणग्रन्था आसन्, ते च प्रातिशाख्यग्रन्था इति पप्रथिरे। केचन एव प्रातिशाख्यग्रन्थाः साम्प्रतमुपलभ्यन्ते। ते कमप्येक वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। तद्यथा—ऋग्वेदस्य शाकलशाखायाः शौनकप्रणीतम् ऋक्प्रातिशाख्यम्। एतदेव पार्षदसूत्रमित्यप्यभिधीयते। शुक्लयजुर्वेदस्य माध्यन्दिन-शाखाया. कात्यायनविरचित शुक्लयजु'प्रातिशाख्यम्। कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीय-शाखाया. तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्। सामवेदस्य सामप्रातिशाख्य (पुष्पसूत्र वा), पञ्च-विधसूत्र च। अथर्ववेदस्य अथर्वप्रातिशाख्य (चातुरध्यायिक वा)। सस्कृतव्याकरणाव-

बोधाय च पाणिनेरष्टाध्यायी सर्वप्रमुखा । अन्ये प्राचीना व्याकरणग्रन्था लुप्तप्राया एव । (३) छन्दः—वेदेषु मन्त्राः प्रायशश्छन्दोबद्धा एव । अतो वृत्तज्ञानाय छन्दःशास्त्रम-निवार्यम् । छन्दःशास्त्रविषयको मुख्यो ग्रन्थः पिंगलप्रणीत छन्दःसूत्रमेवोपलभ्यते । प्राति-शाख्यग्रन्थेष्वपि वृत्तविचारः प्राप्यते । (४) निरुक्तम्—निरुक्ते क्लिष्टवैदिकशब्दाना निर्वचन प्राप्यते । विषयेऽस्मिन् 'यास्कप्रणीत निरुक्तमेव प्रमुखो ग्रन्थः । अत्र मन्त्राणा निर्वचनमूलाया व्याख्यया: प्रथमः प्रयासः समासाद्यते । वैदिकशब्दाना सग्रहात्मको ग्रन्थो निघण्टुरिति कथ्यते । तस्यैव व्याख्यानभूत निरुक्तमेतत् । यास्को निरुक्ते स्वपूर्व-वर्तिनः सप्तदश निरुक्तकारान् परिगणयति । निरुक्ते काण्डत्रय नैघण्टुककाण्ड नैगमकाण्ड दैवतकाण्ड चेति । (५) ज्योतिषम्—शुभ मुहूर्तमाश्रित्यैव विशिष्टोऽध्वरः प्रावर्ततेति शुभमुहूर्ताकलनाय ज्योतिषस्योदयोऽभूत् । अत्र सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहाणा नक्षत्राणा च गति-र्निरीक्ष्यते परीक्ष्यते विविच्यते च । सौरमासश्चान्द्रमासश्चोभय परिगण्यतेऽत्र । मखमुहूर्त-निर्धारणे चान्द्रमासस्य प्रधानत्व परिलक्ष्यते । विषयेऽस्मिन् आचार्यलगधप्रणीत 'वेदाङ्ग-ज्योतिषम्' इति ग्रन्थ एव साम्प्रतमुपलभ्यते । (६) कल्पः—कल्पसूत्रेषु विविधाध्वराणा सस्कारादीना च वर्णन प्राप्यते । मन्त्राणा विविधकर्मसु विनियोगश्च तत्र प्रतिपाद्यते । कल्पसूत्राणि चतुर्धा विभज्यन्ते—(क) श्रौतसूत्रम्, (ख) गृह्यसूत्रम्, (ग) धर्मसूत्रम्, (घ) शुल्वसूत्र च । (क) श्रौतसूत्रम्—श्रौतसूत्रेषु श्रुतिप्रतिपादिताना सप्त हविर्यज्ञाना सप्त सोमयज्ञानामेव चतुर्दशयज्ञाना विधान विधिविनियोगादिक च प्रतिपाद्यते । तत्र प्रमुखाणि श्रौतसूत्राणि सन्ति—आश्वलायनश्रौतसूत्रम्, शाखायनश्रौतसूत्रम्, बौधायन०, आपस्तम्ब०, कात्यायन०, मानव०, हिरण्यकेशी०, लाट्यायन०, द्राह्यायण०, वैतान-श्रौतसूत्र च । श्रौतसूत्राणीमानि कमप्येक वेदमाश्रित्य वर्तन्ते । (ख) गृह्यसूत्रम्—गृह्यसूत्रेषु षोडशसस्काराणा पञ्चमहायज्ञाना सप्तपाकयज्ञानामन्येषा च गृह्यकर्मणा सविशेष वर्णनमाप्यते । गृह्यसूत्राण्यपि कमप्येक वेदमाश्रित्य वर्तन्ते । तत्र प्रमुखाणि सन्ति—आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, पारस्कर०, शाखायन०, बौधायन०, आपस्तम्ब०, मानव०, हिरण्य-केशी०, भारद्वाज०, वाराह०, काठक०, लौगाक्षि०, गोभिल०, द्राह्यायण०, जैमिनीय०, खदिरगृह्यसूत्र च । (ग) धर्मसूत्रम्—धर्मसूत्रेषु मानवाना कर्तव्य नीतिर्धर्मो रीतयश्च-तुर्वर्णाश्रमाणा कर्तव्यादिकमन्यच्च सामाजिकनियमादिक वर्ण्यते । तत्र प्रमुखा ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनधर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब०, हिरण्यकेशी०, वसिष्ठ०, मानव०, गौतमधर्मसूत्र च । (घ) शुल्वसूत्रम्—शुल्वसूत्रेषु यज्ञवेद्या मानादिक वेदीनिर्माणविध्यादिक च वर्ण्यते । तत्र मुख्या ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनशुल्वसूत्रम्, आपस्तम्ब०, कात्यायन०, मानवशुल्वसूत्र च । एव षडिमानि वेदाङ्गानि वेदार्थबोधे तत्क्रियाकलापवर्णने चोप-युक्तानि सन्ति ।

३. सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

कस्य न विदित विपश्चितो भगवद्गीताया गुणगौरवम् । गीतेय न केवल प्रस्तवीति सर्वासामप्युपनिषदा सारमागम्, अपि तु श्रुतिसारमपि प्रस्तौतितराम् । साख्ययोगदर्शनयोः सिद्धान्ताना वैशद्येन विवेचनात् प्रतिपादनाच्च दर्शनसारसंग्रहोऽप्यत्रोपलभ्यते । वेदान्त-दर्शनप्रतिपादितस्य तत्त्वमसीति महावाक्यस्याप्यत्रोपलम्भाद् वेदान्तावगाहित्वमप्यस्य लक्ष्यते । सेय सरल्या भावाभिव्यक्तिप्रक्रियया, भूयिष्ठयाऽर्थगभीरतया, प्रेष्ठया पद्धत्या, श्रेष्ठया विवृतिसरण्या, साधिष्ठया योगसाधनादीक्षया, वरिष्ठयाऽऽत्मविशुद्धिशिक्षया सर्वस्यापि लोकस्याह्लादमनुभवति । एतदेवात्र समासत उपस्थाप्यते विव्रियते च ।

गीताया ये भावाः सिद्धान्ताश्च प्रतिपाद्यन्ते, ते क्वचित् समासत क्वचिच्च विस्तरश्च उपनिषत्सु वेदेषु च समुपलभ्यन्ते । गीताया विषय-क्रमेण, हृद्येन भावाभिव्य-ञ्जनप्रकारेण, साधिष्ठया विवृत्या च ते भावाः समासाद्यन्त इति प्रमुख गीताया महत्त्वम् । गीतेय प्रसादगुणसयोगात्, अल्पीयोभिः शब्दैर्भूयिष्ठस्यार्थावबोधस्य सकलनात् तथा प्रीणयति चेत· सचेतसा यथा न ग्रन्थान्तरम् । (१) निष्कामकर्मयोगस्य वर्णन महत्या विवृत्या समुपलभ्यते गीतायाम् । तद्यथा—कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ (गीता २-४७) । विहायासक्तिं फलप्रेप्सामना-स्थाय कर्मणि प्रवर्तितव्यम् । निष्कामकर्मकरणेन चेत. प्रसीदति, धीर्विकसति, मानसमानन्द मनुभवति, न कर्माणि बध्नन्ति मानवम्, न विषया विमोहयन्ति मानसम्, न पतति जीवः स्वलक्ष्यात्, न च मोहो मनो मोहयति । निष्कामकर्मयोगप्रतिपादकाः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्र निर्दिश्यन्ते । योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा धनजय (२-४८), कर्मयोगेन योगिनाम् (३-३), न कर्मणामनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते (३-४), कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वैः प्रकृतिजैर्गुणै. (३-५), यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन । कर्मेन्द्रियै. कर्मयोगमसक्त. स विशिष्यते ॥ (३-७), नियत कुरु कर्म त्व कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । (३-८), तस्मादसक्तः सतत कार्यं कर्म समाचर । (३-१९), कर्मणैव हि ससिद्धिम् आस्थिता जनकादय । (३-२०), सक्ता. कर्मण्यविद्वासो यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्याद् विद्वास्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ (३-२५), कुरु कर्मैव तस्मात् त्व० (४-१५), कर्मणो ह्यपि बोद्धव्य० (४-१७), कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म य. ।

(४-१८), त्यक्त्वा कर्मफलासङ्ग ''कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः।(४-२०), कर्मयोगो विशिष्यते (५-२)। निष्कामकर्मयोगस्य वर्णन मूलरूपेण यजुर्वेदे चत्वारिंशत्तमेऽध्याये ईशोपनिषदि च समासाद्यते। तद्यथा—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत् समाः। एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे (यजु० ४०-२, ईश० २)। जगत्यस्मिन् जीवः कर्म कुर्वन्नेव जीवितुमभिलष्येत्। एव मानवस्य लक्ष्यनाशो न भवति, न च स कर्मभिर्बध्यते। (२) गीताया यज्ञस्य महत्त्व तस्यावश्यकर्तव्यता च निरूप्यते। तद्यथा—सहयज्ञाः प्रजाः० (३-१०), देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। (३-११), इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। (३-१२), यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। (३-१३), अन्नाद् भवन्ति भूतानि ' यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः। (३-१४, १५), एव प्रवर्तित चक्र नानुवर्तयतीह यः। मोघं पार्थ स जीवति। (३-१६), दैवमेवापरे यज्ञ० (४ २५-२७) द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च० (४-२८), यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्। (४ ३१-३३)। यतिनाऽपि नोज्झितव्यो यागः। यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्य कार्यमेव तत्० (१८-५)। यज्ञस्य महत्त्व तदुपयोगिता तत्फलादिक च शतशो मन्त्रेषु यजुर्वेदे वर्ण्यते। तद् दिङ्मात्रमिह निर्दिश्यते—श्रेष्ठतमाय कर्मणे० (यजु० १-१), यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म (शत० ब्रा० १-७-१-५), पाहि यज्ञ पाहि यज्ञपतिं पाहि मा यज्ञन्यम् (यजु० २-६), समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्०। (यजु० ३-१-५), देवान् दिवमगन् यज्ञः० (यजु० ८-६०), आयुर्यज्ञेन कल्पता प्राणो यज्ञेन कल्पताम्०। (यजु० ९-२१), भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः०। (१५.३८-३९), उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि० (यजु० १५.५४-५५), अशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः। ' सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति। (यजु० २३-५८), अय यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु० २३-६२), तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दासि जज्ञिरे तस्माद्०। (३१-६-९), वसन्तोऽस्यासीदाज्य ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः। (३१-१४), यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। (३१-१६)। यज्ञमहत्त्वप्रतिपादका अन्ये मन्त्राः सन्ति। तद्यथा—ऊर्ध्वमिममध्वर० (यजु० ६-२५), य इम यज्ञ स्वधया ददन्ते (यजु० ८-६१), प्रसुव यज्ञ प्रसुव यज्ञपतिं भगाय (यजु० ९-१) सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः (यजु० १२-४४)। (३) कर्मकाण्डस्य ब्रह्मज्ञानापेक्षया गौणत्व प्रतिपाद्यते गीतायाम्। यामिमा पुष्पिता वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।

कामात्मान. स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्। (२ ४२-४३) । विपयोऽय विस्तरशो वर्ण्यते मुण्डकोपनिषदि । तद्यथा—प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा. एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्यु ते पुनरेवापियन्ति। इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठ नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । (मुण्डक० १.२.७–१०) । (४) आत्मनोऽजरत्वममरत्वमनादित्वादिक च महता विस्तरेण गीताया सम्प्राप्यते । तद्यथा—अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिणः । (२-१८), य एन वेत्ति हन्तार यश्चैन मन्यते हतम्। (२-१९), न जायते म्रियते वा कदाचित् अजो नित्य शाश्वतोऽय पुराणो० (२-२०), वासासि जीर्णानि यथा विहाय' तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयाति नवानि देही । (२-२२), नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावकः० (२-२३), अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च० (२-२४), देही नित्यमवध्योऽय देहे सर्वस्य भारत० (२-३०) । आत्मनो नित्यत्वमीशोपनिपदि कठे च विस्तरतो वर्णितमस्ति । तद्यथा—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण० (ईश० ८) अनेजदेक मनसो जवीयो० (ईश० ४), तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत' । (ईश० ५), अजो नित्य. शाश्वतोऽय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे । अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्० (कठ १ २ १८-२१) । (५) गीताया द्वितीये चतुर्थे चाध्याये ज्ञानयोगस्य विस्तरश वर्णनमाप्यते । मूलमेतस्येशोपनिषदि लभ्यते—विद्या चाविद्या च यस्तद्वेदोभयं सह अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते । (ईश० ९-११) । मन्त्रत्रयेऽस्मि विद्यामार्गेण ज्ञानमार्गोऽविद्यामार्गेण च कर्ममार्गो गृह्यते । साख्याभिमतोऽय पन्थ साख्यदर्शने विशेषतो विन्नियते । (६) पञ्चमाध्याये षष्ठाध्याये च गीताया योगो वर्ण्यते तस्य स्वरूप साधनाविध्यादिक च तत्र प्राप्यते। वर्णनमेतद् वेदान्तदर्शन योगदर्श चाश्रित्य वर्तते । मुण्डकोपनिषदि माण्डूक्योपनिषदि चाय विषय उपलभ्यते तद्यथा—धनुर्गृहीत्वौपनिषद महास्त्र शर ह्युपासानिशित सधयीत० । (मु० २-३ प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत (मु० २-४), य. सर्वज्ञ. सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि । (मु० २-७), सत्य लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्० (मु० ३-५), यत्र सुप्तो न कञ्च काम कामयते न न कचन स्वप्न पश्यति तत्सुषुप्तम्। (मा० ५) । (७) अक्षरब्रह्मणो व

तदनुध्यानेन मोक्षाधिगमश्चाष्टमाध्याये गीताया वर्ण्यते। मुण्डकोपनिषदि, छान्दोग्ये बृहदारण्यके च ब्रह्मणो वर्णन प्रणवानुध्यानेन मोक्षावाप्तेश्च वर्णन विस्तरश उपलभ्यते। (८) नवमेऽध्याये गीतायामीश्वरार्पणमीश्वरप्राप्तिसाधनत्वेनोपदिश्यते। भावोऽय मुण्डकोपनिषदि मुख्यत्वेनोपलभ्यते। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम्। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो० (मु० ३-२,४)। (९) गीताया दशमेऽध्याये विभोर्विभूतीना वर्णनमासाद्यते। कठोपनिषदि विस्तरशो विभोर्विभूतिवर्णन निरीक्ष्यते। तद्यथा—रूप रूप प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूप रूप प्रतिरूपो बहिश्च। (कठ २.५.८-११), तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिद विभाति (कठ २.५ १५) भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः (कठ २.६ ३)। (१०) गीतायामेकादशेऽध्याये विराड्रूपदर्शनमुपलभ्यते। विभोर्विराड्रूपस्य वर्णन यजुर्वेदे पुरुषसूक्ते ३१ तमे अध्याये प्राप्यते। तद्यथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्ष. सहस्रपात्। स भूमिँ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्०। (यजु० ३१ १-१३)। (११) द्वादशेऽध्याये भक्तियोगवर्णन गीतायाम्। कैवल्योपनिषदि भक्तियोगो ध्यानयोगश्च वर्ण्येते। तद्यथा—श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि। न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः। (कैव० १-२)। (१२) त्रयोदशेऽध्याये क्षेत्रक्षेत्रज्ञवर्णन साख्यदर्शनानुसारि ज्ञातव्यम्। साख्याभिमत प्रकृतिपुरुषवर्णनमिहोपलभ्यते। (१३) चतुर्दशेऽध्याये गुणत्रयवर्णनमपि साख्यदर्शनानुसार्येव बोद्धव्यम्। श्वेताश्वतरोपनिषद्यपि गुणत्रयवर्णनमुपलभ्यते। तद्यथा—अजामेका लोहितशुक्लकृष्णा बह्वी. प्रजाः सृजमाना सरूपा.० (श्वेता० ४-५), स विश्वरूपस्त्रिगुणः० (श्वेता० ५-७)। सप्तदशेऽष्टादशे चाध्याये श्रद्धाया ज्ञानादिकस्य च सात्त्विकादिभेदो वर्ण्यते। तदपि साख्यानुसार्येवावगन्तव्यम्। (१४) पञ्चदशेऽध्यायेऽश्वत्थवर्णन कठोपनिषदमाश्रित्य वर्तते। तद्यथा—ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थ. सनातनः। तदेव शुक्र तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। (कठ २.६ १)। तत्र वर्णिता क्षराक्षरद्वयी श्वेताश्वतरे प्राप्यते। तद्यथा—क्षर प्रधानममृताक्षर हर. क्षरात्मानावीशते देव एक.। (श्वेता० १-१०)। विशदीभवत्येतस्माद्यद् गीतेय सर्वासामुपनिषदा समेषा दर्शनाना श्रुतीना च सार सरलया सरण्या प्रस्तवीतीति।

४. भासनाटकचक्रम्

महाकवेर्भासस्य कृतित्वेन त्रयोदश नाटकरत्नानि समुपलभ्यन्ते । 'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्' इति राजशेखरभणितिमाश्रित्य भासनाटकचक्रमिति तत्कृतनाटकाना नाम व्यवह्रियते । नाटकत्रयोदशस्य परिचयः समासतोऽत्र प्रस्तूयते । (१) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्—अङ्कचतुष्टयमत्र । उदयनस्य वासवदत्तया सह प्रणय. परिणयश्चेह वर्ण्येते । यौगन्धरायणप्रयत्नत. प्रद्योतप्रासादादुदयनस्य मोक्षः । (२) स्वप्नवासवदत्तम्—अङ्कषट्कमत्र । वासवदत्ताऽग्निदाहेन दग्धेति प्रवाद प्रचार्य यौगन्धरायणप्रयत्नात् पद्मावत्या सहोदयनस्योपयमोऽपहृतराज्यावाप्तिश्च वर्ण्यते । (३) ऊरुभङ्गम्—नाटकमेतदेकाङ्कि । पाञ्चालीपरिभवप्रतिक्रियार्थं भीमेन गदायुद्धे दुर्योधनोरुभञ्जन वस्तु प्रतिपाद्यते । निखिलेऽपि सस्कृतवाङ्मये दुःखान्तमेतदेव नाटकम् । (४) दूतवाक्यम्—एकाङ्कि नाटकम् । महाभारताहवात् प्राक् पाण्डवार्थे दुर्योधनससदि श्रीकृष्णस्य दूतत्वेन गमन प्रयत्नवैफल्य चात्र वर्ण्येते । (५) पञ्चरात्रम्—अङ्कत्रयमत्र । यज्ञान्ते द्रोणो दक्षिणास्वरूप पाण्डवेभ्यो राज्यार्धं ययाचे दुर्योधनम् । पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवानामुदन्त उपलभ्यते चेद्राज्यार्धं दास्यते मयेति दुर्योधनोक्तिः । पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवाना प्राप्तिर्दुर्योधनकृतराज्यार्धप्रदान च । (६) बालचरितम्—अङ्कपञ्चकमत्र । बालस्य श्रीकृष्णस्य जन्मारभ्य कसवधान्त चरितमिह वर्ण्यते । (७) दूतघटोत्कचम्—एकाङ्कि नाटकमदः । अभिमन्युनिधनानन्तर श्रीकृष्णप्रेरणया घटोत्कचस्य दौत्यमाश्रित्य धृतराष्ट्रान्तिक गमनम् । दुर्योधनकृतस्तस्यावमानः । दुर्योधनोक्तिश्च—'प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैरिति' । (८) कर्णभारम्—नाटकमिदमेकाङ्कि । ब्राह्मणवेषधारिणे शक्राय कर्णस्य कवचकुण्डलार्पणम् । (९) मध्यमव्यायोगः—नाटकमिदमेकाङ्कि । मध्यम. पाण्डवो भीमो मध्यमनामान ब्राह्मणसूनुमेक घटोत्कचात् त्रायते । अपत्यदर्शनेन भीमस्यानन्दावाप्ति. पत्न्या हिडिम्बया च समागमः । (१०) प्रतिमानाटकम्—अङ्कसप्तकमिह । रामवनवासादारभ्य रावणवधान्ता कथाऽत्र वर्णिता । दशरथप्रतिमा प्रेक्ष्य भरतः पितुर्निधनमवगच्छति । (११) अभिषेकनाटकम्—अङ्कषट्कमत्र । किष्किन्धाकाण्डादारभ्य युद्धकाण्डान्ता रामकथाऽत्र वर्णिता । रावणवधानन्तर रामस्य राज्येऽभिषेक. । (१२) अविमारकम्—अङ्कषट्कमत्र । राजकुमारस्याविमारकस्य राज्ञ' कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरङ्गया सह प्रणयपरिणयोऽत्र वर्णित' । (१३) चारुदत्तम्—अङ्कचतुष्टयमिह । वितीर्णविपुलवित्तेनोदारचित्तेन चारुदत्तेन सह वसन्तसेनानामवाराङ्गनायाः प्रणयोपयमोऽत्र वर्णित. ।

नाटकानामेतेषा प्रणेता भास एवान्यो वेति विविधा विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन् । भास एवैतेषा नाटकाना प्रणेतेति विद्वद्भिरधिकैरङ्गीक्रियते । एक एवैतेषा प्रणेतेत्यवगम्यतेऽन्त साम्यादिना । (१) नाटकानि सर्वाण्यपि सूत्रधारप्रवेशादारभन्ते । 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार.' इति वाक्येन ग्रन्थारम्भ. सर्वत्र । (२) नाटकभूमिकार्थं प्रस्तावनाशब्दस्थाने 'स्थापना'-शब्दप्रयोग' । (३) प्ररोचनाभावोऽर्थात् नाटककृत्परिचयाभाव. स्थापनायाम् । (४) नाटकपञ्चके (स्वप्न०, प्रतिज्ञा०, प्रतिमा०, पञ्च०, ऊरु०) मुद्रालङ्कारप्रयोगोऽर्थात् प्रथमश्लोके प्रमुखनाटकीयपात्राणा नामोल्लेखः । (५) भरतवाक्य प्रायश सममेव सर्वत्र । 'इमामपि महीं कृत्स्ना राजसिंहः प्रशास्तु न ।' (६) भूमिका सक्षिप्ततमा । सवादारम्भेऽपि प्राय. साम्यमेव । यथा—एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि ।'

(७) पात्रनामसाम्यमपि । यथा—काञ्चुकीयो बादरायणः, प्रतीहारी विजया च कतिपयेषु नाटकेषु । (८) अप्रचलितवृत्ताना प्रयोगो यथा—सुवदना दण्डकादयः । (९) बहुषु नाटकेषु पताकास्थानकप्रयोग. । (१०) नाटकेषु सर्वेषु भाषासाम्य रीतिसाम्य च । (११) अपाणिनीयप्रयोगाश्च सर्वेष्वेव नाटकेषु । (१२) अन्योन्यसबद्धानि नाटकानि यथा—स्वप्न० प्रतिज्ञायौगन्धरायणस्योत्तरभाग एव । प्रतिमाऽभिषेकनाटके च तथा ।

बाणो हर्षचरिते 'सूत्रधारकृतारम्भैः०' इति भासनाटकवैशिष्ट्यमाचष्टे । तच्च सर्वत्रेहावाप्यते । राजशेखरोऽभिधत्ते—'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् । स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावक. ।' एतस्मात् भासकृतनाटकबहुत्वस्य स्वप्नवासवदत्तस्य च तत्कृतित्वेनावगतिर्भवति । भोजदेवो रामचन्द्रगुणचन्द्रौ च स्वप्नवासवदत्त भासकृतिमामनन्ति । अतो भास एव सर्वेषा प्रणेतेत्यवगम्यते ।

भासस्य जनिकालश्च ४५० ई० पूर्वादनन्तर ३७० ई० पूर्वात्प्राक् च स्वीक्रियते ।

साम्प्रतकाल यावदुपलब्ध सस्कृतवाङ्मय परीक्ष्यते चेद् भास एव नाटककृदग्रणीरिति शक्य वक्तुम् । त्रयोदशनाटकाना प्रणेता स इति प्रतिपादितमेव । नाटकाना बाहुल्येन विषयवैविध्येनाभिनयोपयोगित्वेन च तस्य नाट्यनैपुण्य नाटकनिर्मितौ वैशारद्य चावधार्यते । नाटकेषु तस्य मुख्या विशेषताः सन्त्येताः—भाषाया सरलता, अकृत्रिमा शैली, वर्णनेषु यथार्थता, चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्व, घटनासयोजने सौष्ठव, कथाप्रसङ्गस्याविच्छिन्नश्च प्रवाह. । सर्वाण्येव नाटकान्यभिनयोपयोगीनीति तस्य महनीयतामभिवर्धयन्ति । नाटकेषु मौलिकता कल्पनावैचित्र्य च विशेषत उपलभ्यते । स एव सर्वाग्रणीरेकाङ्किनाटकप्रणयने । नाटकपञ्चकमस्यैकाङ्कि । पताकास्थानकमपि मधुर प्रयुङ्क्ते । शैली चेद् विविच्यते तस्य तर्हि प्रसादमाधुर्यौजसा त्रयाणामपि गुणाना समन्वयस्तत्रावेक्ष्यते । भाषा तस्य सरला, सुबोधा, सरसा, नैसर्गिकी, सप्रवाहा च । उपमारूपकोत्प्रेक्षार्थान्तरन्यासालङ्काराणा प्रयोगो विशेषतोऽवाप्यते तस्य कृतिषु । अनुप्रासादिक विशेषतः प्रिय तस्य । यथा—हा वत्स राम जगता नयनाभिराम (प्रतिमा० २-४) । मनोवैज्ञानिक विवेचने नितरा निपुणः स. । यथा—दुःख त्यक्तु बद्धमूलोऽनुरागः० (स्वप्न० ४-६), प्रद्वेषो बहुमानो वा० (स्वप्न० १-७), शरीरेऽरिः प्रहरति० (प्रतिमा० १-१२) । भारतीया भावाः सविशेष रोचन्ते तस्मै । यथा—पितृभक्ति. पातिव्रत्य भ्रातृप्रेमादिकम् । 'भर्तृनाथा हि नार्यः' (प्रतिमा० १-२५), कुतः क्रोधो विनीतानाम्० (प्रतिमा० ६-९), अयुक्त परपुरुषसकीर्तन श्रोतुम् (स्वप्न० अक ३) । भाषाया सरलता रम्यता च लोकप्रियत्वस्य कारण तस्य । रसभावानुकूल शैल्या परिवर्तनमपि प्राप्यते । यथा—भद्भुजाकृष्ट० (प्रतिमा० ५-२२) पक्षाभ्या परिभूय० (प्रतिमा० ६-३) । विस्तरमनादृत्य समास साधीयान्मनुते । कमप्यर्थे अनुक्त्वैव वन गताः (प्रतिमा० २-१७) । चित्रयति तथा भावान् यथा मूर्तवत्ते उपतिष्ठन्ति । व्यङ्ग्यप्रयोगस्तस्यासाधारणो मार्मिकश्च । यथा—अनपत्या० (प्रतिमा० २-८) । उपमाप्रयोगेऽपि दक्षः । यथा—सूर्य इव गतो रामः० (प्रतिमा० २।७), विचेष्टमानेव० (प्रतिमा० ६-२) । व्याकरणादिवैदग्ध्यमपि प्रदर्शयति यथावसरम् । यथा—स्वरपद० (प्रतिमा० ५-७), घनः स्पष्टो धीर.० (प्रतिमा० ४-७) । विविधरसवर्णने, छन्दःप्रयोगे, अर्थान्तरन्यासप्रयोगे च प्रभूत दाक्षिण्यमुपलभ्यते तस्य ।

५. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्

महाकवेः कालिदासस्य जनिकालमनुरुध्य कतिपयानि मतान्युपस्थाप्यन्ते मतिमता वरिष्ठैः। मतद्वयं च मुख्यतः प्रचरिष्णु। (१) विक्रमसंवत्सरसंस्थापकस्य विक्रमादित्यस्य राज्यकाले खिस्ताब्दात्पूर्वं प्रथमशताब्द्याम्, (२) ईसवीयचतुर्थशताब्द्यां गुप्तकाले। प्रथमं मतं भारतीयैरधिकं स्वीक्रियते, द्वितीयं च पाश्चात्त्यैः। कृतयस्तस्य प्राधान्यतः सप्तैव स्वीक्रियन्ते। (क) नाट्यग्रन्थाः—(१) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (२) विक्रमोर्वशीयम्, (३) मालविकाग्निमित्रम्। (ख) काव्यद्वयम्—(४) रघुवंशम्, (५) कुमारसम्भवम्। (ग) गीतिकाव्यद्वयम्—(६) मेघदूतम्, (७) ऋतुसंहारम्। कृतिष्वेतासु शाकुन्तलमेव कवेः प्रतिमायाः परिपाकेन, रचनाकौशलेन, प्रकृतिचित्रणे पाटवेन, रसपरिपाकेन, नीरसाख्याने सरसताऽऽधानेन, मूलकथापरिवर्तने वैशारद्येन, करुणादिरससञ्चारेण च सर्वातिशायीति तदेव कालिदासस्य सर्वस्वमभिमन्यते। अतो निगदितं केनापि—'काव्येषु नाटकं रम्यं नाटकेषु शकुन्तला। तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्'। एतदेवात्र विविच्यते विक्रियते च। विषयोऽयं महता विस्तरेण वर्णितो विशदीकृतश्च मत्कृतशाकुन्तलभूमिकायाम्। विस्तरस्तत एवावगन्तव्यः। श्लोकाङ्कादिकं मत्सपादितशाकुन्तलसंस्करणानुसारि।

कालिदासस्य नाट्यकलाकौशले सन्त्येते विशेषाः। घटनासंयोजने सौष्ठवं, वर्णनानां सार्थकता स्वाभाविकता ध्वन्यात्मकता च, चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं, कवित्वं, रसपरिपाकश्चेति। अभिनयार्हतया चैतेषां नाटकानां महत्त्वं नितरामभिवर्धते। घटनासंयोजने सौष्ठवं यथा—द्वितीयेऽङ्के आश्रमं प्रवेष्टुकामे सति दुष्यन्ते ऋषिकुमारद्वयस्य नृपाह्वानार्थं प्रवेशः। पञ्चमे हंसपदिकागीतम्, षष्ठेऽङ्गुलीयकोपलब्धिः, सप्तमे पुत्रदर्शनं शकुन्तलावाप्तिश्च। वर्णनेषु स्वाभाविकता यथा—प्रथमेऽङ्के मृगप्लुतिवर्णनं, द्वितीयेऽवनिपविदूषकसंलापः, चतुर्थे शकुन्तलाविप्रयोगवर्णनं, पञ्चमे शकुन्तलाप्रत्याख्यानं, सप्तमेऽपत्यक्रीडावर्णनं च। वर्णनानां ध्वन्यात्मकता यथा—'दिवसाः परिणामरमणीयाः' (१-३) नाटकस्य सुखावसायित्वं सूचयति। सूत्रधारकथनम्—'अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया' (पृष्ठ १४) नाटके विस्मरणस्य महिमानं द्योतयति। 'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्, आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः, (४-२) सुखदुःखक्रमस्यानिवार्यत्वम्। हंसपदिकागीतम्—'अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य०' (५-१) राज्ञो विस्मरणम्।

चरित्रचित्रणे वैयक्तिकता यथा—अपित्रये कण्वः साधुप्रकृतिर्नियतः शकुन्तलाया पितृवन्मृदुहृदय', मरीचो वीतरागः, दुर्वासाश्च रोषप्रकृतिः ।

रसनिरूपणेऽपि महती विदग्धताऽवाप्यते । बीभत्सरस विहाय प्राय. समेऽप्यन्ये रसाः समुपलभ्यन्तेऽत्र । शृङ्गाररसश्च सर्वानतिशेते । (क) सभोगशृङ्गारो यथा—शकुन्तला समीक्ष्य नृपोक्तिः—अहो मधुरमासा दर्शनम् (पृष्ठ ४२), शुद्धान्तदुर्लभमिद वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य । (१-१७) । शकुन्तलालावण्यवर्णनम्—इद किलाव्याजमनोहर वपुस्तप क्षम साधयितु य इच्छति । (१-१८), सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्य ' किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम । (१-२०), अधर. किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू (१-२१), चलापाङ्गा दृष्टि स्पृशसि बहुशो वेपथुमर्ती० (१-२४) । शकुन्तलामुपेत्य नृपोक्ति'—इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदय मम (३-१६), किं शीतलै. क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्० (३ १८), अपरिक्षतकोमलस्य यावत्' सदय सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य (३-२१), उपरागान्ते शशिन' समुपगता रोहिणी योगम् (७-२२), (ख) विप्रलम्भशृङ्गारो यथा—द्वितीयेऽङ्के शकुन्तलास्मरण तच्चेष्टावर्णन च—काम प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि० (२-१), स्निग्ध वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत् प्रेरयन्त्या तया० (२-२), चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा० (२-९), अनाविद्ध रत्न मधु नवमनास्वादितरसम्० (२-१०), अभिमुखे मयि सहृतमीक्षित न विवृतो मदनो न च सवृतः (२-११), दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे त॰वी स्थिता० (२-१२) । चन्द्रादीना तापहेतुत्व—तव कुसुमशरत्व शीतरश्मित्वमिन्दोः० (३-३) । विरहक्षामगात्रायाः शकुन्तलाया वर्णनम्—स्तनन्यस्तोशीर प्रशिथिलमृणालैकवलय० (३-६), क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तन० (३।७) । राज्ञो विरहावस्थावर्णनम्—इदमशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्णमणीकृत० (३-१०) । (ग) करुणरसो यथा—शकुन्तलाप्रस्थानसमये आश्रमावस्था—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदय सस्पृष्टमुत्कण्ठया० (४-६), पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मास्वपीतेषु या० (४-९), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूरा.० (४-१२), यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीना० (४-१४), अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे० (४-१९), शममेष्यति मम शोक. कथ नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् (४-२१) । (घ) वीररसो यथा—अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये० (२-१४), नैतच्चित्र यदयमुदधिश्यामसीमा धरित्रीं० (२-१५), का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरत.० (३-१), कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव० (५-२८) । (ङ) अद्भुतरसो यथा—दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधाना भूतये भुवः० (४-४),

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं (४-५), शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जता मेदिनी० (७-८), वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा सन्दष्टसर्पत्वचा० (७-११), प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने० (७-१२)। (च) हास्यरसो यथा—अत्र पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व (पृ० ४९), किं मोदक-खादिकायाम् (पृ० १०९), यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् (पृ० १२३), त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ० (पृ० १४२), एष मा कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधर-मिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति० (पृ० ४१०), बिडालगृहीतो मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः (पृ० ४१३)। (छ) शान्तरसो यथा—स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम् (पृ० ४३८), प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता० (७-१२)।

काव्यसौन्दर्यविवेचनदृशा दृश्यते चेत्समग्रमेव शाकुन्तलं सौन्दर्यपरीतम्। (क) करुणरसव्याप्लुतत्वाच्चतुर्थोऽङ्कोऽतिशायी। तत्र चोत्कृष्टं श्लोकचतुष्टयं मन्मत्या वर्तते—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया० (४-६), शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रिय-सखीवृत्तिं सपत्नीजने० (४-१८), पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या० (४-९), अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन.० (४-१७)। (ख) अन्तःप्रकृतेर्बाह्यप्रकृत्या समन्वयो दृश्यते। खिन्ना शकुन्तला कुमुदिनी च भर्तृवियोगेन। अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे० (४-३)। शकुन्तलावियोगेन सर्वोऽप्याश्रमो विषी-दति। आश्रमस्थैः पशुपक्षिभिरपि भोजनादिकं परित्यक्तम्। पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं० (४-९), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः० (४-१२)। (ग) बाह्यप्रकृत्याऽऽत्मीयत्वम्—अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (पृ० ४५), लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति (पृ० ५२), न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु (२-३), क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं० (४-५), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः (४-१२)। (घ) प्रेमचित्रणं लावण्यवर्णनं च। मतमेतन्महाकवेर्यत् सौन्दर्यं नाहार्यं गुणमपेक्षते। अतस्तेनोच्यते—इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति० (१-१८), सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (१-२०), अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् (पृ० ३५७)। नैसर्गिकत्वादेव निर्दोषत्वं शकुन्तलालावण्यस्य। इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति० (५-१९)। पुष्पिता लतेव लावण्यमयी शकुन्तला। अधरः किसलयरागः कोमलविट-पानुकारिणौ बाहू। कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् (१-२१)। तस्य मतमेतद्

'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति'। सुन्दरीसौन्दर्यं त्रपयैव, नान्यथा। अतो व्यादिश्यते तेन—वाच न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः (१-३१), अभिमुखे मयि संहृतमीक्षित० (२-११)। स्त्रीसौन्दर्यं सच्चारित्र्येण तपसा च। यथा—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने० (४-१८), इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपता समाधिमास्थाय तपोभिरात्मन. (कुमार० ५-२)। तपःपूतमेव प्रेम प्रसीदति प्रशस्यते च। तप.पूतैव शकुन्तला प्रियमनुविन्दति।

कालिदासस्य शैली—कालिदासो वैदर्भीरीत्या सर्वाग्रणी कविरित्यत्र न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। (क) तस्य शैल्या प्रसादमाधुर्यौजसा त्रयाणामपि गुणाना समन्वयोऽवलोक्यते। प्रसादगुणो यथा—भव हृदय साभिलाष सप्रति सन्देहनिर्णयो जात:० (१-८८), क्व वय क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जन.० (२-१८), अय स ते तिष्ठति सगमोत्सुको विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्० (३-११), अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सप्रेष्य परिग्रहीतुः० (४-२२)। माधुर्यगुणो यथा—सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्यम्० (१-२०), अधरः किसलयराग. कोमलविटपानुकारिणौ बाहू (१-२१), स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु० (६-१०)। ओजोगुणो यथा—तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्त:० (१-३३), अनवरतधनुर्ज्या० (२-४)। (ख) तस्य भाषायामसाधारणोऽधिकारः। मनोज्ञान् भावान् मधुरैः शब्दैरभिव्यनक्ति। तद्यथा—अनाघ्रात पुष्प किसलयमलून कररुहैः० (२-१०), अमी वेदि परितः क्लृप्तधिष्ण्याः० (४-८), त्रिस्रोतस वहति० (७ ६)। (ग) वर्णने सक्षेपो ध्वन्यात्मकता च दृश्यते। तद्यथा—अये लब्ध नेत्रनिर्वाणम् (पृ० १५३), इत्यनेन दर्शनानन्दावाप्ते। कि शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्० (३-१८) इत्यनेन दयिताराधनस्य वर्णनम्। (घ) वर्णनेऽनुपम कौशल समीक्ष्यते। स प्रत्येक वस्तु सजीववत् प्रस्तवीति। यथा—विरहविषण्णयोर्दुष्यन्तशकुन्तलयोर्वर्णनम्। चतुर्थेऽङ्के शकुन्तलावियोगखिन्नस्याश्रमपदस्य वर्णनम्। (ङ) तस्य सलापेषु सर्वत्र सक्षेपो रम्यता चावाप्यते। (च) सोऽलकाराणा प्रयोगेऽनुपमः पटु। प्रायश्चत्वारिंशदलकारास्तेन प्रयुक्ताः। (छ) उपमा कालिदासस्य। वर्णितमेतदन्यत्र। अर्थान्तरन्यासप्रयोगेऽप्यसम पटुः। तद्यथा—सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त:करणप्रवृत्तयः (१-२२), स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (५-१२), अथवा भवितव्याना द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (१-१६)। (ज) चतुर्विंशतिश्छन्दासि प्रयुक्तानि तेन शाकुन्तले।

६. उपमा कालिदासस्य

कविताकामिनीकान्तः कालिदासः कस्य नावर्जयति चेतः सचेतसः। तस्य काव्यसौन्दर्यं प्रेक्ष-प्रेक्ष प्रशंसन्ति सहृदयाः सुधियस्तस्य कलाकौशलम्। तस्य सूक्तयः सुधासिक्ता मञ्जर्य इव चेतोहराः सन्ति। अत उच्यते बाणभट्टेन हर्षचरिते—'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते'। कालिदासोऽतिशेते सर्वानपि महाकवीनौपम्ये। अतः साधूच्यते—'उपमा कालिदासस्य'। एतदेवात्र विविच्यते।

का नामोपमा? कथं चैषोपकर्त्री काव्यस्य? विश्वनाथानुसारं 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।' (सा० दर्पण १०-१४)। वस्तुद्वयस्य वैधर्म्यं विहाय साम्यमात्रं चेदुच्यते वाक्यैक्ये तर्हि सोपमा। उपमैषा सौदामिनीव विद्योतते विपुले वाङ्मये। काव्यशरीरे समादधाति महतीं मञ्जुलताम्। कालिदासस्योपमाप्रयोगेऽपूर्वं वैशारद्यम्। उपमासु न केवलं रम्यता, यथार्थता, पूर्णता, विविधता चैवापि तु सर्वत्रैव लिङ्गसाम्यमौचित्यं च। लिङ्गसाम्यमौचित्यस्य च समाश्रयणेन काचिदपूर्वा सम्पद्यते चारुतोपमासु। शतशः सन्त्युपमाप्रयोगस्थलानि तस्य काव्यादिषु। रघुवंशे तूपमाप्रयोगः सर्वातिशायी।

उपमाप्रयोगे चातुर्येणैव स 'दीपशिखा-कालिदास' इति प्रसिद्धिमाप। पतिंवरा इन्दुमती दीपशिखेव व्यराजत। तद्यथा—'सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा। नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभावं स स भूमिपालः'। (रघु० ६-६७)। वामदेवो दीप इवास्ते, रतिश्च कामविहीना दीपदशेव भृशं दुःखमाप। 'गत एव न ते निवर्तते, स सखा दीप इवानिलाहतः। अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम्'। (कुमार० ४-३०)।

शास्त्रीया उपमास्तावत् प्राङ्निर्दिश्यन्ते। (१) शास्त्रीया उपमाः—(क) वेदविषयकाः—मनुस्तथैव नृपाणामग्रिमोऽभवद्यथा मन्त्राणामोंकारः। 'आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव' (रघुवंश १-११)। सुदक्षिणा नन्दिन्या मार्गं तथैवान्वगच्छद्यथा स्मृतिः श्रुतेरर्थम्। 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्' (रघु० २-२)। (ख) दर्शनविषयकाः—यथा बुद्धेः कारणमव्यक्तं मूलप्रकृतिर्वा तथा सरय्वा नद्याः कारणं मानसं सरः। 'ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति' (रघु० १३-६०)। दिलीपस्य कृतिविशेषाः प्राक्तनाः संस्कारा इव फलानुमेया आसन्। 'फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव' (र० १-२०)। गम्भीरायाः नद्याः पयो निर्मलं मानसमिव वर्तते, मेघश्च छायात्मेव। 'चेतसीव प्रसन्ने, छायात्मापि०' (मेघ० १-४३)। यतिर्यथेन्द्रियारातीन् बाधते तथा रघुः पारसीकान् जेतुं प्रतस्थे। 'इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी' (रघु० ४-६०)। (ग) यज्ञविषयका—नृपो दुष्यन्तः शकुन्तला भरतोऽपत्यं च त्रयमेतत् क्रमशः विधिः श्रद्धा वित्तं चेति त्रयाणां समन्वयो वर्तते। 'श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं

तत् समागतम्' (शा० ७ २९)। शकुन्तलाऽनुरूपं भर्तारं गता यथा धूमावृतलोचनस्य यजमानस्य वह्नावाहुतिः। 'दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता' (शा० अंक ४)। यज्ञस्य दक्षिणेव सुदक्षिणा दिलीपभार्याऽभूत्। 'अध्वरस्येव दक्षिणा' (र० १-३०)। स्वाहया युक्तोऽग्निरिव वसिष्ठोऽरुन्धत्या समेतोऽभूत्। 'स्वाहयेव हविर्भुजम्' (र० १-५६)। दिलीपानुगता नन्दिनी विधियुक्ता श्रद्धेव बभौ। 'श्रद्धेव साक्षाद् विधिनोपपन्ना' (र० २-१६)। रामादिभ्रातृचतुष्टयस्य विनीतत्वं तथैवावर्धत यथा हविषाऽग्निः। 'हविषेव हविर्भुजाम्' (र० १०-७९)। (घ) विद्याविषयकाः—विद्याऽभ्यासेन यथा चकास्ति तथा नन्दिनी सेवया प्रसादनीया। 'विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि' (र० १-८८)। दुष्यन्तपरिणीता शकुन्तला सुशिष्यप्रदत्ता विद्येवाशोचनीयाऽभूत्। 'सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयाऽसि संवृत्ता' (शा० अंक ४)। (ङ) व्याकरण-विषयकाः—अपवादनियमो यथोत्सर्गं बाधते तथा शत्रुघ्नो लवणासुरं बबाधे। 'अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः' (र० १५-७)। अध्ययनार्थकादिङ्धातोः प्राक् अधिरुपसर्गो यथा शोभाकृद् व्यर्थश्च तथा शत्रुघ्नेन समं सेना। 'पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत्' (र० १५-९)। (च) राजनीतिविषयकाः—प्रभावशक्तिर्मन्त्रशक्तिरुत्साहशक्तिश्चेति त्रयं यथाऽर्थमक्षयं सूते तथा सुदक्षिणा पुत्रं रघुमसूत। 'त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम्' (र० ३-१३)। (छ) ज्योतिषविषयकाः—चन्द्रग्रहणानन्तरं यथा रोहिणी शशिनमुपैति तथा शकुन्तला दुष्यन्तमुपगता। 'उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्' (शा० ७-२२)।

(२) मूर्तस्यामूर्तरूपेण—दिलीपः क्षात्रधर्म इवासीत्। 'क्षात्रो धर्म इवाश्रितः' (र० १-१३)। स धवलं क्षीरं यशसोपमिमीते—'शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः' (र० २-६९)। रथं मनोरथेनोपमिमीते—'स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन' (र० २-७२)। रामादय-श्चत्वारश्चतुर्वर्ग इवाशोभन्त। 'धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गभाक्' (र० १०-८४)। क्वचित् निर्जीवस्य सजीवेन सहोपम्यम्—सिप्रावातः चाटुकारो जन इवास्ते। 'सिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः' (मेघ० १-३१)।

(३) प्रकृतिसंबद्धाः—अत्र संकेतमात्रं निर्दिश्यन्त उपमाः, ता यथायथं विवेच्याः। (क) सूर्यसंबद्धाः—सूर्यमिव तेजोमयं सुतं जनय। 'तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनम्' (शा० ४-१९)। रामपरशुरामौ शशिदिवाकराविवाशोभेताम्। 'पार्वणौ शशिदिवा-कराविव' (र० ११-८२)। (ख) चन्द्रसंबद्धाः—शोकविकला यक्षपत्नी विधुकलेवालक्ष्यत। 'प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः' (मे० २-२९)। पार्वती दिवा विधुलेखेवाम्ला-यत्। 'शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा०' (कुमार० ५-४८)। सन्ध्या शशिनमिव नन्दिनी श्वेतरोमाङ्कं दधे। 'सन्ध्येव शशिनं नवम्' (र० १-८३)। अन्याश्चन्द्रसंबद्धा उपमाः, यथा—मनुवंशे दिलीपः, सिन्धौ चन्द्र इव जज्ञे। 'इन्दुः क्षीरनिधाविव' (र० १-१२), सुदक्षिणादिलीपौ चित्राचन्द्रमसाविवास्ताम्। 'हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव'

(र० १-४६)। मगधाधिपः परन्तपो राजा साक्षात् चन्द्र इवासीत्। 'कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रि.। (रघु० ६-२२)। सीतावियुक्तो रामस्तुषारवर्षी चन्द्र इवारोदीत्। 'बभूव राम. सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्र.'। (रघु० १४-८४)। चन्द्रसबद्धाश्चान्या उपमाः—दिलीप चन्द्रमिवावालोकयन् जना.। 'नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदय नाथमिवौषधीनाम्'। (रघु० २ ७३)। रघुश्चन्द्र इव वृद्धिमाप। 'पुपोष वृद्धि हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः'। (रघु० ३-२२)। वाल्मीकिना जानकी तापसीभ्योऽर्पिता, यथा चन्द्रकला ओषधीभ्यो दत्ता। 'निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु। (रघु० १४ ८०)। (ग) वृक्षादिसबद्धा.—शकुन्तलाया. कमनीय कलेवर लतामिवानुचकार। 'अधर किसलयराग. कोमलविटपानुकारिणौ बाहू। कुसुममिव लोभनीय यौवनमङ्गेषु सनद्धम् (शा० १-२१)। वल्कलावृता शकुन्तला शैवलावृत कमलमिव, लक्ष्मान्वित. सुधांशुरिवाशोभत। 'सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्यम्०' (शा० १ २०)। वृक्षादिसबद्धाश्चान्या उपमा.—पार्वती लतेवासीत्, 'पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा सचारिणी पल्लविनी लतेव'। (कुमार० ३-५४)। शकुन्तला माधवीलतेवाशुष्यत्, 'पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी' (शा० ३ ७)। गर्भवती शकुन्तला शमीवाभवत्। 'अवेहि तनया ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव' (शा० ४-४)। सीता लतेव भूमौ पपात। 'स्वमूर्तिलाभप्रकृति धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम' (रघु० १४-५४)। (घ) पुष्पसबद्धा.—खिन्ना यक्षपत्नी साभ्रे दिवसे स्थलकमलिनीव म्लानाऽभूत्। 'साभ्रेऽह्नीव। स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धा न सुप्ताम् (मे० २-३०), मृगः पुष्पराशिरिवास्ते, न च वध्य.। 'न खलु मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः' (शा० १-१०)। पुष्पसबद्धाश्चान्या उपमा —'पद सहेत भ्रमरस्य पेलव, शिरीषपुष्प न पुन. पतत्रिण ' (कु० ५ ४)। 'न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कज सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते' (कु० ५-९)। रघुरतीव जनप्रियोऽभूत्। 'फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजा' (रघु० ४ ९)। शकुन्तलाया शरीर कुसुममिवासीत्। 'वपुरभिनवमस्या. पुष्यति स्वा न शोभा, कुसुममिव पिनद्ध पाण्डुपत्रोदरेण' (शा० १-१९)। शकुन्तला नवमालिकाकुसुममिवाभूत्। 'अर्कस्योपरि शिथिल च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्'। (शा० २-८)। शकुन्तलाऽनाघ्रात पुष्पमिवासीत्। 'अनाघ्रात पुष्प किसलयमलून कररुहै.' (शा० २-१०)। 'स्रजमपि शिरस्यन्ध क्षिप्ता धुनोत्यहिशङ्कया' (शा० ७-२४)। 'अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः' (शा० ४-१२)। जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनीं वान्यरूपाम्। (मेघ० २-२०)। स्थानाभावादन्या उपमा. सकेतमात्रमुपस्थाप्यन्ते। (ङ) पशुसबद्धा.—रेवा गजशरीरे भूतिरिवास्ति। 'रेवा द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां, भक्तिच्छेदैरिव विरचिता भूतिमङ्गे गजस्य' (मेघ० १-१९)। 'पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहा., शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्' (मेघ० २-१३)। दुष्यन्तो गज इवासीत्। 'यूथानि सचार्य रविप्रतप्त', शीत दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः' (शा० ५-५)। 'अरुन्तुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः' (रघु० १-७१), 'जुगोप गारूपधरामिवोर्वीम्' (रघु० २-३), 'अन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्र.' (रघु० २-७)। दशरथ

ऐरावत इवासीत् । 'सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारैः' । (रघु० १०-८६) । (च) नद्यादि-सबद्धा.—प्रयागे सगमवर्णनम् । 'क्वचित् प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा । अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥ क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमो-भिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव । अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः-प्रदेशा ॥ (रघु० १३-५४, ५६) । दिलीपः सागर इवासीत् । अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः । (रघु० १-१६) । क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः । (रघु० १-७३) । लिपेर्यथावद् ग्रहणेन वाङ्मय नदीमुखेनेव समुद्रमाविशन् । (रघु० ३-२८) । बभौ हरजटाभ्रष्टा गङ्गामिव भगीरथः । (रघु० ४-३२) । तमेव चतुरन्तेश रत्नैरिव महार्णवाः । (रघु० १०-८५) । (छ) पर्वतादिसबद्धाः—पाण्ड्योऽयमसार्पितलम्बहार. सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः । (रघु० ६-६०) । स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना । (रघु० १-१४) । प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः । (रघु० १-६८) । अधित्यकाया-मिव धातुमय्या लोध्रद्रुम सानुमतः प्रफुल्लम् । (रघु० २-२९) । शङ्कास्पृष्टा इव जलमुच-स्त्वादृशा जालमार्गैः (मेघ० २-८) । त्वत्सपर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः (मेघ० १-२५) । (ज) पृथ्वीसबद्धा —ऊधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तु षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः । (रघु० २-६६) । कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा । (शा० ६-२४) । (झ) द्युसबद्धा.—अथ नयनसमुत्थ ज्योतिरत्रेरिव द्यौः, सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम् । (रघु० २-७५) । (ञ) वायुसबद्धाः—र० ४-८, १०-८२ । (ट) अग्निसबद्धाः—र० ११-८१, शा० ५-१० । (ठ) मासदिनादिसबद्धाः—र० ११-७, १०-८३, २-२० । (ड) वर्षादिसबद्धाः—कु० ४-३९, ५-६१, र० १-३६, ४-६१, शा० ३-९, ३-२४ । (ढ) खगादिसबद्धाः—र० ४-६३, १४-६८ ।

(४) विविधविषयसम्बद्धाः—(क) देवसबद्धाः—अथैनमद्रेस्तनया शुशोच, सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः । (रघु० २-३७) । जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन, वज्र मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः । (रघु० २-४२) । (ख) पुरुषसबद्धा·—तेन श्याम वपुरतितरा कान्तिमापत्स्यते ते, बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः । (मेघ० १-१५) । शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः । (मेघ० १-३२) । धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन् मुखानि । (मेघ० १-५१) । असन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव । (मेघ० १-६२) । प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामन. । (रघु० १-३) । (ग) स्त्रीसबद्धाः—मुक्ताजालग्रथित-मलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् । (मेघ० १-६६) । अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः । (रघु० २-१०) । प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या । (ऋतु० ३-१) ।

७. भारवेरर्थगौरवम्

महाकविर्भारविः पञ्चम्यां शताब्द्यामीसवीयाब्दस्य जनिमापेति ६३४ ईसवीये लिखितेन 'ऐहोल'—शिलालेखेन निर्विवादं निर्णीयते। तथा चोदीर्यते रविकीर्तिना, 'येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म। स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः'। अवन्तिसुन्दरीकथामनुसृत्य निर्णीयते यत् कविवरोऽयं दाक्षिणात्यः, पुल्केशिद्वितीयस्यानुजस्य विष्णुवर्धनस्य सदस्यः कविवर इति। भारविर्नाम कविवरोऽयं गीर्वाणगिरो गगने भा रवेरिव चकास्ति। समधिगतमनेनानुपमं यशः स्वकीयेनार्थगौरवसमन्वितेन किरातार्जुनीयनामधेयेन महाकाव्येन। महाकाव्यमेतस्य गुणत्रयेण माधुर्येण प्रसादेनौजसा च परिपूर्णम्। कविवरोऽयं न केवलमासीद् व्याकरणपारङ्गतोऽपि तु नीतिशास्त्रेऽलंकारशास्त्रेऽपि महद् वैचक्षण्यं समासादयत्। कृतिरियं तस्यार्थभारभरितेति दर्श-दर्शं विपश्चिद्भिः'भारवेरर्थगौरवम्' इति सादरमुदीर्यते। महाकाव्यस्यैतस्य टीकाकृत् श्रीमल्लिनाथः काव्यमेतत् नारिकेलफलेनोपमिमीते। अभिधत्ते च—'नारिकेलफलसमितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते। स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्'।

भारवेः कीर्तिर्महाकाव्यं किरातार्जुनीयमवलम्ब्यैव वरीवर्ति। ग्रन्थरत्नमेतदेकमेव तस्योपलभ्यते। प्रशस्तैः स्वीयैर्गुणैर्महाकाव्यमेतत् संस्कृतसाहित्ये प्रमुखं स्थानमाश्रयते। संस्कृतमहाकाव्येषु बृहत्त्रय्यामन्यतमं गण्यते। बृहत्त्रय्यामितरे स्तः—माघविरचितं शिशुपालवधं, श्रीहर्षप्रणीतं नैषधीयचरितं च। समग्रेऽपि संस्कृतसाहित्ये नैतादृशमोजोगुणसमन्वितं काव्यान्तरम्। अष्टादशात्र सर्गाः। किरातवेषधारिणा शिवेन सहार्जुनस्य समरोऽत्र वर्ण्यते। वीररसोऽत्र प्रधानः, रसाश्चान्ये गौणाः। श्रीसमन्वितं काव्यमेतदिति संसूचनाय 'श्री'शब्देन महाकाव्यमारभते, प्रतिसर्गान्ते च 'लक्ष्मी'—शब्दं प्रयुङ्क्ते। तद्यथा—'श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीम्०' (१-१), 'दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः' (१-४६)। न केवलमर्थगौरवान्वितपदप्रयोग एव निष्णातोऽयम्, अपि तु प्रकृतिवर्णने विविधालंकारप्रयोगे चित्रालंकारप्रयोगे व्याकरण काव्यशास्त्र-नीतिशास्त्र-कामशास्त्रादिपाण्डित्यप्रदर्शनेऽप्यनुपम एवायम्। शतशः सन्ति सूक्तिमुक्ताः प्रकृतिवर्णनादिवैदग्ध्यप्रतिपादिकाः। शरद्वर्णनं यथा—तुतोष पश्यन् कलमस्य सोऽधिकं, सवारिजे वारिणि रामणीयकम्। सुदुर्लभे नार्हति कोऽभिनन्दितुं, प्रकर्षलक्ष्मीमनुरूपसंगमे। (४-४)। चित्रालंकारप्रदर्शनं यथा—एकाक्षरात्मकः श्लोकः—'न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु। नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्' (१५-१४)। सर्वतोभद्रप्रयोगो यथा—'देवाकानिनि कावादे, वाहिकास्वस्वकाहि वा। काकारेभभरे काका निस्वभव्यव्यभस्वनि' (१५-२५)। विभिन्नचतुरर्थकबोधकपदप्रयोगो यथा—'विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा, विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः। विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा, विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः।' (१५-५२)। जलक्रीडावर्णनं यथा—'करौ धुनाना नवपल्लवाकृती, पयस्यगाधे किल जातसम्भ्रमा। सखीषु

निर्वाच्यमधाष्टर्यदूषित, प्रियाङ्गसङ्गरूपमवाप मानिनी । (८-४८) । 'विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि, प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः । सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता, बभार वीतोच्चयबन्धमशुकम्' (८-५१) ।

किं नामार्थगौरवम् ? कथ चैतदुपकरोति महाकाव्यस्य ? कथ च गुणेनैतेनानुत्तम यशो भारवेः ? इत्येतदत्र विवच्यते । अर्थगौरव नाम भावगाम्भीर्यं सद्भावभूषाभूषितत्व च । भावमूलकत्वाद् महाकाव्यस्य, भावभूषया च काव्यगौरवस्य समभिवृद्धेरर्थगौरव महदुपकारि महाकाव्यस्य । पदे-पदे समुपलभ्यन्ते महाकाव्येऽस्मिन् अर्थभारभरिता विविधविषयका. सूक्तय. । अनुमीयते चैतेन भारवेर्वैदुष्यम् । शतशोऽत्र सूक्तिमुक्ताः समुपलभ्यन्ते । तासा दिङ्मात्रमिह प्रस्तूयते ।

अर्थगौरवस्य महत्त्वमुदीरयता भारविनैव सम्यक् प्रतिपाद्यते यत्तस्य काव्ये सर्वत्र स्फुटताऽर्थगौरव भावसाकर्याभावः सामर्थ्यं च प्राप्स्यते । यथोच्यते—स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् । रचिता पृथगर्थता गिरा, न च सामर्थ्यमपोहित क्वचित् । (किराता० २-२७) । सा चैतादृशी भावगाम्भीर्यभरिता भारती सततकृतपुण्यकर्मभिरेव प्रवर्तते, नान्यथा । 'प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणा प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती' (कि० १४-३) । किं नाम वाग्मित्वम्, कथ च सभ्येषु ते विशेषत आद्रियन्ते, इति विवेचयता तेन साधु प्रतिपाद्यते यन्मनोगतस्य गभीरस्यार्थस्य परिष्कृतया प्राञ्जलया च वाचा प्रकाशनेन वाग्मित्व समासाद्यते । 'भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चिता, मनोगत वाचि निवेशयन्ति ये । नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम्' । (कि० १४-४) । भाषणेऽपि च केचनार्थगौरवमाद्रियन्ते, केचन भाषासौष्ठवमपरे माधुर्यमन्ये भावप्रकाशनशैलीम्, इति महति विरोधे वर्तमाने सर्वमनःप्रसादिनी गीः सुदुर्लभा । अतस्तेनोक्तम्—'सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिर.' (१४-५) । विदुषा कीदृशः स्वभाव इति विवेचयन्नाह विद्वासो गुणग्रहणे धृतधियो भवन्ति । 'गुणगृह्या वचने विपश्चितः' (२-५) । विद्वासो हि परेङ्गितज्ञा भवन्ति । इङ्गितज्ञश्च न विषीदति काले । 'न हीङ्गितज्ञोऽवसरेऽवसीदति' (४-२०) ।

प्रेम्णो गौरव प्रतिपादयता तेनोच्यते—'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि' (८-३७) । स्नेहप्राचुर्यमेव गुणाना निधान, न वस्तुसौन्दर्यमात्रम् । प्रेमी सदैव प्रियस्यानिष्टवारणाय यतते चिन्तयति च । तदाह—'प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि' (९-७०) । मित्रलाभश्च लाभोऽपूर्वः । तदाचष्टे—'मित्रलाभमनु लाभसम्पदः' (१२-५२) । विनयः सुशीलता च किमित्युररीकरणीयेति प्रतिपादयन्नाह विनयेनैव योगिनो मुक्ति समधिगच्छन्ति । 'योगिना परिणमन् विमुक्तये, केन नास्तु विनय सता प्रिय ' (१३-४४), शील्यन्ति यतय सुशीलताम् (१३-४३) । मनोविज्ञानसम्बन्धि सूक्ष्मनिरीक्षण कुर्वता तेनोच्यते चेतोभावा एव हितैषिण रिपु वा प्रकटयन्ति । 'विमल कलुषीभवच्च चेतः,

कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा' (१३-६)। अविज्ञातमपि प्रियमिष्टं वा प्रेक्ष्य जनस्य हृदयं प्रसीदति। 'अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः' (११-८)।

भौतिकविषयाणां स्वरूपविचारे साधु तेन प्रतिपाद्यते यद् विषयाः परिणामे दुःखदाः। 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः' (११-१२)। अतएव कामानां हेयत्वं प्रतिपादयति। तेषां स्वरूपं च विवृणोति। 'अश्रद्धेया विप्रलब्धारः, प्रिया विप्रियकारिणः। सुदुस्त्यजास्त्यजन्तोऽपि कामाः कष्टा हि शत्रवः' (११-३५)। भोगा भुजङ्गफणसदृशाः, भोगप्रवृत्तस्य च विपदवाप्तिः सुनिश्चिता। 'भोगान् भोगानिवाहेयान्, अध्यास्यापन्न दुर्लभा' (११-२३)। अतो विषयान् विहाय गुणार्जने मनो निधेयम्। 'सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्' (११-११)। गुणैरेव गौरवं प्राप्यते। 'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः' (१२-१०)। गुणैरेव प्रियत्वं प्राप्यते, न तु परिचयमात्रेण। 'गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः' (४-२५)। गुणैरेव सर्वं जगद् वशीकर्तुं पार्यते। 'कमिवेशते रमयितुं न गुणाः' (६-२४)।

स्वाभिमानस्य महत्त्वं प्रतिपादयता साध्वभिधीयते तेन यत्स्वाभिमानरहितस्तृणवदगण्यः। 'जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः' (११-५९)। नहि तेजस्विनं कृशानुवद् भान्तं कश्चिदवज्ञातुमर्हति। 'ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः' (२-२०)। पुरुषः स एव यो मानेन जीवति। 'पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते' (११-६१)। मनस्विना यदेवेप्स्यते तदेवाधिगम्यते। 'किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभिः' (१२-६)। नीतिविषयकाण्यनेकानि सुभाषितान्युपलभ्यन्ते। तान्यतिसूक्ष्मतयोल्लिख्यन्ते। तानि च यथायथं विवेक्तव्यानि। 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' (१-४)। सद्भिरेव मैत्रीं विरोधं च कुर्वीत, नासद्भिः। 'समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः' (१-८)। न बलीयसा युध्येत। 'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता' (१-२३)। अवन्ध्यकोपस्योदारसत्त्वस्यैव च सर्वत्रादरो भवति। 'अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः। अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना, न जातहार्देन न विद्विषादरः। (१-३३)। सदा विचार्यैव कर्मणि प्रवर्तितव्यम्, न सहसा कृतिमनुतिष्ठेत्। 'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणं, गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः। (२-३०)।

एवं राजनीतिविषयका बहवोऽत्र सूक्तयः समुपलभ्यन्ते। शठे शाठ्यमेवाचरेत्। 'व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः' (१-३०)। युद्धे जयश्रीरुत्कर्षशालिनमेव श्रयते। 'प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः' (३-१७)। शत्रोरुत्सादन

परम कर्तव्यम् । 'परम लाभमरातिभङ्गमाहु.' (१३-१२) । नोत्कृष्टेन सह विग्रहो नयसमतः । 'प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फला' (१३-६१) । विक्रमार्जितसत्त्वस्य न कोऽपि दोषः । 'न दूषितः शक्तिमता स्वयग्रह.' (१४-२०) । नीतिमुत्सृजतो नृपस्य न प्रजा प्रसीदति । 'नयहीनादपरज्यते जन.' (२-४९) । नृपस्यामात्याना च सामनस्यमेव श्रेयसे भवति । 'सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रति, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पद.' (१-५) । राज्ञा कृते शममार्गो न शोभन. । 'व्रजन्ति शत्रूनवधूय नि'स्पृहा', शमेन सिद्धि मुनयो न भूभृत.' (१-४२) ।

कानिचिदन्यानि हृद्यानि सूक्तानि प्रस्तूय-तेऽत्र तानि यथायथ विवेच्यानि । स्वपौरुष परममालम्बनम् । 'विनिपातनिवर्तनक्षम, मतमालम्बनमात्मपौरुषम्' (२-१३) । महीयासो न परकृपाजीविनः । 'लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यत.' (२-१८) । मानिन श्रीः स्वयमनुगच्छति । 'अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः । अचिरांशुविलासचञ्चला, ननु लक्ष्मी. फलमानुषङ्गिकम्' (२-१९) । महान् नान्यसमुन्नति सहते । 'प्रकृतिः खलु सा महीयस, सहते नान्यसमुन्नति यया' (२-२१) । सद्भावाविर्भावाय क्रोधोऽपनेयः । 'अविभिद्य निशाकृत तम., प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते' (२-३६) । अजितेन्द्रियै. श्रियो न रक्षितु शक्यन्ते । 'शरदभ्रचला-श्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रिय.' (२-३९) । दुर्जनसगति सदैव दोषाय । 'असाधुयोगा हि जयान्तरायाः, प्रमाथिनीना विपदा पदानि' (३-१४) । खलाः साधुष्वपि दोषदर्शिनः । 'मात्सर्यरागोपहतात्मना हि, स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि' (३-५३) । सत्यवसरे भाषण शोभते । 'मुखरताऽवसरे हि विराजते' (५-१६) । स्वभावसुन्दर वस्तु न कृत्रिमतामपेक्षते ।' 'न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्' (४-२३) । सविघ्नैव सुखावाप्ति' । 'श्रेयासि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः' (५-४९) । मित्रवियोगो दुःसहः । 'सधत्ते भृशमरतिं हि सद्वियोग.' (५-५१) । मनस्विनो न खिद्यन्ते । 'किमिवावसादकरमात्मवताम्' (६-१९) । सुन्दर वस्तु विकृतमपि शोभते । 'रम्याणा विकृतिरपि श्रिय तनोति' (७-५) । लक्ष्मीः परोपकारार्थमेव भवति । 'सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्' (७-२८) । सर्वोऽपि निर्बाध वस्तुकामः । 'वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः' (९-१६) । कामः सदा वाम । 'वाम एव सुरतेष्वपि कामः' (९-४९) । भवति योग्येषु पक्षपातः । 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाता.' (३-१२) । न मानिनो धनवन्तः । 'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः । (१४-१३) । न गजा गोमायुसखाः । 'भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः' (१४-२२) । लोके गुणार्जन दुष्करम् । 'सुलभा रम्यता लोके, दुर्लभ हि गुणार्जनम्' (११-११) ।

एव प्रतिपदमर्थगौरवमुद्वीक्ष्यैव 'भारवेरर्थगौरवम्' इति सहर्षमुद्घोष्यते ।

८. दण्डिनः पदलालित्यम्

महाकवेर्दण्डिनो जनिकालविषये सन्ति बहवो विप्रतिपत्तय.। समासतः पक्षद्वय मुख्यत्वेनाङ्गीक्रियते। केचनेसवीयाब्दस्य षष्ठशताब्द्या अन्तिमे चरणेऽस्य जनिमुरीकुर्वन्त्यन्ये च सप्तमशताब्द्या उत्तरार्धे। राजशेखरेण कविरसौ प्रबन्धत्रयस्य प्रणेतेति प्रतिपाद्यते। विषयेऽस्मिन्नपि प्रचुरो विवाद.। काव्यादर्शो दशकुमारचरित चेति ग्रन्थद्वय तु सर्वैरेव स्वीक्रियते दण्डिन. कृतित्वेन। अवन्तिसुन्दरीकथेति खण्डश उपलब्धा कृतिस्तृतीयेति मन्यते मनीषिभि कैश्चित्।

दशकुमारचरितमाश्रित्यैवास्य महती महनीयतेति नात्र विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। गद्यकाव्यस्यैतस्य गौरव पदलालित्य च प्रेक्ष प्रेक्ष प्रेक्षावता प्राप्यन्ते प्रभूतानि प्रचुरप्रशस्तिपूर्णानि पद्यानि। 'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न सशयः'। केचन वाल्मीकेर्व्यासस्य चानन्तर दण्डिनमेव महाकवित्वेनाकलयन्ति। 'जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्। कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि'। मधुराविजयमहाकाव्यस्य रचयित्री गङ्गादेवी (१३८० ई०) तु दण्डिनो वाच सरस्वत्या मणिदर्पणमेव मनुते। 'आचार्यदण्डिनो वाचामाचान्तामृतसम्पदाम्। विकासो वेधस. पत्न्या विलासमणिदर्पणम्'।

किं नाम पदलालित्यम्? कथ चैतेन काव्यस्य महत्त्वमभिवर्धते? सुप्तिङन्तं पदमिति सुबन्त तिङन्त वा पदमित्यभिधीयते। ललितस्य भावो लालित्य माधुर्यमिति। यत्र पदेषु वाक्येषु शब्दसघटनाया वा माधुर्यं श्रुतिसुखदत्व वा समुपलभ्यते, तत्र पदलालित्यमिति मन्यते। पदलालित्य शब्दसाष्ठव चावर्जयति सचेतसा चेतासीति गुणोऽय गरिमान तनुते काव्यस्य। दशकुमारचरिते दृश्यते गुणस्यैतस्य गौरवम्। तच्चेह समासतो व्याचिख्यासितम्।

मृद्वीकारसभारभरितेव भारती दण्डिन आचार्यस्य। सुधीभिरास्वादनीय समीक्षणीय चैतस्या माधुर्यम्। राजहसस्येव राज्ञो राजहसस्य सुषमा समवलोकयन्तु सन्तः। "अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासभारभासुरभूसुरनिकरः, राजहसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव" (पूर्वपीठिका उच्छ्वास १)। राजहसस्य महिषी वसुमती ललनाकुलललामभूताऽभूत्। 'तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती कुलशेखरमणी रमणी बभूव' (पू० उ० १)। मालवेश्वरस्य प्रस्थानवर्णन कुर्वताऽभिधीयते तेन—'मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रह. सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम' (पू० उ० १)। राजहसश्च मालवराजचमू स्वसैन्यसहितोऽवारुणत्। 'राजहसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिकरुष द्विष रुरोध' (पू० उ० १)।

विजयार्थ प्रस्थातुकामाना कुमाराणा यमकालकारालकृत वर्णनमदो दण्डिनो वाग्वैभवमेवाविर्भावयति। 'कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशस राजानमकार्षु ।' (पू० उ० २)। ऐन्द्रजालिककृतेन्द्रजालप्रदर्शनरूपेण फणिना वर्णनमेतत्—'तदनु विषम विषमुल्बण वमन्त.

फणालंकरणा रत्नराजिनीराजितराजमन्दिराभोगा भोगिनो भयं जनयन्तो निश्चेरुः' (पू० उ० ५)।

आस्तरणमधिशयानायाः राजकन्यायाः वर्णनमेतद् दण्डिनः सूक्ष्मेक्षिकयेक्षणं वर्णनवैदग्ध्यं चाविष्करोति। 'अवगाह्य कन्यान्तःपुरं प्रज्वलत्सु मणिप्रदीपेषु कुसुमलवच्छुरितपर्यन्ते पर्यंकतले ' 'ईषद्विवृतमधुरगुल्मसंधि, आभुग्नश्रोणिमण्डलम्, अतिश्लिष्टचीनांशुकान्तरीयम्, अनतिवलितततनुतरोदरम्, अर्धलक्ष्याधरकर्णपाशनिभृतकुण्डलम्, आमीलितलोचनेन्दीवरम्, अविभ्रान्तभ्रूपताकम् ' 'चिरविलसनखेदनिश्चला शरदम्भोधरोत्सङ्गशायिनीमिव सौदामिनीं राजकन्यामपश्यत्।' (उत्तर० उ० २)।

राज्ञो धर्मवर्धनस्य दुहितरमुपवर्णयति। 'तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका, नवमालिका नाम कन्यका।' (उ० उ० ५)। गिरिवरं च वर्णयन्नाह—'अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्ततरेयं गन्धपाषाणवत्युपत्यका, शिशिरमिदमिन्दीवरारविन्दमकरन्दबिन्दुचन्द्रकोत्तरं गोत्रवारि, रम्योऽयमनेकवर्णकुसुममञ्जरीभरस्तरुवनाभोगः।'

उत्तरपीठिकायाः समग्रः सप्तमोच्छ्वासः ओष्ठ्यवर्णरहितः। एतादृशं निबन्धनमपूर्वमदृष्टचरं च विशालेऽपि विश्ववाङ्मये। ओष्ठ्यवर्णपरिहारेऽपि न परिहीयतेऽत्र शब्दसौष्ठवं पदलालित्यं च। यथा—'आर्य, कदर्थस्यास्य कदर्थनान्न कदाचिन्निद्राति नेत्रे।' 'सखे, सैषा सज्जनाचरिता सरणिः, यदणीयसि कारणेऽनणीयानादरः सदृश्यते'। 'असत्येन नास्यास्य सख्यज्यते'। 'चिरं चरितार्था दीक्षा'। 'न तस्य शक्यं शक्तेरियत्ताज्ञानम्'। 'दिष्ट्या दृष्टेष्टसिद्धिः। इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते। श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते संनिहितानि।' 'असिद्धिरेषा सिद्धिः, यदसंनिधिरिहार्याणाम्। कष्टा चेयं निःसङ्गता, या निरागसं दासजनं त्याजयति। न च निषेधनीया गरीयसां गिरः। 'तच्छरीरं छिद्रे निधाय नीराञ्जिरयासिषम्'। 'दृश्यतां शक्तिरार्षी, यत्तस्य यतेरजेयस्येन्द्रियाणां संस्कारेण नीरजसा नीरजसान्निध्यशालिनि सहर्षालिनि सरसि सरसिजदलसनिकाशच्छायस्याधिकतरदर्शनीयस्याकारान्तरस्य सिद्धिरासीत्।' 'बहुश्रुते विश्रुते विकचराजीवसदृग् दृगं चिक्षेप देवो राजवाहनः'। (उत्तर० उ० ७)।

'न मां स्निग्धं पश्यसि, न स्मितपूर्वं भाषते, न रहस्यानि विवृणोति, न हस्ते स्पृशति, न व्यसनेष्वनुकम्पते, नोत्सवेष्वनुगृह्णाति '।' मृगयालाभांश्च निर्दिशति। शाकुन्तले द्वितीयाङ्के वर्णितेन मृगयालाभेन साम्यमेतद्भजते। 'यथा मृगया ह्युपकारिकी, न तथान्यत्। मेदोऽपकर्षादङ्गानां स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि, शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वम्, सत्त्वानामवस्थान्तरेषु चित्तचेष्टितज्ञानम्।' (उ० उ० ८)।

एवं संलक्ष्यते दण्डिनः कृतौ शब्दयोजनसौष्ठवमनुप्रासमाधुर्यं यमकयोजनं वर्णनवैशद्यमोष्ठवर्णपरिहाराञ्चितं रम्यं वर्णनं युक्तिप्रत्युक्तिप्रशस्तं पदे पदे पदलालित्यम्। सर्व-

९. माघे सन्ति त्रयो गुणाः

माघस्य कवित्वम्—महाकविर्माघ. सुरगवी-काव्याकाशे विद्योतमान स्व-प्रभानिरस्तान्यतेजःप्रसरम् अनुपम नक्षत्रम् । तस्यापूर्वा कान्ति. समग्रमपि वाङ्मय रोचयतितमाम् । तस्य विविधशास्त्रावगाहिनी सूक्ष्मेक्षिका प्रतिभा सुगूढमपि तथ्यम् आत्मसात्कृत्वा पुरः स्फुरदिव प्रस्तौति । कविरय न केवल काव्यशास्त्रस्यैव पारदृश्वा, अपि तु व्याकरणशास्त्रस्य, राजनीते, अर्थशास्त्रस्य, धर्मशास्त्रस्य, कामशास्त्रस्य, दर्शनानाम्, ज्योतिषस्य, सगीतस्य, पाकशास्त्रस्य, हस्तिविद्यायाः, अश्वशास्त्रस्य, पुराणादीना च सारविदनुपमो मनीषी । अस्य चमत्कृतिकर पाण्डित्य प्रेक्ष प्रेक्ष प्रेक्षा-वन्तोऽस्य कवित्व प्रशसन्ति ।

माघस्य गौरवम्—केचन माघस्य कवित्व तथाऽऽह्लादकर मन्वते यत्ते तदर्थं स्वजीवनसमर्पणमपि सुन्दर मन्यन्ते । अतएव साधूच्यते—'मेघे माघे गत वयः' अर्थात् मेघदूतस्य शिशुपालवधस्य चानुशीलने आयुर्व्यतीतम् । काव्येऽस्मिन् तस्य विशाल शब्द-कोशमुद्वीक्ष्य केनापि निगद्यते—'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते' अर्थात् शिशु-पालवधस्य नवसर्गाणा समाप्तौ न नवीन. शब्दोऽवशिष्यते, तेन नवसर्गेषु तथा नवनवा. शब्दा. प्रयुक्ताः, यथा तत्र शब्दकोश राशिरुपलभ्यते । तस्य काव्ये प्रतिपद पद-लालित्य माधुर्य च प्रेक्ष्य विपश्चिद्भिरुदाह्रियते यत्—'काव्येषु माघ' इति । अनर्घराघवनाटक-कृतो मुरारे पाण्डित्यपरिपूर्णं नाटक प्रेक्ष्य केनाप्यभिधीयते यद् मुरारिर्जिज्ञासितश्चेद् माघे मन आधेयम् । 'मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे रति कुरु' । भारविं सर्वतोभावेन भावावल्याऽतिशयान माघ प्रेक्ष्य केनापि निगद्यते—'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय.' ।

माघस्य कृतित्वम्—कवेरेतस्य गौरवाधायक ग्रन्थरत्नम् एकमेव 'शिशुपाल-वध'-नामकम् उपलभ्यते । अस्मिन् महाकाव्ये विंशति. सर्गा, १६४५ श्लोकाश्च विद्यन्ते । १९ सर्गे क्षेपका. श्लोका. ३४, ग्रन्थान्ते च कविवशवर्णनश्लोका. ५, तेषामपि समाहारे श्लोकसख्या १६८४ भवति ।

माघस्य वैशिष्ट्यम्—विपश्चिद्भिः महाकवे. कालिदासस्य कृतिषु उपमाना प्राधान्यम्, भारवे कृतौ किरातार्जुनीये अर्थगौरवस्य वैशिष्ट्यम्, दण्डिन कृतौ दश-कुमारचरिते पदलालित्यम्, माघस्य च कृतौ शिशुपालवधे त्रयाणामपि पूर्वोक्ताना गुणाना समन्वय समीक्ष्य साह्लादम् उद्घोष्यते यद्—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिन पदलालित्य माघे सन्ति त्रयो गुणा. ॥

एतदत्रावधेय यद् माघो यद्यपि त्रयाणामपि गुणाना स्वकाव्ये समाहार विधत्ते, तत्र तत्र च वैशिष्ट्य सौन्दर्य माधुर्य चापि धत्ते, तथापि नोपमाप्रयोगे स कालिदासम् अतिशेते, अर्थगौरवे च भारविम् । पदलालित्ये नून स दण्डिनम् अतिशेते । तस्य पद-माधुर्यं सर्वातिशायि । माघ. त्रयाणामपि गुणाना मण्डने नितरा साफल्यम् अवापेत्येव तस्य महत्त्वम् । तस्य च तादृश प्रावीण्य यथा नानाविधवर्णने तस्याप्रतिहता प्रतिभा ।

माघस्य शैली—महाकवेर्माघस्य भावपक्षापेक्षया कलापक्षः प्रशस्यतरः। यद्यपि भावपक्षस्यापि मनोज्ञत्वं माधुर्यं हृद्यत्वं च पदे पदेऽवलोक्यते, तथापि नात्र कस्यापि सुधियो विप्रतिपत्तिः यन्माघः कलापक्षाश्रयणे कवीन् अन्यान् अतिशेते। क्वचिद् अलंकारप्रयोगाः, विशेषतश्चित्रालंकारप्रयोगाः, क्वचिद् व्याकरण-नैपुण्य-प्रदर्शनम्, क्वचिद् छन्दोरचना-दक्षतोपयोगः, क्वचिद् यमकाद्यलंकाराणां प्रयोगबाहुल्यम्, क्वचिद् कोमल-कान्त-पदावल्याः संधानम्, क्वचित् शास्त्रीय-पाटव-प्रदर्शनम्, तस्य कलात्मिकाया रुचेः परिचायिकानि सन्ति। महाकविर्भारविस्तस्य आदर्शरूपोऽभूत्। तस्य सरणिमनुसृत्य सोऽपि कलात्मक-पाण्डित्य-प्रदर्शने कृतमतिरभूत्। भारवेः स्वोत्कर्षं साधयितुं स तदीयां सरणिम् अनुसृत्य तत्रोत्कर्षम् अवाप। कलापक्षाश्रयणे स न केवलं भारविमेव, अपि तु महाकविं भट्टिमपि अतिक्रामति।

माघस्योपमा-वैशिष्ट्यम्—माघे सुरुचिपूर्णाः शतश उपमाः समुपलभ्यन्ते। तत्र क्वचित् शास्त्रीयं ज्ञानम्, क्वचित् काव्यगौरवम्, क्वचिद् नीतिशास्त्रतत्त्वम्, क्वचिच्च विविधविद्याविशारदत्वं तस्य गरिमाणं प्रथयति। संगीतशास्त्रस्य काव्यशास्त्रस्य च महत्त्वं वैचित्र्यं चोपमया प्रकटयति यद् वाङ्मये कतिपये एव वर्णाः सन्ति, संगीतशास्त्रे च सप्त स्वराः, परं तेषामुपादानेन कथमिव वैचित्र्यजनकं शास्त्रम् उदेति।

> वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
> अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता॥ शिशु० २-७२

भाग्यपुरुषकारयोर्द्वयोरपि परस्परापेक्षित्वम् अनिवार्यत्वेनाङ्गीकरणं च तथैवावश्यकं यथा सत्कवये शब्दार्थयोर्द्वयोरपि संग्रहः। उपमया साध्विदं विशदयति सः।

> नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
> शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥ शि० २-८६

उपमाप्रयोगे काव्यशास्त्रीयं ज्ञानं संपुष्णता तेनोच्यते यद् यथा संचारिभावाः स्थायिभावं पोषयन्ति, तथैव विजिगीषुं नृपमन्ये सहायकाः।

> स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।
> रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥ शि० २-८७

नीतिशास्त्रविदग्धतां विशदयता तेनोच्यते यद् यथा स्वक्षेमकामेन वृद्धिं प्राप्नुवन् रोगो नोपेक्ष्यः, तथैव एधमानोऽरातिरपि नोपेक्षामर्हति।

> उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
> समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च॥ शि० २-१०

स्वकवित्वस्य कल्पनामनोज्ञत्वस्य च संकलनं विदधता तेनोच्यते यद् यथा स्वल्पवयस्का बाला मातरम् अन्वेति, तथैव प्रातःकालिकी सन्ध्या रजनिम् अनुगच्छति।

> अनुपतति विरावैः पत्त्रिणां व्याहरन्ती
> रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव॥ शि० ११-४०

उपमा-प्रयोगे शास्त्रीयस्य पाण्डित्यस्यापि अपूर्व समन्वयो दृश्यते। सांख्यदर्शना-नुसार पुरुष उदासीनोऽकर्ता च, पर बुद्धिकृतकर्मणा फलभाग् भवति तथैव साक्षि मात्रोऽपि कृष्णः सेनाकृतविजयस्य फलभोक्ता भविष्यति।

विजयस्त्वयि सेनाया साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्त बुद्धेर्भोग इवात्मनि ॥ शि० २-५९

उपमाप्रयोगे मनोज्ञाया कल्पनाया अपि सदुपयोग. प्रशस्य। कृष्ण दिदृक्ष-माणाया कस्याश्चिद् रमण्या गवाक्षगत वदनकमलम् उदयाद्रिकन्दरास्थितमुडुराजमण्डल-मिव व्यराजत।

अधिरुक्ममन्दिरगवाक्षमुल्लसत् सुदृशो रराज मुरजिद्दिदृक्षया।
वदनारविन्दमुदयाद्रिकन्दराविवरोदरस्थितमिवेन्दुमण्डलम् ॥ शि० १३ ३५

नारदश्रीकृष्णयो. सितासिते कान्ती तथैवारोचयता यथा रात्रौ पत्रान्तरगोचरा सुधांशोर्मरीचय.।

रथाङ्गपाणे. पटलेन रोचिषाम् ऋषित्विषः सवलिता विरेजिरे।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमशव ॥ शि० १-२१

माघस्यार्थगौरवम्—माघेऽर्थगौरवान्विताना श्लोकाना महती परम्परा। यद्यप्यर्थगौरव पदे पदे प्रेक्ष्यते, तथापि द्वितीय सर्ग सर्वातिशायी। तत्र प्रसिद्धम् अर्थगौरव दृग्गोचरताम् उपयाति। कतिपये एव श्लोका उदाहरणार्थम् अत्र प्रस्तूयन्ते। अत्रापि तस्य विविधशास्त्रज्ञता, कल्पनाकाम्यत्वम्, भावोत्कर्ष, सूक्ष्मेक्षणदक्षता, नीतिज्ञता, व्यवहारपाटवम्, लोकाराधनक्षमत्व च समीक्ष्यते। तस्य कतिपयानि हृद्यानि पद्यानि सुभाषितरूपेण प्रयुज्यन्ते। कृष्ण एव रक्षोनिकर विनाशयितु क्षमो यथा भास्करस्तमोनिचयम्।

ऋते रवे क्षालयितु क्षमेत क, क्षपातमस्काण्डमलीमस नभ। १-३८

मनस्विता जीवनोन्नायिका। मानहीनस्य जीवन तृणमिव तुच्छम्। अनेकशो मनस्वितायाः स्वाभिमानस्य च गुणगौरव वर्ण्यते कविना।

पादाहत यदुत्थाय मूर्धानम् अधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वर रज ॥ शि० २-४६
सदाभिमानैकधना हि मानिन। शिशु० १-६७

स्वीय दर्शनशास्त्रवैदग्ध्य प्रकटयता तेन दार्शनिकभावानुबद्धा बहव श्लोका उपन्यस्ता। तद्यथा—

सतीव योषित् प्रकृति. सुनिश्चला पुमासमभ्येति भवान्तरेष्वपि। शि० १-७२
श्रीकृष्णवर्णने सांख्योक्तपुरुषवर्णन तेन प्रस्तूयते यद्—

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन ।
बहिर्विकार प्रकृते. पृथग् विदुः पुरातन त्वा पुरुष पुराविदः । शि० १-३३
रामणीयकस्य लक्षण तस्य बुद्धिवैशारद्य सूचयतिः—
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः । शि० ४-१७

अर्थगौरववन्तोऽन्ये केचन श्लोका दिङ्मात्रम् उदाह्रियन्ते । तद्यथा—सर्वेषा स्वार्थसिद्धिरेवाभीष्टा । 'सर्वः स्वार्थं समीहते' (२-६५) । सुकविः स्वीये काव्ये गुणत्रय-मेवाश्रयते । 'नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः' (२-८३) । सामसहितैव दण्ड-नीतिः साधीयसी । 'मृदुव्यवहित तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते' (२-८५) । सत्काव्येऽर्थ-गौरवाधानम् अनिवार्यम् । 'अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः' (२-७३) । महान्तो महद्भिरेव विवदन्ते नाधमैः । 'अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी' (१६-२५) । अरातिकृता तिरस्क्रिया दु.सहा । 'परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसह.' (६-४५) । कट्वपि भेषज गदहारि । 'अरुच्यमपि रोगघ्न निसर्गादेव भेषजम्' (१९-८९) । सन्तः सतामेव गृहाणि अनुगृह्णन्ति । 'गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृता मनीषिणः' (१-१४) । कवयो महीपाश्चार्थमेव चिन्तयन्ति । 'कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्' (११-६) । स्त्रीणा रोदन बलम् । 'रुदितमुदितमस्त्र योषिता विग्रहेषु' (११-३५) । दैवदुर्विपाको दुर्निवारः । 'हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः' (११-६४) ।

माघस्य पदलालित्यम्—माघे पदलालित्य पदे पदे प्राप्यते । पद-सौकुमार्यम्, वर्ण-माधुर्यम्, भाषाया. संगीतात्मकत्वम्, भावानुसारि भाषाश्रयणम्, भाषायाम् आरोहावरोहक्रमश्च पदलालित्य समेधयति । भाषायाः संगीतात्मकत्व यथा—

मधुरया मधुबोधितमाधवी—मधुसमृद्धितसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद—ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥ (६-२०)

यमकालंकारालंकृतभाषाश्रयणेन माधुर्यम् । यथा—

नवपलाशपलाशवन पुरः, स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्, स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥ (६-२)

भावानुसारि भाषाश्रयणेन सौकुमार्यम् । यथा—

वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्—भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया ।
चलितया विदधे कलमेखला—कलकलोऽलकलोलदृशाऽन्यया ॥ (६-१४)

अन्ये च पदलालित्यवन्तः श्लोका दिङ्मात्रम् उदाह्रियन्ते । यथा—'अचूचुर-च्चन्द्रमसोऽभिरामताम्' (१-१६), 'न रौहिणेयो न च रोहिणीश.' (३-६०), 'प्रभावनीके तनवै जयन्ती प्रभावनी केतनवैजयन्तीः' (६-६९), 'विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्ग-माला. सुरभितमकरन्द मन्दमावाति वातः' (११-१९) ।

एव गुणत्रयेऽपि महनीयत्व माघस्य प्रशस्यम् ।

उदासितार निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथचन ।
बहिर्विकार प्रकृतेः पृथग् विदुः पुरातन त्वा पुरुष पुराविदः । शि० १-३३
रामणीयकस्य लक्षण तस्य बुद्धिवैशारद्य सूचयति.—
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः । शि० ४-१७

अर्थगौरववन्तोऽन्ये केचन श्लोका दिङ्मात्रम् उदाह्रियन्ते । तद्यथा—सर्वेषा स्वार्थसिद्धिरेवाभीष्टा । 'सर्व. स्वार्थं समीहते' (२-६५) । सुकविः स्वीये काव्ये गुणत्रय-मेवाश्रयते । 'नैकमोज. प्रसादो वा रसभावविद. कवेः' (२-८३) । सामसहितैव दण्ड-नीतिः साधीयसी । 'मृदुव्यवहित तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते' (२-८५) । सत्काव्येऽर्थ-गौरवाधानम् अनिवार्यम् । 'अनुज्झितार्थसबन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः' (२-७३) । महान्तो महद्भिरेव विवदन्ते नाधमै. । 'अनुहुकुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी' (१६-२५) । अरातिकृता तिरस्क्रिया दु.सहा । 'परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसह.' (६-४५) । कट्वपि भेषज गदहारि । 'अरुच्यमपि रोगघ्न निसर्गादेव भेषजम्' (१९-८९) । सन्तः सतामेव गृहाणि अनुगृह्णन्ति । 'गृहानुपैतु प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृता मनीषिण'' (१-१४) । कवयो महीपाश्चार्थमेव चिन्तयन्ति । 'कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्' (११-६) । स्त्रीणा रोदन बलम् । 'रुदितमुदितमस्त्र योषिता विग्रहेषु' (११-२५) । दैवदुर्विपाको दुर्निवार. । 'हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः' (११-६४) ।

माघस्य पदलालित्यम्—माघे पदलालित्य पदे पदे प्राप्यते । पद-सौकुमार्यम्, वर्ण-माधुर्यम्, भाषाया. सगीतात्मकत्वम्, भावानुसारि भाषाश्रयणम्, भाषायाम् आरोहावरोहक्रमश्च पदलालित्य समेधयति । भाषायाः सगीतात्मकत्व यथा—

मधुरया मधुबोधितमाधवी—मधुसमृद्धितसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद—ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥ (६-२०)

यमकालकारालकृतभाषाश्रयणेन माधुर्यम् । यथा—

नवपलाशपलाशवन पुरः, स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्, स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥ (६-२)

भावानुसारि भाषाश्रयणेन सौकुमार्यम् । यथा—

वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्—भ्रमरसभ्रमसभृतशोभया ।
चलितया विदधे कलमेखला—कलकलोऽलकलोलदृशाऽन्यया ॥ (६-१४)

अन्ये च पदलालित्यवन्तः श्लोका दिङ्मात्रम् उदाह्रियन्ते । यथा—'अचूचुर-च्चन्द्रमसोऽभिरामताम्' (१-१६), 'न रौहिणेयो न च रोहिणीश.' (३-६०), 'प्रभावनीके तनवै जयन्ती प्रभावनी केतनवैजयन्तीः' (६-६९), 'विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्ग-माला., सुरभितमकरन्द मन्दमावाति वातः' (११-१९) ।

एव गुणत्रयेऽपि माघीयम् प्राधान्य प्रशस्यम् ।

१०. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

निखिलेऽपि संस्कृताम्नाये कविकुलगुरुः कालिदासो यथा रचनाचातुर्येण कल्पनावैचित्र्येण च पद्यबन्धे गरिष्ठो वरिष्ठश्च, तथैव गद्यकाव्यनिबन्धने कविवरो बाणोऽतिशेतेऽन्यान् सर्वानप्यभिरूपान्। पद्यरचनायां केषुचिदेव पद्येषूक्तिवैचित्र्येण भावगाम्भीर्येण कृतिकौशलेन वाऽपूर्वा छटा सञ्जायतेऽखिलेऽपि काव्ये। परं नैतावतैव संभाव्यते गद्यकाव्येऽपि तादृश्यनुपमा कान्तिः। गद्यकाव्ये तु भूयान् श्रमोऽपेक्ष्यते। पदे पदे वाग्वैचित्र्यमर्थगाम्भीर्यं भाववैभवं कल्पनाकाम्यत्वं च दुर्निवारम्। अतः साधूच्यते— 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'। गद्यकाव्यबन्धे दण्डी सुबन्धुश्चेति द्वावेवैतौ बाणेन समं सनामग्राहमुल्लेख्यौ। परं बाणो गरिष्ठो वरिष्ठश्चैतेषां भूयिष्ठया भावाभिव्यक्त्या साधिष्ठया शैल्या म्रदिष्ठया मनोहरतया श्रेष्ठया साधुतया प्रेष्ठया पदपरिष्कृतया च। अतः सोड्ढलेन 'बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती' इत्युक्तम्। धर्मदासेन तरुणीलावण्यमस्य कृतौ दृश्यते। 'रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति। सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य'। गङ्गादेव्या सरस्वतीवीणाध्वनिरेव कृतिष्वस्य निशम्यते। 'वीणापाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम्। भावयन्ति कथं वाऽन्ये भट्टबाणस्य भारतीम्।' जयदेवो बाणं पञ्चबाणेन कामेनोपमिमीते। 'हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।' श्रीचन्द्रदेवोऽमुं कविकुञ्जरगण्डभेदकं सिंहं गणयति। 'आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।'

महाकवेर्बाणस्य जनिकालविषये वंशादिविषये च न काचन विप्रतिपत्तिः। हर्षचरितस्यादौ तेन वंशादिविवरणं महता विस्तरेणोपस्थाप्यते। जनकोऽस्य चित्रभानुर्जननी राजदेवी च। सम्राजो हर्षस्य समकालीनत्वात् जनिकालोऽस्यैसवीयसप्तमशताब्द्याः पूर्वार्धोऽङ्गीक्रियते। हर्षचरितं कादम्बरी चेति ग्रन्थद्वयमस्य प्रधानतः कृतित्वेनाङ्गीक्रियते। कृतयोऽन्या विवादविषया एव विदुषाम्।

बाणस्य वस्तुविवृतौ वर्णने चापूर्वं वैशारद्यं वीक्ष्य मन्त्रमुग्धत्वमनुभवन्ति मनीषिणः। वर्ण्यस्य वस्तुनोऽणुतमामपि विवृतिं न विजहाति, न किञ्चिदुज्झति परस्मै यत्नेन शक्यं वर्णयितुम्। वर्णनानां व्यापित्वात् सर्वाङ्गीणत्वात् सूक्ष्मतमविवरणसमन्वितत्वाच्च 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति भूयोभूयो व्यादिश्यते। एतदेवात्र समासतः समुपस्थाप्यते।

हर्षचरिते कवेर्वर्णनचातुरी बहुशोऽवलोक्यते। तेषु मुख्यत उल्लेख्याः प्रसङ्गाः सन्ति—पुष्पभूतिनृपस्य प्रभाकरस्य वर्णनम्, वैधव्यदुःखपरिहाराय सतीत्वमाश्रयन्त्या यशोवत्या वर्णनम्, सिंहनादस्योपदेशः, दिवाकरमित्रस्य राज्यश्रीसान्त्वनम्। कवेर्गरिमा कमनीया कादम्बरीमेवाश्रित्याऽवतिष्ठते इत्यत्र नास्ति विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। यत्र तत्र

साङ्गोपाङ्ग वर्णन महता श्रमेण बाणेनोपस्थाप्यते, तेऽत्र प्रसङ्गा नामग्राहं दिङ्मात्र प्रस्तूयन्ते । तद्यथा—शूद्रकवर्णनम्, चाण्डालकन्यावर्णनम्, विन्ध्याटवीवर्णनम्, पम्पासरोवर्णनम्, प्रभातवर्णनम्, शबरसेनापतिवर्णनम्, हारीतवर्णनम्, जाबाल्याश्रमवर्णनम्, जाबालिवर्णनम्, सन्ध्यावर्णनम्, उज्जयिनीवर्णनम्, तारापीडवर्णनम्, इन्द्रायुधवर्णनम्, राजभवनवर्णनम्, अच्छोदसरोवर्णनम्, सिद्धायतनवर्णनम्, महाश्वेतावर्णनम्, कादम्बरीवर्णन च ।

समासत' कानिचिदुदाहरणान्यत्र प्रस्तूयन्ते। सन्ध्यावर्णन यथा—'अनेन च समयेन परिणतो दिवस. । स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता य. क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गराग रविरुदवहत् । उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शपरिजिहीर्षयेव सहृतपादः पारावतचरणपाटलरागो रविरम्बरतलादलम्बत । विहाय धरणितलमुन्मुच्य कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तपोवनशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणा. स्थितिमकुर्वत ।' प्रभातवर्णन यथा—'एकदा तु प्रभातसन्ध्यारागलोहिते गगनतलकमलिनीमधुरक्तपक्षसपुटे वृद्धहस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि,·· सन्ध्यामुपासितुमुत्तराशावलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले, इतस्ततः सचरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासर.कलहसकोलाहले, क्रमेण च गगनतलमार्गमवतरतो दिवसकरवारणस्यावचूलचामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते किरणजाले, शनैः शनैरुदिते भगवति सवितरि०' । कादम्बरीवर्णनं यथा—पृथिवीमिव समुत्सारितमहाकुलभूभृद्व्यतिकरा शेषभोगेषु निषण्णाम्, गौरीमिव श्वेतांशुकरचितोत्तमाङ्गाभरणाम्, इन्दुमूर्तिमिवोद्दाममन्मथविलासगृहीतगुरुकलत्राम्, आकाशकमलिनीमिव स्वच्छाम्बरदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलाम्, कल्पतरुलतामिव कामफलप्रदाम्, ' कादम्बरीं ददर्श । अच्छोदसरोवर्णन यथा—'प्रविश्य च तस्य तरुखण्डस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः, स्फटिकभूमिगृहमिव वसुन्धरादेव्याः, निर्गमनमार्गमिव सागराणाम्, निस्यन्दमिव दिशाम्, अंशावतारमिव गगनतलस्य, कैलासमिव द्रवतामापन्नम्, तुषारगिरिमिव विलीनम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम्, हराट्टहासमिव जलीभूतम् ' मदनध्वजमिव मकराधिष्ठितम्, मलयमिव चन्दनशिशिरवनम्, असत्साधनमिवादृष्टान्तम्, अतिमनोहरम्, आह्लादन दृष्टे·, अच्छोद नाम सरो दृष्टवान्' । जाबालिवर्णन यथा—'स्थैर्येणाचलाना गाम्भीर्येण सागराणा तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मेर्निर्मलतयाऽम्बरतलस्य सविभागमिव कुर्वाणम्, शरत्कालमिव क्षीणवर्षम्, शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, वाडवानलमिव सततपयोभक्षम्, शून्यनगरमिव

दीनानाथविपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्टशरीरं भगवन्तं जाबालिम-पश्यम्।

पाञ्चाली रीतिर्बाणस्य। 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते' इति बाणोक्तौ शब्दार्थयोर्मञ्जुलः समन्वयः समीक्ष्यते। विषयानुरूपमेव तस्य शब्दावल्यपि विलोक्यते। यथा विन्ध्याटवीवर्णने ओजःसमासभूयस्त्वम्। 'उन्मदमातङ्गकपोलस्थल-गलितसलिलसिक्तेनेवानवरतमेलावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, प्रेताधिपनगरीव सदा-सन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दना-लङ्कृता च'। वसन्तवर्णने च माधुर्यमिश्रितत्वम्। 'कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्ग-ध्वजांशुकेषु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु, मधुमासदिवसेषु'।

तस्य वर्णनानि वनितामिव विभूषणानि विभूषयन्त्यलङ्करणैरलङ्काराः। उपमा-रूपकोत्प्रेक्षाश्लेषविरोधाभासपरिसंख्यैकावल्यादयोऽलङ्काराः पदे पदे प्राप्यन्ते तत्तत्प्रसङ्गेषु। परिसंख्या यथा शूद्रकवर्णने—'यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता'। विरोधाभासो यथा शूद्रकवर्णने—'आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम्'। श्लेषमूलोपमा यथा चाण्डालकन्यावर्णने—'नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, मूर्छामिव मनो-हारिणीम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अमूर्तामिव स्पर्श-वर्जिताम्। विन्ध्याटवीवर्णने उपमा यथा—'चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणा-ध्यासिता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च'। विरोधाभासो यथा विन्ध्याटवीवर्णने—'अपरिमितबहुलपत्रसञ्चयापि सप्तपर्णोपशोभिता, क्रूरसत्त्वापि मुनिजन-सेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा'। विरोधाभासो यथा शबरसेनापतिवर्णने—अभिनवयौवन-मपि क्षपितबहुवयसम्, कृष्णमप्यमुदर्शनम्, स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्'। उत्प्रेक्षा यथा सन्ध्यावर्णने—'अपरसागराम्भसि पतिते दिनकरे पतनवेगोत्थितमम्भःसीकरनिकर-मिव तारागणमम्बरमवारयत्'। श्लेषो यथा राजभवनवर्णने—'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविध-वर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसञ्चयम्, नाटकमिव पताकाङ्कशोभितम्, पुराणमिव विभागावस्थापितसकलभुवनकोशम्, व्याकरणमिव प्रथममध्यमोत्तमपुरुषविभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसम्प्रदानक्रियाव्ययप्रपञ्चसुस्थितम्'। रूपकं सन्ध्यावर्णने यथा—'क्रमेण च रविरस्तमुपागत इत्युदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौतदुकूलवल्कलधवलाम्बरः सतारान्तःपुरः पर्यन्तस्थिततनुतिमिरतमालवनलेखः सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम् अरुन्धतीसञ्चरणपवित्रम्

उपरिताराटम आलक्ष्यमाणमूलम् एकान्तस्थितचारुतारकमृगम् अमरलोकाश्रममिव गगनतलम् अमृतदीधितिरध्यतिष्ठत्'। एकावली यथा महाश्वेताजन्मवर्णने—'क्रमेण च कृत मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्'। परिसंख्या यथा जाबाल्याश्रमवर्णने—'यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षुरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन'। 'यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितं, शिखण्डिना नृत्यपक्षपातो, भुजङ्गमाना भोगः, कपीना श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगति'।

बाणः श्लिष्टसमस्तदीर्घवाक्यप्रयोगमनु प्रयुङ्क्ते लघुपदन्यासां वाक्यावलीम्। स यथैव दक्षो दीर्घवाक्यरचनायां तथैव पटुर्लघुवाक्यप्रयोगेऽपि। यत्र भावगाम्भीर्यमर्थगौरवं च तत्र सरला लघुपदा वाक्यावली, इतरत्र च श्लिष्टा समस्ता दीर्घा च। यथा शुकनासोपदेशेऽर्थगौरवत्वात् लघुपदप्रयोगः—'मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्'। महाश्वेताविलापे, कपिञ्जलक्रन्दने च सन्ति लघूनि वाक्यानि। तद्यथा—कपिञ्जलकृतं रोदनम्—'हा हतोऽस्मि, हा दग्धोऽस्मि, हा वञ्चितोऽस्मि, हा किमिदमापतितम्, किं वृत्तम्, उत्सन्नोऽसि, हा धर्म निष्परिग्रहोऽसि, हा तपो निराश्रयोऽसि, हा सरस्वति विधवासि, हा सत्यम् अनाथमसि, हा सुरलोक शून्योऽसि इत्येतानि चान्यानि च विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषम्'। जाबालिवर्णने लघुपदविन्यासो यथा—'प्रवाहः करुणारसस्य, संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, सागरः सन्तोषामृतस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य, सखा सत्यस्य, क्षेत्रम् आर्जवस्य प्रभवः पुण्यसञ्चयस्य०'। शुकनासोपदेशे लक्ष्मीस्वरूपवर्णने लघुपदविन्यासो यथा—'न परिचयं रक्षति। नाभिजनम् ईक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञता विचारयति'। उज्जयिनीवर्णने, राजभवनवर्णने, शुकनासोपदेशे, पुण्डरीकाय कपिञ्जलोपदेशे च सलक्ष्यते बाणस्यापूर्वा वर्णनचातुरी। स तथा प्रस्तवीति प्रत्येकं वस्तु यथा चित्रपटे स्वतः सन्दृश्यमाना काचित् कथा घटना वोपतिष्ठति। एवं ज्ञायते यत् तस्य वर्णनचातुरी सर्वातिशायिनी। कवीनामन्येषां वर्णनं च बाणोच्छिष्टमेव।

११. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

श्रीभवभूतिः कान्यकुब्जेश्वरस्य श्रीमतो यशोवर्मण आश्रितो महाकविरित्यत्र सर्वेषां सुधियामैकमत्यम्। महाकविना बाणेन हर्षचरिते महाकविगणनाप्रसङ्गे नास्याभिधानमभ्यधायीति महाकवेर्बाणात् पूर्वं जनिकालमस्य नेति निर्णीयते। एवं भवभूतेर्जनिकाल: ७०० ईसवीयस्य सन्निधौ स्वीक्रियते। विदर्भ (बरार)-प्रदेशस्थपद्मपुरनगरवास्तव्योऽयं श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिनामाऽभवत्। पितामहोऽस्य भट्टगोपालो, जनको नीलकण्ठो, जननी जातुकर्णी, गुरुश्च ज्ञाननिधिर्नाम। नाटकत्रयमस्य समुपलभ्यते—महावीरचरितम्, मालतीमाधवम्, उत्तररामचरितं च। व्याकरणन्यायमीमांसाशास्त्रेषु निष्णातत्वादेव 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' इत्युपाधिसमलङ्कृतोऽभूत्। वेदेष्वन्येषु च शास्त्रेष्वस्याव्याहता गतिः। वाग्देवी वश्येव समन्ववर्ततेति तथ्यं स्वयमेवोद्घोष्यते तेन। 'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते (उत्तर० १-२)।

करुणरसनिस्यन्दे नातिशेतेऽन्यो महाकविर्महाकविममुम्। अतः साधूच्यते—'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते'। करुणरसोद्रेकमालोक्यैव कवेरेतस्य कृतिषु कृतिभिः कृतानि कतिपयानि प्रशंसापद्यानि। आर्यासप्तशत्या (१-३६) श्रीगोवर्धनाचार्यो भवभूतेर्भारतीं भूधरसुतया गौर्योपमिमीते। तत्कृतकारुण्ये ग्रावाणोऽपि रुदन्त्यन्येषां तु का कथा। 'भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा'। कारुण्ये कालिदासादप्यतिरिच्यते। अत उच्यते—'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'।

करुणरसप्रवाहपरीक्षया परीक्ष्यते चेन्नाटकत्रयमस्य तर्हि उत्तररामचरितमेव सर्वातिशायि। यथाऽत्र कारुण्यरसनिस्यन्दो, न तथाऽन्यत्र। किं कारुण्यम्? करुणरसस्य प्रवाह एव कारुण्यमिति। इदमत्रावधेयम्। भवभूतिः करुणरसं रसत्वेनैव नातिष्ठतेऽपि तु रसानां समेषां मूलभूतत्वेन करुणमेवैकं रसं मनुते। रसा अन्येऽस्यैव विवर्तरूपेण परिणामरूपेण वा परिणमन्ते इति करुणरसस्य महत्त्वमातिष्ठते। आह च—'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्, भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्। आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्, अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम् (उत्तर० ३-४७)। उत्तररामचरिते चोदाह्रियतेऽनेन यत्कथमन्ये रसाः करुणरसमूलका इति। एतदेवात्र विविच्यते उदाह्रियते च।

उत्तररामचरितस्य प्रथमेऽङ्के आदावेव पितृवियोगविषण्णां जानकीमाश्वासयति दाशरथिः। गृहस्थधर्मस्य विघ्नव्यासत्वं व्याचष्टे। 'सकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता (उ० १-८)। बन्धुजनवियोगस्य सन्तापकारित्वं सीतैवाभिधत्ते। 'सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति' (अंक १)। रामश्च संसारस्यारुन्तुदत्वं विशदयति। 'एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः' (अंक १)। चित्रवीथ्यां चित्रितानि वृत्तानि वीक्ष्य समुज्जृम्भते तेषां कारुण्यवृत्तिः। जानक्या अग्निपरीक्षायाश्चित्रणं निरीक्ष्य विषण्णां वैदेहीमाश्वासयति रामः—

'क्लिष्टो जन. किल जनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशिव नहि तत्क्षम ते।' (१-१४)। जानकीपरिणयचित्रण प्रेक्ष्य दिवगत तातं दशरथ चिन्तयतो विषीदति चेतो रघूद्वहस्य। 'जीवत्सु तातपादेषु ते हि नो दिवसा गता.' (१-१९)। सभोगशृङ्गारमपि करुण-रसमलक व्याचष्टे। यथा—कष्टसहस्रसकुल कानन विचरता तेषा जनस्थानमध्यगे प्रस्रवणे गिरौ यामिनीयापन वर्णयति—'किमपि किमपि मन्द मन्दमासत्तियोगात् अविदितगत-यामा रात्रिरेव व्यरसीत्' (१-२७)। चित्रे रावणकृतजानकीहरणवृत्त वीक्ष्य खिद्यते चेतश्चारुचरितस्य राघवस्य। जनस्थाने सति सीताहरणे कथमतप्यत राम इति लक्ष्मणो वर्णयति तस्य कारुण्यपूर्णा स्थितिम्। तस्य विक्लवत्व विलोक्य ग्रावाणोऽप्यरुदन्, वज्रस्यापि हृदय व्यदलत्। 'अथेद रक्षोभि. कनकहरिणच्छद्मविधिना, तथा वृत्त पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि। जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैरपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' (१ २८)। सीताहरणचित्रदर्शनेन विषण्णस्य विलपतश्च दाशर-थेरवस्था वर्णयति बाष्पप्रसर च मुक्ताहारेणोपमिमीते। 'अय तावद् बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो विसर्पन् धाराभिर्लुठति धरणी जर्जरकण। निरुद्धोऽप्यावेग स्फुरदधरनासा-पुटतया, परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदय' (१-२९)। प्रियवियोगजन्मा दुःखाग्नि. कथ पीडयति मानसमिति व्याहरति— दु:खाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो हृन्मर्म-व्रण इव वेदना तनोति' (१-३०)। माल्यवन्नामके गिरौ स्वीया मोहावस्था स्मार स्मार सीदति स्वान्त भूयोऽपि राघवस्य। 'विरम विरमात· पर न क्षमोऽस्मि, प्रत्यावृत्त. पुनरिव स मे जानकीविप्रयोग·' (१-३३)। रामबाहुमुपधानत्वेनाश्रित्य यदेव निःशङ्क स्वपिति सीता, तावदेव समुपतिष्ठते जनप्रवादजन्यो विषमो विषादहेतुर्विप्रयोगः। 'हा हा धिक् परगृहवासदूषण यद्, वैदेह्या प्रशमितमद्भुतैरुपायैः। एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका-दालर्क विषमिव सर्वत. प्रसृतम्' (१-४०)। वैदेह्या वने प्रवासन व्याधाय शकुन्त-समर्पणमिव प्रतीयते। 'शैशवात् प्रभृति पोषिता प्रिया, सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्। छद्मना परिददामि मृत्यवे, सौनिके गृहशकुन्तिकामिव' (१-४५)। पिशाचेभ्यो बलिवितरण-मिव चैतत्कर्म। 'विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्राम्, उन्मुच्य प्रियगृहिणी गृहस्य लक्ष्मीम्। क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारुण क्षिपामि' (१-४९)। सीताप्रवासनेनासह्या व्यथा-मनुभवति रामभद्र·। 'दु खसवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्। मर्मोपघातिभि· प्राणैर्वज्र-कीलायित हृदि। (१-४७)।

शम्बूकप्रसङ्गेन दण्डकारण्य पञ्चवटीं च प्राप्य जानकीसहवास स्मार स्मार नन्त्रतेतमा मनो मनस्विनो रामस्य। रामोऽभिधत्ते—'चिराद् वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो

विपरसः, कुतश्चित् सवेगात् प्रचल इव शल्यस्य शकलः। व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः, पुराभूतः शोको विकलयति मा नूतन इव। (२-२६)। सीताप्रवासनेन पापिनमात्मान गणयन् पञ्चवटीदर्शनापात्र मन्यते। यस्या ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे, एक. सप्रति नाशितप्रियतमस्तामेव रामः कथ, पाप. पञ्चवटी विलोकयतु वा गच्छत्वसभाव्य वा (२-२८)। भुरला चित्रयति रामावस्थाम्, कथ पुटपाकवद् व्यथयति राम सीताविवासनशोकः। 'अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथ। पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रस.' (३-१)। तमसा दु.खक्षामा जानकीं करुणस्य मूर्तिमेव गणयति। 'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी, विरहव्यथेव वनमेति जानकी' (३-४)। दीर्घशोक. शोषयति शरीर सीतायाः। 'किसलयमिव मुग्ध बन्धनाद् विप्रलून, हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोक.। ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्या. शरीर, शरदिज इव घर्म. केतकीगर्भपत्रम्। (३-५)। राम. पञ्चवटीदर्शनेन भूयोऽपि मोहमापद्यते। दुःखाग्निरुत्पीडयति तम्। 'अन्तर्लीनस्य दु.खाग्नेरद्योद्दाम ज्वलिष्यत.। उत्पीड इव धूमस्य, मोहः प्रागावृणोति माम्' (३-९)। शोकाग्निपीडितो नाभिज्ञायते रामः स्वकार्यात्। 'नवकुवलयस्निग्धै विकलकरण पाण्डुच्छाय. शुचा परिदुर्बलः, कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रिय। (३-२२)। वासन्ती सोत्प्रास सीताया उदन्त पृच्छति रामम्। 'अयि कठोर यशः किल ते प्रिय, किमयशो ननु घोरमत परम्। किमभवद् विपिने हरिणीदृश., कथय नाथ कथ बत मन्यसे। (३-२७)। सशोकमुत्तरति राम. क्रव्याद्भिस्तस्या भक्षणम्। 'त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेस्तस्या. परिस्फुरितगर्भभरालसायाः। ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा, क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियत विलुप्ता' (३-२८)। शोकक्षोभे विलपनमेव चित्तनिग्रहोपाय. प्रस्तूयते कविना। 'पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाह. प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदय प्रलापैरेव धार्यते' (३-२९)। राम. स्वावस्था वर्णयति—कथमन्तस्तापस्तापयति तनू, न तु हरति जीवितम्। 'दलति हृदय शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते, वहति विकलः कायो मोह न मुञ्चति चेतनाम्। ज्वलयति तनूमन्तर्दाह करोति न भस्मसात्, प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।' (३-३१)।

अन्ये च करुणरसाप्लुता प्रमुखा श्लोका दिङ्मात्रमत्र निर्दिश्यन्ते। ते यथायथ विवेच्या.। सीतापरित्यागविषण्णो रामोऽशरणो रोदितितराम्। 'न किल भवता देव्या. स्थान गृहेऽभिमत ततस्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता। चिरपरिचितास्ते भावास्तथा द्रवयन्ति माम्, इदमशरणैरद्यास्माभि. प्रसीदत रुद्यते' (३-३२)।

जानकीवियोगज. शोकस्तिरश्चीन शल्यमिव विषमयो दन्त इव च पीडयति। 'यथा तिरश्चीनमलातशल्य, प्रत्युतमन्तः सविषश्च दन्तः। तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कुर्मर्माणि कृन्तन्नपि कि न सोढः' (३-३५)। शोकप्रसारो निवारितोऽपि न विरमति। 'वेलोल्लोल ·· भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात् कोऽपि चेतोविकार-स्तोयस्येवाप्रतिहतरय. सैकत सेतुमोघः। (३-३६)। दु खपीडित राम जगन्निर्जनमिवाभाति। 'हा हा देवि स्फुटति हृदय ध्वसते देहबन्ध., शून्य मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि' (३-३८)। पूर्वो वियोगो रावण-विनाशावधिरभूत्, अय च निरवधि.। 'उपायाना भावाद' वियोगो मुग्धाक्ष्या. स खलु रिपुघातावधिरभूत्, कटुस्तूष्णी सह्यो निरवधिरय तु प्रविलयः' (३-४४)। पुत्रीनाश-विषण्णो जनको न धृतिमावहति। 'अपत्ये यत्तादृग् पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे, निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति' (४-३)। सबन्धिवियोगजानि दुःखानि प्रियजनदर्शने नितरा वर्धन्ते। 'सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणा, दु.खानि सबन्धिवियोग-जानि। दृष्टे जने प्रेयसि दु.सहानि, स्रोतःसहस्रैरिव सप्लवन्ते' (४-८)। शोके सर्वमपि दुःखायैव। 'अल वा तत् स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम्' (४-१४)। लवदर्शनेन सीता सस्मृत्य जनको नितरा विषीदति। 'वात्सायाश्च' · 'हा हा देवि किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लव धावति' (४-२२)। वनवासे सत्रस्तया त्वया नून जनकोऽसकृत् स्मृत। 'नून त्वया · क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु, सत्रस्तया शरणमित्यसकृत् स्मृतोऽहम्' (४-२३)। प्रियानाशे जगदरण्यमिव प्रतीयते। 'विना सीतादेव्या किमिव हि न दु.ख रघुपतेः, प्रियानाशे कृत्स्न किल जगदरण्य हि भवति' (६ ३०)। प्रियावियोगे जगदति-तरा दु·खायैव भवति। 'जगज्जीर्णारण्य भवति च कलत्रे ह्युपरते, कुकूलाना राशौ तदनु हृदय पच्यत इव' (६-३८)। नृप जनकमुद्वीक्ष्य रामस्य हृदय त्रपया विदीर्यत इव। 'पश्यन्नीदृशमीदृश. पितृसख वृत्ते महावैशसे, दीर्णे किं न सहस्रधाऽहमथवा रामेण किं दुष्करम् (६-४०)। शुचा निष्प्रभ राम वीक्ष्य मातरः प्रमोहमुपयान्ति। 'अनुभावमात्र-समवस्थितश्रिय, सहसैव वीक्ष्य रघुनाथमीदृशम्। विधुराः प्रमोहमुपयान्ति मातर.' (६-४१)। सीतापरित्यागाद् राम आत्मान दयापात्र न मनुते। 'जनकाना रघूणा च, यत् कृत्स्न गोत्रमङ्गलम्। तत्राप्यकरुणे पापे, वृथा वः करुणा मयि' (६-४२)। प्राक्-कृतकर्मज दु ख सुतरा दुर्निवारम्। 'सोढश्चिर राक्षसमध्यवास-स्त्यागो द्वितीयस्तु सुदु.सहोऽस्या.। को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे' (७-४)।

पूर्वकृतालोचनया सिध्यत्यदो यद् भवभूतिः करुणरसवर्णने सर्वानतिशेते महाकवीन्।

१२. नैषधं विद्वदौषधम्

श्रीश्रीहर्षमहाकवे. कृतिर्नैषधचरित कस्य न कृतिनो मानसमावर्जयति । बृहत्त्रय्यामन्यतमैषा कृति. । भारवेः किरातार्जुनीय माघस्य शिशुपालवध श्रीहर्षस्य नैषधचरित चेति त्रयमेतद् बृहत्त्रय्या गण्यते । उत्तरोत्तरमेषामुत्कर्षश्चोररीक्रियते । एतद्भावात्मकमेवैतदुद्गीर्यते—'तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदय । उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारविः ॥'

महाकवेरेतस्य जनकः श्रीहीरो जननी मामल्लदेवी च । तथा हि—'श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालकारहीरः सुत, श्रीहीर. सुषुवे जितेन्द्रियचय मामल्लदेवी च यम्' । (नैषध० १-१४५) । कान्यकुब्जेश्वरस्य जयचन्द्रस्याश्रयमाशिश्रियत् कविरयम्, तदादृतिमविन्दत च । 'ताम्बूलद्वयमासन च लभते य. कान्यकुब्जेश्वरात्' (नै० २२-१५३) । अतोऽस्य जनिकालो द्वादशशताब्द्या उत्तरार्धोऽङ्गीक्रियते । श्रीहर्षो महाकविर्महायोगी च । उभयत्रापि चरमोत्कर्षं लेभे । 'य. साक्षात्कुरुते समाधिषु पर ब्रह्म प्रमोदार्णवम् । यत्काव्य मधुवर्षि०' (नै० २२-१५३) । सर्गान्तश्लोकेषु ग्रन्थाष्टकस्यान्यस्य नामग्राह गृह्यते तेन । तत्र चाद्वैतवेदान्तप्रतिपादक खण्डनखण्डखाद्यमेवैको ग्रन्थ. साम्प्रतमुपलभ्यतेऽन्ये च लुप्तप्राया एव । सायासमेतत् तस्य महाकाव्य, ग्रन्थयश्चात्र विन्यस्तास्तेन महता श्रमेण । अत. श्रमसाध्य एव महाकाव्यस्यैतस्यार्थावगमोऽपि । 'ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया । प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खल. खेलतु । श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थि. समासादयत्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जन सज्जन.' । (नै० २२-१५२) । रमणीलावण्य हरति चेत. सचेतसो यून एव, न तु किशोराणाम् । तथैव श्रीहर्षकृति. सुधीभिरेवास्वादनीया, न तु प्राज्ञमन्यै. । 'यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी, कुमाराणामन्त.करणहरण नैव कुरुते । मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः, किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरै. ।' (नै० २२-१५०) ।

श्रीहर्षो महाकविर्महादार्शनिको महावैयाकरणश्चेत्यादिविविधविरुद्धगुणगणसमन्वयादतिशेते सर्वानन्यान् महाकवीन् पाण्डित्यप्रदर्शने वाग्वैभवे रुचिररचनाया भावाभिव्यक्तौ साधुशब्दसकलने विद्यावैशारद्ये वक्रोक्तिव्यवहारे च । अनुपमवैदुष्यवैभवाविर्भावात् पाण्डित्यपुष्टपरिपाकप्रतीकाशः प्रतीयते प्रबन्धोऽस्य । नैकशास्त्रनिष्णातस्यानुपहता गति-

रत्नेति 'नैपध विद्वदौषधम्' इति साह्लादमुद्घोष्यते यशोऽस्य सुधीभिः। प्रतिपद पदलालित्यावेक्षणात् 'नैषधे पदलालित्यम्' इत्यप्यभिधीयते। एतदेव समासतोऽत्र प्रस्तूयते। विवृतिश्च विद्वद्भि. स्वयमेवाभ्यूह्या।

पदलालित्यवन्त. केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियन्ते। अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा क्व तच्छयच्छागलवोऽपि पल्लवे। तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारिता न शारद. पार्विकशर्वरीश्वर.। (नैषध० १-२०), मनोरथेन स्वपतीकृत नल निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति। अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्० (नै० १-३९), अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यभिप्रपेदे प्रति ता स्मरार्दिताम्। विभावरीभिर्विभराबभूविरे। (नै० १-४१), अल नल रोद्धुममी किलाभवन् स्मर. स्म रत्यामनिरुद्धमेव यत्, सृजत्यय सर्गनिसर्ग ईदृशः। (नै० १-५४), चलन्नलङ्कृत्य महारय ह्य स्ववाहवाहोचितवेषपेशल.। (नै० १-६६), दिने दिने त्व तनुरेधि रेऽधिक पुन. पुनर्मूर्च्छ च तापमृच्छ च। (नै० १-९०), मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी। (नै० १-१३५), मुहूर्तमात्र भवनिन्दया दयासखाः सखाय· स्रवदश्रवो मम। (नै० १-१३६), नलिन मलिन विवृण्वती पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे। अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते० (२-२३), धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि। (३-११६), सकलया कलया किल दष्ट्रया समवधाय यमाय विनिर्मित। (४-७९), लोकेशकेशवशिवानपि यश्चकार शृङ्गारसान्तरभृशान्तरशान्तभावान्। (११-२५), कुमुदमुदमुदेष्यतीमसोढा रविरविलम्बितुकामतामतानीत्। (२१-१४६), शृङ्गारभृङ्गारसुधाकरेण वर्णस्रजानूपय कर्णकूपौ। (२२-५७)।

विविधविद्यापारदृश्वा श्रीहर्ष.। विविधदर्शनसिद्धान्ताना व्याकरणादिशास्त्रराद्धान्ताना चोल्लेखात् सजायते नैषधचरिते महत् काठिन्यम्। अतो विद्वदौषधमेतत् काव्यमुच्यते। एतदेवात्रातिसमासतो निरूप्यते विव्रियते च। (१) श्लेषप्रयोगः—चेतो नल कामयते मदीयम्० (३-६७), श्लेषमूलकमर्थत्रयमेतस्य। तद्यथा—मदीय चेतः नल कामयते, ० न लकाम् अयते, ० चेत. अनल कामयते। त्रयोदशसर्गे पञ्चनलीवर्णने (१३ २-३४) सर्वेऽपि श्लोका द्व्यर्थकास्त्र्यर्थका वा। 'देवः पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या। (१३-३४), पञ्चार्थकमेतत्पद्यम्। अन्ये च केचन श्लेपमूला. श्लोका —विदर्भजाया मदनस्तथा मनोनलावरुद्ध वयसैव वेशितः (१-३२), वयोतिपातोद्गतवातवेपिते (१-७७), वियोगिनीमैक्षत दाडिमीमसौ (१-८३), रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा० (१-१११), स्यादस्या नलद विना न दलने तापस्य

कोऽपि क्षमः (४-११६) । (२) व्याकरणसिद्धान्तवर्णनम्—'क्रियेत चेत्साधुविभक्ति-न्चिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया । या स्वौजसा साधयितु विलासै.०' (३-२३) इत्यत्र 'अपद न प्रयुञ्जीत' इत्यस्य वर्णनम् । 'किं स्थानिवद्भावमधत्त दुष्ट ताद्दक्कृतव्याकरण. पुन. स ।' (१०-१३६) इत्यत्र स्थानिवदादेशो० (१-१-५६) इति सूत्रस्य वर्णनम् । 'अपवर्गे तृतीयेति भणत. पाणिनेरपि' (१७-७०) इत्यत्र 'अपवर्गे तृतीया' (२-३-६) इति सूत्रस्य वर्णनम् । 'भण फणिभवशास्त्रे तातङः स्थानिनौ काविति विहिततुहीवागुत्तरः कोकिलोऽभूत्' (१९-६०), इत्यत्र तुह्योस्तातङ्० (७-१-३५) इति सूत्रस्य वर्णनम् । 'अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्र. प्रणयन्नुपाधिभि ' (१-४) इत्यनेन 'चतुर्भि. प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति०'(महाभाष्य, प्रथमाह्निक) इत्यस्य वर्णनम् । एकशेष-वर्णनम्—हस्ते तवास्ते द्वयमेकशेषः। (३-८२), मुखेन्दुमस्थापयदेकशेषम् (७-५९) । आदेश.—भुव. स्वरादेशमथाचरामो० (८-९६), स्व नैषधादेशमहो विधाय (१०-१३६) । अपादानम्—आगच्छतामपादान० (१७-११८) । घु-सज्ञा—बोधयन् यो घुसज्ञा० (१९-६१) । तमप्—मधुराधारस्तमप्प्रत्ययः (२१-१५२) । आम्रेडितम्—भवद्रुपविपिनाम्रे ताभिराम्रेडितेन (२१-१५६) । (३) सांख्यसिद्धान्तवर्णनम्—सत्कार्यवाद.—नास्ति जन्यजनकव्य-तिभेद.० (५-९४) । (४) योगसिद्धान्तवर्णनम्—सम्प्रज्ञातसमाधि.—सम्प्रज्ञात-वासिततम समपादि (२१-११८) । (५) न्याय-वैशेषिकसिद्धान्तवर्णनम्—परमाणुवाद —आदाविव द्व्यणुकक्तृत्परमाणुयुग्मम् (३-१२५), मनसोऽणुत्वम्—मनो-भिरासीदनणुप्रमाणै. (३-३७),न्यायस्य षोडशपदार्थत्वम्—द्विषोदितै षोडशभिः पदार्थै. (१०-८२) । कारणगुणपूर्वक हि कार्यम्, 'अनानुरूपा तनुरूप-ऋद्धि कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते' (३-१७) । न्यायाभिमतमोक्षस्य परिहास.—मुक्तये य शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् । गोतम तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव स. । (१७-७५) । वैशेषिकाभि-मततम.स्वरूपपरिहास —ध्वान्तस्य वामोरु विचारणाया, वैशेषिक चारु मत मत मे । औलूकमाहु. खलु दर्शन तत्, क्षम तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥ (२२-३५) । (६) मीमांसा-सिद्धान्तवर्णनम्—देवानामरूपित्व मन्त्ररूपित्व च—विश्वरूपकलनादुपपन्न, तस्य जैमिनिमुनित्वमुदीये । विग्रह मखभुजामसहिष्णु.० (५-३९), प्रत्यक्षलक्ष्यामवलम्ब्य मूर्तिं हुतानि यज्ञेषु तवोपभोक्ष्ये । मख हि मन्त्राधिकदेवभावे ॥ (१४-७३) । स्वतःप्रामा-ण्यम्—स्वत एव सता परार्थता ग्रहणाना हि यथा यथार्थता । (२-६१) । मानवस्य कर्माधीनत्वमीश्वराधीनत्व वा—अनादिधाविस्वपरम्पराया हेतुस्रुत. स्रोतसि वेश्वरे वा । आयत्तधीरेष जनस्तदार्या किमीदृशः पर्यनुयोगयोग्य. । (६-१०२) । श्रुतीना प्रामाण्यम्—श्रुतिं श्रद्धत्थ विक्षिप्ता. प्रक्षिप्ता ब्रूथ च स्वयम् । मीमासामासलप्रज्ञास्ता यूपद्विपदापिनीम् ।

रत्नेति 'नैषधं विद्वदौषधम्' इति साह्लादमुद्घोष्यते यशोऽस्य सुधीभिः। प्रतिपदं पदलालित्यावेक्षणात् 'नैषधे पदलालित्यम्' इत्यप्यभिधीयते। एतदेव समासतोऽत्र प्रस्तूयते। विवृतिश्च विद्वद्भिः स्वयमेवाभ्यूह्या।

पदलालित्यवन्तः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियन्ते। अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे। तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः। (नैषध० १-२०), मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति। अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्० (नै० १-३९), अह्नो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यभिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम्। विभावरीभिर्विभराम्बभूविरे। (नै० १-४१), अलं नलं रोद्धुममी किलाभवन् स्मर स्म रत्यामनिरुद्धमेव यत्, सृजत्यय सर्गनिसर्ग ईदृशः। (नै० १-५४), चलन्नलङ्कृत्य महारयं हयं स्ववाहवाहोचितवेषपेशलः। (नै० १-६६), दिने दिने त्वं तनुरेधि रेऽधिकं पुनः पुनर्मूर्च्छ च तापमृच्छ च। (नै० १-९०), मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी। (नै० १-१३५), मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम। (नै० १-१३६), नलिनं मलिनं विवृण्वती पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे। अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते० (२-२३), धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि। (३-११६), सकलया कलया किल दंष्ट्रया समवधाय यमाय विनिर्मितः। (४-७९), लोकेशकेशवशिवानपि यश्चकार शृङ्गारसान्तरभृशान्तरशान्तभावान्। (११-२५), कुमुदमुदमुदेष्यतीमसोढा रविरविलम्बितुकामतामवानीत्। (२१-१४६), शृङ्गारभृङ्गारसुधाकरेण वर्णस्रजानूपय कर्णकूपौ। (२२-५७)।

विविधविद्यापारदृश्वा श्रीहर्षः। विविधदर्शनसिद्धान्तानां व्याकरणादिशास्त्रराद्धान्तानां चोल्लेखात् संजायते नैषधचरिते महत् काठिन्यम्। अतो विद्वदौषधमेतत् काव्यमुच्यते। एतदेवात्रातिसमासतो निरूप्यते विवियते च। (१) श्लेषप्रयोगः—चेतो नलं कामयते मदीयम्० (३-६७), श्लेषमूलकमर्थत्रयमेतस्य। तद्यथा—मदीयं चेतः नलं कामयते, ० न लकाम् अयते, ० चेतः अनलं कामयते। त्रयोदशसर्गे पञ्चनलीवर्णने (१३.२-३४) सर्वेऽपि श्लोका द्व्यर्थकास्त्र्यर्थका वा। 'देवः पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या। (१३-३४), पञ्चार्थकमेतत्पद्यम्। अन्ये च केचन श्लेषमूलाः श्लोकाः—विदर्भजाया मदनस्तथा मनोनलावरुद्धं वयसैव वेशितः (१-३२), वयोतिपातोद्गतवातवेपिते (१-७७), वियोगिनीमैक्षत दाडिमीमसौ (१-८२), रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा० (१-१११), स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य

कोऽपि क्षमः (४-११६) । (२) व्याकरणसिद्धान्तवर्णनम्—'क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया । या स्वौजसा साधयितुं विलासै.०' (३-२३) इत्यत्र 'अपद न प्रयुञ्जीत' इत्यस्य वर्णनम् । 'किं स्थानिवद्भावमधत्त दुष्ट तादृक्कृतव्याकरण' पुन स. ।' (१०-१३६) इत्यत्र स्थानिवदादेशो० (१-१-५६) इति सूत्रस्य वर्णनम् । 'अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि' (१७-७०) इत्यत्र 'अपवर्गे तृतीया' (२-३-६) इति सूत्रस्य वर्णनम् । 'भण फणिभवशास्त्रे तातङः स्थानिनौ काविति विहिततुहीवागुत्तरः कोकिलोऽभूत्' (१९-६०), इत्यत्र तुह्योस्तातङ्० (७-१-३५) इति सूत्रस्य वर्णनम् । 'अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्र प्रणयन्नुपाधिभि ' (१-४) इत्यनेन 'चतुर्भि. प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति०'(महाभाष्य, प्रथमाह्निक) इत्यस्य वर्णनम् । एकशेष-वर्णनम्—हस्ते तवास्ते द्वयमेकशेषः । (३-८२), मुखेन्दुमस्थापयदेकशेषम् (७-५९) । आदेश.—भुव. स्वरादेशमथाचरामो० (८-९६), स्व नैषधादेशमहो विधाय (१०-१३६) । अपादानम्—आगच्छतामपादान० (१७-११८) । घु-सज्ञा—घोषयन् यो घुसज्ञा० (१९-६१) । तमप्—मधुराधारस्तमप्प्रत्यय. (२१-१५२) । आम्रेडितम्—भवदुपविपिनाम्रे ताभिराम्रेडितेन (२१-१५६) । (३) सांख्यसिद्धान्तवर्णनम्—सत्कार्यवाद.—नास्ति जन्यजनकव्यतिभेद.० (५-९४) । (४) योगसिद्धान्तवर्णनम्—सम्प्रज्ञातसमाधि.—सम्प्रज्ञातवासिततम. समपादि (२१-११८) । (५) न्याय-वैशेषिकसिद्धान्तवर्णनम्—परमाणुवाद.—आदाविव द्व्यणुककृत्परमाणुयुग्मम् (३-१२५), मनसोऽणुत्वम्—मनोभिरासीदनणुप्रमाणै. (३-३७), न्यायस्य षोडशपदार्थत्वम्—द्विषोदितै. षोडशभि' पदार्थै. (१०-८२) । कारणगुणपूर्वक हि कार्यम्, 'अन्नानुरूपा तनुरूप-ऋद्धि कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते' (३-१७) । न्यायाभिमतमोक्षस्य परिहास.—मुक्तये य. शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् । गोतम तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव स. । (१७-७५) । वैशेषिकाभिमततमःस्वरूपपरिहास —ध्वान्तस्य वामोरु विचारणायां, वैशेषिक चारु मत मत मे । औलूकमाहु. खलु दर्शन तत्, क्षम तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥ (२२-३५) । (६) मीमांसासिद्धान्तवर्णनम्—देवानामरूपित्व मन्त्ररूपित्व च—विश्वरूपकलनादुपपन्न, तस्य जैमिनिमुनित्वमुदीये । विग्रह मखभुजामसहिष्णु.० (५-३९), प्रत्यक्षलक्ष्यामवलम्ब्य मूर्तिं हुतानि यज्ञेषु तवोपभोक्ष्ये । मख हि मन्त्राधिकदेवभावे ॥ (१४-७३) । स्वतःप्रामाण्यम्—स्वत एव सता परार्थता ग्रहणाना हि यथा यथार्थता । (२-६१) । मानवस्य कर्माधीनत्वमीश्वराधीनत्व वा—अनादिधाविस्वपरम्पराया हेतुत्वनः स्रोतसि नेश्वरे वा । आयत्तधीरेष जनस्तदार्या किमीदृश. पर्यनुयोगयोग्यः । (६-१०२) । श्रुतीना प्रामाण्यम्—श्रुतिं श्रद्धत्थ विक्षिप्ता. प्रक्षिप्ता ब्रूथ च स्वयम् । मीमासामासलप्रज्ञास्ता शूपद्विपदापिनीम् ।

(१७-६१)। (७) वेदान्तसिद्धान्तवर्णनम्—ब्रह्मसाक्षात्कारः—प्रापुस्तमेकं निरुपाख्यरूपं ब्रह्मेव चेतांसि यतव्रतानाम् (३-३)। मुक्तदशा—सा मुक्तसंसारिदशारसाभ्यां द्विस्वादमुल्लासमभुङ्क्त मिष्टम् (८-१५)। लिङ्गशरीरम्—न त मनस्तच्च न कायवायवः (९-९४)। अद्वैतवादस्य तात्त्विकत्वम्—श्रद्धां दधे निषधराड् विमतौ मतानाम्। अद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः (१३-३६)। (८) बौद्धसिद्धान्तवर्णनम्—बौद्धाभिमतः शून्यवादो विज्ञानवादः साकारतावादश्च—'या सोमसिद्धान्तमयाननेव, शून्यात्मतावादमयोदरेव। विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव, साकारतासिद्धिमयाखिलेव'। (१०-८८)। (९) जैनसिद्धान्तवर्णनम्—जैनाभिमतरत्नत्रयम्—'न्यधेशि रत्नत्रितये जिनेन यः, स धर्मचिन्तामणिरुज्झितो यया। कपालिकोपानलभस्मनः कृते, तदेव भस्म स्वकुले स्तृतं तया'। (९-७१)। (१०) चार्वाकसिद्धान्तवर्णनम्—वर्णनमेतस्य सप्तदशे सर्गे (१७.३६-८३) विस्तरशः प्राप्यते। तद्यथा—न कश्चनेश्वरः। 'देवश्चेदस्ति सर्वज्ञः, करुणाभागवन्ध्यवाक्। तत् किं वाग्व्ययमात्रान्नः कृतार्थयति नार्थिनः' (१७-७७)। अग्निहोत्रादिकं निष्फलम्। 'अग्निहोत्रं त्रयीतन्त्रं त्रिदण्डं भस्मपुण्ड्रकम्। प्रज्ञापौरुषनिःस्वानां जीविकेति बृहस्पतिः' (१७-३९)। भोगोपभोगार्थं शरीरमिदम्। 'सुकृते वः कथं श्रद्धा, सुरते च कथं न सा। तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते'। (१७-४८)। न मृतस्य पुनर्जन्म। 'कः शमः क्रियतां प्राज्ञाः, प्रियाप्रीतौ परिश्रमः। भस्मीभूतस्य भूतस्य पुनरागमनं कुतः' (१७-६९)। एवमेव वेदानां वेदाङ्गानामन्येषां च विषयाणामत्र प्रतिपदं वर्णनं प्राप्यते।

उपर्युक्तेन वर्णनेन विशदीभवत्येतद् यद् श्रीहर्षः कविताकामिनीकान्तो भाषाप्रयोगविदग्धो विविधशास्त्रपारदृश्वा रससिद्धः कवीश्वरो वर्तते। तस्य काव्यं प्रतिपदं तस्य व्याकरणज्ञतां भावगाम्भीर्यं पदमाधुर्यं भाषासौष्ठवं रसपरिपाकं च प्रकटयति। अनुपमस्तस्य समग्रेऽपि संस्कृतवाङ्मयेऽधिकारः। गीर्वाणवाणी वाणीश्वरमिव तं सेवते। स भाषां पुत्तलिकामिव प्रनर्तयितुं प्रभवति। तदीहासमकालमेव समुपतिष्ठन्ति रसा भावाः कान्ता पदावली विविधाश्चालंकाराः। गूढातिगूढभावान्वितानि श्लिष्टानि च पद्यानि स तेनैव सारल्येन रचयितुमलं यथा सरलानि सरसानि प्रसादगुणोपेतानि हृद्यानि पद्यानि। तस्य पद्यानि नारिकेलफलोपमानानि सन्ति बहिः कठोराणि अन्तः माधुर्योपेतानि च। रसिकैः सहृदयैर्विविधशास्त्रनिष्णातैरेव तत्काव्यगौरवम् अवधारयितुं पार्यते। विविधशास्त्रादिसिद्धान्तवर्णनादेवास्य महाकाव्यस्य प्रतिपदं क्लिष्टत्वमालक्ष्यते। अत साधूच्यते—नैषधं विद्वदौषधम्।

१३. भारतीया संस्कृतिः

भारतीयसंस्कृतेर्विवृतिविचारे बहवोऽनुयोगा समापतन्ति चेतसि। तेषा समासतोऽत्र विवरणमुपस्थाप्यते। का नाम संस्कृति.? कथमिवैषोपकरोत्यात्मनो मनसो जनस्य देशस्य संसृतेर्वा? हेयोपादेयोपेक्ष्या वैषा? उपादेया चेदिय किं स्यात् स्वरूपमस्या साम्प्रतिक्या लोकसंस्थितौ? कास्तावत् प्रातिस्विक्यो भारतीयसंस्कृते? किमिव हि साध्य क्षेममिह लोकस्य संस्कृत्याऽनया? कानि च सन्ति कारणानि विश्वसंस्कृतावाहतेरस्या? इत्यादय। संस्करण परिष्करण चेतस आत्मनो वा संस्कृतिरिति समभिधीयते। सा नाम संस्कृतिर्या व्यपनयति मल मनसश्चाञ्चल्य चेतसोऽज्ञानावरणमात्मनश्च। पापापनयपूर्वकमेषा प्रसादयति स्वान्त, दुर्भावदमनपूर्वक संस्थापयति स्थैर्य चेतसि, मन.शुद्धिपुर.सर पावयत्यात्मानमपहरति च चित्तभ्रमम्। संस्कृतिरेवैषा चेत प्रसादयति, मनोऽमलीकुरुते, दुर्भावान् दमयते, दुर्गुणान् दारयति, पापान्यपाकुरुते, दु.खद्वन्द्वानि दहति, ज्ञानज्योतिर्ज्वलयति, अविद्यातमोऽपहन्ति, भूति भावयति, सुख साधयति, धृतिं धारयति, गुणानागमयति, सत्य स्थापयति, शान्ति समादधाति च। न केवलमेषोपकर्त्री व्यष्टेरेवापि तु समष्टेरपि जीवनभूता। उपकरोति चैषाऽऽत्मनो मनसो लोकस्य राष्ट्रस्य संसृतेश्च। अजस्रमेषोपादेया सर्वैरेव स्वसुखमभीप्सुभि। स्वोन्नतिमभीप्सता न शक्या केनाप्येषा हातुमुपेक्षितु वा। उज्झितोपेक्षिता वैषा परिणस्यते स्वात्मविनाशाय लोकाहिताय च। अङ्गीकृतेऽस्या उपादेयत्व तदेव स्यादस्या. स्वरूप यत् साम्प्रतिक्या लोकसंस्थित्या नातितरा संभिद्येत। विविधाचारविचारवादव्याकुले विश्वेऽस्मिन् सैव संस्कृतिरुपादेयतामाप्स्यति या समेषा स्वान्तेषु सद्भावाविर्भावपुर.सर विश्वहित विश्वबन्धुत्व विश्वोपकरण चादर्शत्वेनोररीकुर्यात्। अत सिध्यत्यदो यद् विश्वजनीना संस्कृतिरेव साम्प्रतमुपादानमर्हति, सैव च तापत्रयसन्तप्त जगत् तापापनयनेन सुखनिधान सम्पादयितु प्रभवति।

भारतीयसंस्कृते. काश्चन प्रातिस्विक्यो मुख्या विशेषा वाऽत्र प्रस्तूयन्ते। (१) **धर्मप्राधान्यम्**— मानवेषु धर्मप्राधान्यमेव तान् व्यवच्छेदयति पशुभ्य.। अत उक्तम्— 'धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीना. पशुभि. समाना.'। नहि धर्मपदेन कश्चन सम्प्रदायविशेषोऽत्र विवक्षित.। जगद्धारकाणि मूलतत्त्वानि यमाख्यया व्याख्यातानि शास्त्रेषु धर्मपदवाच्यानि। तदेवोच्यते—'धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजा.। यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चय.'। यमास्तु व्याख्याता योगदर्शने—'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा (योग० २-३०) अहिंसाया. समाश्रयणम्, सत्यस्य परिपालनम्, अस्तेयवृत्त्या आश्रय, ब्रह्मचर्यव्रतस्यानुष्ठानम्, अपरिग्रहव्रतस्य पालन च यम इत्युच्यते। एतेषा व्रतानामाश्रयेण मानवः समाजो देशो जगदिद च सततमुन्नतिं

लभ्यते इति तानि विश्वजनीनधर्मपदेन वाच्यानि। एत एव यमाः शाश्वतिकाः सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते—'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्'(योग० २-३१)। यश्चैहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममावहति च धर्म इति व्यवस्थापितं वैशेषिकदर्शनकृता कणादेन 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'। यतोऽभ्युदयोऽर्थात् ऐहिकी लौकिकी भौतिकी वा समुन्नतिः समुपलभ्यते, निःश्रेयसावाप्तिर्मोक्षाधिगमश्च भवति पारलौकिकं च सुखमाप्यते, स एव धर्मपदेन वाच्यः। एतदेव मनसिकृत्य मनुना धृत्यादयो दश गुणा धर्मनाम्ना व्याख्याताः। तद्यथा—'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्' (मनु०)। (२) आध्यात्मिकी भावना—जीवनमेतन्न केवलं भोगार्थमेव, अपि त्वात्मोन्नतेः प्रमुखं साधनम्। आध्यात्मिकी भावना मानवं देवत्वं प्रापयति। स सर्वेष्वपि जीवेष्वेकत्वं समीक्षते। समग्रमपि प्राणिजातं परेशेनैवोत्पादितमिति विचारं विचारं तत्रैकत्वमनुभवति। जगदिदं परमात्मना व्याप्तम्। 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्' (ईशोपनिषद् १)। 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते' (ईशोप० ६)। 'यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ईशोप० ७)। अध्यात्मप्रवृत्त्या जीवनमुन्नतं भवति। सर्वत्रैकत्वदर्शनेन न मानवः शोकाद्यभिभूतो भवति। स प्रतिपदमानन्दमनुभवति। निखिलमपि संस्कृतवाङ्मयं व्याप्तं भावनयाऽनया। भावनैषा चेतः प्रसादयति, आत्मानं मोक्षाधिगमं प्रति प्रेरयति। उपनिषत्सु गीतायां चास्या भावनाया वर्णितं विविधं महत्त्वम्। अध्यात्मप्रवृत्त्या प्रवर्तते मनसि सहृदयता सहानुभूतिरौदार्यादिकं च। (३) पारलौकिकी भावना—जगदिदं विनश्वरं, कीर्तिरेवैकाऽविनाशिनी। भौतिका विषया इमे आपातरम्याः पर्यन्तपरितापिनश्च। 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः' (किराता० ११-१२)। एषामाश्रयणेन पतनं सुलभं, दुःखावाप्तिः सुलभा, सुखं तु नितरां दुर्लभम्। एतस्मादेव हेतोर्धीरा वीराः सुकृतिनश्च कर्तव्यं प्रमुखं मन्वाना विषयसुखानि विहाय प्राणान् तृणवद्गणयन्तः समरादिषु वीरगतिं लेभिरे। (४) सदाचारपालनम्—'आचारः परमो धर्मः' इति सिद्धान्तमाश्रित्य सदाचारः सर्वोत्तमं तप इति स पालनीयः। अत उक्तं महाभारते—'वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च। अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः'। ब्रह्मचर्यादिपालनेनेन्द्रियनिग्रहो मनसो दमश्च साधनीयौ। सदाचारपालने ब्रह्मचर्यस्य विशिष्टं महत्त्वम्। ब्रह्मचर्यव्रतस्याश्रयणेन न केवलं शारीरिकी समुन्नतिरवाप्यते, अपितु मानसिकी बौद्धिकी आध्यात्मिकी चापि समुन्नतिः सुतरां सुलभा। देवा ब्रह्मचर्यव्रतपालनेनैव मृत्युमपि वशीकृतवन्तः। 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' (अथर्व०)। देवा ब्रह्मचर्येणैवानन्दमधिगतवन्तः। 'इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्' (अथर्व०)। चरित्ररक्षा शीलरक्षा संयमो दमो मनसो

वशीकरणमिन्द्रियाणां नियमनं चेत्यादिगुणाः सदाचारपालने विशेषतोऽवधेयाः । (५) वर्णव्यवस्था—ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्चत्वार इमे वर्णाः । वेदानां वेदाङ्गानां चाध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं विद्याया धनस्य च दानं धनादिदानस्य स्वीकरणं च ब्राह्मणस्य कर्तव्यम् । 'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (मनु०) । 'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (गीता० १८-४२) । देशस्य समाजस्य च रक्षणं क्षत्रियस्य परमो धर्मः । स विपत्तेः क्षताद् वा लोकं त्रायते । अत साधु निगदितं कविवरेण्येन कालिदासेन—'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः' (रघु०) । 'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्' (गीता० १८-४३) । देशस्य जनतायाश्च मनोरञ्जनत्वादेव राजा राजते । 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्' । कृषिर्गोरक्षा वाणिज्यं च वैश्यस्य प्रमुखं कर्म । 'कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्' (गीता० १८-४४) । एषु कर्मसु वैश्यैः समुन्नतिः कार्या । श्रमसाध्यं शारीरिकं च कार्यं शूद्रस्य प्रधानं कर्तव्यम् । 'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्' (गीता १८-४४) । यो यादृशं कर्म कुरुते तादृशं वर्णमवाप्नोति । सर्वे वर्णाः स्वं स्वं कर्म विदधीरन् । इदमिहावधेयम्—आर्यसंस्कृतौ वर्णव्यवस्था स्वीक्रियते, न तु जातिप्रथा । जन्मना जातिरिति, कर्मणा वर्ण इति । वर्णो वृणोतेः । जनो यत्कर्म वृणोति स तस्य वर्णः । जातिप्रथा सदोषा हेयोपेक्ष्या च, परं वर्णव्यवस्था निर्दोषोपादेया च । (६) आश्रमव्यवस्था—ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्चत्वार एते आश्रमाः । स्ववयोऽनुरूपमाश्रममाश्रयेत्, तदाश्रमनिर्दिष्टनियमान् पालयेच्च । आपञ्चविंशतिवर्षं ब्रह्मचर्याश्रमः । विद्याध्ययनं तपोमयजीवनयापनं सर्वविधगुणानां संग्रहश्चाश्रमेऽस्मिन् प्रधानं कर्तव्यम् । आपञ्चाशद्वर्षं गृहस्थाश्रमः । भौतिकी शारीरिकी मानसिकी च समुन्नतिः, भौतिकविषयाणामुपभोगः, दाम्पत्यजीवनयापनं वंशप्रतिष्ठायै सन्तानोत्पत्तिश्चाश्रमेऽस्मिन् विशिष्टं कर्म । पञ्चाशद्वर्षानन्तरं वानप्रस्थाश्रमे प्रवेशः । सपत्नीकेनेश्वराराधनं, संयमपालनं, योगादिकर्मसु विशिष्टा प्रवृत्तिश्च तत्र प्रमुखं कर्म । षष्टिवर्षानन्तरं यदैव वैराग्यभावना समुत्पद्यते, तदैव संन्यासाश्रम आश्रयणीयः । 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्' । भौतिकविषयान् परित्यज्य योगाभ्यासे रतिः, पुण्यार्जने प्रवृत्तिः, समाधौ मनसः स्थितिः, लोकोपकरणे च विनियुक्तिः परिव्राजकानां प्रथमं कर्तव्यम् । (७) कर्मवादः—मनुष्येण सदाऽनासक्तिभावनया कर्म कार्यमिति । कृतस्य कर्मणः फलावाप्तिः सुनिश्चिता । सत्कर्मणा पुण्यं दुष्कर्मणा पापं चाप्नोति । 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' । 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनैवेति' (बृहदारण्यकम्) । मानवः कर्मानुसारं शुभं वाऽशुभं वा जन्म लभते । सुकृतं क्रियते चेत् सत्फलं लभते, दुष्कृतं क्रियते चेत् कुफलं प्राप्यते । सर्वास्ववस्थासु कर्मणां फलमवश्यम-

लभ्यत इति तानि विश्वजनीनधर्मपदेन वाच्यानि । एत एव यमाः शाश्वतिकाः सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते—'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्'(योग० २-३१)। यश्चैहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममावहति च धर्म इति व्यवस्थापितं वैशेषिकदर्शनकृता कणादेन 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'। यतोऽभ्युदयोऽर्थात् ऐहिकी लौकिकी भौतिकी वा समुन्नतिः समुपलभ्यते, निःश्रेयसावाप्तिर्मोक्षाधिगमश्च भवति पारलौकिकं च सुखमाप्यते, स एव धर्मपदेन वाच्यः। एतदेव मनसिकृत्य मनुना धृत्यादयो दश गुणा धर्मनाम्ना व्याख्याताः । तद्यथा—'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्' (मनु०) । (२) आध्यात्मिकी भावना—जीवनमेतन्न केवलं भोगार्थमेव, अपि त्वात्मोन्नतेः प्रमुखं साधनम् । आध्यात्मिकी भावना मानवं देवत्वं प्रापयति । स सर्वेष्वपि जीवेष्वेकत्वं समीक्षते । समग्रमपि प्राणिजातं परेशेनैवोत्पादितमिति विचारं विचारं तत्रैकत्वमनुभवति । जगदिदं परमात्मना व्याप्तम् । 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्' (ईशोपनिषद् १) । 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते' (ईशोप० ६) । 'यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ईशोप० ७) । अध्यात्मप्रवृत्त्या जीवनमुन्नतं भवति । सर्वत्रैकत्वदर्शनेन न मानवः शोकाद्यभिभूतो भवति । स प्रतिपदमानन्दमनुभवति । निखिलमपि संस्कृतवाङ्मयं व्याप्तं भावनयाऽनया । भावनैषा चेतः प्रसादयति, आत्मानं मोक्षाधिगमं प्रति प्रेरयति । उपनिषत्सु गीतायां चास्या भावनाया वर्णितं विविधं महत्त्वम् । अध्यात्मप्रवृत्त्या प्रवर्तते मनसि सहृदयता सहानुभूतिरौदार्यादिकं च । (३) पारलौकिकी भावना—जगदिदं विनश्वरं, कीर्तिरेवैकाऽविनाशिनी । भौतिका विषया इमे आपातरम्याः पर्यन्तपरितापिनश्च । 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः' (किराता० ११-१२) । एषामाश्रयणेन पतनं सुलभं, दुःखावाप्तिः सुलभा, सुखं तु नितरां दुर्लभम् । एतस्मादेव हेतोर्धीरा वीराः सुकृतिनश्च कर्तव्यं प्रमुखं मन्वाना विषयसुखानि विहाय प्राणान् तृणवद्गणयन्तः समरादिषु वीरगतिं लेभिरे । (४) सदाचारपालनम्—'आचारः परमो धर्मः' इति सिद्धान्तमाश्रित्य सदाचारः सर्वोत्तमं तप इति स पालनीयः । अत उक्तं महाभारते—वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च । अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः । ब्रह्मचर्यादिपालनेनेन्द्रियनिग्रहो मनसो दमश्च साधनीयौ । सदाचारपालने ब्रह्मचर्यस्य विशिष्टं महत्त्वम् । ब्रह्मचर्यव्रतस्याश्रयणेन न केवलं शारीरिकी समुन्नतिरवाप्यते, अपितु मानसिकी बौद्धिकी आध्यात्मिकी चापि समुन्नतिः सुतरां सुलभा । देवा ब्रह्मचर्यव्रतपालनेनैव मृत्युमपि वशीकृतवन्तः । 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' (अथर्व०) । देवा ब्रह्मचर्येणैवानन्दमधिगतवन्तः । 'इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्' (अथर्व०) । चरित्ररक्षा शीलरक्षा संयमो दमो मनसो

वशीकरणमिन्द्रियाणां नियमनं चेत्यादिगुणाः सदाचारपालने विशेषतोऽपेक्ष्याः। (५) वर्णव्यवस्था—ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राश्चत्वार इमे वर्णाः। वेदानां वेदाङ्गानां चाध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं विद्याया धनस्य च दानं धनादिदानस्य स्वीकरणं च ब्राह्मणस्य कर्तव्यम्। 'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (मनु०)। 'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (गीता० १८-४२)। देशस्य समाजस्य च रक्षणं क्षत्रियस्य परमो धर्मः। स विपत्तेः क्षताद् वा लोकं त्रायते। अतः साधु निगदितं कविवरेण्येन कालिदासेन—क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।' (रघु०)। 'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्' (गीता० १८-४३)। देशस्य जनतायाश्च मनोरञ्जनत्वादेव राजा राजते। 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्'। कृषिर्गोरक्षा वाणिज्यं च वैश्यस्य प्रमुखं कर्म। 'कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्' (गीता० १८-४४)। एषु कर्मसु वैश्यैः समुन्नतिः कार्या। श्रमसाध्यं शारीरिकं च कार्यं शूद्रस्य प्रधानं कर्तव्यम्। 'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्' (गीता १८-४४)। यो यादृशं कर्म कुरुते तादृशं वर्णमवाप्नोति। सर्वे वर्णाः स्वं स्वं कर्म विदधीरन्। इदमिहावधेयम्—आर्यसंस्कृतौ वर्णव्यवस्था स्वीक्रियते, न तु जातिप्रथा। जन्मना जातिरिति, कर्मणा वर्ण इति। वर्णो वृणोतेः। जनो यत्कर्म वृणोति स तस्य वर्णः। जातिप्रथा सदोषा हेयोपेक्ष्या च, परं वर्णव्यवस्था निर्दोषोपादेया च। (६) आश्रमव्यवस्था—ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसन्यासाश्चत्वार एते आश्रमाः। स्ववयोऽनुरूपमाश्रममाश्रयेत्, तदाश्रमनिर्दिष्टनियमान् पालयेच्च। आपञ्चविंशतिवर्षं ब्रह्मचर्याश्रमः। विद्याध्ययनं तपोमयजीवनयापनं सर्वविधगुणानां संग्रहश्चाश्रमेऽस्मिन् प्रधानं कर्तव्यम्। आपञ्चाशद्वर्षं गृहस्थाश्रमः। भौतिकी शारीरिकी मानसिकी च समुन्नतिः, भौतिकविषयाणामुपभोगः, दाम्पत्यजीवनयापनं वंशप्रतिष्ठायै सन्तानोत्पत्तिश्चाश्रमेऽस्मिन् विशिष्टं कर्म। पञ्चाशद्वर्षानन्तरं वानप्रस्थाश्रमे प्रवेशः। सपत्नीकेनेश्वराराधनं, संयमपालनं, योगादिकर्मसु विशिष्टा प्रवृत्तिश्च तत्र प्रमुखं कर्म। षष्टिवर्षानन्तरं यदैव वैराग्यभावना समुत्पद्यते, तदैव सन्यासाश्रम आश्रयणीयः। 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्'। भौतिकविषयान् परित्यज्य योगाभ्यासे रतिः, पुण्यार्जने प्रवृत्तिः, समाधौ मनसः स्थितिः, लोकोपकरणे च विनियुक्तिः परिव्राजकानां प्रथमं कर्तव्यम्। (७) कर्मवादः—मनुष्येण सदाऽनासक्तिभावनया कर्म कार्यमिति। कृतस्य कर्मणः फलावाप्तिः सुनिश्चिता। सत्कर्मणा पुण्यं दुष्कर्मणा पापं चाप्नोति। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'। 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनैवेति' (बृहदारण्यकम्)। मानवः कर्मानुसारं शुभं वाऽशुभं वा जन्म लभते। सुकृतं क्रियते चेत् सत्फलं लभते, दुष्कृतं क्रियते चेत् कुफलं प्राप्यते। सर्वास्ववस्थासु कर्मणां फलमवश्यम

वाप्यते । अतस्तादृश कार्यं यथा जीवने दुःखावाप्तिर्न स्यात् । (८) **पुनर्जन्मवादः**—कर्मानुरूप सर्वस्यापि जन्तोः पुनर्जन्म भवति । 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' (गीता २–२७) । यो हि जायते तस्य मरण ध्रुवमेवास्ति । मृतस्य च कर्मानुसार पुनर्जन्म सुनिश्चितम् । यः पूर्वजन्मनि यादृग कर्म कुरुते, सोऽस्मिन् जन्मनि तादृश एव कुले परिवारे च जन्म लभते । प्रतिभादिवैशिष्ट्य विशिष्टगुणादिसमन्वितत्व तद्वैपरीत्य च पूर्वजन्मकृतकर्मविपाक एवेत्यवगन्तव्यम् । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः केचन यतयो निःश्रेयसमधिगच्छन्ति । (९) **मोक्ष**.—मोक्षावाप्तिः परमः पुरुषार्थः । मोक्षमधिगम्य न च पुनरावर्तन्ते मुनयः । केषाचित् मतेन नियतकाल निःश्रेयससुखमुपभुज्य तेऽप्यावर्तन्त इति । ज्ञानाग्निना सर्वकर्मप्रदाहे मोक्षावाप्तिर्भवतीति । (१०) **श्रुतीनां प्रामाण्यम्**—वेदाश्चत्वारः स्वतःप्रमाणस्वरूपाः, ग्रन्था अन्ये तु तन्मूलक प्रामाण्य लभन्तेऽतस्ते परतःप्रमाणरूपाः । श्रुत्युक्तदिशा कर्मानुष्ठानेन श्रेयोऽवाप्तिस्तदन्यथाऽऽचरणेन दुःखाधिगमश्च । (११) **यज्ञस्य महत्त्वम्**—सर्वैरेव जनै पञ्च यज्ञा दैनिककर्तव्यत्वेनानुष्ठेयाः । यज्ञानुष्ठानेनात्मप्रसादन देवप्रसादन चोभय क्रियते । पञ्च यज्ञाः सन्ति—(क) ब्रह्मयज्ञः—सन्ध्योपासनमीश्वरोपासन च, (ख) देवयज्ञः—दैनिकयागस्यावश्यकर्तव्यता, (ग) पितृयज्ञः—मातुः पितुश्च सतत परिचर्या, तयोराज्ञापालन च, (घ) बलिवैश्वदेवयज्ञः—परिपक्वस्य भोजनस्याल्पेनांशेन मन्त्रपूर्वकमग्नावाहुतिः, कीटादिभ्योऽन्नप्रदान च, (ङ) अतिथियज्ञः—'अतिथिदेवो भव' इति शास्त्रमनुसृत्यातिथीनां शुश्रूषा सत्करणं च । (१२) **सत्यपरिपालनम्**—मनसा वाचा कर्मणा सत्यमुरीकुर्यादनुतिष्ठेच्च । सर्वथा सत्य व्यवहरेन्नासत्यम् । सत्यमेव शाश्वत विजय लभते नासत्यम् । तथोक्तम्—सत्यमेव जयते नानृतम् । (१३) **अहिंसापालनम्**—'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यहिंसैव श्रेष्ठधर्मत्वेनाङ्गीक्रियते । अहिंसयैव साध्या विश्वशान्तिः । जनहित विश्वहित चेप्सताऽलस मनसा वाचा कर्मणा चाहिंसाधर्मः पालनीयः । (१४) **त्यागमहत्त्वम्**—अनासक्तेनात्मना जगति व्यवहरेत् । न परस्वममीप्सेत् । पुरुषार्थोपार्जितमेवोपभुञ्जीत । तथा चोक्त वेदे—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' (यजु० ४०–१) । (१५) **तपोमयं जीवनम्**—तपसैव शुध्यति जीवन मनश्च प्रसीदति । भोगवासनाभिर्विषीदति स्वान्तम् । मनसो बुद्धयाश्च परिष्काराय सतत तपोमय जीवन यापयेत् । (१६) **मातृपितृगुरुभक्तिः**—मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, इत्येषा देववत्पूज्यत्वमाख्यायते । शुश्रूषयैवैषा सिध्यति सकलमिह ससृतौ । मातुः पितुर्गुरूणा चादेशोऽनवरत पालनीयः । त एव मानवस्य सर्वोत्तम शुभचिन्तकाः । तेषामाज्ञानुसारमेव व्यवहर्तव्यम् ।

विश्वहितस्य विश्वोन्नतेश्च सर्वा एव मूलभूता भावनाः सस्कृतावस्यामुपलभ्यन्ते । एतासामाश्रयणेन सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा राष्ट्रस्य विश्वस्य च । गुणवैशिष्ट्यमेवैतस्याः समीक्ष्य समाद्रियते विश्वसस्कृतावियम् ।

१४. संस्कृतस्य रक्षार्थं प्रसारार्थं चोपायाः

सुविदितमेतत् समेषामपि शेमुषीमतां यद् भारतीया संस्कृतिर्नाधिगन्तुं पार्यते संस्कृतज्ञानमन्तरा। संस्कृतिमन्तरेण निर्जीवं जीवनं जीविनः। संस्कृतिर्हि स्वान्तस्य संस्कर्त्री, सद्भावानां भावयित्री, गुणगणस्य ग्राहयित्री, धैर्यस्य धारयित्री, दमस्य दात्री, सदाचारस्य सञ्चारयित्री, दुर्गुणगणस्य दमयित्री, अविद्यान्धतमसस्यापनोदयित्री, आत्मावबोधस्यावगमयित्री, सुखस्य साधयित्री, शान्तेः सन्धात्री च काचिदनुत्तमा शक्तिः। सेयं संस्कृतिरजस्रं रक्षणीया पालनीया परिवर्धनीयेति भारतीयसंस्कृतेः समुद्धारायावबोधाय च संस्कृतज्ञानमनिवार्यम्। समग्रमपि पुरातनं भारतीयं वाङ्मयं संस्कृतमाश्रित्यावतिष्ठते, इति सुविदितम्। न केवलं भारतीयसंस्कृतिसंरक्षणार्थमेवावश्यकं संस्कृतमपि तु संस्कृतमेतत् विविधसंस्कृतिप्रसारसाधनम्, भारतीयभाषाणामभिवृद्धिहेतुः, राष्ट्रभाषायाः समुन्नतेः साधकम्, आर्यभाषाया गौरवस्य प्राणभूतम्, विश्ववाङ्मयस्य पथप्रदर्शकम्, जीवनदर्शनस्य दर्शकम्, आचारशास्त्रस्य शिक्षकम्, पुरुषार्थस्य प्रयोजकम्, विविधविरुद्धसंस्कृतिसमाहारसाधकम्, प्रान्तीयानां प्रादेशिकानां च विकृतीनां विवादानां संघर्षाणां च प्रशमनम्, राष्ट्रीयभावनायाः सद्वृत्ततायाश्चाभिवृद्धेर्मूलम्, वैदिकवाङ्मयालोकस्य प्रसारहेतुः, आध्यात्मिक्या भौतिक्याश्च समुन्नतेः साधनमिति सुतरामवधेयम्। संस्कृत्या वाङ्मयेन च विहीनस्य देशस्य जातेश्चाधःपतनमनिवार्यम्। द्वयोरेवैतयोः संरक्षणेन संवर्धनेन च समेधते श्रीः सर्वस्या अपि संसृतेः। इत्येतदेवावधार्यं संस्कृतस्य संरक्षणस्य प्रचारस्य प्रसारस्य च भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते साम्प्रतम्। तद्रक्षणप्रचारप्रसारोपायाश्च समासतोऽत्र विविच्यन्ते समुपस्थाप्यन्ते च।

(१) **संस्कृतकाठिन्यापनोदनम्**—क्लिष्टा दुरूहा दुर्बोधा चेयं गीर्वाणगीरिति लोकानां विचारः प्रशमं नेयः। सरला सुबोधा प्रसादगुणोपेता चेयं प्रयोज्या व्यवहार्या च। सरला सुबोधैव च भाषा प्रचरति प्रसरति चेत्यवगन्तव्यम्। (२) **संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणम्**—संस्कृतस्य प्रचारे प्रसारे च संस्कृतव्याकरणस्य काठिन्यं महद्बाधकम्। व्याकरणं सरलं कार्यम्। सूत्राणां कण्ठस्थीकरणे न बलमाधेयम्। व्याकरणनियमा अनुवादद्वारा प्रयोगशैल्या च शिक्षणीयाः। प्रयोगशैल्याऽवगता नियमास्तथा बद्धमूला भवन्ति, यथा नान्येनोपायेन। (३) **नवशब्दानामात्मसात्करणम्**—विविधासु भाषासु प्रयुज्यमाना नवभावावबोधका नव्याः शब्दाः संस्कृतशब्दावल्यां संस्कृतस्वरूपप्रदानद्वारा आत्मसात्करणीयाः। संसृतौ व्यवह्रियमाणाः सर्वा एव प्रमुखा भाषा शैलीमिमामाश्रयन्ते। प्रकारेणैतेन तासां भाषाणां प्रगतिरुद्गतिर्जागृतिश्च संसूच्यते समादृताऽऽसीत् शैलीयं प्राक् संस्कृतेऽपि। (४) **नवभावावबोधनम्**—विश्वसाहित्ये

प्रयुज्यमानाः सर्वेऽपि भावाः सहर्षमाश्रयणीयाः प्रयोज्याश्च। नवभावावबोधनार्थं नूतना शब्दावली प्रयोज्या निर्मातव्या वा। विदेशीयनवशब्दग्रहणेऽपि न सकोच-प्रवृत्तिरास्थेया। (५) **संस्कृतभाषाव्यवहारः**—जीविता जागृता च सैव भाषा या लोके व्यवह्रियते प्रयुज्यते च। संस्कृतभाषायाः प्रचाराय प्रसाराय चानिवार्यमेतद् यत् संस्कृतज्ञाः संस्कृतमाश्रित्यैव व्यवहरेयुः। भाषणे लेखने वादे विवादे सलापे पत्रादि-व्यवहारे च संस्कृतमेव प्रयुञ्जीरन्। (६) **नवग्रन्थरचना**—नवीनान् विषयानाश्रित्य संस्कृते नवग्रन्थरचना स्यात्। साम्प्रतिके काले प्रचलिताः सर्वेऽपि विषयाः संस्कृत-माध्यमेन सुलभाः स्युः। एतदर्थं विविधविद्यानिष्णाताः संस्कृतज्ञाः सविशेषमुत्तर-दायित्वं भजन्ते। तेषां चैतत्पावनं कर्म। (७) **नवविषयाध्ययनम्**—संस्कृतज्ञानां कृतेऽनिवार्यमेतद् यत्ते संस्कृताध्ययनेन सहैव भूगोलमैतिह्यं विज्ञानादिविषयान् विदेशीया भाषाश्चाधीयीरन्। विविधविद्याऽध्ययनमन्तरेणाशक्यं धियो विस्फुरणम्। (८) **अन्वेषणकार्यम्**—संस्कृतेऽन्वेषणकार्यस्य महत्यावश्यकता। अन्वेषणकार्यमेव गौरवाधायि। अन्वेषणेनैव वाङ्मयस्य महत्त्वमुत्कर्षश्चावगम्येते। एतदर्थं महान् श्रमोऽ-पेक्ष्यते। (९) **संस्कृतग्रन्थानामनुवादः**—संस्कृतस्य प्रचारार्थं प्रसारार्थं चावश्यकमिदं यत् सर्वेषामपि प्रमुखानां संस्कृतग्रन्थानां न केवलं भारतीयासु भाषास्वेव प्रामाणिको-ऽनुवादः स्यादपि तु विश्वस्य सर्वास्वेव प्रधानासु भाषासु तेषामनुवादः स्यात्। कार्यं चैतत् सर्वकारप्रयत्नेन तत्सहयोगेन च सम्भवति। (१०) **सुलभग्रन्थमालाप्रका-शनम्**—सर्वेषामेव प्रमुखानामुपयोगिनां च संस्कृतग्रन्थानां सानुवादोऽल्पमूल्यकं संस्करणं प्रकाशितं स्यात्। महार्घाणां चाकरग्रन्थानां साराशरूपं संस्करणं सानुवादं प्रचारार्थं प्रका-शितं स्यात्। (११) **वैज्ञानिकशैलीसमाश्रयणम्**—वैज्ञानिकीं शैलीं समाश्रित्य संस्कृतं प्रारिप्सूनां बालानां संस्कृतप्रेमिणां च कृते सुबोधा हृद्याश्च ग्रन्थाः प्रणेयाः। (१२) **संस्कृतस्यानिवार्यशिक्षणम्**—आर्य (हिन्दी)-भाषया सहैव संस्कृतमपि सर्वेषु विद्यालयेष्वनिवार्यं स्यात्। संस्कृतमूलकमेव हिन्दीभाषाज्ञानं श्रेयोवहमिति समेषां सुधियां-मत्रैकमत्यम्। (१३) **पठनपाठनपद्धतिपरिष्कारः**—संस्कृतस्य प्रचारार्थमावश्यकमेतद् यत् संस्कृतस्य पठनपाठनप्रणाली साम्प्रतिकीं वैज्ञानिकीं पद्धतिमनुसरेत्। तत्र च स्यादा-वश्यकः परिष्कारः। (१४) **विलुप्तग्रन्थोद्धारः**—संस्कृतस्यानेके महार्घा ग्रन्था विलुप्ता विलुप्तप्रायाः जीर्णाः शीर्णा वा यत्र तत्रोपलभ्यन्ते। तेषामभ्युद्धार आवश्यकः। (१५) **सर्वकारसहयोगः**—सर्वमुपरिनिर्दिष्टमभिहितं सर्वकारसहयोगेनैव सम्भवति। सर्वकारस्य कर्तव्यमेतद् यत् स संस्कृतज्ञानाद्रियेत, संस्कृतवाङ्मयप्रसारे साहाय्यमाचरेत्, राजकीय-वृत्तिषु संस्कृतज्ञानमनिवार्यं कुर्यात्, संस्कृतशिक्षोद्धारे प्रयतेत च।

१५. कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा । (मेघ० उत्तर० ४९)

निखिल जगदिद परिवर्तनशालि । प्रतिक्षण प्रतिपल सर्वोऽपि भूतग्रामः स्वात्मनि परिवृत्तिमनुभवति । परवृत्तिधर्मत्वमेवास्य भुवनस्य विलोक विलोक विपश्चिद्भि. 'गच्छतीति जगत्' इति निर्वचनमाश्रित्य जगदिति नामधेय विहितम् । 'ससरति गच्छति चलति वेति ससार. ससृतिर्वा' इति व्युत्पत्तिनिमित्तक ससार ससृतिरिति च नामद्वय प्रवर्तित कोविदैः । जगत्, ससार', ससृतिरित्यादयः शब्दाः समुद्घोपयन्ति ससारस्य परिवर्तनशालित्वम् । नेह किञ्चिद् वस्तु शाश्वत स्थिरमपरिवर्तनशालि वा । यदा सर्वस्य लोकस्येदृश्यवस्था, तदा न सम्भवति मानवजीवनस्यापरिवृत्तित्वम्, तत्रापि च सुखस्य दु खस्य वा समावस्थया समवस्थानम् ।

जगति यथर्तवः परिवर्तन्ते, यथा सससिरुदेति विधुरस्तमेति, निशाकरश्चोदय याति प्रभाकरश्चास्तमुपगच्छति, यथा रात्रेरनन्तर दिन दिवसानन्तर च विभावरी, तथैव सुखानन्तर दु ख दु खानन्तर च सुखम्, सम्पदनन्तर विपद् विपदनन्तर च सम्पदिति । सर्वमेतत् परिवर्तनस्य क्रममात्रम् । एतदेव तथ्य समीक्ष्य सन्दिशति शाकुन्तले कविकुलगुरुः कालिदास' । 'यात्येकतोऽस्तशिखर पतिरोषधीनाम्, आविष्कृतोऽरुणपुर.सर एकतोऽर्कः । तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्या, लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु' ॥ (शाकु० ४-२) । उत्थान पतनम्, उत्कर्षोऽपकर्ष, जन्म मृत्युः, सम्पत्तिर्विपत्ति', सुख दु.खमिति च परिवृत्तेरवस्थान्तरमेव नान्यत् । यथा शैशव तदनु यौवन तदनु वार्धक तदनु देहावसानं तदनु जन्मान्तर तदनु पुन. शैशवम्, एवमेव जीवने सुखदु खे परिवर्तेते, परिवृत्तेरवश्यम्भावित्वादनिवार्यत्वाच्च ।

सम्भवति परिवर्तनेऽस्मिन् केषामप्यापत्तिरनिष्टापत्तिर्वा । पर निपुण विचार्यते तर्हि प्रतीयते परिवृत्ते सुतरामावश्यकतोपयोगिता च । भुवनेऽस्मिन् नाभविष्यत् परिवर्तन चेन्नाभविष्यत् प्रगतिरुन्नतिरभ्युदयश्च लोकानाम् । ऋतूना परिवृत्तिमन्तरेण नाभविष्यद् वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा वा । न चेदभविष्यत् सुवृष्टिर्नाभविष्यत् सुभिक्षम् । नाभविष्यच्चेद् दु.ख नानुभूतमभविष्यत् सुखम् । दु खस्य सत्तैव सुखमनुभावयति, सुखस्य सत्ता च दु खम् । सुखदु खस्य समवस्थानमावश्यकम् । यद्येको यावज्जीव सुख सम्पत्तिमेवानुभवेदन्यश्च दु.ख विपत्तिमेव वा, तर्हि न प्रसरिष्यति लोकस्थिति. । कर्मणामावश्यकतोपयोगिता चानुभूयते सर्वैरेव । कर्मविपाकोऽपि नियतोऽतः कर्मानुरूप कश्चित् स्वकृतसुकृतपरिपाकरूपेण सुखमधिगच्छति, तद्विपर्ययेण च दु.खम् । सुखदु ख परिवर्तमानमेतत् सुतरा शिक्षयति निखिल जगत् सुकृत्यस्य सत्परिणामित्व दुष्कृत्यस्य च दुष्परिणामित्वम् ।

परिवृत्तेरेतस्य महत्त्वमालोक्यैव महाकविभिर्विविधा. सूक्तयो विषयेऽस्मिन् वर्णिता । यथा च—(क) कस्यैकान्त सुखमुपनत दु खमेकान्ततो वा । नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण । (मेघ० २-४९) । (ख) अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्नै-

कान्तदु.खः पुरुष. पृथिव्याम् । (बुद्धचरितम् ११-४३) । (ग) कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना, चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्ति. । (स्वप्न० १-४) । (घ) भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति । (मृच्छ० १-१३) । (ङ) चक्रवत् परिवर्तन्ते दु खानि च सुखानि च । (हितो० १-१७३)

किं नाम सुख, किञ्च दु खमिति । सुखदु.खस्य बहूनि लक्षणानि वर्ण्यन्ते विविधै· शास्त्रकारै. । भगवान् मनुरत्र निर्दिशति यत् सर्वमात्माधीन सुखम्, आत्मायत्तत्व वा सुखत्वमिति, परायत्तत्व च दु खमिति । तदाह—'सर्वं परवश दुःख सर्वमात्मवश सुखम् । एतद् विद्यात् समासेन लक्षण सुखदु.खयो.' । केचन चान्ये सुखदुःखयोर्लक्षण निगदन्ति । सु सुष्ठु सुखकर वा खेभ्य इन्द्रियेभ्य इति सुखम्, ज्ञानेन्द्रियेभ्य सुखकर यत् तत्सुखमिति । एवमेव ज्ञानेन्द्रियेभ्यो दु·खकर यत् तद् दु खमिति । मन्मत्या तु लक्षणान्तरमपि शब्दयोरनयो सम्भवति । सुष्ठु खानि सुखानि, दुष्टानि खानि दु खानीति । इन्द्रियाणि चेत् संयतानि तर्हि सर्वमपि विषयजात सुखत्वमापद्यते । दुष्टानि चेदिन्द्रियाणि तर्हि सर्वोऽपि विषयग्रामो दु खत्वेनापतति । इत्थ सुखदुःखशब्दद्वयमेवेन्द्रियसंयमस्य महत्त्वमुपदिशति ।

सुखवद् दु.खस्यापि जीवनेऽनल्प महत्त्वम् । दुःखनिशीथिनी धृत्योत्तीर्यैव धीरा. श्रीकौमुदीमाकाङ्क्षन्ति । अननुभूय दु ख न सुख साधूपभुज्यते । अत. साधूच्यते–सुख हि दु.खान्यनुभूय शोभते (मृच्छ० १ १०), यदेवोपनत दु.खात् सुख तद्रसवत्तरम् (विक्रमो० ३-२१) । समीक्ष्यते चैतत्प्रत्यह यन्न सुख सुलभ दु खानुभूतिमन्तरा प्रत्यवायमन्तरेण च । दु·खमनुभूय प्रत्यूहान् निरस्य च श्रेय. सुलभम् । अत एवाभिधीयते—श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायै (किराता० ५ ४९), विघ्नवत्य प्रार्थितार्थसिद्धय. (शाकु० अक ३) ।

कर्मविपाकस्य बलीयस्त्वात् समापतति चेद् दु·ख तर्हि किं नु विधेय वराकेण विपद्ग्रस्तेन । दु खोदधौ निमग्नेन धैर्यमेवावलम्बनीयम् । धैर्यमाश्रित्यैव धीरा विपत्पारावारमुत्तरन्ति । पारावारे पोतभङ्गेऽपि सायात्रिको धृतिमवष्टभ्य तितीर्षत्येव । उक्त च—त्याज्य न धैर्यं विधुरेऽपि काले, धैर्यात् कदाचिद् गतिमाप्नुयात् स । याते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सायात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥ घोरे दु खेऽपि नर आत्मशक्तिमाश्रयते चेत्स दु.खप्रहाणिं कर्तुं प्रभवति । नहि किञ्चिदसाध्यमात्मशक्त्या । आत्मशक्तिर्हि सर्वोदयस्य मूलम् । सा दु खविभावरी स्वप्रखरांशुभि· सद्यः संहरति । अत उच्यते—उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन· ॥ धैर्यधना हि साधव. । ते सम्पदि न हृष्यन्ति, न च विपदि विषीदन्ति । अत. सुखदु·खे समे कृत्वा प्रवर्तेत । सम्पदि विपदि च महतामेकरूपतैव लक्ष्यते । यथा चोच्यते—उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च । सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥ अत. सम्पदि न हृष्येत्, न च विपदि विषीदेत् । विपदि धैर्यमाधाय चेतसि स्वीय कर्तव्यमतिवाहयेत् ।

१६. नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥ (शिशु० २-८६)

दैवस्योद्योगस्य च गुरुलाघवं बलाबलं च निश्चिन्वतां विपश्चितामस्ति गरीयसी विप्रतिपत्तिविषयेऽस्मिन् । केचन दिष्ट्या दैवस्य वा माहात्म्यमुद्घोषयन्ति, ते दैष्टिका इत्यभिधीयन्ते । अन्ये पौरुषस्य महत्त्वमाचक्षाणाः पुरुषार्थमेव सिद्धेः सोपानत्वेनाङ्गीकुर्वन्ति । ईदृशे महति विरोधे वर्तमाने केचन मनीषिणो द्वयोरेव समन्वयं श्रेयस्करमाचक्षते । विचारणीयं तावदेतद् यत्कतमा सरणिरिह साधीयसी । यामवलम्ब्य सकलो लोको भुवनेऽस्मिन् भव्यां भूतिं समासाद्य चिरसञ्चितपुण्यपरिपाकसम्प्राप्तस्य मानवजीवनस्यास्य चरितार्थतां सम्पादयन् ऐहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममधिगच्छति ।

विमृश्यते तावद् दिष्ट्या एव बलाबलत्वं प्राक् । का नाम दिष्टिः, कथं च प्रभवत्येषा जीवलोकस्योदयास्तमयस्योत्कर्षापकर्षस्य पातोत्पातस्य वा । यदि विचारदृशा निपुणं परीक्ष्यते तर्हि न भूयान् भेदोऽनयोः । प्राक्कृतस्य कर्मण एव नामान्तरं दिष्टिरिति दैवमिति भाग्यमिति वा । अतः साधूच्यते—'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद् दैवमिति कथ्यते' । दिष्टिरेव साधकत्वेन बाधकत्वेन वोपतिष्ठते निखिलेषु क्रियमाणेषु कर्मसु । अतः कर्मणां सिद्धिरसिद्धिर्वा दैवाधीनेति व्यवह्रियते । प्राक्कृतकर्मफलपरिपाको नियतोऽतो नियतिरिति च दैवस्य नामान्तरं भवति । न च नियतिः साम्प्रतिकैः कर्मभिरन्यथा भवितुमर्हतीति नियतेर्नियोगोऽभ्यूह्य इति गण्यते । अत्र दैष्टिका उदाहरन्ति—सूर्याचन्द्रमसौ तेजसा वरिष्ठौ नियत्यधीनत्वाद्देवास्तं समुपगच्छतः । विद्यां पौरुषं चाननुरुध्य लोको दैवानुरूपमेव फलमश्नुते । सुरासुरकृतसमुद्रमन्थने समेऽपि भागे प्राप्तव्ये हरिर्लक्ष्मीं लेभे, हरस्तु हालाहलमेव । उक्तं च—"दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् । समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥"

प्रतिकूलतामुपगते हि दैवे न मनागपि सिध्यति साध्यम् । अतएवाह माघः—"प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता । अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ।" तादृशं दैवस्य प्राबल्यं यज्जनस्य चेतश्चेतयते तदेव यद् दैवमभिलष्यति । अत आह श्रीहर्षः—"अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा । तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ।" विरुद्धे हि विधौ श्रमसहस्रमपि वितथं स्यात् । भाग्येऽनुकूले दोषा अपि गुणत्वमायान्ति । उक्तं च—"गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि । सानुकूले पुनस्तस्मिन् दोषोऽपि च गुणायते ।" दुःखानि सुखानि च भाग्यानुसारमेव सम्भवन्ति । उच्यते च—'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति' । दैवानुसारमेव मनुष्यस्य बुद्धिवृत्तिरपि सम्पद्यते । विधिश्चाघटितघटनापटुर्घटितस्य विघटने च दक्षः । 'अघटितघटितं घटयति, सुघटितघटितानि दुर्घटीकुरुते । विधिरेव तानि घटयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति ।' सिद्धिरसिद्धिश्च दिष्ट्यनुरूपमेव परिणमतः ।

अवितथमेतद्यद् दैवं फलति, सिद्धिश्च दैवाधीना। परन्त्ववगन्तव्यमेतद् यत् पूर्वकृतकर्मपरिपाक एव दैवमिति, नान्यत्। यदि सुनिश्चितमेतदवधारितं तर्हि भाग्यमनुकूलयितुं भवतितरामावश्यकता सुविचारितस्य कर्मणः कठिनस्य श्रमस्य च। अतएवानितथमाह श्रीकृष्णो गीतायाम्—'नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः।' कर्म च कर्मफलासक्तिं विहायैव कार्यम्। तदेव साफल्यं लम्भयति। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।' सत्फलं तपसा श्रमेण सुचरितेन च लभ्यम्। तदेव च परिणमति काले। 'भाग्यानि पूर्वतपसा किल सञ्चितानि, काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः।' भाग्याद् गुरुतरं कर्म, तदेव फलति, तदेव चोपास्यम्। 'नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति।'

जगति समेषामपि सत्त्वानां नैसर्गिकीयमभिवाञ्छा यत् स्याद् दुःखात्ययः सुखाधिगमश्च। का नु वरीयसी सृतिरिह स्वीकार्या साध्यमेतत् साधयितुम्। शान्तेन स्वान्तेन चिन्त्यते चेत्तर्हि पुरुषार्थमन्तरा न साधनान्तरं दृष्टिपथमुपयाति। धीरा वा, वीरा वा, मनीषिणो वा, वाग्वैभवसम्पन्ना वाग्मिनो वा, कविताकामिनीकान्ताः कविवरा वा, सर्वेऽपि पौरुषमाश्रित्यैवाभीष्टां सिद्धिमधिजग्मुः। अकर्मण्यताऽऽलस्यं पौरुषहीनत्वं दैष्टिकता वाऽत्र प्रत्यवायरूपेणावतिष्ठते। यद्यस्ति हार्दिकी सुखलिप्सा, अभीष्टमात्महितं, चिकीर्षितं परहितं, काङ्क्षितं कुलहितं, वाञ्छितं विश्वहितं, समीहितं समाजसुखं वा तर्हि आलस्यं नाम रिपुरपनेयश्चेतसोऽपहरणीयाऽकर्मण्यताऽपहस्तयितव्यं चापौरुषत्वम्। उद्यम उद्योगोऽध्यवसायो वा मानवस्यानुपमो बन्धुः। यमवष्टभ्य यदभिलषितं तदधिगम्यते। तथा चोच्यते—'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः। नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति'। योगवासिष्ठेऽप्यभिधीयते—'पौरुषाद् दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद् धीमतां क्रमः'। यावज्जीवं जीवः कर्मनिरतोऽध्यवसायपरश्च स्यात्, कर्मफलासक्तिं च परिहरेन्मनसेत्यादिशति वेदः। यथाऽनेनैवाभीप्सितमखिलं सिध्यति सताम्। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे' (यजु० ४०-२)। या काऽपि सिद्धिरभीष्टा, साऽविकला शक्यते लब्धुमुद्यमेनैवेति चेच्चेतसि ध्रियते तर्हि नालभ्यं किञ्चिदस्ति जगति। अतः साधूक्तम्—'उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः'। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः'। अध्यवसायिन एव साहाय्यमाचरति विभुरपि। यथा चोक्तम्—'उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः। षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्।'

पक्षद्वयस्य बलाबलत्वविवेचनेन सिध्यत्यदो यत् सुविचार्य कृतमवदातं कर्म साधयति साध्यमिह जगति। तदेव च संस्काररूपेणावशिष्टं दैवमिति भवति, प्रवर्तयति च भाविकर्मजातम्। अत उभयस्याश्रयणं न्याय्यम्।

१७. सहसा विदधीत न क्रियाम् (किराता० २-३०)

महाकवेर्भारवेर्महाकाव्ये किरातार्जुनीये सन्ति शतशः सूक्तिमुक्ताः । तत्रापि द्वित्राः सन्ति सूक्तयो याश्चकासति तरणिश्रियमिव । तास्वप्यन्यतमैषा सूक्तिः । उक्तं तेन महाकविना यन्न जनः कोऽपि सहसा किमपि विधेयं विदधीत, यतो ह्यविवेकः परमापदां पदमस्ति । ये च विमृश्यकारिणो भवन्ति त एव श्रियं श्रयन्ते । यथोक्तं तेन—"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् । वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ।"

को नाम विवेकः ? कश्चाविवेकः ? क उपयोगो विवेकस्य ? किमिह साध्यं विवेकेन ? यदि नोपादीयतेऽयं कथमिव विपदां निदानत्वेन परिणमते ? विवेचनमेव विवेक इति । सदसतोः पुण्यापुण्ययोः कर्तव्याकर्तव्ययोर्हेयोपादेययोश्च येन विविच्य विवेचनं क्रियते स विवेक इत्यभिधीयते । इतरश्चाविवेक इत्याख्यायते । विवेकस्य महत्युपयोगिता जीवनेऽस्मिन् । विवेक एव सदसतोः पापपुण्ययोः कर्माकर्मणोश्च फलाफलं गुरुलाघवं च चिन्तयति । स एव किं ग्राह्यं किं हेयं किञ्चोपेक्ष्यमिति सन्दिशति । विवेक एवेह जगति ज्ञानमिति, बुद्धिरिति, धीरिति च व्यवह्रियते । विवेकमन्तरेण न भूयान् भेदो मनुष्येषु पशुषु च । अस्ति मानवे विवेकशक्तिः । यया सोऽर्थमनर्थं च बहुधा विभाव्यार्थसाधकमुपादत्तेऽनर्थसाधकं चोज्झति । जीवने हि सर्वस्येष्टं सुखम् । सर्वो हि यतते सुखावाप्तये । नहि दुर्जनोऽपि खलोऽपि मूढोऽपि हीनेन्द्रियोऽपि दुःखमिष्टत्वेन गणयति । सोऽपि सुखमेव कामयते, यतते च तल्लाभाय । अङ्गीकृतायामीदृश्यामवस्थायां को नु मार्गो यः सुखसाधकत्वेन प्रवर्तेत । विचारचक्षुषा चिन्त्यते चेद् विवेकस्य महत्त्वं स्फुटं प्रतीयते । सर्वमपि साध्यं साध्यते विवेकेनैव । विवेकपूर्वा कृतिरेव लम्भयति श्रियम् । विवेक एव सुखस्य मूलम्, शान्तेर्निधानम्, धृत्या निदानम्, श्रिय आश्रयः, गुणानामागारम्, विभवस्य भूमिः, उन्नतेः साधनम्, सत्कर्मणामाकरः, विनयस्य कारणम्, शीलस्य सन्धायकश्च । विवेक उपादत्तश्चेद् न जीवनेऽवसादावसरः । अनुपादत्तश्चेदयं प्रतिपलं प्रतिपदं चोपतिष्ठन्ते विपदो दुःखानि प्रत्यूहाश्च ।

ये हि विपश्चितो विचारशीलाश्च ते प्रतिपदं सम्यगवधार्य वस्तुस्थितिं शान्तेन स्वान्तेन कर्तव्यस्याकर्तव्यस्य च गुरुलाघवं विमृश्य यद् हितसाधकं सुखकारकं च तदेवोपाददते । नहि भयाद् वा ह्रिया वा सहसा वा किञ्चित्तेऽनुतिष्ठन्ति । यत्कर्म सुविचार्य क्रियते तत् सत्फलमादधाति । अत उच्यते—सुचाक्यस्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् (हितोपदेश १-२७) । ये चाविचार्य कर्मणि प्रवर्तन्ते, तेषां प्रवृत्तिरज्ञानमूला । अज्ञानं हि सर्वासामापदामास्पदम् । अज्ञानावृतत्वात् तेषां कर्मणां दुःखावाप्तिरेव सुलभा । तादृशा जना दिङ्मूढा इव सुखं दुःखमिति मन्यते, दुःखं च सुखम्, पापं सुखसाधनमिति, पुण्यं च दुःखसाधनमिति । एवं ते व्यसनशतशरव्यतामुपगच्छन्ति, प्रत्यहमवनतिं चोपगच्छन्ति । अत उक्तं भर्तृहरिणा—'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः' (नीति० १०) ।

विपश्चितो हि विचार्य सर्वमपि क्रियाकलापं कर्मणि प्रवर्तन्ते । सुधियामवनिभृतां चैष परमो गुणो यद्विमृश्य ते कर्मसु प्रवृत्तिमादधते । भूभृतां मन्त्रशक्तिर्विचारमूलैव । किं

कार्यं कश्च तस्योपाय इति भृश विचिन्त्य ते कर्तव्य कर्म निश्चिन्वन्ति । यद्यविचार्यैव निश्चीयते किञ्चित् तर्हि तत्फल दु खावहमेव भविता । एव विद्वांसोऽपि यत् किञ्चिदपि स्यात् कर्तव्य तत्र परिणतिं प्रधानतोऽवधारयन्ति । नहि ते सहसा कर्तव्यमकर्तव्य वा विनिश्चित्य कर्मसु प्रवर्तन्ते । सहसा विहित विधेय दु ख लम्भयति, चेतसि च शल्यतुल्यमाघात विधत्ते । अत साधूक्त केनापि—'गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ, परिणतिरवधार्या यत्नत पण्डितेन । अतिरभसकृताना कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाक.' ।

एष एवाभिप्रायश्चरकसहितायामप्युपलभ्यते—'परीक्ष्यकारिणो हि कुशला भवन्ति' । 'नापरीक्षितमभिनिर्विशेत' 'सम्यक्प्रयोगनिमित्ता हि सर्वकर्मणा सिद्धिरिष्टा । व्यापच्चासम्यक्प्रयोगनिमित्ता' । भगवता चरकेनापि कर्तव्यस्य कर्मण. परीक्षणमनिवार्यत्वेन गण्यते । यदि सम्यग् विचार्य कर्तव्य निर्धार्यते तर्हि तस्य साफल्यमपि प्रागेवानुमातु पार्यते । अविचार्य कृते कर्मणि न केवलमसाफल्यमेव, विपद् शरीरक्लेशः साधनात्ययः प्रत्यवायावाप्तिश्च । महाभारतेऽपि व्यासेन सुविचार्य कर्मप्रवृत्तिरुपदिष्टा । विमृश्यकारी सुखमेधते, श्रियमश्नुते, प्रत्यूहानपहन्ति, विपद् विदारयति, साध्य साधयति । उक्त च महाभारते—'चिरकारक भद्र ते, भद्र ते चिरकारक' ।

अनालोच्य शुभाशुभ जनो यत् कर्मणि प्रवर्तते, तस्य मूलमज्ञानमेव । अज्ञानावृतचेतसो हि मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा. प्राज्ञमन्या. कर्तव्याकर्तव्यविवेचनमप्यात्मप्रज्ञापरिभवत्वेनाकलयन्ति, न शुश्रूषन्ते साधूनामुपदिष्टम, क्रियाविलम्बमन्तरायान्तरणमवगच्छन्ति, क्षिप्रकारित्व च श्रिय साधन गणयन्ति । एवविधयाऽऽत्मविडम्बनया विप्रलब्धास्तेऽतिरभसकारित्वाद् न केवल विपत्पारावार एव निमज्जन्ति, अपितु सर्वलोकस्योपहास्यतामवाप्य दु खदु खेन कालमतिवाहयन्ति । केचन हतबुद्धित्वादज्ञानतमःप्रसरेण पीड्यमाना यथैवोपदिश्यते परैस्तथैवाचर्यते तैः । न ते स्वविवेकोपयोगेन साध्वसाधु वा निर्णेतुमध्यवस्यन्ति । परिणतिस्तु तस्य विपदुपताप एव । अतो निगदत कालिदासेन—'सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते । मूढ. परप्रत्ययनेयबुद्धि. ।'

विवेकमूल: सुविचारश्चेदाश्रीयते आश्रयत्वेन, नह्यसाध्यमिह किञ्चिज्जगति । प्रत्यह समीक्ष्यते सर्वस्या ससृतौ देशैरनेकै. स्वराष्ट्रोद्धाराय प्रवर्त्यमाना विविधा योजना । भारतेऽपि पञ्चवर्षीया योजनाः प्रयुक्तचराः प्रयुज्यमाना प्रयोक्ष्यमाणाश्चावेक्ष्यन्ते । विवेकमूलत्वादेवैतासा साफल्यमिष्यते सम्भाव्यते च । विपश्चितोऽपि विवेकजीवित्वात् जीवनस्य कार्यक्रम विमृश्यावधारयन्ति । अध्यवसायावसिक्तेन मनसा मुहुर्मुहुर्यतमानास्ते स्वाभीप्सितमाश्रयन्ते ।

भारतीयैतिह्यमीक्ष्यते चेत्तत्राप्यविचार्यकारित्वादेव विविधा विपदो वीक्ष्यन्ते । दाशरथी राम. सुवर्णमृग प्रेक्ष्याविचार्यकारित्वादेव तमन्वधावत् । तत्कृत्य च तस्य जानकीहरणत्वेन परिणेमे । गुरुलाघवमविमृश्यैव रावणोऽपि सीताहरणे प्रवृत्तो निधनमवापस्त्र सबान्धव । अविवेकमाश्रित्यैव दुर्योधनोऽपि सूच्यग्रमात्रभूप्रदानेऽपि कार्पण्य भेजे । तद्विपाकत्वेन महाभारतसमरे सपरिवार' सपरिजन. स्वेष्टजनसहित. सकलामवनि विहाय दिवमशिश्रियत् । अतो विचार्यैव कृतिरनुष्ठेया, अतिरभसत्व च विपन्मूलकत्वेन परिहरणीयम् ।

१८. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः ।

(किराता० २-२०)

सूक्तिमुक्तेयमुपलभ्यते महाकवेर्भारवे कृतौ किरातार्जुनीये। कविरिहोपदिशति तेजस्वितायाः मानितायाश्च महत्त्वम्। प्रज्वलितमग्निमाक्रमितु नोत्सहते धृष्टोऽपि कश्चित्, पर भस्मना पुञ्ज लघुरपि जनः प्रभवत्याक्रमितुम्। कोऽत्र भेद. ? प्रदीप्तोऽग्निर्दाहगुणसमवेतस्तेजसा समन्वितश्च प्रभवति दग्धु निखिल जगदिदम्। तत्तेजस्तनोति साध्वसमतुल स्वान्तेऽपि सन्त्रासकस्य। न धृष्णोति धृष्टोऽपि धार्ष्ट्यमाधातु मनसि कृशानुधर्षणस्य। भस्मानि तु निस्तेजांसि। नानुभवन्ति तानि मानावमानम्। अतस्तेषां धर्षण शक्यम्। एवमेव मानिनोऽपि सहर्षमसून्मुञ्चन्ति, न तु स्वतेजस्त्यजन्ति। अतो निगद्यते भारविणा—'ज्वलित न हिरण्यरेतस चयमास्कन्दति भस्मना जन.। अभिभूतिभयादसूनत. सुखमुज्झन्ति न धाम मानिन' (किराता० २-२०)।

किं नाम जीवनम्? किं नाम पुरुषत्वम्? के गुणास्ते ये जीवन साफल्य लम्भयन्ति, पुरुषे पौरुषञ्चादधति? तदेव जीवन येन स्वास्तु यशश्चीयते, सुखमुपभुज्यते, शान्तिः स्थिरीक्रियते। तदेव पुरुषत्व यत्र तेज स्वाभिमानिता पौरुष च प्राधान्येनाश्रय लभते। तेजस्विता मानिता गुणार्जन श्रीसङ्ग्रहश्चेति गुणा. सर्वेषामेव जीवनानि सफलयन्ति, पुरुषे पौरुषमाविष्कुर्वन्ति च। भारविर्लक्षयति पुरुषत्व यन्मानित्वमेव प्रधान पुरुषस्य लक्षणम्, मानविहीनो न नर.। 'पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते' (कि० ११ ६१)। विजहाति चेन्मान स तृणवद्गण्यो निरर्थक च तस्य जन्म। 'जन्मिना मानहीनस्य तृणस्य च समा गति.' (कि० ११-५९)।

मानश्चेदभीप्सित., कस्तदवाप्त्युपायः? भारविस्तदवाप्तिसाधनमभिदधाति तेज इति। 'स्थिता तेजसि मानिता' (कि० १५-२१)। तेजस्विताागुणमेवावष्टभ्य मानिता प्रवर्तते प्रवर्धते च। यत्र तेजस्विता तत्रैव यश श्रीर्गुणगणाश्च। तेजस्विनो हि विराजन्ते तरणिवदाभया। ते दुष्करमपि सुकर दुर्गममपि सुगम दुर्लभमपि सुलभ दु सहमपि सुसह सम्पादयन्ति। न तेषा वयो विचार्यते। बाल एव राम. खरदूषणवध विधातुमशकत्। अत आह कालिदास—'तेजसा हि न वय समीक्ष्यते' (रघु० ११-१)। यश्च तेजसा परिहीयते परिक्षीयते तत्र मानिता। मानपरिक्षये च सर्वे गुणा अपि तत्र क्षयमेवाश्रयन्ते। निर्वाणे तु दीपके ज्योतिरपि तदाश्रयमुज्झति। तदाह—'तेजोविहीन विजहाति दर्पः, शान्तार्चिष दीपमिव प्रकाश.' (कि० १७-१६)। निस्तेजा. सर्वत्रैवावगण्यते परिभूयते धिक्क्रियते धृष्यते च। तस्य निस्तेजस्त्वमजस्रमवमानमावहति। अतो निगदित भासेन—'मृदु. परिभूयते' (प्रतिमा० १-१८)। उक्त च मृच्छकटिके शूद्रकेण—'निस्तेजा परिभूयते' (१-१४)। तेजसा सममेव समेधते स्वावलम्बनस्य साधीयसी साधना। तेजस्विनो न पराश्रयमपेक्षन्ते, न च परसाहाय्यमेव समीहन्ते। ते स्वतेजसा जगद् व्याप्नुवन्ति। तदुच्यते—'लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यत.' (किराता० २–१८)।

महाकविना माघेनापि तेजस्वितायाः मानितायाश्च महत्त्व बहुधा वर्णितम्। मानिनोऽवमन्तॄन् समूलमुन्मूल्यैव शान्तिं श्रयन्ते, यथा सप्तसप्ति. समस्त नैश तिमिरमपा-

कृत्यं वोटेति । 'समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः । प्रध्वसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः ।' (शिशु० २-३३) । परावमानं यः सहते, न स पुंशब्दभाक् । तादृशस्य नराधमस्याजनिरेव श्रेयसी । स केवलं मातृक्लेशकारी । 'मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति ।' (शि० २-४५) । पादाहतं रजोऽप्युत्थाय मूर्धानमारोहति । योऽपमानेऽपि गतव्यथः स रजसोऽपि हीनः । 'पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति । स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः ।' (शि० २-४६) । तिग्मता प्रतापाय म्रदिमा परिभवाय चेति स्फुटं समीक्ष्यते । राहुर्दुतं ग्रसते चन्द्रं, भानुं च चिरेण । 'तुल्येऽपराधे तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्' (शि० २-४९) ।

महाकविना कालिदासेनापि तेजस्वितायाः महिमोररीक्रियतेऽभिधीयते च । ऋषयः शान्तिसमन्विता अपि तेजोमयाः । सति चाभिभवे सूर्यकान्तमणिवद् उद्गिरन्ति तेजः । न ते सहन्तेऽभिभवं जातु । 'शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः० ।' (शाकु० २-७) । सत्यभिभवे प्रज्वलति जातवेदाः, सति च परिभवे तेजस्विनोऽपि स्वमुग्ररूपं धारयन्ति । 'ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते । प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ।' (शा० ६-३१) ।

सन्तः सदैव श्रेयस्करमाचक्षते यश एव । विनश्वरे जगति यश एवैकं स्थास्नु । यशसे एव जीवन्ति म्रियन्ते च साधवः । यश एव परमं धनं मन्वते मानिनः । उच्यते च—'यशोधनानां हि यशो गरीयः' 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' । श्रीरनुयाति तादृशान् मानिनो यशस्विनश्च । मानिनो गत्वरैरसुभिः स्थायि यशश्चिचीषन्ति । तथोक्तं भारविणा—'अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः । अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् ।' (कि० २-१९) । अवधेयमिह चैतत् । ये हि मानिनो मानमेव प्रधानतो गणयन्ति, न ते जात्वभिलषन्ति श्रियम् । श्रियमवमत्य मानमाद्रियन्ते । मानस्य सम्पदश्चैकत्रावस्थानं सुदुर्लभम् । तदुच्यते भारविणा—'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः' (कि० १४-१३) ।

तेजोऽवाप्तये सम्पद्यतेतरामावश्यकता गुणार्जनस्य । नान्तरेण गुणसंग्रहं मानिता तेजस्विता वा सम्भवति । गुणार्जनं मूलं मानितायास्तेजस्वितायाश्च । गुणैरेवावाप्यते यशो महिमा च । गुणैरेव गौरवावाप्तिरादरास्पदत्वं च । उक्तं च भारविणा—'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः' (कि० १२-१०) । गुणार्जनस्य महत्त्वमन्यत्रापि श्रूयते । 'गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्' । भवभूतिरपि गुणानामेव पूज्यत्वमाचष्टे, न तु वय आदीनाम् । 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः' (उत्तर० ४-११) । गुणैरेव स्थायिनी कीर्तिः सुलभा, शरीरं तु गत्वरम् । यशःसिद्ध्यै एव सिध्यन्ति साधूनां सच्चरितानि । तदुच्यते—'शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम् । शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः' । (हितोपदेश १-४९) ।

तेजस्विन एव नामाभिनन्दन्ति रिपवोऽपि । स एव सत्यं पुंशब्दाभिधेयः । 'नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान्' (किरात० ११-७३) । क्षणमपि तेजःसहितं जीवितं श्रेयो न च चिरं सावमानम् । तेजस्वितैव तत्त्वं जीवितस्य । अतः साधूच्यते—'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्' ।

९. आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्। (वेणी० ५-२३)

का नामाशा ? कथं चाचरतीयं विप्रियं सुप्रियं वा सर्वस्य लोकस्य ? अस्ति किमावश्यकता जीवने आशाया उपादानस्य परिहारस्य वा ? उपादत्ता चेत् किमिति किंचित् साधयति साध्यमिह जगति ? निरस्ता चेत् किं सुफला विफला कुफला वा भवति ? आशाया नामग्राहेण समकालमेव समुपतिष्ठन्ते बहवोऽनुयोगाः। ते क्रमशोऽत्र विविच्यन्ते। तेषामौचित्यमनौचित्यं वाऽवधारयिष्यते सयुक्तिकम्। प्राक् तावद् विचार्यते—का नामाशा ? आ समन्ताद् अश्नुते व्याप्नोति मानवानां चेतांसीत्याशा। आङ्पूर्वकादश्धातोरच्प्रत्ययेनैतद् रूपं निष्पद्यते।

वेदेषूपलभ्यते सर्वत्राशावादस्य प्रवाहः। श्रुतयो मुहुर्मुहुरादिशन्ति मानवमाशामवलम्ब्य समुन्नत्यै समृद्ध्यै प्रगत्यै च। उच्यते च—(क) वयं स्याम पतयो रयीणाम् (यजु० १०-२०), (ख) अग्ने नय सुपथा राये० (यजु० ४०-१६), (ग) कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे (ऋ० १-३६-१४)। (घ) अदीनाः स्याम शरदः शतम् (यजु० ३६-२४)। (ङ) भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वपनम् (यजु० ३०-१७)। (च) उच्छ्रयस्व महते सौभगाय (अथर्व० ३-१२-२)। (छ) मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमाम्० (यजु० ३२-१६)। (ज) मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः (ऋ० १०-१२८-१)। आशैव जीवने धृतिं स्फूर्तिं शक्तिं चादधाति। तामाश्रित्यैव सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा।

आशा नामैषा मानवजीवनस्याऽस्त्याधारशिला। मानवजीवने यः संचारः प्रगतिरुद्गतिरुन्नतिर्वाऽवलोक्यते तस्य मूलत्वेनाशायाः संचार एव जीवनेऽवगन्तव्यः। यदि नाम न स्यादाशा जीवने तत्प्रेरकत्वेन, न स्याज्जीवनं प्रगतिशीलमुन्नतिपथमारूढमभ्युन्नतं च। आशा नाम जीवनेऽनुपमा स्फूर्तिप्रदायिनी काचिदपूर्वा शक्तिः। सैव मुमूर्षावपि जीवनाशां संचारयति। सैव वीरे वीराभिमानित्वं शूरे शौर्यं विदुषि वैदुष्यं धीरे धैर्यं साधौ साधुत्वं च प्रसारयति। सैव दीने हीने खिन्ने विषण्णे विपन्नेऽपि च धैर्यमादधाति, दुःसहदुःखसहनशक्तिं चाविष्करोति चेतसि। नैराश्यस्य घोरायां तमिस्रायामपि सैषाऽऽविर्भावयति जीवनशक्तिप्रदं जाज्वल्यमानं ज्योतिः। न ज्योतिरेतच्चलं चपलेव क्षणभङ्गुरम्। जागर्त्यदोऽहर्निशं शान्तेऽपि स्वान्ते साधकस्य। ज्योतिरेतदेव प्रेरयति मुमुक्षुं मोक्षाधिगमाय, साधकं साधनासिद्ध्यै, वाग्मिनं वाग्वैशारद्याय, गुणिनं गुणग्रहणाय, विपश्चितं विद्यावैभवाय, कविं काव्यकौशलाय, शूरं शौर्याय, धीरं धैर्याय च। अजस्रमेतदाचरति सुप्रियं सर्वलोकस्य।

आशा नामेयं नितरामावश्यकी जीवनेऽस्मिन्। उपादेया चेयमुन्नतिमभिविधित्सुभिः। अस्ति चेच्चेतसि धैर्यस्याऽऽधित्सा तर्हि नूनमियमाधेया। विपन्ने विषण्णे च मानसे धैर्यमादधात्याशैव। नहि विपच्छाश्वती, तदत्ययो ध्रुवः, निशावसानं नियतम्, निशात्यये उषस उद्गमोऽनिवार्यः, एवं विपदां क्षयोऽपि ध्रुवः, क्रमशः सम्पदां समुपस्थितिश्च सुनिश्चितेति विचारं विचारं धीर्धैर्यं धारयति।

कृत्यैवोदेति । 'समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिन. । प्रध्वसितान्धतमसस्तत्रोदाहरण रवि ।' (शिशु० २ ३३) । परावमान य. सहते, न स पुशब्दभाक् । तादृशस्य नराधमस्याजनिरेव श्रेयसी । स केवल मातृक्लेशकारी । 'मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति ।' (शि० २-४५) । पादाहत रजोऽप्युत्थाय मूर्धानमारोहति । योऽपमानेऽपि गतव्यथ स रजसोऽपि हीन. । 'पादाहत यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति । स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वर रज. ।' (शि० २-४६) । तिग्मता प्रतापाय प्रदिमा परिभवाय चेति स्फुट समीक्ष्यते । राहुर्द्रुत ग्रसते चन्द्र, भानु च चिरेण । 'तुल्येऽपराधे तन्म्रदिम्न. स्फुट फलम्' (शि० २-४९) ।

महाकविना कालिदासेनापि तेजस्वितायाः महिमोररीक्रियतेऽभिधीयते च । ऋषय शान्तिसमन्विता अपि तेजोमया' । सति चाभिभवे सूर्यकान्तमणिवद् उद्गिरन्ति तेज. । न ते सहन्तेऽभिभव जातु । 'शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढ हि दाहात्मकमस्ति तेजः० ।' (शाकु० २-७) । सत्यभिभवे प्रज्वलति जातवेदा', सति च परिभवे तेजस्विनोऽपि स्वमुग्र रूप धारयन्ति । 'ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृत. पन्नगः. फणा कुरुते । प्रायः स्व महिमान क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ।' (शा० ६-३१) ।

सन्त' सदैव श्रेयस्करमाचक्षते यश एव । विनश्वरे जगति यश एवैक स्थास्नु । यशसे एव जीवन्ति म्रियन्ते च साधवः । यश एव परम धन मन्यते मानिनः । उच्यते च—'यशोधनाना हि यशो गरीय' 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' । श्रीरनुयाति तादृशान् मानिनो यशस्विनश्च । मानिनो गत्वरैरसुभि. स्थायि यशश्चिचीषन्ति । तथोक्त भारविणा—'अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभि' स्थास्नु यशश्चिचीषत. । अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मी फलमानुषङ्गिकम् ।' (कि० २-१९) । अवधेयमिह चैतत् । ये हि मानिनो मानमेव प्रधानतो गणयन्ति, न ते जात्वभिलषन्ति श्रियम् । श्रियमवमत्य मानमाद्रियन्ते । मानस्य सम्पदश्चैकत्रावस्थान सुदुर्लभम् । तदुच्यते भारविणा—'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः' (कि० १४-१३) ।

तेजोऽवाप्तये सम्पद्यतेतरामावश्यकता गुणार्जनस्य । नान्तरेण गुणसग्रह मानिता तेजस्विता वा सम्भवति । गुणार्जन मूल मानितायास्तेजस्वितायाश्च । गुणैरेवावाप्यते यशो महिमा च । गुणैरेव गौरवावाप्तिरादरास्पदत्व च । उक्त च भारविणा—'गुरुता नयन्ति हि गुणा न सहति' (कि० १२-१०) । गुणार्जनस्य महत्त्वमन्यत्रापि श्रूयते । 'गुणेषु क्रियता यत्न. किमाटोपै. प्रयोजनम्' । भवभूतिरपि गुणानामेव पूज्यत्वमाचष्टे, न तु वय आदीनाम् । 'गुणा. पूजास्थान गुणिषु न च लिङ्ग न च वय' (उत्तर० ४-११) । गुणैरेव स्थायिनी कीर्ति' सुलभा, शरीर तु गत्वरम् । यश.सिद्धये एव सिध्यन्ति साधूना सच्चरितानि । तदुच्यते—'शरीरस्य गुणाना च दूरमत्यन्तमन्तरम् । शरीर क्षणविध्वसि कल्पान्तस्थायिनो गुणा.' । (हितोपदेश. १-४९) ।

तेजस्विन एव नामाभिनन्दन्ति रिपवोऽपि । स एव सत्य पुशब्दाभिधेय. । 'नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान्' (किरात० ११-७३) । क्षणमपि तेज सहित जीवित श्रेयो न च चिर सावमानम् । तेजस्वितैव तस्य जीवितस्य । अत. साधूच्यते—'मुहूर्त ज्वलित श्रेयो न च धूमायित ' ।

१९.आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् । (वेणी०५-२३)

का नामाशा ? कथं चाचरतीयं विप्रियं सुप्रियं वा सर्वस्य लोकस्य ? अस्ति किमावश्यकता जीवने आशाया उपादानस्य परिहारस्य वा ? उपादत्ता चेत् किमिति किंचित् साधयति साध्यमिह जगति ? निरस्ता चेत् किं सुफला विफला कुफला वा भवति ? आशाया नामग्रहेण समकालमेव समुपतिष्ठन्ते बहवोऽनुयोगाः। ते क्रमशोऽत्र विविच्यन्ते। तेषामौचित्यमनौचित्यं वाऽवधारयिष्यते सयुक्तिकम्। प्राक् तावद् विचार्यते—का नामाशा ? आ समन्ताद् अश्नुते व्याप्नोति मानवानां चेतांसीत्याशा। आङ्पूर्वकादश्धातोरच्प्रत्ययेनैतद् रूपं निष्पद्यते।

वेदेषूपलभ्यते सर्वत्राशावादस्य प्रवाहः। श्रुतयो मुहुर्मुहुरादिशन्ति मानवमाशामवलम्ब्य समुन्नत्यै समृद्ध्यै प्रगत्यै च। उच्यते च—(क) वयं स्याम पतयो रयीणाम् (यजु० १०-२०), (ख) अग्ने नय सुपथा राये० (यजु० ४०-१६), (ग) कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे (ऋ० १-३६-१४)। (घ) अदीनाः स्याम शरदः शतम् (यजु० ३६-२४)। (ङ) भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वपनम् (यजु० ३०-१७)। (च) उच्छ्रयस्व महते सौभगाय (अथर्व० ३-१२-२)। (छ) मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमाम्० (यजु० ३२-१६)। (ज) मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः (ऋ० १०-१२८-१)। आशैव जीवने धृतिं स्फूर्तिं शक्तिं चादधाति। तामाश्रित्यैव सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा।

आशा नामैषा मानवजीवनस्यास्त्याधारशिला। मानवजीवने यः संचारः प्रगतिरुद्गतिरुन्नतिर्वाऽवलोक्यते तस्य मूलत्वेनाशायाः संचार एव जीवनेऽवगन्तव्यः। यदि नाम न स्यादाशा जीवने तत्प्रेरकत्वेन, न स्याज्जीवनं प्रगतिशीलमुन्नतिपथमारूढमभ्युन्नतं च। आशा नाम जीवनेऽनुपमा स्फूर्तिप्रदायिनी काचिदपूर्वा शक्तिः। सैव मुमूर्षावपि जीवनाशां संचारयति। सैव वीरे वीराभिमानित्वं शूरे शौर्यं विदुषि वैदुष्यं धीरे धैर्यं साधौ साधुत्वं च प्रसारयति। सैव दीने हीने खिन्ने विषण्णे विपन्नेऽपि च धैर्यमादधाति, दुःसहदुःखसहनशक्तिं चाविष्करोति चेतसि। नैराश्यस्य घोरायां तमिस्रायामपि सैषाऽऽविर्भावयति जीवनशक्तिप्रदं जाज्वल्यमानं ज्योतिः। न ज्योतिरेतच्चलं चपलेव क्षणभङ्गुरम्। जागर्त्यदोऽहर्निशं शान्तेऽपि स्वान्ते साधकस्य। ज्योतिरेतदेव प्रेरयति मुमुक्षुं मोक्षाधिगमाय, साधकं साधनासिद्ध्यै, वाग्मिनं वाग्वैशारद्याय, गुणिनं गुणग्रहणाय, विपश्चितं विद्यावैभवाय, कविं काव्यकौशलाय, शूरं शौर्याय, धीरं धैर्याय च। अजस्रमेतदाचरति सुप्रियं सर्वलोकस्य।

आशा नामेयं नितरामावश्यकी जीवनेऽस्मिन्। उपादेया चेयमुन्नतिमभिविधित्सुभिः। अस्ति चेच्चेतसि धैर्यस्याऽऽधित्सा तर्हि नूनमियमाधेया। विपन्ने विषण्णे च मानसे धैर्यमादधात्याशैव। नहि विपच्छाश्वती, तदत्ययो ध्रुवः, निशावसानं नियतम्, निशात्यये उषस उद्गमोऽनिवार्यः, एवं विपदां क्षयोऽपि ध्रुवः, क्रमशः सम्पदां समुपस्थितिश्च सुनिश्चितेति विचारं विचारं धीर्धैर्यं धारयति।

कृत्यबोद्धेति । 'समूल्घातमघ्नन्त पराञ्चोर्यान्ति मानिन. । प्रध्वसितान्धतमसस्तत्रोदाहरण रवि ।' (शिशु० २-३३) । परावमान य सहते, न स पुशब्दभाक् । तादृशस्य नराधमस्याजनिरेव श्रेयसी । स केवल मातृक्लेशकारी । 'मा जीवन् य परावज्ञादु:खदग्धोऽपि जीवति ।' (शि० २-४५) । पादाहत रजोऽप्युत्थाय मूर्धानमारोहति । योऽपमानेऽपि गतव्यथ. स रजसोऽपि हीन. । 'पादाहत यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति । स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वर रज ।' (शि० २-४६) । तिग्मता प्रतापाय म्रदिमा परिभवाय चेति स्फुट समीक्ष्यते । राहुर्ग्रसते चन्द्र, भानु च चिरेण । 'तुल्येऽपराधे तन्म्रदिम्नः स्फुट फलम्' (शि० २-४९) ।

महाकविना कालिदासेनापि तेजस्वितायाा महिमोररीक्रियतेऽभिधीयते च । ऋषय. शान्तिसमन्विता अपि तेजोमया· । सति चाभिभवे सूर्यकान्तमणिवद् उद्गिरन्ति तेज. । न ते सहन्तेऽभिभव जातु । 'शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढ हि दाहात्मकमस्ति तेजः०।' (शाकु० २-७) । सत्यभिभवे प्रज्वलति जातवेदा., सति च परिभवे तेजस्विनोऽपि स्वमुग्र रूप धारयन्ति । 'ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृत. पन्नग. फणा कुरुते । प्रायः स्व महिमान क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ।' (शा० ६-३१) ।

सन्त· सदैव श्रेयस्करमाचक्षते यश एव । विनश्वरे जगति यश एवैक स्थास्नु । यशसे एव जीवन्ति म्रियन्ते च साधव. । यश एव परम धन मन्यते मानिनः । उच्यते च—'यशोधनाना हि यशो गरीय' 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' । श्रीरनुयाति तादृशान् मानिनो यशस्विनश्च । मानिनो गत्वरैरसुभि स्थायि यशश्चिचीषन्ति । तथोक्त भारविणा—'अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभि· स्थास्नु यशश्चिचीषतः । अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् ।' (कि० २-१९) । अवधेयमिह चैतत् । ये हि मानिनो मानमेव प्रधानतो गणयन्ति, न ते जात्वभिलषन्ति श्रियम् । श्रियमवमत्य मानमाद्रियन्ते । मानस्य सम्पदश्चैकत्रावस्थान सुदुर्लभम् । तदुच्यते भारविणा—'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रिय·' (कि० १४-१३) ।

तेजोऽवाप्तये सम्पद्यतेतरामावश्यकता गुणार्जनस्य । नान्तरेण गुणसग्रह मानिता तेजस्विता वा सम्भवति । गुणार्जन मूल मानितायास्तेजस्वितायाश्च । गुणैरेवावाप्यते यशो महिमा च । गुणैरेव गौरवावाप्तिरादरास्पदत्व च । उक्त च भारविणा—'गुरुता नयन्ति हि गुणा न सहति.' (कि० १२-१०) । गुणार्जनस्य महत्त्वमन्यत्रापि श्रूयते । 'गुणेषु क्रियता यत्न किमाटोपै· प्रयोजनम्' । भवभूतिरपि गुणानामेव पूज्यत्वमाचष्टे, न तु वय आदीनाम् । 'गुणा. पूजास्थान गुणिषु न च लिङ्ग न च वय.' (उत्तर० ४ ११) । गुणैरेव स्थायिनी कीर्ति· सुलभा, शरीर तु गत्वरम् । यशःसिद्धयै एव सिध्यन्ति साधूना सच्चरितानि । तदुच्यते—'शरीरस्य गुणाना च दूरमत्यन्तमन्तरम् । शरीर क्षणविध्वसि कल्पान्तस्थायिनो गुणा.' । (हितोपदेश. १-४९) ।

तेजस्विन एव नामाभिनन्दन्ति रिपवोऽपि । स एव सत्य पुशब्दाभिधेय. । 'नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान्' (किरात० ११-७३) । क्षणमपि तेज.सहित जीवित श्रेयो न च चिर सावमानम् । तेजस्वितैव तत्त्व जीवितस्य । अत साधूच्यते—'मुहूर्तं ज्वलित श्रेयो न च धूमायित चिरम्' ।

२०. स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च ।

शिक्षा नाम जीवने शुभाशुभावबोधनी पुण्यापुण्यविवेचनी हिताहितनिदर्शनी कृत्याकृत्यनिर्देशनी समुन्नतिसाधिकाऽवनतिनाशनी सद्भावाविर्भावयित्री दुर्भावतिरोधात्री आत्मसंस्कृतिहेतुर्मनस प्रसादयित्री, धियः परिष्कर्त्री, संयमस्य साधयित्री, दमस्य दात्री, धैर्यस्य धात्री, शीलस्य शीलयित्री, सदाचारस्य सञ्चारयित्री, पुण्यप्रवृत्ते. प्रेरयित्री, दुष्प्रवृत्ते-र्दमयित्री, समग्रसुखनिधाना, शान्ते सरणि., पौरुषस्य पावनी काचिदपूर्वा शक्तिरिह निखिलेऽपि भुवने । समाश्रित्यैवैता सुधियो विश्वहित देशहित समाजहित जातिहित च चिकीर्षन्ति, लोकस्य दु खदावाग्नि सञ्जिहीर्षन्ति, दीनानुपचिकीर्षन्ति, सद्भावानाधित्सन्ति, दुर्भावान् जिहासन्ति, सत्कर्म विधित्सन्ति, दुष्कर्म जिहीर्षन्ति, आत्मान मुमुक्षन्ते च । यथेय नराणा हितसाधयित्री सुखसाधनी च, तथैव स्त्रीणामपि कृतेऽनिवार्या सुखशान्ति-साधिका समुन्नतिमूला च । यथा च नान्तरेण शिक्षा पुरुषैरभ्युदयावाप्ति. सुलभा सुकरा च, तथैव स्त्रीणा कृतेऽपि समधिगन्तव्यम् । नरश्च नारी च द्वावेवैतौ सद्गृहस्थसुरथस्य चक्रद्वयम् । यथा चक्रेणैकेन न रथस्य गतिर्भवित्री, एव सर्वार्थसाधिनीं स्त्रियमन्तरेण न गृहस्थरथस्य प्रगति. सुकरा । सति विदुषि नरे सहधर्मचारिणी चेत् सच्छिक्षापरिहीणा, न दाम्पत्य सुखावहम् । द्वयोरेव गुणैर्धर्मेण ज्ञानेन विद्यया शीलेन सौजन्येन च गार्हस्थ्य सुखमावहतीत्यवगन्तव्यम् । यथा नरेण ज्ञानमन्तरा समुन्नतिर्दुर्लभा, तथैव स्त्रियाऽपि । एतर्हि पुरुषशिक्षावत् स्त्रीशिक्षाप्यनिवार्याऽऽवश्यकी च ।

यदि विचारदृशा विमृश्यते परीक्ष्यते चेद् भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते स्त्रीशिक्षाया । स्त्रिय एवैता मातृशक्ते. प्रतीकभूता । निसर्गादेवैतासु एतत्युत्तरदायित्व शिशोर्भरणस्य पोषणस्य च, गृहस्य सचालनस्य सस्थापनस्य च, गृहस्थजीवनस्य सुखस्य शान्तेश्च, परिवारप्रपुष्टे· कुटुम्बभरणस्य च, श्वशुरश्वश्वो· शुश्रूषाया· परिचर्यायाश्च, शिशो शैशवे शिक्षणस्य प्रशिक्षणस्य च, शिशौ सत्सस्काराधानस्य सच्छीलनिधानस्य च, भर्तु· सह-योगस्य सद्भावोन्नयनस्य च, अभ्यागतसपर्याया लोकहितसम्पादनस्य च । अनासाद्य वैदुष्य न सभाव्यते स्त्रीभि स्वीयोत्तरदायित्वपरिपालनम् । वैदुष्यलाभाय च न केवल विविधग्रन्थपरिशीलनमेव पर्याप्तम् , अपितु व्यावहारिकीणा विविधाना विद्याना विज्ञानाना च परिज्ञानमपि तेपा कृतेऽनिवार्यम् । विविधकलाकलापकौशलमवाप्यैव पार्यते दाम्पत्य-जीवन मधुर सुखावहमानन्दरसावसिक्त च सम्पादयितुम् । विशदीभवत्येतस्माद् यन्मानव-शिक्षणवन्नारीशिक्षाऽपि नितरामावश्यकी । ज्ञानविज्ञानकौशलमधिगच्छति चेद् द्वयपि नरनार्योस्तर्हि न केवल तेषामेव जीवन सुखशान्तिसमन्वित भवितांऽपि तु समाजहित राष्ट्रहित विश्वहित च सभाव्यते तैः सम्पादयितुम् ।

उपादत्ता चेदियं साधयत्यसाध्यमपि साध्यं साधूनाम् । परहितनिरता हि साधवः पीड्यन्ते पापिष्ठैः पुरुषैः । अज्ञानसंभारसंक्षीणसंज्ञाका ह्यसाधवो न चिन्तयन्ति चारुचेतसां चरितानि । अपगते चाज्ञानमले त एव साधूनां सच्चरितानि चिन्तयन्ति प्रशंसन्ति च तेषां परहितनिरतत्वम् । धृत्या आश्रयणेनैव साधवोऽसाधून् विजयन्ते । प्रोषिते हि भर्तरि वियोगदुःखविधुरा रामा न लभन्ते जातु शान्तिम् । आशैव त्रायते तासां जीवनम् । सैव साहयति गुर्वपि विरहदुःखम् । अत आह कालिदासः—गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (शा० ४-१६) । अतिमृदुलं हि मानसं भवति मनस्विनीनाम् । आशाबन्धमन्तरेण न शक्यं ताभिर्विप्रयोगदुःखं सोढुम् । अत उच्यते—आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि । (मेघ० पूर्व० ९) ।

आशामवष्टभ्यैव वीतरागभयक्रोधाः संसारासारत्वोपदेशदक्षा ऋषयो मुनयश्च मुमुक्षवस्तीक्ष्णं तपस्तप्यन्ते । आशामाश्रित्यैवान्तेवासिनो महच्छ्रममनुष्ठाय परीक्षोदधिमुत्तीर्य जीवने साफल्यं भजन्ते । महाभारतयुद्धे गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च देवभूमिं गते आशामाश्रित्यैव शल्यं सैनापत्येऽभ्यषेचयन् कौरवाः । अत एवोच्यते—'गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते । आशा बलवती राजञ्छल्यो जेष्यति पाण्डवान्' । देशाभ्युदयः समाजोन्नतिश्चाशाश्रयणेनैव संभवति । भारतवर्षे विविधाः पञ्चवर्षीया योजना देशाभ्युदयस्याशयैव प्रवर्त्यन्ते । अवगम्यत एवमाशाया महत्त्वम् ।

इदं चात्रावधेयम् । सूक्तं केनापि—अति सर्वत्र वर्जयेत् । यद्याशैवैषा तृष्णारूपेण परिणमते चेद् भवत्येषैव विपदां निदानम् । नहि शाम्यति तृष्णा, तदुपकरणानि तु शाम्यन्ति । तावत्येवाशा श्रेयस्करी सुखसाधनस्वरूपा च यावदियं नोल्लङ्घते स्वीयां मर्यादाम् । मर्यादातिक्रमे तु सर्वमेव दुःखात्मकतां भजते इत्यत्र न कस्यापि विपश्चितो विप्रतिपत्तिः । एतच्चेतसि कृत्वैव क्रियते कोविदैराशायास्तिरस्क्रिया, सन्तोषस्य च सत्क्रिया । उच्यते च—'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्' । न स्याज्जात्वाशाया वशंवदः, अपि त्वाशामेव वशंवदां विदधीत । आशा चेद् वशगा तर्हि सर्वोऽपि लोको वशगो भवेत् । अत उच्यते—'आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य । आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः' । आशावशगस्य न भवति मोक्षः स्थविरत्वेऽपि । अतः साधूच्यते—'अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् । वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्' । 'कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः' । तदेव सिध्यत्यदो यत् तृष्णात्वेन नाश्रयेदाशाम् । आशां वशगां विधाय तामा-

—श्रित्य न साधयेत

२०. स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च ।

शिक्षा नाम जीवने शुभाशुभावबोधनी पुण्यापुण्यविवेचनी हिताहितनिदर्शनी कृत्याकृत्यनिर्देशनी समुन्नतिसाधिकाऽवनतिनाशनी सद्भावाविर्भावयित्री दुर्भावतिरोधात्री आत्मसंस्कृतिहेतुर्मनसः प्रसादयित्री, धियः परिष्कर्त्री, संयमस्य साधयित्री, दमस्य दात्री, धैर्यस्य धात्री, शीलस्य शीलयित्री, सदाचारस्य संचारयित्री, पुण्यप्रवृत्तेः प्रेरयित्री, दुष्प्रवृत्तेर्दमयित्री, समग्रसुखनिधाना, शान्तेः सरणिः, पौरुषस्य पावनी काचिदपूर्वा शक्तिरिह निखिलेऽपि भुवने । समाश्रित्यैवैतां सुधियो विश्वहितं देशहितं समाजहितं जातिहितं च चिकीर्षन्ति, लोकस्य दुःखदावाग्निं संजिहीर्षन्ति, दीनानुपचिकीर्षन्ति, सद्भावानाधित्सन्ति, दुर्भावान् जिहासन्ति, सत्कर्म विधित्सन्ति, दुष्कर्म जिहीर्षन्ति, आत्मानं मुमुक्षन्ते च । यथेयं नराणां हितसाधयित्री सुखसाधनी च, तथैव स्त्रीणामपि कृतेऽनिवार्या सुखशान्तिसाधिका समुन्नतिमूला च । यथा च नान्तरेण शिक्षां पुरुषैरभ्युदयावाप्तिः सुलभा सुकरा च, तथैव स्त्रीणां कृतेऽपि समधिगन्तव्यम् । नरश्च नारी च द्वावेवैतौ सद्गृहस्थसुरथस्य चक्रद्वयम् । यथा चक्रेणैकेन न रथस्य गतिर्भवित्री, एवं सर्वार्थसाधिनीं स्त्रियमन्तरेण न गृहस्थरथस्य प्रगतिः सुकरा । सति विदुषि नरे सहधर्मचारिणी चेत् सच्छिक्षापरिहीणा, न दाम्पत्यं सुखावहम् । द्वयोरेव गुणैर्धर्मेण ज्ञानेन विद्यया शीलेन सौजन्येन च गार्हस्थ्यं सुखमावहतीत्यवगन्तव्यम् । यथा नरेण ज्ञानमन्तरा समुन्नतिर्दुर्लभा, तथैव स्त्रियाऽपि । एतर्हि पुरुषशिक्षावत् स्त्रीशिक्षाप्यनिवार्याऽऽवश्यकी च ।

यदि विचारदृशा विमृश्यते परीक्ष्यते चेद् भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते स्त्रीशिक्षायाः । स्त्रिय एवैता मातृशक्तेः प्रतीकभूताः । निसर्गादेवैतासु पतत्युत्तरदायित्वं शिशोर्भरणस्य पोषणस्य च, गृहस्य संचालनस्य संस्थापनस्य च, गृहस्थजीवनस्य सुखस्य शान्तेश्च, परिवारप्रपुष्टेः कुटुम्बभरणस्य च, श्वशुरश्वश्वोः शुश्रूषायाः परिचर्यायाश्च, शिशोः शैशवे शिक्षणस्य प्रशिक्षणस्य च, शिशौ सत्संस्काराधानस्य सच्छीलनिधानस्य च, भर्तुः सहयोगस्य सद्भावोन्नयनस्य च, अभ्यागतसपर्यायाः लोकहितसम्पादनस्य च । अनासाद्य वैदुष्यं न संभाव्यते स्त्रीभिः स्वीयोत्तरदायित्वपरिपालनम् । वैदुष्यलाभाय च न केवलं विविधग्रन्थपरिशीलनमेव पर्याप्तम्, अपितु व्यावहारिकीणां विविधानां विद्यानां विज्ञानानां च परिज्ञानमपि तेषां कृतेऽनिवार्यम् । विविधकलाकलापकौशलमवाप्यैव पार्यते दाम्पत्यजीवनं मधुरं सुखावहमानन्दरसावसिक्तं च सम्पादयितुम् । विशदीभवत्येतस्माद् यन्मानवशिक्षणवन्नारीशिक्षाऽपि नितरामावश्यकी । ज्ञानविज्ञानकौशलमधिगच्छति चेद् द्वयमपि नरनार्योस्तर्हि न केवलं तेषामेव जीवनं सुखशान्तिसमन्वितं भविताऽपि तु समाजहितं राष्ट्रहितं विश्वहितं च संभाव्यते तैः सम्पादयितुम् ।

(३) याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद (बृहदारण्यक उप०, अ० ४, ब्रा० ५)

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी सामान्य स्त्री बुद्धिवाली। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा—मैं सन्यास लेना चाहता हूँ और तुम्हें कुछ बताना चाहता हूँ। मैत्रेयी ने कहा—यदि यह सारी पृथ्वी धन से पूर्ण हो जाए तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने कहा—नहीं, नहीं। जैसा अन्य सांसारिक लोगों का जीवन है, वैसे ही तुम्हारा जीवन होगा। धन से अमरत्व की कोई आशा नहीं है। मैत्रेयी ने कहा—जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसको लेकर मैं क्या करूँगी? जिससे अमरत्व प्राप्त हो, वह बात मुझे बताइए। याज्ञवल्क्य ने कहा—पति, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, जनता, देवता, वेद और प्राणियों के हित के लिए ये प्रत्येक वस्तुएँ प्रिय नहीं होती हैं, अपितु अपनी आत्मा की भलाई के लिए ये वस्तुएँ प्रिय होती हैं। अतः आत्मा को देखो, सुनो, मनन और चिन्तन करो। आत्मा के देखने, सुनने, मनन और जानने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

(४) सत्य को जानो और अपनाओ (छान्दोग्य उप० अध्याय ७)

सत्य को जानना चाहिए। मनुष्य जब वस्तु-स्वरूप को जानता है, तभी सत्य बोलता है। बिना जाने सत्य नहीं बोलता, जानते हुए ही सत्य बोलता है, अतः ज्ञान और विज्ञान को जानना चाहिए। मनुष्य जब मनन करता है, तभी जानता है। बिना मनन किए नहीं जानता, मनन करने से जानता है, अतः मनन करना चाहिए। मनुष्य को जब किसी वस्तु पर श्रद्धा होती है, तभी मनन करता है। बिना श्रद्धा के मनन नहीं करता, श्रद्धा होने पर मनन करता है, अतः श्रद्धा को जानना चाहिए। मनुष्य में जब निष्ठा होती है, तभी किसी वस्तु पर श्रद्धा करता है। बिना निष्ठा के श्रद्धा नहीं होती। मनुष्य जब कर्म करता है तभी किसी कार्य में उसकी निष्ठा होती है। बिना कर्म किए निष्ठा नहीं होती। मनुष्य को जब किसी कार्य से सुख मिलता है, तभी वह उस काम को करता है। दुःख मिलने पर उस कार्य को नहीं करता। अतः जानना चाहिए कि सुख क्या है? जो महान् है, वह सुख है, थोड़े में सुख नहीं होता। ब्रह्म महान् है, वह सुखरूप है, उसे जानो।

संकेत—(३) प्रव्रजिष्यन् अस्मि। स्यां न्वहं तेनामृता। अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन। कामाय। आत्मनस्तु कामाय। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मनि दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्। (४) सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यम्। यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति, अविजानन्। यदा वै मनुतेऽथ विजानाति, अमत्वा। यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते, अश्रद्दधन्, श्रद्दधत्। यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति। अनिस्तिष्ठन्। नाकृत्वा निस्तिष्ठति। नासुखं लब्ध्वा करोति। यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे

(५) जगत्कर्ता ब्रह्म (ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य २.१.२४)

चेतन ब्रह्म एक और अद्वितीय जगत् का कारण है, यह आपका कथन ठीक नही है, क्योंकि ससार में सर्वत्र साधन-समूह के सग्रह से कार्य की सत्ता दृष्टिगोचर होती है। घट पट आदि के बनानेवाले कुम्हार आदि मिट्टी, चाक, डडा, धागा आदि अनेक साधनो को लेकर घटादि को बनाते है। ब्रह्म असहाय है, अत. वह अन्य साधनो के अभाव मे कैसे ससार को बना सकता है? इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म जगत् का कर्ता नहीं है। आपकी पूर्वोत्तर युक्ति युक्तियुक्त नही है। द्रव्य के विशिष्ट स्वभाव के कारण ऐसा हो सकता है। जैसे दूध दही के रूप में परिणत होता है और जल बर्फ के रूप मे। उसी प्रकार ब्रह्म जगत् के रूप मे परिणत होता है। उष्णता आदि दूध से दही बनने मे सहायक मात्र होते है। दूध से ही दही बनेगी, जल से ही बर्फ, अन्य वस्तु से नहीं। इससे ज्ञात होता है कि वस्तु-विशेष से ही वस्तु-विशेष बनती है। अन्य वस्तुएँ उसमे सहायकमात्र होती है। ब्रह्म सर्वसाधन-सम्पूर्ण है, अत विचित्र शक्तियो के योग से एक ब्रह्म से ही विचित्र परिणाम-युक्त यह जगत् उत्पन्न होता है।

(६) सांख्य-दर्शन

इस दर्शन के सस्थापक कपिल मुनि माने जाते है। इस दर्शन के अनुसार व्यक्त (प्रकट जगत्), अव्यक्त (मूल प्रकृति) और ज्ञ (पुरुष) के ज्ञान से सासारिक दु खो की समाप्ति होती है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण है। इस ससार मे प्रकृति और पुरुष ये दोनो स्वतन्त्र और अविनाशी सत्ताएँ हैं। प्रकृति मे तीन गुण है—सत्त्व, रजस् और तमस्। इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। जब इस त्रिगुण की साम्यावस्था मे अन्तर पडता है, तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति से महत् या बुद्धि उत्पन्न होती है। महत् से अहकार और अहकार से ११ इन्द्रियाँ अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ और मन तथा ५ तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) उत्पन्न होती हैं। ५ तन्मात्राओं से ५ स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। कार्य के विषय मे इस दर्शन का मत है कि कार्य कारण मे सदा अव्यक्त रूप मे विद्यमान रहता है। इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहते हैं। कारण कार्य के रूप मे प्रकट होता है। कारण का कार्यरूप मे तात्त्विक विकार होता है। इस सिद्धान्त को परिणामवाद कहते हैं।

संकेत—(५) इति यदुक्त तन्नोपपद्यते, कस्मादुपसहारदर्शनात्। चक्रम्। साधनान्तरानुपग्रहे। द्रव्यस्वभावविशेषादुपपद्यते। दधिरूपेण परिणमते, हिमरूपेण। नागात्। (६) व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्। सत्ताद्वयी वर्तते। सत्त्व रजस्तम इति। पञ्च तन्मात्रा।

(७) महाभाष्य-नवनीत　　(महाभाष्य नवाह्निक आ० १, २)

(क) जिसके उच्चारण करने से तत्तद्गुणादि विशिष्ट वस्तु का बोध हो, उसे शब्द कहते हैं। (ख) रक्षा, ऊह (तर्क), आगम, लघुत्व और असन्देह, ये व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन हैं। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढना चाहिए। वेद के मन्त्रों मे यथास्थान विभक्ति आदि के परिवर्तनार्थ व्याकरण पढना चाहिए। यह परम्परागत आदेश भी है कि—ब्राह्मण को नि स्वार्थभाव से धर्मस्वरूप षडङ्ग वेद पढना और जानना चाहिए। व्याकरण के द्वारा ही अत्यन्त लघु उपाय से शब्दज्ञान हो सकता है। व्याकरण के द्वारा शब्दार्थ मे सन्देह नहीं रहता कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है। (ग) चार प्रकार से विद्या का उपयोग होता है—विद्याभ्यास के द्वारा, स्वाध्याय-काल के द्वारा, प्रवचन-काल के द्वारा और व्यवहारकाल के द्वारा। (घ) द्रव्य नित्य है, आकृति अनित्य है। यह कैसे होता? ससार मे ऐसा देखा जाता है कि मिट्टी एक आकृति से युक्त होकर पिण्ड होती है। उसको बिगाडकर घडे आदि बनाए जाते हैं। इसी प्रकार सोने की बनी वस्तु की एक आकृति को बिगाडकर अनेक आभूषण बनाये जाते हैं। आकृति बार-बार बदलती जाती है, किन्तु द्रव्य वही रहता है। आकृति के नष्ट होने पर द्रव्य ही शेष रहता है। अथवा आकृति भी नित्य है, क्योंकि वस्तु की कोई-न-कोई आकृति शेष रहती ही है। (ङ) चार प्रकार के शब्द होते हैं—जातिवाचक, गुणवाचक, क्रियावाचक और यदृच्छा शब्द।

(८) वाक्यपदीय-सुभाषित　　(वाक्यपदीय काड १ और २)

(क) संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्दज्ञान के बिना हो। सारा ज्ञान शब्द से मिश्रित होकर ही प्रकाशित होता है। (ख) शब्द और अर्थ ये दोनों एक ही आत्मा के अपृथक् रहनेवाले भेद हैं। (ग) अनेकार्थक शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, कारण, चिह्न-विशेष, अन्य शब्दों का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, लिंग-विशेष, स्वर आदि।

(९) पम्पासर-वर्णन (वा० रामायण, किष्किन्धा० सर्ग १)

हे लक्ष्मण ! यह पम्पा पन्ने के तुल्य स्वच्छ जल से युक्त है। चारो ओर कमल खिले हैं और अनेक वृक्षो से शोभित है। पम्पा का वन भी दर्शनीय है। यहाँ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष शिखरयुक्त पर्वतो के तुल्य प्रतीत होते हैं। यह कमलों से व्याप्त है और दर्शनीय है। वृक्षो की चोटियाँ फूलों के बोझ से लदी हुई हैं और वृक्ष पुष्पित लताओं से आश्लिष्ट हैं। वन पुष्पित वृक्षों से युक्त है और वृक्ष फूलों की वर्षा इस प्रकार कर रहे हैं जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। पत्थरो पर उगे हुए अनेक वनवृक्ष हवा से कम्पित होकर पृथ्वी पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वायु गिरे हुए, गिरनेवाले और वृक्षों पर लगे हुए फूलों के साथ क्रीडा-सी कर रही है। पर्वत की कन्दराओ से निकली हुई वायु वृक्षों को नचाती हुई-सी, मत्त कोकिलों की ध्वनि से गान-सी कर रही है। सुगन्धित कमल जल में तरुण सूर्य के तुल्य चमक रहे हैं। वायु एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमती हुई अनेक रसो का आस्वादन करके आनन्दित-सी घूम रही है। भौंरा फूलों का रसास्वादन कर प्रेममत्त हो फूलो में ही लीन है। भौंरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष एक-दूसरे को बुलाते हुए-से प्रतीत होते हैं।

(१०) नलोपाख्यान (महाभारत, वनपर्व)

राजा नल वीरसेन का सुपुत्र था और निषध देश का राजा था। वह सुन्दर, सुशील, वीर, योद्धा, वेद-शास्त्रज्ञ, अश्वविद्या-विशेषज्ञ और पाकशास्त्र प्रवीण था। उसके राज्य के समीप ही विदर्भ का राज्य था। वहाँ राजा भीमसेन राज्य करता था। उसकी पुत्री दमयन्ती सर्वगुणों से युक्त और सर्वसुन्दरी थी। चारणो ने एक-दूसरे के समक्ष दोनो की प्रशसा की। फलस्वरूप नल और दमयन्ती एक-दूसरे को बिना देखे ही प्रेम करने लगे। एक दिन उद्यान मे भ्रमण करते समय नल ने एक सुनहरा हस देखा। उसने उस हस को पकड लिया। हस की प्रार्थना पर नल ने उसे छोड दिया। हस ने निवेदन किया कि मैं आपकी एक उत्तम सेवा करूँगा। हस उडकर विदर्भ पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती के समक्ष नल के गुणों की प्रशसा की। दमयन्ती ने नल से विवाह का निश्चय किया। हस ने सारी सूचना नल को दी। दमयन्ती के विवाहार्थ स्वयंवर का आयोजन हुआ। सभी राजा और राजकुमार स्वयवर में पहुँचे। इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी स्वयवर में आए। दिक्पालों ने नल के द्वारा प्रयत्न किया कि दमयन्ती उनमे से एक को छाँट ले। परन्तु दमयन्ती ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। स्वयवर में उसने नल को ही पति चुना। चारों दिक्पालों ने उसके हृदय की पवित्रता देखकर उसे वर दिए।

संकेतः—(९) वैदूर्यविमलोदका। उत्तुङ्गाः। शिखराणि, पुष्पभारसमृद्धानि, उपगूढानि। पुष्पवर्षाणि। उद्भूताः, पुष्पैरवकिरन्ति गाम्। पतितैः, पतमानैः, पादपस्थैः। नर्तयन्निव, गायतीव। सूर्यवत् प्रकाशन्ते। पादपात् पादपम्, गच्छन्, आस्वाद्य, वाति। आह्वयन्त इव भान्ति। (१०) जातरूपच्छदम्। वृणुयात्।

(७) महाभाष्य-नवनीत (महाभाष्य नवाह्निक आ० १, २)

(क) जिसके उच्चारण करने से तत्तद्गुणादि विशिष्ट वस्तु का बोध हो, उसे शब्द कहते है। (ख) रक्षा, ऊह (तर्क), आगम, लघुत्व और असन्देह, ये व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन हैं। वेदो की रक्षा के लिए व्याकरण पढना चाहिए। वेद के मन्त्रो मे यथास्थान विभक्ति आदि के परिवर्तनार्थ व्याकरण पढना चाहिए। यह परम्परागत आदेश भी है कि—ब्राह्मण को निःस्वार्थभाव से धर्मस्वरूप षडङ्ग वेद पढ़ना और जानना चाहिए। व्याकरण के द्वारा ही अत्यन्त लघु उपाय से शब्दज्ञान हो सकता है। व्याकरण के द्वारा शब्दार्थ मे सन्देह नहीं रहता कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है। (ग) चार प्रकार से विद्या का उपयोग होता है—विद्याभ्यास के द्वारा, स्वाध्याय-काल के द्वारा, प्रवचन-काल के द्वारा और व्यवहारकाल के द्वारा। (घ) द्रव्य नित्य है, आकृति अनित्य है। यह कैसे होता? ससार में ऐसा देखा जाता है कि मिट्टी एक आकृति से युक्त होकर पिण्ड होती है। उसको बिगाड़कर घडे आदि बनाए जाते हैं। इसी प्रकार सोने की बनी वस्तु की एक आकृति को बिगाड़कर अनेक आभूषण बनाये जाते है। आकृति बार-बार बदलती जाती है, किन्तु द्रव्य वही रहता है। आकृति के नष्ट होने पर द्रव्य ही शेष रहता है। अथवा आकृति भी नित्य है, क्योंकि वस्तु की कोई-न-कोई आकृति शेष रहती ही है। (ङ) चार प्रकार के शब्द होते हैं—जातिवाचक, गुणवाचक, क्रियावाचक और यदृच्छा शब्द।

(८) वाक्यपदीय-सुभाषित (वाक्यपदीय काड १ और २)

(क) संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्दज्ञान के विना हो। सारा ज्ञान शब्द से मिश्रित होकर ही प्रकाशित होता है। (ख) शब्द और अर्थ ये दोनों एक ही आत्मा के अपृथक् रहनेवाले भेद हैं। (ग) अनेकार्थक शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—सयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, कारण, चिह्न-विशेष, अन्य शब्दों का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, लिंग-विशेष, स्वर आदि।

संकेत— (७) (ख) रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्। आगम. खल्वपि—ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। (ग) चतुर्भि प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति। (घ) द्रव्य हि नित्यम्, आकृतिरनित्या। कथ ज्ञायते? पिण्ड। उपमृद्य। क्रियन्ते। आकृतिरन्या चान्या च भवति। आकृत्युपमर्देन। अथवा नित्याऽऽकृति। (ङ) चतुष्टयी शब्दाना प्रवृत्ति.—जातिशब्दा गुणशब्दा. क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दा। (८) (क) न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञान सर्वं शब्देन भासते। (ख) एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ। (ग) सयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरण लिङ्ग शब्दस्यान्यस्य सनिधि। सामर्थ्यमौचिती देश कालो व्यक्ति स्वरादयः। शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतव.॥

(९) पम्पासर-वर्णन (वा० रामायण, किष्किन्धा० सर्ग १)

हे लक्ष्मण ! यह पम्पा पन्ने के तुल्य स्वच्छ जल से युक्त है। चारों ओर कमल खिले हैं और अनेक वृक्षों से शोभित है। पम्पा का वन भी दर्शनीय है। यहाँ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष शिखरयुक्त पर्वतों के तुल्य प्रतीत होते हैं। यह कमलों से व्याप्त है और दर्शनीय है। वृक्षों की चोटियाँ फूलों के बोझ से लदी हुई हैं और वृक्ष पुष्पित लताओं से आश्लिष्ट है। वन पुष्पित वृक्षों से युक्त हैं और वृक्ष फूलों की वर्षा इस प्रकार कर रहे हैं जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। पत्थरों पर उगे हुए अनेक वनवृक्ष हवा से कम्पित होकर पृथ्वी पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वायु गिरे हुए, गिरनेवाले और वृक्षों पर लगे हुए फूलों के साथ क्रीडा-सी कर रही है। पर्वत की कन्दराओं से निकली हुई वायु वृक्षों को नचाती हुई-सी, मत्त कोकिलों की ध्वनि से गान-सी कर रही है। सुगन्धित कमल जल में तरुण सूर्य के तुल्य चमक रहे हैं। वायु एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमती हुई अनेक रसों का आस्वादन करके आनन्दित-सी घूम रही है। भौंरा फूलों का रसास्वादन कर प्रेममत्त हो फूलों में ही लीन है। भौंरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष एक-दूसरे को बुलाते हुए-से प्रतीत होते हैं।

(१०) नलोपाख्यान (महाभारत, वनपर्व)

राजा नल वीरसेन का सुपुत्र था और निषध देश का राजा था। वह सुन्दर, सुशील, वीर, योद्धा, वेद-शास्त्रज्ञ, अश्वविद्या-विशेषज्ञ और पाकशास्त्र-प्रवीण था। उसके राज्य के समीप ही विदर्भ का राज्य था। वहाँ राजा भीमसेन राज्य करता था। उसकी पुत्री दमयन्ती सर्वगुणों से युक्त और सर्वसुन्दरी थी। चारणों ने एक-दूसरे के समक्ष दोनों की प्रशंसा की। फलस्वरूप नल और दमयन्ती एक-दूसरे को बिना देखे ही प्रेम करने लगे। एक दिन उद्यान में भ्रमण करते समय नल ने एक सुनहरा हंस देखा। उसने उस हंस को पकड़ लिया। हंस की प्रार्थना पर नल ने उसे छोड़ दिया। हंस ने निवेदन किया कि मैं आपकी एक उत्तम सेवा करूँगा। हंस उड़कर विदर्भ पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती के समक्ष नल के गुणों की प्रशंसा की। दमयन्ती ने नल से विवाह का निश्चय किया। हंस ने सारी सूचना नल को दी। दमयन्ती के विवाहार्थ स्वयंवर का आयोजन हुआ। सभी राजा और राजकुमार स्वयंवर में पहुँचे। इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी स्वयंवर में आए। दिक्पालों ने नल के द्वारा प्रयत्न किया कि दमयन्ती उनमें से एक को छाँट ले। परन्तु दमयन्ती ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। स्वयंवर में उसने नल को ही पति चुना। चारों दिक्पालों ने उसके हृदय की पवित्रता देखकर उसे वर दिए।

संकेतः—(९) वैदूर्यविमलोदका। उत्तुङ्गाः। शिखराणि, पुष्पभारसमृद्धानि, उपगूढानि। पुष्पवर्षाणि। उद्भूताः, पुष्पैरवकिरन्ति गाम्। पतितैः, पतमानैः, पादपस्थैः। नर्तयन्निव, गायतीव। सूर्यवत् प्रकाशन्ते। पादपात् पादपम्, गच्छन्, आस्वाद्य, वाति। आह्वयन्त इव भान्ति। (१०) जातरूपच्छदम्। वृणुयात्।

(७) महाभाष्य-नवनीत　　　　(महाभाष्य नवाह्निक आ० १, २)

(क) जिसके उच्चारण करने से तत्तद्‌गुणादि विशिष्ट वस्तु का बोध हो, उसे शब्द कहते है। (ख) रक्षा, ऊह (तर्क), आगम, लघुत्व और असन्देह, ये व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन हैं। वेदो की रक्षा के लिए व्याकरण पढना चाहिए। वेद के मन्त्रो मे यथास्थान विभक्ति आदि के परिवर्तनार्थ व्याकरण पढना चाहिए। यह परम्परागत आदेश भी है कि—ब्राह्मण को नि.स्वार्थभाव से धर्मस्वरूप षडङ्ग वेद पढना और जानना चाहिए। व्याकरण के द्वारा ही अत्यन्त लघु उपाय से शब्दज्ञान हो सकता है। व्याकरण के द्वारा शब्दार्थ मे सन्देह नहीं रहता कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है। (ग) चार प्रकार से विद्या का उपयोग होता है—विद्याभ्यास के द्वारा, स्वाध्याय-काल के द्वारा, प्रवचन-काल के द्वारा और व्यवहारकाल के द्वारा। (घ) द्रव्य नित्य है, आकृति अनित्य है। यह कैसे होता? ससार मे ऐसा देखा जाता है कि मिट्टी एक आकृति से युक्त होकर पिण्ड होती है। उसको बिगाडकर घड़े आदि बनाए जाते हैं। इसी प्रकार सोने की बनी वस्तु की एक आकृति को बिगाडकर अनेक आभूषण बनाये जाते हैं। आकृति बार-बार बदलती जाती है, किन्तु द्रव्य वही रहता है। आकृति के नष्ट होने पर द्रव्य ही शेष रहता है। अथवा आकृति भी नित्य है, क्योंकि वस्तु की कोई-न-कोई आकृति शेष रहती ही है। (ङ) चार प्रकार के शब्द होते हैं—जातिवाचक, गुणवाचक, क्रियावाचक और यदृच्छा शब्द।

(८) वाक्यपदीय-सुभाषित　　　　(वाक्यपदीय काण्ड १ और २)

(क) संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्दज्ञान के बिना हो। सारा ज्ञान शब्द से मिश्रित होकर ही प्रकाशित होता है। (ख) शब्द और अर्थ ये दोनों एक ही आत्मा के अपृथक् रहनेवाले भेद हैं। (ग) अनेकार्थक शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, कारण, चिह्न-विशेष, अन्य शब्दों का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, लिंग-विशेष, स्वर आदि।

संकेत—(७) (ख) रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्। आगमः खल्वपि—ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। (ग) चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति। (घ) द्रव्य हि नित्यम्, आकृतिरनित्या। कथ ज्ञायते? पिण्ड.। उपमृद्य। क्रियन्ते। आकृतिरन्या चान्या च भवति। आकृत्युपमर्देन। अथवा नित्याऽऽकृति'। (ङ) चतुष्टयी शब्दाना प्रवृत्तिः—जातिशब्दा गुणशब्दा. क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दा.। (८) (क) न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य. शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञान सर्वं शब्देन भासते। (ख) एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ। (ग) सयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरण लिङ्ग शब्दस्यान्यस्य सनिधिः। सामर्थ्यमौचिती देश कालो व्यक्ति. स्वरादयः। शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

(९) पम्पासर-वर्णन (वा० रामायण, किष्किन्धा० सर्ग १)

हे लक्ष्मण ! यह पम्पा पन्ने के तुल्य स्वच्छ जल से युक्त है। चारो ओर कमल खिले हैं और अनेक वृक्षो से शोभित है। पम्पा का वन भी दर्शनीय है। यहाँ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष शिखरयुक्त पर्वतो के तुल्य प्रतीत होते हैं। यह कमलों से व्याप्त है और दर्शनीय है। वृक्षों की चोटियाँ फूलों के बोझ से लदी हुई हैं और वृक्ष पुष्पित लताओं से आश्लिष्ट हैं। वन पुष्पित वृक्षों से युक्त है और वृक्ष फूलों की वर्षा इस प्रकार कर रहे हैं जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। पत्थरो पर उगे हुए अनेक वनवृक्ष हवा से कम्पित होकर पृथ्वी पर फूलो की वर्षा कर रहे है। वायु गिरे हुए, गिरनेवाले और वृक्षों पर लगे हुए फूलो के साथ क्रीडा-सी कर रही है। पर्वत की कन्दराओं से निकली हुई वायु वृक्षों को नचाती हुई-सी, मत्त कोकिलों की ध्वनि से गान-सी कर रही है। सुगन्धित कमल जल में तरुण सूर्य के तुल्य चमक रहे हैं। वायु एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमती हुई अनेक रसो का आस्वादन करके आनन्दित सी घूम रही है। भौंरा फूलों का रसास्वादन कर प्रेममत्त हो फूलो में ही लीन है। भौंरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष एक-दूसरे को बुलाते हुए-से प्रतीत होते हैं।

(१०) नलोपाख्यान (महाभारत, वनपर्व)

राजा नल वीरसेन का सुपुत्र था और निषध देश का राजा था। वह सुन्दर, सुशील, वीर, योद्धा, वेद-शास्त्रज्ञ, अश्वविद्या-विशेषज्ञ और पाकशास्त्र प्रवीण था। उसके राज्य के समीप ही विदर्भ का राज्य था। वहाँ राजा भीमसेन राज्य करता था। उसकी पुत्री दमयन्ती सर्वगुणो से युक्त और सर्वसुन्दरी थी। चारणो ने एक-दूसरे के समक्ष दोनों की प्रशसा की। फलस्वरूप नल और दमयन्ती एक-दूसरे को बिना देखे ही प्रेम करने लगे। एक दिन उद्यान में भ्रमण करते समय नल ने एक सुनहरा हस देखा। उसने उस हस को पकड लिया। हस की प्रार्थना पर नल ने उसे छोड दिया। हस ने निवेदन किया कि मैं आपकी एक उत्तम सेवा करूँगा। हस उडकर विदर्भ पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती के समक्ष नल के गुणों की प्रशसा की। दमयन्ती ने नल से विवाह का निश्चय किया। हस ने सारी सूचना नल को दी। दमयन्ती के विवाहार्थ स्वयंवर का आयोजन हुआ। सभी राजा और राजकुमार स्वयवर में पहुँचे। इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी स्वयवर में आए। दिक्पालों ने नल के द्वारा प्रयत्न किया कि दमयन्ती उनमें से एक को छाँट ले। परन्तु दमयन्ती ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। स्वयवर मे उसने नल को ही पति चुना। चारों दिक्पालों ने उसके हृदय की पवित्रता देखकर उसे वर दिए।

संकेतः—(९) वैदूर्यविमलोदका। उत्तुङ्गाः। शिखराणि, पुष्पभारसमृद्धानि, उपगूढानि। पुष्पवर्षाणि। उद्भूताः, पुष्पैरवकिरन्ति गाम्। पतितैः, पतमानैः, पादपस्थैः। नर्तयन्निव, गायतीव। सूर्यवत् प्रकाशन्ते। पादपाद् पादपम्, गच्छन्, आस्वाद्य, वाति। आह्वयन्त इव भान्ति। (१०) जातरूपच्छदम्। वृणुयात्।

(११) आचार-शिक्षा (चरकसंहिता)

जो अपना हित चाहता है, वह सदाचार का पालन करे। इससे दो लाभ होते हैं—आरोग्य और जितेन्द्रियता। देवता, ब्राह्मण, गुरुओं, वृद्धों और आचार्य की पूजा करे। सुन्दर वेश रखे, बालों को ठीक संवारे, प्रसन्नमुख रहे, समय पर हितकर स्वल्प और मधुर बात कहे। इन्द्रियों को वश में रखे, धर्मात्मा, निर्भीक, आस्तिक, बुद्धिमान्, उत्साही और क्षमाशील हो। असत्य न बोले। पर-धन को न ले। झगड़ा पसन्द न करे, पाप न करे। दूसरे के दोषों को न कहे। दूसरों की गुप्त बात न बतावे। अधार्मिकों के साथ न बैठे। बहुत जोर से न हँसे। नाक न खोदे, दाँत न कटकटावे, भूमि न कुरेदे, तिनका न तोड़े। न अधिक जागे, न अधिक सोवे और न अधिक खावे-पीए। श्रेष्ठ लोगों से विरोध न करे। रात में दही न खावे। स्त्रियों का अपमान न करे। सज्जनों और गुरुओं की निन्दा न करे। अपनी प्रतिज्ञा को न तोड़े। अपने समय को नष्ट न करे। अपने नियम को न तोड़े। लोभी और मूर्खों से मित्रता न करे। गुप्त बात प्रकट न करे। किसी का अपमान न करे। अभिमान न करे। समय को हाथ से न जाने दे। शोक के वश में न हो। धैर्य और पराक्रम को न छोड़े।

(१२) कालमृत्यु और अकालमृत्यु (चरकसंहिता)

कालमृत्यु और अकालमृत्यु कैसे होती है? भगवान् आत्रेय ने अग्निवेश से कहा कि—जैसे रथ की धुरी अपनी विशेषताओं से युक्त होती है और वह उत्तम तथा सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी चलते चलते समयानुसार अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने से नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार बलवान् मनुष्य के शरीर में आयु स्वभावतः धीरे-धीरे उपयोग में आने पर अपनी शक्ति के क्षीण होने पर नष्ट हो जाती है। जैसे वही धुरी बहुत बोझ लदने से, ऊँचे-नीचे मार्ग पर चलने से, पहिए के टूटने से, कील निकल जाने से और तेल न देने से बीच में ही टूट जाती है, उसी प्रकार शक्ति से अधिक काम करने से, उचित रूप से भोजन न करने से, हानिकारक भोजन खाने से, इन्द्रियों के असंयम से, कुसंगति से, विषादि के खाने से और अनशन आदि से बीच में ही आयु समाप्त हो जाती है। इसको अकालमृत्यु कहते हैं। इसी प्रकार रोगों की ठीक चिकित्सा न होने से भी अकालमृत्यु होती है।

संकेत—(११) आत्महितं चिकीर्षता सद्वृत्तमनुष्ठेयम्। प्रसाधितकेशः स्यात्। काले हितमितमधुरार्थवादी स्यात्। न वैरं रोचयेत्। नान्यरहस्यमागमयेत्। कुष्णीयात्, विघट्टयेत्, विलिखेत्, छिन्द्यात्। न विरुध्येत। न स्त्रियमवजानीत। न परिवदेत्, न गुह्यं विवृणुयात्। न कार्यकालमतिपातयेत्। जह्यात्। (१२) अक्ष, यथाकालम्, स्वशक्तिक्षयात्। अतिभाराधिष्ठितत्वात्, विषमपथात्, चक्रभङ्गात्, कीलमोक्षात्, तैलादानात्, अन्तरा व्यसनमापद्यते। अयथाबलमारम्भात्। मिथ्योपचारात्।

(१३) सन्ध्यावर्णन (सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

इसके बाद सूर्य अस्ताभिमुख हुआ। वह अस्ताचलरूपी कल्पवृक्ष के फूल के गुच्छे के समान सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वह सिन्दूर पङ्क्ति से शोभित ऐरावत के गण्ड-स्थल की शोभा धारण किए हुए था। वह आकाशरूपी लक्ष्मी के विकसित पुष्पस्तबक के तुल्य, आकाशरूपी अशोक वृक्ष के गुलदस्ते के तुल्य और पश्चिमदिशारूपी अंगना के स्वर्ण दर्पण के तुल्य प्रतीत होता था। इस प्रकार विद्रुमलता तुल्य आकृति-युक्त भगवान् सूर्य पश्चिम समुद्र के जल में मग्न हो गये। वृक्षों की चोटियों पर चिड़ियाँ शब्द करने लगीं, कौवे अपने घोंसलों की ओर जाने लगे, वासगृहों में अगर की धूप-बत्तियाँ जलने लगीं, वृद्धाएँ लोरियाँ गाकर और थपथपाकर बच्चों को सुलाने लगीं, सज्जनवृन्द सन्ध्या वन्दन करने लगे, कपि-वृन्द उद्यान-वृक्षों पर आश्रय लेने लगे, जीर्ण वृक्षों के कोटरों से उल्लू निकलने लगे, अन्धकार को भगाने के लिए दीपशिखाएँ चमकने लगीं। उस समय पश्चिम-समुद्र की विद्रुम लता के तुल्य, आकाशरूपी सरोवर की रक्त-कमलिनी के तुल्य, कामदेव के रथ की स्वर्णपताका के तुल्य, आकाशरूपी महल की लाल पताका के तुल्य, पीले तारों से युक्त सन्ध्या दिखाई पड़ी।

(१४) वर्षावर्णन (सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

कुछ समय बाद वर्षा ऋतु आई। उस समय आकाशरूपी सरोवर में कामदेव की स्वर्ण और रत्न-जटित नौका की तरह, आकाशरूपी महल के मुख्यद्वार की रत्न-माला के तुल्य, आकाशरूपी कल्पवृक्ष की सुन्दर कली के तुल्य, कामदेव की रत्न-जटित सीढ़ी आदि के तुल्य, इन्द्रधनुषरूपी लता शोभित हुई। क्यारीरूपी खानों में उछलते हुए पीले हरे मेढकरूपी मोहरों से मानो वर्षा ऋतु बिजली के साथ शतरंज खेल रही थी। बादलरूपी लकड़ी पर बिजलीरूपी आरे के चलने से गिरते हुए बुरादे के तुल्य बूँदें शोभित हो रही थीं। दिग्वधुओं के टूटे हुए हार के मोतियों के तुल्य ओले शोभित हो रहे थे।

संकेत—(१३) अस्तगिरिमन्दारस्तबकसुन्दर, बिभ्राण, नभःश्रिय, गगनाशोकतरोः, पुष्पगुच्छ इव, दिनमणिरपराकूपारपयसि ममज्ज, कलविङ्कुलकलकलवाचालशिखरेषु शिखरिषु, ध्वाङ्क्षेषु, अगुरुधूपपरिमलोद्गारेषु, आलोलिकाभिरतिलघुकरताडनैः शिशयिषमाणे शिशुजने, निर्जिगमिषति, स्फुरन्तीषु, गगनहर्म्यस्य, कपिलतारका। (१४) कनकरत्ननौकेव, नभःसौधतोरणरत्नमालिकेव, कलिकेव, रत्नमयी, इन्द्रधनुर्लता, केदारिकाकोष्ठिकासु समुत्पतद्भिः पीतहरितैर्दर्दुरैर्नयनूतैरिव चिक्रीड विद्युता सम घनकालः। जलददारुणि तडिल्लताकरपत्रदारिते, चूर्णनिकरा इव, जलकणाः। विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव करकाः।

(१५) धर्म त्रिवर्ग का सार (दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, उ० २)

धर्म के बिना अर्थ और काम की उत्पत्ति ही नहीं हो पाती। इसलिए कहा जा सकता है कि धर्म, काम और अर्थ की अपेक्षा नहीं करता। यह धर्म ही मोक्ष-सुख की उत्पत्ति का मूल कारण है और चित्त की एकाग्रतामात्र से यह सिद्ध हो जाता है। धर्म, अर्थ और काम की तरह बाह्य साधनो के अधीन नहीं रहता। तत्त्वज्ञान से उत्कर्ष को प्राप्त धर्म किसी भी प्रकार से अनुष्ठित अर्थ और काम से बाधित नहीं होता। यदि अर्थ और काम से बाधित भी हो जाए तो थोड़े-से प्रयत्न से ठीक होकर उस दोष को नष्ट करके महान् कल्याण का साधन बन जाता है। धर्म से पवित्र मन में रजोगुण का समावेश उसी प्रकार नहीं होता जैसे आकाश मे धूल नहीं रुकती। अतः मेरा विश्वास है कि अर्थ और काम धर्म की सौवीं कला को भी नहीं पहुँच सकते।

(१६) राजनीति के मूल-तत्त्व (दशकुमार०, उत्तर०, उच्छ्वास ८)

राज्य तीन शक्तियों के अधीन होता है। वे तीन शक्तियॉ हैं—मन्त्र, प्रभाव और उत्साह। तीनों परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध होकर कार्य-साधन करती है। मन्त्र से कर्तव्य-कर्म का ज्ञान होता है। प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्ति स कार्य में प्रवृत्ति होती है और उत्साह-शक्ति से कार्यसिद्धि होती है। सहाय, साधन, उपाय, देश-काल का विभाग और विपत्ति का प्रतीकार, ये पॉच अग कहे जाते हैं। ये ही पॉच अग नीतिरूपी वृक्ष के मूल है। कोष और दण्ड का प्रभाव उक्त वृक्ष का स्कन्ध है। कर्तव्य अर्थ के लिए स्थिर प्रयत्न को उत्साह कहते है। साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों गुण उसकी शाखाऍ हैं। स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और पुरवासी, इन आठ राज्य के अगो के भेद और प्रभेद से नीतिवृक्ष के ७२ पत्ते होते है। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और समाश्रय, ये ही नीतिवृक्ष के किसलय हैं। मन्त्र, प्रभाव, उत्साह और इनकी सिद्धियॉ इसके पुष्प और फल हैं। यह नीतिरूपी वृक्ष राजा का बराबर उपकार करता रहता है। इसकी रक्षा के लिए अनेक सहायकों की आवश्यकता होती है, अत सहायकों से हीन के द्वारा इसकी रक्षा नहीं हो सकती।

संकेतः—(१५) निवृत्तिसुखप्रसूतिहेतु, आत्मसमाधानमात्रसाधश्च। तत्त्वदर्शनोपबृंहित, न बाध्यते। अल्पायासप्रतिसमाहित, श्रेयसेऽनल्पाय कल्पते। मन्ये, शततमीमपि कला न स्पृशत। (१६) राज्य नाम शक्तित्रयायत्तम्। एते परस्परानुगृहीता कृत्येषु क्रमन्ते। मन्त्रेण विनिश्चयोऽर्थानाम्। असहायेन दुरुपजीव्य।

(१७) जाबाल्याश्रम-वर्णन (कादम्बरी, पूर्वभाग)

मैंने जाबालि का पवित्र आश्रम देखा। जहाँ पर निरन्तर यज्ञ हो रहा है, छात्र-वृन्द अध्ययन मे लगे हुए है, अनेक तोता और मैना वेद का पाठ कर रहे है, देवो और पितरो की पूजा की जा रही है, अतिथियो की सेवा हो रही है, यज्ञ विद्या की व्याख्या हो रही है, धर्मशास्त्रों की आलोचना हो रही है, अनेक धार्मिक पुस्तकें बाँची जा रही है, समस्त शास्त्रो के अर्थो पर विचार हो रहा है, यति-लोग ध्यान लगा रहे है, मन्त्रो की साधना कर रहे हैं और योग का अभ्यास कर रहे है। यहाँ न कलिकाल है, न असत्य है और न काम-विकार है। यह त्रिलोक से वन्दित है, गायो से अधिष्ठित है, नदी स्रोत और प्रपातो से युक्त है, पवित्र है, उपद्रव-रहित है, घने वृक्षो से अन्धकारित है और ब्रह्मलोक के तुल्य अति रमणीय है। यहाँ मलिनता हवि-धूम में है, चरित्र मे नही। मुख की लालिमा तोतो में है, क्रोध में नहीं। तीक्ष्णता कुशाग्रो मे है, स्वभाव मे नहीं। चचलता कदली-दलो में है, मनो मे नहीं। अग्नि-प्रदक्षिणा में भ्रमण (भ्रान्ति) है, शास्त्रों के विषय मे भ्रान्ति नहीं। मुख-विकार वृद्धावस्था के कारण है, धन के अभिमान से नही।

(१८) सन्ध्या-वर्णन (कादम्बरी, पूर्वभाग)

इस समय दिन ढलने लगा। स्नान करके निकले हुए मुनियों ने पूजा करते हुए जो लाल चन्दन का अगराग पृथ्वी पर दिया, मानो सूर्य ने वस्तुत. उसे धारण कर लिया। धूप का पान करनेवाले ऋषियो ने मानो सूर्य की उष्णता पी ली, अतएव सूर्य निस्तेज हो गया। सूर्य की किरणें और पक्षि-गण पृथ्वी और कमलवनों को छोडकर अब पर्वतशिखरो और तरुशिखरो पर पहुँच गये। सूर्य के अस्त होने पर मूँगो की लता के तुल्य लाल सन्ध्या दिखाई पडी। दिनभर कही घूमकर मानो अब दिनान्त के समय लाल तारों से युक्त सन्ध्या लौटकर आई है। अब कमलिनी सूर्यरूपी पति से मिलन के लिए मानो व्रत कर रही है। पश्चिम समुद्र के जल मे सूर्य के वेग से गिरने से जो छीटे ऊपर उठे हैं, वही मानो तारागण के रूप मे आकाश मे शोभित हो रहे हैं। सिद्ध-कन्याओं के द्वारा पूजार्थ डाले हुए पुष्पो के तुल्य तारों से युक्त आकाश दिखाई पडने लगा। क्रमश चन्द्रमा उदित हुआ। चन्द्रमा के अन्दर विद्यमान कलक ऐसा ही प्रतीत हुआ मानो चन्द्रमारूपी तालाब मे चाँदनीरूपी जल के पान के लोभ से आया हुआ और अमृतरूपी कीचड में फँस जाने से निश्चल मृग हो।

संकेत—(१७) अनवरतप्रवृत्ताध्वरम्, अध्ययनमुखरवटुजनम्, अनेकशुक-सारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, पूज्यमान०, उपचर्यमाण०, व्याख्यायमान०, आबध्यमान-ध्यानम्। यत्र मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु। मुखरागः शुकेषु न कोपेषु। जरया, न धनाभिमानेन। (१८) परिणतो दिवस, उदवहत्, ऊष्मपै, स्थितिमकुर्वत। विद्रुमलतेव पाटला। विहृत्य। लोहिततारका। परावर्तिष्ट। दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अम्भः-सीकरनिकरम्। अलक्ष्यत। हिमकरसरसि चन्द्रिकाजलपानलोभादवतीर्णः, अमृतपङ्कलग्न.।

(१९) उज्जयिनी-वर्णन (कादम्बरी पूर्वभाग)

राजा तारापीड की उज्जैन नामक राजधानी थी। वह समस्त त्रिभुवन की तिलकरूपी थी। वह गहरी खाई से घिरी हुई थी, सफेदी पुते हुए परकोटे से परिवेष्टित थी, बड़ी-बड़ी बाजार की सड़कों से शोभित थी, चौराहों पर बने हुए देवमन्दिरों से अलकृत थी, वेद-ध्वनियो से निष्पाप थी, असख्यो तालाबो से युक्त थी। वहाँ पर लोग वीर, विनयी, सत्यवादी, सुन्दर, धर्मतत्पर, महापराक्रमी, समस्त ज्ञान-विज्ञानवेत्ता, दानी, चतुर, मधुरभाषी, प्रसन्नमुख, स्वच्छवेषधारी, सभी भाषाओ के ज्ञाता, सभी लिपियों के वेत्ता, शान्त और सरलहृदय थे। उस नगरी मे मणिद्वीपो में ही अनिर्वाण था, चकवा-चकवी के जोड़े मे ही वियोग होता था, सोने की ही वर्ण-परीक्षा होती थी, ध्वजाओ मे ही अस्थिरता थी, कुमुदो में ही मित्रद्वेष (सूर्यद्वेष) था, अन्यत्र नहीं।

(२०) शुकनासोपदेश (कादम्बरी, पूर्वभाग)

जन्मसिद्ध प्रभुत्व, नव यौवन, अनुपम सौन्दर्य और असाधारण शक्ति, ये चारों महान् अनर्थ के कारण है। इनमे से एक-एक भी सभी अविनयों के कारण हैं, सभी एकत्र हो तो कहना ही क्या। यौवन के आरम्भ मे प्राय. शास्त्ररूपी जल से धोने से निर्मल बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। विषय-भोगरूपी मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी मृगों को हरनेवाली है और भयकर दुष्परिणामवाली है। निर्मल मन मे उपदेश की बाते उसी प्रकार सरलता से प्रविष्ट हो जाती हैं, जैसे स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें। गुरुजनों का उपदेश मनुष्यों के समस्त मलों को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है, बालों की सफेदी आदि विरूपता को न करनेवाला वृद्धत्व है, चर्बी आदि को न बढ़ानेवाला गौरव है, असाधारण तेजवाला प्रकाश है। लक्ष्मी को ही देखो। यह मिलने पर भी बड़े कष्ट से सुरक्षित होती है। गुणरूपी पाशों के बन्धन से निश्चेष्ट बनाने पर भी नष्ट हो जाती है। यह न परिचय को मानती है, न कुलीनता को देखती है, न सौन्दर्य को देखती है, न कुलपरम्परा को मानती है, न शील को देखती है, न चतुरता को कुछ गिनती है, न त्याग का आदर करती है, न विशेषज्ञता का विचार करती है, न सत्य को कुछ समझती है और न आचार का ही पालन करती है। इसको पाकर लोग सभी अविनयों के स्थान हो जाते हैं। वे न देवताओ को प्रणाम करते हैं, न माननीयो का मान करते हैं और न गुरुओं का सत्कार करते हैं।

संकेत—(१९) ललामभूता, गभीरेण परिखावलयेन परिवृता, सुधासितेन प्राकारमण्डलेन, महाविपणिपथै, शृङ्गाटकेषु, निष्कल्मषा। अनिर्वृत्तिर्मणिप्रदीपानाम्, द्वन्द्ववियोगः, कनकानाम्, कुमुदाना मित्रद्वेषः। (२०) किमुत समवाय। इन्द्रियहरिण-हारिणी, अतिदुरन्ता। उपदेशगुणा., सुख विशन्ति। अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्, अजलम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यम्, अनारोपितमेदोदोषम्, अतीतज्योतिरालोक.। लब्धाऽपि, गुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृताऽपि। गणयति, आद्रियते, अनुबुध्यते।

(२१) मरणासन्न पिता के समीप हर्ष (हर्षचरित)

एक बार हर्ष ने रात्रि के चौथे पहर स्वप्न में देखा कि एक महासिंह भयंकर दावाग्नि में जल रहा है और सिंहिनी भी अपने बच्चों को छोड़कर अग्नि में कूद रही है। यह देखकर उसके मन में आया कि संसार में लोहे से भी दृढ़ प्रेम का बन्धन होता है, जिसके कारण पशु-पक्षी भी ऐसा करते हैं। अगले ही दिन उसने कुरङ्गक नामक दूत से पिता की रुग्णता का समाचार सुना। समाचार पाते ही वह तुरन्त वेग के साथ लौट पड़ा और अगले दिन राजद्वार पर पहुँचा। वहाँ उसने निःशब्द, किवाड़ों के खुलने और बन्द होने की खटखट से रहित, खिड़कियाँ बन्द होने से हवा के झोंके से रहित, कुछ प्रेमी जनों से युक्त, तीव्र ज्वर से भयभीत वैद्यों से युक्त, खिन्न मन्त्रियों से अधिष्ठित महल में विद्यमान, काल की जिह्वा के अग्र भाग पर वर्तमान, क्षीण वाणीवाले, चचल चित्त, शारीरिक व्याकुलता से युक्त, दीर्घ साँस लेते हुए और पास में बैठी हुई निरन्तर रोती हुई माता यशोवती के द्वारा बार-बार शिर और छाती पर हाथ फेरे जाते हुए पिता को देखा।

(२२) मानवचरित-समीक्षा (प्रबन्धमंजरी, उद्भिज्जपरिषत्)

सभापति अश्वत्थदेव मानवचरित-समीक्षा करते हुए अपने बन्धु वृक्षों से कहते हैं कि—मनुष्यों की हिंसावृत्ति की सीमा नहीं है। पशुहत्या उनके लिए खेल है। वे खिन्न मन के विनोद के लिए महावन में आकर इच्छानुसार और निर्दयतापूर्वक पशुवध करते हैं। जिस प्रकार ऐहिक सुख की इच्छा से मनुष्य उत्साहपूर्वक जीवहिंसा करके अपने हृदय की अतिनिष्ठुर क्रूरता को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार पारलौकिक सुख की आशा से वे महोत्सवपूर्वक निरपराध पशुओं को इष्टदेवता के आगे बलि देकर अपनी नृशंसता का परिचय देते हैं। वस्तुतः इनके पशुबलि के कार्य को देखकर हम जड़ों का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है। ये निरन्तर अपनी उन्नति को चाहते हुए प्रतिक्षण सर्वथा स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं। ये न धर्म को मानते हैं, न सत्य का अनुष्ठान करते हैं, अपितु तृणवत् स्नेह की उपेक्षा करते हैं, स्वच्छता को छोड़ देते हैं, विश्वासघात करते हैं, पापाचरण से थोड़ा भी नहीं डरते, झूठ बोलने में नहीं लज्जित होते, सर्वथा अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं।

संकेत—(२१) तुरीये यामे, आत्मानं पातयति। आसीच्चास्य चेतसि। लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः, यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति। समधिगत्यैवोदन्तम्। परिहृतकपाटरटिते, घटितगवाक्षरक्षितमरुति०, भिषजि, दुर्मनायमानमन्त्रिणि, धवलगृहे स्थितम्, विरलवाचि, चलितचेतसि, विह्वलवपुषि, सन्ततश्वसिते, वक्षसि च स्पृश्यमानम्। (२२) निरवधिः। आक्रीडनम्। प्रकटयन्ति। विदीर्यते। उपेक्षन्ते, बिभ्यति, लज्जन्ते, सिसाधयिषन्ति।

(२७) भाषा और भाषण　　(भाषाविज्ञान, श्यामसुन्दरदास)

मनुष्य और मनुष्य के बीच, वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा विचारों को व्यक्त करती है, पर विचारों से अधिक सम्बन्ध उसके वक्ता के भाव, इच्छा, प्रश्न आदि मनोभावों से रहता है। भाषा सदा किसी न किसी वस्तु के विषय में कुछ कहती है, वह वस्तु चाहे बाह्य भौतिक जगत् की हो अथवा सर्वथा आध्यात्मिक और मानसिक। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। भाषा का शरीर प्रधानतः उन व्यक्त ध्वनियों से बना है, जिन्हें वर्ण कहते हैं। इसके अतिरिक्त संकेत, मुख-विकृति और स्वर-विकार भी भाषा के अङ्ग माने जाते हैं। स्वर, बल-प्रयोग और उच्चारण का वेग या प्रवाह भी भाषा के विशेष अङ्ग हैं। 'बोली' से अभिप्राय स्थानीय और घरेलू बोली से है, जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलनेवालों के मुख में ही रहती है। 'विभाषा' का क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है। एक प्रान्त अथवा उपप्रान्त की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा 'विभाषा' कहलाती है। इसे प्रान्तीय भाषा भी कहते हैं। कई विभाषाओं में व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट परिगृहीत विभाषा ही 'भाषा' कहलाती है। विभाषा ही भाषा बनती है और वह धार्मिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणों से प्रोत्साहन पाकर अपना क्षेत्र अधिक से अधिक व्यापक और विस्तृत बनाती है।

(२८) अर्थ-विकास　　(अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन)

यास्क ने निरुक्त में सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है कि किस प्रकार वस्तुओं के नाम पड़ते हैं और आगे चलकर किस प्रकार उनके अर्थों में विस्तार या संकोच होता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में और भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस पर विस्तृत विचार किया है। अर्थविकास की तीन धाराएँ हैं—अर्थसंकोच, अर्थविस्तार और अर्थादेश। एक शब्द जो अपने यौगिक या निर्वचनात्मक अर्थ के आधार पर नानार्थक और व्यापक होना चाहिए था, उसके अर्थों में संकोच हो जाने से उसका व्यापक रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है। जैसे—गौ, अश्व, परिव्राजक, जीवन आदि में अर्थसंकोच होने से इनका निर्वचनात्मक अर्थ में प्रयोग नहीं हो सकता है। जहाँ शब्द का मूल अर्थ विस्तृत होकर अन्य अर्थों का भी बोध कराता है, वहाँ अर्थ-विस्तार होता है। जैसे—प्रवीण, कुशल, तैल, गोशाला आदि शब्दों के अर्थों में विस्तार हो गया है। जहाँ पर शब्द अपने मूल अर्थ को छोड़ कर नए अर्थ को अपना लेता है, वहाँ अर्थादेश होता है। जैसे—सह् धातु वेद में जीतने अर्थ में है, पर अब उसका अर्थ सहना हो गया है।

संकेत—(२७) परिवारैरुपयुज्यमानया गिरा, नाममात्रमपि। (२८) अर्थान्तराण्यवगमति। अभिनवमर्थमात्मसात् करोति। जयार्थे वर्तते, मर्षणार्थे व्यवह्रियते।

(२९) (क) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा (दशरूपक और साहित्यदर्पण)

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। वस्तु को कथावस्तु भी कहते हैं। वस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है—(१) आधिकारिक—वह कथावस्तु है जो मुख्य कथा होती है। (२) प्रासंगिक—वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) प्रख्यात—जो इतिहास पर अवलम्बित हो। (२) उत्पाद्य—कवि कल्पित हो। (३) मिश्र—कुछ अंश ऐतिहासिक हो और कुछ कवि-कल्पित। नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाएँ और पाँच सन्धियाँ होती हैं। अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथा-वस्तु के पाँच तत्त्व हैं। ये प्रयोजन की सिद्धि के कारण होते हैं। (१) बीज—वह तत्त्व है, जो प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही विस्तार हो। (२) बिन्दु—यह अवान्तर कथा से मूल कथा के टूटने पर उसे जोड़ता और आगे बढ़ाता है। (३) पताका—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) प्रकरी—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर तक चलती है। (५) कार्य—जो साध्य या लक्ष्य होता है, उसे कार्य कहते हैं।

(३०) (ख) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

नाटकीय कार्य की प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं। (२) यत्न—फल की प्राप्ति के लिए नायक जो बड़े वेग से प्रयत्न करता है, उसे यत्न कहते हैं। (३) प्राप्त्याशा—अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के द्वारा फल प्राप्ति की कभी सम्भावना और कभी असम्भावना, इस सदिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं। (४) नियताप्ति—इसमें विघ्नों के हट जाने से फल-प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है। (५) फलागम—जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है। पाँचों अर्थप्रकृतियों को क्रमशः पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती है, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) मुख—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) प्रतिमुख सन्धि—बिन्दु और यत्न को मिलाकर। (३) गर्भ-सन्धि—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर। (४) विमर्श-सन्धि—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर। (५) उपसंहृति या निर्वहण-सन्धि—कार्य और फलागम को मिलाकर। नाटक में अभिनय चार प्रकार का होता है:—(१) आङ्गिक—शरीर के अंगों के द्वारा। (२) वाचिक—वाणी के द्वारा। (३) आहार्य—वेषभूषा के द्वारा। (४) सात्त्विक—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, अश्रु आदि के द्वारा।

संकेत—(२९) अल्पमात्र समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति। अवान्तरार्थ-विच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्। व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते। प्रासङ्गिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता। समापनं तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति सम्मतम्।

(२७) भाषा और भाषण (भाषाविज्ञान, श्यामसुन्दरदास)

मनुष्य और मनुष्य के बीच, वस्तुओ के विषय मे अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-सकेतो का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते है। भाषा विचारो का व्यक्त करती है, पर विचारो से अधिक सम्बन्ध उसके वक्ता के भाव, इच्छा, प्रश्न आदि मनोभावों से रहता है। भाषा सदा किसी न किसी वस्तु के विषय मे कुछ कहती है, वह वस्तु चाहे बाह्य भौतिक जगत् की हो अथवा सर्वथा आध्यात्मिक और मानसिक। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। भाषा का शरीर प्रधानत. उन व्यक्त ध्वनियों से बना है, जिन्हे वर्ण कहते है। इसके अतिरिक्त सकेत, मुख-विकृति और स्वर-विकार भी भाषा के अङ्ग माने जाते है। स्वर, बल-प्रयोग और उच्चारण का वेग या प्रवाह भी भाषा के विशेष अङ्ग है। 'बोली' से अभिप्राय स्थानीय और घरेलू बोली से है, जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलनेवालो के मुख मे ही रहती है। 'विभाषा' का क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है। एक प्रान्त अथवा उपप्रान्त की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा 'विभाषा' कहलाती है। इसे प्रान्तीय भाषा भी कहते है। कई विभाषाओं मे व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट परिगृहीत विभाषा ही 'भाषा' कहलाती है। विभाषा ही भाषा बनती है और वह धार्मिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणो से प्रोत्साहन पाकर अपना क्षेत्र अधिक से अधिक व्यापक और विस्तृत बनाती है।

(२८) अर्थ-विकास (अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन)

यास्क ने निरुक्त मे सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है कि किस प्रकार वस्तुओं के नाम पडते है और आगे चलकर किस प्रकार उनके अर्थों में विस्तार या सकोच होता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य मे और भर्तृहरि ने वाक्यपदीय मे इस पर विस्तृत विचार किया है। *अर्थविकास की तीन धाराएँ है—अर्थसकोच, अर्थविस्तार* और अर्थादेश। एक शब्द जो अपने यौगिक या निर्वचनात्मक अर्थ के आधार पर नानार्थक और व्यापक होना चाहिए था, उसके अर्थों मे सकोच हो जाने से उसका व्यापक रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है। जैसे—गो, अश्व, परिव्राजक, जीवन आदि मे अर्थसकोच होने से इनका *निर्वचनात्मक अर्थ मे प्रयोग नही हो* सकता है। जहाँ शब्द का मूल अर्थ विस्तृत होकर अन्य अर्थों का भी बोध कराता है, वहाँ अर्थ-विस्तार होता है। जैसे—प्रवीण, कुशल, तैल, गोशाला आदि शब्दो के अर्थों मे विस्तार हो गया है। जहाँ पर शब्द अपने मूल अर्थ को छोड कर नए अर्थ को अपना लेता है, वहाँ अर्थादेश होता है। जैसे—सह् धातु वेद मे जीतने अर्थ मे है, पर अब उसका अर्थ सहना हो गया है।

संकेत—(२७) परिवारेषूपयुज्यमानया गिरा, नाममात्रमपि। (२८) अर्थान्तराण्यवगमति। अभिनवमर्थमात्मसात् करोति। जयार्थे वर्तते, मर्षणार्थे व्यवह्रियते।

(२९) (क) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा (दशरूपक और साहित्यदर्पण)

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। वस्तु को कथावस्तु भी कहते हैं। वस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है—(१) आधिकारिक—वह कथावस्तु है जो मुख्य कथा होती है। (२) प्रासंगिक—वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) प्रख्यात—जो इतिहास पर अवलम्बित हो। (२) उत्पाद्य—कवि कल्पित हो। (३) मिश्र—कुछ अंश ऐतिहासिक हो और कुछ कवि-कल्पित। नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाएँ और पाँच सन्धियाँ होती हैं। अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथा-वस्तु के पाँच तत्त्व हैं। ये प्रयोजन की सिद्धि के कारण होते हैं। (१) बीज—वह तत्त्व है, जो प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही विस्तार हो। (२) बिन्दु—यह अवान्तर कथा से मूल कथा के टूटने पर उसे जोड़ता और आगे बढ़ाता है। (३) पताका—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) प्रकरी—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर तक चलती है। (५) कार्य—जो साध्य या लक्ष्य होता है, उसे कार्य कहते हैं।

(३०) (ख) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

नाटकीय कार्य की प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं। (२) यत्न—फल की प्राप्ति के लिए नायक जो बड़े वेग से प्रयत्न करता है, उसे यत्न कहते हैं। (३) प्राप्त्याशा—अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के द्वारा फल प्राप्ति की कभी सम्भावना और कभी असम्भावना, इस संदिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं। (४) नियताप्ति—इसमें विघ्नों के हट जाने से फल-प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है। (५) फलागम—जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है। पाँचों अर्थप्रकृतियों को क्रमशः पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) मुख—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) प्रतिमुख सन्धि—बिन्दु और यत्न को मिलाकर। (३) गर्भ-सन्धि—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर। (४) विमर्श-सन्धि—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर। (५) उपसंहृति या निर्वहण-सन्धि—कार्य और फलागम को मिलाकर। नाटक में अभिनय चार प्रकार का होता है—(१) आङ्गिक—शरीर के अंगों के द्वारा। (२) वाचिक—वाणी के द्वारा। (३) आहार्य—वेशभूषा के द्वारा। (४) सात्त्विक—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, अश्रु आदि के द्वारा।

संकेत—(२९) अल्पमात्र समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति। अवान्तरार्थ-विच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्। व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते। प्रासङ्गिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता। समापनं तु यत्सिद्धयै तत्कार्यमिति सम्मतम्।

(३१) (ग) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

रगमच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथा-वस्तु के दो विभाग किये गये है—(१) सूच्य—नीरस या अनुचित घटनाएँ, जिनकी केवल सूचना दे दी जाती है। (२) दृश्य श्रव्य—दर्शनीय और श्रवणीय वस्तुएँ, जिनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओ को जिन उपायो से सूचित किया जाता है, उन्हे अर्थोपक्षेपक कहते है। वे पॉच है—(१) विष्कम्भक—भूत और भावी घटनाओ की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रो के द्वारा दी जाती है। एक या दो मध्यम कोटि के पात्र हों तो 'शुद्ध विष्कम्भक', नीच और मध्यम दोनों कोटि के पात्र हो तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहते हैं। इनकी भाषा सस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होती है। (२) प्रवेशक—भूत और भावी घटनाओ की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रो के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा केवल प्राकृत ही होती है। (३) चूलिका—पर्दे के पीछे से वस्तु या घटना की सूचना देना। जैसे—नेपथ्य से कथन। (४) अकास्य—अक की समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा अगले अक की घटना की सूचना देना। (५) अकावतार—अक की समाप्ति के पहले ही अगले अक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।

(३२) (घ) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से कथावस्तु के तीन विभाग किये गये है—(१) सर्वश्राव्य या प्रकाश—जो बात सबको सुनाने योग्य है! (२) अश्राव्य या स्वगत—जो बात सुनाने के योग्य न हो और मन-ही-मन कही जाए। (३) नियत-श्राव्य—जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग हैं—(क) जनान्तिक—हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावें। (क) अपवारित—मुँह फेरकर किसी दूसरे पात्र की गुप्त बात कहना। एक और भेद आकाशभाषित है, ऊपर मुँह करके स्वय ही अकेले बात करना। नाटक मे चार वृत्तियॉ या शैलियॉ होती हैं—(१) कैशिकी वृत्ति—यह शृगारप्रधान नाटकों के उपयुक्त है। इसमें मनोहर वेषभूषा, स्त्रियो की अधिकता, नृत्य-गीत का बाहुल्य और शृङ्गाररस की मुख्यता होती है। (२) सात्त्वती वृत्ति—यह वीररस-प्रधान नाटको के योग्य है। इसमे सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया, ऋजुता आदि गुणो का बाहुल्य होता है, शोक का अभाव और हर्ष का विस्तार होता है। (३) आरभटी वृत्ति—यह रौद्र और बीभत्सरसों के योग्य है। इसमे माया, इन्द्रजाल, सग्राम, क्रोध, वध, बन्धन आदि कार्य मुख्य होते हैं। (४) भारती वृत्ति—इसका सभी रसों में उपयोग होता है। इसमें सस्कृत का प्रयोग अधिक होता है, स्त्रियॉ नहीं होती हैं, वाचिक कार्य अधिक होता है।

संकेत—(३१) अन्तर्जवनिकासस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका। (३२) (१) सर्वश्राव्य प्रकाश स्यात्। (२) अश्राव्य खलु यद्वस्तु तदिह स्वगत मतम्। (क) त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्। अन्योन्यामन्त्रण यत्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्। (ख) तद्भवेदपवारितम्। रहस्य तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते।

(३३) भाव या मनोविकार (रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि)

नाना विषयों के बोध या विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के वे भिन्न-भिन्न योग सघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। अत. हम कह सकते हैं कि सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विपय-भेद के अनुसार प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारो का जटिल रूप धारण करती है। मनोविकारों या भावो की अनुभूतियाँ परस्पर तथा सुख या दुःख की मूल अनुभूति से ऐसी ही भिन्न होती हैं, जैसे रासायनिक मिश्रण परस्पर तथा अपने सयोजक द्रव्यो से भिन्न होते हैं। समस्त मानव जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूप में पाये जाते हैं। शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के सघटन में ही समझना चाहिए। लोक-रक्षा और लोक-रजन की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है।

(३४) श्रद्धा-भक्ति (चिन्तामणि)

किसी मनुष्य में जन-साधारण से विशेष गुण या शक्ति का विकास देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य-बुद्धि का सचार है। प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम प्रिय के स्वाधीन कार्यों पर ही निर्भर नहीं। कभी-कभी किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है। पर श्रद्धा ऐसी नहीं है। प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। श्रद्धा का व्यापार-स्थल विस्तृत है, प्रेम का एकान्त। प्रेम मे घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं, श्रद्धा मे तीन। प्रेम एकमात्र अपने ही अनुभव पर निर्भर रहता है, पर श्रद्धा दूसरों के अनुभव पर भी जगती है।

संकेत—(३३) मूले, प्रेरकत्वेनोपलभ्यन्ते, अवगन्तव्यम्, आधार, उपस्थाप्यते। (३४) पर्याप्तमेतदेव, रोचेत, कमपि विषयमवलम्ब्य समुन्नत्या, एकान्तम्, उद्बुध्यते।

(३५) कविता क्या है ? (चिन्तामणि)

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते है। इस साधना को हम भावयोग कहते है और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते है। कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ सम्बन्धो के सकुचित मडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियो के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियो का सचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता मे लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारो का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।

(३६) काव्य मे लोक-मंगल की साधनावस्था (चिन्तामणि)

सत्, चित् और आनन्द—ब्रह्म के इन तीन स्वरूपो मे से काव्य और भक्ति-मार्ग 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक मे इस आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ पाई जाएँगी—साधनावस्था और सिद्धावस्था। आनन्द की साधनावस्था प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलती है और सिद्धावस्था उपभोग पक्ष को लेकर। साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्य हैं—रामायण, महाभारत, रघुवश, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय आदि। सिद्धावस्था को लेकर चलने वाले काव्य हैं—आर्यासप्तशती, अमरुशतक, गीतगोविन्द आदि। लोक मे फैली दु:ख की छाया को हटाने मे ब्रह्म की आनन्दकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता मे भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धो का यही सामजस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामजस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है। धर्म और मगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। काव्य मे सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार आनन्द-कला के विकास में ही योग देते है।

संकेत—(३५) समकक्षत्वेन मन्यामहे। आक्षिप्य। भूमिमेतामारूढस्य मनुजस्य, आत्मावबोधोऽपि न जायते। विलापयति। (३६) आश्रित्य प्रवृत्तौ। अनुशीलनेन, अवस्थाद्वयमुपलप्स्यते। अवलम्ब्य प्रवर्तते। प्रवृत्तानि। प्रसृताम्, अपहर्तुम्, गभीरा। सगच्छते (सम् + गम् आत्मनेपदी)। ज्योतिरिदम्, विदारयत् प्रस्फुटति। साहाय्यमादधति।

(३७) साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद (चिन्तामणि)

जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप मे नही लाया जाता कि वह सामान्यत सबके उसी भाव का आलम्बन हो सके, तब तक उसमे रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप मे लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है। सच्चा कवि वही है, जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक हृदय मे हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है। भाव और विभाव दोनो पक्षो के सामजस्य के बिना पूरी और सच्ची रसानुभूति हो नही सकती। काव्य का विषय सदा 'विशेष' होता है, 'सामान्य' नहीं, वह 'व्यक्ति' सामने लाता है, 'जाति' नहीं। काव्य का काम है कल्पना मे बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नही। 'बिम्ब' जब होगा तब विशेष या व्यक्ति का ही होगा, सामान्य या जाति का नहीं।

(३८) रसात्मक-बोध के विविध स्वरूप (चिन्तामणि)

ससार-सागर की रूप तरगों से ही मनुष्य की कल्पना का निर्माण और इसी की रूप-गति से उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारो का विधान हुआ है। सौन्दर्य, माधुर्य, विचित्रता, भीषणता, क्रूरता आदि की भावनाएँ बाहरी रूपो और व्यापारो से ही निष्पन्न हुई हैं। हमारे प्रेम, भय, आश्चर्य, क्रोध, करुणा आदि भावो की प्रतिष्ठा करने वाले मूल आलम्बन बाहर ही के हैं। रूप विधान तीन प्रकार के हैं—(१) प्रत्यक्ष रूप-विधान, (२) स्मृत रूप-विधान, (३) कल्पित रूप विधान। (१) प्रत्यक्ष रूप-विधान भावुकता की प्रतिष्ठा करने वाले मूल आधार या उपादान हैं। इन प्रत्यक्ष रूपो की मार्मिक अनुभूति जिनमे जितनी ही अधिक होती है, वे उतने ही रसानुभूति के उपयुक्त होते हैं। (२) स्मृति दो प्रकार की होती है—(क) विशुद्ध स्मृति—वह स्मृति जो हमारी मनोवृत्ति को शुद्ध मुक्त भावभूमि मे ले जाती है। जैसे—प्रिय-स्मरण, बाल्यकाल या यौवनकाल के अतीत जीवन का स्मरण। (ख) प्रत्यभिज्ञान—यह प्रत्यक्ष-मिश्रित स्मरण है। प्रत्यभिज्ञान में थोडा-सा अश प्रत्यक्ष होता है और बहुत-सा अश उसी के सम्बन्ध मे स्मरण द्वारा उपस्थित होता है। जैसे—'यह वही है' के द्वारा व्यक्ति को देखकर यह वही झगडालू व्यक्ति है, जो उस दिन झगडा कर रहा था, यह स्मरण करना। (३) कल्पना—काव्य-वस्तु का सारा रूप-विधान इसी क्रिया से होता है। वचनो द्वारा भाव-व्यजना के क्षेत्र मे कल्पना को पूरी स्वच्छन्दता रहती है।

संकेत—(३७) नैतद्रूप प्राप्यते, भवेत्, न भवति। एतद्रूपता प्रापणमेव। ०हृदय परिचिनोति। व्यस्य। वास्तविकी। उपस्थापयति। उपस्थापनम्, आहरणम्। (३८) बाह्यरूपेभ्य, निष्पन्ना'। प्रतिष्ठापकानि। बाह्यान्येव। नयति। स्तोकाश, भूयानश। कलहप्रिय.। विवदमानोऽभवत्। कल्पना पूर्णस्वातन्त्र्यमनुभवति।

(३९) विराग या अनुराग (चित्रलेखा)

विराग मनुष्य के लिए असम्भव है, क्योंकि विराग नकारात्मक है। विराग का आधार शून्य है—कुछ नहीं है। ऐसी अवस्था मे जब कोई कहता है कि वह विरागी है, गलत कहता है, क्योंकि उस समय वह यह कहना चाहता है कि उसका ससार के प्रति विराग है। पर साथ ही किसी के प्रति उसका अनुराग अवश्य है, और उसके अनुराग का केन्द्र है ब्रह्म। जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं। मनुष्य का कर्तव्य है अनुराग, विराग नहीं। 'ब्रह्म से अनुराग' के अर्थ होते हैं—ब्रह्म से पृथक् वस्तु की उपेक्षा, अथवा उसके प्रति विराग। पर वास्तव में देखा जाए तो विरागी कहलानेवाला व्यक्ति वास्तव मे विरागी नहीं, अपितु ईश्वरानुरागी होता है। क्या ससार से विराग और ब्रह्म से अनुराग—ये दोनों एक चीज हैं ?

(४०) पाप और पुण्य (चित्रलेखा)

ससार मे पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मन:प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मन-प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ?

मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। परन्तु व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन मे देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा मे देखते हैं, कुछ सुख को सत्कर्म में देखते है और कुछ दुष्कर्म में, कुछ सुख को त्याग में देखते हैं और कुछ सग्रह मे, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति ससार में अपनी इच्छानुसार ऐसा काम नहीं करेगा, जिससे दु:ख मिले। यही मनुष्य की मन:-प्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है। ससार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम वही करते हैं जो हमें करना पड़ता है।

संकेत—(३९) असद्रूप. स, विरक्त इति, मृषाऽभिधानं तत्, परमार्थत., विरक्त इति, ईश्वरानुरक्त, किमुभयमेतत् पर्यायत्वेन गणनीयम्। (४०) अवनिरङ्गे, आवर्तयति, स्वस्य प्रभु, साधनमात्र स, न भूता न भविष्यति, यद् विवशत्वेन विधेयं भवति।

(१२) सुभाषित-मुक्तावली

सूचना—(१) सुभाषित विषयानुसार अकारादि-क्रम से दिये गये हैं। (२) सुभाषितों के आगे ग्रन्थ-नाम संक्षेप मे दिया गया है, जिस ग्रन्थ से वह सुभाषित सकलित किया गया है। (३) जिन सुभाषितों का विवरण अज्ञात या सन्दिग्ध है, उनके आगे ग्रन्थ-नाम नहीं दिया गया है। (४) सुभाषित वर्गों और उपवर्गों में विषय के आधार पर विभाजित किये गये हैं। (५) संक्षेप के लिए ग्रन्थो के निम्नलिखित सकेत दिये गये हैं।

संकेत-सूची

अ० = अनर्घराघव
उ० = उत्तररामचरित
ऋग् = ऋग्वेद
क० = कथासरित्सागर
का० = कादम्बरी
का० नी० = कामन्दकीयनीति
काव्या० = काव्यादर्श
कि० = किरातार्जुनीय
कु० = कुमारसम्भव
कुव० = कुवलयानन्द
गी० = भगवद्गीता
गु० = गुणरत्न
घ० = घटखर्परकाव्य

च० = चरकसहिता
चा० = चाणक्यनीति
चौ० = चौरपचाशिका
द० = दशकुमारचरित
दृ० = दृष्टान्तशतक
नै० = नैषधीयचरित
प० = पञ्चतन्त्र
प्र० = प्रसन्नराघव
भ०=भर्तृहरिशतकत्रय
भा० = भागवतपुराण
म० = मनुस्मृति
महा० = महाभारत
मा० = मालतीमाधव

मृ० = मृच्छकटिक
मे० = मेघदूत
यजु० = यजुर्वेद
यो० = योगवासिष्ठ
र० = रघुवंश
रा० = रामायण(वाल्मीकीय)
वि० = विक्रमोर्वशीय
शा० = अभिज्ञानशाकुन्तल
(शाकुन्तल)
शा० प० = शार्ङ्गधरपद्धति
शि० = शिशुपालवध
ह० = हर्षचरित
हि० = हितोपदेश

(१) भारत-प्रशंसा

(क) भारत-प्रशंसा

१. दुर्लभ भारते जन्म मानुष्य तत्र दुर्लभम्।

(ख) भूमि-प्रशंसा

१. बहुरत्ना वसुन्धरा। २. बहाश्चर्या हि मेदिनी (क०)।

(ग) जन्मभूमि-प्रशंसा

१. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। २ प्राणिना हि निकृष्टाऽपि जन्मभूमि परा प्रिया (क०)।

(२) अध्यात्म

(क) अध्यात्म

१. अमृतायते हि सुतपः सुकर्मणाम् (कि०)। २. इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जनः (कि०)। ३ उदिते परमानन्दे नाहं न त्वं न वै जगत्। ४ एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते। ५. किमिवास्ति यन्न तपसामदुष्करम् (कि०)। ६. छाया न मूर्छति मलोपहतप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा (शा०)। ७. जपतो नास्ति पातकम्। ८ ज्ञानमार्गे ह्यहंकारः परिघो दुरतिक्रमः (क०)। ९. तपःसीमा मुक्तिः। १०. तपोऽधीनानि श्रेयांसि ह्युपायोऽन्यो न विद्यते (क०)। ११ तपोधीना हि संपदः (क०)। १२ दृष्टतत्त्वश्च न पुनः कर्मजालेन बध्यते (क०)। १३ धन्यास्ते भुवि ये निवृत्तमनसा धिग्दुःखितान् कामिनः। १४ न मुक्तेः परमा गतिः (यो०)। १५ न वैराग्यात् परं भाग्यम्। १६. न शान्तेः परमं सुखम्। १७. नहि महतां सुकरः समाधिभङ्गः (कि०)। १८ निरुत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः (क०)। १९. निवृत्तपापसम्पर्काः सन्तो यान्ति हि निर्वृतिम् (क०)। २० निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् (हि०)। २१ निस्पृहस्य तृणं जगत्। २२ बोधे बोधे सच्चिदानन्दभासः। २३ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः (गी०)। २४. लब्धदिव्यरसास्वादः को हि रज्येद् रसान्तरे (क०)। २५ वाञ्छारत्नं परमपदवी। २६. विरक्तस्य तृणं जगत्। २७ विरक्तस्य तृणं भार्या। २८ शीलयन्ति यतयः सुशीलताम् (कि०)। २९ साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः (निरुक्त)। ३०. साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः (उ०)। ३१. साधने हि नियमोऽन्यजनानां योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः (नै०)। ३२. सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः। ३३ स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः (शा०)।

(ख) कर्मफल

१ अयि खलु विषमः पुराकृतानां, भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः। २. आत्मकृतानां हि दोषाणां नियतमनुभवितव्यं फलमात्मनैव (का०)। ३ कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते (नै०)। ४. कर्मदोषाद् दरिद्रता। ५. कर्मानुगो गच्छति जीव एकः (भा०)। ६ कर्मायत्तं फलं पुंसाम्। ७ गहना कर्मणो गतिः (गी०)। ८. चित्रा गतिः कर्मणाम्। ९. जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि (का०)। १० प्राचीनकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति (महा०)। ११ भद्रकृत् प्राप्नुयाद् भद्रमभद्रं चाप्यभद्रकृत् (क०)। १२ भद्रमभद्रं वा कृतमात्मनि कल्प्यते (क०)। १३. स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः।

(ग) दर्शन

१ अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मन (कि०)। २. भस्मीभूतस्य जीवस्य पुनरागमन कुत (नै०)। ३ भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत.। ४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु०)। ५. मनो हि जन्मान्तरसगतिज्ञम् (र०)। ६ यस्यामेव वेलाया चित्तवृत्ति, सैव वेला सर्वकार्येषु (का०)। ७ वक्ति जन्मान्तरप्रीति मन. स्निग्धदकारणम् (क०)। ८ विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तय (कि०)। ९ विचित्रा. खलु वासना। १० विमल कलुषीभवच्च चेत कथयत्येव हितैषिण रिपु वा (कि०)। ११ सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय. (शा०)। १२ सदा स्याद्योऽत्र यच्चित्तस्तन्मयत्वमुपैति स (क०)। १३ सर्वश्चित्तप्रमाणेन सदसद् वाऽभिवाञ्छति (क०)। १४ सिद्धि वा यदि वाऽसिद्धि चित्तोत्साहो निवेदयेत् (प०)।

(घ) देव-कृपा

१ अमोघो देवताना च प्रसाद· किं न साधयेत् (क०)। २ देवा हि नान्यद् वितरन्ति किन्तु प्रसद्य ते साधुधिय ददन्ते (नै०)। ३ दोषोऽपि गुणता याति, प्रभोर्भवति चेत्कृपा। ४ न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्। य तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या सयोजयन्ति तम् (महा०)। ५ प्रसन्ने हि किमप्राप्यमस्तीह परमेश्वरे (क०)। ६. विषमप्यमृत क्वचिद् भवेदमृत वा विषमीश्वरेच्छया (र०)। ७ सानुकूले जगन्नाथे विप्रिय. सुप्रियो भवेत्।

(ङ) दैव-स्वरूप (दैवप्रशसा, दैवनिन्दा, भाग्य, भाग्यहीन)

१ अनतिक्रमणीया हि नियति (का०)। २ अपि धन्वन्तरिर्वैद्य· कि करोति गतायुषि। ३. अभद्र भद्र वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः। ४ असभाव्या अपि नृणा भवन्तीह समागमा. (क०)। ५ असाध्य साधयत्यर्थं हेलयाऽभिमुखो विधि. (क०)। ६ अहह कष्टमपण्डितता विधे (भ०)। ७ अहो दैवाभिशप्ताना प्राप्तोऽप्यर्थं पलायते (क०)। ८ अहो नवनवाश्चर्यनिर्माणे रसिको विधि. (क०)। ९ अहो विधेरचिन्त्यैव गतिरद्भुतकर्मणाम् (क०)। १० अहो विधौ विपर्यस्ते न विपर्यस्यतीह किम् (क०)। ११ ईदृशी भवितव्यता (कि०)। १२. कल्पवृक्षोऽप्यभव्याना प्रायो याति पलाशताम् (क०)। १३ कस्यात्यन्त सुखमुपनत, दु खमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे०)। १४ कि हि न भवेदीश्वरेच्छया (क०)। १५ को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्ति कदा कीदृशी। १६ को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे (उ०)। १७ को हि स्वशिरसच्छाया विदेशोल्लङ्घयेद् गतिम (क०)। १८ क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम्। १९ दैवो दुर्बलघातक। २० दैवमेव हि साहाय्य कुरुते सत्त्वशालिनाम्(क०)। २१. दैवी विचित्रा गति.। २२ दैवे दुर्जनता गते तृणमपि

प्रायेण वज्रायते । २३. दैवे निरुन्धति निबन्धनता वहन्ति, हन्त प्रयासपरुषाणि न पौरुषाणि (नै०) । २४ दैवेनैव हि साध्यन्ते सदर्थाः शुभकर्मणाम् (क०) । २५. न च दैवात् परं बलम् । २६. ननु दैवमेव शरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् । २७. न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः (र०) । २८. न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम् (द०) । २९ नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः । ३० नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे०) । ३१ नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम् (भ०) । ३२. नैवान्यथा भवति यल्लिखितं विधात्रा । ३३ प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता (शि०) । ३४. प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति (हि०) । ३५. प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः (भ०) । ३६. फलं भाग्यानुसारतः (महा०) । ३७. बलवति सति दैवे बन्धुभिः किं विधेयम् । ३८. बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा (महा०) । ३९. भवितव्यता बलवती (शा०) । ४० भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः (महा०) । ४१. भवितव्यस्य नासाध्यं दृश्यते बत दृश्यताम् (क०) । ४२. भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (शा०) । ४३ यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः (हि०) । ४४. यदभावि न तद्भावि, भावि चेन्न तदन्यथा (हि०) । ४५ लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः । ४६. वक्रे विधौ वद कथं व्यवसायसिद्धिः । ४७ वामे विधौ नहि फलन्त्यभिवाञ्छितानि । ४८ विधिरहो बलवानिति मे मतिः (भा०) । ४९ विधिरुच्छृङ्खलो नृणाम् । ५० विधिर्हि घटयत्यर्थानचिन्त्यानपि सम्मुखः (क०) । ५१. विधिलिखितं बुद्धिरनुसरति । ५२ विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि । ५३ विधेर्विलासानपेक्ष्य तरज्ञान् को हि तर्कयेत् (क०) । ५४ शक्या हि केन निश्चेतुं दुर्ज्ञाना नियतेर्गतिः (क०) । ५५. शिरसि लिखितं लङ्घयति कः । ५६ साध्यासाध्यविचारं हि नेक्षते भवितव्यता (क०) ।

(च) धर्म-चर्चा

१. अचिन्त्यो बत दैवेनाप्यापातः सुखदुःखयोः (क०) । २ अधर्मविषवृक्षस्य पच्यते स्वादु किं फलम् (क०) । ३ अनपायि निबर्हणं द्विषां, न तितिक्षासममस्ति साधनम् (कि०) । ४. अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म (कु०) । ५ को धर्मः कृपया विना । ६. क्षमया किं न सिध्यति । ७. क्षान्तितुल्यं तपो नास्ति । ८. चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च (यो०) । ९. त्रैलोक्ये दीपको धर्मः । १० धर्मः कीर्तिर्द्वयं स्थिरम् (महा०) । ११. धर्मः सत्येन वर्धते । १२. धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति । १३ धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः (र०) । १४ धर्मस्य निहितं गुहायाम् (महा०) । १५ धर्मस्य त्वरिता गतिः (प०) । १६ धर्मेण

चरता सत्ये नास्त्यनभ्युदय क्वचित् (क०)। १७. धर्मेण हीना. पशुभि समानाः (हि०)। १८ धर्मो मित्र मृतस्य च। १९ धर्मो हि सान्निध्य कुरुते सताम् (क०)। २० न च धर्मो दयापरः। २१ न दयासदृश ज्ञानम्। २२. न धर्मवृद्धेषु वय समीक्ष्यते (कु०)। २३. न धर्मसदृश मित्रम्। २४. न धर्मात् परम मित्रम्। २५. नाधर्मश्चिरमृद्धये (क०)। २६ नानृतात् पातक परम्। २७ नास्ति सत्यसमो धर्म (महा०)। २८ निसर्ग-विरोधिनी चेय पय पावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्ति. (ह०)। २९ पथ. श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् (र०)। ३० प्रमाण परम श्रुति (महा०)। ३१. भवन्त्येव हि भद्राणि धर्मादेव यदादरात् (क०)। ३२ महेश्वरमनाराध्य न सन्तीप्सित-सिद्धय (क०)। ३३ यतः सत्य ततो धर्म.। ३४. यतो धर्मस्ततो जय। ३५ योगिना परिणमन् विमुक्तये, केन नाऽस्तु विनय. सता प्रिय. (कि०)। ३६ वचोभूषा सत्यम्। ३७ वित्तेन रक्ष्यते धर्मो, विद्या योगेन रक्ष्यते (चा०)। ३८ व्यक्तिमायाति महता माहात्म्यमनुकम्पया (क०)। ३९ श्रवणपुटरत्न हरिकथा। ४० श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति (महा०) ४१ श्रेयसि केन तृप्यते (शि०)। ४२. सत्य सम्यक् कृतोऽल्पोऽपि, धर्मो भूरिफलो भवेत् (क०)। ४३ सत्य कण्ठस्य भूषणम्। ४४ सत्य न तद् यच्छलमभ्युपैति। ४५ सत्यमेव जयते नानृतम्। ४६ सत्येन धार्यते पृथ्वी। ४७ स धार्मिको यः परमर्म न स्पृशेत्। ४८ सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम् (चा०)। ४९ स्वधर्मे निधन श्रेय, परधर्मो भयावह. (गी०)।

(३) अर्थ (धन)

(क) धन-निन्दा

१ अकाण्डपातोपनता न क लक्ष्मीर्विमोहयेत् (क०)। २ अकालमेघवद् वित्त-मकस्मादेति याति च (क०)। ३. आये दुःख व्यये दुःख धिगर्था. कष्टसंश्रयाः (प०)। ४ ऋद्धिश्चित्तविकारिणी। ५ कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः (प०)। ६ जलबुद्बुदसमाना विराजमाना सपत् तडिल्लतेव सहसैवोदेति, नश्यति च (द०)। ७ धनोष्मणा म्लायत्यल लतेव मनस्विता (ह०)। ८ मूर्च्छन्त्यमी विकारा' प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु (शा०)। ९ यत्रास्ति लक्ष्मीर्विनयो न तत्र। १० शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रिय. (कि०)। ११ सम्पत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति (ह०)। १२ साधुवृत्तानपि क्षुद्रा विक्षिपन्त्येव सम्पद. (कि०)।

(ख) धन-प्रशंसा

१ अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धु। २ अर्थेन बलवान् सर्व (प०)। ३ को न तृप्यति वित्तेन। ४. चाण्डालोऽपि नर' पूज्यो यस्यास्ति विपुल धनम्। ५ द्रव्येण सर्वे वशा.। ६ धर्न सर्वप्रयोजनम्। ७ निर्गलिताम्बुगर्भे, शरद्घन नार्दति चातकोऽपि (र०)।

८. पात्रत्वाद् धनमाप्नोति । ९ पुनर्धनाढ्य पुनरेव भोगी । १० पूज्य वाक्य समृद्धस्य । ११ भोगो भूषयते धनम् । १२. मातर्लक्ष्मि तव प्रसादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणा. । १३. लक्ष्मीर्यस्य गृहे स एव भजति प्रायो जगद्वन्द्यताम् । १४ लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुराप. कथमीप्सितो भवेत् (शा०) । १५ सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् (कि०) ।

(ग) निर्धनता (निर्धन)

१. अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम् (द०) । २. उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथा. । ३. कष्ट निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते । ४. कृशे कस्यास्ति सौहृदम् (प०) । ५. क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति (प०) । ६. दरिद्रता धीरतया विराजते । ७ दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् । ८ दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी (प०) । ९ दारिद्र्य परमाञ्जनम् (मा०) । १० न दरिद्रस्तथा दु'खी लब्धक्षीणधनो यथा । ११. निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (मृ०) । १२ निर्धनस्य कुतः सुखम् । १३ पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी । १४ पुष्प पर्युषित त्यजन्ति मधुपाः । १५. बुभुक्षित. कि न करोति पापम् (प०) । १६. बुभुक्षित न प्रतिभाति किञ्चित् । १७ बुभुक्षितैर्व्याकरण न भुज्यते । १८ रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय (मे०) । १९. विष गोष्ठी दरिद्रस्य । २०. वृक्ष क्षीणफल त्यजन्ति विहगाः । २१ सर्व शून्य दरिद्रस्य (प०) । २२ सर्वशून्या दरिद्रता ।

(४) काम (भोगनिन्दा)

(५) जगत्-स्वरूप

(क) जगत्-स्वरूप

१ असारेऽस्मिन् भवे तावद् भावा. पर्यन्तनीरसा. (क०) । २. न जाने ससार किममृतमय कि विषमय । ३ परिवर्तिनि ससारे मृत. को वा न जायते । ४ मधुरवि-धुरमिश्रा. सृष्टयो हा विधातु (प्र०) ।

(ख) नश्वरता

१. अतिद्रुतवाहिनी चानित्यतानदी (ह०) । २ अस्थिर जीवित लोके (हि०) । ३ अस्थिराः पुत्रदाराश्च (हि०) । ४ अस्थिरे धनयौवने (हि०) । ५ क्षणवि वसिन. काया. का चिन्ता मरणे रणे । ६ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुव जन्म मृतस्य च (गी०) । ७ धिगिमा देहभृतामसारताम् (र०) । ८ न खलु दैवस्तरसाद् विनश्वर सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वर. (नै०) । ९ मरण प्रकृति शरीरिणा विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधै. (र०) । १०. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ता. समुच्छ्रया. (महा०) ।

(ग) लोक-स्वभाव

१ अतिकष्टास्वप्यवस्थासु जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति सर्वप्राणिना प्रवृत्तयः (का०) । २ अहो धिग्वैषम्य लोकव्यवहारस्य (मृ०) । ३ आत्मवर्गहितमिच्छति सर्व (का०) । ४. गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् । ५ गतानुगतिको लोको न लोक पारमार्थिक. । ६ जनस्य रूढप्रणयस्य चेतस. किमप्यमर्षोऽनुनये भृशायते (कि०) । ७. जनानने क. करमर्पयिष्यति (नै०) । ८. ध्रुवमभिमते को वा पूर्णे मुदा न हि माद्यति (कु०) । ९ नवा वाणी मुखे मुखे । १० न सन्त्येव ते येषा सतामपि सता न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रव. (ह०) । ११ नहि सर्वविद सर्वे । १२ नहि सर्वेऽपि कुर्वन्ति सम्या युक्तिविवेचनम् । १३ पश्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि । उपकार्योपकर्तारो मित्रोदासीनशत्रव. (महा०) । १४ पिण्डे पिण्डे मतिभिन्ना तुण्डे तुण्डे सरस्वती । १५. पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूत जगत् । १६ प्रमादमोहित प्रायो न विचारक्षमो जन. (क०) । १७ भिन्नरुचिर्हि लोकः । १८ सर्व. स्वार्थं समीहते (शि०) ।

(घ) स्वभावो दुरतिक्रमः

१ आकण्ठजलमग्नोऽपि श्वा लिहत्येव जिह्वया । २ उत्सवप्रिया खलु मनुष्या (शा०) । ३ उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगाच्छैत्य हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य (र०) । ४ या यस्य प्रकृति स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते । ५ सता हि साधु शीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते । ६ सुतप्तमपि पानीय शमयत्येव पावकम् (प०) । ७ स्नापितोऽपि बहुशो नदीजलैर्गर्दभ. किमु हयो भवेत् क्वचित् । ८ स्वभावो दुरतिक्रम (प०) । ९ स्वभावो यादृशो यस्य न जहाति कदाचन (चा०) ।

८. पात्रत्वाद् धनमाप्नोति । ९ पुनर्धनाढ्य पुनरेव भोगी । १० पूज्य वाक्य समृद्धस्य । ११ भोगो भूषयते धनम् । १२. मातर्लक्ष्मि तव प्रसादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणा. । १३. लक्ष्मीर्यस्य गृहे स एव भजति प्रायो जगद्वन्द्यताम् । १४. लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रिय, श्रिया दुराप. कथमीप्सितो भवेत् (शा०) । १५. सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् (कि०) ।

(ग) निर्धनता (निर्धन)

१. अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम् (द०) । २. उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणा मनोरथा. । ३ कष्ट निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते । ४. कृशे कस्यास्ति सौहृदम् (प०) । ५ क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति (प०) । ६ दरिद्रता धीरतया विराजते । ७ दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् । ८. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी (घ०) । ९. दारिद्र्य परमाञ्जनम् (भा०) । १० न दरिद्रस्तथा दु खी लब्धक्षीणधनो यथा । ११. निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (मृ०) । १२ निर्धनस्य कुत. सुखम् । १३ पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी । १४ पुष्प पर्युषित त्यजन्ति मधुपाः । १५ बुभुक्षित. कि न करोति पापम् (प०) । १६. बुभुक्षित न प्रतिभाति किञ्चित् । १७. बुभुक्षितैर्व्याकरण न भुज्यते । १८ रिक्तः सर्वो भवति हि लघु. पूर्णता गौरवाय (मे०) । १९. विप गोष्ठी दरिद्रस्य । २० वृक्ष क्षीणफल त्यजन्ति विहगाः । २१ सर्व शून्यं दरिद्रस्य (प०) । २२ सर्वशून्या दरिद्रता ।

(४) काम (भोगनिन्दा)

१ अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिता. (र०) । २ अहो अतीव भोगाशा क नाम न विडम्बयेत् (क०) । ३ आकृष्ट. कामलोभाभ्यामपायः को न पश्यति (क०) । ४ आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिन. (कि०) । ५ कामक्रोधौ हि विप्राणा मोक्षद्वारार्गलावुभौ (क०) । ६ कामातुराणा न भय न लज्जा (भ०) । ७. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु (मे०) । ८ कुत सत्य च कामिनाम् । ९. कोऽवकाशो विवेकस्य हृदि कामान्धचेतस. (क०) । १० को हि मार्गममार्गं वा व्यसनान्धो निरीक्षते (क०) । ११ तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरम् । १२ दुर्जया हि विषया विदुषापि (नै०) । १३ न कामसदृशो रिपु (यो०) । १४ नास्ति कामसमो व्याधि । १५ भोगान् भोगानिवाहेयान् अध्यास्यापन्न दुर्लभा (कि०) । १६. वनेऽपि दोषा. प्रभवन्ति रागिणाम् (प०) । १७ विषयाकृष्यमाणा हि तिष्ठन्ति सुपथे कथम् (क०) । १८. विषयिण. कस्यापदोऽस्त गता । १९ श्रद्धेया विप्रलब्धार ' कामा. षथा हि शत्रव· (कि० ११-३५) । २० सङ्गात् सञ्जायते काम. (गी०) ।

(५) जगत्-स्वरूप

(क) जगत्-स्वरूप

१ असारेऽस्मिन् भवे तावद् भावा. पर्यन्तनीरसा. (क०)। २ न जाने संसार किममृतमय. किं विषमय । ३ परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते । ४ मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा विधातु. (प्र०)।

(ख) नश्वरता

१ अतिद्रुतवाहिनी चानित्यतानदी (ह०)। २ अस्थिरं जीवितं लोके (हि०)। ३ अस्थिराः पुत्रदाराश्च (हि०)। ४ अस्थिरे धनयौवने (हि०)। ५ क्षणविध्वंसिन. कायाः का चिन्ता मरणे रणे। ६ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च (गी०)। ७ धिगिमां देहभृतामसारताम् (र०)। ८ न वस्तु दैवस्वरसाद् विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वर' (नै०)। ९ मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधै. (र०)। १० सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ता. समुच्छ्रया. (महा०)।

(ग) लोक-स्वभाव

१. अतिकष्टास्वप्यवस्थासु जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति सर्वप्राणिनां प्रवृत्तय' (का०)। २ अहो धिग्वैषम्यं लोकव्यवहारस्य (मृ०)। ३ आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (का०)। ४. गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्। ५ गतानुगतिको लोको न लोक पारमार्थिक । ६ जनस्य रूढप्रणयस्य चेतस. किमप्यमर्षोऽनुनये भृशायते (कि०)। ७. जनानने क. करमर्पयिष्यति (नै०)। ८. ध्रुवमभिमते को वा पूर्णे मुदा न हि माद्यति (कु०)। ९ नवा वाणी मुखे मुखे। १० न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रवः (ह०)। ११ नहि सर्वविद. सर्वे। १२ नहि सर्वेऽपि कुर्वन्ति सम्या युक्तिविवेचनम्। १३ पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि। उपकार्यापकर्तारो मित्रोदासीनशत्रव (महा०)। १४ पिण्डे पिण्डे मतिभिन्ना तुण्डे तुण्डे सरस्वती। १५. पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्। १६ प्रमादमोहित प्रायो न विचारक्षमो जन' (क०)। १७ भिन्नरुचिर्हि लोकः। १८ सर्व. स्वार्थं समीहते (शि०)।

(घ) स्वभावो दुरतिक्रम.

१ आकण्ठजलमग्नोऽपि श्वा लिहत्येव जिह्वया। २ उत्सवप्रिया खलु मनुष्या (शा०)। ३ उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य (र०)। ४ या यस्य प्रकृति' स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते। ५ सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते। ६ सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् (प०)। ७ स्नापितोऽपि बहुशो नदीजलैर्गर्दभ किमु हयो भवेत् क्वचित्। ८ स्वभावो दुरतिक्रम (प०)। ९ स्वभावो यादृशो यस्य न जहाति कदाचन (चा०)।

(६) चातुर्वर्ण्य

(क) ब्राह्मण

१ असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः (प०)। २. तुष्यन्ति भोजनैर्विप्राः। ३. ब्राह्मणा मधुरप्रियाः। ४ शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् (गी०)। ५. सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानां, बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम् (उ०)।

(ख) क्षत्रिय

१. अधर्मयुद्धेन जयं को हीच्छेत् क्षत्रियो भवन् (क०)। २ कुराजान्तानि राष्ट्राणि (प०)। ३ क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः (र०)। ४. तत्कार्मुकं कर्मसु यस्य शक्तिः। ५. राजा प्रकृतिरञ्जनात्। ६. शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् (गी०)। ७. स क्षत्रियस्त्राणसहः सतां यः। ८. सङ्ग्रामो हि शूराणामुत्सवो हि महानयम् (क०)। ९ सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानां, बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम् (उ०)।

(ग) वैश्य

१. कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् (गी०)।

(घ) शूद्र

१. परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् (गी०)।

(७) जीवन

(क) बाल्य

१ कस्य नोच्छृङ्खलं बाल्यं गुरुशासनवर्जितम् (क०)। २ लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्। ३ स्वामिवत् पञ्चवर्षाणि दश वर्षाणि दासवत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।

(ख) यौवन

१ कस्य नेष्टं हि यौवनम् (क०)। २ किंचित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च। ३ सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्खलितम् (का०)। ४. सर्वथा न कञ्चिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा। ५ स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिव नहि रम्यं मृगदृशः। ६ हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि०)।

(ग) वार्धक्य

१ अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्। वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्। २. जरा रूपं हरति। ३. न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा (हि०)। ४. वृद्धस्य तरुणी विषम्। ५ वृद्धा जना निष्करुणा भवन्ति। ६ वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् (हि०)। ७. वृद्धा नारी पतिव्रता।

(घ) काल (अवसर)

१ कालयुक्त्या ह्यरिर्मित्र जायते न च सर्वदा (क०)। २. काले खलु समारब्धाः फल बध्नन्ति नीतयः (र०)। ३. काले दत्त वर ह्यल्पमकाले बहुनापि किम् (क०)। ४. कालेन फलते तीर्थं सद्य. साधुसमागम॰ (भा०)। ५. कुर्वन्त्यकालेऽभिव्यक्तिं न कार्यापेक्षिणो बुधा॰ (क०)। ६ समय एव करोति बलाबलम् (शि०)। ७ समये हि सर्वमुपकारि कृतम् (शि०)।

(ङ) काल (मृत्यु)

१ क कालस्य न गोचरान्तरगतः (म०)। २. कालस्य कुटिला गतिः। ३ कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी (मा०)। ४ मृत्यो सर्वत्र तुल्यता। ५ मृत्योर्बिभेषि किं बाले, न स भीत विमुञ्चति। ६ लङ्घ्यते न खलु कालनियोग. (कि०)। ७ सर्वः कालवशेन नश्यति। ८ सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथ कालाय तस्मै नमः।

(८) आरोग्य

१. अजीर्णे भोजन विषम् (हि०)। २ अहितो देहजो व्याधिः। ३. आत्मानमेव मन्येत कर्तार सुखदु खयोः (च०)। ४ दृष्टश्रुताभ्या सन्देहमवापोह्याचरेत् क्रिया. (सुश्रुत०)। ५ धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्य मूलमुत्तमम् (च०)। ६ न च व्याधिसमो रिपुः। ७ न नक्त दधि भुञ्जीत। ८ पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते (नै०)। ९ प्रतिकारविधानमायुष. सति शेषे हि फलाय कल्पते (र०)। १० मर्दन गुणवर्धनम्। ११ यथौषध स्वादु हित च दुर्लभम्। १२ रसमूला हि व्याधयः। १३. विकार खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भ. प्रतीकारस्य (शा०)। १४. व्याधितस्यौषध मित्रम्। १५. शरीर व्याधिमन्दिरम्। १६. शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम् (कु०)। १७. शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थ. स्याद् विशारदः (सुश्रुत०)। १८ सम्यक् प्रयोग सर्वेषा सिद्धिराख्याति कर्मणाम् (च०)। १९. सर्वथा च कञ्चन न स्पृशन्ति शरीरधर्माणमुपतापाः (का०)। २०. सुखार्थाः सर्वभूताना मताः सर्वा. प्रवृत्तय. (च०)। २१ स्वेद्यमामज्वर प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति (शि०)। २२ हितभुक् मितभुक् शाकभुक्। २३ हितमारण्यमौषधम्।

(९) राजधर्मादि

(क) राजधर्म (राजकर्म)

१ अरिषु हि विजयार्थिन. क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि (कि०)। २ अल्पीयसोऽप्यामयतुल्यवृत्तेर्महापकाराय रिपोर्विवृद्धिः (कि०)। ३ अविश्रमोऽय लोकतन्त्राधिकार. (शा०)। ४ आपन्नस्य विषयनिवासिन आर्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम् (शा०)। ५ आश्वस्तो वेत्ति कुसृति प्रभु को हि स्वमन्त्रिणाम् (क०)। ६ ईश्वराणा

हि विनोदरसिक मनः (कि०) । ७. ऋद्ध हि राज्य पदमैन्द्रमाहुः (र०) । ८. को नाम राज्ञा प्रियः (प०) । ९. क्षितिपतिः को नाम नीति विना । १०. गणयन्ति न राज्यार्थेऽपत्यस्नेह महीभुजः (क०) । ११. चाराञ्जानन्ति राजानः । १२. नयवर्त्मगाः प्रभवता हि धियः (कि०) । १३. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः । १४. नयेन चालक्रियते नरेन्द्रता । १५. नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके, जनपदहितकर्ता द्विष्यते पार्थिवेन्द्रैः (प०) । १६. नहीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् (कु०) । १७. नृपतिजनपदाना दुर्लभः कार्यकर्ता (प०) । १८. नृपस्य वर्णाश्रमपालन यत्स एव धर्मः (र०) । १९. परम लाभमरातिभङ्गमाहुः (कि०) । २०. पिशुनजन खलु बिभ्रति क्षितीन्द्राः । २१. पृथिवीभूषण राजा । २२. प्रजानामपि दीनाना राजैव सदयः पिता । २३. प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते (शि०) । २४. प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य (कु०) । २५ प्रभूणा हि विभूत्यन्धा धावत्यविषये मतिः (क०) । २६. प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणा प्रायश्चल गौरवमाश्रितेषु (कु०) । २७. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति त परिवेष्टयन्ति (प०) । २८. भजन्ति वैतसीं वृत्ति राजान. कालवेदिनः (क०) । २९. मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणः (प०) । ३०. महीपतीना विनयो हि भूषणम् । ३१. राजा राष्ट्रकृत पापम् । ३२. राजा सहायवान् शूरः सोत्साहो जयति द्विष (क०) । ३३. वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः (र०) । ३४. वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा (प०) । ३५. व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः, शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः (कि०) । ३६. शुचिः क्षेमकरो राजा । ३७. सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः । राज्ञा तु चरिता र्थता दुःखोत्तरैव (शा०) । ३८. स्वदेशे पूज्यते राजा (चा०) । ३९. हत सैन्यमनायकम् (चा०) ।

(ख) सद्भृत्य

१. अनियुक्तोऽपि च ब्रूयाद्यदीच्छेत् स्वामिनो हितम् (क०) । २. कथ हि लङ्घ्यते भृत्यैर्ग्रहिकस्य प्रभोर्वचः (क०) । ३ कालप्रयुक्ता खलु कर्मविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति (कु०) । ४ न किञ्चिन्न कारयत्यसाधारणी स्वामिभक्तिः (ह०) । ५. नास्त्यहो स्वामिभक्ताना पुत्रे वात्मनि वा स्पृहा (क०) । ६. प्राणैरपि हि भृत्याना स्वामिसरक्षण व्रतम् (क०) । ७. भृत्या अपि त एव ये सपत्तेर्विपत्तौ सविशेष सेवन्ते (का०) । ८. सभावना ह्यधिकृतस्य तनोति तेजः (कि०) । ९. सेवाधर्म. परमगहनो योगिनामप्यगम्य. (म०) । १०. स्वामिन्यसाध्यव्यसने सुख सन्मन्त्रिणा कुतः (क०) । ११. स्वाम्यायत्ताः सदा प्राणा भृत्यानामर्जिता धनै. (प०) ।

(१०) आचार

(क) कर्तव्य-बोधन

१. अर्थमनर्थं भावय नित्य, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् । २. आज्ञा गुरूणा ह्यविचारणीया (र०) । ३. आपदर्थे धन रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि (प०) । ४ उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत् (गी०) । ५. उद्धरेद् दीनमात्मान समर्थो धर्ममाचरेत् । ६ कर्तव्य हि सता वच. (क०) । ७. कर्तव्यो महदाश्रयः (प०) । ८. कस्यचित् किमपि नो हरणीय, मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम् । ९. गन्तव्य राजपथे । १०. न स्वेच्छ व्यवहर्तव्यमात्मनो भूतिमिच्छता (क०) । ११ न्याय्या वृत्ति समाचरेत् । १२. परमार्थमविज्ञाय न भेतव्य क्वचिन्नृभिः (क०) । १३ भवेन्न यस्य यत्कर्म, स तत्कुर्वन् विनश्यति (क०) । १४. मनःपूत समाचरेत् (का० नी०) । १५. मौन विधेय सतत सुधीभिः । १६ मौन सर्वार्थसाधकम् । १७. मौन स्वीकृतिलक्षणम् । १८ यद्यपि शुद्ध लोकविरुद्ध नाचरणीय नाचरणीयम् । १९ वचने का दरिद्रता । २०. वस्त्रपूत पिबेज्जलम् (का० नी०)। २१ विश्वास स्त्रीषु वर्जयेत् । २२. शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि । २३. सत्यपूता वदेद् वाणीम् । २४. सर्वथा व्यवहर्तव्य कुतो ह्यवचनीयता (उ०) । २५. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदा पदम् (कि०) । २६ सहसा हि कृत पाप कथ मा भूद् विपत्तये (क०) । २७. सुलभो हि द्विषा भङ्गो, दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि०) ।

(ख) १. कुसंगति-निन्दा

१. असता सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम् । २. असाधुयोगा हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीना विपदा पदानि (कि०) । ३. काम व्यसनवृक्षस्य मूल दुर्जनसगति. (क०) । ४. दशाननोऽहरत् सीता बन्ध प्राप्तो महोदधिः । ५. नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः । ६. पवन. परागवाही रथ्यासु वहन् रजस्वलो भवति । ७ मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली । ८. मूर्खैर्हि सङ्ग कस्यास्ति शर्मणे (कि०) । ९ हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात् । समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् (हि०) ।

(ख) २ सत्संगति-प्रशंसा

१ अनुसृत्य सता वर्त्म यत् स्वल्पमपि तद् बहु । २ कस्य नाभ्युदये हेतुर्भवेत् साधुसमागम. (क०) । ३ कस्य सत्सङ्गो न भवेच्छुभः (क०) । ४ काम न श्रेयसे कस्य सगम. पुण्यकर्मभिः (क०) । ५ कि वाऽभविष्यदरुणस्तमसा विभेत्ता, त चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (शा०) । ६ गुणमहता महते गुणाय योगः (कि०) । ७ चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसगति. । ८ ध्रुव फलाय महते महता सह सगमः (क०) । ९ पद्मपत्रस्थित वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् । १०.पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभि सत्सगतिर्दुर्लभा । ११ प्रायः सज्जनसगतौ हि लभते दैवानुरूप फलम् । १२ प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुण ससर्गतो जायते (भ०) । १३. बृहत्सहाय. कार्यान्त क्षोदीयानपि गच्छति (शि०) । १४ विश्वासयत्याशु सता हि योग. (कि०) । १५. ससर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।

१६. सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति (भा०)। १७. सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति (उ०)। १८. सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूयते (भा०)। १९. सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् (भ०)। २०. सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम्। सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किंचिदाचरेत्। २१. समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (कि०)।

(ग) १. कृतघ्नता-निन्दा

१. अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं नाम पौरुषम्। २. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः (क०)। ३. कृतघ्नानां शिवं कुतः (क०)।

(ग) २. कृतज्ञता-प्रशंसा

१ कृतज्ञे सत्परीवारे प्रभौ सेवाऽफला कुतः (क०)। २. न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय, प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः (मे०)। ३. न तथा कृतवेदिनां करिष्यन् प्रियतामेति यथा कृतावदानः (कि०)।

(घ) १. गुण-प्रशंसा

१ अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते (र०)। २. अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां, न जातु मौलौ मणयो वसन्ति (विक्रमाक०)। ३ एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः (कु०)। ४. कमिवेशते रमयितुं न गुणाः (कि०)। ५. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (उ०)। ६. गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः (कि०)। ७. गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः। ८ गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः। ९ गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्। १० गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो, न किंचिदप्राप्यतमं गुणानाम्। ११. गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः (कि०)। १२ नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान् (कि०)। १३. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते (र०)। १४. परिजनताऽपि गुणाय सद्गुणानाम् (कि०)। १५. प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना। १६. प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः (कु०)। १७. लक्ष्मीरनुसरति नयगुणसमृद्धिम्। १८. वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः (कि०)। १९. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् (कि०)। २०. सुलभो हि द्विषां भङ्गो दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि०)। २१. स्थिरा शैली गुणवताम् (कुवलया०) २२. हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्। २३ हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः (शा०)।

(घ) २. दुर्गुण-निन्दा

१. अतिरोपणश्चक्षुष्मानप्यन्ध एव जनः (ह०)। २. अशीलं कस्य नाम स्यान्न खलीकारकारणम् (क०)। ३. अशीलं कस्य भूतये (क०)। ४. अशीलस्य हतं कुलम्। ५. आपदेत्युभयलोकदूषणी वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (कि०)। ६. गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति। ७. पुरुषा अपि बाणा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय। ८ मद्यपस्य कुतः सत्यम्। ९. मद्यपाः किं न जल्पन्ति।

(ड) तेजस्विता

१ अरुन्तुदत्व महता ह्यगोचर. (कि०)। २ अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदा, भवन्ति वश्या स्वयमेव देहिनः (कि०)। ३ अविभिद्य निशाकृत तमः, प्रभया नांशुमता-ऽप्युदीयते (कि०)। ४ अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः (कु०)। ५. इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम् (शि०)। ६. उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमा.। ७ उपहितपरमप्रभावधाम्ना, न हि जयिना तपसामलङ्घ्यमस्ति (कि०)। ८ ऋते कृशानोर्नहि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजास्यपराणि हव्यम् (कु०)। ९ ऋते रवे. क्षालयितु क्षमेत क, क्षपातमस्काण्डमलीमस नभ (शि०)। १०. कथञ्चिन्नहि दिव्याना, वीर्य भजति मोघताम् (क०)। ११ किमिवावसादकरमात्मवताम् (कि०)। १२ किमिवास्ति यन्न सुकर मनस्विभि. (कि०)। १३ को विहन्तुमलमास्थितोदये, वासरश्रियमशीतदीधितौ (शि०)। १४ जगति बहुमता कस्य नाभ्यर्चनीया। १५ ज्वलयति महता मनास्यमर्षे, न हि लभतेऽवसर सुखाभिलाष· (कि०)। १६ ज्वलित न हिरण्यरेतस, चयमास्कन्दति भस्मना जन· (कि०)। १७ तमस्तपति घर्मांशौ कथमा-विर्भविष्यति (शा०)। १८ तीव्रसत्त्वस्य न चिराद् भवन्त्येव हि सिद्धय. (क०)। १९ तेजसा हि न वय. समीक्ष्यते (र०)। २० तेजोविहीन विजहाति दर्प, शान्तार्चिष दीपमिव प्रकाशः (कि०)। २१ न खलु वयस्तेजसो हेतु. (म०)। २२ न दूषित शक्तिमता स्वयग्रह (कि०)। २३ न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव (शि०)। २४ न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रिय (कि०)। २५ नातिपीडयितु भग्नानिच्छन्ति हि महौजस. (कि०)। २६ निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः। २७ परैरनिन्द्य चरित मनस्विना पयोऽनुसारोचितमेव शोभते (क०)। २८ प्रकृति खलु सा महीयस., सहते नान्यसमुन्नति यया (कि०)। २९ मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दु ख न च सुखम् (भ०)। ३० महता हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् (कि०)। ३१ महानुभाव प्रतिहन्ति पौरुषम् (कि०)। ३२ मा जीवन् य परावज्ञादु खदग्धोऽपि जीवति (शि०)। ३३ वशिना न निहन्ति धैर्यमनुभावगुण. (कि०)। ३४ विलम्बितु न खलु सदा मनस्विनो, विधित्सव. कल्हमवेक्ष्य विद्विष (शि०)। ३५ श्रेयान् हि मानिनो मृत्युर्नेहगात्मप्रकाशनम् (क०)। ३६ सकलैकप्रधाना हि दिव्यानामखिलाः क्रिया. (क०)। ३७. सदाभिमानैकधना हि मानिन. (शि०)। ३८ सम्पत्सु हि सुसत्त्वा-नामेकहेतु स्वपौरुषम् (क०)। ३९ सभवत्यभिजातानामभिमानो ह्यकृत्रिम. (क०)। ४० सहते विपत्सहस्र मानी नैवापमानलेशमपि (महा०)। ४१ सहापकृष्टैर्महता न सगत, भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिन (कि०)। ४२. सामानाधिकरण्य हि तेजस्तिमिरयो. कुत (शि०)। ४३ सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टे. कल्पेत लोकस्य कथ तमिस्रा (र०)। ४४ स्थिता तेजसि मानिता (कि०)। ४५ स्ववीर्यगुप्ता हि मनो. प्रसूति (र०)। ४६ हेम्न सलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धि श्यामिकाऽपि वा (र०)।

(च) मित्रता

. १. आकर स्वपरभूरिकथाना प्रायशो हि सुहृदोः सहवासः (नै०)। २. आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्र मित्रमेव तत् (प०)। ३. आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्। दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना, छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् (प०)। ४ एक मित्र भूपतिर्वा यतिर्वा (भ०)। ५. किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृत-कृतिनो भवन्ति सुहृदः सुहृदाम् (शि०)। ६. कुवाक्यान्त च सौहृदम् (प०)। ७ कृशे कस्यास्ति सौहृदम्। ८ तत्तस्य किमपि द्रव्य यो हि यस्य प्रियो जनः (उ०)। ९. नहि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम्। १०. नाल सुखाय सुहृदो नाल दुःखाय शत्रवः (महा०)। ११. परोऽपि हितवान् बन्धुः (प०)। १२ भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (शा०)। १३. मनोभूषा मैत्री। १४ मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या. (मे०)। १५. मित्रलाभमनु लाभसम्पदः (कि०)। १६. मित्रार्थगणितप्राणा दुर्लभा हि महोदया. (क०)। १७ यतः सता हि सगत, मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते (कु०)। १८. विदेशे बन्धुलाभो हि, मरावमृतनिर्झरः (क०)। १९ विप्रलम्भोऽपि लाभाय, सति प्रियसमागमे (कि०)। २०. समानशीलव्यसनेषु सख्यम् (हि०)। २१. समीरणो नोदयिता भवेति, व्यादिश्यते केन हुताशनस्य (कु०)। २२. स सुहृद् व्यसने यः स्यात् (प०)। २३. स्व जीवितमपि सन्तो न गणयन्ति मित्रार्थे (प०)। २४. स्वयमेव हि वातोऽग्ने., सारथ्य प्रतिपद्यते (र०)। २५ हितप्रयोजन मित्रम्।

(छ) वीरता (धीरता), (वीर, धीर)

१ अनुत्सेक. खलु विक्रमालकारः (वि०)। २ अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं, पदा स्पृशन्त दशति द्विजिह्वः (र०)। ३. अयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणम् (उ०)। ४. अल्पसत्त्वेषु धीराणामवशैव हि शोभते (क०)। ५. अश्नुते स हि कल्याण, व्यसने यो न मुह्यति (क०)। ६. असिद्धार्था निवर्तन्ते, न हि धीराः कृतोद्यमाः (क०)। ७. आपत्काले च कष्टेऽपि, नोत्साहस्त्यज्यते बुधैः (क०)। ८. आपत्सु धीरान् पुरुषान् स्वयमायान्ति सम्पदः (क०)। ९ आपदि स्फुरति प्रज्ञा, यस्य धीरः स एव हि (क०)। १० आपन्नपि त्याज्य न सत्त्व सम्पदेषिभि. (क०)। ११. आरब्धा ह्यसमाप्तैव, किं धीरैस्त्यज्यते क्रिया (क०)। १२. आरब्धे हि सुदुष्करेऽपि महता मध्ये विरामः कुतः (क०)। १३. उत्साहैकधने हि वीरहृदये नाप्नोति खेदोऽन्तरम् (क०)। १४ उन्नतो न सहते तिरस्क्रियाम्। १५ एकोऽप्याश्रयहीनोऽपि लक्ष्मीं प्राप्नोति सत्त्ववान् (क०)। १६. जीवन् हि धीरोऽभिमत, किं नाम न यदाप्नुयात् (क०)। १७. ज्वलयति महता मनास्यमर्षे, न हि लभतेऽवसर सुखाभिलाषः (कि०)। १८ न जात्ववसरे प्राप्ते, सत्त्ववानवसीदति (क०)। १९. ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः (शा०)। २०. न शूरा विसहन्ते हि, स्त्रीनिमित्त पराभवम् (क०)। २१ न स शक्नोति किं यस्य, प्रज्ञा नापदि हीयते (क०)।

२२ नहि सत्त्वावसादेन, स्वल्पाप्यापद् विलङ्घ्यते (क०)। २३ निसर्ग स हि धीराणा, यदापद्यधिक दृढम् (क०)। २४ न्याय्यात् पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा. (भ०)। २५. परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् (शि०)। २६ पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्। २७. प्रकृतिरिय मत्त्ववताम्। २८ प्रतिपन्नसुहृत्कार्यनिर्वाह धीरसत्त्वता (क०)। २९ प्राणव्ययाय शूराणा, जायते हि रणोत्सव (क०)। ३०. प्राणेभ्योऽपि हि धीराण, प्रिया शत्रुप्रतिक्रिया (नै०)। ३१ भुजे वीर्य निवसति न वाचि (ह०)। ३२ भीता इव हि धीराणा, यान्ति दूरे विपत्तय (क०)। ३३ महीयास प्रकृत्या मितभाषिण. (शि०)। ३४ विकारहेतौ सति विक्रिय ते, येषा न चेतासि त एव धीरा॰ (कु०)। ३५ विनाप्यर्थै-र्धीर. स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम् (हि०)। ३६ शतेषु जायते शूर.। ३७ शूर कृतज्ञ दृढसौहृद च, लक्ष्मी. स्वय याति निवासहेतो (प०)। ३८ शूरस्य मरण तृणम्। ३९ शूरा हि प्रणतिप्रिया (क०)। ४० स धीरो यो न समोहमापत्कालेऽपि गच्छति (क०)।

(ज) शिष्टाचार (सदाचार)

१ आचार. प्रथमो धर्म (म०)। २ आत्मेश्वराणा नहि जातु विघ्ना, समाधि-भेदप्रभवो भवन्ति (कु०)। ३ उपभुक्ते हि तारुण्ये, प्रशम सद्भिरिष्यते (क०)। ४ महाजनो येन गत स पन्थाः (प०)। ५ विनयान्याति पात्रताम्। ६ विनयो हि सता व्रतम्। ७ शील पर भूषणम्। ८ शील भूषयते कुलम्। ९ शील हि विदुषा धनम् (क०)। १० शील हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्। ११ शुभाचारस्य क कुर्यादशुभ हि सचेतन. (क०)। १२ सकल शीलेन कुर्याद् वशम्। १३ सकलगुणभूषा च विनय.।

(झ) १ सज्जनप्रशंसा

१ अक्षोभ्यनैव महता महत्त्वस्य हि लक्षणम् (क०)। २ अगम्य मन्यते सुगम्। ३ अङ्गीकृत सुकृतिन. परिपालयन्ति। ४ अनुगृह्णन्ति हि प्रायो देवता अपि तादृशम् (क०)। ५ अनुत्सेक. खलु. विक्रमालङ्कार (वि०)। ६ अनुहुकुरुते घनध्वनि न हि गोमायुरुतानि केसरी (शि०)। ७ अयशोभीरव कि न, कुर्वते बत साधव. (क०)। ८ अयातपूर्वा परिवादगोचर, सता हि वाणी गुणमेव भाषते (कि०)। ९ अरुन्तुदत्व महता ह्यगोचर (कि०)। १० अहह महता नि.सीमानश्चरित्रविभूतय. (भ०)। ११. आदान हि विसर्गाय, सता वारिमुचामिव (र०)। १२ आपन्नार्तिप्रशमनफला सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०)। १३ आवेष्टितो महासर्पैश्चन्दन. कि विषायते। १४ उत्तरोत्तरशुभा हि विभूना कोऽपि मञ्जुलतम. क्रमवाद. (नै०)। १५. उत्सहन्ते न हि द्रष्टुमुत्तमा स्वजनापदम् (क०)। १६. उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम् (हि०)। १७ उदारस्य तृण वित्तम्। १८ कण्ठे सुधा वसति वै खलु सज्जनानाम्।

(च) मित्रता

१. आकर स्वपरभूरिकथाना प्रायशो हि सुहृदोः सहवासः (नै०)। २. आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्र मित्रमेव तत् (प०)। ३. आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्। दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना, छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् (प०)। ४. एक मित्र भूपतिर्वा यतिर्वा (भ०)। ५. किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः कृतिनो भवन्ति सुहृदः सुहृदाम् (शि०)। ६. कुवाक्यान्त च सौहृदम् (प०)। ७ कुशो कस्यास्ति सौहृदम्। ८ तत्तस्य किमपि द्रव्य यो हि यस्य प्रियो जन. (उ०)। ९. नहि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम्। १०. नाल सुखाय सुहृदो नाल दु खाय शत्रवः (महा०)। ११. परोऽपि हितवान् बन्धुः (प०)। १२ भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (शा०)। १३. मनोभूषा मैत्री। १४ मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः (मे०)। १५. मित्रलाभमनु लाभसम्पदः (कि०)। १६. मित्रार्थगणितप्राणा दुर्लभा हि महोदयाः (क०)। १७ यतः सता हि सगत, मनीषिभि. साप्तपदीनमुच्यते (कु०)। १८. विदेशे बन्धुलाभो हि, मरावमृतनिर्झरः (क०)। १९ विप्रलम्भोऽपि लाभाय, सति प्रियसमागमे (कि०)। २०. समानशीलव्यसनेषु सख्यम् (हि०)। २१. समीरणो नोदयिता भवेति, व्यादिश्यते केन हुताशनस्य (कु०)। २२. स सुहृद् व्यसने यः स्यात् (प०)। २३. स्व जीवितमपि सन्तो न गणयन्ति मित्रार्थे (प०)। २४. स्वयमेव हि वातोऽग्नेः, सारथ्य प्रतिपद्यते (र०)। २५. हितप्रयोजन मित्रम्।

(छ) वीरता (धीरता), (वीर, धीर)

१ अनुत्सेक. खलु विक्रमालकारः (वि०)। २ अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं, पदा स्पृशन्त दशति द्विजिह्वः (र०)। ३. अयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणम् (उ०)। ४ अल्पसत्त्वेषु धीराणामवज्ञैव हि शोभते (क०)। ५. अश्नुते स हि कल्याण, व्यसने यो न मुह्यति (क०)। ६. असिद्धार्था निवर्तन्ते, न हि धीराः कृतोद्यमाः (क०)। ७. आपत्काले च कष्टेऽपि, नोत्साहस्त्यज्यते बुधैः (क०)। ८. आपत्सु धीरान् पुरुषान् स्वयमायान्ति सम्पदः (क०)। ९. आपदि स्फुरति प्रज्ञा, यस्य धीरः स एव हि (क०)। १०. आपद्यपि त्याज्य न सत्त्व सम्पदेषिभिः (क०)। ११. आरब्धा ह्यसमाप्तैव, किं धीरैस्त्यज्यते क्रिया (क०)। १२ आरब्धे हि सुदुष्करेऽपि महता मध्ये विरामः कुतः (क०)। १३. उत्साहैकधने हि वीरहृदये नाप्नोति खेदोऽन्तरम् (क०)। १४. उन्नतो न सहते तिरस्क्रियाम्। १५. एकोऽप्याश्रयहीनोऽपि लक्ष्मीं प्राप्नोति सत्त्ववान् (क०)। १६ जीवन् हि धीरोऽभिमत, किं नाम न यदाप्नुयात् (क०)। १७. ज्वलयति महता मनास्यमर्षे, न हि लभतेऽवसर सुखाभिलाष (कि०)। १८ न जात्ववसरे प्राप्ते, सत्त्ववानवसीदति (क०)। १९ ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः (शा०)। २०. न शूरा विसहन्ते हि, स्त्रीनिमित्त पराभवम् (क०)। २१. न स शक्नोति किं यस्य, प्रज्ञा नापदि हीयते (क०)।

२२ नहि सत्त्वावसादेन, स्वल्पाप्यापद् विलङ्घ्यते (क०)। २३ निसर्ग. स हि धीराणा, यदापन्यधिक दृढम् (क०)। २४ न्याय्यात् पथ' प्रविचलन्ति पद न धीरा. (भ०)। २५ परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् (शि०)। २६ पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्। २७ प्रकृतिरिय सत्त्ववताम्। २८ प्रतिपन्नसुहृत्कार्यनिर्वाह धीरसत्त्वता (क०)। २९ प्राणव्ययाश्च शूराणा, जायते हि रणोत्सव (क०)। ३० प्राणेभ्योऽपि हि धीराण, प्रिया शत्रुप्रतिक्रिया (नै०)। ३१ भुजे वीर्यं निवसति न वाचि (ह०)। ३२ भीता इव हि धीराणा, यान्ति दूरं विपत्तय (क०)। ३३ महीयास प्रकृत्या मितभाषिण (शि०)। ३४ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषा न चेतांसि त एव धीरा (कु०)। ३५. विनाप्यर्थं-र्धीर स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम् (हि०)। ३६ शतेषु जायते शूर। ३७ शूर कृतज्ञ दृढसौहृद च, लक्ष्मी स्वय याति निवासहेतो (प०)। ३८ शूरस्य मरण तृणम्। ३९ शूरा हि प्रणतिप्रिया (क०)। ४० स धीरो यो न सम्मोहमापत्कालेऽपि गच्छति (क०)।

(ज) शिष्टाचार (सदाचार)

१ आचार प्रथमो धर्म (म०)। २ आत्मेश्वराणा नहि जातु विघ्ना, समाधि-भेदप्रभवो भवन्ति (कु०)। ३ उपभुक्ते हि तारुण्ये, प्रशम सद्भिरिष्यते (क०)। ४ महाजनो येन गत स पन्था (प०)। ५ विनयाद्याति पात्रताम्। ६ विनयो हि सता व्रतम्। ७ शील पर भूषणम्। ८ शील भूषयते कुलम्। ९ शील हि विदुषा धनम् (क०)। १० शील हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्। ११ शुभाचारस्य क कुर्यादशुभ हि सचेतन (क०)। १२ सकल शीलेन कुर्याद् वशम्। १३ सकलगुणभूषा च विनयः।

(झ) १ सज्जनप्रशंसा

१ अक्षोभ्यनैव महता महत्त्वस्य हि लक्षणम् (क०)। २ अगम्य मन्यते सुगम्। ३ अङ्गीकृत सुकृतिन. परिपालयन्ति। ४ अनुगृह्णन्ति हि प्रायो देवता अपि तादृशम् (क०)। ५ अनुत्सेक. खलु विक्रमालकार (वि०)। ६ अनुहुङ्कुरुते घनध्वनि न हि गोमायुरुतानि केसरी (शि०)। ७ अयशोभीरवः कि न, कुर्वते बत साधव. (क०)। ८ अयातपूर्वा परिवादगोचर, सता हि वाणी गुणमेव भाषते (कि०)। ९. अरुन्तुदत्व महता ह्यगोचर (कि०)। १० अहह महता नि सीमानश्चरित्रविभूतय. (भ०)। ११. आदान हि विसर्गाय, सता वारिमुचामिव (र०)। १२ आपन्नार्तिप्रशमनफला' सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०)। १३ आवेष्टितो महासर्पैश्चन्दन. कि विषायते। १४ उत्तरोत्तरशुभा हि विभूना कोऽपि मञ्जुलतम. क्रमवादः (नै०)। १५. उत्सहन्ते न हि द्रष्टुमुत्तमा स्वजनापदम् (क०)। १६. उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम् (हि०)। १७ उदारस्य तृण वित्तम्। १८ कण्ठे सुधा वसति वै खलु सज्जनानाम्।

१९. कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः सम्भवन्ति (मृ०)। २० कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति (शा०)। २१. करुणार्द्रा हि सर्वस्य, सन्तोऽकारण-बान्धवा. (क०)। २२. केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु (मे०)। २३. क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे (भ०)। २४. क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने, ममत्वमुच्चै.शिरसां सतीव (कु०)। २५. खलसङ्गेऽपि नैष्ठुर्यं, कल्याणप्रकृतेः कुतः। २६. ग्रहीतुमार्यान् परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः (शि०)। २७ घना-म्बुना राजपथे हि पिच्छिले, क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०)। २८. घनाम्बुभिर्बहु-लितनिम्नगाजलैर्जलं नहि व्रजति विकारमम्बुधेः (शि०)। २९ चित्ते वाचि क्रियायां च, साधूनामेकरूपता। ३०. जितशान्तेषु वीराणां स्नेह एवोचितोऽरिषु (क०)। ३१. ते भूमण्डलमण्डनैकतिलका. सन्तः कियन्तो जनाः। ३२ त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि, प्राणानपि न सत्पथम् (क०)। ३३. दावानलप्लोषविपत्तिमन्योऽरण्यस्य हर्तुं जलदात् प्रभुः किम् (कु०)। ३४. दुर्लक्ष्यचिह्ना महतां हि वृत्तिः (कि०)। ३५. देवद्विजसपर्या हि, कामधेनुर्मता सताम् (क०)। ३६. देहपातमपीच्छन्ति, सन्तो नाविनयं पुन. (क०)। ३७ धनिनामितर. सतां पुनर्गुणवत्सन्निधिरेव सन्निधिः (शि०)। ३८ न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्। ३९ न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्। ४० न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम्। ४१. न भवति महतां हि क्वापि मोघ. प्रसाद.। ४२ नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति। ४३. निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्त· कियन्त। ४४. निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद् हि गोत्रव्रतम्। ४५ न्यायाधारा हि साधवः (कि०)। ४६. परदुःखेनापि दुःखिता विरलाः। ४७ परिजनताऽपि गुणाय सज्जनानाम् (कि०)। ४८. पुण्यवन्तो हि सन्तानं पश्यन्त्युच्चै.कृतान्वयम् (क०)। ४९. प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् (भ०)। ५०. प्रणामान्तः सतां कोप·। ५१. प्रणिपात-प्रतीकार. संरम्भो हि महात्मनाम् (र०)। ५२ प्रतिपन्नार्थनिर्वाहं सहजं हि सतां व्रतम् (क०)। ५३ प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव (मे०)। ५४ प्रवर्तते नाकृतपुण्य-कर्मणां, प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती (कि०)। ५५ प्रसन्नानां वाचं फलमपरिमेयं प्रसुवते। ५६ प्रसादचिह्नानि पुर.फलानि (र०)। ५७ प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्त. (र०)। ५८. प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तय·। ५९. प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि (का०)। ६०. प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति (भ०)। ६१. बताश्रितानुरोधेन किं न कुर्वन्ति साधवः (क०)। ६२ ब्रुवते हि फलेन साधवो,न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् (नै०)। ६३. भक्त्या हि तुष्यन्ति महानुभावा.। ६४. मज-न्त्यात्मंभरित्वं हि, दुर्लभेऽपि न साधव (क०)। ६५. भवति महत्सु न निष्फल प्रयास. (चि०)। ६६. भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्। ६७. मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं

महात्मनाम् (हि०)। ६८ महता हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् (कि०)। ६९ महता हि सर्वमथवा जनातिगम् (शि०)। ७० महतामनुकम्पा हि विरुद्धेषु प्रतिक्रिया (क०)। ७१. महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः, सुजनो न विस्मरति जातु किंचन (शि०)। ७२. महते रुजन्नपि गुणाय महान् (कि०)। ७३ महान् महत्येव करोति विक्रमम् (प०)। ७४ मोघा हि नाम जायेत महत्सूपकृतिः कुतः (क०)। ७५ यथा चित्त तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रिया। ७६ रहस्य साधूनामनुपधि विशुद्ध विजयते (उ०)। ७७ रिपुष्वपि हि भीतेषु सानुकम्पा महाशया. (कि०)। ७८ वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणा चेतासि, को हि विज्ञातुमर्हति (उ०)। ७९. विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिता. (कु०)। ८० विप्रियमप्याकर्ण्य ब्रूते प्रियमेव सर्वदा सुजन.। ८१ विवेकधाराशतधौतमन्तः, सता न कामः कलुषीकरोति (नै०)। ८२ व्रताभिरक्षा हि सतामलक्रिया (कि०)। ८३ सपत्सु महता चित्त भवत्युत्पलकोमलम् (भ०)। ८४. सपत्सु हि सुसत्त्वानामेकहेतुः स्वपौरुषम् (क०)। ८५. सता महत्समुखधावि पौरुषम् (नै०)। ८६. सता हि चेत. शुचितात्मसाक्षिका (नै०)। ८७ सता हि प्रियवदता कुलविद्या (ह०)। ८८ सेवा हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते। ८९. सत्यनियतवचस वचसा सुजन जनाश्चलयितु क ईशते (शि०)। ९० सद्भावार्द्र. फलति चिरेणोपकारो महत्सु (मे०)। ९१. सद्भिस्तु लीलया प्रोक्त शिलालिखितमक्षरम्। ९२ सद्य एव सुकृता हि पच्यते, कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् (र०)। ९३. सन्त. परार्थे कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् (महा०)। ९४. सन्त' परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते (मालविका०)। ९५ सुदुर्ग्रहान्त.करणा हि साधव. (कि०)। ९६. स्वामापद प्रोज्झ्य विपत्तिमग्न, शोचन्ति सन्तो ह्युपकारिपक्षम् (कि०)। ९७. ह्रदे गभीरे हृदि चावगाढे, शसन्ति कार्यावतर हि सन्त. (नै०)।

(ख) २. दुर्जन-निन्दा

१ अकृत्य मन्यते कृत्यम् (प०)। २ अत्युच्चैर्भवति लघीयसा हि धाष्टर्यम् (शि०)। ३ अनुकूलेऽपि कलत्रे, नीच. परदारलम्पटो भवति। ४ अन्यस्माल्लब्धपदो नीच' प्रायेण दुःसहो भवति। ५. अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयै. परभणितिषु-तृप्तिं यान्ति सन्त. कियन्त.। ६ अभक्ष्य मन्यते भक्ष्यम्। ७ अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुक, द्विषन्ति मन्दाश्चरित महात्मनाम् (कु०)। ८ अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयकरः (भ०)। ९ अव्यापारेषु व्यापार, यो नर कर्तुमिच्छति (प०)। १०. अश्रेयसे न वा कस्य, विश्वासो दुर्जने जने (क०)। ११ असद्वृत्तेरहोवृत्त दुर्विभाव विधेरिव (कि०)। १२. असन्मैत्री हि दोषाय, कूलच्छायेव सेविता (कि०)। १३. अहो विश्वास्य वञ्च्यन्ते, धूर्तैश्छद्मभिरीश्वरा' (क०)। १४ अहो सहन्ते बत नो परोदयम्। १५ उष्णो दहति चाङ्गारः, शीतः कृष्णायते करम् (प०)। १६. कवले पतिता सद्यो वमयति

ननु मक्षिकाऽन्नभोक्तारम्। १७. कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः (शि०)। १८. कि मर्दितोऽपि कस्तूर्या, लशुनो याति सौरभम्। १९. किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०)। २०. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धु प्रभवति (शा०)। २१ को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान् (प०)। २२. क्वाश्रयोऽस्ति दुरात्मनाम्। २३ क्षार पिबति पयोधेर्वर्षत्यम्भोधरो मधुरमम्भ। २४. गुणार्जनोच्छ्रायविरुद्धबुद्धय., प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधव (कि०)। २५. तरुणीकच इव नीचः, कौटिल्य नैव विजहाति। २६ दु.खान्धा हि पतन्त्येव, विपन्नभ्रेषु कातराः (क०)। २७. दुग्धधातोऽपि कि याति, वायसः कलहसताम्। २८. दुर्जन. परिहर्तव्यो, विद्यया ऽलकृतोऽपि सन् (भ०)। २९ दुर्जनस्य कुत. क्षमा। ३० दुर्जनस्याजित वित्त, भुज्यते राजतस्करैः। ३१ दूरतः पर्वता रम्याः। ३२. दोषग्राही गुणत्यागी पल्लोलीव हि दुर्जन. (प०)। ३३. न परिचयो मलिनात्मना प्रधानम् (शि०)। ३४. नासद्भि. किञ्चिदाचरेत्। ३५. निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः। ३६. नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधु करोत्येव। ३७ परिवृद्धिषु बद्धमत्सराणा, किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०)। ३८. प्रकृतिसिद्धमिद हि दुरात्मनाम्। ३९ प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधव (कि०)। ४० प्रासादशिखरस्थोऽपि, काक. किं गरुडायते (प०)। ४१ बन्धु को नाम दुष्टानाम्। ४२. भूयोऽपि सिक्त पयसा घृतेन, न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति। ४३ भ्रष्टस्य का वा गतिः। ४४. मणिना भूषित. सर्पः किमसौ न भयकर (भ०)। ४५ मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धाताऽपि भग्नोद्यम। ४६ मात्सर्यरागोपहतात्मना हि, स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि (कि०)। ४७ ये तु घ्नन्ति निरर्थक परहित ते के न जानीमहे (भ०)। ४८. विचित्रमाया कितवा ईदृशा एव सर्वदा (क०)। ४९ विपदन्ता ह्यवनीतसम्पद. (कि०)। ५० विश्वासः कुटिलेषु क (क०)। ५१. शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जन. (कु०)। ५२ सरित्पूरप्रपूर्णोऽपि, क्षारो न मधुरायते (यो०)। ५३ सर्प. क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतर. खल. (चा०)। ५४ साहस नैरपेक्ष्य च, कितवाना निसर्गजम् (क०)। ५५ स्पृशन्ति न नृशसाना, हृदय बन्धुबुद्धयः (नै०)। ५६ स्पृशन्नपि गजो हन्ति (प०)। ५७ हिंसा बलमसाधूनाम् (महा०)। ५८ होतारमपि जुह्वन्त, स्पृष्टो दहति पावक. (प०)।

(ञ) १. सत्कर्म-प्रशंसा

१ अचिन्त्य हि फल सूते सद्य. सुकृतपादप. (क०)। २. उस सुकृतबीज हि, सुक्षेत्रेषु महत्फलम् (क०)। ३ कुरूपता शीलतया विराजते। ४ क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति (र०)। ५ गृहानुपैतु प्रणयादभीप्सवो, भवन्ति नापुण्यकृता मनीषिण. (शि०)। ६ धर्मपरायणाना सदा समीपसचारिण्य. कल्याणसपदो भवन्ति (का०)। ७ नहि कल्याणकृत् कश्चिद्, दुर्गति तात गच्छति। ८ रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि। ९. वृत्त यत्नेन सरक्षेद्, वित्तमेति च याति च (महा०)। १० वृत्त हि महित सताम्। ११. शुभकृन्नहि सीदति (क०)। १२ स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात् (गी०)।

(ञ) २ दुष्कर्म-निन्दा

१ अनार्यं. परदारव्यवहार. (शा०)। २ अनार्यजुष्टेन पथा, प्रवृत्ताना शिव कुत. (क०)। ३ अनिर्वर्णनीय परकलत्रम् (शा०)। ४. अपन्थान तु गच्छन्त, सोदरोऽपि विमुञ्चति। ५ कष्टो ह्यविनयक्रम (क०)। ६. पापप्रभावात् नरक प्रयाति। ७ पापे कर्मण्यवज्ञातहितवाक्ये कुत. सुखम् (क०)। ८. पूर्वावधीरित श्रेयो दु.ख हि परिवर्तते (शा०)। ९ प्रतिबध्नाति हि श्रेयः, पूज्यपूजाव्यतिक्रम· (र०)। १०. भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः (भ०)। ११ वर क्लैब्य पुसा न च परकलत्राभिगमनम् (भ०)। १२ वर प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचिः। १३. वर भिक्षाशित्व न मानपरिखण्डनम्। १४ वर मौन कार्य न च वचनमुक्त यदनृतम्।

(ट) स्वावलम्बन

१. आत्मानमात्मनाऽनवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्त. (द०)। २ उद्धरेदात्मनात्मान, नात्मानमवसादयेत् (गी०)। ३ गुणसहृते. समतिरिक्तमहो, निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम् (कि०)। ४. नास्ति चात्मसम बलम्। ५ लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यत. (कि०)। ६ विनिपातनिवर्तनक्षम, मतमालम्बनमात्मपौरुषम् (कि०)।

(११) विद्या

(क) ज्ञान

१ कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते। २ न ज्ञानात् परम चक्षुः। ३. न विवेक विना ज्ञानम्। ४ नास्ति ज्ञानात् पर सुखम्। ५. प्रज्ञा नाम बल ह्येव, निष्प्रज्ञस्य बलेन किम् (क०)। ६ प्रज्ञाबल च सर्वेषु, मुख्य कार्येषु साधनम् (क०)। ७ बुद्धि. कर्मानुसारिणी (चा०)। ८ बुद्धिर्नाम च सर्वत्र, मुख्य मित्र च पौरुषम् (क०)। ९. बुद्धेः फलमनाग्रह। १० मतिरेव बलाद्गरीयसी (हि०)। ११ स तु निरवधिरेकः सज्जनाना विवेक। १२ सुकृत. परिशुद्ध आगम·, कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् (कि०)। १३. स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सभवन्ति।

(ख) वाक्-प्रशंसा

१. अर्थभारवती वाणी, भजते कामपि श्रियम्। २. क· पर. प्रियवादिनाम्। ३ क्षीयन्ते खलु भूषणानि सतत वाग्भूषण भूषणम् (भ०)। ४ मुखरताऽवसरे हि विराजते (कि०)। ५. सदोभूषा सूक्तिः। ६ सुदुर्लभा. सर्वमनोरमा गिर. (कि०)। ७ हित मनोहारि च दुर्लभ वचः (कि०)।

(ग) वाग्मिता

१ अल्पाक्षररमणीय यः कथयति निश्चित स खलु वाग्मी। २. भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चिता, मनोगत वाचि निवेशयन्ति ये। नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा, गभीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् (कि०)। ३ मित च सार च वचो हि वाग्मिता (नै०)। ४. मुखरताऽवसरे हि विराजते (कि०)। ५ वक्ता दशसहस्रेषु। ६ वक्ता श्रोता च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र सम्पदः।

(घ) विद्या

१ अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्। २ आलस्योपहता विद्या (हि०)। ३ ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ४ कणशः क्षणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्। ५ कामिनश्च कुतो विद्या। ६ का विद्या कविता विना। ७ किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या। ८ किं जीवितेन पुरुषस्य निरक्षरेण (भ०)। ९ कुतो विद्यार्थिनः सुखम्। १० जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः। ११ ज्ञानमेव शक्तिः। १२ ज्ञानस्याभरणं क्षमा। १३ तस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैलबिन्दुरिवाम्भसि। १४ तस्य सङ्कुचिता बुद्धिर्घृतबिन्दुरिवाम्भसि। १५. दुरधीता विषं विद्या (हि०)। १६ धिग्जीवितं शास्त्रकलोज्झितस्य। १७. न च विद्यासमो बन्धुः। १८ पठतो नास्ति मूर्खत्वम्। १९ पूर्वपुण्यतया विद्या। २० माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः (हि०)। २१ या लोकद्वयसाधनी तनुभृतां सा चातुरी चातुरी। २२ विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा। २३ विद्या ददाति विनयम् (हि०)। २४. विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्। २५ विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्। २६ विद्या परं दैवतम्। २७ विद्या मित्रं प्रवासे च। २८. विद्या योगेन रक्ष्यते। २९ विद्या रूपं कुरूपाणाम्। ३० विद्याविहीनः पशुः। ३१ विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्। ३२ विद्या सर्वस्य भूषणम्। ३३ विद्या स्तब्धस्य निष्फला। ३४. वेदाज्जानन्ति पण्डिताः। ३५ शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति (शि०)। ३६ शास्त्राद् रूढिर्बलीयसी। ३७ शोभन्ते विद्यया विप्राः। ३८ श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रम्। ३९ सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।

(ङ) १ विद्वत्प्रशंसा

१ अगाधजलसञ्चारी न गर्वं याति रोहितः (प०)। २ अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां, न जातु मौलौ मणयो वसन्ति (विक्रमाङ्क०)। ३ किमज्ञेयं हि धीमताम् (क०)। ४ झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः (नै०)। ५ न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम (शा०)। ६ ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा, गुणगृह्या वचने विपश्चितः (कि०)। ७ ननु विमृश्य कृती कुरुतेऽखिलम्। ८ नहीङ्गितज्ञोऽवसरेऽवसीदति (कि०)। ९ परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः। १०. प्रतिभातश्च पश्यन्ति सर्वं प्रज्ञावतां धियः (क०)। ११ प्रस्तुतार्थविरुद्धं हि, कोऽभिदध्यादबालिशः (क०)। १२ बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः (शा०)। १३ यत्र विद्वज्जनो नास्ति, श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि। १४ युक्तं न वा युक्तमिदं विचिन्त्य, वदेद् विपश्चिन्महतोऽनुरोधात्। १५. युक्तियुक्तं प्रगृह्णीयाद् बालादपि विचक्षणः। १६ वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः। १७ विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वम्। १८ विद्वान् सर्वगुणेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्या गतिः। १९ विद्वान् सर्वत्र पूज्यते (चा०)। २० सङ्कटे हि परीक्ष्यन्ते प्राज्ञाः शूराश्च सङ्गरे (क०)। २१. सभारत्नं विद्वान्। २२ सहस्रेषु च पण्डितः। २३ सारं गृह्णन्ति पण्डिताः। २४. स्वस्थे को वा न पण्डितः (प०)।

(ङ) २. मूर्ख-निन्दा

१. अगुणस्य हृत रूपम् । २ अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् (प०) । ३ अज्ञता कस्य नामेह, नोपहासाय जायते (क०) । ४. अज्ञानावृतचेतसामतिरुपा कोऽर्थस्तिरश्चा गुणै. । ५ अनार्यसगमाद्, वर विरोधोऽपि सम महात्माभि. (कि०) । ६ अन्त.सारविहीनानामुपदेशो न विद्यते । ७ अन्धस्य दीपो बधिरस्य गीतम् । ८ अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् । ९. अल्पविद्यो महागर्वी । १०. अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्, विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् (र०) । ११. अवस्तुनि कृतक्लेशो मूर्खो यात्यवहास्यताम् (क०) । १२ आपदेत्युभयलोकदूषणी, वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (कि०) । १३. उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये (प०) । १४ क्षमन्ते न विचार हि, मूर्खा विषयलोलुपाः (क०) । १५. जायन्ते बत मूढाना सवादा अपि तादृशा. (क०) । १६. ज्ञानलवदुर्विदग्ध ब्रह्मापि नर न रञ्जयति (भ०) । १७ दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौन हि शोभनम् । १८. न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् । (भ०) १९. निष्प्रज्ञो नाशयत्येव प्रभोरर्थमथात्मनः (क०) । २०. प्राप्तोऽप्यर्थ. क्षणादेव शीर्यते मन्दबुद्धिना (क०) । २१. बल मूर्खस्य मौनित्वम् । २२. बहुवचनमल्पसार यः कथयति विप्रलापी सः । २३ भवति योजयितु-र्वचनीयता (प०) । २४. मदमूढबुद्धिषु विवेकिता कुत. (शि०) । २५ मूढः परप्रत्ययनेय-बुद्धि. (मालविका०) । २६. मूर्खस्य किं शास्त्रकथाप्रसङ्ग. । २७ मूर्खाणा बोधको रिपुः । २८. मूर्खोऽनुभवति क्लेश, न कार्य कुरुते पुनः (क०) । २९ मोहान्धमविवेक हि श्रीश्चिराय न सेवते (क०) । ३० लोके पशुश्च मूर्खश्च निर्विवेकमती समौ (क०) । ३१. लोकोपहसिताः शश्वत् सीदन्त्येव लघुबुद्धयः (क०) । ३२ विद्या विवादाय धन मदाय । ३३. विद्याविहीनः पशुः । ३४. विभूषण मौनमपण्डितानाम् (भ०) । ३५ सवृणोति खलु दोषमज्ञता (कि०) । ३६. सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहित मूर्खस्य नास्त्यौषधम् (प०) । ३७ स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्ता धुनोत्यहिशङ्कया (शा०) । ३८ स्वगृहे पूज्यते मूर्ख· । ३९ हितोपदेशो मूर्खस्य कोपायैव न शान्तये (क०) ।

(१२) विचारात्मक

(क) आशा

१ आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला (भ०) । २ आशाबन्ध. कुसुमसदृश प्रायशो ह्यङ्गनाना, सद्यःपाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रुणद्धि (मे०) । ३. एवमाशाग्रहग्रस्तै. क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभि (हि०) । ४ गुर्वपि विरहदुःखमाशा बन्ध. साहयति (शा०) । ५. धिगाशा सर्वदोषभूः । ६. नास्ति तृष्णासमो व्याधि. ।

(ख) उद्यम-प्रशंसा

१ अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति। २ अचिरांशुविलासचञ्चला, ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् (कि०)। ३. अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः (क०)। ४. अर्थो हि नष्टकार्यार्थैर्नायत्नेनाधिगम्यते (रा०)। ५ इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते (द०)। ६. उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु (रा०)। ७. उद्यमेन विना राजन् न सिध्यन्ति मनोरथाः (प०)। ८. उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः (प०)। ९ उद्योगः पुरुषलक्षणम्। १०. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (प०)। ११. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् (कु०)। १२. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन (गी०)। १३. किं दूरं व्यवसायिनाम् (चा०)। १४. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः (यजु०)। १५. कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे (ऋग्०)। १६. कोऽतिभारः समर्थानाम् (प०)। १७. गुणसंहतेः समतिरिक्तमहो निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम् (कि०)। १८. धिग्जीवितं चोद्यमवर्जितस्य। १९. नहि दुष्करमस्तीह किंचिदध्यवसायिनाम् (क०)। २०. नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः। २१ निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः (कि०)। २२. प्राप्नोतीष्टमविक्लवः (क०)। २३. यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः (हि०)। २४. यदनुद्वेगतः साध्यः पुरुषार्थः सदा बुधैः (क०)। २५. यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्। २६. सत्त्वाधीना हि सिद्धयः (क०)। २७ सत्त्वानुरूपं सर्वस्य, धाता सर्वं प्रयच्छति (क०)। २८. समर्थो यो नित्यं स जयतितरां कोऽपि पुरुषः। २९. सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् (भ०)। ३०. साहसे श्रीः प्रतिवसति (मृ०)। ३१ सिध्यन्ति कुत्र सुकृतानि विना श्रमेण। ३२. सुकृती चानुभूयैव दुःखमप्यश्नुते सुखम् (क०)। ३३. हतं ज्ञानं क्रियाहीनम्।

(ग) एकता

१. एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति (क०)। २ पञ्चभिर्मिलितैः किं यज्जगतीह न साध्यते (नै०)। ३. महोदयानामपि संघवृत्तिता, सहायसाध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि०)। ४ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् (ऋग्०)। ५. संघे शक्तिः कलौ युगे। ६. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः (ऋग्०)। ७. समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम् (ऋग्०)।

(घ) कीर्ति

१ अनन्यगामिनी पुंसां कीर्तिरेका पतिव्रता। २. अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्, यशोधनानां हि यशो गरीयः (र०)। ३. काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते (प०)। ४. कुकर्मान्तं यशो नृणाम्। ५. कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः। ६. क्षितितले

किं जन्म कीर्तिं विना । ७. जठरं को न बिभर्ति केवलम् । ८ पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु (र०) । ९. प्राप्यते किं यशः शुभ्रमनङ्गीकृत्य साहसम् (क०) । १०. माने म्लाने कुतः सुखम् । ११. यश पुण्यैरवाप्यते (चा०) । १२. यशस्तु रक्ष्य परतो यशोधनैः (र०) । १३. संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते (गी०) । १४. सर्वं रत्नमुपद्रवेण सहितं निर्दोषमेकं यशः । १५. सहते विरहक्लेशं यशस्वी नायशः पुन. (क०) ।

(ङ) दान

१ आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव (र०) । २. उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् (प०) । ३ कुपात्रदानाच्च भवेद् दरिद्र । ४ कुप्येत् को नाति याचितः । ५. त्यागाज्जगति पूज्यन्ते, पशुपाषाणपादपाः । ६ त्यागी भवति वा न वा । ७ दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य (प०) । ८. देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम् (गी०) । ९. श्रद्धया देयम् (तै० उप०) । १०. श्रद्धया न विना दानम् । ११. सकलगुणसीमा वितरणम् । १२ सरित्पतिर्नहि समुपैति रिक्तताम् (शि०) । १३. हस्तस्य भूषणं दानम् ।

(च) परोपकार

१. अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् (शा०) । २. अपृष्टोऽपि हितं ब्रूयाद्, यस्य नेच्छेत् पराभवम् । ३. आपन्नत्राणविकलैः किं प्राणैः पौरुषेण वा (क०) । ४. आपन्नार्तिप्रशमनफला. सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०) । ५ इच्छादानपरोपकारकरणं पात्रानुरूपं फलम् । ६. उपकृत्य निसर्गत. परेषामुपरोधं नहि कुर्वते महान्तः (शि०) । ७. उपदेशपराः परेष्वपि, स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः (शि०) । ८. किमदेयमुदाराणामुपकारिषु तुष्यताम् (क०) । ९ धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (प०) । १०. नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिण॰ (कि०) । ११ नास्त्यदेयं महात्मनाम् । १२ परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये । १३. परार्थप्रतिपन्ना हि नेक्षन्ते स्वार्थमुत्तमाः (क०) । १४. परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि । १५. परोपकाराय सतां विभूतय. । १६. परोपकारार्थमिदं शरीरम् । १७. पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशो., कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः (र०) । १८. भक्त्या कार्यधुरं वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्त्वादृशाः । १९. मिथ्यापरोपकारो हि कुतः स्यात् कस्य शर्मणे (क०) । २०. मुक्तानां खलु महतां परोपकारे, कल्याणी भवति रुजत्स्वपि प्रवृत्ति. (क०) । २१ रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी (कु०) । २२ वरविभवभूषा वितरणम् । २३. साधूनां हि परोपकारकरणे नोपाध्यपेक्षं मन । २४ स्वत एव सतां परार्थता, ग्रहणानां हि यथा यथार्थता (शि०) । २५. स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (शि०) । २६. स्वामापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, शोचन्ति सन्तो ह्युपकारिपक्षम् (कि०) ।

(छ) लोभ

१. अर्थार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते (प०)। २. अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धुः। ३. कष्टो हि बान्धवस्नेहं राज्यलोभोऽतिवर्तते (क०)। ४. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः (क०)। ५. केषां हि नापदां हेतुरतिलोभान्धबुद्धिता (क०)। ६. कोऽर्थी गतो गौरवम् (प०)। ७. तृष्णैका तरुणायते (प०)। ८. प्राणेभ्योऽप्यर्थमात्रा हि कृपणस्य गरीयसी (क०)। ९ लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् (प०)। १०. लुब्धानां याचकः शत्रुः। ११. लोभः पापस्य कारणम्। १२. लोभमूलानि पापानि।

(ज) सन्तोष

१. अन्तो नास्ति पिपासायाः सन्तोषः परमं सुखम्। २. अपां हि तृप्ताय न वारिधारा, स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा (नै०)। ३. न तोषात् परमं सुखम्। ४. न तोषो महता मृषा (क०)। ५ मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः। ६. सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्। ७ सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत्।

(झ) सौन्दर्य

१ किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (शा०)। २ केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः, किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः (र०)। ३. क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः (शि०)। ४ गुणान् भूषयते रूपम्। ५. न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् (कि०)। ६ न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं, सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते (कु०)। ७. प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः, प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् (र०)। ८ प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु०)। ९ भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां, वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः (कु०)। १० यतो रूपं ततः शीलम्। ११. यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति। १२. यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम्। १३ रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति (कि०)। १४. सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् (द०)। १५ हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि०)।

(१३) मनोभाव

(क) करुण-रस

१. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् (उ०)। २. अभितप्तमयोऽपि मार्दवं, भजते कैव कथा शरीरिषु (र०)। ३. इष्टमूलानि शोकानि। ४. दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम् (कि०)। ५ प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा (मे०)। ६. प्रियबन्धुविनाशोत्थः शोकाग्निः कं न तापयेत् (क०)। ७. प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति (उ०)। ८. सन्धत्ते भृशमरतिं हि सद्वियोगः (कि०)।

(ख) क्रोध

१. क्रोधः संसारबन्धनम्। २ क्रोधो मूलमनर्थानाम् (हि०)। ३. जितक्रोधेन सर्वं हि जगदेतद् विजीयते (क०)। ४ जितक्रोधो न दुःखस्यास्पदीभवेत् (क०)। ५. धर्मक्षयकरः क्रोधः। ६. नास्ति क्रोधसमो वह्निः।

(ग) चिन्ता

१. चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता चैव सजीवकम् । २ चिन्ता जरा मनुष्याणाम् । ३ चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम् ।

(घ) प्रेम (प्रेम-स्वभाव)

१ अनुरागान्धमनसां विचार सहसा कुतः (क०)। २ अपाये पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिता. (र०)। ३ अपायो मस्तकस्थो हि, विषयग्रस्तचेतसाम् (क०)। ४ अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि, बलात् प्रह्लादते मनः (कि०)। ५ आशु बध्नाति हि प्रेम, प्राग्जन्मान्तरसंस्तव. (क०)। ६. आहु सप्तपदी मैत्री। ७ गुण खल्वनुरागस्य कारणं न बलात्कार. (मृ०)। ८ चित्तं जानाति जन्तूनां प्रेम जन्मान्तरार्जितम् (क०)। ९ जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः। १० तारामैत्रक चक्षूराग. (उ०)। ११ दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते (शि०)। १२ दयितास्वनवस्थितं नृणां, न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने (कु०)। १३ प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि (कि०)। १४ भावस्थिराणि जननान्तर-सौहृदानि (शा०)। १५ लोके हि लोहेभ्य· कठिनतरा. खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः (ह०)। १६ वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (कि०)। १७ व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु. (उ०)। १८ सखि साहजिकं प्रेम दूरादपि विजायते। १९. सतां सगतं, मनीषिभि साप्तपदीनमुच्यते (कु०)। २० सर्व स्नेहात् प्रवर्तते (महा०)। २१ सर्व कान्तमात्मीयं पश्यति (शा०)। २२ सर्व प्रिय खलु भवत्यनुरूपचेष्टः (शि०)। २३. स्नेहमूलानि दु खानि (महा०)।

(ङ) रुचि

१ अनपेक्ष्य गुणागुणौ जन, स्वरुचिं निश्चयतोऽनुधावति (शि०)। २. तस्य तदेव हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम् ।

(च) शृंगार

१. इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दु खानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि (शा०)। २ प्रभवति मण्डयितुं वधूरनङ्ग. (कि०)। ३. वाम एव सुरतेष्वपि काम (कि०)। ४ सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति। ५ सन्धत्ते भृशमरतिं हि सद्वियोग· (कि०)। ६ साधनेषु हि रतेरुपधत्ते रम्यतां प्रियसमागम एव (कि०)। ७ सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् (मे०)।

(छ) स्वाभिमान

१ जन्मिनो मानहीनस्य, तृणस्य च समा गतिः (कि०)। २ न स्पृशति पल्वलाम्भ· पञ्जरशेषोऽपि कुञ्जर क्वापि। ३. परभुक्ते हि कमले किमलेर्जायते रति (क०)। ४ पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते (कि०)।

(१४) व्यवहार

(क) अतिथि-सत्कार

१. अतिथिदेवो भव (तैत्ति० उ०) । २ अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मीः । ३. यथाशक्त्यतिथेः पूजा धर्मो हि गृहमेधिनाम् (क०) ।

(ख) अति सर्वत्र वर्जयेत्

१. अतिदानाद् बलिर्बद्धः (भा०) । २ अतिपरिचयादवज्ञा, सन्ततगमनादनादरो भवति । ३. अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी । ४ अतिलोभो न कर्तव्यः, चक्रं भ्रमति मस्तके (प०) । ५. सर्वमतिमात्रं दोषाय (उ०) ।

(ग) अस्तेय (चोर-स्वभाव)

१ कस्यचित् किमपि नो हरणीयम् । २ चोराणामनृतं बलम् । ३. चौरे गते वा किमु सावधानम् । ४ तस्करस्य कुतो धर्मः । ५. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् (यजु०) ।

(घ) इष्टलाभ

१. कः शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति (शा०) । २. कायः कस्य न वल्लभः । ३. चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः (नै०) । ४. ददाति तीव्रसत्त्वानामिष्टमीश्वर एव हि (क०) । ५. धीराश्च सोढविरहाः प्राप्नुवन्तीष्टसंगमम् (क०) ।

(ङ) कलह-निन्दा

१. अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टम् । २. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०) । ३ ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी (क०) । ४. कलहान्तानि हर्म्याणि (प०) । ५. वाङ्मात्रोत्पादितासह्यवैरात् को नानुतप्यते (क०) ।

(च) कृषि

१ अल्पबीजं हतं क्षेत्रम् । २. नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः (भ०) । ३. नास्ति धान्यसमं प्रियम् । ४. यथा बीजं तथाङ्कुरः । ५. यथा वृक्षस्तथा फलम् ।

(छ) पराश्रय

१ कष्टं खलु पराश्रयः । २ कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः पराग्नं च । ३. नैवाश्रितेषु महतां गुणदोषशङ्का ।

(ज) याञ्चा-निन्दा

१ अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे (कु०) । २. अर्थिनि जने त्यागं विना श्रीश्च का । ३ यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः (भ०) । ४ याचनान्तं हि गौरवम् । ५ याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (मे०) । ६ वरं हि मानिनो मृत्युर्न दैन्यं स्वजनाग्रतः (क०) ।

(झ) विघ्न

१. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (प०) । २ रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः (शा०) । ३ विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धय. (शा०) । ४. श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०)। ५. सत्य. प्रवादो यच्छिद्रेष्वनर्था यान्ति भूरिताम् (क०) । ६. सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।

(ञ) स्वार्थ

१. आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् (प०) । २. कृतार्थः स्वामिन द्वेष्टि (प०) । ३. कृतार्थाश्च प्रयोजकम् (महा०) । ४. परसेवैकसक्ताना को हि स्नेहो निजे जने (क०) । ५. सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत्कस्य को वल्लभ. (भ०) । ६ सर्व. स्वार्थं समीहते (शि०) । ७. सर्वथा स्वहितमाचरणीय किं करिष्यति जनो बहुजल्प· ।

(ट) नीति

१ अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०) । २. आदौ साम प्रयोक्तव्यम् (प०) । ३ आर्जव हि कुटिलेषु न नीतिः (नै०) । ४ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज. सुखी भवेत् । ५ इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट । ६ इद च नास्ति न पर च लभ्यते । ७. इष्ट धर्मेण योजयेत् (प०) । ८ उच्छ्राय नयति यदृच्छयाऽपि योग. (क०) । ९. उपाय चिन्तयेत् प्राज्ञ. (प०) । १०. उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्था प्रमाद्यत. (शि०) । ११. उपायेन हि यच्छक्य न तच्छक्य पराक्रमै. (प०) । १२ ऋणकर्ता पिता शत्रुः (प०) । १३. एको वास पत्तने वा वने वा (भ०) । १४. क उष्णोदकेन नवमालिका सिञ्चति (शा०) । १५ कण्टकेनैव कण्टकम् (प०) । १६ के वा न स्यु. परिभवपद निष्फलारम्भयत्ना (मे०) । १७ को न याति वश लोके मुखे पिण्डेन पूरित· । १८ गत न शोचामि कृत न मन्ये । १९ ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत् । २०. चलति जयान्न जिगीषता हि चेत (कि०) । २१ चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन पण्डितः (शा० प०) । २२. त्यजेदेक कुलस्यार्थे (प०) । २३ न काचस्य कृते जातु युक्ता मुक्तामणेः क्षति. (क०) । २४. न कूपखननं युक्त प्रदीप्ते वह्निना गृहे (हि०) । २५ न पादपोन्मूलनशक्ति रह शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र०) । २६ न भय चास्ति जाग्रतः । २७ नयहीनादपरज्यते जन. (कि०) । २८ नहि तापयितु शक्य सागराम्भस्तृणोल्कया । २९ नार्कातपैर्जलजमेति हिमैस्तु दाहम् (नै०) । ३० नासमीक्ष्य पर स्थान पूर्वमायतन त्यजेत् (शा० प०) । ३१ निपातनीया हि सतामसाधव. (शि०) । ३२. नीचैरनीचैरतिनीचनीचै. सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम् । ३३ नृपतिजनपदाना दुर्लभः कार्यकर्ता (प०) । ३४ पय.पान भुजङ्गाना केवल विषवर्धनम् (प०) । ३५ पयो गते किं खलु सेतुबन्ध । ३६ परवृद्धिषु बद्धमत्सराणा किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०) । ३७ परसदननिविष्ट. को लघुत्व न याति (भ०) ।

(१४) व्यवहार

(क) अतिथि-सत्कार

१. अतिथिदेवो भव (तैत्ति० उ०) । २ अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मीः । ३. यथाशक्त्यतिथेः पूजा धर्मो हि गृहमेधिनाम् (क०) ।

(ख) अति सर्वत्र वर्जयेत्

१. अतिदानाद् बलिर्बद्धः (भा०)। २ अतिपरिचयादवज्ञा, सन्ततगमनादनादरो भवति । ३ अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी । ४. अतिलोभो न कर्तव्यः, चक्रं भ्रमति मस्तके (प०) । ५. सर्वमतिमात्रं दोषाय (उ०) ।

(ग) अस्तेय (चोर-स्वभाव)

१. कस्यचित् किमपि नो हरणीयम् । २. चोराणामनृतं बलम् । ३. चौरे गते वा किमु सावधानम् । ४. तस्करस्य कुतो धर्मः । ५. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् (यजु०) ।

(घ) इष्टलाभ

१ कः शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति (शा०) । २ कामः कस्य न वल्लभः । ३. चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः (नै०) । ४ ददाति तीव्रसत्त्वानामिष्टमीश्वर एव हि (क०) । ५. धीराश्च सोढविरहाः प्राप्नुवन्तीष्टसंगमम् (क०) ।

(ङ) कलह-निन्दा

१. अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टम् । २. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०) । ३. ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी (क०) ।४. कलहान्तानि हर्म्याणि (प०) । ५ वाङ्मात्रोत्पादितासह्यवैरात् को नानुतप्यते (क०) ।

(च) कृषि

१ अल्पबीजं हतं क्षेत्रम् । २. नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः (भ०) । ३. नास्ति धान्यसमं प्रियम् । ४. यथा बीजं तथाङ्कुरः । ५. यथा वृक्षस्तथा फलम् ।

(छ) पराश्रय

१ कष्टं खलु पराश्रयः । २. कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः परान्नं च । ३. नैवाश्रितेषु महतां गुणदोषशङ्का ।

(ज) याञ्चा-निन्दा

१ अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे (कु०) । २ अर्थिनि जने त्यागं विना श्रीश्च का । ३ यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः (भ०) । ४ याचनान्तं हि गौरवम् । ५ याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (मे०) । ६ वरं हि मानिनो मृत्युर्न दैन्यं स्वजनाग्रतः (क०) ।

(झ) विघ्न

१ छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (प०) । २ रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था (शा०) । ३ विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धय. (शा०) । ४ श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायै. (कि०)। ५. सत्य प्रवादो यच्छिद्रेष्वनर्था यान्ति भूरिताम् (क०) । ६. सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।

(ञ) स्वार्थ

१ आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् (प०) । २. कृतार्थः स्वामिन द्वेष्टि (प०) । ३. कृतार्थाश्च प्रयोजनम् (महा०) । ४. परसेवैकसक्ताना को हि स्नेहो निजे जने (क०) । ५. सर्व कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत्कस्य को वल्लभ. (भ०) । ६ सर्व स्वार्थं समीहते (शि०) । ७ सर्वथा स्वहितमाचरणीय किं करिष्यति जनो बहुजल्प ।

(ट) नीति

१. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०) । २. आदौ साम प्रयोक्तव्यम् (प०) । ३ आर्जव हि कुटिलेषु न नीतिः (नै०) । ४ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज. सुखी भवेत् । ५. इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः । ६. इद च नास्ति न पर च लभ्यते । ७ इष्ट धर्मेण योजयेत् (प०) । ८. उच्छ्राय नयति यदृच्छयाऽपि योग (क०) । ९. उपाय चिन्तयेत् प्राज्ञः (प०) । १०. उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्था प्रमाद्यत. (शि०) । ११. उपायेन हि यच्छक्य न तच्छक्य पराक्रमैः (प०) । १२ ऋणकर्ता पिता शत्रु' (प०) । १३. एको वास पत्तने वा वने वा (भ०) । १४ क उष्णोदकेन नवमालिका सिञ्चति (शा०) । १५. कण्टकेनैव कण्टकम् (प०) । १६ के वा न स्युः परिभवपद निष्फलारम्भयत्ना. (मे०) । १७ को न याति वश लोके मुखे पिण्डेन पूरितः । १८ गत न शोचामि कृत न मन्ये । १९ ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत् । २०. चलति जयान्न जिगीषता हि चेत (कि०) । २१ चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन पण्डितः (शा० प०) । २२. त्यजेदेक कुलस्यार्थे (प०) । २३ न काचस्य कृते जातु युक्ता मुक्तामणेः क्षतिः (क०) । २४. न कूपखनन युक्त प्रदीप्ते वह्निना गृहे (हि०) । २५ न पादपोन्मूलनशक्ति रह शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र०) । २६ न भय चास्ति जाग्रत. । २७ नयहीनादपरज्यते जनः (कि०) । २८ नहि तापयितु शक्य सागराम्भस्तृणोल्कया । २९ नार्कातपैर्जलजमेति हिमैस्तु दाहम् (नै०) । ३०. नासमीक्ष्य पर स्थान पूर्वमायतन त्यजेत् (शा० प०) । ३१. निपातनीया हि सतामसाधवः (शि०) । ३२ नीचैरनीचैरतिनीचनीचैः सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम् । ३३ नृपतिजनपदाना दुर्लभ. कार्यकर्ता (प०) । ३४ पय.पान भुजङ्गाना केवल विषवर्धनम् (प०) । ३५ पयो गते कि खलु सेतुबन्धः । ३६ परवृद्धिषु बद्धमत्सराणा किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०) । ३७ परसदननिविष्टः को लघुत्व न याति (भ०)।

३८ पाणौ पयसा दग्धे तक्रं फूत्कृत्य पामरः पिबति । ३९. प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः (कि०) । ४०. प्रकृत्या ह्यमणिः श्रेयान् नालङ्कारश्च्युतोपलः (कि०) । ४१. प्रच्छन्नमप्यूह्यते हि चेष्टा (कि०) । ४२. प्रतीयन्ते न नीतिज्ञाः कृतावज्ञस्य वैरिणः (क०) । ४३. प्रभुश्च निर्विचारश्च नीतिज्ञैर्न प्रशस्यते (क०) । ४४ प्रायोऽशुभस्य कार्यस्य कालहारः प्रतिक्रिया (क०) । ४५ प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फला (कि०) । ४६. बधिरान्मन्दकर्णः श्रेयान् । ४७ बन्धुरप्यहितः परः । ४८. बहुविघ्नास्तु सदा कल्याणसिद्धयः (क०) । ४९ भवन्ति क्लेशबहुलाः सर्वस्यापीह सिद्धयः (क०) । ५०. भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता, ध्रुवं प्रविस्पष्टफलोदयाय (कु०) । ५१. भेदस्तत्र प्रयोक्तव्यो यतः स वशकारकः (प०) । ५२. महानपि प्रसङ्गेन नीचं सेवितुमिच्छति । ५३. महोदयानामपि सघवृत्तिता, सहायसाध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि०) । ५४ मायाचारो मायया वर्तितव्य , साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः (महा०)। ५५ मुख्यभङ्ग हि मन्त्रस्य विनिपातप्रतिक्रिया (क०) । ५६. मुह्यत्येव हि कृच्छ्रेषु सम्भ्रमज्वलितं मनः (कि०) । ५७ मौनं सर्वार्थसाधकम् । ५८ मौनं स्वीकृतिलक्षणम् । ५९. मौनिनः कलहो नास्ति । ६०. यथा देशस्तथा भाषा । ६१ यथा राजा यथा प्रजा। ६२ यदि वाऽत्यन्तमृदुता न कस्य परिभूयते (क०) । ६३ यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम् । ६४ यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य, तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् (अ०) । ६५. येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् । ६६. येनेष्टं तेन गम्यताम् । ६७ रत्नव्ययेन पाषाणं को हि रक्षितुमर्हति (क०) । ६८ वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् । ६९ विक्रीते करिणि किमङ्कुशे विवादः । ७० व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (क०) । ७१. शुष्केन्धने वह्निरुपैति वृद्धिम् । ७२ श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०) । ७३ सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः (कि०) । ७४ सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः (भ०) । ७५. सन्धिं कृत्वा तु हन्तव्यः सम्प्राप्तेऽवसरे पुनः (क०) । ७६. समुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् (र०) । ७७. सर्वनाशे समुत्पन्नेऽर्धं त्यजति पण्डितः (प०) ।

(१५) पुरुषस्त्री-स्वभावादि

(क) कन्या (पुत्री)

१ अर्थो हि कन्या परकीय एव (शा०) । २. अशोच्या हि पितुः कन्या, सद्भर्तृप्रतिपादिता (कु०) । ३ कन्या नाम महद् दुःखं, धिगहो महतामपि (क०) । ४. कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम् । ५. शोककन्दः क्व कन्या हि, क्वानन्दः कायवान् सुतः (क०) । ६ स्नुषात्वं पापानां फलमधनगेहेषु सुदृशाम् ।

(ख) पुत्र

१. अपुत्राणा किल न सन्ति लोका. शुभा (का०)। २. क. सूनुर्विनय विना। ३ कुपुत्रेण कुल नष्टम्। ४ कोऽर्थ पुत्रेण जातेन, यो न विद्वान् न धार्मिक· (हि०)। ५ दुर्लभ क्षेमकृत् सुत.। ६ धिक् पुत्रमविनीत च। ७ न चापत्यसमः स्नेह·। ८ न पुत्रात्परमो लाभ। ९ पुत्र. शत्रुरपण्डित. (चा०)। १०. पुत्रहीन गृह शून्यम्। ११. पुत्रादपि भय यत्र तत्र सौख्य हि कीदृशम्। १२ पुत्रोदये माद्यति का न हर्षात्। १३. मातापितृभ्या शप्त सन्न यातु सुखमश्नुते (क०)। १४. शोककन्द क कन्या हि, क्वानन्द. कायवान् सुत. (क०)। १५ सत्पुत्र एव कुलसद्मनि कोऽपि दीप। १६ सन्तति. पुण्यमाख्याति। १७ सन्तति. शुद्धवश्या हि, परत्रेह च शर्मणे (र०)।

(ग) स्त्रीचरित-निन्दा

१ अधरेष्वमृत हि योषिता, हृदि हालाहलमेव केवलम्। २ अनुरागपरायत्ता. कुर्वते कि न योषितः (क०)। ३ अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमा. (प०)। ४. अविनीता रिपुर्भार्या। ५ कठिनाः खलु स्त्रिय. (कु०)। ६. कष्टा हि कुटिलश्वश्रूपरतन्त्र-वधूस्थिति· (क०)। ७ किं किं करोति न निरर्गलता गता स्त्री। ८ कि न कुर्वन्ति योषित. (भ०)। ९. कुगेहिनीं प्राप्य गृहे कुत. सुखम्। १० न स्त्री चलितचारित्रा निम्नोन्नतमवेक्षते (क०)। ११ नार्यः समाश्रितजन हि कलङ्कयन्ति। १२ प्रत्यय स्त्रीषु मुष्णाति विमर्श विदुषामपि (क०)। १३. मद्ये मारैकसुहृदि प्रसक्ता स्त्री सती कुत. (क०)। १४. वञ्च्यन्ते हेलयैवेह कुस्त्रीभि. सरलाशया. (क०)। १५ वेश्याना च कुत. स्नेहः। १६ सनिकृष्टे निकृष्टेऽपि कष्ट रज्यन्ति कुस्त्रिय. (क०)।

(घ) स्त्रीधर्म आदि

१ इहामुत्र च नारीणा परमा हि गति· पतिः (क०)। २ उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी (शा०)। ३ कष्ट हन्त मृगीदृशा पतिगृह प्रायेण कारागृहम्। ४. प्रमदाः पतिमार्गगा इति प्रतिपन्न हि विचेतनैरपि (कु०)। ५. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु०)। ६ भर्तृनाथा हि नार्य. (प्रतिमा०)। ७ भर्तृमार्गानुसरण स्त्रीणा हि परम व्रतम् (क०)।

(ङ) स्त्रीशील-प्रशंसा

१ अचिन्त्य शीलगुप्ताना चरित कुलयोषिताम् (क०)। २ असाध्य सत्यसाध्वीना किमस्ति हि जगत्त्रये (क०)। ३ असारे खलु ससारे, सार सारङ्गलोचना। ४ आपद्यपि सतीवृत्त, कि मुञ्चन्ति कुलस्त्रिय. (क०)। ५ का नाम कुलजा हि स्त्री, भर्तृद्रोह करिष्यति (क०)। ६ कि नाम न सहन्ते हि, भर्तृभक्ता कुलाङ्गना (क०)। ७. कुलवधू का स्वामिभक्ति विना। ८ क्रियाणा खलु धर्म्याणा

सत्पत्न्यो मूलकारणम् (कु०)। ९ तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत् सती। १०. धिग् गृह गृहिणीशून्यम्। ११ न गृह गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। १२. न पतिव्यतिरेकेण सुस्त्रीणामपरा गतिः (क०)। १३. न भार्यायाः पर सुखम्। १४. नारीणा भूषण पतिः। १५. नारीणा भूषण शील्म्। १६. नास्ति भर्तु॰ समो बन्धु॰ (वि०)। १७. नेर्ष्यो भर्तृहितैषिण्यो गणयन्ति हि सुस्त्रियः (क०)। १८ पुत्रप्रयोजना दाराः। १९. पुरन्ध्रीणा चित्त कुसुमसुकुमार हि भवति (उ०)। २०. पेशल हि सतीमनः (क०)। २१. भर्तार हि विना नान्यः सतीनामस्ति बान्धवः (क०)। २२ भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः (कु०)। २३. भार्या मूल गृहस्थस्य। २४. भार्यासम नास्ति शरीरतोषणम्। २५. भार्याहीन गृहस्थस्य शून्यमेव गृह मतम्। २६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता. (म०)। २७ या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी। २८. शुचिर्नारी पतिव्रता। २९ सतीधर्मो हि सुस्त्रीणा चिन्त्यो न सुहृदादय. (क०)। ३०. स्निग्धमुग्धा हि सत्स्त्रियः (क०)। ३१. स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव (शि०)। ३२ स्वसुख नास्ति साध्वीना, तासा भर्तृसुख सुखम् (क०)।

(च) स्त्री-स्वभावादि-वर्णन

१. अहो विनेन्द्रजालेन स्त्रीणा चेष्टा न विद्यते (क०)। २ आदावसत्यवचन पश्चाज्जाता हि कुस्त्रियः (क०)। ३ उदारसत्त्व वृणुते, स्वय हि श्रीरिवाङ्गना (क०)। ४. कान्ता रूपवती शत्रुः। ५. को हि वित्तं रहस्य वा, स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम् (क०)। ६ क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतोर्लीलाभिः किमु सति कारणे रमण्य (शि०)। ७. जातापत्या पतिं द्वेष्टि। ८ तदेव दु सह स्त्रीणामिह प्रणयखण्डनम् (क०)। ९. धिक् कलत्रमपुत्रकम्। १० नवाङ्गनाना नव एव पन्थाः। ११ न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (महा०)। १२ न स्नेहो न च दाक्षिण्य, स्त्रीष्वहो चापलादृते (क०)। १३. नहि नार्यो विनेर्ष्यया। १४. नहि बन्ध्याऽश्नुते दु.ख, यथा हि मृतपुत्रिणी। १५. निसर्गसिद्धो नारीणा, सपत्नीषु हि मत्सर (क०)। १६. प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणम् (शा०)। १७. प्राय. श्वश्रूस्नुषयोर्न दृश्यते सौहृद लोके। १८ प्रायः स्त्रियो भवन्तीह निसर्गविषमा शठाः (क०)। १९ प्रायेण भूमिपतय॰ प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति त परिवेष्टयन्ति (प०)। २० श्रत स्त्रीणा चञ्चलाश्चित्तवृत्तयः (क०)। २१. युवतिजन॰ खलु नाप्यतेऽनुलप॰ (कि०)। २२. स्त्रियश्चरित्र पुरुषस्य भाग्यम्, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः। २३ स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृका.। २४. स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति (क०)। २५ स्त्रीणा प्रियालोकफलो हि वेष. (क०)। २६. स्त्रीणा भावानुरक्तं हि, विरहासहन मन. (क०)। २७. स्त्रीणामलीकमुग्ध हि, वच. को मन्यते मृषा (क०)। २८. स्त्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु (मे०)। २९. स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा, तद्धि गेह विनष्टम्।

३० स्त्रीबुद्धिः प्रलयावहा (का० नी०) । ३१. स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः (भ०) । ३२ स्त्री विनश्यति रूपेण (शा० प०) । ३३. स्त्रीषु वाक्संयमः कुतः (क०) । ३४. स्वाधीना दयिता सुतावधि ।

(१६) कवि, काव्य, कविता

१ कलासीमा काव्यम् । २ कवयः किं न पश्यन्ति । ३. काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् (हि०) । ४ केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय । ५ पिपासितैः काव्यरसो न पीयते । ६ पिबाम. शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान् । ७. सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् । ८. स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् । रचिता पृथगर्थता गिरा, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् (कि०) ।

(१७) विविध

(क) कलि

१ कलौ वेदान्तिनो भान्ति, फाल्गुने बालका इव । २ पश्यन्तु लोकाः कलि-कौतुकानि । ३ पश्यन्तु लोकाः कलिदोषकाणि । ४. साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्युगे ।

(ख) शकुन

१ अन्तरापाति हि श्रेयः, कार्यसम्पत्तिसूचकम् (क०) । २ अव्याक्षेपो भविष्य-न्त्या कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् (र०) । ३. आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रपातीनि शुभानि निमित्तानि (का०) । ४ आमुखापाति कल्याण, कार्यसिद्धिं हि शंसति (क०) । ५. भवन्त्युदयकाले हि सत्कल्याणपरम्परा (क०) ।

(ग) विविध सुभाषित

१ अधिकस्याधिकं फलम् । २. अनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः । ३ अपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः । ४ अपुत्रस्य गृहं शून्यम् । ५. अप्रकटीकृत-शक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रिया लभते । ६. अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः (प०) । ७ अभोगस्य हतं धनम् (प०) । ८. अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः । ९ अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः । १० अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिन-श्चाम्बुधराश्च योनयः (कु०) । ११ अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् (का०) । १२. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया (र०) । १३ इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यापितै-र्गुणैः (प०) । १४ कस्यचित् किमपि नो हरणीयं, मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम् । १५. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते । १६ क्षुधातुराणां न रुचिर्न पक्वम् । १७. घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले, क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०) । १८ चक्षुःपूतं न्यसेत् पादम्

सत्पत्न्यो मूलकारणम् (कु०)। ९. तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत् सती। १०. धिग् गृहं गृहिणीशून्यम्। ११. न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। १२. न पतिव्यतिरेकेण सुस्त्रीणामपरा गतिः (क०)। १३. न भार्यायाः परं सुखम्। १४. नारीणां भूषणं पतिः। १५. नारीणां भूषणं शीलम्। १६. नास्ति भर्तुः समो बन्धुः (वि०)। १७. नेर्ष्यां भर्तृहितैषिण्यो गणयन्ति हि सुस्त्रियः (क०)। १८ पुत्रप्रयोजना दाराः। १९. पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (उ०)। २०. पेशलं हि सतीमनः (क०)। २१ भर्तारं हि विना नान्यः सतीनामस्ति बान्धवः (क०)। २२. भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः (कु०)। २३. भार्या मूलं गृहस्थस्य। २४. भार्यासमं नास्ति शरीरतोषणम्। २५ भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं मतम्। २६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः (म०)। २७. या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी। २८. शुचिर्नारी पतिव्रता। २९ सतीधर्मो हि सुस्त्रीणां चिन्त्यो न सुहृदादयः (क०)। ३०. स्निग्धमुग्धा हि सत्स्त्रियः (क०)। ३१. स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव (शि०)। ३२ स्वसुखं नास्ति साध्वीनां, तासां भर्तृसुखं सुखम् (क०)।

(च) स्त्री-स्वभावादि-वर्णन

१. अहो विनेन्द्रजालेन स्त्रीणां चेष्टा न विद्यते (क०)। २. आदावसत्यवचनं पश्चाज्जाता हि कुस्त्रियः (क०)। ३ उदारसत्त्वं वृणुते, स्वयं हि श्रीरिवाङ्गना (क०)। ४ कान्ता रूपवती शत्रुः। ५. को हि वित्तं रहस्यं वा, स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम् (क०)। ६ क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतोर्लीलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः (शि०)। ७ जातापत्या पतिं द्वेष्टि। ८ तदेव तु सह स्त्रीणामिह प्रणयखण्डनम् (क०)। ९. धिक् कलत्रमपुत्रकम्। १० नवाङ्गनानां नव एव पन्थाः। ११. न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (महा०)। १२ न स्नेहो न च दाक्षिण्यं, स्त्रीष्वहो चापलादृते (क०)। १३ नहि नार्यो विनेर्ष्यया। १४. नहि वन्ध्याऽश्नुते दुःखं, यथा हि मृतपुत्रिणी। १५. निसर्गसिद्धो नारीणां, सपत्नीषु हि मत्सरः (क०)। १६ प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणम् (शा०)। १७ प्रायः श्वश्रूस्नुषयोर्न दृश्यते सौहृदं लोके। १८. प्रायः स्त्रियो भवन्तीह निसर्गविषमाः शठाः (क०)। १९ प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प०)। २० बत स्त्रीणां चञ्चलाश्चित्तवृत्तयः (क०)। २१ युवतिजनः खलु नाप्यतेऽनुरूपं (कि०)। २२. स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः। २३ स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः। २४. स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति (क०)। २५ स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः (क०)। २६. स्त्रीणां भावानुरक्तं हि, विरहासहनं मनः (क०)। २७. स्त्रीणामलीकमुग्धं हि, वचः को मन्यते मृषा (क०)। २८. स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु (मे०)। २९. स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा, तद्धि गेहं विनष्टम्।

३० स्त्रीबुद्धिः प्रलयावहा (का० नी०) । ३१. स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः (भ०) । ३२. स्त्री विनश्यति रूपेण (शा० प०) । ३३. स्त्रीषु वाक्संयमः कुतः (क०) । ३४. स्वाधीना दयिता सुतावधि ।

(१६) कवि, काव्य, कविता

१. कलासीमा काव्यम् । २ कवयः किं न पश्यन्ति । ३. काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् (हि०) । ४. केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय । ५. पिपासितै काव्यरसो न पीयते । ६ पिबामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान् । ७ सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् । ८. स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् । रचिता पृथगर्थता गिरा, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् (कि०) ।

(१७) विविध

(क) कलि

१ कलौ वेदान्तिनो भान्ति, फाल्गुने बालका इव । २ पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि । ३ पश्यन्तु लोकाः कलिदोषकाणि । ४. साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्युगे ।

(ख) शकुन

१ अन्तरापाति हि श्रेयः, कार्यसम्पत्तिसूचकम् (क०) । २. अव्याक्षेपो भविष्यन्त्या कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् (र०) । ३ आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रपातीनि शुभानि निमित्तानि (का०) । ४ आमुखापाति कल्याणं, कार्यसिद्धिं हि शंसति (क०) । ५. भवन्त्युदयकाले हि सत्कल्याणपरम्परा (क०) ।

(ग) विविध सुभाषित

१ अधिकस्याधिकं फलम् । २. अनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः । ३ अपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः । ४. अपुत्रस्य गृहं शून्यम् । ५. अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रिया लभते । ६. अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः (प०) । ७ अभोगस्य हतं धनम् (प०) । ८. अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः । ९ अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः । १० अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः (कु०) । ११ अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् (का०) । १२. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया (र०) । १३ इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः (प०) । १४ कस्यचित् किमपि नो हरणीयं, मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम् । १५. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते । १६ क्षुधातुराणां न रुचिर्न पक्वम् । १७. घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले, क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०) । १८ चक्षुःपूतं न्यसेत् पादम्

(चा०)। १९. जातौ जातौ नवाचाराः। २०. जामाता दशमो ग्रह.। २१ जीवो जीवस्य जीवनम्। २२ ज्येष्ठभ्राता पितु समः। २३. दया मासाग्निन. वुतः (प०)। २४. दिगत्यपाय हि सतामतिक्रमः (कि०)। २५. दुर्लभ. स गुरुर्लोके शिष्यचिन्तापहारक.। २६. दुर्लभः स्वजनप्रियः। २७ देहस्नेहो हि दुस्त्यज· (क०)। २८. नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति (प०)। २९ न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवार्तया। ३०. ननु तैलनिषेकबिन्दुना, सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् (र०)। ३१ न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः, शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र०)। ३२ न प्रभातरल ज्योतिरुदेति वसुधातलात् (शा०)। ३३. न भूतो न भविष्यति। ३४. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् (कु०)। ३५ नराणा नापितो धूर्तः (प०)। ३६. न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग्, यादृक् कांस्ये प्रजायते। ३७ नहि प्रफुल्ल सहकारमेत्य, वृक्षान्तर काक्षति षट्पदालि· (र०)। ३८. नहि सिंहो गजास्कन्दी भयात् गिरिगुहाश्रयः। ३९ नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि (प०)। ४० नात्मीयान् बहुसुकृत हिनस्ति दोषः (कि०)। ४१. नि सारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्। ४२. निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते (हि०)। ४३ निर्वाणदीपे किमु तैलदानम्। ४४. नैकत्र सर्वो गुणसनिपातः। ४५ पङ्को हि नभसि क्षिप्त· क्षेप्तुः पतति मूर्धनि (क०)। ४६. परोपदेशवेलाया शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै। ४७ परोपदेशे पाण्डित्य सर्वेषा सुकर नृणाम्। ४८ प्रकृत्या ह्यमणिः श्रेयान् नालकारश्च्युतोपलः (कि०)। ४९ प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसा प्रायो मति· क्षीयते। ५०. फणाटोपो भयकरः (प०)। ५१ बालाना रोदन बलम्। ५२. भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः (कि०) ५३ भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाता. (कि०)। ५४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु०)। ५५. मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना। ५६. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। ५७ यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते (कु०)। ५८. यदन्न भक्षयेन्नित्य जायते तादृशी मतिः। ५९. यद्वा तद् वा भविष्यति। ६०. याचको याचक दृष्ट्वा श्वानवत् गुर्गुरायते। ६१ यादृशास्तन्तवः काम तादृशो जायते पटः (क०)। ६२ योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु। ६३ यो यद् वपति बीज हि, लभते तादृश फलम् (क०)। ६४ रत्न समागच्छतु काञ्चनेन। ६५. रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् (कु०)। ६६ रिक्तपाणिर्न प्रेक्षेत राजान देवता गुरुम्। ६७ लाभ. पर तव मुखे खलु भस्मपात.। ६८ वास प्रधान खलु योग्यताया.। ६९ वासोविहीन विजहाति लक्ष्मी.। ७० विना मलयमन्यत्र चन्दन न प्ररोहति। ७१. विनाशकाले विपरीतबुद्धि.। ७२. विवक्षित ह्यनुक्तमनुताप जनयति (शा०)। ७३ विषवृक्षोऽपि सवर्ध्य स्वय छेत्तुमसाम्प्रतम् (कु०)। ७४ शस्त्राघाता न तथा सूचीक्षतवेदना यादृक्। ७५. शिष्यपाप गुरुस्तथा। ७६ शुभस्य शीघ्रम्, अशुभस्य कालहरणम्। ७७. श्यालको गृहनाशाय (चा०)। ७८ सपत्सम्पद विपद् विपदमनुबध्नातीति (का०)। ७९ सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्। ८० सागर वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति (शा०)। ८१. सुखमुपदिश्यते परस्य (का०)। ८२ स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ता केशा नखा नरा. (प०)। ८३. स्वदेशजातस्य नरस्य नून गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा।

(१३) पारिभाषिक-शब्दकोश

सूचना (१) संस्कृत व्याकरण को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक एवं अत्युपयोगी सभी पारिभाषिक शब्दों का यहाँ पर संग्रह किया गया है। विद्यार्थी इन शब्दों को बहुत सावधानी से स्मरण कर ले। (२) पारिभाषिक शब्दों के साथ उनके मूल नियम पाणिनि के सूत्र आदि के रूप में दिए गए हैं। (३) इस शब्दकोश में सभी शब्द अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।

(१) **अकर्मक**—अकर्मक वे धातुएँ होती हैं, जिनके साथ कर्म नहीं आता। अकर्मक की साधारणतया पहचान यह है कि जिनमें किम् (किसको, क्या) का प्रश्न नहीं उठता। इन अर्थोंवाली धातुएँ अकर्मक होती हैं। 'लज्जासत्तास्थितिजागरणं, वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्। शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं, धातुगणं तमकर्मकमाहुः' ॥ फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्। फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम् ॥ इन कारणों से सकर्मक धातु अकर्मक हो जाती है :—धातु का अर्थान्तर में प्रयोग, धात्वर्थ में कर्म का संग्रह, प्रसिद्धि तथा कर्म की अविवक्षा।

(२) **अक्षर**—(अक्षरं न क्षरं विद्यात्, अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्) अविनाशी और व्यापक होने के कारण स्वर और व्यंजन वर्णों को अक्षर कहते हैं।

(३) **अघोष**—खय् प्रत्याहार अर्थात् वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर, जिह्वामूलीय ≍क, उपध्मानीय ≍प, विसर्ग और श ष स ये अघोष वर्ण हैं।

(४) **अच्**—स्वरों को अच् कहते हैं। वे हैं—अ से लेकर औ तक स्वर।

(५) **अजन्त**—(अच् + अन्त) स्वर अन्तवाले शब्द या धातु आदि।

(६) **अध्याहार**—(सूत्रे अश्रूयमाणत्वे सति अर्थप्रत्यायकत्वम्) सूत्र में जो शब्द या अर्थ नहीं है और वह शब्द या अर्थ अर्थवशात् लिया जाता है तो उस अंश को अध्याहार कहते हैं।

(७) **अनिट्**—(न + इट्) जिन धातुओं में साधारणया बीच में 'इ' नहीं लगता। जैसे—कृ, गम् आदि। इनका विशेष विवरण पृष्ठ ३६८ पर दिया है। कृ—कर्ता, कर्तुम् आदि।

(८) **अनुदात्त**—(नीचैरनुदात्तः, १।२।३०) जिस स्वर को तालु आदि के नीचे भाग से बोला जाता है, या जिस पर बल नहीं दिया जाता, उसे अनुदात्त कहते हैं। वेद में अक्षर के नीचे लकीर खींचकर अनुदात्त का संकेत किया जाता है। स्वरित के बाद अनुदात्त का चिह्न नहीं लगता। बाद में उदात्त होगा तो अनुदात्त रहेगा।

(९) **अनुनासिक**—(मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः, १-१-८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों के मेल से होता है, उन्हें अनुनासिक कहते हैं। वर्गों के पंचमाक्षर ङ ञ ण न म अनुनासिक ही होते हैं। अच् और य व ल अनुनासिक और अनुनासिक-रहित दोनों प्रकार के होते हैं।

(१०) **अनुबन्ध**—प्रत्ययों आदि के प्रारम्भ और अन्त में कुछ स्वर व्यंजन इसलिए जुड़े होते हैं कि उस प्रत्यय के होने पर गुण, वृद्धि, संप्रसारण,

(चा०)। १९. जातौ जातौ नवाचाराः। २०. जामाता दशमो ग्रहः। २१. जीवो जीवस्य जीवनम्। २२ ज्येष्ठभ्राता पितु. सम.। २३. दया मासाग्नि. कुत. (प०)। २४. दिगत्ययाय हि सतामतिक्रम. (कि०)। २५. दुर्लभ. स गुरुर्लोके शिष्यचिन्तापहारकः। २६. दुर्लभः स्वजनप्रिय.। २७. देहस्नेहो हि दुस्त्यज. (क०)। २८. नक्र. स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति (प०)। २९. न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवार्तया। ३० ननु तैलनिषेकबिन्दुना, सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् (र०)। ३१ न पादपोन्मूलनशक्ति रहं, शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र०)। ३२. न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् (शा०)। ३३. न भूतो न भविष्यति। ३४ न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् (कु०)। ३५ नराणा नापितो धूर्त. (प०)। ३६. न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग्, यादृक् कांस्ये प्रजायते। ३७ नहि प्रफुल्ल सहकारमेत्य, वृक्षान्तर काङ्क्षति षट्पदालि॰ (र०)। ३८. नहि सिंहो गजास्कन्दी भयात् गिरिगुहाश्रयः। ३९. नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि (घ०)। ४०. नाल्पीयान् बहुसुकृत हिनस्ति दोषः (कि०)। ४१. नि.सारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्। ४२. निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते (हि०)। ४३ निर्वाणदीपे किमु तैलदानम्। ४४ नैकत्र सर्वो गुणसंनिपात॰। ४५. पङ्को हि नभसि क्षिप्तः क्षेप्तु. पतति मूर्धनि (क०)। ४६. परोपदेशवेलाया शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै। ४७ परोपदेशे पाण्डित्य सर्वेषा सुकर नृणाम्। ४८ प्रकृत्या ह्यमणिः श्रेयान् नालकारश्च्युतोपलः (कि०)। ४९. प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसा प्रायो मति. क्षीयते। ५०. फणाटोपो भयकरः (प०)। ५१. बालाना रोदन बलम्। ५२. भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः (कि०) ५३ भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाता. (कि०)। ५४. मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु०)। ५५ मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना। ५६. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। ५७ यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते (कु०)। ५८. यदन्न भक्षयेन्नित्य जायते तादृशी मतिः। ५९. यद्वा तद् वा भविष्यति। ६०. याचको याचक दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते। ६१ यादृशास्तन्तवः काम तादृशो जायते पटः (क०)। ६२. योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु। ६३ यो यद् वपति बीज हि, लभते तादृश फलम् (क०)। ६४ रत्न समागच्छतु काञ्चनेन। ६५. रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् (कु०)। ६६ रिक्तपाणिर्न प्रेक्षेत राजान देवता गुरुम्। ६७ लाभः पर तव मुखे खलु भस्मपात.। ६८. वास. प्रधान खलु योग्यतायाः। ६९ वासोविहीन विजहाति लक्ष्मी। ७० विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति। ७१. विनाशकाले विपरीतबुद्धि.। ७२. विवक्षित ह्यनुक्तमनुताप जनयति (शा०)। ७३ विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वय छेत्तुमसाम्प्रतम् (कु०)। ७४ शस्त्राघाता न तथा सूचीक्षतवेदना यादृक्। ७५. शिष्यपाप गुरुस्तथा। ७६ शुभस्य शीघ्रम्, अशुभस्य कालहरणम्। ७७. श्यालको गृहनाशाय (चा०)। ७८ सपत्सम्पद विपद् विपदमनुबध्नातीति (का०)। ७९ सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्। ८० सागर वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति (शा०)। ८१. सुखमुपदिश्यते परस्य (का०)। ८२. स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नरा॰ (प०)। ८३. स्वदेशजातस्य नरस्य नून गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा।

प्रत्येक पाद में कुछ सूत्र। सूत्रो के आगे निर्दिष्ट सख्याओ का क्रमशः यह भाव है—(१) अध्याय की सख्या, (२) पाद की सख्या, (३) सूत्र की सख्या। यथा—१।१।१, अध्याय १, पाद १ का पहला सूत्र।

(२३) असिद्ध—(पूर्वत्रासिद्धम्, ८।२।१) किसी विशेष नियम की दृष्टि में किसी नियम या कार्य को न हुआ सा समझना। जैसे—सवा सात अध्यायो की दृष्टि मे अन्तिम तीन पाद असिद्ध हैं और तीन पाद मे भी पूर्व के प्रति पर नियम असिद्ध है।

(२४) आख्यात—धातु और क्रिया को आख्यात कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च'।

(२५) आगम—शब्द या धातु के बीच या अन्त में जो अक्षर या वर्ण और जुड जाते हैं, उन्हे आगम कहते है। जैसे—पयस् > पयासि में न् का बीच मे आगम है।

(२६) आत्मनेपद—(तङानावात्मनेपदम्, १।४।१००) तङ् (ते, एते, अन्ते आदि) शानच्, कानच्, ये आत्मनेपद होते हैं। जिन धातुओं के अन्त मे ते एते अन्ते आदि लगते हैं, वे धातुएँ आत्मनेपदी कहाती हैं। जैसे—सेव् धातु। सेवते सेवेते०।

(२७) आदेश, एकादेश—किसी वर्ण या प्रत्यय आदि के स्थान पर कुछ नए प्रत्यय आदि के होने को आदेश कहते हैं। जैसे—आदाय मे क्त्वा को ल्यप् आदेश। पूर्व और पर दो के स्थान पर एक वर्ण होना एकादेश है। जैसे—रमेश. मे आ + ई को ए गुण।

(२८) आमन्त्रित—(सामन्त्रितम्, २।३।४८) सबोधन को आमन्त्रित कहते हैं। हे अग्ने।

(२९) आम्रेडित—(तस्य परमाम्रेडितम्, ८।१।२) द्विरुक्तिवाले स्थानों पर उत्तरार्ध को आम्रेडित कहते हैं। जैसे—कान् + कान्, = कास्कान् मे बाद वाला कान्।

(३०) आर्धधातुक—(आर्धधातुक शेष., ३।४।११४) तिङ् (ति तः अन्ति आदि और ते एते अन्ते आदि) और शित् (श् इत् वाले, शतृ आदि) से अतिरिक्त धातुओं से जुडनेवाले प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते है। (लिट् च, ३।४।११५, लिङाशिषि, ३-४-११६) लिट् और आशीर्लिङ् के स्थान पर होनेवाले तिङ् भी आर्धधातुक होते हैं।

(३१) इट्—(आर्धधातुकस्येड्वलादे., ७।२।३५) इट् का इ शेष रहता है। यह धातु और प्रत्यय के बीच में होता है। वलादि आर्धधातुक को इट् (इ) होता है। जैसे—पठिष्यति, पठितुम्। इस इट् (इ) के आधारपर ही धातुएँ सेट् या अनिट् कही जाती है। जिन धातुओ मे साधारणतया इट् (इ) होता है, उन्हे सेट् (स + इट्) अर्थात् 'इ'वाली धातुएँ कहते है। जिनमें इट् (इ) नहीं होता, उन्हे अनिट् (न + इट्) कहते हैं।

(३२) इत्—(तस्य लोप, १।३।९) जिसको इत् कहेंगे, उसका लोप हो जाएगा। अनुबन्धों को इत् कहते हैं। गुण आदि के लिए प्रत्ययो के आदि या अन्त मे ये लगे होते हैं। बाद मे ये हट जाते है। जैसे—शतृ में श् और ऋ। शतृ में श् हटा

विशेष स्वर उदात्तादि, या अन्य कोई विशेष कार्य हो। ऐसे सहेतुक वर्णों को अनुबन्ध कहते हैं। ये 'इत्' होते हैं अर्थात् इनका लोप हो जाता है। जैसे—क्तवतु में क् और उ। शतृ में श् और ऋ। अतः क्तवतु को कित् कहेंगे, शतृ को शित् या उगित्।

(११) अनुवृत्ति—पाणिनि के सूत्रों में पहले के सूत्रों से कुछ या पूरा अंश अगले सूत्रों में आता है, इसे अनुवृत्ति कहते हैं। तभी अगले सूत्र का अर्थ पूरा होता है। विरोधी बात होने पर अनुवृत्ति नहीं होती। कुछ अधिकार-सूत्र होते हैं, उनकी पूरे प्रकरण में अनुवृत्ति होती है। जैसे—प्राग्दीव्यतोऽण् (४।१।८३), तस्यापत्यम् (४।१।९२)।

(१२) अन्तरङ्ग—प्राथमिकता का कार्य। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग अर्थात् मुख्य होता है।

(१३) अन्तस्थ—(यरलवा अन्तस्थाः) य र ल व को अन्तस्थ कहते हैं।

(१४) अन्वादेश—(किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः) पूर्वोक्त व्यक्ति आदि के पुनः किसी काम के लिए उल्लेख करने को अन्वादेश कहते हैं। जैसे—अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय।

(१५) अपवाद—विशेष नियम। यह उत्सर्ग (सामान्य) नियम का बाधक होता है।

(१६) अपृक्त—(अपृक्त एकाल्प्रत्ययः, १।२।४१) एक अल् (स्वर या व्यंजन) मात्र शेष प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं। जैसे—सु का स्, ति का त्, सि का स्।

(१७) अभ्यास—(पूर्वोऽभ्यासः, ६।१।४) लिट् आदि में धातु के जिस अंश को द्वित्व होता है, उसके प्रथम भाग को अभ्यास कहते हैं। जैसे—चकार में च, ददर्श में द।

(१८) अलुक्—सुप्-विभक्ति या सुप् का लोप न होना। अलुक्समास में पूर्व पद की सुप् विभक्तियों का लोप नहीं होता है। जैसे—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, सरसिजम्।

(१९) अल्पप्राण—(वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यरलवाश्चाल्पप्राणाः) वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम अक्षर तथा य र ल व अल्पप्राण कहे जाते हैं। जैसे—कवर्ग में क ग ङ। च ज ञ, ट ड ण, त द न, प ब म, य र ल व।

(२०) अवग्रह—(सूत्रेण विधीयमानकार्यस्य बोधकं चिह्नम्) सूत्र से किये गए कार्य के बोधक चिह्न को अवग्रह कहते हैं। ऽ = अ। ऽ यह संकेत अ हटा है, इसका बोधक है। पदों या अवयवों के विच्छेद को भी अवग्रह कहते हैं।

(२१) अव्यय—(स्वरादिनिपातमव्ययम्, १।१।३७) स्वर् आदि शब्द तथा सभी निपात अव्यय होते हैं। अव्यय वे हैं, जिनके रूप में कभी परिवर्तन या अन्तर नहीं होता। जैसे—प्र परा सम् आदि उपसर्ग और उच्चैः, नीचैः आदि।

(२२) अष्टाध्यायी—पाणिनि के व्याकरण-ग्रन्थ को अष्टाध्यायी कहते हैं। इसमें आठ अध्याय हैं, अतः अष्टाध्यायी नाम पड़ा। प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं और

प्रत्येक पाद मे कुछ सूत्र। सूत्रों के आगे निर्दिष्ट सख्याओ का क्रमश. यह भाव है—(१) अध्याय की सख्या, (२) पाद की सख्या, (३) सूत्र की संख्या। यथा—१।१।१, अध्याय १, पाद १ का पहला सूत्र।

(२३) असिद्ध—(पूर्वत्रासिद्धम्, ८।२।१) किसी विशेष नियम की दृष्टि में किसी नियम या कार्य को न हुआ सा समझना। जैसे—सवा सात अध्यायो की दृष्टि में अन्तिम तीन पाद असिद्ध हैं और तीन पाद मे भी पूर्व के प्रति पर नियम असिद्ध है।

(२४) आख्यात—धातु और क्रिया को आख्यात कहते है। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च'।

(२५) आगम—शब्द या धातु के बीच या अन्त में जो अक्षर या वर्ण और जुड जाते हैं, उन्हे आगम कहते है। जैसे—पयस्> पयासि में न् का बीच मे आगम है।

(२६) आत्मनेपद—(तङानावात्मनेपदम्, १।४।१००) तङ् (ते, एते, अन्ते आदि) शानच्, कानच्, ये आत्मनेपद होते हैं। जिन धातुओ के अन्त में ते एते अन्ते आदि लगते हैं, वे धातुएँ आत्मनेपदी कहाती है। जैसे—सेव् धातु। सेवते सेवेते०।

(२७) आदेश, एकादेश—किसी वर्ण या प्रत्यय आदि के स्थान पर कुछ नए प्रत्यय आदि के होने को आदेश कहते हैं। जैसे—आदाय मे क्त्वा को ल्यप् आदेश। पूर्व और पर दो के स्थान पर एक वर्ण होना एकादेश है। जैसे—रमेश. मे आ + ई को ए गुण।

(२८) आमन्त्रित—(सामन्त्रितम्, २।३।४८) सबोधन को आमन्त्रित कहते हैं। हे अग्ने।

(२९) आम्रेडित—(तस्य परमाम्रेडितम्, ८।१।२) द्विरुक्तिवाले स्थानों पर उत्तरार्ध को आम्रेडित कहते हैं। जैसे—कान् + कान्, = कांस्कान् में बाद वाला कान्।

(३०) आर्धधातुक—(आर्धधातुक शेष, ३।४।११४) तिङ् (ति तः अन्ति आदि और ते एते अन्ते आदि) और शित् (श् इत् वाले, शतृ आदि) से अतिरिक्त धातुओं से जुडनेवाले प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं। (लिट् च, ३।४।११५, लिङाशिषि, ३-४-११६) लिट् और आशीर्लिङ् के स्थान पर होनेवाले तिङ् भी आर्धधातुक होते हैं।

(३१) इट्—(आर्धधातुकस्येड्वलादे., ७।२।३५) इट् का इ शेष रहता है। यह धातु और प्रत्यय के बीच में होता है। वलादि आर्धधातुक को इट् (इ) होता है। जैसे—पठिष्यति, पठितुम्। इस इट् (इ) के आधारपर ही धातुएँ सेट् या अनिट् कही जाती है। जिन धातुओ मे साधारणतया इट् (इ) होता है, उन्हे सेट् (स + इट्) अर्थात् 'इ' वाली धातुएँ कहते हैं। जिनमें इट् (इ) नहीं होता, उन्हे अनिट् (न + इट्) कहते हैं।

(३२) इत्—(तस्य लोप, १।३।९) जिसको इत् कहेगे, उसका लोप हो जाएगा। अनुबन्धों को इत् कहते हैं। गुण आदि के लिए प्रत्ययो के आदि या अन्त मे ये लगे होते हैं। बाद मे ये हट जाते हैं। जैसे—शतृ में श् और ऋ। शतृ में श् हटा

है, अत. इसे शित् कहेंगे। जो अक्षर हटा होगा, उसके आधार पर प्रत्यय कित् (क् + इत्), पित् (प् + इत्) आदि कहे जाते हैं। इत् होने वाले अक्षर ये है—(१) हलन्त्यम् (१।३।३) अन्तिम व्यजन इत् होता है। (२) उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१।३।२) उच्चारण में अनुनासिक सकेत वाला स्वर। (३) चुटू (१।३।७) प्रत्यय के आदि के चवर्ग और टवर्ग। (४) लशक्वतद्धिते (१।३।८) तद्धित प्रकरण को छोडकर प्रत्यय के आदि के ल श और कवर्ग। (५) ष प्रत्ययस्य (१।३।६) प्रत्यय के आदि का ष्। इत्यादि।

(३३) उणादि—(उणादयो बहुलम्, ३-३-१) धातुओ से उण् आदि प्रत्यय होते हैं। इस उण् प्रत्यय के आधार पर व्याकरण में इस प्रकरण को उणादि-प्रकरण कहते हैं।

(३४) उत्सर्ग—साधारण नियमों को उत्सग कहते हैं। विशेष को अपवाद।

(३५) उदात्त—(उच्चैरुदात्त., १।२।२९) जिस स्वर को तालु आदि के उच्च भाग से बोला जाता है या जिस स्वर पर बल दिया जाता है, उसे उदात्त कहते हैं।

(३६) (क) उपपद-विभक्ति—किसी पद (सुबन्त, तिङन्त) को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे उपपद-विभक्ति कहते हैं। जैसे—गुरवे नम. में नमः पद के कारण चतुर्थी है। (ख) कारक-विभक्ति—क्रिया को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे कारक-विभक्ति कहते है। जैसे—पाठ पठति मे पठति क्रिया के आधार पर द्वितीया विभक्ति है।

(३७) उपधा—(अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा, १।१।६५) अन्तिम अल् (स्वर या व्यजन) से पहले आने वाले वर्ण को उपधा कहते है। जैसे—लिख् धातु में उपधा में इ है।

(३८) उपध्मानीय—(कुप्वो ≍क ≍पौ च, ८।३।३७) प फ से पहले ≍ अर्धविसर्ग के तुल्य ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। जैसे—नॄ ≍पाहि। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(३९) उपसर्ग—(उपसर्गा क्रियायोगे, १।४।५९) धातु या क्रिया से पहले लगने वाले प्र परा आदि को उपसर्ग कहते है। ये २२ है—प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप।

(४०) उभयपद—परस्मैपद (ति, त आदि) और आत्मनपद (ते, एते, आदि) इन दोनो पदो के चिह्नों का लगना। जिन धातुओं मे ये चिह्न लगते हैं, उन्हें उभयपदी कहते है।

(४१) ऊष्म—(शपसहा ऊष्माण.) श ष स ह को ऊष्म वर्ण कहते है।

(४२) ओष्ठ्य—(उपूपध्मानीयानामोष्ठौ) उ ऊ, उ३, पवर्ग और उपध्मानीय इनका उच्चारण स्थान ओठ है, अत ये ओष्ठ्य वर्ण कहलाते है।

(४३) कण्ठ्य—(अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ॰) अ, आ, अ३, कवर्ग, ह और विसर्ग ( ) इनका उच्चारण-स्थान कण्ठ है, अत ये कण्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४४) कर्मप्रवचनीय—(कर्मप्रवचनीया १।४।८३) अनु, उप, प्रति परि आदि उपसर्ग कुछ अर्थों मे कर्मप्रवचनीय होते हैं। इनके साथ द्वितीया आदि होती हैं।

(४५) कारक—प्रथमा, द्वितीया आदि को कारक या विभक्ति कहते हैं। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से कारक ६ हैं। सम्बोधन प्रथमा के अन्तर्गत है।

(४६) कृत्—(कर्तरि कृत्, ३-४-६७) धातु से होने वाले क्त क्तवतु शतृ शानच आदि को कृत् प्रत्यय कहते हैं। क्त और खल् को छोडकर शेष कृत् प्रत्यय कर्तृवाच्य मे होते है। घञ् प्रत्यय कर्ता से भिन्न कारक तथा भाव अर्थ मे होता है।

(४७) कृत्य—(तयोरेव कृत्यक्तखलर्था॰, ३।४।७०) धातु से होने वाले तव्य, अनीय, य आदि को कृत्य प्रत्यय कहते हैं। ये भाव और कर्म वाच्य मे होते हैं।

(४८) कृदन्त—जिन शब्दो के अन्त मे कृत् प्रत्यय लगे होते हैं, उन्हे कृदन्त कहते हैं।

(४९) क्रिया—धातुवाच्य और धातुरूपा को क्रिया कहते हैं। जैसे—पचनम्, पठनम्, पठति।

(५०) गण—धातुओ को १० भागो मे बॉटा गया है, उन्हे गण कहते हैं। जैसे—भ्वादिगण, अदादिगण, जुहोत्यादिगण आदि।

(५१) गणपाठ—कतिपय शब्दो से एक ही प्रत्यय लगता है। ऐसे शब्दो को एक गण (समूह) मे रखा गया है। ऐसे शब्द-सग्रह को गणपाठ कहते है। जैसे—नद्यादिभ्यो ढक् (४।२।९७)।

(५२) गति—(गतिश्च, १।४।६०) उपसर्गों को गति कहते हैं। कुछ अन्य शब्द भी गति हैं।

(५३) गुण—(अदेङ् गुणः, १।१।२) अ, ए, ओ को गुण कहते है। गुण कहने पर ऋ ॠ को अर्, इ ई को ए, उ ऊ को ओ हो जाता है।

(५४) गुरु—(सयोगे गुरु, १।४।११, दीर्घं च, १।४।१२) सयुक्त वर्ण बाद मे हो तो ह्रस्व वर्ण गुरु होता है। सभी दीर्घ अक्षर गुरु होते हैं।

(५५) घ—(तरप्तमपौ घः, १।१।२२) तरप् और तमप् प्रत्ययो को घ कहते हैं।

(५६) घि—(शेषो घ्यसखि, १।४।७) ह्रस्व इ और उ अन्त वाले शब्द घि कहलाते हैं, स्त्रीलिंग शब्दो और सखि शब्द को छोडकर।

(५७) घु—(दाधा घ्वदाप्, १।१।२०) दा और धा धातु को तथा दा और धा रूपवाली अन्य धातुओं (दाण्, धेट् आदि) को घु कहते हैं, दाप् को छोडकर।

(५८) घोष—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ग के तृतीय चतुर्थ पचम वर्ण और ह य व र ल घोष हैं।

(५९) जिह्वामूलीय—(कुप्वो ≍क≍पौ च, ८।३।३७) क ख से पहले ≍अर्ध विसर्ग के तुल्य ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। क≍करोति। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(६०) टि—(अचोऽन्त्यादि टि, १।१।६४) शब्द के अन्तिम ओर से जहॉ स्वर मिले, वह स्वर और आगे यदि व्यजन हो तो वह व्यजन सहित स्वर टि कहलाता है। जैसे—मनस् मे अस्, धनुष् में उष् टि हैं।

(६१) तपर—(तपरस्तत्कालस्य, १।१।७०) किसी स्वर के बाद त् लगा देने से उसी स्वर का ग्रहण होगा, अन्य दीर्घ आदि का नहीं। जैसे—अत् का अर्थ है ह्रस्व अ। आत् दीर्घ आ। (६२) तद्धित—शब्दो से पुत्र आदि अर्थों मे होने वाले प्रत्ययो को तद्धित प्रत्यय कहते हैं। (६३) तालव्य—(इचुयशाना तालु) इ ई इ३, चवर्ग, य, श का उच्चारण-स्थान तालु है, अत. इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।

(६४) तिङ्—धातु के बाद लगने वाले ति तः आदि और ते एते आदि को तिङ् कहते है। (६५) तिङन्त—ति त. आदि से युक्त पठति आदि धातुरूपों को तिङन्त पद कहते है।

(६६) दन्त्य—(लतुलसाना दन्ताः) ऌ, तवर्ग, ल, स का उचारण स्थान दन्त है, अतः इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।

(६७) दीर्घ—आ ई ऊ ॠ को दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ कहने पर ह्रस्व के स्थान पर ये होते है। (६८) द्वित्व—किसी वर्ण या वर्णसमूह को दो बार पढने को द्वित्व कहते हैं। पपाठ मे पठ् को द्वित्व है।

(६९) द्विरुक्ति—किसी शब्दरूप या धातुरूप को दो बार पढना। स्मार स्मार, स्मृत्वा स्मृत्वा। (७०) धातु—भू पठ् कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं।

(७१) धातुपाठ—भू आदि धातुओ को १० गणो के अनुसार सग्रह किया गया है। इस धातु-सग्रह को धातुपाठ कहा जाता है। इसमें धातुओं के साथ उनके अर्थ आदि भी दिए गए हैं।

(७२) नदी—(१) (यू स्त्र्याख्यौ नदी, १।४।३) दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नदी कहलाते हैं। (२) (ङिति ह्रस्वश्च, १।४।६) इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भी ङित् विभक्तियों में विकल्प से नदी कहलाते हैं।

(७३) नपुंसकलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। फल, वारि, मधु आदि नपु० शब्द हैं। (७४) नाद—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पञ्चम वर्ण ह य व र ल) नाद वर्ण हैं। (७५) नाम—प्रातिपदिक या सज्ञा शब्दों को नाम कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' निरुक्त।

(७६) निपात—(चादयोऽसत्त्वे, १।४।५७) च वा ह आदि को निपात कहते हैं। (स्वरादिनिपातमव्ययम्) सभी निपात अव्यय होते हैं, अत. वे सदा एकरूप रहते हैं।

(७७) निष्ठा—(क्तक्तवतू निष्ठा, १।१।२६) क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

(७८) पद—(१) (सुप्तिङन्त पदम्, १।४।१४) सुप् (: औ अ आदि) से युक्त शब्दों और तिङ् (ति त अन्ति आदि) से युक्त धातुरूपों को पद कहते हैं। जैसे—राम., पठति। (२) (स्वादिष्वसर्वनामस्थाने, १।४।१७) सु (स्) आदि प्रत्यय बाद में हों तो शब्द को पद कहते हैं, ये प्रत्यय बाद में होंगे तो नहीं—सु आदि प्रथम पॉच सुप्, यकारादि और स्वर आदि वाले प्रत्यय।

(७९) पदान्त—नियम ७८ में उक्त पद के अन्तिम अक्षर को पदान्त कहते हैं।

(८०) **पररूप**—(एङि पररूपम्, ६।१।९४) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को मिलाने पर अगले स्वर के तुल्य रूप रह जाने को पररूप कहते हैं। जैसे—प्र + एजते = प्रेजते।

(८१) **परस्मैपद**—(ल परस्मैपदम्, १।४।९९) ल्कारों के स्थान पर होने वाले ति, तः, अन्ति आदि प्रत्ययों को परस्मैपद कहते हैं। ये जिनके अन्त मे लगते हैं, उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं। ते, एते, अन्ते आदि को आत्मनेपद कहते हैं। शतृ प्रत्यय परस्मैपद में होता है। (८२) **परिभाषा**— विधिशास्त्र की प्रवृत्ति और निवृत्ति के नियामक शास्त्र को परिभाषा कहते हैं।

(८३) **पुंलिंग**—यह तीन लिंगों मे से एक है। जैसे—राम, हरि.।

(८४) **पूर्वरूप**—(एङः पदान्तादति, ६।१।१०९) सन्धि-नियमों मे दो स्वरों को मिलाने पर पहले स्वर के तुल्य रूप रह जाने को पूर्वरूप कहते हैं। जैसे-हरे+अव=हरेऽव।

(८५) (क) **प्रकृति**—शब्द या धातु जिससे कोई प्रत्यय होता है, उसे प्रकृति कहते हैं। इसका दूसरा पारिभाषिक नाम 'अंग' है। जैसे—राम. में राम प्रकृति है और पठति में पठ्। (ख) **प्रकृति-विकृति**—शब्द या धातु के मूलरूप के स्थान पर जो नया आदेश होता है, उसे प्रकृति-विकृति या विकार-भाव कहते हैं। जैसे—उवाच में प्रकृति ब्रू धातु है, उसको विकृति विकार या आदेश वच् हुआ है। यह पूरे शब्द या धातु को भी होता है और कहीं पर उसके एक अंश को।

(८६) **प्रकृतिभाव**—(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्, ६।१।१२५) प्रकृतिभाव का अर्थ है कि वहाँ पर कोई सन्धि नहीं होती। प्लुत और प्रगृह्य वाले स्थानों पर प्रकृति-भाव होता है।

(८७) **प्रगृह्य**—(१) (ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्, १।१।११) प्रगृह्य वाले स्थान पर कोई सन्धि नहीं होती। ई, ऊ, ए अन्त वाले द्विवचनान्त रूप प्रगृह्य होते हैं, अतः-सन्धि नहीं होगी। जैसे—हरी एतौ। (२) (अदसो मात्, १।१।१२) अदस् के म् के बाद ई, ऊ होंगे तो कोई सन्धि नहीं होगी। जैसे—अमी ईशाः। अमू आसाते।

(८८) **प्रत्यय**—(प्रत्ययः, ३।१।१) शब्दों और धातुओं के बाद लगने वाले सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि को प्रत्यय कहते हैं। कुछ प्रत्यय पहले (बहुच् आदि) और बीच में (अकच् आदि) भी लगते हैं। बहुपटु। उच्चकै.। प्रत्ययो में विशेष कार्य के लिए अनुबन्ध भी लगे होते हैं।

(८९) **प्रत्याहार**—(आदिरन्त्येन सहेता, १।१।७१) प्रत्याहार का अर्थ है सक्षेप में कथन। अच्, अल्, सुप्, तिङ् आदि प्रत्याहार हैं। अच्, हल् आदि के लिए पहला अक्षर अइउण् आदि १४ सूत्रों में ढूँढें और अन्तिम अक्षर उन सूत्रों के अन्तिम अक्षर में। जैसे—अच् = अइउण् के अ से लेकर ऐऔच् के च् तक, पूरे स्वर। सुप् = सु से सुप् के प् तक। तिङ् = तिप् से महिङ् तक।

(९०) **प्रयत्न**—वर्णों के उच्चारण में जो प्रयत्न (मनोयोगपूर्वक प्राण का व्यापार) किया जाता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। यह दो प्रकार का है—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर चार प्रकार का है—स्पृष्ट, ईषत्-स्पृष्ट, विवृत, संवृत। बाह्य ११ प्रकार

का है—विवार, सवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष आदि। (देखो सिद्धान्तकौमुदी सञ्ज्ञाप्रकरण)

(९१) प्रातिपदिक—(१) (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, १।२।४५) सार्थक शब्द को प्रातिपदिक कहते है। यही विभक्ति (सु आदि) लगने पर पद बनता है। (२) (कृत्तद्धितसमासाश्च, १।२।४६) कृत् और तद्धित प्रत्ययान्त तथा समास-युक्त शब्द भी प्रातिपदिक होते है।

(९२) प्रेरणार्थक—दूसरे से काम कराना। जैसे—लिखना से लिखवाना। इस अर्थ मे णिच् होता है। (९३) प्लुत—ह्रस्व स्वर से तिगुनी मात्रा। अक्षर के आगे ३ लिखकर इसका सकेत करते हैं। जैसे—देवदत्त ३।

(९४) बहिरङ्ग—गौण नियम। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होता है, शेष बहिरङ्ग। (९५) बहुलम्—विकल्प या ऐच्छिक नियम को बहुलम् कहते हैं।

(९६) भ—(यचि भम्, १।४।१८) यकारादि और स्वर-आदि वाला प्रत्यय बाद म हो तो उससे पहले के शब्द को भ कहते है, सु औ आदि प्रथम पॉच सुप् बाद मे हो वो नही। (९७) भाष्य—पतजलि-रचित महाभाष्य को सक्षेप मे भाष्य कहते हैं।

(९८) मत्वर्थक प्रत्यय—मतुप् प्रत्यय 'वाला' या 'युक्त' अर्थ में होता है। इस अर्थ मे होनेवाले सभी प्रत्ययो को मत्वर्थक प्रत्यय कहते है। जैसे—धनवान्, धनी।

(९९) महाप्राण—(द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणा') वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ अक्षर तथा श ष स ह महाप्राण वर्ण कहलाते है। जैसे—ख घ, छ झ, ठ ढ।

(१००) मात्रा—स्वरो के परिमाण को मात्रा कहते हैं। ह्रस्व या लघु अक्षर की एक मात्रा मानी जाती है, दीर्घ या गुरु की दो, प्लुत की तीन।

(१०१) मुनित्रय—(यथोत्तर मुनीना प्रामाण्यम्) पाणिनि, कात्यायन, पतजलि इन तीनों को मुनित्रय कहते है। मतभेद होने पर बाद वाले मुनि का कथन प्रामाणिक माना जाता है।

(१०२) मूर्धन्य—(ऋटुरषाणा मूर्धा) ऋ ॠ ऋ३, टवर्ग, र, ष का उच्चारण-स्थान मूर्धा है, अत. इन्हे मूर्धन्य कहते हैं।

(१०३) योगरूढ—योगरूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें यौगिक अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय का अर्थ निकलता है, परन्तु वे किसी विशेष अर्थ मे रूढ या प्रचलित हो गए हैं। जैसे—पकज का अर्थ है—कीचड मे होने वाला। पर यह कमल अर्थ मे रूढ है।

(१०४) योगविभाग—पाणिनि के सूत्रों को कात्यायन आदि ने आवश्यकतानुसार विभक्त करके एक सूत्र (योग) के दो या तीन सूत्र बनाए हैं, इस सूत्र-विभाजन को योगविभाग कहते है।

(१०५) यौगिक—यौगिक उन शब्दों को कहते है, जिनमे प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ निकलता है। जैसे—पाचक—पच्+अक', पकाने वाला।

(१०६) रूढ—रूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमे प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ नहीं निकलता है। जैसे—मणि, नूपुर आदि।

(१०७) लघु—(ह्रस्वं लघु, १।४।११) ह्रस्व अ इ उ ऋ को लघु वर्ण कहते हैं।

(१०८) लिंग—संस्कृत में तीन लिंग हैं—पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग।

(१०९) लुक्—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, १।१।६१) प्रत्यय के लोप का ही दूसरा नाम लुक् है। (११०) लुप् (श्लु)—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः) प्रत्यय के लोप को लुप् और श्लु भी कहते हैं। (१११) लोप—(अदर्शनं लोपः, १।१।६०) प्रत्यय आदि के हट जाने को लोप कहते हैं।

(११२) वचन—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन, तीन या अधिक के लिए बहुवचन।

(११३) वर्ग—व्यंजनों के कुछ विभागों को वर्ग कहते हैं। जैसे—कवर्ग—क से ङ तक, चवर्ग—च से ञ तक, टवर्ग—ट से ण, तवर्ग—त से न, पवर्ग—प से म तक।

(११४) वर्ण—अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन ये सभी वर्ण हैं।

(११५) वाक्य—सार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

(११६) वाच्य—संस्कृत में ३ वाच्य (अर्थ) होते हैं—१. कर्तृवाच्य, २ कर्मवाच्य, ३ भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्मवाच्य में कर्म और भाववाच्य में क्रिया। सकर्मक से भी भाव में घञ् होता है।

(११७) वार्तिक—कात्यायन और पतंजलि के द्वारा बनाए गए नियमों को वार्तिक कहते हैं। (११८) विकल्प—ऐच्छिक (लगाना या न लगाना) नियम को विकल्प कहते हैं।

(११९) विभक्ति—(विभक्तिश्च, १।४।१०४) सु औ आदि कारक चिह्नों को विभक्ति या कारक कहते हैं। संबोधन-सहित ८ विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया आदि।

(१२०) विभाषा—(न वेति विभाषा, १।१।४४) किसी नियम के विकल्प से लगने को विभाषा कहते हैं। इसी अर्थ में वा, अन्यतरस्याम्, बहुलम् शब्द आते हैं।

(१२१) विवार—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग, श ष स, ये विवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख द्वार खुला रहता है।

(१२२) विवृत—(विवृतमूष्मणां स्वराणां च) स्वरों और ऊष्मों (श ष स ह) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। इनके उच्चारण में मुख द्वार खुला रहता है।

(१२३) विशेषण—विशेष्य (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताने वाले गुण या द्रव्य के बोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण को भेदक भी कहते हैं।

(१२४) विशेष्य—जिस (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं।

(१२५) वीप्सा—द्विरुक्ति अर्थात् दो बार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं। जैसे—स्मृत्वा स्मृत्वा, स्मारं स्मारम्।

(१२६) वृत्ति—(१) सूत्रों की व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। (२) (परार्थाभिधान वृत्तिः) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सन् आदि से युक्त धातुरूपों को वृत्ति कहते हैं।

(१२७) वृद्धि—(वृद्धिरादैच्, १।१।१) आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं। वृद्धि कहने पर इ ई को ऐ होगा, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर्, ए को ऐ और ओ को औ।

(१२८) व्यंजन—क से लेकर ह तक के वर्णों को व्यजन या हल् कहते हैं।

(१२९) व्यधिकरण—एक से अधिक आधार या शब्दादि में होनेवाले कार्य को व्यधिकरण कहते है। वि = विभिन्न, अधिकरण = आधार। एक आधारवाला समानाधिकरण होता है, अनेक आधार वाला व्यधिकरण।

(१३०) शब्द—सार्थक वर्ण या वर्णसमूह को शब्द या प्रातिपदिक कहते हैं।

(१३१) शिक्षा—वर्णों के उच्चारण आदि की शिक्षा देनेवाले ग्रन्थों को शिक्षा कहते हैं। जैसे—पाणिनीयशिक्षा आदि ग्रन्थ। वैदिक शिक्षा और व्याकरण के ग्रन्थों को प्रातिशाख्य कहते हैं। (१३२) श्लु—प्रत्यय के लोप का ही एक नाम श्लु है। जुहोत्यादि० में श्लु होने पर गुण होता है।

(१३३) श्वास—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग, श ष स, ये श्वास वर्ण हैं। इनके उच्चारण में श्वास बिना रगड खाए बाहर आता है। (१३४) षट्—(ष्णान्ता. षट्, १।१।२४) ष् और न् अन्तवाली सख्याओं को षट् कहते हैं।

(१३५) संज्ञा—व्यक्ति या वस्तु आदि के नाम को सज्ञा-शब्द कहते हैं।

(१३६) संयोग—(हलोऽनन्तराः सयोगः, १।१।७) व्यजनों के बीच में स्वर वर्ण न हो तो उन्हे सयुक्त अक्षर कहते हैं। जैसे—सम्बद्ध में म् और ब, द् और ध।

(१३७) संवार—स्वर और हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पचम वर्ण, ह य व र ल) सवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण मे मुख-द्वार कुछ सकुचित (सिकुडा) रहता है।

(१३८) संवृत—ह्रस्व अ बोलचाल में सवृत (मुख-द्वार सकुचित) होता है।

(१३९) संहिता—(परःसनिकर्ष. सहिता, १।४।१०९) वर्णों की अत्यन्त समीपता को सहिता कहते हैं। सहिता की अवस्था में सभी सन्धि-नियम लगते हैं। एक पद में, धातु और उपसर्ग में, समासयुक्त पद में सहिता अवश्य होगी। वाक्य में सहिता ऐच्छिक है।

(१४०) सकर्मक—जिन धातुओं के साथ कर्म आता है, उन्हे सकर्मक धातु कहते हैं। (१४१) सत्—(तौ सत्, ३।२।१२७) शतृ और शानच् प्रत्ययों को सत् कहते हैं। (१४२) सन्—(धातो. कर्मण ०, ३।१।७) इच्छा अर्थ मे धातु से सन् प्रत्यय होता है। कृ > चिकीर्षति।

(१४३) सन्धि—स्वरों, व्यजनों या विसर्ग के परस्पर मिलाने को सन्धि कहते हैं।

(१४४) स [illegible] एक आध[illegible] को स[illegible]

(१४५) **समास**—समास का अर्थ है संक्षेप । दो या अधिक शब्दों को मिलाने या जोडने को समास कहते हैं । समास होने पर शब्दों के बीच की विभक्ति हट जाती है । समासयुक्त शब्द को समस्त पद कहते हैं । समस्त शब्द एक शब्द होता है । समास के ६ भेद हैं—१ अव्ययीभाव, २ तत्पुरुष, ३ कर्मधारय, ४ द्विगु, ५ बहुव्रीहि, ६ द्वन्द्व ।

(१४६) **समासान्त**—समासयुक्त शब्द के अन्त मे होनेवाले कार्यों को समासान्त कहते हैं । (१४७) **समाहार**—समाहार का अर्थ है समूह । समाहार द्वन्द्व मे प्राय नपु० एकवचन होता है । कभी स्त्रीलिंग भी होता है ।

(१४८) **सम्प्रसारण**—(इग्यण. सम्प्रसारणम्, १।१।४५) य् को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को ऌ हो जाने को सम्प्रसारण कहते हैं । सम्प्रसारण कहने पर ये कार्य होंगे ।

(१४९) **सर्वनाम**—(सर्वादीनि सर्वनामानि, १।१।२७) सर्व, यत्, तत्, किम्, युष्मद्, अस्मद् आदि शब्दों को सर्वनाम कहते हैं । इनका सम्बोधन नहीं होता ।

(१५०) **सर्वनामस्थान**—(सुडनपुंसकस्य, १।१।४३) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के पहले पॉच सुप् (कारकचिह्न, स् ओ अ., अम् औ) को सर्वनामस्थान कहते हैं, नपु० मे नहीं ।

(१५१) **सवर्ण**—(तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, १।१।९) जिन वर्णों का स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न मिलता है, उन्हें सवर्ण कहते हैं । जैसे—इ चवर्ग य श तालव्य और स्पृष्ट हैं, अत सवर्ण हैं ।

(१५२) **सार्वधातुक**—(तिङ्शित्सार्वधातुकम्, ३।४।११३) धातु के बाद जुडने वाले तिङ् (ति त. आदि) और शित् प्रत्यय (श् इत् वाले, शतृ आदि) सार्वधातुक कहलाते हैं । शेष आर्धधातुक होते हैं ।

(१५३) **सुप्**—(स्वौजस सुप्, ४।१।२) शब्दों के अन्त में लगने वाले प्रथमा से सप्तमी तक के कारक चिह्न (स् औ अ. आदि) सुप् कहलाते हैं । (१५४) **सुबन्त**—सुप् (स् औ आदि) जिन शब्दों के अन्त में होते हैं, उन्हें सुबन्त कहते हैं । रामः ।

(१५५) **सूत्र**—शब्दों के संस्कारक नियमों को सूत्र कहते हैं । इनके बाद निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमश भाव यह है—१ अध्याय-संख्या, २ पाद-संख्या, ३ सूत्र-संख्या ।

(१५६) **सेट्**—जिन धातुओं में बीच मे प्रत्यय से पहले इ लगता है, उन्हे सेट् (इट् वाली) कहते हैं । जैसे—पठ्, लिख् । (१५७) **स्त्रीप्रत्यय**—स्त्रीलिंग के बोधक टाप् (आ), ङीप् (ई) आदि स्त्रीप्रत्यय कहलाते हैं । (१५८) **स्त्रीलिंग**—यह तीन लिंगों मे से एक लिंग है । स्त्रीत्व का बोध कराता है । जैसे—स्त्री, नदी ।

(१५९) **स्थान**—(अकुहविसर्जनीयाना कण्ठः) उच्चारण-स्थान कण्ठ तालु आदि का संक्षिप्त नाम स्थान है । जैसे—अ कवर्ग ह और विसर्ग का स्थान कण्ठ है ।

(१६०) **स्पर्श**—(कादयो मावसाना. स्पर्शा) क से लेकर म तक (कवर्ग से पवर्ग तक) के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते है । इनके उच्चारण मे जीभ कण्ठ तालु आदि को स्पर्श करती है ।

(१६१) स्वर—(अचः स्वराः) अचो (अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ, ए ऐ, ओ औ) को स्वर कहते है।

(१६२) स्वरित—(समाहारः स्वरितः, १।२।३१) उदात्त और अनुदात्त के मध्यगत स्थान से उत्पन्न स्वर को स्वरित कहते है। यह मध्यगत स्थान से बोला जाता है। (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः, ८।४।६६) वेद मे उदात्त स्वर के बाद वाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है। साधारण नियम यह है कि उदात्त से पहले अनुदात्त अवश्य रहेगा, अन्यत्र उदात्त के बाद अनुदात्त स्वरित होगा।

(१६३) हल्—क से ह तक के वर्णों को हल् कहते है। इन्हे व्यजन भी कहते है। (१६४) हलन्त—हल् अर्थात् व्यजन जिनके अन्त में होते हैं, ऐसे शब्दो या धातुओं आदि को हलन्त कहते हैं।

(१६५) ह्रस्व—(ह्रस्व लघु, १।४।१०) अ इ उ ऋ ऌ को ह्रस्व कहते हैं।

(१४) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष

आवश्यक-निर्देश

(१) इस पुस्तक मे प्रयुक्त शब्दो का ही इस शब्दकोष मे सग्रह है।

(२) जो शब्द रामः, रमा, गृहम् के तुल्य हैं, उनके रूप राम आदि के तुल्य चलावे। से पु०, आ से स्त्री०, अम् से नपु० समझें। शेष शब्दों के आगे पु० आदि का निर्देश किया गया है। उनके रूप 'शब्दरूप-सग्रह' में दिए तत्सदृश शब्दों के तुल्य चलावे। सक्षेप के लिए ये सकेत अपनाए गए हैं :—पु० = पुलिंग, स्त्री० = स्त्रीलिंग, न० = नपुंसक लिंग।

(३) धातुओं के आगे सकेत किया गया है कि वे किस गण की हैं और उनका किस पद में प्रयोग होता है। धातुओ के रूप चलाने के लिए 'धातुरूप-सग्रह' में दी गयी प्रत्येक गण की विशेषताओं को देखे तथा उस गण की विशिष्ट धातु को देखें। तदनुसार रूप चलावे। 'धातुरूप कोष' में सभी धातुओं के १० लकारों के रूप दिए हैं। धातुएँ अकारादिक्रम से दी गयी हैं। उसी प्रकार रूप चलावें। सक्षेप के लिए ये सकेत अपनाए गए हैं —१ = भ्वादिगण। २ = अदादिगण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। प० = परस्मैपद, आ० = आत्मनेपद, उ० = उभयपद।

(४) अव्ययों के रूप नहीं चलते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अ० = अव्यय।

(५) विशेषणो के रूप तीनों लिंगों में चलते हैं। जो विशेष्य का लिंग होगा वही विशेषण का लिग होगा। वि० = विशेषण।

(६) जहाँ एक शब्द के लिए एक से अधिक शब्द दिए हैं, वहाँ कोई-सा एक शब्द चुन ले।

अ

अगीठी—हसन्ती (स्त्री०)
अगूठी—अङ्गुलीयकम्
अगूठी, नामांकित—मुद्रिका
अगूर—द्राक्षा, मृद्वीका
अजीर—अञ्जीरम्
अखरोट—अक्षोटम्
अग्नि—कृशानु (पु०), जातवेदस् (पु०)
अचार—सन्धितम्
अच्छा लगना—रुच् (१ आ०), स्वद् (१ आ०)
अच्छा है न कि—वरं न (अ०)
अटारी—अट्ट
अण्डर-वीयर (जांघिया)—अर्धोरुकम्
अतिथि—प्राघुण, अतिथि, अभ्यागत
अथिति-सत्कर्ता—आतिथेय
अदरक—आर्द्रकम्
अदल बदल—विनिमय
अधिकार होना—प्र+भू (१ प०)
अधीन—आयत्त (वि०)
अध्यापक—अध्यापक, उपाध्याय
अनर्थ—अब्रह्मण्यम्
अनार—दाडिमम्
अनुभव करना—अनु+भू (१ प०)
अनुसन्धान करना—अनु+स+धा (३ उ०)
अन्दर—अन्त (अ०), अन्तरे (अ०)
अन्न—अन्नम्
अन्न, खेत में—शस्यम्
अपनाना—स्वी+कृ (८ उ०)
अपमान करना—अव+ज्ञा (९ उ०)
अप्राप्ति—अनुपलब्धि (स्त्री०)
अफ़वाह—लोकापवाद, वार्ता
अभिनय करना—अभि+नी (१ उ०)
अभ्रक—अभ्रकम्
अमचूर—आम्रचूर्णम्
अमरूद—आम्रलम्, दृढबीजम्, अमृत-फलम्
अमावट—आम्रातकम्
अमावस्या—दर्श, अमावास्या
अमृत—पीयूषम्, सुधा
अरहर—आढकी (स्त्री०)
अर्गला—अर्गलम्
अलग होना—वि+युज् (४ आ०)
अलमारी—काष्ठमञ्जूषा
अवश्य—ननु, नूनम्, न न (अ०)
असमर्थ—अक्षम (वि०)
असेम्बली हॉल—आस्थानम्

आ

आँख—चक्षुष् (न०), नेत्रम्, लोचनम्
आँगन—अजिरम्, अङ्गनम्, प्राङ्गणम्
आँत—अन्त्रम्
आँधी—प्रवात
आँवड़ा—आम्रातकम्
आँवला—आमलकी (स्त्री०)
आँसू—अश्रु (न०), अस्रम्
आक—अर्क
आकाश—व्योमन् (न०), वियत् (न०)
आग—हुतवह, कृशानु (पु०), वह्नि
आगन्तुक—आगन्तु (पु०), आगन्तुक
आगे—अग्रे (अ०), तत (अ०)
आग्रह—निर्बन्ध
आजकल—अद्यत्वे (अ०)
आज्ञा—शासनम्, नियोग, आदेश
आज्ञा देना—अनु+ज्ञा (९ उ०)
आटा—चूर्णम्
आटे का हलुआ—यवागू (स्त्री०)
आड़—आर्द्रालु (पु०)
आढ़त—अभिकरणम्
आढ़ती—अभिकर्तृ (पु०)
आदर पाना—आ+दृ (६ आ०)
आधी रात—निशीथ
आना—आगम् (१ प०), अभ्यागम् (१ प०), आ+या (२ प०)
आ पड़ना—आ+पत् (१ प०)
आपत्तिग्रस्त—आपन्न (वि०)
आबनूस—तमाल
आभूषण—आभरणम्, आभूषणम्
आम का वृक्ष—रसाल, सहकार, आम्र
आम का फल—आम्रम्

एक प्रकार से—एकधा (अ०)
एक बात—एकवाक्यम्
एक राय वाले—एकमति (स्त्री०)
एक वेष—एकपरिधानम्
एकान्त में—रहसि (रहस्, स०)
एक्सपोर्ट—निर्यात
एजुकेशन सेक्रेटरी—शिक्षासचिव
एजेण्ट—अभिकर्ता (-कर्तृ, पु०)
एजेन्सी—अभिकरणम्
एटम बम—परमाण्वस्त्रम्
एडिशनल डाइरेक्टर—अतिरिक्त-शिक्षासंचालक
एरण्ड—एरण्ट

ओ

ओढ़नी—प्रच्छदपट
ओवरकोट—बृहतिका
ओम्—उद्गीथ, प्रणव, ओंकार
ओले—करका

क

कंगन—कङ्कणम्
कंघी—प्रसाधनी (स्त्री०)
कंठा—कण्ठाभरणम्
कंडाल—वारिधि (पु०)
कंधा—स्कन्ध
कंधे की हड्डी—जत्रु (न०)
ककड़ी—कर्कटिका, कर्कटी (स्त्री०)
कक्षा का साथी—सतीर्थ्य
कचालू—पक्कालु (पु०)
कचौड़ी—पिष्टिका
कछुआ—कच्छप
कटहल का पेड़—पनस
कटहल का फल—पनसम्
कटा हुआ—लूनम् (वि०)
कटोरा—कटोरम्
कटोरी—कटोरा
कठफोड़ा—दार्वाघात
कड़ा, सोने आदि का—कटक
कड़ाह—कटाहः
कड़ाही—स्वेदनी (स्त्री०)
कदम्ब—नीप
कद्दू—कूष्माण्ड
कनफूल—कर्णपूर
कनेर—कर्णिकार
कप—चषक
कबाबी—मांसाग्निन् (पु०)
कबूतर—पारावत, कपोत
कब्ज—अजीर्ण
कमर—श्रोणि (स्त्री०), कटि (स्त्री०)
कमरख—कर्मरक्षम्
कमरा—कक्ष
कमल, नीला—इन्दीवरम्, कुवलयम्
कमल, लाल—कोकनदम्
कमल, श्वेत—कुमुदम्, पुण्डरीकम्, कह्लारम्
कमीशन—शुल्कम्
कमीशन एजेण्ट—शुल्काजीव
कम्बल—कम्बल, कम्बलम्
करधन—मेखला
करना—वि+धा (३ उ०), चर् (१ प०), अनु+ष्ठा (१ प०)
करील—करील
करेला—कारवेल्ल
करौंदा—करमर्दक
कर्जा—ऋणम्
कर्जा देने वाला—उत्तमर्ण
कर्जा लेने वाला—अधमर्ण
कलई, पुताई की—सुधा
कलफ करना—मण्डा+कृ (८ उ०)
कलम—कलम
कलमी आम—राजाम्रम्
कलश—कलश
कलाई—मणिबन्ध
कलाई से कनी अंगुली तक—करभ
कलाकन्द—कलाकन्द
कली—कलिका
कल्याण का इच्छुक—कल्याणाभिनिवेशिन् (वि०)
कवच—वर्मन् (न०)
कष्ट करना—आयास

आम, कलमी—राजाम्रम्
आमदनी—आय, आयमध्ये (सप्तमी)
आम रास्ता—जनमार्ग, जनपथ
आयरन (लोहा)—अयस् (न०)
आयात पर चुंगी—आयातशुल्कम्
आयु—आयुष् (न०), वयस् (न०)
आराम कुर्सी—सुखासन्दिका
आरी—करपत्रम्
आलस्य करना—तन्द्रय (णिच्)
आलू—आलु (पु०)
आलू की टिकिया—पकालु (पु०)
आलूबुखारा—आलुकम्
आशंका करना—आ+शङ्क् (१ आ०)
आशा करना—आ+शस् (१ आ०)

इ

इकट्ठा करना—सं+चि (५ उ०), अर्ज् (१० उ०)
इच्छुक—स्पृहयालु (वि०), इच्छुक
इत्र—गन्धतैलम्
इक पेन्सिल, डॉट पेन—मसितूलिका
इन्कम टैक्स—आयकर
इन्द्र—शतक्रतु (पु०), मघवन् (पु०), वृत्रहन् (पु०)
इन्द्र-धनुष—इन्द्रायुधम्, इन्द्रधनु (न)
इन्द्राणी—पौलोमी (स्त्री०), शची (स्त्री०)
इन्धन—इन्धनम्
इन्फ्लुएन्ज़ा, 'फ्लु—शीतज्वर
इमरती—अमृती (स्त्री०)
इमली—तिन्तिडीकम्
इम्पोर्ट—आयात
इलायची—एला
इसलिए—अत, अतएव, तत (अ०)

ई

ईंट—इष्टका
ईंट, पक्की—पक्वेष्टका

उ

उगलना—उद्+गॄ (६ प०)
उगला हुआ—उद्वान्तम् (वि०)
उग्र—तीक्ष्णम्
उचित-अनुचित—सदसत् (न०)
उचित है—स्थाने (अ०)
उठना—उत्था (१ प०), उच्चर् (१ प०), उत्+नम् (१ प०)
उठाना—उन्नी (उद्+नी, १ उ०)
उड़द—माष
उड़ना—उत्पत् (१ प०), उद्गम् (१ प०)
उतरना—अव+तॄ (१ प०)
उतार—अवरोह
उत्कंठित—उत्क, उत्कण्ठित
उत्तर, दिशा—उदीची (स्त्री०)
उत्तर की ओर—उदक् (उद्+अञ्च्) (पु०)
उत्तरायण—उत्तरायणम्
उत्तीर्ण होना—उत्तॄ (उद्+तॄ, १ प०)
उत्थान-पतन—पातोत्पात
उत्पन्न होना—सं+भू (१ प०)
उधार—ऋणम्, ऋणरूपेण (तृतीया)
उधार खाते—नाम्नि (नामन्, स०)
उपजाऊ—उर्वरा
उपभोग करना—उप+भुज् (७ आ०)
उपयोग—विनियोग, उपयोग
उपवास करना—उप+वस् (१ प०)
उपेक्षा करना—उपेक्ष् (उप+ईक्ष् १ आ०)
उबटन—उद्वर्तनम्
उबालना—क्वथ् (१ प०)
उल्लंघन करना—उच्चर् (१ आ०), लङ्घ् (१० उ०), अति+वृत् (१ आ०)
उल्लू—कौशिक, उलूक
उस्तरा—क्षुरम्

ऊ

ऊँचा—प्रांशु (वि०)
ऊँट—क्रमेलक, उष्ट्र
ऊखल—उलूखलम्
ऊनी—राङ्कवम्
ऊपर फेंकना—उत्+क्षिप् (६ उ०)
ऊसर—ऊषर

ए

एक एक करके—एकैकशः (अ०)
एक ओर से—एकत (अ०)

एक प्रकार से—एकधा (अ०)
एक बात—एकवाक्यम्
एक राय वाले—एकमति (स्त्री०)
एक वेष—एकपरिधानम्
एकान्त में—रहसि (रहस्, स०)
एक्सपोर्ट—निर्यात
एजुकेशन सेक्रेटरी—शिक्षासचिव
एजेण्ट—अभिकर्ता (-कर्तृ, पु०)
एजेन्सी—अभिकरणम्
एटम बम—परमाण्वस्त्रम्
एडिशनल डाइरेक्टर—अतिरिक्त-शिक्षासञ्चालक
एरंड—एरण्ड

ओ

ओढ़नी—प्रच्छदपट
ओवरकोट—बृहतिका
ओम्—उद्गीथ, प्रणव, ओंकार
ओले—करका

क

कंगन—कङ्कणम्
कंघी—प्रसाधनी (स्त्री०)
कंठा—कण्ठाभरणम्
कंकाल—वारिधि (पु०)
कंधा—स्कन्ध
कंधे की हड्डी—अंस (न०)
ककड़ी—कर्कटिका, कर्कटी (स्त्री०)
कक्षा का साथी—सतीर्थ्य
कचालू—पकालु (पु०)
कचौड़ी—पिष्टिका
कछुआ—कच्छप
कटहल का पेड़—पनस
कटहल का फल—पनसम्
कटा हुआ—लूनम् (वि०)
कटोरा—कटोरम्
कटोरी—कटोरा
कठफोड़ा—दार्वाघात
कड़ा, सोने आदि का—कटक
कड़ाह—कटाह
कड़ाही—स्वेदनी (स्त्री०)
कदम्ब—नीप
कद्दू—कूष्माण्ड
कनफूल—कर्णपूर
कनेर—कर्णिकार
कप—चषक
कबाबी—मांसाशिन् (पु०)
कबूतर—पारावत, कपोत
कब्ज—अजीर्ण
कमर—श्रोणि (स्त्री०), कटि (स्त्री०)
कमरख—कर्मरक्षम्
कमरा—कक्ष
कमल, नीला—इन्दीवरम्, कुवलयम्
कमल, लाल—कोकनदम्
कमल, श्वेत—कुमुदम्, पुण्डरीकम्, कह्लारम्
कमीशन—शुल्कम्
कमीशन एजेण्ट—शुल्काजीव
कम्बल—कम्बल, कम्बलम्
करधन—मेखला
करना—वि+धा (३ उ०), चर् (१ प०), अनु+ष्ठा (१ प०)
करील—करील
करेला—कारवेल
करौंदा—करमर्दक
कर्जा—ऋणम्
कर्जा देने वाला—उत्तमर्ण
कर्जा लेने वाला—अधमर्ण
कलई, पुताई की—सुधा
कलफ करना—मण्डा+कृ (८ उ०)
कलम—कलम
कलमी आम—राजाम्रम्
कलश—कलश
कलाई—मणिबन्ध
कलाई से कनी अंगुली तक—करभ
कलाकन्द—कलाकन्द
कली—कलिका
कल्याण का इच्छुक—कल्याणाभिनिवेशिन् (वि०)
कवच—वर्मन् (न०)
कष्ट करना—आयास

कसकूट—कास्यकूट
कस्बा—नगरी (स्त्री०)
कहना—अभि+धा (३ उ०), भाष् (१ आ०), उद्+गॄ (६ प०), उद्+ईर् (१० उ०)
कहाँ—क्व, कुत्र (अ०)
काँच—काच
काँच का गिलास—काचकस
काँपना—कम्प् (१ आ०), वेप (१ आ०)
काँसा—कास्यम्
कागज—कागद
कागज की रीम—कागदरीमक-
काजल—कज्जलम्
काजू—काजवम्
काटना—कृत् (६ प०), छिद् (७ उ०), लू (९ उ०)
कान—श्रोत्रम्, श्रवणम्, कर्ण
कान की बाली—कुण्डलम्
कानखजूरा—कर्णजलौका
कापी—सचिका
काफल—श्रीपर्णिका
कॉफी—कफल्ली (स्त्री०)
काम—कर्मन् (न०), कार्यम्
काम आना—उप+युज् (४ आ०)
कामदेव—पुष्पधन्वन् (पु०), मनसिज
कार्टून—उपहासचित्रम्
कार्तिकेय—सेनानी (पु०)
कार्पोरेशन—निगम
कालेज—महाविद्यालय
कितने—कति (वि०)
किनारा—वेला
किरण—मयूख, गभस्ति (पु०), दीधिति (स्त्री०)
किवाड—कपाटम्
किवाड के पीछे का डंडा—अर्गलम्
किशमिश—शुष्कद्राक्षा
किसान—कृषीवल, कीनाश-, कृषक
कीचड—पङ्क, कर्दम
कील—कील
कँकड—कन्दर (पु०)
कुटिया—कुटी (स्त्री०), कुटीर
कुतिया—सरमा, शुनी (स्त्री०)
कुत्ता—श्वन् (पु०), कौलेयक, सारमेय
कुदाल—खनित्रम्
कुन्द—कुन्दम्
कुप्पी—कुतू (स्त्री०)
कुबडा—कुब्ज
कुबेर—कुबेर, मनुष्यधर्मन् (पु०)
कुमुद की लता—कुमुदिनी (स्त्री०)
कुम्हार—कुलाल, कुम्भकार
कुर्ता—कञ्चुक
कुर्सी—आसन्दिका
कुलपरम्परा—कुलक्रमम्
कुल्फी—कुलपी (स्त्री०)
कुली—भारवाह
कुलीन—अभिजन, कुलीन
कूटना—अवहननम्, ताडनम्
कूडा—अवकर
कूदना—कुर्द्, कूर्द् (१ आ०)
कृपाण—कौक्षेयक
केकडा—कुलीर
केतली—कन्दु (पु०, स्त्री०)
केबिनेट—मन्त्रिपरिषद् (स्त्री०)
केन्सर—विद्रधि (पु०), विषव्रणम्
केला—कदलीफलम्
केवडा—केतकी (स्त्री०)
कैंची—कर्तरी (स्त्री०)
कै—वमथु (पु०)
कोंपल—किसलयम्
कोट—प्रावार
कोठरी—लघुकक्ष
कोतवाल—कोटपाल
कोतवाली—कोटपालिका
कोमल स्वर—मन्द्रस्वर
कोयल—परभृत, कोकिल
कोल्हू—रसयन्त्रम्
कोहनी—कफोणि (स्त्री०)
कौवा—ध्वाङ्क्ष, वायस-, काक
क्या—किम्, किमु, ननु (अ०)
क्या लाभ—किम्, को लाभ, किं प्रयोजनम्

क्योंकि—यतो हि, खलु (अ०)
क्रीडा करना—क्रीड् (१ प०),
रम् (१ आ०)
क्रीम—शर
क्रोध करना—क्रुध् (४ प०), कुप्
(४ प०)
क्रोधी—अमर्षण
क्लर्क—करणिक, लिपिकार
क्षत्रिय—क्षत्रिय, द्विजाति, द्विजन्मन्
(पु०)
क्षमा करना—मृष् (१० उ०), क्षम्
(१ आ०, ४ प०)

ख

खजन—खञ्जन
खजूर—खर्जूरम्
खड्ग—खड्ग, निस्त्रिंश
खपड़ा—खर्पर
खपडैल का—खर्परावृतम् (वि०)
खम्बा—स्तम्भ
खरबूजा—खर्बुजर
खरीद—क्रय
खरीदना—पण् (१ आ०), क्री (९ उ०)
खर्च करना—विनियोग, व्यय
खलिहान—खलम्
खस्ता पूरी—शष्कुली (स्त्री०)
खाँसी—कास
खाजा—मधुशीर्ष
खाट—खट्वा
खाद्य—खाद्यम
खान—खनि (स्त्री०)
खाना—भक्ष (१० उ०), खाद्
(१ प०), भुज् (७ आ०)
खाया हुआ—जग्धम्, भुक्तम्
खिचड़ी—कृशर
खिड़की—गवाक्ष, वातायनम्
खिन्न होना—सद् (१ प०)
खिरनी—क्षीरिका
खींचना—कृष् (१ प०)
खीर—पायसम्
खील—लाजा: (ला०, बहु०)
खुमानी—क्षुमानी (स्त्री०)
खूँटी—नागदन्तक
खून—रुधिरम्, असृज् (न०)
खेत—क्षेत्रम्
खेती—कृषि (स्त्री०)
खेती के औजार—कृषियन्त्रम्
खेल का मैदान—क्रीडाक्षेत्रम्
खैर—खदिर
खोजना—गवेष् (१० उ०)
खोदना—टङ्क (१० उ०), खन् (१ उ०)
खोवा—किलाट

ग

गंडासा—तोमर
गगरा—गगर
गगरी—गर्गरी (स्त्री०)
गजक—गजक
गञ्जा—खल्वाट
गड़रिया—अजाजीव
गदा—गदा
गद्दा—तूलप्रस्तर
गधा—खर, गर्दभ
गन्धक—गन्धक
गम बूट—अनुपदीना
गरजना—स्तनितम्, गर्जनम्
गर्दन—ग्रीवा, कण्ठ
गर्मी (सूजाक)—उपदंश
गला—कण्ठ, ग्रीवा
गली—वीथिका
गवेषणा करना—गवेष् (१० उ०)
गाँव—ग्राम
गाजर—गृञ्जनम्
गाय—गो (स्त्री०), धेनु (स्त्री०)
गाल—कपोल
गाहक—ग्राहक
गिद्ध—गृध्र
गिनना—गण् (१० उ०)
गिना हुआ—गणितम् (वि०)
गिरना—पत् (१ प०), निपत् (१ प०),
भ्रंश् (१ आ०)
गिरहकट—ग्रन्थिभेदक

गिलास—चस , काचरस
गिलोय—अमृतवल्लरी (स्त्री०)
गीदड—गोमायु (पु ०)
गुझिया—संयाव
गुणगान करना—कृत् (१० उ०)
गुप्त—निभृतम् (वि०), गुप्तम्
गुप्ती (कटारी)—करवालिका
गुफा—गह्वरम्, गुहा
गुलदस्ता—स्तबक , पुष्पगुच्छ
गुलाब—स्थलपद्मम्
गुस्सा करना—क्रुध (४ प०), कुप् (४ प०)
गूगल—गुग्गुल
गूलर—उदुम्बरम्
गेंद—कन्दुक , गेन्दुकम्
गेंदा—गन्धपुष्पम्
गेलरी—वीथिका
गेहूँ—गोधूम
गोबर—गोमयम
गोभी—गोजिह्वा
गोली— गोलिका, गुलिका
गोह—गोधा
ग्रीष्म ऋतु—निदाघ , ग्रीष्मर्तु (पु ०)
ग्लेशियर—हिमसरित् (स्त्री०), हिमापगा

घ

घंटा (समय)—होरा
घटना (होना)—घट् (१ आ०)
घटना (कम होना)—अप+चि (५ उ०)
घटिया—अनु (अ०),उप (अ०)
घडा—घट, कुम्भ
घडी—घटिका
घर—सदनम्, गृहम्, भवनम्
घरेलू फर्नीचर—गृहोपस्कर
घाटी—अद्रिद्रोणी (स्त्री०)
घायल—आहत (वि०)
घी—आज्यम्, सर्पिष् (न०)
घुँघरू—किंकिणी (स्त्री०)
घुघनी (आलू-मटर)—कुल्माष
घुटना—जानु (पु ०, न०)
घुडसवार—सादिन् (पु ०), अश्वा-
रोहिन् (पु ०)
घूँघट काढ़ना—अवगुण्ठय (णिच)
घूमना—भ्रम् (४ प०), चर् (१ प०),
सञ्चर् (१ प०)
घेरा—वृति (स्त्री०)
घेवर (मिठाई)—घृतपूर
घोंसला—कुलाय
घोडा—अश्व , सप्ति (पु ०), रथ्य,
वाजिन् (पु ०), हय
घोषणा करना—घुष् (१० उ०)

च

चकवा—चक्रवाक
चकोतरा (फल)—मधुकर्कटी (स्त्री०),
मधुजम्बीरम्
चक्कर खाना—परि+वृत् (१ आ०)
चचेरा भाई—पितृव्यपुत्र
चटकनी—कील
चटनी—अवलेह
चट्टान—शिला
चढाव—आरोह
चतुःशाला—चतुःशालम्
चतुर—विदग्ध (वि०), दक्ष
चना—चणक
चन्द्रमा—सुधांशु (पु ०), विधु (पु०),
सोम
चपत—चपेट
चपरासी—लेखहारक , प्रेष्य
चप्पल—पादुका, पादू (स्त्री०)
चबूतरा—स्थण्डिलम्, चत्वरम्
चबूतरा, घर से बाहर का—अलिन्द
चमकना—भास् (१ आ०), द्युत् (१ आ०),
दिव् (४ प०)
चमचम (मिठाई)—चमनम्
चमचा—दर्वी (स्त्री०)
चमार—चर्मकार
चमेली—मालती (स्त्री०)
चम्पा—चम्पक
चम्मच—चमस
चरना—चर् (१ प०)
चर्बी—वसा

चर्बी, हड्डी की—मज्जा
चलना—चल् (१ प०), प्र+वृत् (१ आ०), प्र+स्था (१ आ०)
चलाना—प्रचालय (णिच्)
चाँदनी—कौमुदी (स्त्री०), ज्योत्स्ना
चॉक, लिखने की—कठिनी (स्त्री०)
चाकू—छुरिका, लवित्रम्
चाचा—पितृव्य
चाची—पितृव्या
चाट—आवश्य
चातक—चातक
चादर—प्रच्छद
चान्सलर—कुलपति (पु०)
चापलूसी—स्नेहभणितम्
चाबुक—तोत्रम्
चाय—चायम्
चारों ओर मुड़ने वाली कुर्सी—पर्य
चारों वर्ण—चातुर्वर्ण्यम्
चावल—व्रीहि (पु०)
चावल, भूसी-रहित—तण्डुल
चाहना—ईह् (१ आ०), वाञ्छ् (१ प०), काङ्क्ष् (१ प०)
चिड़िया—पत्रिन् (पु०), चटका
चित्त—चेतस् (न०), चित्तम्, स्वान्तम्
चित्रकार—चित्रकार
चिमटा—सन्दंश
चिरचिटा (ओषधि)—अपामार्ग
चिरौंजी—प्रियालम्
चिलमची—हस्तधावनी (स्त्री०), पतद्ग्रहा
चिह्न—अङ्क, लक्ष्मन् (न०)
चीड़ (वृक्ष)—भद्रदारु (पु०), सरल
चीनी—सिता
चीफ मिनिस्टर—मुख्यमन्त्रिन् (पु०)
चीरना—छिद् (७ उ०)
चील—चिल्ल
चुङ्गी—शुल्क, शुल्कशाला
चुङ्गी का अध्यक्ष—शौल्किक
चुगना—चि (५ उ०)
चुगलखोर—द्विजिह्व
चुनना—चि (५ उ०), अव+चि (५ उ०)
चुन्नी (ओढ़नी)—प्रच्छदपट
चुन्नी (रत्न)—माणिक्यम्
चुप (चुप्पी)—तोषम् (अ०)
चुराना—मुष (९ प०), चुर् (१० उ०)
चूँकि—ननु (अ०), यतोहि (अ०)
चूड़ी—काचवलयम्
चूल्हा—चुल्लि (स्त्री०), चुल्ली (स्त्री०)
चेचक—शीतला
चेष्टा करना—चेष्ट् (१ आ०)
चोंच—चञ्चु (स्त्री०), चञ्चू (स्त्री०)
चोट—क्षतम्
चोट मारना—तट् (१० उ०)
चोटी—शिखा, सानु (पु०, न०), शृङ्गम्
चोर—तस्कर, चोर, स्तेन, पाटच्चर
चौक—चतुष्पथ, शृङ्गाटकम्
चौकन्ना—प्रत्युत्पन्नमति (वि०)
चौमंजिला—चतुर्भूमिक
चौराहा—चतुष्पथ, शृङ्गाटकम्

छ

छज्जा—वलभि (स्त्री०), वलभी (स्त्री०)
छत—छदि (स्त्री०)
छाता (छत्र)—आतपत्रम्
छाती—वक्षस् (न०), उरस् (न०)
छात्र—छात्र, अध्येतृ (पु०), विद्यार्थिन् (पु०)
छात्रा—अध्येत्री (स्त्री०), छात्रा
छानना—स्रावय (णिच्)
छिपकली—गृहगोधिका
छिप जाना—तिरो+भू (१ प०)
छिपना—ली (४ आ०), नि+ली (४ आ०), अन्तर्+धा (३ उ०)
छीलना—छो (४ प०), त्वक्ष (१ प०)
छीला हुआ—छातम् (वि०)
छुट्टी—विसृष्टि (स्त्री०), अवकाश
छुहारा—क्षुधाहरम्
छेद करना—छिद्र् (१० उ०)
छेनी—वृश्चन
छोटा भाई—अनुज

छोड़ना—त्यज् (१ प०), मुच् (६ उ०), हा (३ प०), अस् (४ प०), अप+अस् (४ प०), उज्झ् (६ प०)
छोड़ा हुआ—प्रत्याख्यात, परित्यक्त (वि०)

ज

जंगली चावल—श्यामाक (साँवा)
जंघा—ऊरु (पु०)
जंजीर—शृङ्खला
जवाई—जामातृ (पु०)
जड़—मूलम्
जड़ से—मूलत
जन्म लेना—प्रादुर्+भू (१ प०)
जबतक तबतक—यावत् तावत् (अ०)
जरा—तावत् (अ०)
जर्मन सिल्वर—चन्द्रलौहम्
जल—तोयम्, अम्बु (न०), वारि (न०), नीरम्
जलकण—शीकर
जलतरंग (बाजा)—जलतरङ्ग
जलना—ज्वल् (१ प०), इन्ध् (७ आ०)
जलपान—जलपानम्
जल-सेनापति—नौसेनाध्यक्ष
जलाना—दह् (१ प०)
जलूस—जनयात्रा, जनौघ
जलेबी—कुण्डली (स्त्री०)
जवाकुसुम (फूल)—जवाकुसुमम्, जवापुष्पम्
जस्ता—यशदम्
जहाज, पानी का—पोत
जहाज (विमान)—व्योमयानम्, विमानम्
जागना—जागृ (२ प०)
जादूगर—मायाकार, ऐन्द्रजालिक, मायाविन् (पु०)
जानना—ज्ञा (९ उ०), अव+गम् (१ प०), अधि+गम् (१ प०)
जाननेवाला—अभिज्ञ
जाना—गम् (१ प०), इ (२ प०), या (२ प०)
जामुन—जम्बु (स्त्री०), जम्बू (स्त्री०)
जार, काँच का—काचघटी (स्त्री०)
जाल—वागुरा, जालम्
जिगर—यकृत्
जितेन्द्रिय—शान्त
जिद—निर्बन्ध
जिल्द—प्रावरणम्
जीजा (बहनोई)—आवुत्त, भगिनीपति (पु०)
जीतना—जि (१ प०), वि+जि (१ आ०)
जीभ—रसना, जिह्वा
जीरा—जीरक
जीविका—वृत्ति (स्त्री०), जीविका
जुकाम—प्रतिश्याय
जुती हुई भूमि—सीता
जुलाहा—तन्तुवाय
जुवारी—द्यूतकार
जूड़े की जाली—वेणीजालम्
जूता (बूट)—उपानह् (स्त्री०)
जूता सीने की सूई—चर्मप्रभेदिका
जूही (फूल)—यूथिका
जेब काटना—ग्रन्थि+भिद् (७ उ०)
जेल—कारा, कारागारम्, बन्दिगृहम्
जैसा वैसा—यथा तथा (अ०)
जोड़ना—सं+योजय (णिच्)
जोतना—कृष् (१ प०, ६ उ०)
जौ—यव
ज्ञात—अवगतम्
ज्योंही त्योंही—यावत् तावत् (अ०)
ज्योति—ज्योतिष् (न०), रोचिष् (न०)
ज्वार—यवनाल

झ

झगड़ा—कलह
झगड़ालू—कलहप्रिय, कलहकाम
झरना—प्रपात
झाड़ी—कुञ्ज, निकुञ्ज
झाड़ू—मार्जनी (स्त्री०)
झील—सरसी (स्त्री०)
झील, बड़ी—ह्रद
झुकना—नम् (१ प०), अवनम्, प्रणम्
झुकाना—अवनमय (णिच्)
झोंपड़ी—उटज, पर्णशाला, कुटीर

ट

टकसाल—टङ्कशाल
टकसाल का अध्यक्ष—टङ्कशालाध्यक्ष
टखना (पैर की हड्डी)—गुल्फ
टमाटर—रक्ताङ्ग
टब (पानी का)—द्रोणि (स्त्री०), द्रोणी (स्त्री०)
टाइप करना—टङ्क् (१० उ०)
टाइप राइटर—टङ्कनयन्त्रम्
टाइफाइड—सन्निपातज्वर
टाइम टेबुल—समय-सारणी (स्त्री०)
टॉफी—गुल्य
टिण्डा—टिण्टिश
टिकुली (बेंदी)—ललाटाभरणम्
टिड्डी—शलभ
टीयर गैस—धूमास्त्रम्, अश्रुधूम
टी (चाय)—चायम्
टी० बी०(तपेदिक)—राजयक्ष्मन् (पु०), राजयक्ष्म
टीका (मंगलार्थ)—ललाटिका
टीन—त्रपु (न०)
टीन की चद्दर—त्रपुफलकम्
टी पॉट—चायपात्रम्
टी पार्टी (चाय पानी)—सपीति (स्त्री०)
टूटा हुआ—भुग्नम् (वि०)
टूथ पाउडर—दन्तचूर्णम्
टूथपेस्ट—दन्तपिष्टकम्
टेनिस का खेल—प्रक्षिप्तकन्दुकक्रीडा
टेलर (दर्जी)—सौचिक
टेलर-चॉक—सौचिकवर्तिका
टैंक (हौज)—आहाव
टैक्स—कर
टोस्ट—भृष्टापूप
ट्रैक्टर—खनियन्त्रम्

ठ

ठगना—वञ्च् (१० आ०), अभि+स+धा (३ उ०)
ठीक (सत्य)—परमार्थत, परमार्थेन, तत्त्वत (अ०)
ठीक घटना—उप+पद् (४ आ०)
ठुकराना—नि+हन् (२ प०)
ठोकना (कील आदि)—कील् (१ प०)

ड

डण्ठल—वृन्तम्
डॅसना—दश् (१ प०)
डंडी मारना—कूटमान+कृ (८ उ०)
डबल रोटी—अभ्यूष
डस्टर—मार्जक
डॉटना—भर्त्स् (१० आ०)
डाइनिंग टेबुल—भोजनफलकम्
डाइनिंग रूम—भोजनगृहम्
डाइरेक्टर (एजुकेशन)—शिक्षासञ्चालक
डाएबिटीज—मधुमेह, मधुप्रमेह
डाक गाड़ी—डाक्यानम्
डाकू—पाटच्चर लुण्टाक, परिपन्थिन् (पु०)
डाक्टर—भिषग्वर
डालना—नि+क्षिप् (६ उ०), पातय (णिच्)
डिनर पार्टी—सहभोज, सग्धि (स्त्री०)
डिप्टी डाइरेक्टर (शिक्षा)—उपशिक्षा-सञ्चालक
डूबना—मस्ज् (६ प०)
डेस्क—लेखनपीठम्
ड्राइंग रूम—उपवेशगृहम्
ड्राईक्लीनर—निर्णेजक

ढ

ढकना—सं+वृ (५ उ०)
ढका हुआ—प्रच्छन्न (वि०)
ढाक—पलाश
ढिंढोरा—डिण्डिम
ढीठ—धृष्ट
ढूँढना—अन्विष् (अनु+इष् ४ प०) गवेष् (१० उ०)
ढेला—लोष्टम्
ढाल—पटह
ढोलक—ढोलक

त

तई (जलेबी आदि पकाने की)—पिष्ट-पचनम्
तकिया—उपधानम्, उपबर्ह

तट—तट, कूलम्
ततैया (भिरट)—वरटा
तन्दूर, (रोटी पकाने का)—कन्दु (स्त्री०)
तपाना—तप् (१ प०)
तपेदिक—राजयक्ष्म, राजयक्ष्मन् (पु०)
तबतक—तावत् (अ०)
तबला—मुरज
तरंग—वीचि (स्त्री०) ऊर्मि (स्त्री०), तरङ्ग
तरबूज—कालिन्दम्, तर्बुजम्
तराई—उपत्यका
तराजू—तुला
तवा—ऋजीषम्
तसला—धिषणा (स्त्री०)
तहमद (लुंगी)—प्रावृतम्
तश्तरी—शराव
ताँबा—ताम्रकम्
ताँबे के बर्तन बनानेवाला—शौल्विक
ताड़—ताल
तानपूरा (बाजा)—तानपूर
तारा—तारा, ज्योतिष् (न०)
तालाब—सरस् (न०), तडाग
ताहरी (पुलाव)—पुलाक
तिजौरी—लौहमञ्जूषा
तिपाई—त्रिपादिका
तिमंजिला (मकान)—त्रिभूमिक
तिरस्कार—अवज्ञा
तिरस्कार होना—तिरस्+कृ (कर्म०)
तिरस्कृत—विप्रकृत, तिरस्कृत
तिरस्कृत करना—परि+भू (१ प०), तिरस्+कृ (८ उ०)
तिल—तिल
तिलक—तिलकम्
तिल्ली—प्लीहा
तीव्र—तीक्ष्णम् (वि०)
तीव्र स्वर—तार
तीसरा पहर—अपराह्ण
तुच्छता—अकिंचित्करत्वम्
तुरही (बाजा)—तूर्यम्
तूणीर—तूणीर
तूतिया—तुत्थाञ्जनम्
तृप्त करना—तर्पय (णिच्)
तृप्त होना—तृप् (४ प०, १० उ०)
तेंदुआ—तरक्षु (पु०)
तेज—तीव्रम्, शातम् (तीक्ष्ण)
तेज (ओज)—तेजस् (न०)
तेज (तीक्ष्ण) करना—तिज् (१ आ०)
तेली—तैलकार
तैरना—तॄ (१ प०), सं+तॄ (१ प०)
तैयार—निष्पन्नम्, सपन्नम्, सज्ज
तैयार होना—सं+पद् (४ आ०), सं+नह् (४ उ०)
तो—तु, तावत्, तत (अ०)
तोड़ना—त्रुट् (१० आ०), भिद् (७ उ०), भञ्ज् (७ प०), खण्ड् (१० उ०)
तोता—शुक, कीर
तोप—शतघ्नी (स्त्री०)
तोरई—जालिनी (स्त्री०)
तोल—तोल
तोलना—तोलनम्
तोलना—तुल् (१० उ०)
त्यक्त—उज्झितम्, त्यक्तम्, उत्सृष्टम्
त्वचा—त्वच् (स्त्री०), त्वचा

थ

थाना—रक्षिस्थानम्
थाली—थालिका, स्थालिका
थूकना—ष्ठीव् (१ प०, ४ प०)
थोड़ी देर—मुहूर्तम् (अ०)

द

दक्षिण, दिशा—दक्षिणा
दक्षिण की ओर—दक्षिणा, दक्षिणत
दक्षिणायन—दक्षिणायनम्
दग्ध (जला हुआ)—प्लुष्टम् (वि०)
दण्ड देना—दण्ड् (१० उ०)
दबाना—अभि+भू (१ प०), दम् (४ प०), धृष् (१० उ०)
दया—अनुक्रोश, दया
दया करना—दय् (१ आ०)
दराँती—दात्रम्

दरी—आस्तरणम्
दर्जी—सौचिक
दर्रा—दरी (स्त्री०)
दलाल—शुल्काजीव
दलाली—शुल्कम्
दस्त—अतिसार
दस्त, आँवयुक्त—आमातिसार
दस्त, खून-युक्त—रक्तातिसार
दस्ता (कागज का)—दस्तकः
दही-बड़ा—दधिवटक
दाँत—रदन, दन्त, रद, दशन
दाढ़ी—कूर्चम्
दातून—दन्तधावनम्
दादी—पितामही (स्त्री०)
दाना—कण
दानी—वदान्य, दानिन् (पु०)
दाल—द्विदलम्, सूप
दालमोठ—दालमुद्ग
दिन—अहन् (न०), दिनम्, दिवस
दिन में—दिवा (अ०)
दिन रात—नक्तन्दिवम्, अहोरात्रम्,
रात्रिन्दिवम्
दिशा—काष्ठा, दिश् (स्त्री०), ककुभ्
(स्त्री०), आशा, दिशा
दीक्षा देना—दीक्ष् (१ आ०)
दीन—दुर्गत, दीन (वि०)
दीवार—भित्ति (स्त्री०)
दुःख देना—पीड् (१० उ०), तुद् (६ उ०)
दुःखित हृदय—विमनस् (पु०), विषण्ण
दुःखित होना—विषद् (वि+सद्
१ प०), व्यथ् (१ आ०)
दुःखी होना—वि+पद् (४ आ०)
दुतई (दुहरी चादर)—द्वितयी (स्त्री०)
दुपहरिया (फूल)—बन्धूक
दुमंजिला (मकान)—द्विभूमिक (वि०)
दुराचारी—दुराचार, दुर्वृत्त (वि०)
दुलारा—दुर्ललित (वि०)
दुहराना—आवृत्ति (स्त्री०), पुनरावृत्ति
(स्त्री०)
दूकान—आपण
दूकानदार—आपणिक
दूत—चर, दूत
दूध—पयस् (न०), क्षीरम्, दुग्धम्
दूर—दूरम्, आरात् (अ०)
दूषित होना—दुष् (४ प०)
देखना—दृश् (१ प०), ईक्ष् (१ आ०),
अवेक्ष्, प्रेक्ष्, समीक्ष् (१ आ०)
अव+लोक् (१० उ०)
देना—दानम्, वितरणम्, विश्राणनम्
देना—दा (३ उ०), वि+तॄ (१ प०),
उप+नी (१ उ०)
देर करना—कालहरणम्, विलम्ब
देवता—सुर, निर्जर, देव, त्रिदश, अमरः
देवदार—देवदारु (पु०)
देवर—देवर
देवरानी—यातृ (स्त्री०)
देहली (द्वार की)—देहली (स्त्री०)
दो-तीन—द्वित्रा (वि०)
दोनों प्रकार से—उभयथा (अ०)
दोपहर—मध्याह्न
दोपहर के बाद का समय—(p m)—
अपराह्न
दोपहर से पहले का समय—(a m)
—पूर्वाह्न
दो प्रकार से—द्विधा (अ०)
दोष लगाना—कुत्स् (१० आ०)
द्रोह करना—द्रुह् (४ प०)
द्वार—द्वारम्, प्रतीहार
द्वारपाल—प्रतीहार, प्रतीहारी (स्त्री०)

ध

धड़—कबन्ध
धतूरा—धत्तूर
धन—धनम्, वित्तम्, द्रविणम्, सम्पद् (स्त्री०)
धनिया—धान्यकम्
धर्मार्थ यज्ञादि—इष्टापूर्तम्
धनुर्धर—धन्विन् (पु०), धनुर्धर
धनुष—कार्मुकम्, इष्वास, कोदण्डम्, चाप
धमकाना—तर्ज् (१० आ०)
धागा—सूत्रम्, तन्तु, (पु०)
धान (भूसीसहित)—धान्यकम्

धार रखने वाला—शस्त्रमार्ज
धारण करना—धृ (१ उ०, १० उ०)
धार रखना—तीक्ष्णय (णिच्), शान् (१ उ०)
धुर्मुग (कंकड आदि कूटने का)—कोटिश
धूप—आतप
धूल—रजस (न०), पांसु (पु०), धूलि (स्त्री०), रेणु (पु०)
धोखा—कैतवम्
धोखा देना—वञ्च् (१० आ०), वि+प्र+लभ (१ आ०)
धोती—अधोवस्त्रम्, धौतवस्त्रम्
धोना—धाव (१ उ०), प्र+क्षल् (१० उ०), निज् (३ उ०)
धोबिन—रजकी (स्त्री०)
धोबी—रजक, निर्णेजक
धोंकनी—भस्त्रा
ध्यान देना—अव+धा (३ उ०)
ध्यान रखना—अपेक्ष (अप+ईक्ष १ आ०)
ध्यान से देखना—निरीक्ष् (१ आ०)

न

नक्षत्र—नक्षत्रम्
नगद—मूल्येन (तृतीया)
नगर—पत्तनम्, नगरम्, पुरम्
नगाड़ा—दुन्दुभि (पु०, स्त्री०)
नदी—आपगा, सरित् (स्त्री०), निम्नगा, स्रवन्ती
ननँद—ननान्द (स्त्री०)
नपुंसक—क्लीबम्, नपुंसकम् (—द
नफीरी (बीन बाजा)—वीणावाद्य
नमक—लवणम्
नमक, साँभर—रोमकम्, रौमकम्
नमक, सेंधा सैन्धव
नमकीन (
नमकीन सेव
नम्र—विनीत
नलाई (खेत क
नवग्रह—नव
नष्ट होना—नश् ((१ आ०), उत्
नस—शिरा

नाइट ड्रेस—नक्तकम्
नाइलोन का (वस्त्र)—नवलीनकम्
नाई—नापित
नाक—घ्राणम्, नासिका, नासा
नाक का फूल—नासापुष्पम्
नाचना—नृत् (४ प०)
नाटी—नाटि (स्त्री०), नाटी (स्त्री०)
नातिन—नप्त्री (स्त्री०)
नाती—नप्तृ (पु०)
नाना—मातामह
नानी—मातामही (स्त्री०)
नापना—मा (२ प०, ३ आ०)
नारंगी—नारङ्गम्
नारियल—नारिकेल (वृक्ष), नारिकेलम् (फल)
नाला (पहाड़ी)—निझर, प्रणाल
नाली—प्रणालिका, नाली (स्त्री०), नालि (स्त्री०)
नाव—नौ (स्त्री०), नौका
नाविक—कर्णधार, नाविक
नाशपाती—अमृतफलम्
नाश्ता—कल्यवर्त, प्रातराश
निःसंकोच—विस्रब्धम्, विश्रब्धम्, निःशङ्कम्
निकलना—निः+सृ (१ प०), प्र+भू (१ प०), उद्+भू (१ प०), निर्+ ... प०), उद्+गम् (१ प०)

निर्यात पर शुल्क—निर्यातशुल्कम्
निवाड़—निवार
निशान लगाना—चिह्न (१० उ०)
निश्चय करना—निश्चि(निस्+चि ५ उ०)
निश्चय से—नूनम्, खलु, वै, नाम (अ०)
नीच—निकृष्ट, अधम, अपकृष्ट, अपसद
नीबू—जम्बीरम्
नीबू, कागजी—जम्बीरकम्
नीबू, बिजौरा—बीजपूर
नीम—निम्ब
नील—नीली (स्त्री०)
नीलकण्ठ (पक्षी)—चाष
नीलम (मणि)—इन्द्रनील
नील लगाना—नीली+कृ (८ उ०)
नेट (जाल)—जालम्
नेत्र—लोचनम्, नेत्रम्, चक्षुष् (न०)
नेल कटर—नखनिकृन्तनम्
नेल पालिश—नखरञ्जनम्
नेवारी (फूल)—नवमालिका
नोट—नाणकम्
नौकर—कर्मकर, भृत्य, किंकर
नौका, छोटी—उडुप
नौ रस—नव रसा
न्योता देना—नि+मन्त्र् (१० आ०)

प

पकवान—पक्वान्नम्
पकाना—पच् (१ उ०)
पका हुआ—पक्वम्
पकौड़ी—पक्ववटिका
परवल (साग)—पटोल
पटरा (खेत बराबर करने का)—
लोष्ठभेदन
पट्टी—पट्टिका
पठार—अधित्यका
पड़ना—पत् (१ प०), नि+पत् (१ प०)
पढ़ाना—पाठय (णिच्), अध्यापय (णिच्)
पतंगा—शलभ
पतला—अपचित, तनु (वि०), कृश
पताका—वैजयन्ती (स्त्री०), पताका
पतीली—स्थाली (स्त्री०)
पत्ता—पर्णम्, पत्रम्
पत्थर—ग्रावन् (पु०), अश्मन् (पु०), उपल
पत्रलेखा (सजाना)—पत्रलेखा
पद्मसमूह—नलिनी (स्त्री०)
पनडुब्बी—जलान्तरितपोत
पनवारी (पानवाला)—ताम्बूलिक,
पन्ना (रत्न)—मरकतम्
पपड़ी (मिठाई)—पर्पटी (स्त्री०)
परकोटा—प्राकार
परवाह करना—ईक्ष् (१ आ०), प्र+
ईक्ष (१ आ०)
परॉठा—पूपिका
परॉग—मकरन्द, पराग
परा (फूँस)—पलाल
परीक्षा करना—परीक्ष् (परि+ईक्ष् १ आ०)
परोसना—परि+वेषय (णिच्)
पर्वत—अद्रि (पु०) गिरि (पु०), भूभृत् (पु०)
पलंग—पल्यङ्क
पलक—पक्ष्मन् (न०)
पवित्र—पूतम्, पवित्रम्, पावनम् (वि०)
पश्चिम—प्रतीची (स्त्री०)
पश्चिम की ओर—प्रत्यक् (अ०)
पहनना—परि+धा (३ उ०)
पहलवान—मल्ल
पहुँचना—आ+सद् (१ प०), प्र+
आप् (५ प०)
पहुँचाना—प्रापय (णिच्)
पहुँची (गहना)—कटक
पाँच-छ—पञ्चष
पाउडर—चूर्णकम्
पाकड़ (वृक्ष)—प्लक्ष
पाखण्डी—पाषण्डिन् (पु०)
पाजेब (गहना)—नूपुरम्
पाठशाला—पाठशाला
पाठ्यपुस्तक—पाठ्यपुस्तकम्
पान—ताम्बूलम्
पानदान—ताम्बूलकरङ्क
पाना—आप् (५ प०), प्र+आप (५ प०),
प्रति+पद् (४ आ०), विद् (६ उ०),
समधि+गम् (१ प०)

धार रखने वाला—शस्त्रमार्ज
धारण करना—धृ (१ उ०, १० उ०)
धार रखना—तीक्ष्णय (णिच्), शान् (१ उ०)
धुर्मुस (कंकड़ आदि कूटने का)—कोटिश
धूप—आतप
धूल—रजस (न०), पांसु (पु०), धूलि (स्त्री०), रेणु (पु०)
धोखा—कैतवम्
धोखा देना—वञ्च् (१० आ०), वि+प्र+लभ् (१ आ०)
धोती—अधोवस्त्रम्, धौतवस्त्रम्
धोना—धाव् (१ उ०), प्र+क्षल् (१० उ०), निज् (३ उ०)
धोबिन—रजकी (स्त्री०)
धोबी—रजक, निर्णेजक
धोंकनी—भस्त्रा
ध्यान देना—अव+धा (३ उ०)
ध्यान रखना—अपेक्ष (अप+ईक्ष १ आ०)
ध्यान से देखना—निरीक्ष् (१ आ०)

न

नक्षत्र—नक्षत्रम्
नगद—मूल्येन (तृतीया)
नगर—पत्तनम्, नगरम्, पुरम्
नगाड़ा—दुन्दुभि (पु०, स्त्री०)
नदी—आपगा, सरित् (स्त्री०), निम्नगा, स्रवन्ती
ननँद—ननान्दृ (स्त्री०)
नपुंसक—क्लीबम्, नपुंसकम् (—क)
नफीरी (बीन बाजा)—वीणावाद्यम्
नमक—लवणम्
नमक, साँभर—रोमकम्, रौमकम्
नमक, सेंधा—सैन्धवम्, सैन्धव
नमकीन (अन्न)—लवणान्नम्
नमकीन सेव—मन्त्रक
नम्र—विनीत, नम्र (वि०)
नलाई (खेत की सफाई)—क्षेत्रपरिष्कार
नवग्रह—नव ग्रह।
नष्ट होना—नश् (४ प०), ध्वस् (१ आ०), उत्+सद् (१ प०)
—धिरा

नाइट डेम—नक्तकम्
नाइलोन का (वस्त्र)—नवलीनकम्
नाई—नापित
नाक—घ्राणम्, नासिका, नासा
नाक का फूल—नासापुष्पम्
नाचना—नृत् (४ प०)
नाड़ी—नाडि (स्त्री०), नाडी (स्त्री०)
नातिन—नप्त्री (स्त्री०)
नाती—नप्तृ० (पु०)
नाना—मातामह
नानी—मातामही (स्त्री०)
नापना—मा (२ प०, ३ आ०)
नारंगी—नारङ्गम्
नारियल—नारिकेल (वृक्ष), नारिकेलम् (फल)
नाला (पहाड़ी)—निर्झर, प्रणाल
नाली—प्रणालिका, नाली (स्त्री०), नालि (स्त्री०)
नाव—नौ (स्त्री०), नौका
नाविक—कर्णधार, नाविक
नाशपाती—अमृतफलम्
नाश्ता—कल्यवर्त, प्रातराश
निःसंकोच—विस्रब्धम्, विश्रब्धम्, निःशङ्कम्
निकलना—नि+सृ (१ प०), प्र+भू (१ प०), उद्+भू (१ प०), निर्+गम् (१ प०), उद्+गम् (१ प०)
निकालना—निःसारय (णिच्)
निगलना—नि+गॄ (६ प०)
निचोड़ना—सु (५ उ०)
निन्दा करना—निन्द् (१ प०), अधि+क्षिप् (६ उ०)
निन्दित—अवगीत, विगीत, निन्दित
निब—लेखनीमुखम्
निमोनिया—प्रलापकज्वर
नियम—नियम
निरन्तर—अभीक्ष्णम्, अजस्रम्, अनवरतम्
निरपराध—अनागस् (पु०), निरपराध
निर्णय करना—निर्+णी (१ उ०)
निर्भय—निर्भयम्, नष्टाशङ्क
निर्यात (एक्सपोर्ट)—निर्यात

निर्यात पर शुल्क—निर्यातशुल्कम्
निवाड़—निवार
निशान लगाना—चिह्न् (१० उ०)
निश्चय करना—निश्चि(निस्+चि ५ उ०)
निश्चय से—नूनम्, खलु, वै, नाम (अ०)
नीच—निकृष्ट, अधम, अपकृष्ट, अपसद
नीबू—जम्बीरम्
नीबू, कागजी—जम्बीरकम्
नीबू, बिजौरा—बीजपूर
नीम—निम्ब
नील—नीली (स्त्री०)
नीलकण्ठ (पक्षी)—चाष
नीलम (मणि)—इन्द्रनील
नील लगाना—नीली+कृ (८ उ०)
नेट (जाल)—जालम्
नेत्र—लोचनम्, नेत्रम्, चक्षुष् (न०)
नेल कटर—नखनिकृन्तनम्
नेल पालिश—नखरञ्जनम्
नेवारी (फूल)—नवमालिका
नोट—नाणकम्
नौकर—कर्मकर, भृत्य, किंकर
नौका, छोटी—उडुप
नौ रस—नव रसा
न्योता देना—नि+मन्त्र् (१० आ०)

प

पकवान—पक्वान्नम्
पकाना—पच् (१ उ०)
पका हुआ—पक्वम्
पकौड़ी—पक्ववटिका
परवल (साग)—पटोल
पटरा (खेत बराबर करने का)—
लोष्टभेदन
पट्टी—पट्टिका
पठार—अधित्यका
पड़ना—पत् (१ प०), नि+पत् (१ प०)
पढ़ाना—पाठय (णिच्), अध्यापय (णिच्)
पतंगा—शलभ
पतला—अपचित, तनु (वि०), कृश
पताका—वैजयन्ती (स्त्री०), पताका
पतीली—स्थाली (स्त्री०)

पत्ता—पर्णम्, पत्रम्
पत्थर—ग्रावन् (पु०), अश्मन् (पु०), उपल:
पत्रलेखा (सजाना)—पत्रलेखा
पद्मसमूह—नलिनी (स्त्री०)
पनडुब्बी—जलान्तरितपोत
पनवाड़ी (पानवाला)—ताम्बूलिक,
पन्ना (रत्न)—मरकतम्
पपड़ी (मिठाई)—पर्पटी (स्त्री०)
परकोटा—प्राकार
परवाह करना—ईक्ष् (१ आ०), प्र+
ईक्ष (१ आ०)
परॉठा—पूपिका
परांग—मकरन्द, पराग
परा (फूस)—पलाल
परीक्षा करना—परीक्ष् (परि+ईक्ष् १ आ०)
परोसना—परि+वेषय (णिच्)
पर्वत—अद्रि (पु०) गिरि (पु०), भूभृत्(पु०)
पलंग—पर्यङ्क
पलक—पक्ष्मन् (न०)
पवित्र—पूतम्, पवित्रम्, पावनम् (वि०)
पश्चिम—प्रतीची (स्त्री०)
पश्चिम की ओर—प्रत्यक् (अ०)
पहनना—परि+धा (३ उ०)
पहलवान—मल्ल
पहुंचना—आ+सद् (१ प०), प्र+
आप् (५ प०)
पहुँचाना—प्रापय (णिच्)
पहुँची (गहना)—कटक
पाँच-छ—पञ्चष
पाउडर—चूर्णकम्
पाकड़ (वृक्ष)—प्लक्ष
पाखण्डी—पाषण्डिन् (पु०)
पाजेब (गहना)—नूपुरम्
पाठशाला—पाठशाला
पाठ्यपुस्तक—पाठ्यपुस्तकम्
पान—ताम्बूलम्
पानदान—ताम्बूलकरङ्क
पाना—आप् (५ प०), प्र+आप (५ प०),
प्रति+पद् (४ आ०), विद् (६ उ०),
समधि+गम् (१ प०)

पानी का जहाज—पोत
पापड़—पर्पट-
पायजामा—पादयाम
पार करना—तॄ (१ प०), उत्+तॄ (१ प०), निस्+तॄ (१ प०)
पारा—पारद॰
पार्क—पुरोद्यानम्, पुरोपवनम्
पार्वती—शर्वाणी (स्त्री०), गौरी (स्त्री०), भवानी (स्त्री०)
पालक (साग)—पालकी (स्त्री०)
पालन करना—भुज् (७ प०), तन्त्र् (१०आ०), पा (२ प०), पालय (णिच्)
पालिश—पादुरञ्जनम् पादुरञ्जक
पास जाना—उप+गम् (१ प०), उप+सद् (१ प०)
पासा (जूए का)—अक्षा (बहु०)
पाहुन (अतिथि)—प्राघुण, अभ्यागत
पिघलाना—द्रावय (णिच्)
पिघला हुआ—द्रुतम्, गलितम्, द्रवीभूतम्
पिलाना—पायय (पा+णिच्)
पियानो (बाजा)—तन्त्रीकवाद्यम्
पिस्ता—अङ्कोटम्
पिस्तौल—लघुभुशुण्डि (स्त्री०), गुलिकास्त्रम्
पीछा करना—अनु+पत् (१ प०)
पीछे चलना—अनु+चर् (१ प०) अनु+वृत् (१ आ०)
पीछे जाना—अनु+गम् (१ प०)
पीछे पीछे—अनुपदम् (अ०)
पीठ—पृष्ठम्
पीतल—पीतलम्
पीपल—अश्वत्थ
पीपर (ओषधि)—पिप्पली (स्त्री०)
पीलिया (रोग)—पाण्डु (पु०)
पीसना—पिष् (७ प०)
पुखराज (रत्न)—पुष्पराग, पुष्पराज-
पुताई वाला—लेपक
पुत्र—आत्मज, सूनु (पु०), तनय, अपत्यम्
पुत्रवधू—स्नुषा
पुलाव—पुलाक
पुष्ट करना—पुष् (४ प०)

पुष्पमाला—स्रज् (स्त्री०)
पूँजी—मूलधनम्
पूआ—पूप
पूजा—सपर्या, अर्चा, अर्हणा, अपचिति (स्त्री०)
पूजा करना—अर्च् (१प०), पूज् (१० उ०)
पूज्य—प्रतीक्ष्य॰, पूज्य
पूरा करना—पॄ (३ प०, १० उ०)
पूरी—पूलिका
पूर्णिमा—राका, पूर्णिमा
पूर्व—प्राची (स्त्री०)
पूर्व की ओर—प्राक् (अ०)
पृथिवी—वसुधा, अवनि (स्त्री०), भू (स्त्री०)
पेचिश—प्रवाहिका, आमातिसार-
पेट—कुक्षि (पु०), उदरम्, जठर-
पेटीकोट—अन्तरीयम्
पेटू—औदरिक, कुक्षिंभरि- (पु०)
पेठे की मिठाई—कौष्माण्डम्
पेड़ा (मिठाई)—पिण्ड
पेन्टर—चित्रकार
पेन्सिल—तूलिका
पेस्ट्री—पिष्टान्नम्
पैदल चलने वाला—पदातिः (पु०)
पैदल सेना—पदाति (पु०)
पैदा होना—उद्+भू (१ प०), उत्+पद् (४ आ०)
पैन्ट—आप्रपदीनम्
पैर—पाद
पैरेलिसिस (लकवा०)—पक्षाघात
पोंछना—मार्जय (णिच्)
पोतना—लिप् (६ उ०)
पोता—पौत्र
पोती—पौत्री (स्त्री०)
पोर्टिको (बरामदा)—प्रकोष्ठ॰
पौष्टिक—पौष्टिकम्
प्याऊ—प्रपा
प्याज—पलाण्डु (पु०, न०)
प्याल (फल)—प्रियालकम्
प्याला—चषक॰
प्रकट होना—आविर्+भू (१ प०)

प्रचार होना—प्र+चर् (१ प०)
प्रणाम करना—प्र+णम् (१ प०) वन्द्, (१ आ०)
प्रतिज्ञा करना—प्रति+ज्ञा (९ आ०)
प्रतीत होना—आ+पत (१ प०)
प्रतीक्षा करना—प्रतीक्ष् (१ आ०), अपेक्ष् (१ आ०)
प्रमेह—प्रमेह
प्रसन्न चित्त—प्रसन्न, हृष्टमानस
प्रसन्न होना—प्र+सद् (१प०), मुद् (१आ०)
प्रसिद्ध—प्रसिद्ध, प्रथित विश्रुत-
प्रस्तुत करना—प्र+स्तु (२ उ०)
प्रस्थान करना—प्र+स्था (१ आ०)
प्राइम मिनिस्टर—प्रधानमन्त्रिन् (पु०)
प्राण—प्राणा, असव (असु, बहु०)
प्रात—प्रात- (अ०), प्रत्यूष
प्राप्त किया—आसादितम्, प्राप्तम्, लब्धम्
प्राप्त करना—प्राप् (५ प०), लभ् (१ आ०)
प्रारम्भ करना—आ+रभ् (१ आ०)
प्रार्थना करना—प्र+अर्थ् (१० आ०)
प्रिन्सिपल—आचार्य, आचार्या (स्त्री०)
प्रेम करना—स्निह् (४ प०)
प्रेरणा देना—प्र+ईर् (१० उ०)
प्रेरित—ईरितम्, प्रेरितम्
प्रोफेसर—प्राध्यापक
प्रौढ—प्रौढ, प्रौढम् (वि०)
प्लास्टर—प्रलेप-
प्लेट—शराव-

फ

फड़कना—स्पन्द् (१ आ०), स्फुर (६ प०)
फर्नीचर—उपस्कर-
फर्श—कुट्टिमम्
फल मिलना—वि+पच् (१ उ०)
फहराना—उद्+तुल् (१० उ०)
फाइल—पत्रसचयिनी (स्त्री०)
फाउन्टेन पेन—धारालेखनी (स्त्री०)
फालसा (फल)—पुनागम्
फावड़ा—खनित्रम्
फासफोरस—भास्वरम्
फिटकिरी—स्फटिका
फीस—शुल्क
फुंसी—पिटिका
फुटबॉल—पादकन्दुक,—कम्
फुफेरा भाई—पैतृष्वस्रीय
फुलका (रोटी)—पूपला
फूँकना—ध्मा (१ प०)
फूँस—तृणम्
फूआ—पितृष्वसृ (स्त्री०)
फूल (धातु)—कांस्यम्
फूल—प्रसूनम्, कुसुमम्, पुष्पम्, सुमनस् (स्त्री०)
फेंकना—अस् (४ प०), क्षिप् (६ उ०)
फेफड़ा—फुप्फुसम्
फेरना—आवर्ति (णिच्)
फैक्टरी—शिल्पशाला
फैलना—प्रथ् (१ आ०)
फैलाना—कॄ (६ प०), तन् (८ उ०)
फोड़ा—पिटक
फौजी आदमी—सैनिक
फ्लु (इन्फ्लुएंजा)—शीतज्वर-

ब

बँटखरा (बाट)—तुलामानम्
बकरा—अज
बकवाद करना—प्र+लप् (१ प०)
बगुला—बक
बच्चों का पार्क—बालोद्यानम्
बछड़ा—वत्स
बजे—वादनम्
बड़ (वृक्ष)—न्यग्रोध
बड़हल (फल)—लकुचम्
बड़ा भाई—अग्रज
बढ़ई—त्वष्टृ (पु०)
बढ़कर—अति (अ०)
बढ़ना—एध् (१ आ०), उप+चि (५ उ०)
बतक—वर्तक
बताशा—वाताश
बथुआ (साग)—वास्तुकम्, वास्तूकम्
बदमाश—जाल्म, पाप, रेफ
बदलना—परि+णम् (१ उ०)

बधाई देना—दिष्ट्या वृध् (१ आ०)
बना ठना—स्वलंकृत , सुभूषित
बनाना—सृज् (६ प०), रच् (१० उ०)
बनावटी—कृत्रिमम्, कृतकम् (वि०)
बन्द करना—अपि (पि)+धा (३ उ०)
बन्दर—शाखामृग , कपि (पु०)
बन्दूक—भुशुण्डि (स्त्री०), भुशुण्टी (स्त्री०)
बबूल (वृक्ष)—करीर·
बम—आग्नेयास्त्रम्
बम फेंकना—आग्नेयास्त्रम्+क्षिप (६ उ०)
बराबर करना—समी+कृ (८ उ०)
बराबरी करना—प्र+भू (१ प०)
बरामदा—वरण्ड
बर्छी—शल्यम्
बर्ताव करना—वृत (१ आ०)
बर्दी—सैन्यवेष
बर्फ—अवश्याय , हिमम्, तुषार-
बर्फी (मिठाई)—हैमी (स्त्री०)
बर्मा (औजार)—आविध
बवासीर—अर्शस (न०)
बस—अलम् (अ०) कृतम् (अ०), खलु (अ०)
बसूला—तक्षणी (स्त्री०)
बस्ता - वेष्टनम्, प्रसेव
बस्ती—आवासस्थानम्
बहना—वह् (१ उ०), स्यन्द् (१ आ०)
बहाना—अपदेश , व्यपदेश
बहाना करना—अप+दिश् (६ उ०)
बहिन—स्वसृ (स्त्री०), भगिनी (स्त्री०)
बही—वणिक्पत्रिका
बहुमूत्र—मधुमेह
बहेडा (ओषधि)—बिभीतक
बहेलिया—शाकुनिक , व्याध
बाँझ (वृक्ष)—सिन्दूर
बाँधना—बन्ध् (९ प०), पश् (१० उ०)
बाँसुरी—मुरली (स्त्री०), वंशी (स्त्री०)
बाँह—बाहु (पु०), भुज
बाज (पक्षी)—श्येन
बाजरा(अन्न)—प्रियङ्गु (पु०)
बाजार—विपणि (स्त्री०), विपणी (स्त्री०)
बाजूबन्द (गहना)—केयूरम्
बाट (तोलने के)—तुलामानम्
बाड—वृति (स्त्री०)
बाण—विशिख , शर , बाण
बाथरूम—स्नानागारम्
बाद में—पश्चात् (अ०), अनु (अ०)
बादाम—वातादम्
बार बार—मुहु (अ०), अभीक्ष्णम् (अ०)
बारी से (बारी बारी से)- पर्यायश (अ०)
बारूद—अग्निचूर्णम्
बारे में—अन्तरेण, अधिकृत्य (अ०)
बाल—शिरोरुह , केश
बाल (अन्न की)—कणिश , कणिशम्
बाल काटने की मशीन—कर्तनी (स्त्री०)
बालटी (बर्तन)—उदञ्चनम्
बालूशाही (मिठाई)—मधुमण्ठ
बालों का काँटा—केशशूक
बासमती चावल—अणु (पु०)
बाहर जाना (एक्सपोर्ट)—निर्यात
बाहर से आना (इम्पोर्ट)—आयात
बिकवाना—विक्रापय (णिच्, पर०)
बिक्री—विक्रय
बिगडना—दुष् (४ प०)
बिगुल (बाजा)—सङ्गाशङ्ख
बिच्छू—वृश्चिक
बिजली—विद्युत् (स्त्री०), सौदामिनी (स्त्री०)
बिजली घर—विद्युद्गृहम्
बिताना—नी (१ उ०), यापय (णिच्, उ०)
बिदाई लेना—आ+मन्त्र् (१० आ०), आ+प्रच्छ् (६ आ०)
बिना—अन्तरेण (अ०), विना (अ०), ऋते (अ०)
बिन्दी—बिन्दु (पु०)
बिल्ली—मार्जारी (स्त्री०)
बिसकुट—पिष्टक
बिस्तर—शय्या
बींधना—व्यध् (४ प०)
बीच में—अन्तरा, अन्तरे (अ०)
बीडी—तमाखुनीटिका

बीतना (समय)—गम् (१ प०), अति+
  वृत् (१ आ०)
बीन बाजा—वीणावाद्यम्
बुकरैक—पुस्तकाधानम्
बुखार—ज्वर
बुनना—वे (१ उ०)
बुरका—निचोल
बुर्जी (अटारी)—अट्ट
बुलाक (गहना)—नासाभरणम्
बुलाना—आ+मन्त्र् (१० आ०), आ+
  ह्वे (१ उ०)
बूरा (चीनी)—शर्करा, सिता
बेंत—वेतम्
बेचना—वि+क्री (९ आ०)
बेचनेवाला—विक्रेतृ (पु०)
बेणी (गहना)—मूर्धाभरणम्
बेन्च—काष्ठासनम्
बेर—बदरीफलम्, कर्कन्धु (स्त्री०)
बेल (फल)—बिल्वम्, श्रीफलम्
बेला (फूल)—मल्लिका
बेसन—चणकचूर्णम्
बैंकिंग—कुसीदवृत्ति (स्त्री०)
बैंड—वादित्रगण
बैंगन—भण्टाकी (स्त्री०)
बैठना—सद् (१ प०), नि+सद् (१ प०),
  आस् (२ आ०)
बैडमिन्टन—पत्रिक्रीडा
बैना (वायन)—वायनम्
बैल—उक्षन् (पु०), अनडुह् (पु०),
  गो (पु०)
बोना—वप् (१ उ०)
बौर—वल्लरी (स्त्री०)
ब्रह्म—उद्गीथ, ब्रह्मन् (पु०, न०)
ब्रह्मा—वेधस् (पु०), ब्रह्मन् (पु०)
ब्राह्मण—द्विज, द्विजाति (पु०), अग्र-
  जन्मन् (पु०)
ब्रुश—वर्तिका, रोममार्जनी (स्त्री०)
ब्रुश, दाँत का—दन्तधावनम्
ब्रैसलेट (बाजूबन्द)—केयूरम्
ब्लड प्रेसर (रोग)—रक्तचाप
ब्लाउज—कञ्चुलिका
ब्लाटिंग पेपर—मसीशोष
ब्लेड (बाल बनाने का)—क्षुरकम्
ब्लैक बोर्ड—श्यामफलकम्

भ

भगी—समार्नक
भँवर—आवर्त
भड़भूजा—भृष्टकार, भ्राष्ट्रमिन्ध
भतीजा—भ्रात्रीय, भ्रातृव्य, भ्रातृपुत्र
भरना—पृ (१० उ०)
भले ही—कामम् (अ०)
भाँटा—भण्टाकी (स्त्री०)
भाग्यवान्—सुकृतिन् (पु०)
भाग्य से—दिष्ट्या (अ०)
भाड़—भ्राष्ट्रम्
भान्जा (भानजा)—स्वस्रीय, भागिनेय
भाप—बाष्पम्
भाभी (भाई की स्त्री)—भ्रातृजाया
भारी—गुरु (वि०)
भाला—प्रास
भालू—भल्लूक
भाव (बाजार भाव)—अर्घ
भाव गिरना—अर्घापचिति (स्त्री०)
भाव चढ़ना—अर्घोपचिति (स्त्री०)
भावर (तराई)—उपत्यका
भिण्डी (साग)—भिण्डक
भुस—बुसम्
भूख—बुभुक्षा, अशनाया
भूखा—बुभुक्षित अशनायित (वि०)
भूनना—भ्रस्ज् (६ उ०)
भूलना—वि+स्मृ (१ प०)
भूसी—तुष
भू-सेनापति—भूसेनाध्यक्ष
भेजना—प्रेषय (णिच्, उ०), प्र+हि
  (५ प०)
भेड़—मेष
भेड़िया—वृक
भैंस—महिषी (स्त्री०)
भैंसा—महिष
भोली भाली—मुग्धा

भौं—भ्रू (स्त्री०)
भौंरा—षट्पद, भ्रमर, द्विरेफ, अलि (पु०)

म

मँगाना—आनायय (आनी+णिच्)
मंजन—दन्तचूर्णम्
मँजीरा—मंजीरम्
मंडप—मण्डप
मंडी—महाहट्ट
मकड़ी—तन्तुनाभ, लूता, ऊर्णनाभ
मकान—भवनम्, सौध, प्रासाद, निलय
मकोय (फल)—स्वर्णक्षीरी (स्त्री०)
मक्खन—नवनीतम्, हैयङ्गवीनम्
मगर—मकर, नक्र
मछली—मीन, मत्स्य, झष
मजदूर—श्रमिक
मटर—कलाय
मट्ठा—तक्रम्
मथना—मन्थ् (९ उ०)
मधुमक्खी—सरघा, मधुमक्षिका
मध्यम स्वर—मध्य, मध्यस्वर
मन—स्वान्तम् हृद् (न०), मनस् (न०), मानसम्
मन लगना—रम् (१ आ०)
मनाना—अनु+नी (१ उ०)
मनुष्य—नर, द्विपाद् (पु०), मर्त्य
मनोहर—मनोज्ञम्, मञ्जुलम्, हृद्यम्, अभीष्टम्
मन्त्रणा करना—मन्त्र् (१० आ०)
मन्त्री—अमात्य, सचिव, मन्त्रिन् (पु०)
मन्दी (भाव की)—मन्दायनम्
मरना—मृ (६ आ०), उप+रम् (१ आ०)
मरम्मत करना—सं+धा (३ उ०)
मर्म—मर्मन् (न०)
मलाई—सन्तानिका
मलेरिया—विषमज्वर
मशीन—यन्त्रम्
मसाला—व्यञ्जनम्, उपस्कर
मसाला डालना—उपस्कृ (८ उ०)
मसालेदार वस्तु—व्यञ्जनम्
मसूर—मसूर
महँगा—महार्घम्
महल—प्रासाद, सौध, हर्म्यम्
महावर—अलक्तक
महुआ (वृक्ष)—मधूक
माँजना—मृज् (२ प०, १० उ०)
मांस—आमिषम्, मांसम्
माथा—ललाटम्
मानना—मन् (४ आ०, ८ आ०), आ+स्था (१ आ०)
मानसून—जलदागम, प्रावृष् (टा)
मामा—मातुल
मामी—मातुलानी (स्त्री०)
मारना—हन् (२ प०), तड् (१० उ०), सो (४ प०)
मार्ग—वर्त्मन् (न०), पथिन् (पु०), मार्ग, सरणि (स्त्री०)
मालपूआ—अपूप
माली—मालाकार
मिजराब (सितार बजाने का)—कोण
मिट्टी—मृत्तिका, मृद् (स्त्री०), मृत्स्ना
मिठाई—मिष्टान्नम्
मित्रता—सख्यम्, सौहृदम्, सौहार्दम्, सङ्गतम्
मिनट—कला
मिर्च—मरीचम्
मिल (फैक्टरी)—मिल
मिलना—मिल् (६ उ०), सं+गम् (१ आ०)
मिलाना—योजय (युज्+णिच्), सं+मिश्रय (णिच्)
मिस्त्री (कारीगर)—यान्त्रिक
मिस्सा आटा—मिश्रचूर्णम्
मीठा—मधुरम् (वि०)
मीठी गोली (टॉफी)—गुल्य
मुँह—आननम्, वदनम्, मुखम्, आस्यम्
मुकरना—अप+ज्ञा (९ आ०)
मुकुट—मुकुटम्
मुख्य द्वार—गोपुरम्
मुख्य सड़क—राजमार्ग
मुट्ठी—मुष्टि (पु० स्त्री०), मुष्टिका

मुनि—मुनि (पु०), वाच्यम, दान्त
मुनीम—लेखक
मुरब्बा—मिष्टपाक
मुसम्मी (फल)—मातुलुङ्ग
मुसाफिरखाना—पथिकालय
मूँग—मुद्ग
मूँगरी (मिट्टी तोड़ने की)—लोष्ठभेदन
मूँगा (रत्न)—प्रवालम्
मूँछ—श्मश्रु (न०)
मूर्ख—वैधेय बालिश, मूढ
मूर्खता—जाड्यम्
मूली—मूलकम्
मूल्य—मूल्यम्
मूसलाधार वर्षा—आसार
मृग—कुरङ्ग, हरिण, मृग
मृत—हत, मृत, उपरत
मृत्यु—मृत्यु (पु०), निधनम्
मेंढक—भेक, दर्दुर, मण्डूक
मेंहदी—मेन्धिका
मेकेनिक (कारीगर)—यान्त्रिक
मेघ—जीमूत, वारिद, बलाहक
मेज—फलकम्
मेज, पढ़ाईकी—लेखनफलकम्
मेयर—निगमाध्यक्ष
मेवा—शुष्कफलम्
मैंड़ा (खेत बराबर करने का)—लोष्ठ-
भेदन
मैच—क्रीडाप्रतियोगिता
मैना—सारिका
मोटा—उपचित, पृथु, गुरु (वि०)
मोती—मुक्ता, मौक्तिकम्
मोती की माला—मुक्तावली (स्त्री०)
मोतीझरा (रोग)—मन्थरज्वर
मोर—बर्हिन् (पु०), शिखिन् (पु०) मयूर,
मोर्चाबन्दी करना—परिखया+वेष्टय
(णिच्)
मोहनभोग (मिठाई)—मोहनभोग
मौका—कार्यकालम्
मौन—वाचयम, जोषम् (अ०)
मौलसरी (वृक्ष)—बकुल
मौसी—मातृष्वसृ (स्त्री०)
मौसेरा भाई—मातृष्वसेय
म्युनिसिपल चेयरमैन—नगराध्यक्ष
म्युनिसिपलिटी—नगरपालिका

य

यज्ञ—अध्वर, यज्ञ, क्रतु (पु०)
यज्ञ-कर्ता—यज्वन् (पु०)
यत्न करना—यत् (१ आ०), व्यव+सो
(४ प०)
यम—कृतान्त
यश—यशस् (न०), कीर्ति (स्त्री०)
याद करना—स्मृ (१ प०), स+स्मृ
(१ प०), अधि+इ (२ प०)
युद्ध—आहव, आजि (पु०, स्त्री०) जन्यम्
यूनानी लिपि—यवनानी (स्त्री०)
यूनिफार्म—एकपरिधानम्, एकवेष
यूनिवर्सिटी—विश्वविद्यालय
योग्य होना—अर्ह् (१ प०)
योद्धा—योध

र

रंगना—रञ्ज् (१ उ०)
रंगबिरंगे—नानावर्णानि (बहु०, वि०)
रंगरेज—रञ्जक
रकम—राशि, धनराशि (पु०)
रक्षा करना—रक्ष् (१ प०), पाल्
(१० उ०), त्रै (१ आ०), पा (२ प०)
रखना—नि+धा (३ उ०)
रज—रजस् (न०)
रजाई—नीशार
रजिस्टर—पञ्जिका
रजिस्ट्रार—प्रस्तोतृ (पु०)
रणकुशल—सांयुगीन
रथ—स्यन्दनम्
रगड़—घर्षक
रबड़ी (मिठाई)—कूर्चिका
रसोई—रसवती (स्त्री०), पाकशाला, महानसम्
रहना—स्था (१ प०), वस् (१ प०),
अधि+वस्, उप+वस् (१ प०)
रांगा—त्रपु (न०)
राक्षस—असुर, दैत्य, दानव

राज (मिस्त्री)—स्थपति (पु०)
राजदूत—राजदूत·
राजा—अवनिपति, भूपति, भूभृत् (तीनों पु०)
रात—विभावरी (स्त्री०), क्षपा, रात्रि (स्त्री०)
रात में—नक्तम् (अ०)
रायता—राज्यक्तम्
रिवाज—प्रचलनम्, सम्प्रचलनम्
रीठा—फेनिल
रीढ की हड्डी—पृष्ठास्थि (न०)
रुकना—स्था (१ प०), वि+रम् (१ प०), अव+स्था (१ आ०)
रूई—तूल, तूलम्
रूज (गालों की लाली)—कपोलरञ्जनम्
रेगिस्तान—मरु (पु०), धन्वन् (पु०, न०)
रेट (भाव)—अर्घ·
रेतीला किनारा—सैकतम्
रेफरी—निर्णायक
रेशमी—कौशेयम्
रैकेट (खेलने का)—काष्ठपरिष्कर
रोकना—रुध् (७ उ०)
रोग—रुज् (स्त्री०), रोग, आमय
रोजनामचा (कैश-बुक, रोकड़ बही)—दैनिक-पञ्जिका
रोटी—रोटिका
रोना—रुद् (२ प०), वि+लप् (१ प०)

ल

लंच (मध्याह्न भोजन)—सहभोज, सन्धि (स्त्री०)
लकवा मारना—पक्षाघात
लकीर—रेखा
लक्ष्मी—लक्ष्मी· (स्त्री०), श्री (स्त्री०), पद्मा, कमला
लक्ष्य—लक्ष्यम्, शरव्यम्
लगना—प्र+वृत् (१ आ०)
लगाना—नि+युज् (१० उ०), स+धा(३उ०)
लच्छे (गहना)—पादाभरणम्
लज्जित—हीण (वि०)
लज्जित होना—त्रप् (१ आ०), लस्ज् (६ आ०), ह्री (३ प०)
लड़ने का इच्छुक—योद्धुकाम, कलहकाम
लड़ाई का जहाज (पानीका)—युद्धपोत
लड़ाई का विमान—युद्धविमानम्
लड्डू—मोदक, मोकदम्
लता—प्रतति· (स्त्री०), वीरुध् (स्त्री०), लता
लपसी (जौ का हलुआ)—यवागू (स्त्री०)
लस्सी (दही की)—दाधिकम्
लहसुन—लशुनम्
लहसुनिया (रत्न)—वैदूर्यम्
लाक्षारस—अलक्तक, लाक्षारस
लाख (धातु)—जतु (न०)
लाना—आ+नी (१ उ०), हृ (१ उ०), आ+हृ (१ उ०)
लिए—कृते (अ०)
लिपस्टिक—ओष्ठरञ्जनम्
लिफ्ट (मशीन)—उत्थापनयन्त्रम्
लिसोड़ा (वृक्ष)—श्लेष्मातक
लीची (फल)—लीचिका
लीपना—लिप् (६ उ०)
लेखा बही—नामानुक्रमपञ्जिका
ले जाना—नी (१ उ०), हृ (१ उ०), वह् (१ उ०)
लेना—ग्रह् (९ उ०), आ+दा (३ आ०)
लेने वाला—ग्राहक
लोई (ऊनी)—रल्लक
लोकसभा—लोकसभा, ससद् (स्त्री०)
लोटा—करक·, कमण्डलु (पु०)
लोभिया—वनमुद्ग
लोभी—लुब्ध, गृध्नु (पु०)
लोमड़ी—लोमशा
लोहा—अयम् (न०), आयसम्, लौहम्
लोहा करना (वस्त्रों पर)—अयस्+कृ (८ उ०)
लोहार—लौहकार
लोहे का टोप—शिरस्त्रम्
लोहे की चादर—लौहफलकम्
लौंग—लवङ्गम्
लौकी—अलाबूः (स्त्री०)

लौटकर आना—आ+वृत (१ आ०), प्रत्या+गम् (१ प०)
लौटना—नि+वृत (१ आ०), परा+गम् (१ प०)

व

वंचित—विप्रलब्ध
वंश—अन्वय, अन्ववाय, वंश
वकील—प्राड्विवाक
वचन—वचम् (न०), वचनम्
वज्र—पवि (पु०), वज्रम्, कुलिशम्, अशनि (पु०)
वन—काननम्, विपिनम्, वनम्, अरण्यम्
वरुण—प्रचेतस् (पु०), पाशिन् (पु०), वरुण
वर्षा—वृष्टि (स्त्री०), वर्षा
वर्षाकाल—प्रावृष् (स्त्री०)
वस्तुत—नूनम्, किल, खलु, वै, तावत् (अ०)
वहाँ से—तत (अ०)
वाइस चान्सलर—उपकुलपति (पु०)
वाटर वर्क्स—उदयन्त्रम्
वाणी—सरस्वती, वाच् (स्त्री), वाणी (स्त्री०)
वायु—मातरिश्वन् (पु०) पवन, अनिल
वायुसेनापति—वायुसेनाध्यक्ष
वायोलिन (बाजा)—सारङ्गी (स्त्री०)
विचरण करना—वि+चर् (१ प०)
विजयी—जिष्णु (पु०), विजयिन् (पु०)
विद्युत्—सौदामिनी (स्त्री०), विद्युत् (स्त्री०),
विद्वान्—विद्वस् (पु०), विपश्चित् (पु०), सुधी (पु०), कोविद, बुध, मनीषिन् (पु०), सूरि (पु०), निष्णात
विपत्ति—विपत्ति (स्त्री०), विपद् (स्त्री०), व्यसनम्
विमान—विमानम्
विवाह करना—परि+णी (१ उ०), उप+यम् (१ आ०)
विश्राम—विश्रम, विश्राम-
विश्वास करना—वि+श्वस् (२ प०)
विष्णु—हरि, अच्युत
विस्तृत—ततम्, विततम्, प्रसृतम्
वीर्य—शुक्रम्
वृक्ष—विटपिन् (पु०), पादप, अनोकह, शाखिन् (पु०)
वृन्द—प्रवगम् (पु०), वृन्द
वेतन—वेतनम्
वेतन पर नियुक्त नौकर—वैतनिक
वेदपाठी—श्रोत्रिय, वेदपाठिन् (पु०)
वेदी—वेदिका, वेदी (स्त्री०)
वैश्य—वणिज् (पु०), द्विजाति (पु०), अर्य, वैश्य
वाली-बॉल—क्षेपकन्दुक
व्यक्त करना—वि+अञ्ज् (७ प०)
व्याघ्र—द्वीपिन् (पु०), व्याघ्र
व्यर्थ ही—वृथा (अ०), मुधा (अ०)
व्यवहार करना—आ+चर् (१ प०), व्यव+हृ (१ उ०)
व्यापार—वाणिज्यम्, व्यापार
व्याप्त होना—व्याप् (वि+आप् ५ प०), अश् (५ आ०)

श

शक्कर—शर्करा
शपथ लेना—शप् (१ उ०)
शराबी—मद्यप
शरीफा (फल)—सीताफलम्
शरीर—वपुष् (न०) गात्रम्, तनु (स्त्री०), काय, विग्रह
शर्त—समय
शलगम—श्वेतकन्द
शस्त्र—प्रहरणम्, शस्त्रम्
शस्त्रागार—शस्त्रागारम्, आयुधागारम्
शस्य-श्यामल—शाद्वल
शहतूत (फल)—तूतम्
शहद—मधु० (न०)
शहनाई (बाजा)—तूर्यम्
शहर—नगरम्, पुरम्
शान्त—शान्त (वि०)
शामियाना—चन्द्रातप
शासन करना—शास् (२ प०), तन्त्र् (१० आ०)
शिकार खेलना—मृगया
शिकारी—मृगयु (पु०), आखेटक, शाकुनिक
शिक्षा देना—शास् (२ प०), शिक्ष् (१ आ०)

राज (मिस्त्री)—स्थपति (पु०)
राजदूत—राजदूत
राजा—अवनिपति, भूपति, भूभृत् (तीनों पु०)
रात—विभावरी (स्त्री०), क्षपा, रात्रि (स्त्री०)
रात में—नक्तम् (अ०)
रायता—राज्यक्तम्
रिवाज—प्रचलनम्, सम्प्रचलनम्
रीठा—फेनिल
रीढ की हड्डी—पृष्ठास्थि (न०)
रुकना—स्था (१ प०), वि+रम् (१ प०), अव+स्था (१ आ०)
रूई—तूल, तूलम्
रूज (गालों की लाली)—कपोलरञ्जनम्
रेगिस्तान—मरु (पु०), धन्वन् (पु०, न०)
रेट (भाव)—अघ
रेतीला किनारा—सैकतम्
रेफरी—निर्णायक
रेशमी—कौशेयम्
रैकेट (खेलने का)—काष्ठपरिष्कर
रोकना—रुध् (७ उ०)
रोग—रुज् (स्त्री०), रोग, आमय
रोजनामचा (कैश-बुक, रोकड बही)—दैनिक-पञ्जिका
रोटी—रोटिका
रोना—रुद् (२ प०), वि+लप् (१ प०)

ल

लच (मध्याह्न भोजन)—सहभोज, सन्धि (स्त्री०)
लकवा मारना—पक्षाघात
लकीर—रेखा
लक्ष्मी—लक्ष्मी (स्त्री०), श्री (स्त्री०), पद्मा, कमला
लक्ष्य—लक्ष्यम्, शरव्यम्
लगना—प्र+वृत् (१ आ०)
लगाना—नि+युज् (१० उ०), स+धा(३उ०)
लच्छे (गहना)—पादाभरणम्
लज्जित—हीण (वि०)
लज्जित होना—त्रप् (१ आ०), लस्ज् (६ आ०), ह्री (३ प०)
लडने का इच्छुक—युयुत्सुकाम, कलहकाम
लडाई का जहाज (पानीका)—युद्धपोत
लडाई का विमान—युद्धविमानम्
लड्डू—मोदक, मोदकम्
लता—व्रतति (स्त्री०), वीरुध् (स्त्री०), लता
लपसी (जौ का हलुआ)—यवागू (स्त्री०)
लस्सी (दही की)—दाधिरूम्
लहसुन—लशुनम्
लहसुनिया (रत्न)—वैदूर्यम्
लाक्षारस—अलक्तक, लाक्षारस
लाख (धातु)—जतु (न०)
लाना—आ+नी (१ उ०), हृ (१ उ०), आ+हृ (१ उ०)
लिए—कृते (अ०)
लिपस्टिक—ओष्ठरञ्जनम्
लिफ्ट (मशीन)—उत्थापनयन्त्रम्
लिसोडा (वृक्ष)—श्लेष्मातक
लीची (फल)—लीचिका
लीपना—लिप् (६ उ०)
लेखा बही—नामानुक्रमपञ्जिका
ले जाना—नी (१ उ०), हृ (१ उ०), वह् (१ उ०)
लेना—ग्रह् (९ उ०), आ+दा (३ आ०)
लेने वाला—ग्राहक
लोई (ऊनी)—रल्लक
लोकसभा—लोकसभा, संसद् (स्त्री०)
लोटा—करक, कमण्डलु (पु०)
लोभिया—वनमुद्ग
लोभी—लुब्ध, गृध्नु (पु०)
लोमडी—लोमशा
लोहा—अयम् (न०), आयसम्, लौहम्
लोहा करना (वस्त्रों पर)—अयस्+कृ (८ उ०)
लोहार—लौहकार
लोहे का टोप—शिरस्त्रम्
लोहे की चादर—लौहफलकम्
लौंग—लवङ्गम्
लौकी—अलाबू (स्त्री०)

लौटकर आना—आ+वृत (१ आ०), प्रत्या+गम् (१ प०)
लौटना—नि+वृत (१ आ०), परा+गम् (१ प०)

व

वंचित—विप्रलब्ध
वंश—अन्वय, अन्ववाय, वंश
वकील—प्राड्विवाक
वचन—वचस् (न०), वचनम्
वज्र—पवि (पु०), वज्रम्, कुलिशम्, अशनि (पु०)
वन—काननम्, विपिनम्, वनम्, अरण्यम्
वरुण—प्रचेतस् (पु०), पाशिन् (पु०), वरुण
वर्षा—वृष्टि (स्त्री०), वर्षा
वर्षाकाल—प्रावृष् (स्त्री०)
वस्तुत—नूनम्, किल, खलु, वै, तावत् (अ०)
वहाँ से—तत (अ०)
वाइस चान्सलर—उपकुलपति (पु०)
वाटर वर्क्स—उदयन्त्रम्
वाणी—सरस्वती, वाच् (स्त्री), वाणी (स्त्री०)
वायु—मातरिश्वन् (पु०) पवन, अनिल
वायुसेनापति—वायुसेनाध्यक्ष
वायोलिन (बाजा)—सारङ्गी (स्त्री०)
विचरण करना—वि+चर् (१ प०)
विजयी—जिष्णु (पु०), विजयिन् (पु०)
विद्युत—सौदामिनी (स्त्री०), विद्युत् (स्त्री०),
विद्वान्—विद्वस् (पु०), विपश्चित् (पु०), सुधी (पु०), कोविद, बुध, मनीषिन् (पु०), सूरि (पु०), निष्णात
विपत्ति—विपत्ति (स्त्री०), विपद् (स्त्री०), व्यसनम्
विमान—विमानम्
विवाह करना—परि+णी (१ उ०), उप+यम् (१ आ०)
विश्राम—विश्रम, विश्राम
विश्वास करना—वि+श्वस् (२ प०)
विष्णु—हरि, अच्युत
विस्तृत—ततम्, विततम्, प्रसृतम्
वीर्य—शुक्रम्
वृक्ष—विटपिन् (पु०), पादप, अनोकह, शाखिन् (पु०)
वृद्ध—प्रवयस् (पु०), वृद्ध
वेतन—वेतनम्
वेतन पर नियुक्त नौकर—वैतनिक
वेदपाठी—श्रोत्रिय, वेदपाठिन् (पु०)
वेदी—वेदिका, वेदी (स्त्री०)
वैश्य—वणिज् (पु०), द्विजाति (पु०), अर्य, वेश्य
वाली-बॉल—क्षेपकन्दुक
व्यक्त करना—वि+अञ्ज् (७ प०)
व्याघ्र—द्वीपिन् (पु०), व्याघ्र
व्यर्थ ही—वृथा (अ०), मुधा (अ०)
व्यवहार करना—आ+चर् (१ प०), व्यव+हृ (१ उ०)
व्यापार—वाणिज्यम्, व्यापार
व्याप्त होना—व्याप् (वि+आप् ५ प०), अश् (५ आ०)

श

शक्कर—शर्करा
शपथ लेना—शप् (१ उ०)
शराबी—मद्यप
शरीफा (फल)—सीताफलम्
शरीर—वपुष् (न०) गात्रम्, तनु (स्त्री०), काय, विग्रह
शर्त—समय
शलगम—श्वेतकन्द
शस्त्र—प्रहरणम्, शस्त्रम्
शस्त्रागार—शस्त्रागारम्, आयुधागारम्
शस्य-श्यामल—शाद्वल
शहतूत (फल)—तूतम्
शहद—मधु० (न०)
शहनाई (बाजा)—तूर्यम्
शहर—नगरम्, पुरम्
शान्त—शान्त (वि०)
शामियाना—चन्द्रातप
शासन करना—शास् (२ प०), तन्त्र् (१० आ०)
शिकार खेलना—मृगया
शिकारी—मृगयु (पु०), आखेटक, शाकुनिक
शिक्षा देना—शास् (२ प०), शिक्ष् (१ आ०)

शिर—शिरस् (न०), मूर्धन् (पु०)
शिला—शिला, शिलापट्ट
शिल्पी—कारु (पु०), शिल्पिन् (पु०)
शिल्पी संघ—श्रेणि (पु०, स्त्री०)
शिल्पी-संघ का अध्यक्ष—कुलक
शिव—त्र्यम्बक, त्रिपुरारि (पु०), ईशान
शिष्य—अन्तेवासिन् (पु०), छात्र, शिष्य, वटु (पु०)
शीघ्र—सद्य (अ०), सपदि (अ०), द्रुतम्, शीघ्रम्
शीशम (वृक्ष)—शिंशपा
शीशा—दर्पण, मुकुर, आदर्श
शुद्ध करना—शोधय (णिच्)
शूद्र—अन्त्यज
शेर—केसरिन् (पु०) सिंह, मृगेन्द्र, हरि (पु०)
शेरवानी—प्रावारकम्
शोभित होना—शुभ् (१ आ०), भा (२ प०)
श्रद्धा करना—श्रद्+धा (३ उ०)

स

संग्रहणी (पेचिश)—प्रवाहिका
सतरा—नारङ्गम्
संवाद करना—सं+वद् (१ आ०)
संशय करना—सं+शी (२ आ०)
सज्जन—साधु (पु०), सुमनस् (पु०) सचेतस् (पु०)
सड़क—मार्ग, पथिन् (पु०), सरणि (स्त्री०)
सड़क, कच्ची—मृन्मार्ग
सड़क, चौड़ी—रथ्या
सड़क, पक्की—दृढमार्ग
सड़क, मुख्य—राजमार्ग
सत्य रूप में—परमार्थत, परमार्थेन, यथार्थत (अ०)
सदस्य—सभासद् (पु०), सभ्य, पारिषदः
सदाचारी—सद्वृत्त, सदाचार
सदृश होना—सं+वद् (१ प०), अनु+हृ (१ आ०)
सधवा स्त्री—पुरन्ध्रि (स्त्री०)
सन्तुष्ट होना—तुष् (४ प०)
सन्दूक—मञ्जूषा
संन्यासी—मस्करिन् (पु०), परिव्राजक, यति (पु०)
सप्ताह—सप्ताह
सफेद बाल—पलितम्
सभा—सभा, समिति (स्त्री०), परिषद् (स्त्री०)
सभागृह—आस्थानम्
समधिन—सम्बन्धिनी (स्त्री०)
समधी—सम्बन्धिन् (पु०)
समर्थ—प्रभविष्णु (पु०), प्रभु (पु०), समर्थ, शक्तः
समर्थ होना—प्र+भू (१ प०)
समय—वेला, काल, समय
समाचार—वार्ता, प्रवृत्ति (स्त्री०), उदन्त
समाप्त—अवसित
समाप्त होना—सम्+आप् (५ प०), अव+सो (४ प०)
समीक्षा करना—सम्+ईक्ष् (१ आ०)
समीप—उप, अनु, अभि, आरात् (अ०)
समीप आना—प्रत्या+सद् (१ प०), उप+या (२ प०)
समीपता—सन्निधानम्, सामीप्यम्
समुद्र—अर्णव, अब्धि (पु०), रत्नाकर
समुद्री व्यापारी—सांयात्रिक
समूह—संहति (स्त्री०), संघ
समोसा—समोष
सम्बन्धी—ज्ञाति (स्त्री०), बन्धु, बान्धव
सरकार—सर्वकार, शासनम्, प्रशासनम्
सरसों—सर्षप
सर्ज (वृक्ष)—सर्ज
सर्वथा—एकान्तत, सर्वथा, नित्यम् (अ०)
सलवार—स्यूतवर
सलाद—शद
सस्ता—अल्पार्घम्
सहना—सह् (१ आ०)
सहपाठी—सतीर्थ्य, सहाध्येतृ (पु०), सहपाठिन् (पु०)
सहभोज—सग्धि (स्त्री०), सहभोज
सहाध्यायी—सतीर्थ्य
सहारा देना—अव+लम्ब् (१ आ०)
सहृदय—सहृदय, सचेतस् (पु०)
सांग वेदज्ञ—अनूचान
सांप—द्विजिह्व, उरग, भुजग,

साँभर नमक—रौमकम्
साक्षी—साक्षिन् (पु०)
साग—शाक, शाकम्
साडी—शाटिका
सात स्वर—सप्त स्वरा
साथ—सह, सार्धम्, साधम, सानिध्यम्
साथी—सहाध्यायिन् (पु०)
साफ करना—मृज (२ प०, १० उ०), प्र+क्षल् (१० उ०)
साबुन—फेनिलम्
सामग्री—हविष् (न०), सभार, उपकरणम्
सामान—पण्य
सारंगी (बाजा)—सारङ्गी (स्त्री०)
सारस—सारस
साल का पेड—साल
साँवा (जंगली धान)—श्यामाक
सास पेन (डेगची)—उखा
साहूकार—कुसीदिक, कुसीदिन् (पु०)
साहूकारा—कुसीदवृत्ति (स्त्री०), कुसीदम्
सिंगारदान—शृङ्गारधानम्, शृङ्गारपिटकम्
सिंघाडा—शृङ्गाटकम्
सिक्का—मुद्रा
सिक्का ढालना—टङ्कनम्, टङ्क् (१० उ०)
सिगरेट—तमाखुवर्तिका
सितार—वीणा
सिद्ध होना—सिध् (४ प०)
सिन्दूर—सिन्दूरम्
सिपाही—रक्षिन् (पु०)
सिफलिस (गर्मी, रोग)—उपदंश
सिलाई—स्यूति (स्त्री०)
सिलाई की मशीन—स्यूतियन्त्रम्
सिला हुआ—स्यूतम्
सींचना—सिच् (६ उ०)
सीखना—शिक्ष् (१ आ०)
सीखने वाला—गृहीतिन् (पु०), अधीतिन् (पु०)
सीढ़ी (लकडी की)—नि श्रेणी (स्त्री०)
सीना—सिव (४ प०)
सीमेन्ट—अश्मचूर्णम्
सीसा (धातु)—सीसम्
सुख—शर्मन् (न०), सुखम्
सुनार—पश्यतोहर, स्वर्णकार
सुन्दर—रुचिरम्, मनोज्ञम्, मञ्जुलम्
सुपारी—पूगम्, पूगीफलम्
सुराविक्रेता—शौण्डिक
सुराही—भृङ्गार
सुअर—शूकर, वराह
सुई—सूचिका
सूखना—शुष् (४ प०)
सूत—सूत्रम्
सूती—कार्पासम्
सूद—कुसीदम्
सूर्य—सप्तसप्ति (पु०), हरिदश्व
सूर्यास्त समय—प्रदोष, गोधूलिवेला, सायम्
सेंधा नमक—सैन्धवम्
सेह (पशु)—शल्य
सेकण्ड—विकला
सेक्रेटरी—सचिव
सेना—चमू (स्त्री०), पृतना, वाहिनी (स्त्री०)
सेनापति—सेनापति (पु०), सेनानी (पु०)
सेफ (तिजौरी)—लौहमञ्जूषा
सेफ्टी रेज़र—उपक्षुरम्
सेम—सिम्बा
सेमर (वृक्ष)—शाल्मलि (पु०)
सेल्स टेक्स—विक्रयकर
सेव (फल)—सेवम्, आताफलम्
सेवई—सूत्रिका
सेवा करना—सेव् (१ आ०), उप+चर् (१ प०)
सोंठ—शुण्ठी (स्त्री०)
सोचना—चिन्त् (१० उ०), विचारय (णिच्)
सोता (स्रोत)—उत्स
सोना—कार्तस्वरम्, जातरूपम्, चामीकरम्
सोना—स्वप् (२ प०), शी (२ आ०)
सोफा—पर्यङ्क
सौंफ—मधुरा
सौदा (सामान)—पण्य
सौ रुपये—शतम्
स्कूल—विद्यालय
स्कूल इन्सपेक्टर—विद्यालयनिरीक्षक

स्टूल—मवेश
स्टेनलेस स्टील—निष्कलङ्कायसम्
स्टेशन—यानावनार
स्टोव—उद्ध्मानम्
स्त्री—योषित् (स्त्री०), कलत्रम् (न०), दारा (पु०)
स्थान—धामन् (न०)
स्नातक—समावृत्त, स्नातक
स्नो—हैमम्
स्पर्धा करना—स्पर्ध् (१ आ०)
स्मरण करना—स्मृ (१ प०),अधि+इ(२ प०)
स्लेट—अश्मपट्टिका
स्वच्छ होना—प्र+सद् (१ प०)
स्वभाव—सर्ग, निसर्ग, प्रकृति (स्त्री०)
स्वभाव से सुन्दर—अव्याजमनोहरम्
स्वर्ग—नाक, त्रिदिव, त्रिविष्टपम्
स्वर्ण—चामीकरम्, जातरूपम्, हिरण्यम्
स्वागतार्थ जाना—प्रत्युद्+गम् (१ प०)
स्वामी—प्रभविष्णु (पु०),प्रभु,स्वामिन्(पु०)
स्वीकार करना—उरी+कृ (८ उ०), उररी+कृ (८ उ०)
स्वेच्छाचारी—स्वैर, स्वैरिन् (पु०), कामवृत्ति (स्त्री०)
स्वेटर—ऊर्णावरकम्

ह

हंस—मराल
हंसी—वरटा
हँसी करना—परि+हस् (१ प०)
हँसुली (गहना)—ग्रैवेयकम्
हटना—अप+सृ (१ प०), या (२ प०), वि०+रम् (१ प०)
हटाना—व्यप+नी (१ उ०), अप+सारय (णिच्)
हथौड़ी—अयोघन
हरताल—पीतकम्
हराना—परा+भू (१ प०),परा+जि (१आ०)
हर्रें—हरीतकी (स्त्री०)
हल—लाङ्गलम्, हलम्, सीर
हल करना (प्रश्नादि)—साधय (णिच्)
हलवाई—कान्दविक
हलुआ—लप्सिका
हलका—लघु (वि०)
हल्दी—हरिद्रा
हवन करना—हु (३ प०)
हाँ—आम्, तथा, अथ किम् (अ०)
हाइड्रोजन बम—जलपरमाण्वस्त्रम्
हॉकी का खेल—यष्टिक्रीडा
हाथ का तोड़ा (गहना)—त्रोटकम्
हाथीवान—हस्तिपक
हार, मोती का—हार
हार, एक लड़ का—एकावली (स्त्री०)
हारना—परा+जि (१ आ०)
हारमोनियम (बाजा)—मनोहारिवाद्यम्
हारसिंगार (फूल)—शेफालिका
हॉल—महाकक्ष
हिंसा करना—हिंस् (७ प०), हन् (२ प०)
हिम—अवश्याय, हिमम्
हिसाब—सङ्ख्यानम्
हींग—सिङ्गु (पु०, न०)
हीरा—हीरक
हृदय—हृदयम्, स्वान्तम्, मानसम्
हुक्का—धूम्रनलिका
हैजा—विषूचिका
होठ—ओष्ठ
होठ, नीचे का—अधर, अधरोष्ठ
होना—भू (१ प०), अस् (२ प०), विद् (४ आ०), वृत् (१ आ०)
हौज—आहाव

(१५) विषयानुक्रमणिका

सूचना—१. शब्दों, धातुओं और निबन्धों के विवरण के लिए प्रारम्भिक विषय-सूची देखिए।

२ विषयानुक्रमणिका में दी गयी संख्याएँ पृष्ठ-बोधक हैं।